

उत्तरज्झयणाणि

(भाग १)

[मूल पाठ, संस्कृत-छाया, हिन्दी अनुवाद]

वाचना प्रमुख

आचार्य तुलसी

अनुवादक और सम्पादक

मुनि नथमल

(निकाय-सचिव)

प्रकाशक

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

(आगम-साहित्य प्रकाशन समिति)

३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-१

प्रबन्ध सम्पादक :

श्रीचन्द्र रामपुरिया, बी० कॉम०, बी० एल्०

संकलक :

आदर्श साहित्य संघ,
चुरू (राजस्थान)

आर्थिक सहायक :

श्री रामलाल हंसराज गोलेछा
विराटनगर (नेपाल)

प्रकाशन तिथि :

१, दिसम्बर, १९६७

प्रति संख्या :

१५००

पृष्ठाङ्क :

६७२

मुद्रक :

रेफिल आर्ट प्रेस,
३१, बडतला स्ट्रीट,
कलकत्ता-७

मूल्य :

₹० २०

JAIN SWETAMBAR TERAPANTHI MAHASABHA AGAM-GRANTHAMALA
GRANTHA : 2

UTTARAJJHAYANANI
(THE UTTARADHYAYANA SUTRA)

PART I

Text with variant readings, Sanskrit renderings and Hindi translation.

VACANA PRAMUKH
ACARYA TULASI

EDITED & TRANSLATED
BY
MUNI NATHMAL
Nikaya Saciva

PUBLISHER
JAIN SWETAMBAR TERAPANTHI MAHASABHA
AGAM-SAHITYA PRAKASHAN SAMITI
3 Portuguese Church Street
CALCUTTA-1 (INDIA)

First Edition : 1967
Copies Printed : 1500

Price Rs 20 00/-

Managing Editor :

Shreechandra Ramprasad, B. Com., B.L.

Manuscript compiled by :

Adarsha Sahitya Sangha

Churu (Rajasthan)

Financial Assistance :

Sri Ramlal Hanshraj Golchha

Biratnagar (Nepal)

Printer :

Raphael Art Press

31, Burtolla Street,

CALCUTTA-7

All Rights Reserved

समर्पण

॥१॥

पुट्टो वि पण्णा-पुरिसो सुदक्खो,
आण्णा-पहाणो जणि जस्स निच्च ।
सच्चप्पओगे पवरासयस्स,
भिक्खुस्स तस्स प्पणिहाण पुव्व ॥

जिसका प्रज्ञा-पुरुष पुष्ट पट्ट,
होकर भी आगम-प्रधान था ।
सत्य-योग में प्रवर चित्त था,
उसी भिक्षु को विमल भाव से ॥

॥२॥

विलोडियं आगम दुद्ध मेव,
लद्धं सुलद्धं णवणीय मच्छ ।
सज्झायसज्झाणरयस्स निच्चं,
जयस्स तस्स प्पणिहाण पुव्व ॥

जिसने आगम-दोहन कर कर,
पाया प्रवर प्रचुर नवनीत ।
श्रुत-सद्ध्यान लीन चिर चित्तन,
जयाचार्य को विमल भाव से ॥

॥३॥

पवाहिया जेण सुयस्स धारा,
गणे समत्थे मम माणसे वि ।
जो हेउभूओ स्स पवायणस्स,
कालुस्स तस्स प्पणिहाण पुव्व ॥

जिसने श्रुत की धार बहाई,
सकल सघ में मेरे मन में ।
हेतुभूत श्रुत-सम्पादन में,
कालुगणी को विमल भाव से ॥

विनयावनतः

आचार्य तुलसी

अन्तस्तोष

अन्तस्तोष अनिर्वचनीय होता है, उस माली का जो अपने हाथों से उस और सिञ्चित द्रुम-निकुञ्ज को पल्लवित, पुष्पित और लित हुआ देखता है, उस कलाकार का जो अपनी तूलिका से निराकार को साकार हुआ देखता है और उस कल्पनाकार का जो अपनी कल्पना को अपने प्रयत्नों से प्राणवान् बना देखता है। चिरकाल से मेरा मन इस कल्पना से भरा था कि जैन-आगमों का अखण्ड-पूर्ण सम्पादन हो और मेरे जीवन के बहुश्रमी क्षण उसमें लगें। सकल्प फलवान् बना और वैसा ही हुआ। मुझे केन्द्र मान मेरा परिवार उस कार्य में लग्न हो गया। अतः मेरे इस अन्तस्तोष में मैं उन सबको समभावी बनाना चाहता हूँ, जो इस प्रवृत्ति में विभागी रहे हैं। संक्षेप में वह सविभाग इस प्रकार है—

अनुवादक और सम्पादक :

सहयोगी :

पाठ-सम्पादन :

संस्कृत छाया :

पदानुक्रम :

विषयानुक्रम :

मुनि नथमल (निकाय-सचिव)

मुनि मीठालाल

मुनि दुलहराज

मुनि सुदर्शन

मुनि मधुकर

मुनि हीरालाल

मुनि सुमेरमल 'लाडनू'

मुनि श्रीचन्द्र 'कमल'

साध्वी जयश्री

साध्वी कनकश्री

मुनि रूपचन्द्र

संविभाग हमारा धर्म है। जिन-जिनने इस गुह्यतर प्रवृत्ति में उन्मुक्त भाव से अपना सविभाग समर्पित किया है, उन सबको आशीर्वाद देता हूँ और कामना करता हूँ कि उनका भविष्य इस महान् कार्य का भविष्य बने।

—आचार्य तुलसी

ग्रन्थानुक्रम

समर्पण			
अन्तस्तोष			
प्रकाशकीय			
सम्पादकीय	पृ० १-४
भूमिका	पृ० १-३
मूल	पृष्ठ १-५४६
परिशिष्ट			
पदानुक्रम	१-५६
शुद्धि-पत्रक	१-६
आमुखो मे प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची	१-३

प्रकाशकोष

‘उत्तरजम्भयणाणि’ (उत्तराध्ययन सूत्र) मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पणियों सहित दो भागों में आपके हाथों में है ।

वाचना प्रमुख आचार्य श्री तुलसी एवं उनके इगित और आकार पर सब कुछ न्यौछावर कर देने वाले मुनि-वृन्द की यह समवेत कृति आगमिक कार्य-क्षेत्र में युगान्तरकारी है । इस कथन में अतिशयोक्ति नहीं, पर सत्य है । बहुमुखी प्रवृत्तियों के केन्द्र प्राणपुञ्ज आचार्य श्री तुलसी ज्ञान-सितिज के एक महान् तेजस्वी रवि हैं और उनका मण्डल भी शुभ्र नक्षत्रों का तपोपुञ्ज है । यह इस अत्यन्त श्रम-साध्य कृति से स्वयं फलीभूत है ।

गुरुदेव के चरणों में मेरा विनम्र सुभाषण रहा—आपके तत्त्वावधान में आगमों का सम्पादन और अनुवाद हो—यह भारत के सांस्कृतिक अम्युदय की एक मूल्यवान् कड़ी के रूप में चिर-अपेक्षित है । यह अत्यन्त स्थायी कार्य होगा, जिसका लाभ एक-दो-तीन नहीं अपितु अचिन्त्य भावी पीढ़ियों को प्राप्त होता रहेगा । मुझे इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि मेरी मनोभावना अकुरित ही नहीं, पर फलवती और रसवती भी हुई है ।

प्रस्तुत ‘उत्तरजम्भयणाणि’ आगम-अनुसन्धान ग्रन्थमाला का द्वितीय ग्रन्थ है । इससे पूर्व प्रकाशित ‘दसवेआलिय’ (मूल पाठ, संस्कृत-छाया, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पण युक्त) को अब अनुसन्धान ग्रन्थमाला का प्रथम ग्रन्थ समझना चाहिए ।

‘दसवेआलिय’ एक जिल्द में प्रकाशित है । उसमें टिप्पण प्रत्येक अध्ययन के बाद में है । ‘उत्तरजम्भयणाणि’ में टिप्पणों की अलग जिल्द द्वितीय भाग के रूप में प्रकाशित है ।

‘दसवेआलिय’ में पाठान्तर नहीं दिये गये थे । ‘उत्तरजम्भयणाणि’ में पाठान्तर दे दिये गये हैं ।

‘दसवेआलिय’ की तरह ही ‘उत्तरजम्भयणाणि’ में भी प्रत्येक अध्ययन के आरम्भ में पाठित्यपूर्ण आमुख दे दिया गया है, जिससे अध्ययन के विषय का सागोपाङ्ग आभास हो जाता है । प्रत्येक आमुख एक अध्ययनपूर्ण निबन्ध-सा है । परिशिष्ट में आमुखों में प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची दे दी गई है, जिससे आमुखों को लिखने में जो परिश्रम उठाया गया है, उसका सहज ही आभास हो जाता है । चारों चरणों का पदानुक्रम भी दे दिया गया है । आरम्भ में अध्ययन-अनुक्रमणिका के साथ-साथ अध्ययन विषयानुक्रम भी दे दिया गया है, जिससे प्रत्येक श्लोक का विषय जाना जा सकता है ।

द्वितीय भाग में टिप्पण हैं । टिप्पणों के प्रस्तुत करने में चूर्णि, टीकाएँ आदि के उपयोग के साथ-साथ अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का भी सहारा लिया गया है, जिनकी सूची द्वितीय भाग के अन्त में दे दी गई है । प्रथम परिशिष्ट में शब्द-विमर्श और द्वितीय परिशिष्ट में पाठान्तर-विमर्श समाहित हैं । इस तरह टिप्पण भाग अपूर्व अध्ययन के साथ पाठकों के सामने उपस्थित हो रहा है । प्रयुक्त ग्रन्थों के सन्दर्भ सहित उद्धरण पाद-टिप्पणियों में दे दिये गये हैं, जिससे जिज्ञासु पाठक की तृप्ति हाथों हाथ हो जाती है और उसे सन्दर्भ देखने के लिए इधर-उधर दौड़ना नहीं पड़ता ।

तेरापथ के आचार्यों के बारे में यह कहा जाता है कि उन्होंने प्राचीन चूर्णि, टीका आदि ग्रन्थों का वहिष्कार कर दिया । वास्तव में इसके पीछे तथ्य नहीं था । सत्य जहाँ भी हो वह आदरणीय है, यही तेरापथी आचार्यों की दृष्टि रही । चतुर्थ आचार्य जयाचार्य ने पुरानी टीकाओं का कितना उपयोग किया था, यह उनकी भगवती जोड़ आदि रचनाओं से प्रकट है । ‘दसवेआलिय’ तथा ‘उत्तरजम्भयणाणि’ तो इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीकाओं आदि का जितना उपयोग प्रथम बार वाचना प्रमुख आचार्य श्री तुलसी एवं उनके चरणों में सम्पादन-कार्य में लगे हुए निकाय सचिव मुनि श्री नथमलजी तथा उनके सहयोगी साधुओं ने किया है, उतना किसी भी अद्यावधि प्रकाशित सानुवाद संस्करण में नहीं हुआ है । सारा अनुवाद एवं लेखन-कार्य अभिनव कल्पना को लिए हुए हैं । मौलिक चिन्तन भी उनमें कम नहीं है । बहुश्रुतता एवं गंभीर अन्वेषण प्रति पृष्ठ से झलकते हैं । हम आशा करते हैं कि पाठकों को दो भागों में प्रकाशित होने वाला यह ग्रन्थ अनेक नई सामग्री प्रदान करेगा और वे इसे बड़े ही आदर के साथ अपनायेंगे ।

पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि

आचार्य श्री के सत्त्वावधान में सन्तों द्वारा प्रस्तुत पाण्डुलिपि को नियमानुसार अवधार कर उसकी प्रतिलिपि करने का कार्य साहित्य सघ, (चूरू) द्वारा सम्पन्न हुआ है, जिसके लिए हम सघ के सचालकों के प्रति कृतज्ञ हैं।

अर्थ-व्यवस्था

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का व्यय विराटनगर (नेपाल) निवासी श्री रामलालजी हंसराजजी गोलछा द्वारा श्री हंसराज हलासचन्दजी गोलछा को स्वर्गीया माता श्री घापीदेवी (धर्मपत्नी श्री रामलालजी गोलछा) की स्मृति में प्रदत्त निधि से हुआ है। इस अनुकरणीय अनुदान के लिए गोलछा-परिवार हार्दिक धन्यवाद का पात्र है।

आगम-साहित्य प्रकाशन समिति की ओर से उक्त निधि से होने वाले प्रकाशन-कार्य की देख-रेख के लिए निम्न सजनों की उपसमिति गठित की गई है :—

- १— श्रीमान् हलासचन्दजी गोलछा
- २— „ मोहनलालजी बाँठिया
- ३— „ श्रीचन्द रामपुरिया
- ४— „ गोपीचन्दजी चौपडा
- ५— „ केवलचन्दजी नाहटा

सर्व श्री श्रीचन्द रामपुरिया एवं केवलचन्दजी नाहटा उक्त समिति के संयोजक चुने गये हैं।

आगम-साहित्य प्रकाशन-कार्य

महासभा के अन्तर्गत आगम-साहित्य प्रकाशन समिति का प्रकाशन-कार्य ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रहा है, त्यों-त्यों हृदय में आगम-पारावार नहीं। मैं तो अपने जीवन की एक साध ही पूरी होते देख रहा हूँ। इस अवसर पर मैं अपने अनन्य बन्धु और साथी गोविन्दरामजी सरावगी, मोहनलालजी बाँठिया एवं खेमचन्दजी सेठिया को उनकी मुक्त सेवाओं के लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

आभार

आचार्य श्री की सुदीर्घ दृष्टि अत्यन्त भेदिनी है। जहाँ एक ओर जन-मानस को आध्यात्मिक और नैतिक चेतना की ओर के व्यापक आन्दोलनों में उनके अमूल्य जीवन-क्षण लग रहे हैं वहाँ दूसरी ओर आगम-साहित्य-गत जैन-संस्कृति के मूल जन-व्यापी बनाने का उनका उपक्रम भी अनन्य और स्तुत्य है। जैन-आगमों को अभिलिखित रूप में भारतीय एवं विदेशी विद्वानों के ला देने की आकांक्षा में वाचना प्रमुख के रूप में आचार्य श्री तुलसी ने जो अथक परिश्रम अपने कंधों पर लिया है, उसके लिए नहीं अपितु सारी भारतीय जनता उनके प्रति कृतज्ञ रहेगी।

निकाय सचिव मुनि श्री नथमलजी का सम्पादन-कार्य एवं तेरापथ-सघ के अन्य विद्वान् मुनि-वृन्द के सक्रिय सहयोग भी अभिनन्दनीय है।

हम आचार्य श्री और उनके साधु-परिवार के प्रति इस जन-हितकारी पवित्र प्रवृत्ति के लिए नतमस्तक हैं।

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-१

श्रीचन्द

संयोजक

आगम-साहित्य प्रकाशन

सम्पादकीय

आगम-सम्पादन की प्रेरणा

विक्रम सम्वत् २०११ का वर्ष और चैत्र मास । आचार्य श्री तुलसी महाराष्ट्र की यात्रा कर रहे थे । पूना से नारायण की ओर जाते-जाते मध्यावधि में एक दिन का प्रवास मंचर में हुआ । आचार्य श्री एक जैन परिवार के भवन में ठहरे थे । मासिक पत्रों की फाइलें पड़ी थीं । गृह-स्वामी की अनुमति ले, हम लोग उन्हें पढ़ रहे थे । साँझ की बेंला, लगभग छह बजे में एक पत्र के किसी अंश का निवेदन करने के लिए आचार्य श्री के पास गया । आचार्य श्री पत्रों को देख रहे थे । जैसे ही पहुँचा, आचार्य श्री ने धर्मदूत के सद्यस्क अंक की ओर संकेत करते हुए पूछा—“यह देखा कि नहीं ?” मैंने उत्तर में निवेदित किया—“नहीं, अभी नहीं देखा ।” आचार्य श्री बहुत गम्भीर हो गए । एक क्षण रुक कर बोले—“इसमें बौद्ध-पिटकों के सम्पत् की बहुत बड़ी योजना है । बौद्धों ने इस दिशा में पहले ही बहुत कार्य किया है और अब भी बहुत कर रहे हैं । जैन-आगमों सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से अभी नहीं हुआ है और इस ओर अभी ध्यान भी नहीं दिया जा रहा है ।” आचार्य श्री की वाणी अन्तर-वेदना टपक रही थी, पर उसे पकड़ने में समय की अपेक्षा थी ।

आगम-सम्पादन का संकल्प

रात्रि-कालीन प्रार्थना के पश्चात् आचार्य श्री ने साधुओं को आमंत्रित किया । वे आए और वन्दना कर पक्ति-बद्ध बैठे । आचार्य श्री ने सायं-कालीन चर्चा का स्पर्श करते हुए कहा—“जैन-आगमों का कायाकल्प किया जाय, ऐसा संकल्प उठा है । पूर्ति के लिए कार्य करना होगा, पूर्ण श्रम करना होगा । बोलो, कौन तैयार है ?”

सारे हृदय एक साथ बोल उठे—“सब तैयार हैं ।”

आचार्य श्री ने कहा—“महान् कार्य के लिए महान् साधना चाहिए । कल ही पूर्ण तैयारी में लग जाओ, अपनी-अपनी रुचि का विषय चुनो और उसमें गति करो ।”

मंचर से विहार कर आचार्य श्री संगमनेर पहुँचे । पहले दिन वैयक्तिक बातचीत होती रही । दूसरे दिन साधु-साध्वियों परिषद् बुलाई गई । आचार्य श्री ने परिषद् के सम्मुख आगम-सम्पादन के संकल्प की चर्चा की । सारी परिषद् प्रफुल्ल हो उठी । आचार्य श्री ने पूछा—“क्या इस संकल्प को अब निर्णय का रूप देना चाहिए ?”

समलय से प्रार्थना का स्वर निकला—“अवश्य, अवश्य ।” आचार्य श्री औरंगाबाद पधारे । सुराणा-भवन, चैत्र शुक्ल त्रयोदशी (वि० सं० २०११), महावीर-जयंती का पुण्य-पर्व । आचार्य श्री ने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका—इस संघ की परिषद् में आगम-सम्पादन की विधिवत् घोषणा की ।

आगम-सम्पादन का कार्यारम्भ

वि० सं० २०१२ श्रावण मास (उज्जैन चातुर्मास) से आगम-सम्पादन का कार्यारम्भ हो गया । न तो सम्पादन का को अनुभव और न कोई पूर्ण तैयारी । अकस्मात् धर्मदूत का निमित्त पा आचार्य श्री के मन में संकल्प उठा और उसे शिरोधार्य कर लिया । चिन्तन की भूमिका से इसे निरी भावुकता ही कहा जाएगा, किन्तु भावुकता का मूल्य चिन्तन से नहीं है । हम अनुभव-विहीन थे, किन्तु आत्म-विश्वास से शून्य नहीं थे । अनुभव आत्म-विश्वास का अनुगमन करता है किन्तु आत्म-विश्वास अनुभव का अनुगमन नहीं करता ।

प्रथम दो-तीन वर्षों में हम अज्ञात दिशा में यात्रा करते रहे। फिर हमारी सारी दिशाएँ और कार्य-पद्धतियाँ निश्चित व सुस्थिर हो गईं। आगम-सम्पादन की दिशा में हमारा कार्य सर्वाधिक विशाल व गुरुतर कठिनाइयों से परिपूर्ण है, यह कह कर मैं स्वल्प भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूँ। आचार्य श्री के अदम्य उत्साह व समर्थ प्रयत्न से हमारा कार्य निरन्तर गतिशील हो रहा है। इस कार्य में हमें अन्य अनेक विद्वानों की सद्भावना, समर्थन व प्रोत्साहन मिल रहा है। मुझे विश्वास है कि आचार्य श्री की यह वाचना पूर्ववर्ती वाचनाओं से कम अर्थवान् नहीं होगी।

आगम-सम्पादन की रूपरेखा

प्रस्तुत ग्रंथ उत्तराध्ययन का सानुवाद संस्करण है। यह आगम-ग्रन्थ-माला का दूसरा ग्रन्थ है। आगम-साहित्य के अध्येता दोनों प्रकार के लोग हैं—विद्वद्-जन और साधारण-जन। दोनों को दृष्टि में रख कर हमने सम्पादन कार्य को छह ग्रन्थ-माला में ग्रथित किया है। उसका आधार यह है—

- (१) आगम-सुत्त ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के मूलपाठ, पाठान्तर, शब्दानुक्रम आदि होंगे।
- (२) आगम ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के मूलपाठ, पाठान्तर, संस्कृत-छाया, हिन्दी अनुवाद, पदानुक्रम या सूत्रानुक्रम आदि होंगे।
- (३) आगम-अनुसन्धान ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के टिप्पण होंगे।
- (४) आगम-अनुशीलन ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के समीक्षात्मक अध्ययन होंगे।
- (५) आगम-कथा ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों से सम्बन्धित कथाओं का संकलन होगा।
- (६) वर्गीकृत-आगम ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के वर्गीकृत और संक्षिप्त संस्करण होंगे।

प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका बहुत ही लघुकाय है। उसका प्रतिपाद्य विषय 'उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन' (आगम-अनुशीलन ग्रन्थ-माला, ग्रन्थ-२) तथा 'दसवेआलियं तह उत्तरजम्भयणाणि' (आगम-सुत्त ग्रन्थ-माला, ग्रन्थ-१) की भूमिका में प्रतिपादित हो चुका है। प्रत्येक अध्ययन के प्रारम्भ में आमुख हैं, उनमें भी अध्ययन की प्रासंगिक चर्चा की गई है। इसलिए भूमिका में चर्चित विषयों की पुनः चर्चा करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

मूलपाठ

प्रस्तुत ग्रन्थ में मूलपाठ वही है, जिसका प्रयोग हमने आगम-सुत्त ग्रन्थ-माला, ग्रन्थ-१ में किया है। पाठ-संशोधन में प्रयुक्त आदर्शों का परिचय उस ग्रन्थ में दिया जा चुका है। पाठान्तर पाद-टिप्पणों में दिए गए हैं। उनके आगे कोष्ठक में संशोधन में प्रयुक्त आदर्शों के संकेत हैं।

हस्तलिखित प्रतियों के संकेत

- अ—मूलपाठ सावचूरी।
 आ—उत्तराध्ययन मूलपाठ।
 इ—उत्तराध्ययन मूल।
 उ—उत्तराध्ययन पाठ, अवचूरी सहित।
 श—उत्तराध्ययन पाठ, अवचूरी सहित।
 स—उत्तराध्ययन सर्वार्थसिद्धि टीका सहित।

मुद्रित प्रतियों के संकेत

- सु—सुखबोधा टीका, नेमिचन्द्राचार्य कृत, प्र०—देवचन्द लालभाई।
 वृ—बृहद्बृत्ति, शान्त्याचार्य कृत, प्र०—देवचन्द लालभाई जैन, पुस्तकोद्धार, ग्रंथाक-३३।
 चू—चूर्णि, गोपालिक महत्तरशिष्य कृत, प्र०—देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रंथाक-३३।

संस्कृत-छाया

संस्कृत-छाया को हमने वस्तुतः छाया रखने का ही प्रयत्न किया है। कुछ मुद्रित पुस्तकों में संस्कृत-छाया टीकाओं के आधार पर की गई है, किन्तु यह कई स्थलों पर छाया न हो कर संस्कृत पर्यायान्तर हो जाता है। टीकाकार प्राकृत शब्द की व्याख्या करते हैं अथवा उसका संस्कृत पर्यायान्तर देते हैं। छाया में वैसा नहीं हो सकता।

मूलपाठ में कुछ शब्द देशी भाषा के हैं। संस्कृत-छाया तत्सम प्राकृत शब्दों की हो सकती है, किन्तु देशी शब्दों की नहीं हो सकती। वहाँ हमने अर्थानुसार संस्कृत पर्याय का प्रयोग किया है। देखें—१३।२१ और २९।२२ में 'धणिय' शब्द का संस्कृत पर्याय। जिनके लिए संस्कृत का एक शब्द नहीं मिलता, वैसे देशी शब्दों को उभयवर्ती व्यवच्छेदों (कोमा) के अन्तर्गत रखा गया है। देखें १।५ का 'कणकुण्डग'। परिभाषाई शब्दों को भी उभयवर्ती व्यवच्छेदों के अन्तर्गत रखा गया है।

हिन्दी-अनुवाद

उत्तराध्ययन का हिन्दी-अनुवाद मूलस्पर्शी है। इसमें कोरे शब्दानुवाद की सी विरसता और जटिलता नहीं है तथा भावानुवाद जैसा विस्तार भी नहीं है। सूत्र का आशय जितने शब्दों में प्रतिविम्बित हो सके, उतने ही शब्दों की योजना करने का प्रयत्न किया गया है। मूल शब्दों की सुरक्षा के लिए कहीं-कहीं उनका प्रचलित अर्थ कोष्ठकों में किया गया है। सूत्रगत हार्द की स्पष्टता टिप्पण के संस्करण में की गई है। देखें—उत्तराध्ययन के टिप्पण। सभी सूत्रों के टिप्पण अनुवाद के तत्काल वाद नहीं लिखे जा सकते। इस कठिनाई के कारण टिप्पणों के संकेत अनुवाद के साथ संद्वन्द्व नहीं किये जा सके। इससे पाठकों के सामने किंचित् कठिनाई होती है। हमारी कठिनाई उससे कहीं अधिक है, इसलिए वैसा करना हमारे लिए संभव नहीं।

परिशिष्ट

इस संस्करण में तीन परिशिष्ट हैं—

- (१) पदानुक्रम — इसमें प्रत्येक श्लोक के प्रत्येक चरण का अनुक्रम किया गया है।
- (२) प्रयुक्त-ग्रन्थ—इसमें आमुखों में प्रयुक्त ग्रन्थों की सूची है।
- (३) शुद्धि-पत्रम्।

ग्रन्थाग्र—ग्रन्थ-परिमाण

उत्तराध्ययन का अक्षर-परिमाण कुल ६५५१२।

उत्तराध्ययन अनुष्टुप् श्लोक-परिमाण २०५०।१२ अक्षर।

प्रस्तुत सम्पादन में सहयोगी

उत्तराध्ययन सर्वाधिक प्रसिद्ध आगम है। यह सरस, सरल और हृदयग्राही है। इसका अनुवाद भी हमने प्राब्जल हिन्दी में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। अनुवाद-कार्य में मुनि मीठालालजी व दुलहराजजी ने पूरा योग दिया है। आचार्य श्री ने इसे स्वरुचि तथा जन-रुचि दोनों कसौटियों से कसा है।

इसका पदानुक्रम साध्वी जयश्री, कनकश्री ने किया है। उसके संशोधन में मुनि हनुमानमलजी (सरदारशहर), हीरालालजी, श्रीचन्द्रजी, किशनलालजी, मोहनलालजी (आमेट), साध्वी कमलश्रीजी तथा सरोजकुमारीजी ने योग दिया है।

इसका विषयानुक्रम मुनि रूपचन्द्रजी ने किया है। अनुवाद की प्रतिलिपि में मुनि सुमेरमलजी 'सुमन' ने मेरा सहयोग किया है। ग्रन्थ-परिमाण की गणना मुनि सागरमलजी 'श्रमण', मुनि मोहनलालजी (आमेट) ने की है।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक साधु-साध्वियों की पवित्र अँगुलियों का योग है। आचार्य श्री के वरदहस्त की छाया में बैठ कर कार्य करने वाले हम सब संभागी हैं, फिर भी मैं उन सब साधु-साध्वियों के प्रति सद्भावना व्यक्त करता हूँ, जिनका इस काय में योग है और आशा करता हूँ कि वे इस महान् कार्य के अग्रिम चरण में और अधिक दक्षता प्राप्त करेंगे।

आगमों के प्रबन्ध-सम्पादक श्री श्रीचन्दजी रामपुरिया तथा स्वर्गीय मदनचन्दजी गोठी का भी इस कार्य में निरन्तर सहयोग रहा है ।

आदर्श साहित्य संघ के संचालक व व्यवस्थापक श्री हनूतमलजी सुराना व जयचन्दलालजी दफ्तरी का भी अविरल योगः रहा है । आदर्श साहित्य संघ की सहयुक्त सामग्री ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है । इस लक्ष्य के लिए समान गति से चलने वालों की सम-प्रवृत्ति में योगदान की परम्परा का उल्लेख व्यवहार-पूर्ति मात्र है । वास्तव में यह हम सबका पवित्र कर्तव्य है और उसी का हम सबने पालन किया है ।

आचार्य श्री प्रेरणा के अनन्त स्रोत हैं । हमें इस कार्य में उनकी प्रेरणा और प्रत्यक्ष योग दोनों प्राप्त हैं, इसलिए हमारा कार्य-पथ बहुत ऋजु हुआ है । उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर मैं कार्य की गुरुता को बढ़ा नहीं पाऊँगा । उनका आशीर्वाद दीप बन कर हमारा कार्य-पथ प्रकाशित करता रहे, यही हमारी आशंसा है ।

—सुनि नथमल

सागर-सदन,

शाहीबाग,

अहमदाबाद-४

२० अगस्त, १९६७

भूमिका

जैन-आगम चार वर्गों में विभक्त है—(१) अग, (२) उपांग, (३) मूल और (४) छेद। यह वर्गीकरण बहुत प्राचीन नहीं है। विक्रम की १३-१४वीं शताब्दी से पूर्व इस वर्गीकरण का उल्लेख प्राप्त नहीं है।

उत्तराध्ययन 'मूल वर्ग' के अन्तर्गत परिगणित होता है।

चूर्णि-कालीन श्रुत-पुरुष की स्थापना के अनुसार मूल-स्थानीय (चरण-स्थानीय) दो सूत्र हैं—(१) आचाराग और (२) सूत्रकृतांग। परन्तु जिस समय पैंतालीस आगमों की कल्पना स्थिर हुई, उस समय श्रुत-पुरुष की स्थापना में भी परिवर्तन हुआ और श्रुत-पुरुष की अर्वाचीन प्रतिकृतियों में दशवैकालिक और उत्तराध्ययन—ये दो सूत्र चरण-स्थानीय माने जाने लगे।

नाम

इस सूत्र का नाम उत्तराध्ययन है। यह दो शब्दों—'उत्तर' और 'अध्ययन'—से बना है। इसी सूत्र के अन्तिम श्लोक तथा निर्युक्ति आदि में इसका नाम बहुवचनात्मक मिलता है।

रचना-काल और कर्तृत्व

निर्युक्तिकार के अनुसार उत्तराध्ययन किसी एक कर्त्ता की कृति नहीं है। कर्तृत्व की दृष्टि से इसके अध्ययन चार वर्गों में विभक्त होते हैं। जैसे—(१) अग-प्रभव—दूसरा अध्ययन, (२) जिन-भाषित—दसव अध्ययन, (३) प्रत्येक-बुद्ध-भाषित—आठवाँ अध्ययन और (४) सवाद-समुत्थित—नौवाँ तथा तेईसवाँ अध्ययन।

इस सूत्र के अध्ययन कब और किसके द्वारा रचे गए, इसकी प्रामाणिक जानकारी के लिए साधन-सामग्री सुलभ नहीं है।

उत्तराध्ययन की विषय-वस्तु के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उत्तराध्ययन के अध्ययन ई० पू० ६०० से ईसवी सन् ४००, लगभग हजार वर्ष की धार्मिक व दार्शनिक धारा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

कई विद्वान् ऐसा मानते हैं कि उत्तराध्ययन के पहले अठारह अध्ययन प्राचीन हैं और उत्तरवर्ती अठारह अध्ययन अर्वाचीन। किन्तु इस मत की पुष्टि के लिए कोई पुष्ट साक्ष्य प्राप्त नहीं है। यह सही है कि कई अध्ययन बहुत प्राचीन हैं और कई अर्वाचीन।

वीर निर्वाण की एक सहस्राब्दी के बाद देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने प्राचीन और अर्वाचीन अध्ययनों का संकलन कर उसे एक रूप दिया।

उत्तराध्ययन धर्मकथानुयोग में परिगणित होता है। इससे यह अनुमान लगता है कि इसके प्राचीन संस्करण का मुख्य भाग कथा-भाग था।

वर्तमान में प्राप्त उत्तराध्ययन में अनेक अनुयोगों का समावेश है। इसमें १४ अध्ययन धर्मकथात्मक (७, ८, ९, १३, १३, १४, १८ से २३, २५ से २७), छह अध्ययन उपदेशात्मक (१, ३, ४, ५, ६ और १०), नौ अध्ययन आचारात्मक (२, ११, १५, १६, १७, २४, २६, ३३ और ३५) तथा सात अध्ययन (२८, २९, ३०, ३१, ३३, ३४, ३६) सैद्धान्तिक हैं।

इन तथ्यों से यह फलित होता है कि यह संकलन-सूत्र है, एक-कर्त्तृक नहीं।

आकार और विषय-वस्तु

इसमें छत्तीस अध्ययन है और १६३८ श्लोक तथा ८६ सूत्र है । प्रत्येक अध्ययन का विषय भिन्न-भिन्न है । उसका विवरण इस प्रकार है—

अध्ययन	श्लोक	विषय
१—विणयसुय	४८	विनय
२—परीसह	४६ सू० ३	प्राप्त-कष्ट-सहन का विधान
३—चातरगिज्ज	२०	चार दुर्लभ अंगों का प्रतिपादन
४—असखय	१३	प्रमाद और अप्रमाद का प्रतिपादन
५—अकाममरणिज्ज	३३	मरण-विभक्ति—अकाम और सकाम-मरण
६—पुरिसविज्जा	१७	विद्या और आचरण
७—उरविभज्जं	३०	रस-गृद्धि का परित्याग
८—काविलिज्ज	२०	लाम और लोभ के योग का प्रतिपादन
९—नमिपव्वज्जा	६३	सयम मे निष्प्रकम्प भाव
१०—दुमपत्तय	३७	अनुशासन
११—बहुसुयपूजा	३३	बहुश्रुत की पूजा
१२—हरिरसिज्ज	४७	तप का ऐश्वर्य
१३—चित्तसभूय	३५	निदान—भोग-सकत्प
१४—उसुकारिज्ज	५३	अनिदान—भोग-असकत्प
१५—समिक्खुग	१६	भिक्षु के गुण
१६—समाहिंठाणाइ	१७ सू० १३	ब्रह्मचर्य की गुप्तियाँ
१७—पावसमणिज्ज	३१	पाप-वर्जन
१८—सज्ज	५३	भोग और ऋद्धि का त्याग
१९—मियचारिता	६८	अपरिकर्म—देहाध्यास का परित्याग
२०—अणाहपव्वज्जा	६०	अनाथता
२१—समुद्दपाळिज्ज	२४	विचित्र चर्या
२२—रहनेमिज्ज	४९	चरण का स्थिरीकरण
२३—गोयमकेसिज्जं	८६	धर्म—चातुर्याम और पचयाम
२४—समितीओ	२७	समितियाँ-गुप्तियाँ
२५—जन्नतिज्ज	४३	ब्राह्मण के गुण
२६—सामायारी	५३	सामायारी
२७—खलुंकिज्ज	१७	अशठता
२८—मोक्खमग्गगई	३६	मोक्ष-मार्ग-गति
२९—अप्पमाओ	सू० ७४	आवश्यक में अप्रमाद
३०—तवोमग्गो	३७	तप

३१—चरणविही	३१	चारित्र
३२—पमायटाणाइ	१११	प्रमाद-स्थान
३३—कम्मपगढी	३५	कर्म
३४—लेसउम्भयण	६१	लेइया
३५—अणगारमग्गे	२१	मिद्धु के गुण
३६—जीवान्जीवविमत्ती	३६८	जीव और अजीव का प्रतिपादन

इस सूत्र में भाषा के विशिष्ट प्रयोग उपलब्ध होते हैं। इसकी मूल भाषा अर्द्धमागधी प्राकृत है, परन्तु यत्र-तत्र महाराष्ट्री-प्राकृत के प्रयोग भी बहुलता से मिलते हैं।

इन पृष्ठों में चर्चित विषय-वस्तु का विशद विवेचन 'देसवेआलिय तह उत्तरउम्भयण' की भूमिका (पृष्ठ १-४६) में किया जा चुका है। व्याकरण, छन्द, तुलनात्मक, भूगोल और व्यक्ति-परिचय—इनका विमर्श 'उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन' में किया जा चुका है।

वाव

—आचार्य तुलसी

२६ अप्रैल, १९६७

उत्तरञ्जयणाणि

अध्ययन अनुक्रमणिका

१—विणय-सुय	पृष्ठ १-१६
२—परीसह-पविमत्ती	१७-३६
३—चासरगिज्ज	३७-४६
४—असखय	४७-५४
५—अकाम-मरणिज्ज	५५-७२
६—खुट्ठागनियठिज्ज	७३-८०
७—सरणिमज्ज	८१-९२
८—काविलीय	९३-१०२
९—नमिपव्वज्जा	१०३-११८
१०—दुमपत्तय	११९-१२८
११—वट्ठस्सुयपुज्जा	१२९-१३८
१२—हरिएसिज्ज	१३९-१५२
१३—चित्तसम्मूहज्ज	१५३-१६८
१४—उसुयारिज्ज	१६९-१८४
१५—समिवखुय	१८५-१९२
१६—वम्भचेरसमाहिठाण	१९३-२१०
१७—पावसमणिज्ज	२११-२१८
१८—सज्जज्ज	२१९-२३४
१९—मियापुतिज्ज	२३५-२५६
२०—महानियण्ठिज्ज	२५७-२७२
२१—समुह्वालीय	२७३-२८२
२२—रहनेमिज्ज	२८३-२९६
२३—केसिगोयमिज्ज	२९७-३१८
२४—पथयण-माया	३१९-३३०
२५—जन्नइज्ज	३३१-३४२
२६—मामायाारी	३४३-३६०
२७—खलुकिज्ज	३६१-३६८
२८—मोक्खमग्गगई	३६९-३८०
२९—सम्मत्तपरवक्कमे	३८१-४१६
३०—तवमग्गगई	४१७-४२८
३१—चरणविही	४२९-४३६
३२—पमायट्ठाण	४३७-४६०
३३—कम्मपयडी	४६१-४७२
३४—लेसउक्कयण	४७३-४८८
३५—अणगारमग्गगई	४८९-४९६
३६—जावाजीवविमत्ती	४९७-५४६

३८, ३९—सत्कार-पुरस्कार-परीपह ।

४०, ४१—प्रज्ञा-परीपह ।

४२, ४३—अज्ञान-परीपह ।

४४, ४५—दर्शन-परीपह ।

४६—परीपहों को समभाव से सहने का उपदेश ।

द्वितीय अध्ययन : चतुरंगीय (चार दुर्लभ अंगों का आख्यान)

पृ० ३७-४६

१—दुर्लभ अंगों का नाम-निर्देश ।

२-७—मनुष्यत्व-प्राप्ति की दुर्लभता ।

८—धर्म-श्रवण की दुर्लभता ।

९—श्रद्धा की दुर्लभता ।

१०—वीर्य की दुर्लभता ।

११—दुर्लभ अंगों की प्राप्ति से कर्म-मुक्त होने की सम्भवा ।

१२—धर्म-स्थिति का आधार ।

१३—कर्म-हेतुओं को दूर करने से ऊर्ध्व दिशा की प्राप्ति ।

१४-१९—शील की आराधना से देवलोकों की प्राप्ति । वहाँ से च्युत होकर दृष्ट व समृद्ध कुलों में जन्म और फिर विशुद्ध बोधि का लाभ ।

२०—दुर्लभ अंगों के स्वीकार से सर्व कर्माश-मुक्तता ।

चतुर्थ अध्ययन : असंस्कृत (जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण का प्रतिपादन)

पृ० ४७-५४

१—जीवन की असंस्कृतता और अप्रमाद का उपदेश ।

२—पाप-कर्म से घन-अर्जन के अनिष्ट परिणाम ।

३—कृत कर्मों का अवश्यभावी परिणाम ।

४—कर्मों की फल-प्राप्ति में पर की असमर्थता ।

५—घन की अत्रानता और उसके व्यामोह से दिग्मूढता ।

६—भारण्ड पक्षी के उपमान से क्षण भर प्रमाद न करने का उपदेश ।

७—गुणोपलब्धि तक शरीर-पोषण का विधान, फिर अनशन का उपदेश ।

८—छन्द-निरोध से मोक्ष की सम्भवा ।

९—शाश्वत-वाद का निरसन ।

१०—विवेक-जागरण के लिए एक क्षण भी न सोने का आह्वान ।

११, १२—श्रमण के लिए अनुकूल और प्रतिकूल परीपहों को समभाव से सहने का निर्देश ।

१३—जीवन को शाश्वत मानने वालों का निरसन और शरीर-भेद तक गुणाराधना का आदेश ।

पंचम अध्ययन : अकाम-मरणीय (मरण के प्रकार और स्वरूप-विधान)

पृ० ५५-७२

श्लोक १, २—अध्ययन का उपक्रम और मरण के प्रकारों का नाम-निर्देश ।

३—मरण का काल-निर्धारण ।

४-७—कामासक्त व्यक्ति द्वारा मिथ्या-भाषण का आश्रय ।

८,६—कामासक्ति हिंसा का हेतु । हिंसा से दोष-परम्परा का विस्तार ।

१०—काम-रत व्यक्ति द्वारा शिशुनाग की तरह दुहरा कर्म-मल संचय ।

११,१३—रोगातक होने पर कर्म के अनिष्ट परिणामों की आशंका से भय-युक्त अनुताप ।

१४-१६—विषम मार्ग में पड़े हुए गाढीवान की तरह धर्म-च्युत व्यक्ति द्वारा शोकानुभूति और परलोक-भय से सन्नस्त अवस्था में अकाम-मृत्यु ।

१७—अकाम-मरण का उपसंहार और सकाम-मरण का आरम्भ ।

१८—सयमी पुरुषों का प्रसाद-युक्त और आघात-रहित मरण ।

१९—सकाम मरण की दुर्लभता ।

२०—साधु और गृहस्थ का तुलनात्मक विवेचन ।

२१—वाह्याचारों से साधुत्व की रक्षा असंभव ।

२२—दुःशूल और शूल के निश्चित परिणाम ।

२३—श्रावक-आचार का निर्देश ।

२४—सुव्रती मनुष्य की सुगति-प्राप्ति ।

२५-२८—संवृत-भिक्षु का अपवर्ग या स्वर्ग-गमन । देवताओं की समृद्धि और सम्पदा का वर्णन । देव-आवासों की प्राप्ति में उपशम और समय की प्रधानता ।

२९,३०—बहुश्रुत मुनि की मरण-काल में सम-भावता तथा उद्विग्न न होने का उपदेश ।

३१—संलेखना में शरीर-भेद की आकांक्षा ।

३२—सकाम-मरण के प्रकारों में से किसी एक के स्वीकार का उपदेश ।

पष्ठ अध्ययन : क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय (ग्रन्थ-त्याग का संक्षिप्त निरूपण)

पृ० ७३-८०

दलोक १—अविद्या भव-त्रमण का हेतु ।

२—सत्य की गवेषणा और जीवों के प्रति मैत्री का उपदेश ।

३—कृत-कर्मों के विपाक के समय स्वजन-परिजनों की असमर्थता ।

४—मम्यग्-दर्शन वाले पुरुष द्वारा आन्तरिक परिग्रह का त्याग ।

५—वाह्य परिग्रह-त्याग से काम-रूपता की प्राप्ति ।

६—अहिंसा के विचार का व्यावहारिक आघार ।

७—परिग्रह का निषेध और प्रदत्त भोजन का ग्रहण ।

८,९—क्रिया-रहित ज्ञान से दुःख-मुक्ति मानने वालों का निरसन ।

१०—भाषा और अनुशासन की त्राण देने में असमर्थता ।

११—आसक्ति दुःखोत्पत्ति का कारण ।

१२—सब दिशाओं को देख कर अप्रमाद का उपदेश ।

१३—वाह्य की अनाशसा और देह-धारणा का उद्देश्य ।

१४—कर्म-हेतुओं पर विचार । मित और निर्दोष धर्म-प्राप्ति का ग्रहण ।

१५—असंग्रह का विधान ।

१६—अनियत विहार करते हुए पिण्डपात की गवेषणा ।

१७—उपसंहार ।

अध्ययन-विषयानुक्रम

प्रथम अध्ययन : विनय-श्रुत (विनय का विधान, प्रकार और महत्त्व)

पृ० १-१६

श्लोक १—विनय-प्ररूपण की प्रतिज्ञा ।

२—विनीत की परिभाषा ।

३—अविनीत की परिभाषा ।

४—अविनीत का गण से निष्कासन ।

५—अज्ञानी भिक्षु का सूअर की तरह आचरण ।

६—विनय का उपदेश ।

७—विनय का परिणाम ।

८—भिक्षु का आचार्य के पास विनय और मौन-भाव से सार्थक पदों का अध्ययन ।

९—क्षमा की आराधना और क्षुद्र व्यक्तियों के साथ ससर्ग-त्याग ।

१०—चण्डालोचित कर्म का निषेध ।

अधिक बोलने का निषेध ।

स्वाध्याय और ध्यान का विधान ।

११—ऋजुता तथा भूल की स्वीकृति ।

१२—अविनीत और विनीत घोड़े से शिष्य के आचरण की तुलना ।

१३—अविनीत शिष्य द्वारा कोमल प्रकृति वाले आचार्य को भी क्रोधी बना देना ।

विनीत शिष्य द्वारा प्रचण्ड प्रकृति वाले आचार्य को भी प्रसन्न करना ।

१४—बोलने का विवेक ।

१५, १६—सयम और तप द्वारा आत्म-दमन ।

१७—आचार्य के प्रतिकूल वर्तन का वर्जन ।

१८, १९—आचार्य के प्रति विनय-पद्धति का निरूपण ।

२०-२२—आचार्य द्वारा आमंत्रित शिष्य के आचरण का निरूपण ।

२३—विनीत शिष्य को ही सूत्र, अर्थ और तदुभय देने का विधान ।

२४, २५—भाषा-दोषों के वर्जन का उपदेश ।

२६—अकेली स्त्री से आलाप-सलाप का निषेध ।

२७—अनुशासन का स्वीकार ।

२८, २९—प्रज्ञावान् मुनि के लिए अनुशासन हित का हेतु ।

असाधु, अज्ञानी के लिए द्रव्य का हेतु ।

३०—गुरु के समक्ष बैठने की विधि ।

३१—यथासमय कार्य करने का निर्देश ।

३२-३४—आहार सम्बन्धी विधि-निषेध ।

३५—आहार का स्थान और विधि ।

- ३६—सावध-भाषा का निषेध ।
 ३७—विनीत और अविनीत शिष्य की उत्तम और दुष्ट घोड़े के साथ तुलना ।
 ३८—पाप-दृष्टि मुनि के द्वारा अनुशासन की अवहेलना ।
 ३९—अनुशासन के प्रति दृष्टि-भेद ।
 ४०—न आचार्य को न स्वयं को कुपित करने का उपदेश ।
 ४१—कुपित आचार्य को प्रसन्न करने का उपक्रम ।
 ४२—व्यवहार-धर्म का पालन करने वाले मुनि की सर्वत्र प्रशंसा ।
 ४३—आचार्य के मनोनुकूल वर्तन का उपदेश ।
 ४४—विनीत द्वारा आदेशानुसार कार्य-सम्पन्नता ।
 ४५—विनीत की कीर्ति और आधार भूतता ।
 ४६—विनय से पूज्य आचार्य की कृपा और श्रुत-ज्ञान का लाभ ।
 ४७—विनीत की सर्व-गुण-सम्पन्नता ।
 ४८—विनयी के लिए मोक्ष की सुलभता का प्रतिपादन ।

द्वितीय अध्ययन : परीषह-प्रविभक्ति (श्रमण-चर्या में होने वाले परीषहों का प्ररूपण)

पृ० १६-४२

सूत्र १-३—परीषह-निरूपण का उपक्रम और परीषहों का नाम-निर्देश ।

श्लोक १—परीषह-निरूपण की प्रतिज्ञा ।

२, ३—क्षुधा-परीषह ।

४, ५—पिपासा-परीषह ।

६, ७—शीत-परीषह ।

८, ९—उष्ण-परीषह ।

१०, ११—दक्षमशक-परीषह ।

१२, १३—अचेल-परीषह ।

१४, १५—अरति-परीषह ।

१६, १७—स्त्री-परीषह ।

१८, १९—चर्या-परीषह ।

२०, २१—निषीधिका-परीषह ।

२२, २३—शय्या-परीषह ।

२४, २५—आक्रोश-परीषह ।

२६, २७—वध-परीषह ।

२८, २९—याचना-परीषह ।

३०, ३१—अलाम-परीषह ।

३२, ३३—रोग-परीषह ।

३४, ३५—नृण-स्पर्श-परीषह ।

३६, ३७—जल्ल-परीषह ।

सप्तम अध्ययन : उरभ्रीय (उरभ्र, काकिणी, आम्रफल, व्यवहार और सागर—पाँच उदाहरण) पृ० ८१-६२

श्लोक १-१०—उरभ्र दृष्टान्त से विषय-भोगों के कटु विपाक का दर्शन ।

११-१३—काकिणी और आम्रफल दृष्टान्त से देव-भोगों के सामने मानवीय-भोगों की तुच्छता का दर्शन ।

१४-२२—व्यवहार (व्यवसाय) दृष्टान्त से आय-व्यय के विषय में कुशलता का दर्शन ।

२३-२४—सागर दृष्टान्त से आय-व्यय की तुलना का दर्शन ।

२५—काम-भोगों की अनिष्टता से आत्म-प्रयोजन का नाश ।

२६-२७—काम-भोगों की निष्ठता से देवत्व और अनुत्तर सुख वाले मनुष्य कुलों की प्राप्ति ।

२८—बाल जीवों का नरक-गमन ।

२९—घोर-पुरुष का देव-गमन ।

३०—बाल और अवाल-भाव की तुलना और पण्डित मुनि द्वारा अवाल-भाव का सेवन ।

अष्टम अध्ययन : कापिलीय (संसार की असारता और ग्रन्थि-त्याग)

पृ० ६३-१०२

श्लोक १—दुःख-बहुल संसार से छूटने की जिज्ञासा ।

२—स्नेह-त्याग से दोष-मुक्ति ।

३—कपिल मुनि द्वारा पाँच सौ चोरों को उपदेश ।

४—ग्रन्थि-त्याग का उपदेश ।

५—आसक्त मनुष्य की कर्म-वद्धता ।

६—सुव्रती द्वारा संसार-समुद्र का पार ।

७,८—कुतीर्थियों की अज्ञता का निरसन ।

९,१०—अहिंसा का विवेक ।

११,१२—सयम-निर्वाह के लिए भोजन की एषणा ।

१३—स्वप्न-शाम्भ्र, लक्षण-शास्त्र और अग-विद्या के प्रयोग का निषेध ।

१४,१५—समाधि-भ्रष्ट व्यक्ति का संसार-भ्रमण और बोधि-दुर्लभता ।

१६,१७—तृष्णा की दुष्पूरता ।

१८,१९—स्त्री-संग का त्याग ।

२०—उपसंहार ।

नवम अध्ययन : नमि-प्रव्रज्या (इन्द्र और नमि राजर्षि का संवाद)

पृ० १०३-११८

श्लोक १—नमि का जन्म और पूर्व जन्म की स्मृति ।

२—धर्म की आराधना के लिए अभिनिष्क्रमण ।

३,४—प्रवर भोगों का त्याग और एकान्तवास का स्वीकार ।

५—नमि के अभिनिष्क्रमण से मिथिला में कोलाहल ।

६—देवेन्द्र का ब्राह्मण रूप में आकर नमि से प्रश्न ।

७-१०—मिथिला में हो रहे कोलाहल के प्रति देवेन्द्र की जिज्ञासा । नमि राजर्षि द्वारा आश्रय-हीन हुए पक्षियों के साथ मिथिलावासियों की तुलना ।

११-१६—देवेन्द्र द्वारा जल रहे अन्त पुर की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न । नमि राजर्षि का उदासीन-भाव ।

३६—गाँव, नगर में उपशान्त होकर विचरते हुए धान्ति का सदेश ।

३७—गौतम की सिद्धि-प्राप्ति ।

एकादश अध्ययन : बहुश्रुत-पूजा (बहुश्रुत व्यक्ति का महत्त्व-ख्यापन)

पृ० १२६-१३८

श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

२—अबहुश्रुत की परिभाषा ।

३—शिक्षा-प्राप्त न होने के पाँच कारण ।

४,५—शिक्षा-शील के आठ लक्षण ।

६-९—अविनीत के चौदह लक्षण ।

१०-१३—सुविनीत के पन्द्रह लक्षण ।

१४—शिक्षा-प्राप्त की अर्हता ।

१५—शख में रखे हुए दूध की तरह बहुश्रुत की दोनों ओर से शोभा ।

१६—कन्यक घोड़े की तरह भिक्षुओं में बहुश्रुत की सर्वश्रेष्ठता ।

१७—जातिमान् अश्व पर आरुढ़ योद्धा की तरह बहुश्रुत की अजेयता ।

१८—साठ वर्ष के बलवान हाथी की तरह बहुश्रुत की अपराजेयता ।

१९—पुष्ट स्कन्ध वाले यूथाधिपति बैल की तरह बहुश्रुत आचार्य की सुशोभनीयता ।

२०—युवा सिंह के समान बहुश्रुत की सर्वश्रेष्ठता ।

२१—वासुदेव के समान बहुश्रुत की बलवत्ता ।

२२—चौदह रत्नों के अधिपति चक्रवर्ती के साथ चौदह पूर्वधर बहुश्रुत की तुलना ।

२३—देवाधिपति शक्र के साथ बहुश्रुत की तुलना ।

२४—उगते हुए सूर्य के तेज के साथ बहुश्रुत के तेज की तुलना ।

२५—प्रतिपूर्ण चन्द्रमा के साथ बहुश्रुत की तुलना ।

२६—सामाजिको के कोष्ठागार के समान बहुश्रुत की परिपूर्णता ।

२७—सुदर्शना नामक जम्बू के साथ बहुश्रुत की तुलना ।

२८—शीता नदी की तरह बहुश्रुत की सर्वश्रेष्ठता ।

२९—मदर पर्वत के समान बहुश्रुत की सर्वश्रेष्ठता ।

३०—रत्नों से परिपूर्ण अक्षय जल वाले स्वयम्भूरमण समुद्र के साथ बहुश्रुत के अक्षय ज्ञान की तुलना ।

३१—बहुश्रुत मुनियों का मोक्ष-गमन ।

३२—श्रुत के आश्रयण का उपदेश ।

द्वादश अध्ययन : हरिकेशीय (जाति की अतात्त्विकता का संशोध)

पृ० १३९-१५२

श्लोक १,२—हरिकेशवल मुनि का परिचय ।

३—मुनि का भिक्षा के लिए यज्ञ-मण्डप में गमन ।

४-६—मलिन मुनि को देख कर ब्राह्मणों का हँसना और मुनि के वेश और शरीर के बारे में परस्पर व्यंग्य-सलाप ।

७—मुनि को अपमानजनक शब्दों से वापस चले जाने की प्रेरणा ।

८—यक्ष का मुनि के शरीर में प्रवेश ।

- १७-२२—देवेन्द्र द्वारा नगर-सुरक्षा के प्रति कर्तव्य-बोध । नमि राजर्षि द्वारा आत्म-नगर की सुरक्षापूर्वक मुक्ति-बोध ।
- २३-२६—देवेन्द्र द्वारा प्रासाद, वर्धमान-गृह आदि बनाने की प्रेरणा । नमि राजर्षि द्वारा मार्ग में बनाए घर के प्रति सिद्धशीलता और शाश्वत घर की ओर संकेत ।
- २७-३०—देवेन्द्र द्वारा नगर में न्याय और शान्ति-स्थापन का अनुरोध । राजर्षि द्वारा जगत् में होने वाले अन्याय-पोषण का उल्लेख ।
- ३१-३६—देवेन्द्र द्वारा स्वतन्त्र राजाओं को जीत कर मुनि बनने का अनुरोध । राजर्षि द्वारा आत्म-विजय ही परम विजय है, इसलिए अपनी आत्मा के साथ युद्ध करने का उपदेश ।
- ३७-४०—देवेन्द्र द्वारा यज्ञ, दान और भोग की प्रेरणा । राजर्षि द्वारा दान देने वाले के लिए भी समय श्रेयस्करता का प्रतिपादन ।
- ४१-४४—देवेन्द्र द्वारा गृहस्थाश्रम में रहते हुए तप की प्रेरणा । राजर्षि द्वारा सम्यक्-चारित्र्य सम्पन्न मुनि-चर्या का महत्त्व-स्थापन ।
- ४५-४९—देवेन्द्र द्वारा परिग्रह के संग्रह का उपदेश । राजर्षि द्वारा आकाश के समान इच्छा की अनन्तता का प्रतिपादन और पदार्थों से इच्छा-पूर्ति की असम्भवा का निरूपण ।
- ५०-५४—देवेन्द्र द्वारा प्राप्त भोगों के त्याग और अप्राप्त भोगों की अभिलाषा से उत्पन्न विरोध का प्रतिपादन ।
- राजर्षि द्वारा काम-भोगों की भयकरता और उसके अनिष्ट परिणामों का स्थापन ।
- ५५-५९—देवेन्द्र का अपने मूल रूप में प्रकटीकरण । राजर्षि की हृदयग्राही स्तुति और वन्दन ।

६०—इन्द्र का आकाश-गमन ।

६१—राजर्षि की श्रामण्य में उपस्थिति ।

६२—सबुद्ध लोगों द्वारा इसी पथ का स्वीकार ।

दशम अध्ययन : द्रुम-पत्रक (जीवन की अस्थिरता और आत्म-बोध)

पृ० ११६-१२८

श्लोक १,२—जीवन की अस्थिरता और अप्रमाद का उद्बोध ।

३—आयुष्य की क्षण भंगुरता ।

४—मनुष्य-भव की दुर्लभता ।

५-९—स्थावर-काय में उत्पन्न जीव की उत्कृष्ट स्थिति ।

१०-१४—जल-काय में उत्पन्न जीव की उत्कृष्ट स्थिति ।

१५—प्रमाद-बहुल जीव का जन्म-मृत्यु-मय ससार में परिभ्रमण ।

१६—मनुष्य-भव मिलने पर भी आर्य-देश की दुर्लभता ।

१७—आर्य-देश मिलने पर भी पूर्ण पाँचो इन्द्रियो की दुर्लभता ।

१८—उत्तम धर्म के श्रवण की दुर्लभता ।

१९—श्रद्धा की दुर्लभता ।

२०—आचरण की दुर्लभता ।

२१-२६—इन्द्रिय-बल की उत्तरोत्तर क्षीणता ।

२७—अनेक शीघ्र-घाती रोगों के द्वारा शरीर का स्पर्श ।

२८—स्नेहापनयन की प्रक्रिया ।

२९,३०—वान्त-भोगों के पुनः न सेवन का उपदेश ।

३१,३२—प्राप्त विशाल न्याय-पथ पर अप्रमादपूर्वक बढ़ने की प्रेरणा ।

३३—विषम-मार्ग पर न चले जाने की सूचना ।

३४—किनारे के निकट पहुँच कर प्रमाद न करने का उपदेश ।

३५—क्षपक-श्रेणि से सिद्धि-लोक की प्राप्ति ।

६,१०—यक्ष द्वारा मुनि का परिचय और आगमन का उद्देश्य-कथन ।

११—सोमदेव ब्राह्मण द्वारा भोजन न देने का उत्तर ।

१२-१७—यक्ष और सोमदेव के बीच दान के अधिकारी के बारे में चर्चा ।

१८—सोमदेव द्वारा मुनि को मार-पीट कर बाहर निकालने का आदेश ।

१९—कुमारों द्वारा मुनि पर प्रहार ।

२०-२३—भद्रा द्वारा कुमारों को समझाने का प्रयत्न । ऋषि का वास्तविक परिचय और अवहेलना से होने वाले अनिष्ट की ओर संकेत ।

२४—यक्ष द्वारा कुमारों को भूमि पर गिराना ।

२५—यक्ष द्वारा कुमारों पर भयंकर प्रहार ।

भद्रा का पुनः कुमारों को समझाना ।

२६-२८—मिक्षु का अपमान करने से होने वाले अनिष्ट परिणाम की ओर संकेत ।

२९—छात्रों की दुर्दशा ।

३०,३१—सोमदेव का मुनि से विनम्र निवेदन ।

३२—मुनि द्वारा स्पष्टीकरण ।

३३-३५—सोमदेव का पुनः क्षमा देने का निवेदन ।

भिक्षा-ग्रहण करने का आग्रह ।

मुनि द्वारा भिक्षा-स्वीकार ।

३६—देवों द्वारा दिव्य दृष्टि और दिव्य घोष ।

३७—तप की महत्ता का प्रतिपादन, जाति की महत्ता का निरसन ।

३८,३९—अग्नि का समारम्भ और जल का स्पर्श पाप-वन्ध का हेतु ।

४०—सोमदेव द्वारा यज्ञ के बारे में जिज्ञासा ।

४१-४२—मुनि द्वारा वास्तविक यज्ञ का निरूपण ।

४३—सोमदेव द्वारा ज्योति और उसकी सामग्री के बारे में जिज्ञासा ।

४४—मुनि द्वारा आत्म-परक ज्योति का विश्लेषण ।

४५—सोमदेव द्वारा तीर्थ के बारे में जिज्ञासा ।

४६,४७—मुनि द्वारा तीर्थ का निरूपण ।

त्रयोदश अध्यायन : चित्र-सम्भूति (चित्र और सम्भूति का संवाद)

पृ० १५३-१६८

श्लोक १,२—सम्भूत का ग्रहदत्त चक्रवर्ती के रूप में काम्पित्य में और चित्र का पूरिमताल में श्रेष्ठि-कुल में जन्म ।

३—चित्र और सम्भूति का मिलन और सुख-दुःख के विपाक की वार्ता ।

४-७—ग्रहदत्त द्वारा पूर्व भवों का वर्णन ।

८—मुनि द्वारा पूर्व जन्म में कृत निदान की स्मृति दिलाना ।

९—चक्रवर्ती द्वारा पूर्व कृत शुभ अनुष्ठानों से प्राप्त सुख-भोगों का वर्णन । मुनि से सुख के बारे में प्रश्न ।

१०-१२—मुनि द्वारा कृत कर्मों को भोगने की अनिवार्यता ।

अपनी चक्रवर्ती-सम समृद्धि का उल्लेख ।

स्यविरों की गाथा से श्रामण्य-स्वीकार ।

१३, १४—चक्रवर्ती द्वारा प्रचुर धन-सम्पदा और स्त्री-परिवृत्त होकर भोग भोगने का आग्रह ।

प्रव्रज्या की कष्टमयता ।

१५—मुनि का चक्रवर्ती को वैराग्य-उपदेश ।

१६—काम-राग की दुःखकरता ।

१७—काम-गुण-रत की अपेक्षा विरक्त को अधिक सुख ।

१८—चाण्डाल-जाति में उत्पत्ति और लोगों का विद्वेष ।

१९—वर्तमान की उच्चता पूर्व संचित शुभ कर्मों का फल ।

२०—अशाश्वत भोगों को छोड़ने का उपदेश ।

२१—शुभ अनुष्ठानों के अभाव में भविष्य में पश्चात्ताप ।

२२—अन्त काल में मृत्यु द्वारा हरण । माता-पिता आदि की असहायता ।

२३—कर्म द्वारा कर्त्ता का अनुगमन ।

२४—केवल कर्मों के साथ आत्मा का परभव-गमन ।

२५—शरीर को जला कर जातियों द्वारा दूसरे दाता का अनुसरण ।

२६—जीवन की निरन्तर क्षणभंगुरता । बुढापा द्वारा कान्ति का अपहरण । कर्म अर्जन न करने का उपदेश ।

२७-३०—चक्रवर्ती द्वारा अपनी दुर्बलता का स्वीकार ।

सन्तकुमार को देख कर निदान करने का उल्लेख ।

प्रायश्चित्त न कर पाने के कारण दलदल में फँसे हाथी की तरह धर्मानुसरण करने में असमर्थता और काम-मूर्च्छा ।

३१—जीवन की अस्थिरता । भोगों द्वारा मनुष्य का त्याग ।

३२—आर्य-कर्म करने का उपदेश ।

३३—राजा की भोग छोड़ने में असमर्थता और मुनि का वहाँ से गमन ।

३४—चक्रवर्ती का नरक-गमन ।

३५—चित्र की अनुत्तर सिद्धि-प्राप्ति ।

चतुर्दश अध्ययन : इषुकारीय (ब्राह्मण और श्रमण संस्कृति का भेद-दर्शन)

पृ० १६८-१८४

श्लोक १-३—अध्ययन का उपक्रम और निष्कर्ष ।

४, ५—पुरोहित-कुमारों द्वारा निर्ग्रन्थों को देखना । पूर्व-जन्म की स्मृति और काम-गुणों से विरक्ति ।

६—धर्म-श्रद्धा से प्रेरित होकर पिता से निवेदन ।

७—जीवन की अनित्यता । मुनि-चर्या के लिए अनुमति ।

८—पिता द्वारा समझाने का प्रयास । अपुत्र की गति नहीं ।

९—वेदाध्ययन, ब्राह्मणों को दान और पुत्रोत्पत्ति के वाद मुनि बनने का परामर्श ।

१०, ११—कुमारों का पुरोहित को उत्तर ।

१२—वेदाध्ययन, ब्राह्मण-भोजन और औरस पुत्र की अयाणता ।

१३—काम-भोगों द्वारा क्षण भर सुख तथा चिरकाल तक दुःख की प्राप्ति ।

१४, १५—कामना जन्म और मृत्यु की हेतु ।

१६—प्रचुर धन और स्त्री की सुलभता में श्रमण बनने की उत्कण्ठा के लिए पिता का प्रश्न ।

१७—धर्म-धुरा में धन और विषयों की निष्प्रयोजनता ।

- १८—पिता द्वारा शरीर-नाश के साथ जीव-नाश का प्रतिपादन ।
 १९—कुमारों द्वारा आत्मा की अमूर्तता का प्रतिपादन ।
 आत्मा के आन्तरिक दोष ही संसार-बन्धन के हेतु ।
 २०—धर्म की अज्ञानकारी में पाप का आचरण ।
 २१—पीडित लोक में सुख की प्राप्ति नहीं ।
 २२—लोक की पीडा क्या ?
 २३—लोक की पीडा—मृत्यु ।
 २४—अधर्म-रत व्यक्ति की रात्रियाँ निष्फल ।
 २५—धर्म-रत व्यक्ति की रात्रियाँ सफल ।
 २६—यौवन वीतने पर एक साथ दीक्षा लेने का पिता का सुभाव ।
 २७—मृत्यु को वश में करने वाला ही कल की इच्छा करने में समर्थ ।
 २८—आज ही मुनि-धर्म स्वीकारने का संकल्प ।
 २९,३०—पिता की भी साथ ही गृह-त्याग की भावना ।
 शाखा-रहित वृक्ष, बिना पख का पक्षी, सेना-रहित राजा और धन-रहित व्यापारी की तरह असहायता ।
 ३१—वाशिष्ठी द्वारा प्राप्त भोगों को भोगने के बाद मोक्ष पथ के स्वीकार का सुभाव ।
 ३२—पुरोहित द्वारा भोगों की असारता । मुनि-धर्म के आचरण का सकल्प ।
 ३३—भोग न भोगने से बाद में अनुताप ।
 ३४—पुत्रों का अनुगमन क्यों नहीं ?
 ३५—रोहित मच्छ की तरह घोर पुरुष ही ससार-जाल को काटने में समर्थ ।
 ३६—वाशिष्ठी की भी पुत्र और पति के अनुगमन की इच्छा ।
 ३७-३८—पुरोहित-परिवार की प्रव्रज्या के बाद राजा द्वारा धन-मामग्री लेने की इच्छा ।
 रानी कमलावती की फटकार ।
 ३९—समूचा जगत् भी इच्छा की पूर्ति के लिए असमर्थ ।
 ४०—पदार्थ-जगत् की अत्राणता । धर्म की त्राणता ।
 ४१—रानी द्वारा स्नेह-जाल को तोड़ कर मुनि-धर्म के आचरण की इच्छा ।
 ४२,४३—राग-द्वेष युक्त प्राणियों की ससार में मूढता ।
 ४४—विवेकी पुरुषों द्वारा अप्रतिवद्ध विहार ।
 ४५—रानी द्वारा राजा को भृगु पुरोहित की तरह बनने की प्रेरणा ।
 ४६—निरामिष बनने का सकल्प ।
 ४७—काम-भोगों से तसकित रहने का उपदेश ।
 ४८—बन्धन-मुक्त हाथी की तरह स्व-स्थान की प्राप्ति का उद्बोध ।
 ४९—राजा और रानी द्वारा विपुल राज्य और काम-भोगों का त्याग ।
 ५०—तीर्थङ्कर द्वारा उपदिष्ट मार्ग में घोर पराक्रम ।
 ५१—दु खों के अन्त की खोज ।
 ५२—राजा, रानी, पुरोहित, ब्राह्मण, पुरोहित-कुमारों द्वारा दु ख-विमुक्ति ।

पंचदश अध्ययन : सभिक्षुक (भिक्षु के लक्षणों का निरूपण)

पृ० १८५-१६२

श्लोक १—मुनि व्रत का सकल्प । स्नेह-परिचय-त्याग तप आदि का परिचय दिए बिना भिक्षा की एषणा ।

२—रात्रि-भोजन या रात्रि-विहार का वर्जन । वस्तु के प्रति अमूर्च्छा-भाव ।

३—हर्ष और शोक में अनाकुलता ।

४—परीपह-विजय और समभाव की साधना ।

५—सत्कार, पूजा और प्रशंसा के प्रति उपेक्षा-भावना ।

६—स्त्री-पुरुष की मगति का त्याग ।

७—विद्याओं द्वारा आजीविका करने का निषेध ।

८—मन, मूल आदि द्वारा चिकित्सा का निषेध ।

९—गृहस्थों की श्लाघा का निषेध ।

१०—इहलौकिक फल-प्राप्ति के लिए परिचय का निषेध ।

११—गृहस्थ द्वारा वस्तु न दिए जाने पर प्रद्वेष का निषेध ।

१२—गृहस्थ द्वारा वस्तु दिए जाने पर आशीर्वाद का निषेध ।

१३—नीरस अन्न-पान की निन्दा का निषेध और सामान्य घरों की भिक्षा ।

१४—अमय की साधना ।

१५—आत्म-तुल्य भावना का विकास ।

१६—शिल्प-जीवी न होने, घर, मित्र और परिग्रह से मुक्त, मन्द कपाय और असार भोजी होने का उपदेश ।

षोडश अध्ययन : ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान (ब्रह्मचर्य के दस समाधि-स्थानों का वर्णन)

पृ० १६३-२०६

सूत्र १-३—अध्ययन का प्रारम्भ और दस समाधि-स्थानों का नाम-निर्देश ।

४—स्त्री-कथा वर्जन ।

५—स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठने का वर्जन ।

६—दृष्टि-सयम ।

७—स्त्री-शब्द सुनने पर सयम ।

८—पूर्वकृत काम-क्रीडा की स्मृति पर सयम ।

९—प्रणीत आहार का निषेध ।

१०—मात्रा से अधिक आहार का निषेध ।

११—विभूषा-वर्जन ।

१२—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श-विजय ।

श्लोक १—एकान्त-वास ।

२—स्त्री-कथा-वर्जन ।

३—स्त्री-परिचय और वार्तालाप का वर्जन ।

४—स्त्री का शरीर, अंग-प्रत्यंगों को देखने के प्रयत्न का निषेध ।

५—स्त्री के शब्द, गीत आदि का श्रवण-वर्जन ।

६—पूर्व कृत क्रीडा-रति का स्मरण-त्याग ।

७—प्रणीत भोजन का वर्जन ।

८—परिमित भोजन का विधान ।

९—विमूषा-वर्जन ।

१०—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श-काम-गुणों का वर्जन ।

११-१३—दस स्थानों के सेवन की तालपुट विष से तुलना ।

१४—दुर्जय काम-भोग और ब्रह्मचर्य में शका उत्पन्न करने वाले सभी स्थानों के वर्जन का उपदेश ।

१५—भिक्षु का धर्म-आराम में विचरण ।

१६—ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला देव आदि सभी से वन्दनीय ।

१७—ब्रह्मचर्य की साधना से सिद्धत्व की प्राप्ति ।

सप्तदश अध्ययन : पाप-श्रमणीय (पाप-श्रमण के स्वरूप का निरूपण)

पृ० २१०-२१८

श्लोक १-३—ज्ञान-आचार में प्रमाद ।

४—आचार्य, उपाध्याय की अवहेलना ।

५—दर्शन-आचार में प्रमाद ।

६-१४—चारित्र-आचार में प्रमाद ।

१५, १६—तप-आचार में प्रमाद ।

१७-१९—वीर्य-आचार में प्रमाद ।

२०—पाप-श्रमण की इहलोक और परलोक में व्यर्थता ।

२१—सुव्रती द्वारा इहलोक और परलोक की आराधना ।

अष्टादश अध्ययन : संजयीय (जैन-शासन की परम्परा का संकलन)

पृ० २१९-२३३

श्लोक १-३—सजय राजा का परिचय ।

धिकार के लिए राजा का वन-गमन ।

४—केशर उद्यान में ध्यानलीन मुनि की उपस्थिति ।

५—राजा द्वारा मुनि के पास आए हुए हिरण पर प्रहार ।

६—राजा का मुनि-दर्शन ।

७—भय-भ्रान्त मन से तुच्छ कार्य पर पश्चात्ताप ।

८-१०—मुनि से अमा-प्रार्थना । मौन होने पर अधिक भयाकुलता ।

११—मुनि का अभय-दान । अभय-दाता बनने का उपदेश ।

१२—अनित्य-जीव-लोक में आसक्त न होने का उपदेश ।

१३—जीवन की अस्थिरता ।

१४-१६—ज्ञाति-सम्बन्धों की असारता ।

१७—कर्म-परिणामों की निश्चितता ।

१८, १९—राजा का संसार-त्याग और जिन-शासन में दीक्षा ।

२०, २१—क्षत्रिय मुनि द्वारा सजय राजपि से प्रश्न ।

२२—सजय राजपि का अपने बारे में उत्तर ।

२३—क्षत्रिय मुनि द्वारा एकान्तवादी विचार-धाराओं का उल्लेख ।

२४-२७—एकान्त दृष्टिकोण मायापूर्ण, निरर्थक और नरक का हेतु ।

२८-३२—क्षत्रिय मुनि द्वारा आत्म-परिचय ।

३३—क्रियावाद का समर्थन ।

३४—भरत चक्रवर्ती का प्रव्रज्या-स्वीकार ।

३५—सगर चक्रवर्ती द्वारा सयम-आराधना ।

३६—मधवा चक्रवर्ती द्वारा सयम-आराधना ।

३७—सनत्कुमार चक्रवर्ती द्वारा तपश्चरण ।

३८—शान्तिनाथ चक्रवर्ती द्वारा अनुत्तर-गति-प्राप्ति ।

३९—कुन्यु नरेश्वर द्वारा मोक्ष-प्राप्ति ।

४०—अर नरेश्वर द्वारा कर्म-रजो से मुक्ति ।

४१—महापद्म चक्रवर्ती द्वारा तप का आचरण ।

४२—हरिषेण चक्रवर्ती द्वारा अनुत्तर-गति-प्राप्ति ।

४३—जय चक्रवर्ती का हजार राजाओं के साथ दम का आचरण ।

४४—दशार्णभद्र का मुनि-धर्म स्वीकार ।

४५, ४६—कलिंग में करकण्ट, पाचाल में द्विमुख, विदेह में नमि और गान्धार में नगति द्वारा श्रमण-धर्म में प्रव्रज्या ।

४७—उद्रायण राजा द्वारा मुनि-धर्म का आचरण ।

४८—काशीराज द्वारा कर्म-महावन का उन्मूलन ।

४९—विजय राजा की जिन-शासन में प्रव्रज्या ।

५०—राजर्षि महावल की मोक्ष-प्राप्ति ।

५१—एकान्त दृष्टिमय अहेतुवादों को छोड़ कर पराक्रमशाली राजाओं द्वारा जैन-शासन का स्वीकार ।

५२—जैन-शासन के द्वारा अनेक जीवों का उद्धार ।

५३—एकान्त दृष्टिमय अहेतुवादों को अस्वीकार करने से मोक्ष की प्राप्ति ।

एकोनविंश अध्यायन : मृगापुत्रीय (श्रमण-चर्या का सांगोपांग दिग्दर्शन)

पृ० २३५-२५६

श्लोक १-६—मृगापुत्र का परिचय । मुनि को देख कर पूर्व-जन्म की स्मृति ।

१०—मृगापुत्र का माता-पिता से प्रव्रज्या के लिए निवेदन ।

११-१४—जीवन की अशाश्वतता और काम-भोगों के कटु परिणाम ।

१५—जीवन की दुःखमयता ।

१६, १७—किम्पाक-फल की तरह काम-भोगों की अनिष्टता ।

१८, १९—लम्बे मार्ग में पायेय-रहित मनुष्य की तरह धर्म-रहित मनुष्य का भविष्य दुःखकर ।

२०, २१—लम्बे मार्ग में पायेय-सहित मनुष्य की तरह धर्म-सहित मनुष्य का भविष्य सुखकर ।

२२, २३—आग लो घर में से मूतयवान् वस्तुओं की तरह अपने आपको संसार में से निकालने का मृगापुत्र का निवेदन ।

२४-३०—माता-पिता द्वारा श्रमण-धर्म के पाँच महाव्रत और रात्रि-भोजन-वर्जन का परिचय ।

३१, ३२—परीपहों का वर्णन ।

३३—कापोती-वृत्ति, केश-लोच का उल्लेख ।

३४, ३५—मृगापुत्र की सुकुमारता और श्रामण्य की कठोरता ।

३६—आकाश-गंगा के स्रोत-प्रतिस्रोत की तरह श्रामण्य की कठोरता ।

- ३७—बालू के कोर की तरह सयम की स्वाद-हीनता ।
 ३८—लोहे के जवों को चबाने की तरह श्रामण्य की कठोरता ।
 ३९—अग्नि-शिखा को पीने की तरह श्रमण धर्म की कठिनता ।
 ४०—सत्त्व-हीन व्यक्ति की सयम के लिए असमर्थता ।
 ४१—मेरु-पर्वत को तराजू से तोलने की तरह सयम की कठिनता ।
 ४२—समुद्र को भुजाओं से तैरने की तरह सयम-पालन की कठिनता ।
 ४३—विषयों को भोगने के बाद श्रमण-धर्म के आचरण का सुभाव ।
 ४४—ऐहिक सुखों की प्यास बुझ जाने वाले के लिए सयम की सुकरता ।
 ४५-७४—मृगापुत्र द्वारा नरक के दारुण दुखों का वर्णन । स्वयं के द्वारा अनन्त वार उनको सहने का उल्लेख ।
 ७५—माता-पिता द्वारा श्रामण्य के सबसे बड़े दुःख-निष्प्रतिकर्मता का उल्लेख ।
 ७६-८५—मृगापुत्र द्वारा मृग-चारिका से जीवन बिताने का सकल्प ।
 ८६, ८७—मृगापुत्र का प्रव्रज्या-स्वीकार ।
 ८८-९५—मृगापुत्र द्वारा ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप की आराधना और मोक्ष-प्राप्ति ।
 ९६—सबुद्ध व्यक्तियों द्वारा मृगापुत्र का अनुगमन ।
 ९७, ९८—मृगापुत्र के आख्यान से प्रेरणा लेने का उद्बोधन ।

विंशति अध्ययन : महानिर्ग्रन्थीय (अनाथता और सनाथता)

पृ० २५७-२७२

- श्लोक १-८—अध्ययन का उपक्रम । श्रेणि का मण्डिकुक्षि-उद्यान में गमन । मुनि को देख कर विस्मय और श्रामण्य-स्वीकार के बारे में प्रश्न ।
 ९—मुनि द्वारा अपनी अनाथता का उल्लेख ।
 १०, ११—राजा द्वारा स्वयं नाथ होने का प्रस्ताव ।
 १२—मुनि द्वारा राजा की अनाथता का उल्लेख ।
 १३-१५—राजा द्वारा आश्चर्यभरी व्याकुलता ।
 १६—अनाथता और सनाथता के बारे में जिज्ञासा ।
 १७-३५—मुनि द्वारा अपनी आत्म-कथा । परिवार द्वारा चक्षु-वेदना को दूर करने में असमर्थता । धर्म की शरण, रोगोपशमन, अनगार-वृत्ति का स्वीकार और सनाथता ।
 ३६, ३७—आत्म-कर्तृत्व का उद्बोधन ।
 ३८-५०—मुनि-धर्म से विपरीत आचरण करना—दूसरी अनाथता ।
 ५१-५३—मेघावी पुरुष को महानिर्ग्रन्थ के मार्ग पर चलने की प्रेरणा ।
 ५४-५९—अनाथ की व्याख्या से श्रेणिक को परम-तोष । मुनि की हार्दिक स्तवना और धर्म में अनुरक्ति ।
 ६०—मुनि का स्वतंत्र-भाव से विहार ।

एकविंश अध्ययन : समुद्रपालीय (वध्य चोर के दर्शन से सम्बन्धित)

पृ० २७३-२८२

- श्लोक १-६—पालित की समुद्र-यात्रा । समुद्र-पाल का जन्म और विद्याध्ययन ।
 ७—रूपिणी के साथ विवाह-संस्कार ।
 ८-१०—वध्य को देख कर सवेग-प्राप्ति । कर्मों का विपाक-चिन्तन और साधुत्व-स्वीकार ।
 ११—मुनि को पर्याय-धर्म, व्रत, शील तथा परीषद् में अभिरुचि लेने का उपदेश ।

- १२—पच महाव्रत व उनके आचरण का उपदेश ।
 १३—दयानुकम्पी होने का उपदेश ।
 १४—अपने बलाबल को तोल कर कालोचित कार्य करते हुए विहरण का उपदेश ।
 १५—सम-भाव की साधना का उपदेश ।
 १६—मन के अभिप्रायो पर अनुशासन और उपसर्गों को सहने का उपदेश ।
 १७-१८—परीषद् की उपस्थिति में समता-भाव का उपदेश ।
 २०—पूजा में उन्नत और गहरी में अवनत न होने का उपदेश ।
 २१—सयमवान् मुनि की परमार्थ-पदों में स्थिति ।
 २२—ऋषियों द्वारा आचीर्ण स्थानों के सेवन का उपदेश ।
 २३—अनुत्तर ज्ञानधारी मुनि की सूर्य की तरह दीप्तिमत्ता ।
 २४—समुद्रपाल मुनि की सयम में निश्चलता से अपुनरागम-गति की प्राप्ति ।

द्वाविंश अध्यायन : रथनेमीय (पुनरुत्थान)

पृ० २८२-२८६

- श्लोक १,२—वासुदेव राजा के परिवार का परिचय ।
 ३,४—समुद्रविजय राजा के परिवार का परिचय । अरिष्टनेमि का जन्म ।
 ५,६—अरिष्टनेमि का शरीर-परिचय और जाति-परिचय ।
 केशव द्वारा उसके लिए राजीमती की माँग ।
 ७—राजीमती का स्वभाव-परिचय ।
 ८—उग्रसेन द्वारा केशव की माँग स्वीकार ।
 ९-१६—अरिष्टनेमि के विवाह की शोभा-यात्रा ।
 बाढो और पिंजरो में निरुद्ध प्राणियों को देख कर सारथि से प्रश्न ।
 १७—सारथि का उत्तर ।
 १८,१९—अरिष्टनेमि का चिन्तन ।
 २०—सारथि को कुण्डल आदि आभूषणों का दान ।
 २१—अभिनिष्क्रमण की भावना और देवों का आगमन ।
 २२-२७—शिविका में आरूढ होकर अरिष्टनेमि का रैवतक पर जाना । केश-लुचन । वासुदेव द्वारा आशीर्वचन ।
 २८—अरिष्टनेमि की दीक्षा की बात सुन कर राजीमती की शोक-निमग्नता ।
 २९-३१—राजीमती का प्रव्रजित होने का निश्चय और केश-लुचन । वासुदेव का आशीर्वचन ।
 ३२—राजीमती द्वारा अनेक स्वजन-परिजनो की दीक्षा ।
 ३३—रैवतक पर्वत पर जाते समय राजीमती का वर्षा से भीगने के कारण गुफा में ठहरना ।
 ३४—वस्त्रों को सुखाना । रथनेमि का राजीमती को यथाजात (नग्न) रूप में देख कर अग्नचित्त हो जाना ।
 ३५—राजीमती का सकुचित होकर बैठना ।
 ३६-३८—रथनेमि द्वारा आत्म-परिचय और प्रणय-निवेदन ।
 ३९-४५—राजीमती द्वारा रथनेमि को विविध प्रकार से उपदेश ।
 ४६,४७—रथनेमि का सयम में पुनः स्थिर होना ।
 ४८—राजीमती और रथनेमि को अनुत्तर सिद्धि की प्राप्ति ।
 ४९—सबुद्ध का कर्तव्य ।

त्रयोविंश अध्ययन : केशि-गौतमीय (केशि और गौतम का संवाद)

पृ० २६७-३१८

श्लोक १-४—तीर्थङ्कर पार्श्व के शिष्य श्रमण केशि का परिचय ।

श्रावस्ती में आगमन और तिन्दुक-उद्यान में स्थिति ।

५-८—भगवान् महावीर के शिष्य गौतम का परिचय । श्रावस्ती में आगमन और कोष्ठक-उद्यान में स्थिति ।

९-१३—दोनों के शिष्य-समुदाय में एक-दूसरे को देख कर अनेक सन्देह और जिज्ञासाएँ ।

१४—केशि और गौतम का परस्पर मिलने का निश्चय ।

१५-१७—गौतम का तिन्दुक-वन में आगमन । केशि द्वारा गौतम का आदर-सत्कार और आसन-प्रदान ।

१८—केशी और गौतम की चन्द्र और सूर्य से तुलना ।

१९, २०—अन्य तीर्थिक साधु, श्रावक तथा देव आदि का आगमन ।

२१-२४—केशी द्वारा चातुर्यामि-धर्म और पंच महाव्रत-धर्म के बारे में प्रश्न ।

२५-२७—गौतम का समाधान ।

२८-३०—केशी द्वारा सचेलक-अचेलक के बारे में जिज्ञासा ।

३१-३३—लोक-प्रतीति आदि कारणों से वेष-धारण आवश्यक ।

३४, ३५—शत्रुओं पर विजयी कैसे ?

३६-३८—गौतम का समाधान ।

३९, ४०—पाश बहुल ससार में मुक्त विहार कैसे ?

४१-४३—गौतम का समाधान ।

४४, ४५—विष-तुल्य फल वाली लता का उच्छेद कैसे ?

४६-४८—गौतम का समाधान ।

४९, ५०—घोर अग्नियों का उपशमन कैसे ?

५१-५३—गौतम का समाधान ।

५४, ५५—दुष्ट अश्व पर सवार होकर भी तुम उन्मार्ग पर क्यों नहीं ?

५६-५८—गौतम का समाधान ।

५९, ६०—कुमार्ग की बहुलता होने पर भी भटकते कैसे नहीं ?

६१-६३—गौतम का समाधान ।

६४, ६५—महान् जल-प्रवाह में बहते हुए जीवों के लिए शरण, गति, प्रतिष्ठा और द्वीप कौन ?

६६-६८—गौतम का समाधान ।

६९, ७०—महाप्रवाह वाले समुद्र का पार कैसे ?

७१-७३—गौतम का समाधान ।

७४, ७५—तिमिर-लोक में प्रकाश किसके द्वारा ?

७६-७८—गौतम का समाधान ।

७९, ८०—पीडित प्राणियों के लिए क्षेम कर स्थान कहाँ ?

८१-८४—गौतम का समाधान ।

८५-८७—श्रमण केशी द्वारा गौतम की अभिवन्दना और पूर्व-मार्ग से पश्चिम-मार्ग में प्रविष्ट ।

८८—केशी और गौतम का मिलन महान् उत्कर्ष और अर्थ-विनिश्चय का हेतु ।

८६—परिषद् का सतोषपूर्वक निर्गमन ।

चतुर्विंश अध्ययन : प्रवचन-माता (पाँच समिति तथा तीन गुप्तियों का निरूपण)

पृ० ३१६-३३०

श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

२—समिति, गुप्तियों का नाम-निर्देश ।

३—जिन-भाषित द्वादशांग-रूप प्रवचन का समावेश ।

४—साधु को ईर्यापूर्वक चलने का आदेश ।

५-८—ईर्या के आलम्बन, काल, मार्ग और यतना का निर्देश ।

९,१०—भाषा-समिति का स्वरूप । निरवद्य और परिमित बोलने का विधान ।

११,१२—एषणा-समिति का स्वरूप और विधि ।

१३,१४—आदान-समिति का स्वरूप और प्रतिलेखन-विधि ।

१५-१८—उच्चार-समिति का स्वरूप और प्रतिलेखन-विधि ।

१९,२०—मनोगुप्ति के चार प्रकार ।

२१—सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान मन के निवर्तन का उपदेश ।

२२,२३—वचन-गुप्ति के चार प्रकार ।

सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान वचन के निवर्तन का उपदेश ।

२४,२५—सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान शरीर के निवर्तन का उपदेश ।

२६—चारित्र की प्रवृत्ति के लिए समिति का विधान ।

अशुभ विषयों से निवृत्ति के लिए गुप्ति का विधान ।

२७—प्रवचन-माता के आचरण से मुक्ति की सभ्यता ।

पंचविंश अध्ययन : यज्ञीय (जयघोष और विजयघोष का संवाद)

पृ० ३३१-३४२

श्लोक १-३—जयघोष मुनि का परिचय और वाराणसी में आगमन ।

४—विजयघोष ब्राह्मण द्वारा यज्ञ का आयोजन ।

५—मुनि का वद्य भिक्षार्थ उपस्थित होना ।

६-८—विजयघोष द्वारा भिक्षा का निषेध ।

९,१०—मुनि द्वारा समभाव पूर्वक ब्राह्मण को संबोध ।

११,१२—वेद-मुख, यज्ञ-मुख, नक्षत्र-मुख, धर्म-मुख एवं अपने-पराये उद्धार में समर्थ व्यक्तियों के विषय में जिज्ञासा ।

१३-१५—विजयघोष का निरुत्तर होना और मुनि से इसके बारे में प्रश्न ।

१६—मुनि द्वारा समाधान ।

१७—चन्द्रमा के सम्मुख ग्रहों की तरह भगवान् ऋषभ के समक्ष समस्त लोक नत-मस्तक ।

१८—यज्ञवादी ब्राह्मण-विद्या से अनभिज्ञ ।

१९-२७—ब्राह्मण का निरूपण ।

२८—वेद और यज्ञ की अत्राणता ।

२९—श्रमण, ब्राह्मण, मुनि और तापस के स्वरूप में ब्राह्मण का खण्डन ।

३०—श्रमण, ब्राह्मण, मुनि और तापस की वास्तविक व्याख्या ।

३१—जाति से कर्म की प्रधानता ।

३२, ३३—कर्मों से मुक्त आत्मा ही ब्राह्मण और उन्ही की अपने-पराए उद्धार में समर्थता का प्रतिपादन ।

३४-३७—विजयघोष द्वारा मुनि की स्तुति और भिक्षा के लिए आग्रह ।

३८—मुनि का विजयघोष को ससार से निष्क्रमण का उपदेश ।

३९-४१—मिट्टी के गोले और सूखे गोले की उपमा से भोगासक्ति के स्वरूप का विश्लेषण ।

४२—विजयघोष द्वारा प्रव्रज्या-स्वीकार ।

४३—दोनों को सिद्धि-प्राप्ति ।

षड्विंश अध्यायन : सामाचारी (संघीय जीवन की पद्धति)

पृ० ३४३-३६०

श्लोक १—अध्यायन का उपक्रम ।

२-४—सामाचारी के दस अंगों का नाम-निर्देश ।

५-७—सामाचारी का प्रयोग कब और कैसे ?

८-१०—प्रतिलेखन के बाद गुरु के आदेशानुसार चर्या का प्रारम्भ ।

११, १२—दिन के चार भागों में उत्तर-गुणों की आराधना—

प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में भिक्षाचरी और चौथे में पुनः स्वाध्याय का विधान ।

१३-१५—पौषधी-विधि और वर्ष भर की तीथियों के वृद्धि-क्षय का परिज्ञान ।

१६—प्रतिलेखना का समय-विधान ।

१७, १८—रात्रि के चार भागों में उत्तर-गुणों की आराधना—

प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में नीद और चौथे में पुनः स्वाध्याय का विधान ।

१९, २०—नक्षत्रों द्वारा रात्रि का काल-ज्ञान ।

२१-२५—प्रतिलेखना विधि ।

२६, २७—प्रतिलेखना के दोषों के प्रकारों का वर्जन ।

२८—प्रतिलेखना के प्रशस्त और अप्रशस्त विकल्प ।

२९, ३०—प्रतिलेखना में कथा करने वाले का छह कार्यों का विराधक-होना ।

३१—छह कारणों से भिक्षा का विधान ।

३२—छह कारणों का नाम-निर्देश ।

३३—छह कारणों से भिक्षा न करने का विधान ।

३४—छह कारणों का नाम-निर्देश ।

३५—भिक्षा के लिए अर्ध-योजन तक जाने का विधान ।

३६—चौथे प्रहर में स्वाध्याय का विधान ।

३७—शय्या की प्रतिलेखना ।

३८—उच्चार-भूमि की प्रतिलेखना ।

कायोत्सर्ग का विधान ।

३९-४१—दैनिक श्रुतिचारों का प्रतिक्रमण ।

४२—काल-प्रतिलेखना ।

४३—प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में नीद और चौथे में स्वाध्याय का विधान ।

४४—असयत व्यक्तियों को न जगाते हुए स्वाध्याय का निर्देश ।

४७—काल की प्रतिलेखना ।

४६—कायोत्सर्ग का विधान ।

४७-४९—रात्रिक अतिचारो का प्रतिक्रमण ।

५०—कायोत्सर्ग में तप-ग्रहण का चिन्तन ।

५१—तप का स्वीकार और सिद्धों का सस्तव ।

५२—मामाचारी से ममार-मागर का पार ।

सप्तविंश अध्ययन : खलुंकीय (अविनीत की उद्दण्डता का चित्रण)

पृ० ३६१-३६८

श्लोक १—गंग मुनि का परिचय ।

२—वाहन वहन करते हुए बैल की तरह योग-वहन करने वाले मुनि का ससार स्वय उल्लिखित ।

३-७—अविनीत बैल का मनोवैज्ञानिक स्वभाव-चित्रण ।

८—अयोग्य बैल की तरह दुर्बल शिष्य द्वारा धर्म-यान को भग्न करना ।

९-१३—अविनीत शिष्य का स्वभाव-चित्रण ।

१४, १५—आचार्य के मन में खेद-खिन्नता ।

१६—गली-गर्दभ की तरह कुण्ठियों का गर्गाचार्य द्वारा बहिष्कार ।

१८—गर्गाचार्य का क्षील-सम्पन्न होकर विहार ।

अष्टविंश अध्ययन : मोक्ष-मार्ग-गति (मोक्ष के मार्गों का निरूपण)

पृ० ३६९-३८०

श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

२—मार्गों का नाम-निर्देश ।

३—मार्ग को प्राप्त करने वाले जीवों की सुगति ।

४, ५—ज्ञान के पाँच प्रकार ।

६—द्रव्य, गुण और पर्याय की परिभाषा ।

७—द्रव्य के छह प्रकारों का नाम-निर्देश ।

८—छह द्रव्यों की सख्या-परकता ।

९—धर्म, अधर्म और आकाश के लक्षण ।

१०-१२—काल, जीव और पुद्गल के लक्षण ।

१३—पर्याय के लक्षण ।

१४—नौ तत्त्वों के नाम-निर्देश ।

१५—सम्यक्त्व की परिभाषा ।

१६—सम्यक्त्व के दस प्रकारों का नाम-निर्देश ।

१७, १८—निसर्ग-रुचि की परिभाषा ।

१९—उपदेश-रुचि की परिभाषा ।

२०—आज्ञा-रुचि की परिभाषा ।

२१—सूत्र-रुचि की परिभाषा ।

- २२—बोज-रुचि की परिभाषा ।
 २३—अभिगम-रुचि की परिभाषा ।
 २४—विस्तार-रुचि की परिभाषा ।
 २५—क्रिया-रुचि की परिभाषा ।
 २६—सक्षेप रुचि की परिभाषा ।
 २७—धर्म-रुचि की परिभाषा ।
 २८—सम्यक्तव का श्रद्धान ।
 २९—सम्यक्तव और चारित्र का पीर्वापर्य सम्बन्ध ।
 ३०—दर्शन, ज्ञान और चारित्र से ही मुक्ति की सम्भवता ।
 ३१—सम्यक्तव के आठ अंगों का निरूपण ।
 ३२-३३—चारित्र के पाँच प्रकार ।
 ३४—तप के दो प्रकार ।
 ३५—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप का उपयोग ।
 ३६—सयम और तप से कर्म-विमुक्ति ।

एकोनविंश अध्ययन : सम्यक्तव-पराक्रम (साधना-मार्ग)

पृ० ३८१-४१६

- सूत्र १—अध्ययन का उपक्रम । सम्यक्तव-पराक्रम का अर्थ ।
 सवेग के परिणाम ।
 २—निर्वेद के परिणाम ।
 ३—धर्म-श्रद्धा के परिणाम ।
 ४—गुरु-साधर्मिक-शुश्रूषा के परिणाम ।
 ४—आलोचना के परिणाम ।
 ६—निन्दा के परिणाम ।
 ७—गर्ही के परिणाम ।
 ८-१३—षड्-आवश्यक के परिणाम ?
 १४—स्तव-स्तुति-मंगल के परिणाम ।
 १५—काल-प्रतिलेखना का परिणाम ।
 १६—प्रायश्चित्त के परिणाम ।
 १७—क्षमा करने के परिणाम ।
 १८-२३—स्वाध्याय के परिणाम ।
 २४—श्रुताराधना के परिणाम ।
 २५—एकाग्र-मन-सन्निवेश का परिणाम ।
 २६—सयम का परिणाम ।
 २७—तप का परिणाम ।
 २८—व्यवदान के परिणाम ।
 २९—सुख-शांत के परिणाम ।

- ३०—अप्रतिबद्धता के परिणाम ।
 ३१—विविक्त-शयनासन-मेवन के परिणाम ।
 ३२—विनिवर्तना के परिणाम ।
 ३३-४१—विभिन्न प्रत्याख्यानों के परिणाम ।
 ४२—प्रतिष्पता के परिणाम ।
 ४३—वैयावृत्य का परिणाम ।
 ४४—मर्द-गुण-सम्पन्नता के परिणाम ।
 ४५—वीतरागता के परिणाम ।
 ४६—क्षमा का परिणाम ।
 ४७—मुक्ति के परिणाम ।
 ४८—ऋजुता के परिणाम ।
 ४९—मृदुता के परिणाम ।
 ५०—भाव-सत्य के परिणाम ।
 ५१—करण-सत्य के परिणाम ।
 ५२—योग-सत्य के परिणाम ।
 ५३—मनो-गुप्तता के परिणाम ।
 ५४—वाक्-गुप्तता के परिणाम ।
 ५५—काय-गुप्तता के परिणाम ।
 ५६—मन-समाधारण के परिणाम ।
 ५७—वाक्-समाधारणा के परिणाम ।
 ५८—काय-समाधारणा के परिणाम ।
 ५९—ज्ञान-सम्पन्नता के परिणाम ।
 ६०—दर्शन-सम्पन्नता के परिणाम ।
 ६१—चारित्र्य-सम्पन्नता के परिणाम ।
 ६२-६६—इन्द्रिय-निग्रह के परिणाम ।
 ६७-७०—कृपाय-विजय के परिणाम ।
 ७१—प्रेम, द्वेष और मिथ्या-दर्शन-विजय के परिणाम ।
 ७२—केवली के योग-निरोध का क्रम ।
 दोष चार कर्मों के क्षय का क्रम ।
 ७३—कर्म-क्षय के बाद जीव की मोक्ष की ओर गति, स्थिति का स्वरूप-विश्लेषण ।
 उपसंहार ।

त्रिंश अध्ययन : तपो-मार्ग-गति (तपो-मार्ग के प्रकारों का निरूपण)

पृ० ४१७-४२८

श्लोक १—अध्ययन का प्रारम्भ ।

२—महाव्रत और रात्रि-भोजन-विरति से जीव की आश्रव-विरति ।

३—समित और गुप्त जीव की आश्रव-विरति ।

- ४—अर्जित कर्मों के क्षय के उपाय ।
 ५, ६—तालाव के दृष्टान्त से तपस्या द्वारा कर्म-क्षय का निरूपण ।
 ७—तप के दो प्रकार ।
 ८—बाह्य-तप के छह प्रकार ।
 ९-१३—अनशन के प्रकार ।
 १४-२४—अवमौदर्य के प्रकार ।
 २५—भिक्षाचर्या की परिभाषा ।
 २६—रस-विवर्जन ।
 २७—काय-क्लेश ।
 २८—विविक्त-शयनासन ।
 २९-३०—छान्तरिक-तप के भेदों का नाम-निर्देश ।
 ३१—प्रायश्चित्त ।
 ३२—विनय ।
 ३३—वेयावृत्त्य ।
 ३४—स्वाध्याय और उसके प्रकार ।
 ३५—ध्यान ।
 ३६—कायोत्सर्ग ।
 ३७—तप के आचरण से मुक्ति की सभ्यता ।

एकत्रिंश अध्ययन : चरण-विधि (चरण-विधि का निरूपण)

पृ० ४२६-४३६

श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

- २—एक—असयम से निवृत्ति और सयम में प्रवृत्ति का विधान ।
 ३—दो—राग और द्वेष के निरोध से संसार-मुक्ति ।
 ४—तीन-तीन दण्डों, गौरवों और शल्यों के त्याग से संसार-मुक्ति ।
 ५—उपसर्ग-सहन करने से संसार-मुक्ति ।
 ६—विकथा, कषाय, सज्ञा और आर्त्त-रोद्र ध्यान के वर्जन से संसार-मुक्ति ।
 ७—व्रत और समितियों के पालन से, इन्द्रिय-विजय और क्रियाओं के परिहार से संसार-मुक्ति ।
 ८—छह लेश्या, छह काय और आहार के छह कारणों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 ९—आहार-ग्रहण की सात प्रतिमाओं और सात भय-स्थानों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १०—आठ मद-स्थान, ब्रह्मचर्य की नौ गुप्ति और दस प्रकार के भिक्षु-धर्म में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 ११—उपासक की ग्यारह प्रतिमाओं और भिक्षु की बारह प्रतिमाओं में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १२—तेरह क्रियाओं, चौदह जीव-समुदायों और पन्द्रह परमाधार्मिक देवों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १३—गाथा षोडशक और सतरह प्रकार के असयम में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १४—अठारह प्रकार के ब्रह्मचर्य, उन्नीस ज्ञात-अध्ययन और बीस असमाधि-स्थानों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १५—इक्कीस सबल दोष, बाईस परीषद्दों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १६—सूत्रकृताग के तेईस अध्ययन और चौबीस प्रकार के देवों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।

- १७—पच्चीस भावनाओं और छब्बीस उद्देशों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १८—साधु के सत्ताईस गुण और अठाईस आचार-प्रकल्पों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १९—उनतीस पाप-प्रसंगों और तीस प्रकार के मोह-स्थानों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 २०—सिद्धों के इक्कीस आदि गुण, वत्तीस योग-संग्रह और तैंतीस आशातना में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 २१—इन स्थानों में यत्न करने वाले का शीघ्र संसार-मुक्त होना ।

द्वात्रिंश अध्ययन : प्रमाद-स्थान (प्रमाद के कारण और उनका निवारण)

पृ० ४३७-४६०

श्लोक १—अध्ययन का प्रारम्भ ।

२—एकान्त सुख के हेतु का प्रतिपादन ।

३—मोक्ष-मार्ग का प्रतिपादन ।

४—समाधि की आवश्यक सामग्री ।

५—एकल विहार की विशेष विधि ।

६—तृष्णा और मोह का अविनाभाव सम्बन्ध ।

७—कर्म-बीज का निरूपण ।

८—दुःख-नाश का क्रम ।

९-१०—राग, द्वेष और मोह के उन्मूलन का उपाय ।

११—प्रकाम-भोजन ब्रह्मचारी के लिए अहितकर ।

१२—विविक्त-शय्यासन और कम भोजन से राग-शत्रु का पराजय ।

१३-१४—ब्रह्मचारी के लिए स्त्री-ससर्ग-वर्जन का विधान ।

१५-२०—किपाक-फल की तरह काम-भोग की अभिलाषा दुःख का हेतु ।

२१—मनोज्ञ विषय पर राग और अमनोज्ञ पर द्वेष न करने का उपदेश ।

२२-३४—रूपासक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य और दुःख का हेतु ।

रूप-विरक्ति शोक-मुक्ति का कारण ।

३५-४७—शब्दासक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य और दुःख का हेतु । शब्द-विरक्ति शोक-मुक्ति का कारण ।

४८-६०—गन्ध-आसक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य तथा दुःख का हेतु ।

६१-७३—रस-आसक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य तथा दुःख का हेतु ।

७४-८६—स्पर्श-आसक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य तथा दुःख का हेतु । स्पर्श-विरक्ति, शोक-विमुक्ति का हेतु ।

८७-९९—भाव-आसक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य तथा दुःख का हेतु । भाव-विरक्ति शोक-विमुक्ति का हेतु ।

१००—रागी पुरुष के लिए इन्द्रिय और मन के विषय दुःख के हेतु, वीतराग के लिये नहीं ।

१०१—समता या विकार का हेतु तद्विषयक मोह है, काम-भोग नहीं ।

१०२, १०३—काम-गुण आसक्त पुरुष अनेक विकार-परिणामों द्वारा करुणास्पद और अप्रिय ।

१०४—तप के फल की वाछा करने वाला इन्द्रिय-रूपी चोरों का वशवर्ती ।

१०५—विषय-प्राप्ति के प्रयोजनों के लिए उद्यम ।

१०६—विरक्त पुरुष के लिए शब्द आदि विषय मनोज्ञता या अमनोज्ञता के हेतु नहीं ।

१०७—राग-द्वेषात्मक सकल्प दोष का मूल है, इन्द्रिय-विषय नहीं—इस विचार से तृष्णा का क्षय ।

१०८—वीतराग की कृतकृत्यता ।

१०६—आयुष्य क्षय होने पर मोक्ष-प्राप्ति ।

११०—मुक्त जीव की कृतार्थता ।

१११—दुःखों से मुक्त होने का मार्ग ।

त्रयस्त्रिंश अध्ययन : कर्म-प्रकृति (कर्म की प्रकृतियों का निरूपण)

पृ० ४६१-४७

श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

२-३—कर्मों के नान-निर्देश ।

४-१५—कर्मों के प्रकार ।

१६, १७—एक समय में ग्राह्य सब कर्मों के प्रदेशों का परिणाम ।

१८—सब जीवों के सग्रह-योग्य पुद्गलों की छहों दिशाओं में स्थिति ।

१९-२३—कर्मों की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति ।

२४—कर्मों का अनुभाग ।

२५—बुद्धिमान् को कर्म-निरोध का उपदेश ।

चतुस्त्रिंश अध्ययन : लेश्याध्ययन (कर्म-लेश्या का विस्तार)

पृ० ४७७-४८१

श्लोक १-२ — उपक्रम ।

३—लेश्याओं के नाम-निर्देश ।

४-६—लेश्याओं का वर्ण-विचार ।

१०-१५—लेश्याओं का रस-विचार ।

१६-१७—लेश्याओं का गन्ध-विचार ।

१८-१९—लेश्याओं का स्पर्श-विचार ।

२१-२२—लेश्याओं के परिणाम ।

२३—लेश्याओं के स्थान

२४-२६—लेश्याओं की स्थिति ।

३०-४३—नारकीय जीवों के लेश्याओं की स्थिति ।

४४-४६—तिर्यञ्च और मनुष्य के लेश्याओं की स्थिति ।

४७-५५—देवों के लेश्याओं की स्थिति ।

५६—अघर्म लेश्याओं की गति ।

५७—घर्म लेश्याओं की गति ।

५८-६०—लेश्याओं का आयुष्य ।

६१—अप्रशस्त लेश्याओं के वर्जन और प्रशस्त लेश्याओं के स्वीकार का उपदेश ।

पंचत्रिंश अध्ययन : अनगार-मार्ग-गति (अनगार का स्फुट आचार)

पृ० ४८६-

श्लोक १—उपक्रम ।

२—सग-विवेक ।

३—पाँच महाव्रतों का नाम-निर्देश ।

४-६—शय्या की शुद्धता ।

१०-११—आहार की शुद्धता ।

१२—भिक्षु के लिए अग्नि का समारम्भ न करने का विधान ।

१३—सोने-चाँदी की अनाकाक्षा ।

१४-१५—क्रय-विक्रय भिक्षु के लिए महान् दोष ।

१६—पिण्ड-पात की एपणा ।

१७—जीवन-निर्वाह के लिए भोजन का विधान ।

१८—पूजा, अर्चना और सम्मान के प्रति अनाशसा-भाव ।

१९—शुक्ल-व्यान और व्युत्सृष्ट-काय होने का उपदेश ।

२०—अनशन का विधान ।

२१—आश्रव-रहित व्यक्ति का परिनिर्वाण ।

पट्त्रिंश अध्ययन : जीवाजीव-विभक्ति (जीव और अजीव के विभागों का निरूपण)

पृ० ४६७-५४६

श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

२—लोक और अलोक की परिभाषा ।

३—जीव और अजीव की प्ररूपणा के प्रकार ।

४—अजीव के दो प्रकार ।

५-६—अरूपी अजीव के दस प्रकार ।

७—अरूपी अजीव के प्रकारों का क्षेत्र-मान ।

८-९—अरूपी अजीव के प्रकारों का क्षेत्र-मान ।

१०-१४—रूपी पुद्गल के प्रकारों का द्रव्य, क्षेत्र और काल-मान ।

१५-२०—वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से पुद्गल की परिणति ।

२१—संस्थान की अपेक्षा से पुद्गल की परिणति ।

२२-४६—पुद्गल के अनेक विकल्प ।

४७-४८—जीव के दो प्रकार ।

४९-६७—सिद्धों का निरूपण ।

६८—संसारी जीव के दो प्रकार ।

६९—स्थायर जीव के तीन मूल भेद,

७०-८३—पृथ्वीकाय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

८४-९१—अपकाय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

९२-१०६—वनस्पतिकाय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

१०७—अस-जीव के तीन भेद ।

१०८-११६—तेजसूकाय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

११७-१२५—वायुकाय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

१२६—उदार असकायिक जीवों के प्रकार ।

१२७-१३५—द्वीन्द्रिय-काय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

१३६-१४४—त्रीन्द्रिय-काय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

१४५-१५४—चतुरिन्द्रिय-काय के उत्तर भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

१५५—पञ्चेन्द्रिय के चार प्रकार ।

१५६-१६६—नरकों के नाम-निर्देश ।

नैरयिक जीवों के चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण ।

१७०-१७१—पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्च के प्रकार और अवतार भेद ।

१७२-१७८—जलचर जीवों के प्रकार ।

चतुर्विध काल-विभाग का निर्देश ।

१७९-१८७—स्थलचर जीवों के प्रकार ।

चतुर्विध काल-विभाग का निर्देश ।

१८८-१९४—खेचर जीवों के प्रकार ।

चतुर्विध काल-विभाग निर्देश ।

१९५-२०३—मनुष्य के प्रकार ।

चतुर्विध काल-विभाग का निर्देश ।

२०४-२४७—देवों के प्रकार ।

चतुर्विध काल-विभाग का निर्देश ।

२४८-२४९—जीवाजीव के ज्ञान पूर्वक समय का निर्देश ।

२५०-२५५—सलेखना-विधि

२—शुभ और अशुभ भावनाएँ सुगति और दुर्गति का कारण ।

२६३—कादर्पी-भावना ।

२६४—आभिधागी-भावना ।

२६५—किल्बिषिक-भावना ।

२६६—आसुरी-भावना ।

२६७—मोही भावना ।

२६८—उपमहार ।

उत्तरज्झयणाणि

पढमं अज्झयणं :

विणय-सुयं

प्रथम अध्ययन :

विनय-श्रुत

आस्तुत्वं

चूर्णि के अनुसार इस अध्ययन का नाम 'विनय-सूत्र'^१ और निर्युक्ति तथा बृहद्वृत्ति के अनुसार 'विनय-श्रुत' है^२ ।

समवायाग में भी इस अध्ययन का नाम 'विनय-श्रुत' है^३ । 'श्रुत' और 'सूत्र' दोनों पर्यायवाची शब्द हैं । इस अध्ययन में विनय की श्रुति या सूत्रण है ।

भगवान् महावीर की माधना-पद्धति का एक अंग 'तपोयोग' है । उसके बारह प्रकार हैं । उनमें आठवाँ प्रकार 'विनय' है^४ । उसके सात रूप प्राप्त होते हैं^५—

१—ज्ञान-विनय—ज्ञान का अनुवर्तन ।

२—दर्शन-विनय—दर्शन का अनुवर्तन ।

३—चारित्र-विनय—चारित्र का अनुवर्तन ।

४—मन-विनय—मन का प्रवर्तन ।

५—वचन-विनय—वचन का प्रवर्तन ।

६—काय-विनय—काया का प्रवर्तन ।

७—लोकोपचार-विनय—अनुशासन, शुश्रूषा और शिष्टाचार-परिपालन ।

बृहद्वृत्ति में 'विनय' के पाँच रूप प्राप्त होते हैं^६—

१—लोकोपचार-विनय ।

२—अर्थ-विनय—अर्थ के लिए अनुवर्तन करना ।

३—काम-विनय—काम के लिए अनुवर्तन करना ।

४—भय-विनय—भय के लिए अनुवर्तन करना ।

५—मोक्ष-विनय—मोक्ष के लिए अनुवर्तन करना । (इस विनय के पाँच प्रकार किए गए हैं—ज्ञान-विनय, दर्शन-विनय, चारित्र-विनय, तप-विनय और औपचारिक-विनय ।^७)

इन दोनों वर्गीकरणों के आधार पर विनय के निम्न अर्थ प्राप्त होते हैं—अनुवर्तन, प्रवर्तन, अनुशासन, शुश्रूषा और शिष्टाचार-परिपालन ।

१—उत्तराध्ययन चूर्णि, पृष्ठ ८ • प्रथममध्ययन विनयसुत्तमिति, विनयो यस्मिन् सूत्रे वार्यते तदिदं विनयसूत्रम् ।

२—(क) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २८ तत्तज्जम्भयण पढम विणयसुय । (ख) बृहद्वृत्ति, पत्र १५ विनयश्रुतमिति द्विपद नाम ।

३—समवायाग, समवाय ३६ छत्तीस उत्तरज्जम्भयणा प० त०—विणयसुय ।

४—उत्तराध्ययन, ३०।८, ३०

५—औपपातिक, सूत्र २० से किं त विणए ? २ सत्तविहे पणते, तज्जहा—णाणविणए दसणविणए चरित्तविणए मणविणए बह्विणए कायविणए लोकोवयारविणए ।

६—बृहद्वृत्ति, पत्र १६ लोकोवयारविणओ अत्थनिमित्तं च कामहेउ च ।

भयविणयमोक्खविणओ खलु पच्चहा णेओ ५

७—वही दसणणाणचरित्ते तवे य तह ओवयारिणं चेव ।

एसो य मोक्खविणओ पच्चविहो होइ णायव्वो ॥

प्रस्तुत अध्ययन मे इन सभी प्रकारों का प्रतिपादन हुआ है ।

दूसरे श्लोक में 'विनीत' की परिभाषा लोकोपचार-विनय के आधार पर की गई है । लोकोपचार-विनय के सात विभाग हैं ^१—

१—अभ्यासवृत्तिता—समीप रहना ।

२—परछन्दानुवृत्तिता—दूसरे के अभिप्राय का अनुवर्तन करना ।

३—कार्यहेतु—कार्य की सिद्धि के लिए अनुकूल वर्तन करना ।

४—कृतप्रतिक्रिया—कृत उपकार के प्रति अनुकूल वर्तन करना ।

५—आर्चगवेषणा—आर्च की गवेषणा करना ।

६—देश-कालज्ञता—देश और काल को समझना ।

७—सर्वार्थ-अप्रतिलोमता—सब प्रकार के प्रयोजनों की सिद्धि के लिए अनुकूल वर्तन करना ।

दूसरे श्लोक में दी हुई विनीत की परिभाषा में इनमें से तीन विभाग—परछन्दानुवृत्तिता, अभ्यासवृत्तिता, देश-कालज्ञता—क्रमशः आज्ञानिर्देशकर, उपपातकारक और इ गिताकार-सम्पन्न के रूप में प्रयुक्त हुए हैं ।

दसवें श्लोक में 'मन-विनय', 'वचन-विनय' और 'ज्ञान-विनय' का संक्षेप में बहुत सुन्दर निर्देश किया गया है ।

इस प्रकार इस अध्ययन में विनय के सभी रूपों का सम्यक् सकलन हुआ है । प्राचीन काल में विनय का बहुत मूल्य रहा है । तेईसवें श्लोक में बताया गया है कि आचार्य विनीत को विद्या देते हैं । अविनीत विद्या का अधिकारी नहीं माना जाता । इस अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि गुरु शिष्य पर कठोर और मृदु दोनों प्रकार का अनुशासन करते थे (श्लोक ३७) । समय की नियमितता भी विनय और अनुशासन का एक अंग था ।

कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे ।

अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे ॥१३१॥

इस अध्ययन में स्वाध्याय और ध्यान दोनों का सर्म्मिलित उल्लेख मिलता है । आचार्य रामसेन ने लिखा है :

स्वाध्यायाद् ध्यानमध्यास्ता, ध्यानात् स्वाध्यायमामनेत् ।

ध्यानस्वाध्यायसम्पत्त्या, परमात्माप्रकाशते ॥^२

स्वाध्याय के पश्चात् ध्यान और ध्यान के पश्चात् स्वाध्याय—इस प्रकार स्वाध्याय और ध्यान की पुनरावृत्ति से परमात्मस्वरूप उपलब्ध होता है ।

यह परम्परा बहुत पुरानी है । इसका संकेत दसवें श्लोक में मिलता है—

कालेण य अहिज्जित्ता, ततो भाँएज्ज एगगो ।

विनय के व्यापक स्वरूप को सामने रखकर ही यह कहा गया था—“विनयं जिन-शासनं का मूल है । जो विनय-रहित है, उसे धर्म और तप कहीं से प्राप्त होगा ?”^३

१—औपपातिक, सू २० से किं त लोकोवयारविणए ? २ सत्तविहे पणत्ते तजहा—अभ्यासवृत्तिय परच्छदाणुवृत्तिय कज्जहेउ कयपडिकिरिया-अत्तगवेषणया देस-कालाणुया सच्चट्ठेस अपडिलोमया ।

२—तत्त्वानुशासन, ८१

३—उपदेशमाला, ३४१ विणभो सासणे मूल, विणीओ सजभो भवे ।

विणयाओ विप्पमुक्कस्स, कओ धम्मो कओ तओ ॥

आचार्य वड्डकेर ने विनय का उत्कर्ष इस भाषा में प्रस्तुत किया—“विनयविहीन व्यक्ति कि मारी शिक्षा व्यर्थ है। शिक्षा का फल विनय है।”^१ यह नहीं हो सकता कि कोई व्यक्ति शिक्षित है और विनोत नहीं है। उनकी भाषा में शिक्षा का फल विनय और विनय का फल शेष समग्र कल्याण है।

विनय मानसिक-दामता नहीं है, किन्तु वह आत्मिक और व्यावहारिक विशेषताओं की अभिव्यजना है। उसकी पृष्ठ-भूमि में इतने गुण समाहित रहते हैं^२

१—निर्द्वन्द्व—कलह आदि द्वन्द्वों की प्रवृत्ति का अभाव।

२—ऋजुता—सरलता।

३—मृदुता—निश्चलता और निर्भिमानता।

४—लाघव—अनासक्ति।

विनय के व्यावहारिक फल हैं—कीर्ति और मैत्री। विनय करने वाला अपने अभिमान का निरसन, तीर्थङ्कर को आज्ञा का पालन और गुणों का अनुमोदन करता है।^३

सूत्रकार ने विनोत को वह स्थान दिया है, जो अनायास-लभ्य नहीं है। सूत्र की भाषा है—“हवड किच्चाण सरण, भूयाण जगई जहा।”^४ जिस प्रकार पृथ्वी प्राणियों के लिए आधार होती है, उसी प्रकार विनीत शिष्य धर्माचरण करने वालों के लिए आधार होता है।

१—मूलाचार, ५।२।११ विणणुण विप्पहीणस्स, हवदि सिक्खा सञ्चा णिरत्थिया।

विणओ सिक्खाए फल, विणयफल सञ्च कल्लाण ॥

२—वही, ५।२।१३ आचारजीदरुप्पगुणटीवणा, अत्तसोधि णिज्जजा।

अज्जव-महव-लाहव-भत्ती-पलहादकरण च ॥

३—वही, ५।२।१४ किन्ती मित्ती माणम्म भजण गुरुज्जे य बहुमाण।

त्तिन्थयरान आणा गुणाणुमोदो य विणयगुणा ॥

४—उत्तराध्ययन, १।४५

पदमं अज्ज्ञयणं : प्रथम अध्ययन

विणय-सुयं : विनय-श्रुतम्

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—सजोगा विप्पमुक्कस्स अणगारस्स भिक्खुणो । विणय पाउकरिस्सामि आणुपुव्वि सुणेह मे ॥	सयोगाद् विप्रमुक्तस्य अनगारस्य भिक्षोः । विनय प्रादुष्करिष्यामि आनुपूर्व्या शृणुत मे ॥	१—जो सयोग से मुक्त है, अनगार है, भिक्षु है, उसके विनय को क्रमशः प्रकट करूँगा । मुझे सुनो ।
२—आणानिद्देसक्रे गुरूणमुववायकारए । इगियागार-सपन्ने से 'विणीए त्ति' वुच्चई ॥	आज्ञानिर्देशकरः गुरूणामुपपातकारकः । इगिताकारसम्प्रज्ञः स 'विनीत' इत्युच्यते ॥	२—जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का पालन करता है, गुरु की शुश्रूषा करता है, गुरु के इंगित और आकार को जानता है, वह 'विनीत' कहलाता है ।
३—आणाऽनिद्देसकरे ^१ गुरूणमणुववायकारए । पडिणीए असबुद्धे 'अविणीए त्ति' वुच्चई ॥	आज्ञाऽनिर्देशकरः गुरूणामनुपपातकारकः । प्रत्यनीकोऽसम्बुद्धः 'अविनीत' इत्युच्यते ॥	३—जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का पालन नहीं करता, गुरु की शुश्रूषा नहीं करता, जो गुरु के प्रतिकूल वर्तन करता है और तथ्य को नहीं जानता, वह 'अविनीत' कहलाता है ।
४—जहा सुणी पूड-कणी निक्कसिज्जइ सव्वसो । एवं दुस्सील-पडिणीए मुहुरी निक्कसिज्जई ॥	यथा शुनी पूतिकर्णो निष्काश्यते सर्वतः । एव दुःशील प्रत्यनीक मुखरो निष्काश्यते ॥	४—जैसे सड़े हुए कानो वाली कुतिया सभी स्थानों से निकाली जाती है, वैसे ही दुःशील, गुरु के प्रतिकूल वर्तन करने वाला और वाचाल भिक्षु गण से निकाल दिया जाता है ।
५—कण-कुण्डग चइत्ताण ^२ विट्ठ भुजइ सूयरे । एव सील चइत्ताण दुस्सीले रमई मिए ^३ ॥	'कणकुण्डक' त्यक्त्वा विष्ठा भुक्ते शूकरः । एव शील त्यक्त्वा दुःशीले रमते मृगः ॥	५—जिस प्रकार सूअर चावलों की भूसी को छोड़कर विष्ठा खाता है, वैसे ही अज्ञानी भिक्षु शील को छोड़कर दुःशील में रमण करता है ।

१. आणा अनिद्देसकरे (अ) ।

२. जइत्ताण (वृ०, चू०), चइत्ताण (वृ०पा०) ।

३. मिई (आ) ।

६—सुणियाऽभाव साणस्स
सूयरस्स नरस्स य ।
विणए ठवेज्ज अप्पाण
इच्छन्तो हियमप्पणो ॥

७—तम्हा विणयमेसेज्जा
सील पडिलभे जओ^१ ।
बुद्ध-पुत्त^२ नियागट्ठी
न निक्कसिज्जइ कण्हुई ॥

८—निसन्ते सियाऽमुहरी^३
बुद्धाण अन्तिए सया ।
अट्टजुत्ताणि सिक्खेज्जा
निरट्ठाणि उ वज्जए ॥

९—अणुसासिओ न कुप्पेज्जा
खर्ति सेविज्ज पण्डिए ।
खुडुहि सह ससर्गि
हास कीड च वज्जए ॥

१०—मा य चण्डालिय कासी^४
बहुय मा य आलवे ।
कालेण य अहिज्जित्ता
तओ भाएज्ज एगगो^५ ॥

११—आहच्च चण्डालिय कट्ठु
न निण्हविज्ज कयाइ वि ।
'कड कडे' त्ति भासेज्जा
'अकड नो कडे' त्ति य ॥

श्रुत्वा अभाव शुन्या
शूकरस्य नरस्य च ।
विनये स्थापयेदात्मानम्
इच्छन् हितमात्मन ॥

तस्माद् विनयमेषयेत्
शील प्रतिलभेत यतः ।
बुद्धपुत्रो नियागार्थी
न निष्काश्यते क्वचित् ॥

निःशान्त स्यादमुखरः
बुद्धानामन्तिके सदा ।
अर्थयुक्तानि शिक्षेत
निरर्थानि तु वर्जयेत् ॥

अनुशिष्टो न कुप्येत्
क्षान्तिं सेवेत पण्डितः ।
क्षुद्रं सह ससर्गं
हासं क्रीडा च वर्जयेत् ॥

मा च चाण्डालिक कार्षीं
बहुक मा चालपेत् ।
कालेन चाधीत्य
ततो ध्यायेदेककः ॥

आहत्य चाण्डालिक कृत्वा
न निन्दुवीत कदाचिदपि ।
कृत कृतमिति भाषेत
अकृत नो कृतमिति च ॥

६—अपनी आत्मा का हित चाहने वाला
भिक्षु कुतिया और सूअर की तरह दुःशील
मनुष्य के अभाव (हीन भाव) को सुनकर अपने
आप को विनय में स्थापित करे ।

७—इसलिए विनय का आचरण करे
जिससे शील की प्राप्ति हो । जो बुद्ध-पुत्र
(आचार्य का प्रिय शिष्य) और मोक्ष का अर्थी
होता है, वह गण से नहीं निकाला जाता ।

८—भिक्षु आचार्य के समीप सदा प्रशान्त
रहे । वाचालता न करे । उनके पाम अर्थ-युक्त
पदों को सीखे और निरर्थक कथाओं का
वर्जन करे ।

९—पण्डित भिक्षु गुरु के द्वारा अनुशासित
होने पर क्रोध न करे, क्षमा की आराधना
करे । क्षुद्र व्यक्तियों के साथ ससर्ग, हास्य और
क्रीडा न करे ।

१०—भिक्षु चण्डालोचित कर्म (क्रूर-व्यव-
हार) न करे । बहुत न बोले । स्वाध्याय के
काल में स्वाध्याय करे और उसके पश्चात्
अकेला ध्यान करे ।

११—भिक्षु सहसा चण्डालोचित कर्म कर
उसे कभी भी न छिपाए । अकरणीय किया हो
तो किया और नहीं किया हो तो न किया
कहे ।

१ पडिलभिज्जओ (अ०), पडिलभेज्जओ (अ) ।

२ बुद्ध उत्ते (बु०), बुद्धपुत्ते, बुद्धवुत्ते (बु०पा०) ।

३ सियाभमुहरी (अ) ।

४ कुज्जा (उ) ।

५ एक्कओ (अ) ।

१२—मा 'गलियस्से व'^१ कस
वयणमिच्छे पुणो पुणो ।
कस व दट्ठुमाडण्णे
पावग परिवज्जए^२ ॥

मा गल्यश्च इव कश्च
वचनमिच्छेद् पुन पुनः ।
कश्चमिव दृष्ट्वा आकीर्णः
पापक परिवर्जयेत् ॥

१२—जैसे अविनीत घोड़ा चाबुक को बार-बार चाहता है, वैसे विनीत शिष्य गुरु के वचन को (आदेश-उपदेश) को बार-बार न चाहे । जैसे विनीत घोड़ा चाबुक को देखते ही उन्मार्ग को छोड़ देता है, वैसे ही विनीत शिष्य गुरु के इंगित और आकार को देखकर अशुभ प्रवृत्ति को छोड़ दे ।

१३—अणासवा^३ थूलवया कुसीला
मिड पि चण्ड पकरेति सीसा ।
चित्ताणुया लहु दक्खोववेया
पसायए ते हु दुरासय पि ॥

अनाश्रवा स्थूलवचस कुशीलाः
मृदुमपि चण्ड प्रकुर्वन्ति शिष्याः ।
चित्तानुगा लघुदाक्ष्योपेता
प्रसादयेयुस्ते 'हु' दुराशयमपि ॥

१३—आज्ञा को न मानने वाले और अट-सट बोलने वाले कुशील शिष्य कोमल स्वभाव वाले गुरु को भी क्रोधी बना देते हैं । चित्त के अनुसार चलने वाले और पटुता में कार्य को सम्पन्न करने वाले शिष्य, दुर्गम्य (शीघ्र ही कुपित होने वाले) गुरु को भी प्रमत्त कर लेते हैं ।

१४—नापुट्टो वागरे किंचि
पुट्टो वा नालिय वए ।
कोह असच्च कुव्वेज्जा
धारेज्जा पियमप्पिय ॥

नापुट्टो व्यागृणीयात् किञ्चित्
पुट्टो वा नालीक वदेत् ।
क्रोधमसत्य कुर्वीत
धारयेत् प्रियमप्रियम् ॥

१४—विना पूछे कुछ भी न बोले । पूछने पर असत्य न बोले । क्रोध न करे । आ जाए तो उसे विफल कर दे । प्रिय और अप्रिय को धारण करे—उन पर राग और द्वेष न करे ।

१५—'अप्पा चेव दमेयव्वो'^४
अप्पा हु खलु दुद्धमो ।
अप्पा-दन्तो सुही होइ
अस्सि लोए परत्थ य ॥

आत्मा चैव दान्तव्यः
आत्मा 'हु' खलु दुर्दमः ।
आत्मा दान्त सुखी भवति
अस्मिन्नलोके परत्र च ॥

१५—आत्मा का ही दमन करना चाहिए । क्योंकि आत्मा ही दुर्दम है । दमित-आत्मा ही इहलोक और परलोक में सुखी होता है ।

१६—वर^५ मे अप्पा दन्तो
सजमेण तवेण य ।
माह परेहि दम्मन्तो
वन्धणेहि वहेहि य ॥

वर मयात्मा दान्तः
सयमेन तपसा च ।
मा ह परैर्दमित
वन्धनैर्वधैश्च ॥

१६—अच्छा यही है कि मैं सयम और तप के द्वारा अपनी आत्मा का दमन करूँ । दूसरे लोग वन्धन और वध के द्वारा मेरा दमन करें—यह अच्छा नहीं है ।

१ गलियस्सुव्व (उ, ऋ०), गलियस्सेव्व (अ) ।

२ पडिबज्जए (अ, वृ०पा०) ।

३ अणासुणा (वृ०पा०) ।

४ अप्पाणमेव दमए (वृ०, चू०), अप्पा चेव दमेयव्वो (वृ०पा०) ।

५ वर (अ, उ, म) ।

१७—पडिणीय च बुद्धाण
वाया अदुव कम्मुणा ।
आवी वा जइ वा रहस्से
नेव कुज्जा कयाइ वि ॥

प्रत्यनीक (कत्त्व) च बुद्धाना
वाचा अथवा कर्मणा ।
आविर्वा यदि वा रहस्ये
नैव कुर्यात् कदाचिदपि ॥

१७—लोगों के समक्ष या एकान्त में, वचन से या कर्म से, कभी भी आचार्यों के प्रतिकूल वर्तन न करे ।

१८—न पक्खओ न पुरओ
नेव किच्चाण पिट्ठओ ।
न जुजे ऊरुणा ऊरु
सयणे नो पडिस्सुणे ॥

न पक्षतो न पुरतः
नैव कृत्याना पृष्ठतः ।
न युञ्ज्याद् ऊरुणोरु
शयने नो प्रतिशृणुयात् ॥

१८—आचार्यों के वरावर न बैठे । आगे और पीछे भी न बैठे । उनके ऊरु (जाँघ) से अपना ऊरु सटाकर न बैठे । विद्यौने पर बैठा हुआ ही उनके आदेश को स्वीकार न करे, किन्तु उसे छोड़कर स्वीकार करे ।

१९—नेव पल्हत्थिय कुज्जा
पक्खपिण्ड व सजए ।
पाए पसारिए^१ वावि
न चिट्ठे गुरुणन्तिए ॥

नैव पर्यस्तिका कुर्यात्
पक्ष-पिण्ड वा सयत ।
पादौ प्रसारितौ वापि
न तिष्ठेद् गुरुणामन्तिके ॥

१९—सयमी मुनि गुरु के समीप पलथी लगाकर (घुटनों और जाँघों के चारों ओर वस्त्र बांध कर) न बैठे । पक्ष-पिण्ड कर (दोनों हाथों से शरीर को बांधकर) तथा पैरों को फँला कर न बैठे ।

२०—आयरिएहि वाहिन्तो
तुसिणीओ न कयाइ वि ।
पसाय-पेही^२ नियागट्ठी
उवचिट्ठे गुरु सया ॥

आचार्यै र्याहृतः
तूष्णीको न कदाचिदपि ।
प्रसादप्रेक्षी नियागार्थी
उपतिष्ठेत् गुरु सदा ॥

२०—आचार्यों के द्वारा बुलाए जाने पर किसी भी अवस्था में मौन न रहे । गुरु के प्रसाद को चाहने वाला, मोक्षाभिलाषी शिष्य सदा उनके समीप रहे ।

२१—आलवन्ते लवन्ते वा
न निसीएज्ज कयाइ वि ।
चइऊणमासण धीरो
जओ जत्त^३ पडिस्सुणे ॥

आलपन् लपन् वा
न निषीदेत् कदाचिदपि ।
त्यक्त्वा आसन धीर
यतो यत्तत् प्रतिशृणुयात् ॥

२१—बुद्धिमान् शिष्य गुरु के एक बार बुलाने पर या बार-बार बुलाने पर कभी भी बैठा न रहे, किन्तु वे जो आदेश दें, उसे आसन को छोड़कर यत्न के साथ स्वीकार करे ।

२२—आसण-गओ न पुच्छेज्जा
नेव 'सेज्जा-गओ कया'^४ ।
आगम्म्वुकुडुओ सन्तो
पुच्छेज्जा पजलीउडो^५ ॥

आसनगतो न पृच्छेत्
नैव शय्यागतः कदा ।
आगम्योत्कुटुकः सन्
पृच्छेत् प्राजलिपुटः ॥

२२—आसन पर अथवा शय्या पर बैठा-बैठा कभी भी गुरु से-कोई बात न पूछे, परन्तु उनके समीप आकर ऊकड़ू बैठ, हाथ जोड़कर पूछे ।

१ पसारें नो (वृ०), पसारिए (वृ०पा०) ।

२ पसायट्ठी (वृ०पा०) ।

३ जुत्त (अ, उ) ।

४ णिसिज्जागओ कयाइ (चू०) ।

५ पजलीगडे (वृ०); पजलीउडो (वृ०पा०) ।

२३—एव विणयजुत्तस्स
मुत्त अत्थ च तदुभय ।
पुच्छमाणस्स सीसस्स
वागरेज्ज जहासुय ॥

एव विनययुक्तस्य
सूत्रमर्थं च तदुभयम्
पृच्छतः शिष्यस्य
व्यागृणीयाद् यथाश्रुतम् ॥

२३—इस प्रकार जो शिष्य विनय-युक्त हो, उसके पूछने पर गुण सूत्र, अर्थ और तदुभय (सूत्र और अर्थ दोनों) जैसे मुने हों (जाने हुए हो) वैसे बतनाए ।

२४—मुस परिहरे भिक्खू
न य ओहारिणि वए ।
भासा-दोस परिहरे
माय च वज्जए सया ॥

मृषा परिहरेद् भिक्षुः
न चावधारिणीं वदेत् ।
भाषादोष परिहरेत्
माया च वर्जयेत् सदा ॥

२४—मिथु अमत्य का परिहार करे । निश्चय-कारिणी भाषा न बोले । भाषा के दोषों को छोड़े । माया का सदा वर्जन करे ।

२५—न लवेज्ज पुट्ठो सावज्ज
न निरट्ठं न मम्मय ।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा
उभयस्सन्तरेण वा ॥

न लपेत् पृष्ठं सावद्य
न निरर्थं न मर्मकम् ।
आत्मार्थं परार्थं वा
उभयस्यान्तरेण वा ॥

२५—किसी के पूछने पर भी अपने, पराए या दोनों के प्रयोजन के लिए अथवा अकारण ही सावद्य न बोले, निरर्थक न बोले और मम-मेदी वचन न बोले ।

२६—समरेसु अगारेसु
'सन्धीमु य महापहे'^१ ।
एगो एगित्थिए सद्धि
नेव चिट्ठे न सलवे ॥

स्मरेषु अगारेषु
सन्धिषु च महापथे ।
एक एकस्त्रिया सार्धं
नैव तिष्ठेन्न सलपेत् ॥

२६—कामदेव के मदिरों में, घरों में, दो घरों के बीच की सधियों में और राजमार्ग में अकेला मुनि अकेली स्त्री के साथ न खड़ा रहे और न सलाप करे ।

२७—ज मे बुद्धाणुसासन्ति
सीएण^२ फरुसेण वा ।
मम लाभो त्ति पेहाए
पयओ त पडिस्सुणे ॥

यन्मा बुद्धा अनुशासति
शीतेन परुषेण वा ।
मम लाभ इति प्रेक्ष्य
प्रयतस्तत् प्रतिशृणुयात् ॥

२७—“आचार्य मुझ पर कोमल या कठोरवचनों से जो अनुशामन करते हैं वह मेरे लाभ के लिए हैं”—ऐसा सोचकर प्रयत्नपूर्वक उनके वचनों को स्वीकार करे ।

२८—अणुसासणमोवाय
दुक्कडस्स य चोयण^३ ।
हिय त मन्नए पण्णो
वेस होइ असाहुणो ॥

अनुशासनमोपाय
दुष्कृतस्य च चोदनम् ।
हित तन्मन्यते प्राज्ञः
द्वेष्य भवत्यसाधोः ॥

२८—मृदु या कठोर वचनों में किया जाने वाला अनुशासन दुष्कृत का निवारक होता है । प्रज्ञावान् मुनि उसे हित मानता है । वही असाधु के लिए द्वेष का हेतु बन जाता है ।

१ गिहसन्धीस महापहे (छ०), गिहसन्धिअ महापहेछ (वृ०) ।

२ सीतेण (अ), सीलेण (वृ०पा०, चू०पा०) ।

३ पेरण (वृ०), चोयणा (चू०) ।

२९—हिय विगय-भया बुद्धा
फरुस पि अणुसासणं ।
वेस त होइ मूढाणं
खन्ति-सोहिकरं^१ पय ॥

३०—आसणे उवचिद्वेज्जा
'अणुच्चे अकुए'^२ थिरे ।
अप्पुट्ठाई निरुट्ठाई
निसीएज्जप्पकुक्कुए ॥

३१—कालेण निक्खमे भिक्खू
कालेण य पडिक्खमे ।
अकाल च विवज्जिता
काले काल समायरे ॥

३२—परिवाडीए न चिद्वेज्जा
भिक्खू दत्तेसणं चरे ।
पडिरुवेण एसित्ता
मिय कालेण भक्खाए ॥

३३—'नाइदूरमणासन्ने'^३
नन्नेसिं चक्खु-फासओ ।
एगो चिद्वेज्ज भत्तट्ठा
लघिया तं नइक्कमे^४ ॥

३४—नाइउच्चे व नीए वा
नासन्ने नाइदूरओ ।
फासुय परकडं पिण्डं
पडिगाहेज्ज संजए ॥

हितं विगतभया बुद्धाः
परुषमप्यनुशासनम् ।
द्वेष्ट्य तद् भवति मूढानां
क्षान्तिशोधिकर पदम् ॥

आसने उपतिष्ठेत
अनुच्चे अकुचे स्थिरे ।
अल्पोत्थायी निरुत्थायी
निषीदेदल्पकुक्कुच ॥

काले निष्क्रमेद् भिक्षुः
काले च प्रतिक्रामेत् ।
अकाल च विवर्ज्य
काले कालं समाचरेत् ॥

परिपाद्या न तिष्ठेत्
भिक्षुर्दत्तेषणां चरेत् ।
प्रतिरूपेणैषयित्वा
मित काले भक्षयेत् ॥

नातिदूरेऽनासन्ने
नान्येन्यां चक्षुःस्पर्शतः ।
एकस्तिष्ठेद् भक्तार्थः
लङ्घयित्वा तं नातिक्रामेत् ॥

नात्युच्चे वा नीचे वा
नासन्ने नातिदूरतः ।
प्रासुक परकृतं पिण्डं
प्रति गृह्णीयात् संयतः ॥

२९—भय-मुक्त बुद्धिमान् शिष्य गुरु के कठोर अनुशासन को भी हितकर मानते हैं । परन्तु अज्ञानियों के लिए वही—क्षमा और चित्त-विशुद्धि करने वाला, गुण-वृद्धि का आधारभूत—अनुशासन द्वेष का हेतु बन जाता है ।

३०—जो गुरु के आसन से नीचा हो, अकम्पमान हो और स्थिर हो (जिसके पाये धरती पर टिके हुए हो) वैसे आसन पर बैठे । प्रयोजन होने पर भी बार-बार न उठे । बैठे तब स्थिर एवं शान्त होकर बैठे, हाथ-पैर आदि से चपलता न करे ।

३१—समय पर भिक्षा के लिए निकले, समय पर लौट आए । अकाल को वर्ज्यकर, जो कार्य जिस समय का हो, उसे उसी समय करे ।

३२—भिक्षु परिपाटी (पक्ति) में खड़ा न रहे । गृहस्थ के द्वारा दिए हुए आहार की एषणा करे । प्रति-रूप (मुनि के वेष) में एषणा कर यथासमय मित आहार करे ।

३३—पहले से ही अन्य भिक्षु खड़े हों तो उनसे अति-दूर या अति-समीप खड़ा न रहे और देने वाले गृहस्थों की दृष्टि के सामने भी न रहे । किन्तु अकेला (भिक्षुओं और दाता दोनों की दृष्टि से बचकर) खड़ा रहे । भिक्षुओं को लौंघकर भक्त लेने के लिए न जाए ।

३४—सयमी मुनि प्रासुक और गृहस्थ के लिए बना हुआ आहार ले किन्तु अति-ऊँचे या अति-नीचे स्थान से लाया हुआ तथा अति-समीप या अति-दूर से दिया जाता हुआ आहार न ले ।

१ -सुद्धिकर (वृ०) ।

२. अणुच्चेऽकुक्कुए (वृ०) ।

३ गण्ड दूरे अणासणे (चू०) ।

४ न अइक्कमे (अ) ।

३५—अप्पपाणेऽप्पवीयमि^१

पडिच्छन्मि सवुडे ।
समय सजए भुजे
जय अपरिसाडिय^२ ॥

अल्पप्राणेऽल्पबीजे
प्रतिच्छन्ते सवृते ।
समक संयतो भुजीत
यतमपरिसादितम् ॥

३५—सयमी मुनि प्राणी और बीज रहित,
ऊपर से ढके हुए और पार्श्व में भित्ति आदि से
संवृत उपाश्रय में अपने सहवर्मी मुनियों के
साथ, भूमि पर न गिराता हुआ, यत्नपूर्वक
आहार करे ।

३६—सुकडे त्ति सुपक्के त्ति
सुच्छिन्ने सुहडे मडे ।
सुणिट्ठिए सुलट्ठे त्ति
सावज्ज वज्जए मुणी ॥

सुकृतमिति सुपक्वमिति
सुच्छिन्नं सुहृतं मृतम् ।
सुनिष्ठित सुलुष्टमिति
सावद्यं वर्जयेन्मुनिः ॥

३६—बहुत अच्छा किया है (भोजन
आदि), बहुत अच्छा पकाया है (घेवर आदि),
अच्छा छेदा है (पत्ती का साग आदि),
बहुत अच्छा हरण किया है (साग की कड़वाहट
आदि), बहुत अच्छा मरा है (चूरमे में धी
आदि), बहुत इष्ट है (प्रिय है)—मुनि इन
सावध्यं वचनों का प्रयोग न करे ।

३७—रमए पण्डिए सास
हय — भद्द व वाहए ।
वाल सम्मइ सासन्तो
गलियस्स व वाहए ॥

रमते पण्डितान् शासत्
हयं भद्रमिव वाहकः ।
वाल श्राम्यति शासत्
गल्यश्वमिव वाहक ॥

३७—जैसे उत्तम घोड़े को हाँकते हुए
उसका वाहक आनन्द पाता है, वैसे ही पंडित
(विनीत) शिष्य पर अनुशासन करता हुआ
गुरु आनन्द पाता है और जैसे दुष्ट घोड़े को
हाँकते हुए उसका वाहक खिन्न होता है, वैसे
ही वाल (अविनीत) शिष्य पर अनुशासन
करता हुआ गुरु खिन्न होता है ।

३८—‘खड्डुया मे चवेडा मे
अक्कोसा य वहा य मे’^३ ।
कल्लाणमणुसासन्तो^४
पावदिट्ठि त्ति मन्नई ॥

‘खड्डुका’ मे चपेटा मे
आक्रोशाश्च वधाश्च मे ।
कल्याणमनुशास्यमानः
पापदृष्टिरिति मन्यते ॥

३८—पाप-दृष्टि वाला शिष्य गुरु के
कल्याणकारी अनुशासन को भी ठोकर मारने,
चाटा चिपकाने, गाली देने व प्रहार करने के
समान मानता है ।

३९—पुत्तो मे भाय नाइ त्ति
साहू कल्लाण मन्नई ।
पावदिट्ठी उ अप्पाणं
सास ‘दास व’^५ मन्नई ॥

पुत्रो मे भ्राता ज्ञातिरिति
साधुः कल्याण मन्यते ।
पापदृष्टिस्त्वात्मानं
शास्यमान दासमिव मन्यते ॥

३९—गुरु मुझे पुत्र, भाई और स्वजन
की तरह अपना समझकर शिक्षा देते हैं—ऐसा
सोच विनीत शिष्य उनके अनुशासन को
कल्याणकारी मानता है परन्तु कुशिष्य
हितानुशासन से शासित होने पर अपने को
दास तुल्य मानता है ।

१. अप्पपाणऽप्प० (अ, उ, ऋ०) ।

२. अप्परि० (उ, ऋ०, वृ०) ।

३. खड्डुयाहि चवेडाहि, अक्कोसेहि वहेहि य (वृ०, चू०), खड्डुया मे चवेडा मे, अक्कोसा य वहा य मे (चू०प०, वृ०पा०) ।

४. सासन्त (वृ०, चू०) ।

५. दासे त्ति (अ, आ, इ, उ, छ०) ।

४०—न कोवए आयरिय
अप्पाण पि न कोवए ।
बुद्धोवघाई न सिया
न सिया तोत्तगवेसए ॥

४१—आयरिय कुविय नच्चा
पत्तिएण पसायए ।
विज्झवेज्ज पजलिउडो
वएज्ज न पुणो त्ति य ॥

४२—धम्मज्जिय च ववहारं
बुद्धेहायरिय सया ।
तमायरन्तो ववहारं^१
गरह नाभिगच्छई ॥

४३—‘मणोगय वक्कगय’^२
जाणित्तायरियस्स उ ।
त परिगिज्झ वायाए
कम्मुणा उववायए ॥

४४—वित्ते अचोइए निच्च^३
‘खिप्प हवइ सुचोइए’^४ ।
जहोवइइ सुकयं
किच्चाइ कुव्वई सया ॥

४५—नच्चा नमइ मेहावी
लोए ‘कित्ती से’^५ जायए ।
हवई किच्चाण सरण
भूयाण जगई जहा ॥

न कोपयेदाचार्यं
आत्मानमपि न कोपयेत् ।
बुद्धोपघाती न स्यात्
त स्यात् तोत्रगवेषकः ॥

आचार्यं कुपितं ज्ञात्वा
प्रातीतिकेन प्रसादयेत् ।
विध्यापयेत् प्रांजलिपुटः
वदेन्न पुनरिति च ॥

धर्माजित च व्यवहार
बुद्धं राचरितं सदा ।
तमाचरन् व्यवहारं
गर्हा नाभिगच्छति ॥

मनोगत वाक्यगतं
ज्ञात्वा आचार्यस्य तु ।
तत् परिगृह्य वाचा
कर्मणोपपादयेत् ॥

वित्तोऽचोदितो नित्य
क्षिप्रं भवति सुचोदितः ।
यथोपदिष्टं सुकृतं
कृत्यानि करोति सदा ॥

ज्ञात्वा नमति मेधावी
लोके कीर्तिस्तस्य जायते ।
भवति कृत्याना शरणं
भूतानां जगती यथा ॥

४०—शिष्य आचार्य को कुपित न करे ।
स्वयं भी कुपित न हो । आचार्य का उपघात
करनेवाला न हो । उनका छिद्रान्वेषी न हो ।

४१—आचार्य को कुपित हुए जानकर
विनीत शिष्य प्रतीतिकारक (या ‘प्रीतिकेन’
—प्रीतिकारक) वचनो से उन्हें प्रसन्न करे ।
हाथ जोड़कर उन्हें शान्त करे और यो कहे कि
“मैं पुन ऐसा नहीं करूँगा ।”

४२—जो व्यवहार धर्म से अर्जित हुआ
है, जिसका तत्त्वज्ञ आचार्यों ने सदा आचरण
किया है, उस व्यवहार का आचरण करता
हुआ मुनि कहीं भी गर्हा को प्राप्त नहीं होता ।

४३—आचार्य के मनोगत और वाक्य-
गत भावों को जानकर, उनको वाणी से ग्रहण
करे और कार्यरूप में परिणत करे ।

४४—जो विनय से प्रख्यात होता है वह
सदा विना प्रेरणा दिए ही कार्य करने में प्रवृत्त
होता है । वह अच्छे प्रेरक गुरु की प्रेरणा
पाकर तुरत ही उनके उपदेशानुसार भलीभाँति
कार्य सम्पन्न कर लेता है ।

४५—मेधावी मुनि उक्त विनय-पद्धति
को जानकर उसे क्रियान्वित करने में तत्पर हो
जाता है । उसकी लोक में कीर्ति होती है ।
जिस प्रकार पृथ्वी प्राणियों के लिए आधार
होती है, उसी प्रकार वह धर्माचरण करनेवालों
के लिए आधार होता है ।

१ मेहावी (वृ०पा०) ।

२ मणोरुइ वक्कुरुइ (वृ०पा०, चू०) ।

३ खिप्प (वृ०पा०, चू०पा०) ।

४ पसन्ने थामव करे (वृ०पा०, चू० पा०) ।

५ कित्तीय (अ, उ, वृ०), कित्ती सि (ऋ०) ।

४६—पुज्जा जस्स पसीयन्ति
सबुद्धा पुव्वसथुया ।
पसन्ता^१ लाभइस्सन्ति
विउल अट्ठिय सुय ॥

पूज्या यस्य प्रसीदन्ति
सम्बुद्धाः पूर्व-सस्तुताः ।
प्रसन्ता लाभयिष्यन्ति
विपुलमार्थिक श्रुतम् ॥

४६—उसपर तत्त्ववित् पूज्य आचार्य
प्रसन्न होते हैं । अव्ययन-काल से पूर्व ही वे
उसके विनय-समाचरण से परिचित होते हैं ।
वे प्रसन्न होकर उसे मोक्ष के हेतुभूत विपुल
श्रुत-ज्ञान का लाभ करवाते हैं ।

४७—स पुज्जसत्थे सुविणीयससए
'मणोरुई' चिट्ठइ कम्म-सपया ।^२
तवोसमायारिसमाहिसवुडे
महज्जुई पंच-वयाइ पालिया ॥

स पूज्य-शास्त्रः सुविनीत-संशयः
मनोरुचिस्तिष्ठति कर्म-सम्पदा ।
तपःसामाचारीसमाधिसंवृतः
महाद्युतिः पंच व्रतानि पालयित्वा ॥

४७—वह पूज्य-शास्त्र होता है—उसके
शाम्बरीय ज्ञान का बहुत सम्मान होता है ।
उसके सारे संशय मिट जाते हैं । वह गुरु के
मन को भाता है । वह कर्म-सम्पदा (दस
विध सामाचारी) से सम्पन्न होकर रहता है ।
वह तप-समाचारी और समाधि में संवृत होता
है । पाँच महाव्रतों का पालनकर महान्
तेजस्वी हो जाता है ।

४८—स देव-गन्धर्व-मनुस्सपूइए
चइत्तु देह मलपक्कपुव्वय ।
सिद्धे वा हवइ सासए
देवे वा अप्परए महिड्डिए ॥
—त्ति वेमि ।

स देवगन्धर्वमनुष्यपूजितः
त्यक्त्वा देह मलपङ्कपूर्वकम् ।
सिद्धो वा भवति शाश्वत
देवो वाल्परजा महर्द्धिकः ॥
—इति ब्रवीमि

४८—देव, गन्धर्व और मनुष्यों में पूजित
वह विनीत शिष्य मल और पक् से बने हुए
शरीर को त्यागकर या तो शाश्वत सिद्ध होता
है या अल्पकर्म वाला महर्द्धिक देव होता है—
ऐसा मैं कहता हूँ ।



१. सपन्ता (वृ० पा०) ।

२. मणोरुई (वृ० पा०) ।

३. मणोरुई चिट्ठइ कम्म-सपय (वृ० पा०) ; मणिच्छियं संघयमुत्तम गथा (नागार्जुनीयाः) ।

वीर्यं अज्झयणं :
परीसह-पविभत्ती

द्वितीय अध्ययन :
परीषह-प्रविभक्तिः

आस्तुत्र

उत्तराध्ययन के इस दूसरे अध्ययन में मुनि के परीषहों का निरूपण है। कर्म-प्रवाद पूर्व के १७ वें प्राभृत में परीषहों का नय और उदाहरण-सहित निरूपण है। वही यहाँ उद्धृत किया गया है, यह निर्युक्तिकार का अभिमत है।^१ दशवैकालिक के सभी अध्ययन जिस प्रकार पूर्वो से उद्धृत है उसी प्रकार उत्तराध्ययन का यह अध्ययन भी उद्धृत है।

जो सहा जाता है उसे कहते हैं परीषह। सहने के दो प्रयोजन हैं (१) मार्गाच्यवन और (२) निर्जरा। स्वीकृत मार्ग से च्युत न होने के लिये और निर्जरा—कर्मों को क्षीण करने के लिये कुछ महा जाता है।^२

भगवान् महावीर की धर्म-प्ररूपणा के दो मुख्य अंग हैं—अहिंसा और कष्ट-सहिष्णुता।^३ कष्ट सहने का अर्थ शरीर, इन्द्रिय और मन को पीड़ित करना नहीं, किन्तु अहिंसा आदि धर्मों की आराधना को सुस्थिर बनाये रखना है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है —

सुहेण भाविद णाण, दुहे जादे विणस्सदि।

तम्हा जहावल जोई, अप्पा दुक्खेहि भावए ॥^४

अर्थात् सुख से भावित ज्ञान दुःख उत्पन्न होने पर नष्ट हो जाता है, इसलिये योगी को यथाशक्ति अपने-आपको दुःख से भावित करना चाहिये।

इसका अर्थ काया को वलेश देना नहीं है। यद्यपि एक सीमित अर्थ में काय-वलेश भी तप रूप में स्वीकृत है किन्तु परीषह और काय-वलेश एक नहीं है। काय-वलेश आसन करने, ग्रीष्म-ऋतु में आतापना लेने, वर्षा-ऋतु में तरुमूल में निवास करने, शीत-ऋतु में अपावृत स्थान में सोने और नाना प्रकार की प्रतिमाओं को स्वीकार करने, न स्तुजकाने, शरीर की विमूषा न करने के अर्थ में स्वीकृत है।^५

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ६६ कम्मप्पवायपुण्ये सत्तरसे पाहुडमि ज छत्त।

सणय सोदाहरण त चेव इहपि णायव्व ॥

२—तत्त्वार्थसूत्र, ६।८ मार्गाच्यवननिर्जराय परिपोढव्या परीषहा।

३—सूत्ररुतांग १।२।१।१४ धुणिया कुलिय व लेवव किसण देहमणासणा इह।

अविहिंसामेव पव्वण अणुधम्मो मुणिणा पवेद्वओ ॥

वृत्ति—विविधा हिंसा विहिंसा न विहिंसा अविहिंसा तामेव प्रकर्षेण व्रजेत्, अहिंसाप्रधानो भवेदित्यर्थ अनुगतो—मोक्ष प्रत्यनुकूलो धर्मोऽनुधर्म असावहिंमालक्षण परीषहोपसर्गसहनलक्षणञ्च धर्मो 'मुनिना' सर्वज्ञेन 'प्रवेदित' कथित इति।

४—अष्टपाहुड, मोक्ष प्राभृत ६२।

५—(क) उत्तराध्ययन ३०।२७

ठाणा वीरासणाईया जीवस्स उ छावावहा।

उग्गा जहा धरिज्जन्ति कायकिलेस तमाहिय ॥

(ख) औपपातिक, सूत्र १६ से किं त कायकिलेसे १,२ अणेगविहे पणते, तजहा—ठाणाठित्तिण्ठाणाइण् उक्कुडुआसणिण्, पडिमठाई वीरासणिण् नेसज्जिण् ददायण् लउडसाई आयावण् अवाउडण् अरुहुअण् अणिट्ठुहण् मव्वगायपरिकम्मविभूतविप्पमुक्के से त कायकिलेसे।

उक्त प्रकारों में से कोई कष्ट जो स्वयं इच्छानुसार भेका जाता है, वह काय-क्लेश है और जो इच्छा के बिना प्राप्त होता है, वह परीषह है ।^१

काय-क्लेश के अभ्यास से शारीरिक दुःख को सहने की क्षमता, शारीरिक सुखों के प्रति अनाकांक्षा और क्वचित् जिन-शासन की प्रभावना भी होती है ।^२ परीषह सहन करने से स्वीकृत अहिंसा आदि धर्मों की सुरक्षा होती है ।

इस अध्ययन के अनुसार परीषह बाईस है —

१—क्षुधा	१२—आक्रोश
२—पिपासा	१३—वध
३—शीत	१४—याचना
४—उष्ण	१५—अलाम
५—दंश-मशक	१६—रोग
६—अचेत	१७—तृण-स्पर्श
७—अरति	१८—जल
८—स्त्री	१९—सत्कार-पुरस्कार
९—चर्या	२०—प्रज्ञा
१०—निषद्या	२१—अज्ञान
११—शय्या	२२—दर्शन

तत्त्वार्थसूत्र में भी इनकी संख्या बाईस ही है ।^३

इनमें दर्शन-परीषह और प्रज्ञा-परीषह—ये दो मार्ग से अच्यवन् में सहायक होते हैं और शेष बीस परीषह निर्जरा के लिये होते हैं ।^४

समवायाग (समवाय २२) में अन्तिम तीन परीषहों का क्रम उत्तराध्ययन से निम्न है :—

उत्तराध्ययन	समवायाग
१—प्रज्ञा	१—ज्ञान
२—अज्ञान	२—दर्शन
३—दर्शन	३—प्रज्ञा

अभयदेवसूरि ने समवायाग की वृत्ति में अज्ञान-परीषह का क्वचित् श्रुति के रूप में उल्लेख किया है ।

तत्त्वार्थसूत्र (६।६) में 'अचेत' के स्थान पर 'नाग्न्य'-परीषह का उल्लेख है और दर्शन-परीषह के स्थान पर अदर्शन-परीषह का । प्रवचनसारोद्धार (गाथा ६८६) में दर्शन-परीषह के स्थान में सम्यक्त्व-परीषह माना गया है । दर्शन और सम्यक्त्व यह केवल शब्द-भेद है ।

१—तत्त्वार्थवृत्ति (श्रुतसागरीय), पृष्ठ ३०१, सू० ६।१७ की वृत्ति यदृच्छया समागत परीषह, स्वयमेव कृत कायक्लेश ।

२—वही . शरीरदुःखसहनार्थ शरीरसुखानभिवाञ्छार्थ जिनधर्मप्रभावनाद्यर्थश्च ।

३—तत्त्वार्थसूत्र, ६।६ क्षुत्पिपासाशीतोष्णदशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनाऽलाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कार-प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ।

४—प्रवचनसारोद्धार, पत्र १६२, गा० ६८५ की वृत्ति : तत्र मार्गाच्यवनार्थ दर्शनपरीषहः प्रज्ञापरीषहश्च, शेषा विंशतिर्निर्जरार्थम् ।

अचेत और नाग्न्य मे थोडा अर्थ-भेद भी है। अचेत का अर्थ है—(१) नग्नता और (२) फटे हुए या अल्प-मूल्य वाले वस्त्र^१।

तत्त्वार्थसूत्र श्रुतसागरीय वृत्ति में प्रज्ञा-परीषह और अदर्शन-परीषह की व्याख्या मूल उत्तराध्ययन के प्रज्ञा और दर्शन-परीषह से भिन्न है। उत्तराध्ययन (२।४३) में जो अज्ञान-परीषह की व्याख्या है, वह श्रुतसागरीय में अदर्शन की व्याख्या है।

तत्त्वार्थवृत्ति (श्रुतसागरीय) पृ० २९५

प्रज्ञा-परीषह —

यो मुनिस्तर्कव्याकरणच्छन्दोलकारसारसाहित्याध्यात्म-शास्त्रादिनिधानागपूर्वप्रकीर्णकनिपुणोऽपि सन् ज्ञानमदं न करोति, ममाग्रतः प्रवादिनः सिंहशब्दश्रवणात् वनगजा इव पलायन्ते xxx मद नाघत्ते स मुनिः प्रज्ञापरीषहविजयी भवति ।

अर्थ जो मुनि तर्क, व्याकरण, साहित्य, छन्द, अलंकार, अध्यात्मशास्त्र आदि विद्याओं में निपुण होने पर भी ज्ञान का मद नहीं करता है तथा जो इस बात का घमण्ड नहीं करता है कि प्रवादी मेरे सामने से उसी प्रकार भाग जाते हैं जिस प्रकार सिंह के शब्द को सुनकर हाथी भाग जाते हैं, उस मुनि के प्रज्ञा-परीषह जय होता है।

अदर्शन-परीषह—

यो मुनि xxx चिरदीक्षितोऽपि सन्नेव न चिन्तयति अद्यापि ममातिशयवद्वोधनं न सज्जायते उत्कृष्टश्रुतव्रतादि-विधायिना किल प्रातिहार्यविशेषाः प्रादुर्भवन्ति, इति श्रुति-मिथ्या वर्तते दीक्षेय निष्फला व्रतधारणं च फल्गु एव वर्तते इति सम्प्रदर्शनविशुद्धिसन्निधानादेव न मनसि करोति तस्य मुनेरदर्शनपरीषहजयो भवतीत्यवसानोद्यम् ।

अर्थ —चिर दीक्षित होने पर भी अवधिज्ञान या ऋद्धि आदि की प्राप्ति न होने पर जो मुनि विचार नहीं करता है कि यह दीक्षा निष्फल है, व्रतों का धारण करना व्यर्थ है इत्यादि, उस मुनि के अदर्शन-परीषह जय होता है।

उत्तराध्ययन अ० २

प्रज्ञा-परीषह :—

से नून मए पुन्व, कम्माऽणाणफला कडा ।
जेणाह नाभिजाणामि, पुट्ठो केणइ कण्हई ॥४०॥
अह पच्छा उड्ज्जति, कम्माऽणाणफलाकडा ।
एवमासासि अप्पाण, णच्चा कम्मविवागयं ॥४१॥

अर्थ —निश्चय ही मैंने पूर्व काल में अज्ञान-रूप फल देने वाले कर्म किये हैं। उन्हीं के कारण मैं किसी से कुछ पूछे जाने पर भी कुछ नहीं जानता—उत्तर देना नहीं जानता। पहले किये हुए अज्ञान-रूप फल देने वाले कर्म पकने के पश्चात् उदय में आते हैं—इस प्रकार कर्म के विपाक को जानकर आत्मा को आश्वासन दे।

दर्शन-परीषह —

णत्थि णूण परे लोए, इड्ढी वावि तवस्सिणो ।
अदुवा वच्चिओमिस्सि, इइ भिक्खू ण चित्तए ॥४४॥
अभू जिणा अत्थि जिणा, अदुवावि भविस्सइ ।
मुस ते एवमाहसु, इति भिक्खू न चित्तए ॥४५॥

अर्थ —निश्चय ही परलोक नहीं है, तपस्वी की ऋद्धि भी नहीं है, अथवा मैं ठगा गया हूँ—भिक्षु ऐसा चिन्तन न करे। जिन हूये थे, जिन है और जिन होंगे ऐसा जो कहते हैं वे झूठ बोलते हैं—भिक्षु ऐसा चिन्तन न करे।

१—प्रवचनसारोद्धार पत्र १६३, गा० ६५५ की वृत्ति चेलस्य अभावो अचेत जिनकल्पिकादीनां अन्येषां तु यतीनां भिन्न स्फुटित अल्पमूल्य च चेलमप्यचेलमुच्यते।

अज्ञान-परीषह —

निरद्वगमि विरओ, मेहुणाओ सुसवुडो ।

जो सक्ख नाभिजाणामि, धम्म कल्लण पावग ॥४२॥

तवोवहाणमायाय, पडिमं पडिवज्जओ ।

एवंपि मे विहरओ, छउमं ण णियद्वृत्ति ॥४३॥

अर्थ —मै मैथुन से निवृत्त हुआ, इन्द्रिय और मन का मैंने सवरण किया—यह सब निरर्थक है । क्योंकि धर्म कल्याणकारी है या पापकारी—यह मैं साक्षात् नहीं जानता ।

तपस्या और उपाधान की स्वीकार करता हूँ, प्रतिमा का पालन करता हूँ—इस प्रकार विशेष चर्या से विहरण करने पर भी मेरा छद्म (ज्ञानावरणादि कर्म) निवर्तित नहीं हो रहा है—ऐसा चिन्तन न करे ।

मूलाचार मे विचिकित्सा के दो भेद किये हैं—(१) द्रव्य-विचिकित्सा और (२) भाव-विचिकित्सा । भाव-विचिकित्सा के अन्तर्गत बाईस परीषहों का उल्लेख हुआ है । उनमें अरति के स्थान पर अरति-रति, याचना के स्थान पर अयाचना और दर्शन के स्थान पर अदर्शन-परीषह है ।^१

इन बाईस परीषहों के स्वरूप के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कई परीषह सामान्य व्यक्तियों के लिये नहीं थे । वे जिनकल्प-प्रतिमा को स्वीकार करने वाले विशेष सहनन और धृति-युक्त मुनियों के लिये थे । शान्त्याचार्य ने भी इस ओर सकेत किया है । उनके अनुसार अचेल-परीषह (जहाँ हम अचेल का अर्थ नग्नता करते हैं) जिनकल्पी मुनियों के लिये तथा ऐसे स्थविरकल्पी मुनियों के लिये ग्राह्य है, जिन्हे वस्त्र मिलना अत्यन्त दुर्लभ है, जिन के पास वस्त्रों का अभाव है, जिनके वस्त्र जीण हो गये हैं अथवा जो वर्षा आदि के बिना वस्त्र-धारण नहीं कर सकते^२ और तृणस्पर्श-परीषह केवल जिनकल्पी मुनियों के लिये ग्राह्य है^३ ।

प्रवचनसारोद्धार की टीका मे सर्वथा नग्न रहना तथा धिकित्सा न कराना, केवल जिनकल्पी मुनि के लिये ही बतलाया है^४ ।

१—मूलाचार, ५।७२, ७३ छुहत्तगहा सीदुगहा दसमसयमचेलभावो य ।

अरदि रदि इत्थि चरिया णिसीधिया सेज्ज अक्कोसो ॥

वधजायण अलाहो रोग तणप्फास जल्लसक्कारो ।

तह चेव पणपरिसह अण्णाणमदसण खमण ॥

२—बृहद्वृत्ति, पत्र ६२, ६३ जिनकल्पप्रतिपत्तौ स्थविरकल्पेऽपि दुर्लभवस्त्रादौ वा सर्वथा चेलाभावेन सति वा चेले विना वर्षादिनिमित्तम-प्रावरणेन जीर्णादिवस्त्रतया वा 'अचेलक' इति अवस्त्रोऽपि भवति ।

३—वही, पत्र १२२ जिनकल्पिकापेक्ष चैतत्, स्थविरकल्पिकाश्च सापेक्षसंयमत्वात्सेवन्तेऽपीति ।

४—(क) प्रवचनसारोद्धार, पत्र १६३ : , गा० ६८५ की वृत्ति (उद्धरण के लिये देखिये पृष्ठ २१ पाद-टि० १) ।

(ख) वही, पत्र १६४ गा० ६८६ की वृत्ति ज्वरकासश्वासादिके सत्यपि न गच्छन्निर्गता जिनकल्पिकाद्यग्निचिकित्साविधापने प्रवर्तन्ते ।

व्याख्याकारों ने सभी परीषहों के साथ कथाएँ जोड़कर उन्हें सुबोध बनाया है। कथाओं का सकेत निर्युक्ति में भी प्राप्त है।

परीषह-उत्पत्ति के कारण इस प्रकार बताये गये हैं^१ :—

परीषह	उत्पत्ति के कारण कर्म	परीषह	उत्पत्ति के कारण कर्म
१—प्रज्ञा	ज्ञानावरणीय	१३—क्षुधा	वेदनीय
२—अज्ञान	”	१३—पिपासा	”
३—अकाम	अन्तराय	१४—शीत	”
४—अरति	चारित्र-मोहनीय	१५—उष्ण	”
५—अचेल	”	१६—दश-मशक	”
६—स्त्री	”	१७—चर्या	”
७—निषद्या	”	१८—शय्या	”
८—याचना	”	१९—वध	”
९—आक्रोश	”	२०—रोग	”
१०—सत्कार-पुरस्कार	”	२१—तृण-स्पर्श	”
११—दर्शन	दर्शन-मोहनीय	२२—जल	”

ये सभी परीषह नौवें गुणस्थान तक हो सकते हैं। दशवें गुणस्थान में चारित्र-मोहनीय कर्म के उदय में होने वाले अरति आदि सात परीषह तथा दर्शन-मोहनीय से उत्पन्न दर्शन-परीषह को छोड़कर शेष चौदह परीषह होते हैं। छद्मस्थ वीतराग अर्थात् ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि में भी ये ही चौदह परीषह हो सकते हैं। केवली में मात्र वेदनीय-कर्म के उदय में होने वाले ग्यारह परीषह पाये जाते हैं^२।

तत्त्वार्थसूत्र में एक साथ उन्नीस परीषह माने हैं। जैसे—शीत और उष्ण में से कोई एक होता है। शय्या-परीषह के होने पर निषद्या और चर्या-परीषह नहीं होते। निषद्या-परीषह होने पर शय्या और चर्या-परीषह नहीं होते।^३

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ७३-७८.

णाणावरणे वेए मोहमिय अन्तराहए चेव । एएसु बावीस परीसहा हुति णायव्वा ॥
पन्नान्नाणपरिसहा णाणावरणमि हुति दुन्नेए । इक्को य अतराए अलाहपरीसहो होइ ॥
अरई अचेल इत्थी निसीहिया जायणा य अक्कोसे । मक्कारपुरक्कारे चरित्तमोहमि मत्तेए ॥
अरईह दुगुळाए पुवेय भयस्स चेव माणस्स । कोहस्स य लोहस्स य उदएण परीसहा सत्त ॥
दसणमोहे दसणपरीसहो नियमसो भवे इक्को । सेमा परीसहा खलु इक्कारम वेयणीज्जमि ॥
पवेव आणुपुब्बी चरिया सिज्जा वहे व (य) रोगे य ॥ तणफामजल्लमेव य इक्कारस वेयणीज्जमि ॥

२—वही, गाथा ७८।

३—(क) तत्त्वार्थसूत्र, ६।१७ एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नेकान्नविशति ।

(ख) तत्त्वार्थवृत्ति (श्रुतसागरीय), पृ०२६६ शीतोष्णपरीषहयोर्मध्ये अन्यतरो भवति शीतमुष्णो वा । शय्यापरीषहे सति निषद्याचर्यं न भवत निषद्यापरीषहे शय्याचर्यं द्वौ न भवत, चान्नापरीषहे शय्यानिषद्ये द्वौ न भवत । इति त्रयाणामप्यमवे एकान्तविशतिरेकस्मिन् युगपद् भवति ।

बौद्ध-भिक्षु काय-वलेडा को महत्त्व नहीं देते किन्तु परीषह-सहन की स्थिति को वे भी अस्वीकार नहीं करते । स्वयं महात्मा बुद्ध ने कहा है—“मुनि शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, वात, आतप, दंश और सरीसृप का सामना कर खग-विषाण की तरह अकेला विहरण करे ।”^१

आचारांग निर्युक्ति में परीषह के दो विभाग हैं^२ :—

१—शीत—मन्द परिणाम वाले । जैसे—स्त्री-परीषह और सत्कार-परीषह । ये दो अनुकूल परीषह हैं ।

२—उष्ण—तीव्र परिणाम वाले । शेष बीस । ये प्रतिकूल परीषह हैं ।

प्रस्तुत अध्ययन में परीषहों के विवेचन रूप में मुनि-चर्या का बहुत ही महत्त्वपूर्ण निरूपण हुआ है ।

१—सुत्तनिपात, उरगवग्ग, ३।१८ सीतं च उग्गहं च खुदं पिपासं, वातातपे ढससिरिसिपे च ।

सम्मानिपेतानि अभिसभवित्वा, एको चरे खगविसाणकप्पो ॥

२—आचारांग निर्युक्ति, गाथा २०२, २०३ : इत्थी सक्कारं परिसहा यं, दो भाव-सीयला एए ।

सेसा बीस उग्गहा, परीसहा होंति णायव्वा ॥

जे तिक्कप्परिणामा, परीसहा ते भवन्ति उग्गहाठ ।

जे मन्दप्परिणामा, परीसहा ते भवे सीया ॥

बीयं अज्झयणं : द्वितीय अध्ययन परीसह-पविभत्ती : परीषह-प्रविभक्तिः

मूल

सू० १—सुय मे, आउस । तेण
भगवया एवमक्खाय—

इह खलु बावीस परीसहा
समणेण भगवया महावीरेण कासवेण
पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा,
जिच्चा, अभिभूय, भिक्खायरियाए^१
परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा^२ ।

संस्कृत छाया

श्रुत मया आयुष्मन् । तेन भगवता
एवमाख्यातम्—

इह खलु द्वाविंशतिः परीषहाः
श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन
प्रवेदिताः, यान् भिक्षु श्रुत्वा, ज्ञात्वा,
जित्वा, अभिभूय, भिक्षाचर्यया परिव्रजन्
स्पृष्टो नो विहन्येत ।

हिन्दी अनुवाद

सू० १—आयुष्मन् । मैंने सुना है भगवान्
ने इस प्रकार कहा—निर्ग्रन्थ-प्रवचन में बाईस
परीषह होते हैं, जो कश्यप-गोत्रीय श्रमण
भगवान् महावीर के द्वारा प्रवेदित हैं, जिन्हें
सुनकर, जानकर, अभ्यास के द्वारा परिचितकर,
पराजितकर, भिक्षा-चर्या के लिए पर्यटन करता
हुआ मुनि उनसे स्पृष्ट होने पर विचलित नहीं
होता ।

सू० २—कयरे ते खलु बावीस
परीसहा समणेण भगवया महावीरेण
कासवेण पवेइया ? जे भिक्खू सोच्चा,
नच्चा, जिच्चा, अभिभूय, भिक्खा-
यरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो
विहन्नेज्जा ।

कतरे ते खलु द्वाविंशतिः परीषहाः
श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन
प्रवेदिता ? यान् भिक्षु श्रुत्वा, ज्ञात्वा,
जित्वा, अभिभूय, भिक्षाचर्यया परिव्रजन्
स्पृष्टो नो विहन्येत ।

सू० २—वे बाईस परीषह कौन से हैं जो
कश्यप-गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर के
द्वारा प्रवेदित हैं ? जिन्हें सुनकर, जानकर,
अभ्यास के द्वारा परिचितकर, पराजितकर,
भिक्षा-चर्या के लिए पर्यटन करता हुआ मुनि
उनसे स्पृष्ट होने पर विचलित नहीं होता ।

सू० ३—इमे ते खलु बावीस
परीसहा समणेण भगवया महावीरेण
कासवेण पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा,
नच्चा, जिच्चा, अभिभूय, भिक्खा-
यरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो
विहन्नेज्जा, त जहा—

इमे ते खलु द्वाविंशतिः परीषहाः
श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन
प्रवेदिताः, यान् भिक्षु श्रुत्वा, ज्ञात्वा,
जित्वा, अभिभूय, भिक्षाचर्यया परिव्रजन्
स्पृष्टो नो विहन्येत । तद्यथा—

सू० ३—वे बाईस परीषह ये हैं, जो
कश्यप-गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा
प्रवेदित हैं, जिन्हें सुनकर, जानकर, अभ्यास
के द्वारा परिचितकर, पराजितकर, भिक्षाचर्या
के लिए पर्यटन करता हुआ मुनि उनसे स्पृष्ट
होने पर विचलित नहीं होता । जैसे—

१ भिक्खुचरियाए (वृ०), भिक्खायरियाए (वृ०पा०) ।

२ विनिहन्नेज्जा (वृ०) ।

१. दिगिच्छा-परीसहे, २ पिवासा-
परीसहे, ३. सीय-परीसहे, ४ उसिण-
परीसहे, ५ दस-मसय-परीसहे,
६. अचेल-परीसहे, ७ अरइ-परीसहे,
८ इत्थी-परीसहे, ९ चरिया-
परीसहे, १० निसीहिया-परीसहे,
११. सेज्जा-परीसहे, १२ अक्कोस^१-
परीसहे, १३. वह-परीसहे,
१४ जायणा-परीसहे, १५ अलाभ-
परीसहे, १६ रोग-परीसहे,
१७, तणफास-परीसहे, १८. जल्ल-
परीसहे, १९ सक्कारपुरक्कार-परीसहे,
२०. पन्ना-परीसहे, २१ अन्नाण-
परीसहे, २२ दसण-परीसहे ।

१ क्षुधा-परीषहः, २. पिपासा-
परीषहः, ३ शीत-परीषहः, ४ उष्ण-
परीषहः, ५. दश-मशक-परीषहः,
६ अचेल-परीषहः, ७ अरति-परीषहः,
८ स्त्री-परीषहः, ९ चर्या-परीषहः,
१०. निषीधिका-परीषहः, ११. शय्या-
परीषहः, १२ आक्रोश-परीषहः,
१३. वध-परीषहः, १४ याचना-परीषहः,
१५ अलाभ-परीषहः, १६. रोग-परीषहः,
१७ तृण-स्पर्श-परीषहः, १८ 'जल्ल'-
परीषहः, १९ सत्कार-पुरस्कार-परीषहः,
२० प्रज्ञा-परीषहः, २१ अज्ञान-परीषहः,
२२ दर्शन-परीषहः ।

१ क्षुधा-परीषह, २ पिपासा-परीषह,
३ शीत-परीषह, ४ उष्ण-परीषह,
५ दश-मशक-परीषह, ६ अचेल परीषह,
७ अरति-परीषह, ८ स्त्री-परीषह,
९ चर्या-परीषह, १०. निषद्या परीषह,
११ शय्या-परीषह, १२ आक्रोश-परीषह,
१३ वध-परीषह, १४ याचना-परीषह,
१५ अलाभ-परीषह, १६ रोग-परीषह,
१७ तृण-स्पर्श-परीषह, १८ जल्ल-परीषह,
१९. सत्कार-पुरस्कार- २० प्रज्ञा परीषह,
परीषह,
२१ अज्ञान-परीषह, २२ दर्शन-परीषह ।

१—परीसहाण पविभत्ती
कासवेणं पवेइया ।
त भे उदाहरिस्सामि
आणुपुव्वि सुणेह मे ॥

परीषहाणा प्रविभक्तिः
काश्यपेन प्रवेदिता ।
तां भवतामुदाहरिष्यामि
आनुपूर्व्या शृणुत मे ॥

१—परीषहो का जो विभाग कश्यप-
गोत्रीय भगवान् महावीर के द्वारा प्रवेदित या
प्ररूपित है, उसे मैं क्रमवार कहता हूँ । तू
मुझे सुन ।

(१) दिगिच्छा-परीसहे
२—दिगिच्छा-परिण^२ देहे
तवस्सी भिक्षु थामव ।
न छिन्दे न छिन्दावए
न पए न पयावए ॥

(१) क्षुधा-परीषह
क्षुधापरिगते देहे
तपस्वी भिक्षु स्थामवान् ।
न छिन्द्यात् न छेदयेत्
न पचेत् न पाचयेत्

(१) क्षुधा-परीषह
२—देह में क्षुधा व्याप्त होने पर तपस्वी
और प्राणवान् भिक्षु फल आदि का छेदन न
करे, न कराए । उन्हें न पकाए और न पकवाए ।

३—काली-पव्वग-सकासे
किसे धमणि-सतए ।
मायन्ते असण-पाणस्स
अदीण-मणसो चरे ॥

काली-पर्वाङ्ग-सङ्काशः
कृशो घमनि-सन्ततः ।
मात्रज्ञोऽशनपानयोः
अदीनमनाश्चरेत् ॥

३—शरीर के अंग भूख से सूखकर काक-
जघा नामक तृण जैसे दुर्बल हो जायें, शरीर
कृश हो जाय, घमनियों का ढाँचा भर रह
जाय तो भी आहार-पानी की मर्यादा को
जानने वाला साधु अदीनभाव से विहरण
करे ।

१. उक्कोस (अ, ऋ०) ।

२ ० परियावेण (वृ०), ० परितापेण (चू०), ० परिगते (वृ० पा०) ।

(२) पिपासा-परीषहे

४—तओ पुट्टो पिपासाए
दोगुछी लज्ज-सजए^१ ।
सीओदग न सेविज्जा
वियडस्सेसण चरे ॥

५—छिन्नावाएसु पन्थेसु
आउरे सुपिवासिए^२ ।
परिसुक्कमुहेऽदीणे^३
'त तितिक्खे परीसह'^४ ॥

(३) सीय-परीसहे

६—चरन्त विरय लूह
सीय फुसइ एगया ।
'नाइवेल मुणी गच्छे
सोच्चाण जिणसासण'^५ ॥

७—न मे निवारण अत्थि
छवित्ताण न विज्जई ।
अह तु अग्नि सेवामि
इइ भिक्खू न चिन्तए ॥

(४) उसिण-परीसहे

८—उसिण-परियावेणं
परिदाहेण तज्जिए ।
धिसु वा परियावेण
साय नो परिदेवए ॥

(२) पिपासा-परीषहे

ततः स्पृष्टः पिपासया
जुगुप्सी लज्जासयतः ।
शीतोदकं न सेवेत्
विकृतस्यैषणाय चरेत् ॥

छिन्नापातेषु पथिषु
आतुरः सुपिपासितः ।
परिशुष्कमुखोऽदीनः
तं तितिक्षेत परीषहम् ॥

(३) शीत-परीषह

चरन्त विरत रुक्षं
शीतं स्पृशति एकदा ।
नातिवेल मुनिर्गच्छेत्
श्रुत्वा जिनशासनम् ॥

न मे निवारणमस्ति
छवित्राण न विद्यते ।
अह तु अग्नि सेवे
इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥

(४) उष्ण-परीषह

उष्ण-परितापेन
परिदाहेन तर्जितः ।
ग्रीष्मे वा परितापेन
सात नो परिदेवेत् ॥

(२) पिपासा-परीषह

४—असयम से घृणा करने वाला,
लज्जावान् सयमी साधु प्यास में पीड़ित होने
पर सचित्त पानी का सेवन न करे, किन्तु
प्रासुक जल की एपणा करे ।

५—निर्जन मार्ग में जाते समय प्यास से
अत्यंत आकुल हो जाने पर, मुँह सुख जाने
पर भी साधु अदीनभाव से प्यास के परीषह
को सहन करे ।

(३) शीत परीषह

६—विचरते हुए विरत और रुक्ष शरीर
वाले साधु को शीत-ऋतु में सर्दी सताती है ।
फिर भी वह जिन-शासन को सुनकर (आगम
के उपदेश को ध्यान में रखकर) स्वाध्याय
आदि की वेला (अथवा मर्यादा) का अति-
क्रमण न करे ।

७—शीत से प्रताडित होने पर मुनि
ऐसा न सोचे—मेरे पास शीत-निवारक घर
आदि नहीं है और छवित्राण (वस्त्र, कम्बल
आदि) भी नहीं है, इसलिए मैं अग्नि का
सेवन करूँ ।

(४) उष्ण-परीषह

८—गरम धूलि आदि के परिताप, स्वेद,
मैल या प्यास के दाह अथवा ग्रीष्म-कालीन
सूर्य के परिताप से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी
मुनि सुख के लिए विलाप न करे—आकुल-
व्याकुल न बने ।

१. लद्धसजमे (वृ० चू०), लज्जासजए, लज्जसजमे (वृ० पा०), लज्जसजते (चू० पा०) ।

२. छपिवासिए (अ), छपिवासए (ऋ०) ।

३. ० मुहदीणे (अ, छ०), ० मुहोदीणे (ऋ०) ।

४ सच्चतो य परिच्चए (वृ० पा०) ।

५. नाइवेल विहन्निज्जा, पावदिट्ठी विहन्नइ (चू०, वृ०), नाइवेल मुणी गच्छे, सोच्चाणं जिणसासण (चू० पा०, वृ० पा०) ।

९—उण्हाहित्ते मेहावी
सिणाणं 'नो वि पत्थए'^१ ।
गाय नो परिसिचेज्जा^२
न वीएज्जा य अप्पय ॥

(५) दस-मसय परीसहे

१०—पुट्ठो य द-समसएहिं
समरेव^३ महामुणी ।
नागो सगाम-सीसे वा
सूरो अभिहणे परं ॥

११—न संतसे न वारेज्जा
मण पि न पओसए ।
उवेहे^४ न हणे पाणे
भुजन्ते मस-सोणियं ॥

(६) अचेल-परीसहे

१२—परिजुण्णेहि वत्थेहिं
होक्खामि त्ति अचेलए ।
अदुवा सचेलए होक्ख
इइ भिक्खू न चिन्तए ॥

१३—'एगयाऽचेलए होइ'^५
सचेले यावि एगया ।
एय धम्महिय नच्चा
नाणी नो परिदेवए ॥

उण्णाभित्तो मेघावी
स्नानं नापि प्रार्थयेत् ।
गात्रं नो परिषिञ्चेत्
न बीजयेच्चात्मकम् ॥

(५) दश-मशक-परीषह

स्पृष्टश्च दंश-मशकैः
सम एव महामुनिः ।
नागः सगाम-शीर्षे इव
शूरोऽभिहन्यात् परम् ॥

न सत्रसेत् न वारयेत्
मनो पि न प्रदूषयेत् ।
उपेक्षेत न हन्यात् प्राणान्
भुञ्जानान्मासशोणितम् ॥

(६) अचेल परीषह

“परिजीर्णैर्वस्त्रैः
भविष्यामीत्यचेलकः ।
अथवा सचेलको भविष्यामि”
इति भिक्षुन चिन्तयेत् ॥

एकदाऽचेलको भवति
सचेलश्चापि एकदा ।
एतद् धर्म-हित ज्ञात्वा
ज्ञानी नो परिदेवेत् ॥

९—गर्मी से अभित्त होने पर भी
मेघावी मुनि स्नान की इच्छा न करे । शरीर
को गीला न करे । पखे से शरीर पर हवा
न ले ।

(५) दश-मशक-परीषह

१०—डॉस और मच्छरो का उपद्रव होने
पर भी महामुनि समभाव में रहे, क्रोध आदि
का वंसे ही दमन करे जैसे युद्ध के अग्रभाग में
रहा हुआ शूर हाथी वाणो को नहीं गिनता
हुआ शत्रुओं का हनन करता है ।

११—भिक्षु उन दश-मशको से सत्रस्त
न हो, उन्हें हटाए नहीं । मन में भी उनके
प्रति द्वेष न लाए । मास और रक्त खाने-
पीने पर भी उनकी उपेक्षा करे, किन्तु उनका
हनन न करे ।

(६) अचेल-परीषह

१२—'वस्त्र फट गए हैं इसलिए मैं अचेल
हो जाऊँगा अथवा वस्त्र मिलने पर फिर मैं
सचेल हो जाऊँगा'—मुनि ऐसा न सोचे ।
(दीन और हर्ष दोनों प्रकार का भाव न लाए ।)

१३—जिनकल्प-दशा में अथवा वस्त्र न
मिलने पर मुनि अचेलक भी होता है और
स्यविरकल्प-दशा में वह सचेलक भी होता
है । अवस्था-भेद के अनुसार इन दोनों (सचे-
लत्व और अचेलत्व) को यति-धर्म के लिए
हितकर जानकर ज्ञानी मुनि वस्त्र न मिलने पर
दीन न बने ।

१ नाभिपत्थए (चू०, वृ०), णोऽवि पत्थए (वृ० पा०) ।

२ परिसेविज्जा (उ, ऋ०) ।

३ सम एव (अ) ।

४ उवेह (उ, चू०, ऋ०) ।

५ एगता अचेलगे भवति (चू०), अचेलए सय होइ (वृ० पा०, चू० पा०) ।

इ-परीसहे

रीयन्त
अकिंचण ।
अणुप्पविसे
परीसहं ॥

(७) अरति-परीषह

ग्रामानुग्रामं रीयमाणं
अनगारमकिञ्चनम् ।
अरतिरनुप्रविशेत्
त तितिक्षेत परीषहम् ॥

(७) अरति-परीषह

१४—एक गाँव से दूसरे गाँव में विहार करते हुए अकिंचन मुनि के चित्त में अरति उत्पन्न हो जाय तो उस परीषह को वह सहन करे ।

द्वयो किञ्चा
आय-रक्खिए ।
निरारम्भे
मुणी चरे ॥

अरित पुण्डितः कृत्वा
विरतः आत्मरक्षितः ।
धर्मारामो निरारम्भः
उपशान्तो मुनिश्चरेत् ॥

१५—हिंसा आदि में विरत रहने वाला, आत्मा की रक्षा करने वाला, धर्म में रमण करने वाला, असत्-प्रवृत्ति से दूर रहने वाला, उपशान्त मुनि अरति को दूर कर विहरण करे ।

१-परीसहे

एस मणुस्साण
गमि इत्थिओ ।
या परिन्नाया
स्स सामण्ण ॥

(८) स्त्री-परीषह

सग एव मनुष्याणा
या लोके स्त्रिय ।
यस्यैता परिज्ञाता
सुकृत तस्य श्रामण्यम् ॥

(८) स्त्री-परीषह

१६—“लोक में जो स्त्रियाँ हैं, वे मनुष्यों के लिए सग हैं—लेप हैं”—जो इस बात को जान लेता है, उसका श्रामण्य सफल है ।

मेहावी
उ इत्थिओ'^३ ।
विणिहन्नेज्जा^४
ए ॥

एवमावाय मेधावी
पक्कभूता स्त्रिय ।
नो ताभिर्विनिहन्त्यात्
चरेदात्मगवेषक ॥

१७—‘स्त्रियाँ ब्रह्मचारी के लिए दल-दल के समान हैं’—यह जानकर मेधावी मुनि उनसे अपने समय-जीवन की घात न होने दे, किन्तु आत्मा की गवेषणा करता हुआ विचरण करे ।

एया-परीसहे

चरे लाढे
परीसहे ।
नगरे वावि
रायहाणि ॥

(९) चर्या-परीषह

एक एव चरेत् लाढ
अभिभूय परीषहान् ।
ग्रामे वा नगरे वापि
निगमे वा राजधान्याम् ॥

(९) चर्या परीषह

१८—सयम के लिए जीवन-निर्वाह करने वाला मुनि परीषहों को जीतकर गाँव में या नगर में, निगम में या राजधानी में अकेला (राग-द्वेष रहित होकर) विचरण करे ।

१, एवमावाय (खू० पा०, बृ०पा०) ।

२, खू० पा०, बृ०पा० ।

३ ।

४, खू० पा० ।

(१५) अलाभ-परीसहे

३०—परेसु घासमेसेज्जा
भोयणे परिणिट्टिए ।
लद्धे पिण्डे अलद्धे वा
नाणुतप्पेज्ज सजए^१ ॥

(१५) अलाभ-परीषह

परेषुघासमेषयेत्
भोजने परिनिष्ठिते ।
लब्धे पिण्डे अलब्धे वा
नानुतप्येत् सयतः ॥

(१५) अलाभ-परीषह

३०—गृहस्थों के घर भोजन तैयार हो जानेपर मुनि उसकी एपणा करे । आहार थोड़ा मिलने या न मिलने पर सयमी मुनि अनुताप न करे ।

३१—अज्जेवाह न लब्भामि
अवि लाभो सुए सिया ।
जो एव पडिसविकखे^२
अलाभो त न तज्जए ॥

अद्य वाह न लभे
अपि लाभ इवःस्यात् ।
य एव प्रतिसवीक्षते
अलाभस्तं न तर्जयति ॥

३१—“आज मुझे भिक्षा नहीं मिली, परन्तु मभव है कल मिल जाय” —जो इस प्रकार सोचता है, उसे अलाभ नहीं सताता ।

(१६) रोग-परीसहे

३२—नच्चा उप्पइय दुक्खं
वेयणाए दुहट्टिए ।
अदीणो थावए पन्न
पुट्ठो तत्थहियासए ॥

(१६) रोग-परीषह

ज्ञात्वोत्पत्तिकं दुःख
वेदनया दुःखार्त्तित ।
अदीन स्थापयेत् प्रज्ञा
स्पृष्टस्तत्राध्यासीत ॥

(१६) रोग-परीषह

३२—रोग को उत्पन्न हुआ जानकर तथा वेदना से पीड़ित होने पर दीन न बने । व्याधि से विचलित होती हुई प्रज्ञा को स्थिर बनाए और प्राप्त दुःख को समभाव से सहन करे ।

३३—तेगिच्छ नाभिनन्देज्जा
सच्चिक्खत्तगवेसए ।
एव^३ खु तस्स सामण्ण
ज न कुज्जा न कारवे ॥

चिकित्सा नाभिनन्देत्
सतिष्ठेद्वात्मगवेषक ।
एतत् खलु तस्य श्रामण्यं
यन्न कुर्यात् न कारयेत् ॥

३३—आत्म-गवेषक मुनि चिकित्सा का अनुमोदन न करे । रोग हो जानेपर समाधि पूर्वक रहे । उसका श्रामण्य यही है कि वह रोग उत्पन्न होने पर भी चिकित्सा न करे, न कराए ।

(१७) तण फास-परीसहे

३४—अचेलगस्स लूहस्स
सजयस्स तवस्सिणो ।
तणेसु सयमाणस्स
हुज्जा गाय-विराहणा ॥

(१७) तृण-स्पर्श-परीषह

अचेलकस्य रूक्षस्य
संयतस्य तपस्विनः ।
तृणेषु शयानस्य
भवेद्गात्र-विराघना ॥

(१७) तृण-स्पर्श-परीषह

३४—अचेलक और रूक्ष शरीर वाले सयत तपस्वी के घास पर सोने से शरीर में चुभन होती है ।

१ पट्टिए (अ) ।

२ पडिसचिक्खे (छ०) ।

३ एय (अ, उ, ऋ०, वृ०), एव (वृ०पा०) ।

३५—आयवस्स निवाएणं
अउला^१ हवड वेयणा ।
एव^२ नच्चा न सेवन्ति
तन्तुज^३ तण-तज्जिया ॥

(१८) जह्ल-परीपह

३६—किलिन्तगाए^४ मेहावी
पकेण व राएण वा ।
धिमु वा परितावेण
साय नो परिदेवए ॥

३७—वेएज्ज^५ निज्जरा-पेही
'आरिय धम्मऽणुत्तर'^६ ।
जाव सरीरभेड त्ति
जह्ल काएण धारए^७ ॥

(१९) मत्कार-पुरस्कार-परीपह

३८—अभिवायणमब्भुट्ठान
सामी कुज्जा निमन्तण ।
जे ताड पडिसेवन्ति
न तेसि पीहए मुणी ॥

३९—अणुक्कसाई अप्पिच्छे
अन्नाएसी अलोलुए ।
'रसेमु' नाणुगिज्जेज्जा^८
'नाणुतप्पेज्ज पन्नव'^{१०} ॥

आतपस्य निपातेन
अतुला भवति वेदना ।
एव ज्ञात्वा न सेवन्ते
तंतुज तृणतजिता ॥

(१८) जह्ल-परीपह

किलिन्त-गात्रो मेधावी
पकेन वा रजसा वा ।
ग्रीष्मे वा परितापेन
सात नो परिदेवेत् ॥

वेदयेन् निर्जरापेक्षी
आर्य धर्ममनुत्तरम् ।
यावत् शरीर-भेद इति
'जह्ल' कायेन धारयेत् ॥

(१९) मत्कार-पुरस्कार-परीपह

अभिवादनमभ्युत्थान
स्वामी कुर्यान् निमन्त्रणम् ।
ये तानि प्रतिसेवन्ते
न तेभ्य स्पृहयेन्मुनि ॥

अणु-कपाय अल्पेच्छ
अज्ञातैषी अलोलुपः ।
रसेषु नानुगृध्येत्
नानुतप्पेत् प्रज्ञावान् ॥

३५ गर्मी पडने मे अतुल वेदना होती
है—यह जानकर भी तृण मे पीड़ित मुनि वस्त्र
का भेवन नहीं करते ।

१८) जह्ल परीपह

३६—मैल, रज या ग्रीष्म के परिताप मे
शरीर के किलिन्त (गोला या पकिल) हो जाने
पर मेधावी मुनि मुख के लिए विलाप न करे ।

३७—निर्जरार्थी मुनि अनुत्तर आर्य-धर्म
(श्रुत-चारित्र्य-धर्म) को पाकर देह-विनाश
पर्यन्त काया पर 'जह्ल' (स्वेद-जनित मैल) को
धारण करे और तज्जनित परीपह को सहन
करे ।

(१९) मत्कार-पुरस्कार परीपह

३८—जो राजा आदि के द्वारा किए गए
अभिवादन, मत्कार अथवा निमन्त्रण का सेवन
करते हैं, उनकी इच्छा न करे—उन्हें धन्य न
माने ।

३९—अल्प कपाय वाला, अल्प इच्छा
वाला, अज्ञात कुलो मे भिक्षा लेने वाला,
अलोलुप भिक्षु, रसो में गूढ़ न हो । प्रज्ञावान्
मुनि हमरो को सम्मानित देख अनुताप न करे ।

१. तिउला (चू०, वृ०), अतुला, त्रिपुला वा (वृ०पा०) ।
२. एय (अ, उ, ऋ०, वृ०), एव (वृ०पा०) ।
३. तन्तय (चू०पा०, वृ०पा०) ।
४. किलिट्ठगाए (चू०पा०, वृ०पा०) ।
५. वेयज्ज (अ), वेहतो, वेहज्ज, वेयतो (वृ०पा०) ।
६. आयरिय धम्ममणुत्तर (स०), आरिय धम्ममणुत्तर (अ) ।
७. उव्वटे (चू०, वृ०पा०), धारए (चू०पा०) ।
८. सरसेसु (वृ०) ।
९. रसिण्णु नातिगिज्जेज्ज (चू०), रसेसु नाणु (वृ०पा०, चू०पा०) ।
१०. न तेसि पीहए मुणी (चू०, वृ०), नाणुतप्पेज्ज पणव (वृ०पा०, चू०पा०) ।

(२०) पन्ना-परीसहे

४०—से नूण मए पुव्व
कम्माणाणफला कडा ।
ओणाह नाभिजाणामि
पुटो केणइ कण्हुई ॥

(२०) प्रज्ञा-परीषह

“अथ नूनं मया पूर्वं
कर्माण्यज्ञानफलानि कृतानि ।
येनाहं नाभिजानामि
पृष्ट. केनचित् क्वचित् ॥

(२०) प्रज्ञा-परीषह

४०—“निश्चय ही मैंने पूर्व काल में
अज्ञानरूप-फल देनेवाले कर्म किए हैं । उन्ही
के कारण मैं किसी के कुछ पूछे जानेपर भी
कुछ नहीं जानता—उत्तर देना नहीं जानता ।

४१—अह पच्छा उड्जजन्ति
कम्माणाणफला कडा ।
एवमस्सासि अप्पाण
नच्चा कम्म-विवागय ॥

“अथपश्चादुदीर्यन्ते
कर्माण्यज्ञानफलानि कृतानि ।
एवमाश्वासयात्मानं
ज्ञात्वा कर्म-विपाककम् ॥

४१—“पहले किए हुए अज्ञानरूप-फल
देनेवाले कर्म पकने के पश्चात् उदय में आते
हैं”—इस प्रकार कर्म के विपाक को जानकर
मुनि आत्मा को आश्वासन दे ।

(२१) अन्नाण-परीसहे

४२—निरट्ठगम्मि विरओ
मेहुणाओ सुसवुडो ।
जो सक्ख^१ नाभिजाणामि
धम्म कल्लाण पावगं ॥

(२१) अज्ञान-परीषह

“निरर्थके विरतः
मैथुनात्सुसंवृतः ।
य साक्षान्नाभिजानामि
धर्मं कल्याणं पापकम् ॥

(२१) अज्ञान-परीषह

४२—“मैं मैथुन से निवृत्त हुआ,
इन्द्रिय और मन का मैंने सवरण किया—यह
सब निरर्थक है । क्योंकि धर्म कल्याणकारी है
या पापकारी—यह मैं साक्षात् नहीं जानता ।

४३—तवोवहाणमादाय
पडिम पडिवज्जओ^२ ।
एव पि विहरओ मे
छउम न नियट्ठुई ॥

“तप-उपधानमादाय
प्रतिमां प्रतिपद्यमानस्य ।
एवमपि विहरतो मे
छद्म न निवर्तते ॥”

४३—“तपस्या और उपधान को स्वीकार
करता हूँ, प्रतिमा का पालन करता हूँ—इस
प्रकार विशेष चर्या से विहरण करनेपर भी मेरा
छद्म (ज्ञानावरणादि कर्म) निवर्तित नहीं हो
रहा है”—ऐसा चिन्तन न करे ।

(२२) दसण-परीसहे

४४—नत्थि नूण परे लोए
इड्ढी वावि तवस्सिणो ।
अदुवा वच्चिओ मि त्ति
इइ भिक्खू न चिन्तए ॥

(२२) दर्शन-परीषह

“नास्ति नूनं परोलोकः
ऋद्धेर्वापि तपस्विनः ।
अथवा वञ्चितोऽस्मि”
इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥

(२२) दर्शन-परीषह

४४—“निश्चय ही परलोक नहीं है,
तपस्वी की ऋद्धि भी नहीं है, अथवा मैं ठगा
गया हूँ”—भिक्षु ऐसा चिन्तन न करे ।

परीषह-प्रविभक्ति

३५

अध्ययन २ : श्लोक ४५-४६

४५—अभू जिणा अत्थि जिणा
अट्ठवावि भविस्सई ।
मुसं ते एवमाहसु
इड भिक्खू न चिन्तए ॥

“अभूवन् जिनाः सन्ति जिनाः
अथवा अपि भविष्यन्ति ।
मृषा ते एवमाहुः”
इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥

४५—“जिन हुए थे, जिन हैं और जिन
होंगे—ऐसा जो कहते हैं वे झूठ बोलते हैं”—
भिक्षु ऐसा चिन्तन न करे ।

४६—एए परीसहा सव्वे
कासवेण पवेडया ।
जे भिक्खू न विहन्तेज्जा
पुट्ठो केणइ कण्हुई ॥
—त्ति वेमि ।

एते परीषहाः सर्वे
काश्यपेन प्रवेदिताः ।
यान् भिक्षुर्न विहन्त्येत
स्पृष्ट केनापि क्वचित् ॥
—इति ब्रवीमि

४६—उन सभी परीषहों का काश्यप-
गोत्रीय भगवान् महावीर ने प्ररूपण किया है ।
इन्हें जानकर, इनमें से किसी के द्वारा कही
भी स्पृष्ट होने पर मुनि इनसे पनाजिन (अभि-
भूत) न हो ।

—ऐसा मैं कहना हूँ ।



तइअं अज्झयण :
चाउरंगिज्जं

तृतीय अध्ययन :
चतुरङ्गीय

आसुख

अनुयोगद्वारा आगम मे नामकरण के दस हेतु बतलाए गए हैं। उनमें एक हेतु 'आदान-पद' है। इस अध्ययन का नाम उसी आदान-पद (प्रथम पद) के कारण 'चतुरङ्गीय' हुआ है।^१ इस अध्ययन मे (१) मनुष्यता, (२) धर्म-श्रुति, (३) श्रद्धा और (४) तप-सयम मे पुरुषार्थ—इन चार अगों को दुर्लभता का प्रतिपादन है। जीवन के ये चार प्रशस्त अग—विभाग हैं। ये अग प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा सहज प्राप्य नहीं है। चारों का एकत्र समाहार विरलों मे पाया जाता है। जिनमे ये चारों नहो पाए जाते वे धर्म की पूर्ण आराधना नहीं कर सकते। एक की भी कमी उनके जीवन मे लगापन ला देती है। चारों अगों की दुर्लभता निम्न विवेचन से प्रकट होगी।

(१) मनुष्यता—

आत्मा से परमात्मा बनने का एकमात्र अवसर मनुष्य-जन्म में प्राप्त होता है। तिर्यञ्च जगत् मे क्वचित् पूर्व सस्कारों से प्रेरित धर्मापराधना होती है, परन्तु वह अधूरी रहती है। देवता धर्म की पूरी आराधना नहीं कर पाते। वे विकास मे ही अधिक समय गँवाते हैं। श्रामण्य के लिए वे योग्य नहीं होते। नैरयिक जीव दुःखो से प्रताड़ित होते हैं अतः उनका धार्मिक-विवेक प्रबुद्ध नहीं होता। मनुष्य का विवेक जागृत होता है। वह अस्ति-सुखी और अस्ति दुःखी भी नहीं होता अतः वह धर्म की पूर्ण आराधना का उपयुक्त अधिकारी है।

(२) धर्म-श्रवण—

धर्म-श्रवण की रुचि प्रत्येक में नहीं होती। जिनका अन्तःकरण धार्मिक भावना से भावित होता है, वे मनुष्य धर्म-श्रवण मे तत्पर रहते हैं। बहुत लोग दुर्लभतम मनुष्यत्व को पाकर भी धर्म सुनने का काम नहीं ले पाते। निर्युक्तिकार ने धर्म-श्रुति के १३ विघ्न बतलाए हैं^२—

१—आलस्य—अनुद्यम।

२—मोह—घरेलू धन्धों की व्यस्तता से उत्पन्न मूर्च्छा अथवा हेयोपादेय के विवेक का अभाव।

३—अवज्ञा या अवर्ण—धर्म-कथक के प्रति अवज्ञा या गर्हा का भाव।

४—स्तम्भ—जाति आदि का अहकार।

५—क्रोध—धर्म-कथक के प्रति अप्रीति।

६—प्रमाद—निद्रा, विकथा आदि।

७—कृपणता—द्रव्य-व्यय का भय।

८—भय।

९—शोक—इष्ट-वियोग से उत्पन्न दुःख।

१—अनुयोगद्वारा, सूत्र १२० से किं त आयाणपणं? चाउरगिज्ज, असखय, अहातत्थिय, अद्दहज्ज, जण्हज्ज, एलहज्ज से त आयाणपणं।

२—उत्तराध्ययन नियुक्ति, गाथा १६० आलसस मोहसवन्ना, थमा कोहा पमाय किविणत्ता।

भय सोगा अन्नाणा, वक्खेव कुऊहला रमणा॥

१०—अज्ञान—मिथ्या धारणा ।

११—व्याक्षेप—कार्य-बहुलता से उत्पन्न व्याकुलता ।

१२—कुतूहल—इन्द्रजाल, खेल, नाटक आदि देखने की आकुलता ।

१३—रमण—क्रीडा-परायणता ।

(३) श्रद्धा—

भगवान् ने कहा—“सद्धा परम-दुल्लहा”—श्रद्धा परम-दुर्लभ है । जीवन-विकास का यह मूल सूत्र है । जिसका दृष्टिकोण मिथ्या होता है वह सद्भाव को सुनकर भी उसमें श्रद्धा नहीं करता और श्रुत या अश्रुत असद्भाव में उसकी श्रद्धा हो जाती है । श्रद्धा मिथ्या-दृष्टि के लिए दुर्लभ है । जिसका दृष्टिकोण सम्यग् होता है वह सद्भाव को सुनकर उसमें श्रद्धा करता है किन्तु अपने अज्ञानवश या गुरु के वियोग से असद्भाव के प्रति भी उसकी श्रद्धा हो जाती है । इस प्रकार सम्यग्-दृष्टि के लिए भी श्रद्धा दुर्लभ है ।

शिष्य ने पूछा—“भते ! क्या सम्यग्-दृष्टि इतनी ऋजु प्रकृति के होते हैं जो गुरु के कथन मात्र से असद्भाव के प्रति श्रद्धा कर लेते हैं ?”

आचार्य ने कहा—“आयुष्मन् ! ऐसा होता है । जमालि ने जब असद्भाव की प्ररूपणा की और अपने शिष्यों को उससे परिचित किया तो कुछ शिष्य उसमें श्रद्धान्वित हो गए ।”^१

इसलिए यह बहुत मार्मिक ढंग से कहा है कि—“श्रद्धा परम दुर्लभ है ।”

(४) तप-सयम मे पुरुषार्थ—

निर्युक्तिकार ने सयम के आठ पर्यायवाची नाम बतलाए हैं—(१) दया, (२) सयम, (३) लज्जा, (४) जुगुप्सा, (५) अछलना, (६) तितिक्षा, (७) अहिंसा और (८) ह्री ।

सयम के प्रति श्रद्धा होने पर भी सभी व्यक्ति उसमें पराक्रम नहीं कर पाते । जानना व श्रद्धा रखना एक वस्तु है और उसको क्रियान्वित करना दूसरी । इसमें सकल्प-बल, धृति, सतोष और अनुदविमता की अत्यन्त आवश्यकता होती है । जिनका चित्त व्याक्षिप्त या व्यामूढ नहीं है, वे ही व्यक्ति सयम में प्रवृत्त हो सकते हैं ।

निर्युक्तिकार ने दुर्लभ अर्गों का कुछ विस्तार किया है । उसके अनुसार मनुष्यता, आर्य क्षेत्र, उत्तम जाति, उत्तम कुरु, सर्वांगपरिपूर्णता, नीरोगता, पूर्णायुष्य, परलोक-प्रवण बुद्धि, धर्म-श्रवण, धर्म-स्वीकरण, श्रद्धा और सयम—ये सब दुर्लभ हैं ।^२ मनुष्य-भव की दुर्लभता के दस दृष्टांत निर्युक्ति में उल्लिखित हैं ।^३

१—बृहद्वृत्ति, पत्र १५२ ननु किमेवविधा अपि केचिदत्यन्तमृजव सम्भवेयु ? ये स्वयमागमानुसारिमतयोऽपि गुरुपदेशतोऽन्यथापि प्रतिपद्येरन्, एवमेतत्, तथाहि—जमालिप्रभृतीनां निह्वानां शिष्यास्तद्वक्तियुक्तया स्वयमागमानुसारिमतयोऽपि गुरुप्रत्ययाद्विपरीतमर्थं प्रतिपन्ना ।

२—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा १५८ दया य सजमे लज्जा, जुगुप्साऽछलणा इव ।

तितिक्षा य अहिंसा य, हिरि एगद्विया पया ॥

३—वही, गाथा १५६ माणुस्स खित्त जाई, कुल रुवारोगा भाउय बुद्धी ।

सवणुगगह सद्धा, सजमो अ लोगमि दुल्लहाइ ॥

४—वही, गाथा १६० चुल्लग पासग धन्ने, जूए रयणे अ छमिण चक्के य ।

चम्म जुगे परमाण, दस दिट्ठता मूणुअलमे ॥

श्रद्धा की दुर्लभता बताने के लिए सात निहवों की कथारें दी गई हैं ।^१

भगवान् ने कहा—“सोही उज्जुयभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिद्धई” —सरल व्यक्ति की शोधि होती है और धर्म शुद्ध आत्मा में उहरता है । जहाँ सरलता है वहाँ श्रद्धा है और जहाँ श्रद्धा है वहाँ धर्म का निवास है । धर्म का फल आत्म-शुद्धि है । परन्तु धर्म की आराधना करने वाले के पुण्य का भी बन्ध होता है । देवयोनि से च्युत हो जब पुनः मनुष्य बनता है तब वह दशागवाली मनुष्ययोनि में जाता है । श्लोक १७ और १८ में ये दस अंग निम्नोक्त कहे गये हैं—

१—कामस्कन्ध ।

२—मित्रों की सुलभता ।

३—बन्धुजनों का सुसयोग ।

४—उच्चगोत्र की प्राप्ति ।

५—रूप की प्राप्ति ।

६—जीरोगता की प्राप्ति ।

७—महाप्राज्ञता ।

८—विनीतता ।

९—यशस्विता ।

१०—बलवत्ता ।

इस अध्ययन के श्लोक १४ और १६ में आया हुआ ‘जवख’ (स० यक्ष) शब्द भाषा-विज्ञान की दृष्टि से ध्यान देने योग्य है । इसके अर्थ का अपकर्ष हुआ है । आगम-काल में ‘यक्ष’ शब्द ‘देव’ अर्थ में प्रचलित था । कालानुक्रम से इसके अर्थ का हास हुआ और यह आज भूत, पिशाच का-सा अर्थ देने लगा है ।

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा १६४-१६६ वहुयपएसअवत्तसमुच्छ, दुगतिगअवद्विगा चेव ।
एएसि निगमण, वुच्छासि अहाणुपुव्वीए ॥
वहुय जमालिपभवा, जीवपएस य तीसगुत्ताओ ।
अवत्ताऽऽसाढाओ, सामुच्छेयाऽऽसमित्ताओ ॥
गगाए दोकिरिया, छलुगा तेरासिआण उप्पत्ती ।
थेरा य गुट्टमाहिल, पुट्टमवद्ध पर्वविति ॥

तद्वयं अञ्जयणं : तृतीय अध्ययन

चाउरंगिज्जं : चतुरङ्गीयम्

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—चत्तारि दुल्लाहाणीह माणसत्त सुई सद्धा सजममि य वीरिय ॥	चत्वारि परमाङ्गानि दुर्लभानोह जन्तोः । मानुषत्व श्रुतिः श्रद्धा सयमे च वीर्यम् ॥	१—इस मसार में प्राणियों के लिए चार परम-अंग दुर्लभ हैं—मनुष्यत्व, श्रुति, श्रद्धा और सयम में पराक्रम ।
२—समावन्नाण नाणा-भोत्तासु जाइसु । कम्मा नाणा-विहा कट्टु पुढो ^१ विस्सभिया पया ॥	समापन्नाः ससारे नानागोत्रासु जातिषु । कर्माणि नानाविधानि कृत्वा पृथग् विश्वभृतः प्रजाः ॥	२—ससारी जीव विविध प्रकार के कर्मों का अर्जन कर विविध नाम वाली जातियों में उत्पन्न हो, पृथक्-पृथक् रूप में समूचे विश्व का स्पर्श कर लेते हैं—सब जगह उत्पन्न हो जाते हैं ।
३—एगया नरएसु वि एगया । एगया आसुर काय आहाकम्मेहि गच्छई ॥	एकदा देवलोकेषु नरकेष्वप्येकदा । एकदा आसुर काय यथाकर्मभिर्गच्छति ॥	३—जीव अपने कृत कर्मों के अनुसार कभी देवलोक में, कभी नरक में और कभी असुरों के निकाय में उत्पन्न होता है ।
४—एगया तओ खत्तिओ होइ तओ चण्डाल-वोक्सो । तओ कीड-पयगो य तओ कुन्थु-पिवीलिया ॥	एकदा क्षत्रियो भवति ततश्चण्डालो 'वोक्सः' । ततः कीटः पतङ्गश्च ततः कथुः पिपीलिका ॥	४—वही जीव कभी क्षत्रिय होता है, कभी चाण्डाल, कभी वोक्स, कभी कीट, कभी पतंगा, कभी कुथु और कभी चीटी ।

१. देहिणो (वृ० पा०, चू० पा०) ।

२. पुणो (चू० पा०) ।

५—एवमावट्ट-जोणीसु
पाणिणो कम्म-किब्बिसा ।
न निविज्जन्ति ससारे
'सव्वट्ठेसु व^१२ खत्तिया ॥

६—कम्म-सगेहिं सम्मूढा
दुक्खिया बहु-वेयणा ।
अमाणुसासु जोणीसु
विणिहम्मन्ति पाणिणो ॥

७—कम्माण तु पहाणाए
आणुपुव्वी कयाइ उ ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता
'आययन्ति मणुस्सय'^३ ॥

८—माणुस्स विग्गह लद्धुं
सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
ज सोच्चा पडिवज्जन्ति
तव खन्तिमहिंसय ॥

९—आहच्च सवण लद्धुं
सद्धा परमदुल्लहा ।
सोच्चा नेआउय मगं
बहवे परिभस्सई ॥

एवमावर्त-योनिषु
प्राणिनः कर्म-किल्बिषा ।
न निर्विद्यन्ते संसारे
सर्वार्थेऽपि व क्षत्रियाः ॥

कर्म-सङ्गः सम्मूढाः
दुःखिता बहु-वेदनाः ।
अमानुषीषु योनिषु
विनिहन्यन्ते प्राणिनः ॥

कर्मणां तु प्रहाण्या
आनुपूर्व्या कदाचित् तु ।
जीवा शोचिमनुप्राप्ताः
आददते मनुष्यताम् ॥

मानुष्यकं विग्रहं लब्ध्वा
श्रुतिर्धर्मस्य दुर्लभा ।
यं श्रुत्वा प्रतिपद्यन्ते
तपःक्षान्तिमहिंसाताम् ॥

'आहत्य' श्रवणं लब्ध्वा
श्रद्धा परम-दुर्लभा ।
श्रुत्वा नैर्यातिकं मार्गं
बहवः परिभ्रश्यन्ति ॥

५—जिस प्रकार क्षत्रिय लोग समस्त
अर्थों (काम-भोगों) को भोगते हुए भी निर्वेद
को प्राप्त नहीं होते, उसी प्रकार कर्म-किल्बिष
(कर्म से अधम बने हुए) जीव योनि-चक्र में
भ्रमण करते हुए भी संसार में निर्वेद नहीं
पाते—उससे मुक्त होने की इच्छा नहीं करते ।

६—जो जीव कर्मों के सग से सम्मूढ,
दुःखित और अत्यंत वेदना वाले हैं, वे अपने
कृत कर्मों के द्वारा मनुष्येतर (नरक-तिर्यञ्च)
योनियों में ढकेले जाते हैं ।

७—काल-क्रम के अनुसार कदाचित्
मनुष्य-भूति को रोकने वाले कर्मों का नाश हो
जाता है । उससे शुद्धि प्राप्त होती है । उससे
जीव मनुष्यत्व को प्राप्त होते हैं ।

८—मनुष्य-शरीर प्राप्त होने पर भी उस
धर्म की श्रुति दुर्लभ है जिसे सुनकर जीव तप,
क्षमा और अहिंसा को स्वीकार करते हैं ।

९—कदाचित् धर्म सुन लेने पर भी उसमें
श्रद्धा होना परम दुर्लभ है । बहुत लोग मोक्ष
की ओर ले जाने वाले मार्ग को सुनकर भी
उससे भ्रष्ट हो जाते हैं ।

१. य (अ); वि (अ०) ।

२. सव्वट्ठ इव (बृ० पा०, चू० पा०) ।

३. जायन्ते मणुसत्तय (बृ० पा०) ।

१० - सुइ च लद्धु सद्ध च
वीरिय पुण दुल्लह ।
वह्वे रोयमाणा वि
'नो एणं'^१ पडिवज्जए ॥

श्रुतिं च लब्ध्वा श्रद्धा च
वीर्यं पुनर्दुर्लभम् ।
वह्वो रोचमाना अपि
नो एतं प्रतिपद्यन्ते ॥

१०—श्रुति और श्रद्धा प्राप्त होने पर भी
सयम में वीर्य (पुम्पार्थ) होना अत्यन्त दुर्लभ
है । बहुत लोग सयम में रुचि रखते हुए भी
उसे स्वीकार नहीं करते ।

११—माणुसत्तमि आयाओ
जो धम्म सोच्च सद्धे ।
तवस्सी वीरिय लद्ध
सवुडे निद्धुणे रय ॥

मानुषत्वे आयातः
यो धर्मं श्रुत्वा श्रद्धते ।
तपस्वी वीर्यं लब्ध्वा
संवृतो निर्धुनोति रजः ॥

११—मनुष्यत्व को प्राप्त कर जो धर्म
को सुनता है, उसमें श्रद्धा करता है, वह
तपस्वी मयम में पुम्पार्थ कर, संवृत हो, कर्म-
रजो को धुन डालता है ।

१२—“सोही उज्जुयभूयस्स
धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई ।
निव्वाण परम जाइ
'घय-सित्त व्व'^२ पावए ॥”^३

शोधि ऋजुभूतस्य
धर्मः शुद्धस्य तिष्ठति ।
निर्वाण परम याति
धृत-सित्तः इव पावक ॥

१२—शुद्धि उसे प्राप्त होती है, जो
ऋजुभूत होता है । धर्म उसमें ठहरता है जो
शुद्ध होता है । जिसमें धर्म ठहरता है वह धृत
से अभिषिक्त अग्नि की भाँति परम निर्वाण
(दीप्ति) को प्राप्त होता है ।

१३—विगिंच^४ कम्मणो^५ हेउं
जस सचिणु खन्तिए ।
पाढव सरीर हिच्चा
उड्ढ पक्कमई दिस ॥

वेविग्धि कर्मणो हेतु
यशः सद्भिनु क्षान्त्या ।
पार्थिवं शरीरं हित्वा
उर्ध्वा प्रकामति दिशम् ॥

१३—कर्म के हेतु को दूर कर । क्षमा
से यश (सयम) का सचय कर । ऐसा करने
वाला पार्थिव शरीर को छोड़कर उर्ध्व दिशा
(स्वर्ग या मोक्ष) को प्राप्त होता है ।

१४—विसालिसेहिं सीलेहिं
जक्खा उत्तर-उत्तरा ।
महासुक्का व दिप्पन्ता
मन्नन्ता अपुणच्चव ॥

विसदृशैः शीलैः
यक्षाः उत्तरोत्तराः ।
महाशुक्लाः इव दीप्यमानाः
मन्यमाना अपुनश्च्यवम् ॥

१४—विविध प्रकार के शीलो की
आराधना करके जो देव कल्पों व उनके ऊपर
के देवलोको की आयु का भोग करते हैं, वे
उत्तरोत्तर महाशुक्ल (चन्द्र-सूर्य) की तरह
दीप्तिमान् होते हैं । 'स्वर्ग से पुन च्यवन नहीं
होता' ऐसा मानते हैं ।

१. नो ष ण (स, छ०, वृ०) ।

२. घयसत्तिव्व (उ), घयसत्तिव्व (ऋ०, छ०,), घयसित्ते ष (वृ०) ।

३. चउद्धा सपयं लद्धं, इहेव ताव भायते ।

तेयते तेज-सपन्ने घय-सित्ते व पावए ॥ (नागार्जुनीया) ।

४. विक्किचि (भ, आ), विक्किच (चू०), विगिच (चू० पा०) ।

५. कम्मणो (उ, ऋ०) ।

१५—अप्पिया देवकामाण
कामरूप-विउव्विणो ।
उड्ढ कप्पेसु चिट्ठन्ति
पुव्वा वाससया बहू ॥

अर्पिता देवकामान्
कामरूपविकरणा ।
ऊर्ध्वं कल्पेषु तिष्ठन्ति
पूर्वाणि वर्षशतानि बहूनि ॥

१५—वे देवी भोगो के लिए अपने आपको
अर्पित किए हुए रहते हैं । इच्छानुसार रूप बनाने
में समर्थ होते हैं तथा सैकड़ों पूर्व-वर्षों तक—
असंख्य काल तक वहाँ रहते हैं ।

१६—तत्थ ठिच्चा जहाठाणं
जक्खा आउक्खए चुया ।
उवेन्ति माणुस जोर्णि
से दसगेऽभिजायई ॥

तत्र स्थित्वा यथास्थानं
यक्षा आयुक्षये च्युताः ।
उपयन्ति मानुषीं योनिं
स दशांगोऽभिजायते ॥

१६—वे देव उन कल्पों में अपनी शील-
आराधना के अनुरूप स्थानों में रहते हुए
आयु-क्षय होनेपर वहाँ से च्युत होते हैं ।
फिर मनुष्य-योनि को प्राप्त होते हैं । वे वहाँ
दस अंगो वाली भोग सामग्री से युक्त होते हैं ।

१७—खेत्तं वत्थु हिरण्ण च
पसवो दास-पोरुसं ।
चत्तारि काम-खन्धाणि
तत्थ से उववज्जई ॥

क्षेत्रं वास्तु हिरण्यञ्च
पशवो दास-पौरुषेय ।
चत्वार कामस्कन्धाः
तत्र स उपपद्यते ॥

१७—क्षेत्र, वास्तु, स्वर्ण, पशु और दास-
पौरुषेय—जहाँ ये चार काम-स्कन्ध होते हैं,
उन कुलों में वे उत्पन्न होते हैं ।

१८—मित्तव नायवं^१ होइ
उच्चागोए य वण्णव ।
अप्पायके महापन्ते
अभिजाए जसोबले ॥

मित्रवान् ज्ञातिमान् भवति,
उच्चैर्गोत्रश्च वर्णवान् ।
अल्पातङ्कः महाप्राज्ञः
अभिजातो यशस्वी बली ॥

१८—वे मित्रवान्, ज्ञातिमान्, उच्चगोत्र
वाले, वर्णवान्, नीरोग, महाप्राज्ञ, अभिजात,
यशस्वी और बलवान् होते हैं ।

१९—भोच्चा माणुस्सए भोए
अप्पडिरूवे अहाउय ।
पुव्व विसुद्ध - सद्धम्मे
केवल बोहि बुज्झिया ॥

भुक्त्वा मानुष्यकान् भोगान्
अप्रतिरूपान् यथायुः ।
पूर्वं विशुद्ध-सद्धर्मा
केवलां बोधिं बुद्ध्वा ॥

१९—जीवन भर अनुपम मानवीय भोगो
को भोगकर, पूर्व-जन्म में विशुद्ध-सद्धर्मी (निदान
रहित तप करने वाले) होने के कारण वे विशुद्ध
बोधि का अनुभव करते हैं ।

२०—चउरग दुल्लह मत्ता^२
सजम पडिवज्जिया ।
तवसा धुयकम्मसे
सिद्धे हवइ सासए ॥
—त्ति वेमि ।

चतुरंगीं दुर्लभां मत्वा
संयमं प्रतिपद्य ।
तपसा धृत-कर्मांश
सिद्धो भवति शाश्वतः ॥
—इति ब्रवीमि

२०—वे उक्त चार अंगो को दुर्लभ
मानकर संयम को स्वीकार करते हैं । फिर
तपस्या से कर्म के सब अंशो को धुनकर शाश्वत
सिद्ध हो जाते हैं ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१ नाइव्व (अ०), नाइव (उ) ।

२ नच्चा (उ) ।

चतुर्थं अङ्गयणं :

असंख्यं

चतुर्थं अध्ययनं :

असंस्कृत

आसुख

इस अध्ययन का नाम निर्युक्ति के अनुसार 'प्रमादाप्रमाद'^१ और समवायाङ्ग के अनुसार 'असस्कृत' (प्रा० असख्य) है ।^२ निर्युक्तिकार का नामकरण अध्ययन में वर्णित विषय के आधार पर है और समवायाङ्ग का नामकरण आदानपद (प्रथमपद) के आधार पर है । इसका समर्थन अनुयोगद्वार से भी होता है ।^३

‘जीवन असस्कृत है—उसका सधान नहीं किया जा सकता, इसलिए व्यक्ति को प्रमाद नहीं करना चाहिए’—यही इस अध्ययन का प्रतिपाद्य है । जिन व्यक्तियों का जीवन के प्रति यह दृष्टिकोण नहीं है, वे अन्य मिथ्या-धारणाओं में फँसकर मिथ्यामिनिवेश को प्रश्रय देते हैं । सूत्रकार जीवन के प्रति जागरूक रहने की बलवती प्रेरणा देते हुए तथ्यों का प्रतिपादन करते हैं और मिथ्या-मान्यताओं का खण्डन करते हैं । वे मिथ्या-मान्यताएँ ये हैं—

१—यह माना जाता था कि धर्म बुढ़ापे में करना चाहिए, पहले नहीं ।

भगवान् ने कहा—“धर्म करने के लिए सब काल उपयुक्त है, बुढ़ापे में कोई त्राण नहीं है ।” (श्लो० १)

२—भारतीय जीवन की परिपूर्ण कल्पना में चार पुरुषार्थ माने गए हैं—काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष । अर्थ को येनकेन-प्रकारेण अर्जित करने की प्रेरणा दी जाती थी । लोग धन को त्राण मानते थे ।

भगवान् ने कहा—“जो व्यक्ति अनुधित साधनों द्वारा धन का अर्जन करते हैं, वे धन को छोड़कर नरक में जाते हैं । यहाँ या परभव में धन किसी का त्राण नहीं बन सकता । धन का वयामोह व्यक्ति को सही मार्ग पर जाने नहीं देता ।” (श्लो० २, ५)

३—कई लोग यह मानते थे कि किए हुए कर्मों का फल परभव में ही मिलता है । कई मानते थे कि कर्मों का फल है ही नहीं ।

भगवान् ने कहा—“किए हुए कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता । कर्मों का फल इस जन्म में भी मिलता है और पर-जन्म में भी ।” (श्लो० ३)

४—यह मान्यता थी कि एक व्यक्ति बहूतों के लिए कोई कर्म करता है तो उसका परिणाम वे सब भुगतते हैं ।

भगवान् ने कहा—“ससारी प्राणी अपने बन्धुजनो के लिए जो साधारण कर्म करते हैं, उस कर्म के फल-भोग के समय वे बन्धुजन बन्धुता नहीं दिखाते, उसका भाग नहीं बँटाते ।” (श्लो० ४)

५—यह माना जाता था कि साधना के लिए समूह विघ्न है । व्यक्ति को अकेले में साधना करनी चाहिए ।

भगवान् ने कहा—“जो स्वतंत्र वृत्ति का त्याग कर गुरु के आश्रय में साधना करता है, वह मोक्ष पा लेता है ।” (श्लो० ८)

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा १८१ . पचविहो अ पमाओ इहमज्जयणमि अप्पमाओ य ।

वणिण्ण उ जम्हा तेण पमायप्पमायति ॥

२—समवायाङ्ग, समवाय ३६ छत्तीस उतरज्जयगा प० त०—विणपुयय” असख्य ” ।

३—अनुयोगद्वार, सूत्र १३० पाठ के लिए देखिए पृ० ३६ पा० टि० १ ।

६—लोग कहते थे कि यदि छन्द के निरोध से मुक्ति मिलती है तो वह अन्त समय में भी किया जा सकता है ।

भगवान् ने कहा—“धर्म पीछे करेंगे—यह कथन शाश्वतवादी कर सकते हैं । जो अपने आपको अमर मानते हैं, उनका यह कथन हो सकता है, परन्तु जो जीवन को क्षण-भंगुर मानते हैं, वे भला काल—समय की प्रतीक्षा कैसे करेंगे ? वे काल का विश्वास कैसे करेंगे ? धर्म की उपासना के लिए समय का विभाग अवांछनीय है । व्यक्ति को प्रतिपल अप्रमत्त रहना चाहिए ।” (इको० ६-१०)

इस प्रकार यह अध्ययन जीवन के प्रति एक सही दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है और मिथ्या-मान्यताओं का निरसन करता है ।

चतुर्थं अङ्गयणं : चतुर्थं अध्ययन

असंखयं : असंस्कृतम्

मूल

१—असंखय जीविय मा पमायए
जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं ।
एवं^१ वियाणाहि जणे पमत्ते
कण्णू विहिंसा अजया गहन्ति ॥

संस्कृत छाया

असंस्कृतं जीवितं मा प्रमादीः
जरोपनीतस्य खलु नास्ति त्राणम् ।
एवं विजानीहि जनाः प्रमत्ताः
कन्तु विहिंसा अयता ग्रहीष्यन्ति ॥

हिन्दी अनुवाद

१—जीवन माया नहीं जा मकता, इस-
लिए प्रमाद मत करो । बुढ़ापा आने पर कोई
शरण नहीं होता । प्रमादी, हिंसक और
अविरत मनुष्य किमकी शरण लेंगे—यह विचार
करो ।

२—जे पावकम्मोहि धण मणूसा
समाययन्ती अमडं^२ गहाय ।
पहाय ते 'पास पयट्टिए'^३ नरे
वेराणुवद्धा नरय उवेन्ति ॥

ये पाप-कर्मभिः धनं मनुष्याः
समाददते अमर्ति गृहीत्वा ।
प्रहाय तान् पश्य प्रवृत्तान् नरान्
वैरानुबद्धा नरकमुपयन्ति ॥

२—जो मनुष्य कुमति को स्वीकार कर
पापकारी प्रवृत्तियों से धन का उपार्जन करते
हैं, उन्हें देख । वे धन को छोड़कर मौत के मुँह
में जाने को तैयार हैं । वे वैर (कर्म) से बन्धे
हुए मरकर नरक में जाते हैं ।

३—तेणे जहा सन्धि-मुहे गहीए
सकम्मणा किच्चइ पावकारी ।
एव पया पेच्च^४ इहं च^५ लोए
'कडाण कम्माण न मोक्ख^६ अत्थि'^७ ॥

स्तेनो यथा सन्धि-मुखे गृहीतः
स्वकर्मणा कृत्यते पापकारी ।
एष प्रजा प्रेत्येह च लोके
कृतानां कर्मणां न मोक्षोऽस्ति ॥

३—जैसे सेंध लगाते हुए पकड़ा गया
पापी धोर अपने कर्म से ही छेदा जाता है,
उसी प्रकार इस लोक और परलोक में प्राणी
अपने कृत कर्मों से ही छेदा जाता है । किए
हुए कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं
होता ।

१. एण (धृ० पा०) ।

२. अमय (धृ० पा०, चू० पा०) ।

३. पासपयट्टिए (अ०), पासपट्टिए (उ) ।

४. पेच्च (धृ०), पेच्च (धृ० पा०) ।

५. पि (धृ०, धृ० पा०) ।

६. मोक्खो (धृ०, चू०) ।

७. ण कम्मणो पीहाति तौ कयाती (धृ० पा०, चू० पा०) ।

४—ससारमावन्न परस्स अट्ठा
साधारणं जं च करेइ कम्मं ।
कम्मस्स ते तस्स उ वेय-काले
न बन्धवा बन्धवय उवेन्ति ॥

ससारमापन्नः परस्यार्थात्
साधारणं यच्च करोति कर्म ।
कर्मणस्ते तस्य तु वेदकाले
न बान्धवा बान्धवतामुपयन्ति ॥

४—ससारी प्राणी अपने बन्धु-जनो के लिए जो साधारण कर्म (इसका फल मुझे भी मिले और उनको भी—ऐसा कर्म) करता है, उस कर्म के फल-भोग के समय वे बन्धु-जन बन्धुता नहीं दिखाते—उसका भाग नहीं बँटाते ।

५—वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते
इमंमि लोए अदुवा परत्था ।
दीव-प्पणट्ठे व अणन्त-मोहे
नेयाउय दट्ठुमदट्ठुमेव ॥

वित्तेन त्राणं न लभते प्रमत्तः
अस्मिँल्लोके अथवा परत्र ।
प्रणष्टदीप इव अनन्त-मोहः
नैर्यातृक दृष्ट्वाऽदृष्ट्वैव ॥

५—प्रमत्त मनुष्य इस लोक में अथवा परलोक में धन से त्राण नहीं पाता । अन्वरी गुफा में जिसका दीप बुझ गया हो उसकी भाँति, अनन्त मोह वाला प्राणी पार ले जाने वाले मार्ग को देखकर भी नहीं देखता ।

६—सुत्तेसु यावी पडिबुद्ध-जीवी
न वीससे पण्डिआसु-पन्ने ।
घोरा मुहुत्ता अबल सरीरं
भारण्ड-पक्खी व चरप्पमत्तो ॥

सुप्तेषु चापि प्रतिबुद्धजीवी
न विश्वस्यात् पण्डित आशुप्रज्ञः ।
घोरा मुहूर्ता अबलं शरीरं
भारण्डपक्षीव चराप्रमत्तः ॥

६—आशुप्रज्ञ पंडित-सोए हुए व्यक्तियों के बीच भी जाग्रत रहे । प्रमाद में विश्वास न करे । मुहूर्त बड़े घोर (निर्दयी) होते हैं । शरीर दुर्बल है । इसलिए भारण्ड पक्षी की भाँति अप्रमत्त होकर विचरण करे ।

७—चरे पयाइ परिसकमाणो
जं किंचि पास इह मण्णमाणो ।
लाभन्तरे जीविय वूहइत्ता
पच्छा परिन्नाय मलावधसी ॥

चरेत्पदानि परिशङ्कमान
यत्किञ्चित्पाशमिह मन्यमानः ।
लाभान्तरे जीवितं बृंहयित्वा
पश्चात्परिज्ञाय मलापध्वंसी ॥

७—पग-पग पर दोषों से भय खाता हुआ, थोड़े से दोष को भी पाश मानता हुआ चले । नए-नए गुणों की उपलब्धि हो, तब तक जीवन को पोषण दे । जब वह न हो तब विचार-विमर्श पूर्वक इस शरीर का ध्वंस कर डाले ।

८—छन्द निरोहेण उवेइ मोक्खं
आसे जहा सिक्खिय-वम्मधारी ।
पुव्वाइ वासाइ चरप्पमत्तो
तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्ख ॥

छन्दोनिरोधेनोपैति मोक्षं
अश्वो यथा शिक्षितवर्मधारी ।
पूर्वाणि वर्षाणि चराप्रमत्तः
तस्मान्मुनि क्षिप्रमुपैति मोक्षम् ॥

८—शिक्षित (शिक्षक के अधीन रहा हुआ) और तनुत्राणधारी अश्व जैसे रण का पार पा जाता है, वैसे ही स्वच्छन्दता का निरोध करने वाला मुनि ससार का पार पा जाता है । पूर्व जीवन में जो अप्रमत्त होकर, विचरण करता है, वह उस अप्रमत्त-विहार से शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त होता है ।

९—स पुर्वमेव न लभेज् पच्छा
एसोवमा सासय-वाडयाण ।
विसीयई सिद्धिले आउयमि^१
कालोवणीए सरीरस्स भेए ॥

स पूर्वमेव न लभेत पश्चात्
एषोपमा शाश्वतवादिकानाम् ।
विषीदति शिथिले आयुषि
कालोपनीते शरीरस्य भेदे ॥

९—जो पूर्व जीवन में अप्रमत्त नहीं होता, वह पिछले जीवन में भी अप्रमाद को नहीं पा सकता । “पिछले जीवन में अप्रमत्त हो जाएंगे”—ऐसा निश्चय-वचन शाश्वत-वादियों के लिए ही उचित हो सकता है । पूर्व जीवन में प्रमत्त रहने वाला आयु के शिथिल होने पर, मृत्यु के द्वारा शरीर-भेद के क्षण उपस्थित होने पर विपाद को प्राप्त होता है ।

१०—खिप्प न सक्केड विवेगमेउ
तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे ।
समिच्च लोय समया महेसी
अप्पाण-रक्खी चरमप्पमत्तो^२ ॥

क्षिप्र न शक्नोति विवेकमेतु
तस्मात्समुत्थाय प्रहाय कामान् ।
समेत्य लोक समतया महर्षि
आत्मरक्षी चराप्रमत्तः ॥

१०—कोई भी मनुष्य विवेक को तत्काल प्राप्त नहीं कर सकता । इसलिए हे मोक्ष की एपणा करने वाले ! उठो । “जीवन के अंतिम भाग में अप्रमत्त वनोगे”—इस आलस्य को त्यागो । काम-भोगों को छोड़ो । लोक को भलीभाँति जानो । समभाव में रहो । आत्म-रक्षक और अप्रमत्त हो कर विचरण करो ।

११—मुहु मुहु मोह-गुणे जयन्तं
अणेग-रूवा समण चरन्त ।
फासा फुसन्तो असमजस च
न तेसु भिक्खू मणसा पउस्से ॥

मुहुर्मुहुर्मोह-गुणान् जयन्त
अनेक-रूपा श्रमण चरन्तम् ।
स्पर्शा स्पृशन्त्यसमल्लस च
न तेषु भिक्षुर्मनसा प्रदुष्येत् ॥

११—बार-बार मोह गुणों पर विजय पाने का यत्न करने वाले उग्र-विहारी श्रमण को अनेक प्रकार के प्रतिकूल स्पर्श पीडित करते हैं । किन्तु वह उन पर प्रद्वेष न करे ।

१२—‘मन्दा य फासा बहु-लोहणिज्जा’^३
तह-प्पगारेसु मण न कुज्जा ।
रक्खेज्ज कोह विणएज्ज माण
माय न सेवे पयहेज्ज लोह ॥

मन्दाश्च स्पर्शा बहु-लोभनीया
तथा-प्रकारेषु मनो न कुर्यात् ।
रक्षेत् क्रोध विनयेद् मान
माया न सेवेत प्रजह्याल्लोभम् ॥

१२—अनुकूल स्पर्श विवेक को मन्द करने वाले और बहुत लुभावने होते हैं । वैसे स्पर्शों में मन को न लगाये । क्रोध का निवारण करे । मान को दूर करे । माया का सेवन न करे । लोभ को त्यागे ।

१३—जे सखया तुच्छ परप्पवाई
ते पिज्ज-दोसाणुगया परज्झा ।
एए ‘अहम्मे’ त्ति दुगुछमाणो
कखे गुणे जाव सरीर-भेओ ॥
—त्ति वेमि ।

ये सस्कृताः तुच्छा परप्रवादिन
ते प्रेयोदोषानुगता पराधीनाः ।
एते ‘अधर्म’ इति जुगुप्समान-
काङ्क्षेद् गुणान् यावच्छरीर-भेदः ॥
—इति ब्रवीमि ।

१३—जो अन्य-तीर्थिक लोग “जीवन साधा जा सकता है”—ऐसा कहते हैं वे अशिक्षित हैं, प्रेय और द्वेष में फँसे हुए हैं, पर-तन्त्र हैं । “वे धर्म-रहित हैं”—ऐसा सोच उनसे दूर रहे । अंतिम सास तक (सम्यक्-दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि) गुणों की आराधना करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१ आउमि (उ) ।

२ व चरमप्पमत्तो (अ०), चरमपमत्तो (उ) ।

३. मदाउ तहा हियस्स बहु-लोभणेज्जा (चू० पा०) ।

पञ्चमं अज्झयणं :
अकाम-मरणिज्जं

पंचम अध्ययन :
अकाम-मरणीय

आत्मसुख

इस अध्ययन का नाम ‘अकाममरणिज्ज’—‘अकाम-मरणीय’ है। निर्युक्ति में इसका दूसरा नाम ‘मरणविभत्ती’—‘मरण-विभक्ति’ भी मिलता है।^१

जीवन-यात्रा के दो विश्राम हैं—जन्म और मृत्यु। जीवन कला है तो मृत्यु भी उससे कम कला नहीं है। जो जीने की कला जानते हैं और मृत्यु की कला नहीं जानते, वे सदा के लिए अपने पीछे दूषित वातावरण छोड़ जाते हैं। व्यक्ति को कैसा मरण नहीं करना चाहिए, इसका विवेक आवश्यक है। मरण के विविध प्रकारों के उल्लेख इस प्रकार मिलते हैं —

१—मरण के १४ भेद

भगवती सूत्र में मरण के दो भेद—बाल और पण्डित किए हैं। बाल-मरण के बारह प्रकार हैं और पण्डित-मरण के दो प्रकार—कुल मिलाकर चौदह भेद वहाँ मिलते हैं—

बाल-मरण के बारह भेद हैं —(१) वलय, (२) वशार्त्त, (३) अन्त शल्य, (४) तद्भव, (५) गिरि-पतन, (६) तरु-पतन, (७) जल-प्रवेश, (८) अग्नि-प्रवेश, (९) विष-मक्षण, (१०) शस्त्रावपाटन, (११) वैहावस और (१२) गृद्धपृष्ठ।^२

पण्डित-मरण के दो भेद हैं —(१) प्रायोपगमन और (२) भक्त-प्रत्यारुयान।^३

२—मरण के १७ भेद

समवायाङ्ग में मरण के १७ भेद बताए हैं। मूलाराधना में भी मरण के सतरह प्रकारों का उल्लेख है और उनका विस्तार विजयोदया वृत्ति में मिलता है। उक्त परम्पराओं के अनुसार मरण के १७ प्रकार इस तरह हैं —

समवायाङ्ग

- १—आवीचि-मरण
- २—अवधि मरण
- ३—आत्यन्तिक-मरण
- ४—वल्गुमरण
- ५—वशार्त्त-मरण
- ६—अन्त शल्य-मरण
- ७—तद्भव मरण
- ८—बाल मरण

मूलाराधना (विजयोदया वृत्ति)

- १—आवीचि-मरण
- २—तद्भव-मरण
- ३—अवधि-मरण
- ४—आदि-अन्त-मरण
- ५—बाल-मरण
- ६—पण्डित-मरण
- ७—अवसन्न-मरण
- ८—बाल-पण्डित-मरण

१. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २३३ सन्वे एए दारा मरणविभत्तीइ वणिआ कमसो।

२. भगवती २।१, सू० ६० दुविहे मरणे पणत्ते, त जहा—बालमरणे य पडियमरणे य, से किं त बालमरणे ? २ दुवालसविहे प०, त० वलयमरणे, वसट्टमरणे, अन्तोसल्लमरणे, तब्भवमरणे, गिरिपडणे, तरुपडणे, जलपपवेसे, जलणपपवेसे, विसभक्खणे, सत्थोवाडणे वेहाणसे, गिद्धपिट्ठे।

३. वही से किं त पडियमरणे ? २ दुविहे पणत्ते, त जहा—पाओवगमणे य भत्तपच्चक्खणे य।

- ६—पण्डित-मरण
१०—बाल-पण्डित-मरण
११—छद्मस्थ-मरण
१२—केवलि-मरण
१३—वैहायस-मरण
१४—गृद्धपृष्ठ-मरण
१५—भक्त-प्रत्याख्यान-मरण
१६—इगिनी-मरण
१७—प्रायोपगमन-मरण^१

- ६—सशत्य-मरण
१०—वलाय-मरण
११—व्युत्सृष्ट-मरण
१२—विप्रनास-मरण
१३—गृद्धपृष्ठ-मरण
१४—भक्त-प्रत्याख्यान-मरण
१५—प्रायोपगमन-मरण
१६—इगिनी-मरण
१७—केवली-मरण^२

समवायाङ्ग के तीसरे, दसवें और पन्द्रहवें मरण के नाम उत्तराध्ययन निर्युक्ति के अनुसार क्रमशः अत्यन्त-मरण, मिश्र-मरण और भक्त-परिज्ञा-मरण है। यह केवल शाब्दिक अन्तर है, नामों अथवा क्रम में और कोई अन्तर नहीं है।^३

विजयोदया में क्रम तथा नामों में भी अन्तर है। 'वैहायस' के स्थान पर 'विप्रनास' तथा 'अन्त शत्य' और 'आत्यन्तिक' के स्थान पर क्रमशः 'सशत्य' और 'आद्यन्त' नाम उल्लिखित हैं। समवायाङ्ग में वशार्त्त-मरण और छद्मस्थ-मरण हैं जबकि विजयोदया में अवसन्न-मरण और व्युत्सृष्ट-मरण। भगवती के उपर्युक्त पाँचवें से लेकर दसवें तक के ६ भेद विजयोदया के 'बाल-मरण' भेद में समाविष्ट होते हैं।

उक्त सत्तरह प्रकार के मरणों की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है —

१—आवीचि-मरण —आयु-कर्म के दलिकों की विच्युति अथवा प्रतिक्षण आयु की विच्युति, आवीचि-मरण कहलाता है।^४

वीचि का अर्थ है—तरंग। समुद्र और नदी में प्रतिक्षण लहरें उठती हैं। वैसे ही आयु-कर्म भी प्रतिसमय उदय में आता है। आयु का अनुभव करना जीवन का लक्षण है। प्रत्येक समय का जीवन प्रतिसमय में नष्ट होता है। यह प्रत्येक समय का मरण आवीचि-मरण कहलाता है।^५

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव की अपेक्षा से आवीचि-मरण के पाँच प्रकार हैं।^६

१ समवायाङ्ग, समवाय १७, पत्र ३३ सत्तरसविंशे मरणे प०—आवीर्हमरणे, ओहिमरणे आयतियमरणे, वलायमरणे, वसट्टमरणे, अतोसल्ल मरणे, तब्भवमरणे, बालमरणे, पण्डितमरणे, बालपण्डितमरणे, छउमत्थमरणे, केवलिमरणे, वेहाणसमरणे, गिद्धपिट्टमरणे, भत्तपच्चक्खणमरणे, इगिणिमरणे, पाओवगमणमरणे।

२ (क) मूलाराधना आश्वास १, गाथा २५ मरणाणि सत्तरस देसिदाणि तित्थकरेहि जिणवयणे।

तत्थ विय पच्च इह सगहेण मरणाणि वोच्छामि ॥

(ख) विजयोदया वृत्ति, पत्र ८७।

३ उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २१२, २१३ आवीचि ओहि अतिय वलायमरण वसट्टमरण च।

अतोसल्ल तब्भव बाल तह पण्डिय मीस ॥

छउमत्थमरण केवलि वेहाणस गिद्धपिट्टमरण च।

मरणं भत्तपरिणगा इगिणी पाओवगमण च ॥

४ समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति, पत्र ३४ आयुर्दलिकविच्युतिलक्षणावस्था यस्मिंस्तदावीचि अथवा वीचि —विच्छेदस्तदभावादवीचि" एव भूत मरणमावीचिमरण—प्रतिक्षणमायुर्द्रव्यविचटनलक्षणम्।

५. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८६।

६. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गा० २१५ अणुसमयनिरन्तरमवीहसन्निय, तं भणन्ति पच्चविहं।
दन्वे खित्ते काले भवे य भावे य ससारे ॥

३—अवधि-मरण —जीव एक बार नरक आदि जिस गति में जन्म-मरण करता है, उसी गति में दूसरी बार जब कभी जन्म-मरण करता है तो उसे अवधि-मरण कहा जाता है ।^१

३—आत्यन्तिक-मरण —जीव वर्तमान आयु-कर्म के पुद्गलों का अनुभव कर मरण प्राप्त हो, फिर उस भव में उत्पन्न न हो तो उस मरण को आत्यन्तिक-मरण कहा जाता है ।^२

वर्तमान मरण 'आदि' और वैसा मरण आगे न होने से उसका 'अन्त'—इस प्रकार इसे 'आद्यन्त-मरण' भी कहा जाता है ।^३

४—वलन्मरण —जो सयमी जीवन-पथ से भ्रष्ट होकर मृत्यु पाता है, उसकी मृत्यु को वलन्मरण कहा जाता है ।^४ भूख से तड़पते हुए मरने को भी वलन्मरण कहा जाता है ।^५

विजयोदया में वलाय-मरण कहा है । इसकी व्याख्या इस प्रकार है—विनय, वैयावृत्य आदि को सत्कार न देने वाले, नित्य नैमित्तिक कार्यों में आलसी, व्रत, समिति और गुप्ति के पालन में अपनी शक्ति को छिपाने वाले, धर्म-चिन्तन के समय नींद लेने वाले, ध्यान और नमस्कार आदि में दूर भागने वाले व्यक्ति के मरण को वलाय-मरण कहा जाता है ।^६

५—वशार्च-मरण —दीप-कलिका में शलभ की तरह जो इन्द्रियों के वशीभूत होकर मृत्यु पाते हैं, उन्हें 'वशार्च-मरण' कहा जाता है ।^७

विजयोदया में भी यह नाम मिलता है । यह मरण आर्च और रौद्र ध्यान में प्रवृत्त रहने वालों के होता है । इसके चार भेद हैं—इन्द्रिय-वशार्च, वेदना-वशार्च, कषाय-वशार्च और नो-कषाय-वशार्च ।^८

६—अन्त शल्य-मरण —भगवती की वृत्ति में इसके दो भेद किए गए हैं—(१) द्रव्य और (२) भाव । शरीर में अस्त्र की नोक आदि रहने से जो मृत्यु होती है वह द्रव्य अन्त शल्य-मरण कहलाता है । लज्जा और अभिमान आदि के कारण अतिचारों की आलोचना न कर दोषपूर्ण स्थिति में मरने वाले की मृत्यु को भाव अन्तः शल्य-मरण कहा जाता है ।^९

विजयोदया में इसका नाम सशल्य-मरण है । उसके भी दो भेद हैं—द्रव्य शल्य और भाव शल्य ।^{१०} मिथ्या-दर्शन, माया और निदान—इन तीनों शल्यों की उत्पत्ति के हेतुभूत कर्म को द्रव्य शल्य कहा जाता है । द्रव्य शल्य

१ (क) समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति पत्र ३४ मर्यादा तेन मरणमवधिमरणम्, यानि हि नारकादिभवनविबन्धनतयाऽऽयु कर्मदलिकान्यनुभूय त्रियते यदि पुनस्तान्येवानुभूय मरिष्यति तदा तदवधिमरणमुच्यते । तद्व्यापेक्षया पुनस्तद्गृहणावधि यावज्जीवस्य मृतत्वादिति ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गा० २१६ एमेव ओहिमरण जाणि मओ ताणि चेव मरइ पुणो ।

(ग) विजयोदया वृत्ति, पत्र ८७ ।

२ (क) समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति पत्र ३४ यानि नारकाद्यायुष्कतया कर्मदलिकान्यनुभूय त्रियते मृतञ्च न पुनस्तान्यनुभूय मरिष्यतीति एव यन्मरण तद्व्यापेक्षया अत्यन्तभावित्वादात्यन्तिकमिति ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गा० २१६ एमेव आइयतियमरण नवि मरइ ताइ पुणो ।

३ विजयोदया वृत्ति, पत्र ८७ ।

४ (क) समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति, पत्र ३४ सयमयोगेभ्यो वलतां—भग्नव्रतपरिणतीना व्रतिनां मरण वलन्मरणम् ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गा० २१७ सजमजोगविसन्ना मरति जे त वलायमरण तु ।

५ भगवती, २११ सू० ६० वृत्ति, पृ० २११ वलतो—अनुभूयापरिगतत्वेन वलवलायमानस्य सयमाद्वा अश्रयतो (यत्) मरण तद्वलन्मरणम् ।

६ विजयोदया वृत्ति, पत्र ८६ ।

७ समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति, पत्र ३४ इन्द्रियविषयपारतन्त्र्येण ऋता—बाधिता वशात्तां स्निग्धदीपकलिकावलोकनात् शलभवत् तथाऽन्त ।

८ विजयोदया वृत्ति, पत्र ८६, ६० ।

९ भगवती, २११ सू० ६० वृत्ति, पत्र २११ अन्त शल्यस्य द्रव्यतोऽनुद्धततोमरादे भावत सातिचारस्य यद्मरण तद् अन्त शल्यमरणम् ।

१० विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८ ।

की दशा में होने वाला मरण द्रव्य शल्य-मरण कहलाता है। यह मरण पाँच स्थावर और अमनस्क त्रस जीवों के होता है। उक्त तीन शल्यों के हेतुभूत कर्मों के उदय से जीव में जो माया, निदान और मिथ्यात्व परिणाम होता है, उसे भाव शल्य कहा जाता है। इस दशा में होने वाला मरण भाव शल्य-मरण कहा जाता है।

जहाँ भाव शल्य है वहाँ द्रव्य शल्य अवश्य होता है, किन्तु भाव शल्य केवल समनस्क जीवों को ही होता है। अमनस्क जीवों में संकल्प या चिन्तन नहीं होता, इसलिए उनके केवल द्रव्य शल्य ही होता है। इसीलिए अमनस्क जीवों के मरण को द्रव्य शल्य-मरण और समनस्क जीवों के मरण को भाव शल्य-मरण कहा गया है।^१

मविष्य में मुझे अमुक वस्तु मिले, आदि-आदि मानसिक संकल्पों को निदान कहते हैं। निदान-शल्य-मरण असयत सम्यक्-दृष्टि और श्रावक के होता है।

मार्ग (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) को दूषित करना, मार्ग का नाश करना, उन्मार्ग की प्ररूपणा करना, मार्ग में स्थित लोगों का बुद्धि-भेद करना—इन सबको एक शब्द में मिथ्यादर्शन-शल्य कहा जाता है।^२

पार्श्वस्थ, कुशील, ससक्त आदि मुनि धर्म से भ्रष्ट हो कर मरण-समय तक दोषों की आलोचना किए बिना जो मृत्यु पाते हैं, उसे माया-शल्य-मरण कहा जाता है। यह मरण मुनि, श्रावक और असयत सम्यक्-दृष्टि को प्राप्त होता है।

७—तद्भव-मरण —वर्तमान भव (जन्म) से मृत्यु होती है, उसे तद्भव-मरण कहा जाता है।^३

८—बाल-मरण.—मिथ्यात्वी और सम्यक्-दृष्टि का मरण बाल-मरण कहलाता है।^४ भगवती में बाल-मरण के १३ भेद प्राप्त हैं।^५ विजयोदया में पाँच भेद किए हैं—(१) अव्यक्त-बाल, (२) व्यवहार-बाल, (३) ज्ञान-बाल, (४) दर्शन-बाल और (५) चारित्र-बाल।^६ इनकी व्याख्या साक्षि में इस प्रकार है

(१) अव्यक्त-बाल—छोटा बच्चा। जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को नहीं जानता तथा इन चार पुरुषार्थों का आचरण करने में भी समर्थ नहीं होता।

(२) व्यवहार-बाल—लोक-व्यवहार, शास्त्र-ज्ञान आदि को जो नहीं जानता।

(३) ज्ञान-बाल—जो जीव आदि पदार्थों को यथार्थ रूप से नहीं जानता।

(४) दर्शन-बाल—जिसकी तत्त्वों के प्रति भ्रष्टा नहीं होती। दर्शन-बाल के दो भेद हैं—इच्छा-प्रवृत्त और अनिच्छा-प्रवृत्त। इच्छा-प्रवृत्त—अग्नि, धूप, शस्त्र, विष, पानी, पर्वत से गिरकर, श्वासोच्छ्वास को रोक कर, अति सर्दी या गर्मी होने से, भूख और प्यास से, जीम को उखाड़ने से, प्रकृति-विरुद्ध आहार करने से—इन साधनों के द्वारा जो इच्छा से प्राण-त्याग करता है, वह इच्छा-प्रवृत्त

१ विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८।

२ विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८, ८९।

३ (क) समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति, पत्र ३४ यस्मिन् भवे—तिर्यगमनुष्यभवलक्षणे वर्त्तते जन्तुस्तद्भवयोग्यमेवायुर्बद्ध्वा पुन. तत्क्षणेन त्रियमाणस्य यद्भवति तत्तद्भवमरणम्।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २२१ : मोक्षु अकम्भभूमगनरतिरिषु छरगणे अ नेरइए।
सेसाण जीवाण तद्भवमरण तु केसिचि ॥

(ग) विजयोदया वृत्ति, पत्र ८७।

४ उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २२२ : अविरयमरण बाल मरण विरयाण पडिय बिति।

जाणाहि बालपडियमरण पुण देसविरयाणं ॥

५ भगवती २।१। सू० ९० वृत्ति, पत्र २११।

६ विजयोदया वृत्ति, पत्र ८७, ८८।

दर्शन-बाल-मरण कहलाता है। अनिच्छा-प्रवृत्त—योग्यकाल ने या अकाल में मरने की इच्छा के बिना जो मृत्यु होती है, वह अनिच्छा-प्रवृत्त दर्शन-बाल-मरण कहलाता है।

(५) चारित्र-बाल—जो चारित्र में हीन होता है। विषयों में आसक्त, दुर्गति में जाने वाले, अज्ञानान्धकार में आच्छादित, ऋद्धि में आसक्त, रमों में आसक्त और सुख के अभिमानों जो बाल-मरण में मरते हैं।

६—पण्डित-मरण —मयति का मरण पण्डित-मरण कहलाता है। विजयोदया में इसके चार भेद किए हैं—(१) व्यवहार-पण्डित, (२) सम्यक्त्व-पण्डित, (३) ज्ञान-पण्डित और (४) चारित्र-पण्डित।^१ इनको व्याख्या इस प्रकार है।

(१) व्यवहार-पण्डित—जो लोक, वेद और समय के व्यवहार में निपुण, उनके शास्त्रों का ज्ञाता और शुश्रूषा आदि गुणों से युक्त हो।

(२) दर्शन-पण्डित—जो सम्यक्त्व से युक्त हो।

(३) ज्ञान-पण्डित—जो ज्ञान में युक्त हो।

(४) चारित्र-पण्डित—जो चारित्र से युक्त हो।

१०—बाल-पण्डित-मरण —सयतासयत का मरण बाल-पण्डित-मरण कहलाता है।^२ स्थूल हिंसा आदि पाँच पापों के त्याग तथा सम्यक्-दर्शन युक्त होने से वह पण्डित है। सूक्ष्म असयम से निवृत्त न होने के कारण उसमें बालत्व भी है।^३

११—छद्मस्थ-मरण —मन पर्यवजानो, अवधिज्ञानो, श्रुतज्ञानो और मतिज्ञानो भ्रमण के मरण को छद्मस्थ-मरण कहा जाता है।^४

विजयोदया में इसके स्थान पर ‘ओसण्ण-मरण’ नाम मिलता है।^५ उसकी व्याख्या इस प्रकार दी है—रत्नत्रय में विहार करने वाले मुनियों के मध्य में जो अलग हो गया हो उसे ‘अवमन्न’ कहते हैं। उसके मरण को अवसन्न-मरण कहा जाता है। पार्श्वस्थ, स्वच्छन्द, कुशील, समक्त और अवसन्न—ये पाँच अष्ट मुनि ‘अवमन्न’ कहलाते हैं। ये ऋद्धि में आसक्त, रमों में आसक्त, दुःख से भयभीत, वषायों में परिणत हो आहार आदि सज्ञाओं के वशवर्ती, पाप शास्त्रों के अध्येता, तेरह क्रिया (३ गुणि, ५ समिति और ५ महाव्रत) में आलसी, सविलष्ट-परिणामी, भक्तपान और उपकरणों में आसक्त, निमित्त, तत्र-मत्र और औषध में आजीविका करने वाले, गृहस्थों का वैयावृत्त्य करने वाले, उत्तर गुणों में हीन, गुणि और समिति में अनुद्यत, ससार के दुःखों से भय न करने वाले, क्षमा आदि दश धर्मों में प्रवृत्त न होने वाले तथा चारित्र में दोष लगाने वाले होते हैं। ये अवमन्न मुनि मर कर हजारों भवों में भ्रमण करते हैं और दुःखों को भोगते हुए जीवन को पूरा करते हैं।

१२—केवल-मरण —केवल ज्ञानो का मरण केवल-मरण कहलाता है।

१ विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८।

२ उत्तराध्ययन निर्युक्ति गाथा २२. (देखिए पृ० ६० पा० टि० ४)।

३. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८।

४ उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २२३ मणपज्जवोहिनाणी सुभमइनाणी मरति जे समणा।

छउमत्थमरणमेय केवलमरण तु केवल्लिणो ॥

५ विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८।

१३—वैहायस-मरण — वृक्ष को शाखा पर लटकने, पर्वत से गिरने और ऋपा लेने आदि कारण से होने वाला मरण वैहायस-मरण कहलाता है ।^१ विजयोदया मे इसके स्थान पर 'विप्रणास-मरण' है ।^२

१४—गृद्धपृष्ठ-मरण :—हाथी आदि के कलेवर मे प्रविष्ट होने पर उस कलेवर के साथ-साथ उस जीवित शरीर को भी गोध आदि नोच कर मार डालते हैं, उस स्थिति मे जो मरण होता है, वह गृद्धपृष्ठ-मरण कहलाता है ।^३

१५—भक्त-प्रत्याख्यान-मरण — यावत् जीवन के लिए त्रिविध अथवा चतुर्विध आहार के त्याग पूर्वक जो मरण होता है, उसे भक्त-प्रत्याख्यान-मरण कहा जाता है ।^४

१६—इगिनी-मरण — प्रतिनियत स्थान पर अनशन पूर्वक मरण को इगिनी-मरण कहते हैं । जिस मरण मे अपने अभिप्राय से स्वयं अपनी शुश्रूषा करे, दूसरे मुनियों से सेवा न ले उसे इगिनी-मरण कहा जाता है । यह मरण चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान करने वाले के ही होता है ।

१७—प्रायोपगमन, पादपोपगमन, पादोपगमन-मरण — अपनी परिचर्या न स्वयं करे और न दूसरों से कराये, ऐसे मरण को प्रायोपगमन अथवा प्रायोग्य-मरण कहते हैं ।^५ वृक्ष के नीचे स्थिर अवस्था मे चतुर्विध आहार के त्याग पूर्वक जो मरण होता है, उसे पादपोपगमन-मरण कहते हैं ।^६ अपने पाँवों के द्वारा सघ से निकल कर और योग्य प्रदेश में जाकर जो मरण किया जाता है उसे पादोपगमन-मरण कहा जाता है । इस मरण को चाहने वाले मुनि अपने शरीर की परिचर्या न स्वयं करते हैं और न दूसरों से करवाते हैं ।^७ कहीं 'पाउगमन' (प्रायोग्य) पाठ भी आता है ।^८ भव के अन्त करने योग्य सहनन और सस्थान को 'प्रायोग्य' कहा जाता है । उसकी प्राप्ति को 'प्रायोग्य-गमन' कहा है । विशिष्ट सहनन और विशिष्ट सस्थान वाले के मरण को प्रायोग्य-गमन-मरण कहा जाता है ।^९

श्वेताम्बर परम्परा मे 'पादपोपगमन' शब्द मिलता है और दिगम्बर परम्परा मे 'प्रायोपगमन', 'प्रायोग्य' और 'पादोपगमन' पाठ मिलता है ।

भगवती मे पादपोपगमन के दो भेद किए हैं—निर्होरि और अनिर्होरि ।^{१०} निर्होरि—इसका अर्थ है

१—(क) भगवती २।१। सू० ६० वृत्ति, पत्र २११ . वृक्षशाखाशुद्धबन्धनेन यत्तन्निर्होरिवाह्वै हानसम् ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २२४ . गिद्धाहमक्खण गिद्धपिट्ठ उक्खधणाह वेहास ।

एए दुन्निवि मरणा कारणजाए अणुणयाया ॥

२—विजयोदया वृत्ति, पत्र ६० ।

३—(क) भगवती २।१। सू० ६० वृत्ति, पत्र २११ . पक्षिविशेषैर्गृद्धैर्वा—मांसलुब्धैः शृगालादिभि स्पर्ष्टस्य—विदारितस्य करिकरभरासभादि-शरीरान्तर्गतत्वेन यन्मरण तद्गृध्रस्पर्ष्टं वा गृद्धस्पर्ष्टं वा, गृध्रैर्वा भक्षितस्य—स्पर्ष्टस्य यत्तद्गृध्रस्पर्ष्टम् ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २२४ (देखिए पा० टि० १ (ख)) ।

४—(क) भगवती २।१। सू० ६० वृत्ति, पत्र २११-२१२ : चतुर्विधाहारपरिहारनिष्पन्नमेव भवतीति ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति गाथा २२५ वृत्ति, पत्र २३५ .

५—(क) भगवती २।१। सू० ९० वृत्ति, पत्र २१२ ।

(ख) समवायाङ्ग सम १७ वृत्ति, पत्र ३५ : पादपस्येवोपगमनम्—अवस्थान यस्मिन् तत्पादपोपगमन तदेव मरणम् ।

(ग) उत्तराध्ययन निर्युक्ति गाथा २२५ वृत्ति, पत्र २३५ ।

६—विजयोदया वृत्ति, पत्र ११३ ।

७—गोम्मटसार (कर्मकाण्ड), गाथा ६१

८—विजयोदया वृत्ति, पत्र ११३ ।

९—विजयोदया वृत्ति, पत्र ११३ ।

१०—भगवती २।१। सू० ६० वृत्ति, पत्र २१२ . निर्हारेण निर्वृत्त यत्तन्निर्होरिम, प्रतिश्रये यो त्रियते तस्यैतत्, तत्कडेवरस्य निर्होरिणात् अनिर्होरिम तु योऽटव्यां त्रियते इति ।

बाहर निकालना । उपाश्रय में मरण प्राप्त करने वाले साधु के शरीर को वहाँ से बाहर ले जाना होता है, इसलिए उस मरण को निर्हारी कहते हैं । अनिर्हारी—अरण्य में अपने शरीर का त्याग करने वाले साधु के शरीर को बाहर ले जाना नहीं पड़ता, इसलिए उसे अनिर्हारी-मरण कहा जाता है ।

भगवती में इ गिनी-मरण को भक्त-प्रत्याख्यान का एक प्रकार स्वीकार कर^१ उसकी स्वतन्त्र व्याख्या नहीं की है । मूलाराधना में भक्त-प्रत्याख्यान, इ गिनी और प्रायोपगमन—ये तीनों पण्डित-मरण के भेद माने गये हैं ।^२

उपर्युक्त १७ मरण विभिन्न विवक्षाओं से प्रतिपादित हैं । आवीचि, अवधि, आत्यन्तिक और तद्भव-मरण भव की दृष्टि से, वलन्, वैहायस, गृद्धपृष्ठ, वशार्च और अन्त शत्य-मरण आत्म-दोष, कषाय आदि की दृष्टि से, बाल और पण्डित मरण चारित्र की दृष्टि से, छद्मस्थ और केवलि-मरण ज्ञान की दृष्टि से तथा भक्त-प्रत्याख्यान, इ गिनी और प्रायोपगमन-मरण अनशन की दृष्टि से किए गए हैं ।

उपर्युक्त १७ मरणों में आवीचि मरण प्रतिपत्त होता है और सिद्धा को छोड़ सब प्राणियों के होता है । शेष मरण जीव विशेषों के होते हैं ।

एक समय में कितने मरण होते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर उत्तराध्ययन की निर्युक्ति में है ।^३ एक समय में दो मरण, तीन मरण, चार मरण और पाँच भी होते हैं । बाल, बाल-पण्डित और पण्डित की अपेक्षा से वे इस प्रकार हैं—

बाल की उपेक्षा

- (१) एक समय में दो मरण—अवधि और आत्यन्तिक में से एक और दूसरा बाल-मरण ।
- (२) एक समय में तीन मरण—जहाँ तीन होते हैं वहाँ तद्भव-मरण और बढ़ जाता है ।
- (३) एक समय में चार मरण—जहाँ चार होते हैं वहाँ वशार्च-मरण और बढ़ जाता है ।
- (४) एक समय में पाँच मरण—जहाँ आत्मघात करते हैं वहाँ वैहायस और गृद्धपृष्ठ में से कोई एक बढ़ जाता है । वलन्मरण और शत्य-मरण को बाल-मरण के अन्तर्गत स्वीकार किया है ।

पण्डित की अपेक्षा

पण्डित-मरण की विवक्षा दो प्रकार से की है—दृढ सयमी पण्डित और शिथिल सयमी पण्डित ।

(क) दृढ सयमी पण्डित

- (१) जहाँ दो मरण एक समय में होते हैं वहाँ अवधि-मरण और आत्यन्तिक-मरण में से कोई एक होता है क्योंकि दोनों परस्पर विरोधी हैं, दूसरा पण्डित-मरण ।

१ भगवती २।१। सू० ६० वृत्ति, पत्र २१२ : इज्जितमरणमभिधीयते तद्वक्तप्रत्याख्यानस्यैव विशेष ।

२. मूलाराधना, गाथा २६ प्रायोपगमन मरण भक्तपदवृण्णा च इगिणी चेव ।

तिविह पण्डितमरण साहुस्स जहुत्तचारिस्स ॥

३. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २२७-२२९ • दुन्नि व तिन्न व चत्तारि पच मरणाइ अवीइमरणमि ।

कइ मरइ एगसमयसि विभासावित्थर जाणे ॥

सव्वे भवत्थजीवा मरति आवीइअ सया मरण ।

ओहि च आइअतिय दुन्निवि एयाइ मयणाए ॥

ओहि च आइअतिअ बाल तह पडिअ च मीसं च ।

छठम केवलिमरण अन्नुत्तनेण विरुक्कति ॥

(२) जहाँ तीन मरण एक साथ होते हैं, वहाँ छद्मस्थ-मरण और केवलि-मरण में से एक बढ़ जाता है ।

(३) जहाँ चार मरण की विवक्षा है, वहाँ भक्त-प्रत्याख्यान, इगिनी और पादपोषगमन में से एक बढ़ जाता है ।

(४) जहाँ पाँच मरण की विवक्षा है, वहाँ वैहायस और गृद्ध-पृष्ठ में से एक मरण बढ़ जाता है ।

(ख) शिथिल सयमी पण्डित

(१) जहाँ दो मरण की एक समय में विवक्षा है, वहाँ अवधि और आत्यन्तिक में से एक और किसी कारणवश वैहायस और गृद्धपृष्ठ में से एक ।

(२) कथचिद् शल्य-मरण होने से तीन भी हो जाते हैं ।

(३) जहाँ वलन्मरण होता है वहाँ एक साथ चार हो जाते हैं ।

(४) छद्मस्थ-मरण की जहाँ विवक्षा होती है, वहाँ एक साथ पाँच मरण हो जाते हैं ।

भक्त-प्रत्याख्यान, इङ्गिनी और प्रायोपगमन-मरण विशुद्ध सयम वाले पण्डितों के ही होता है । दोनों प्रकार के पण्डित-मरण की विवक्षा में तद्भव-मरण नहीं लिया गया है, क्योंकि वे देवगति में ही उत्पन्न होते हैं ।

बाल-पण्डित की अपेक्षा

(१) जहाँ दो मरण की एक समय में विवक्षा है, वहाँ अवधि और आत्यन्तिक में से कोई एक और बाल-पण्डित ।

(२) तद्भव-मरण साथ होने से तीन मरण ।

(३) वशार्च-मरण साथ होने से चार मरण ।

(४) कथचिद् आत्मघात करने वाले के वैहायस और गृद्ध-पृष्ठ में से एक साथ होने से पाँच^१ ।

३—मरण के दो भेद

गोम्मटसार में मरण के दो भेद किये गये हैं—(१) कदलीघात (अकालमृत्यु) और (२) सन्यास । विष-भक्षण, विषैले जीवों के काटने, रक्तक्षय, धातुक्षय, भयकर वस्तुदर्शन तथा उससे उत्पन्न भय, वस्त्रघात, सक्लेशक्रिया, श्वासोच्छ्वास के अवरोध और आहार न करने से समय में जो शरीर छूटता है, उसे कदलीघात-मरण कहा जाता है । कदलीघात सहित अथवा कदलीघात के बिना जो सन्यास रूप परिणामों से शरीर-त्याग होता है, उसे त्यक्त-शरीर कहते हैं । त्यक्त-शरीर के तीन भेद हैं—(१) भक्त-प्रतिज्ञा, (२) इगिनी और (३) प्रायोग्य । इनकी व्याख्या इस प्रकार है—

(१) भक्त-प्रतिज्ञा—भोजन का त्याग कर जो सन्यास मरण किया जाता है, उसे ‘भक्त-प्रतिज्ञा-मरण’ कहा जाता है । इसके तीन भेद हैं—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट । जघन्य का कालमान अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट का १३ वर्ष और शेष का मध्यवर्ती ।

(२) इङ्गिनी—अपने शरीर की परिचर्या स्वयं करे, दूसरों से सेवा न ले, इस विधि से जो सन्यास धारण पूर्वक मरण होता है उसे ‘इङ्गिनी-मरण’ कहा जाता है ।

(३) प्रायोग्य, प्रायोपगमन—अपने शरीर की परिचर्या न स्वयं करे और न दूसरों से कराए, ऐसे सन्यास पूर्वक मरण को प्रायोग्य या प्रायोपगमन-मरण कहा है ।^२

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २२७-२२८, बृहद् वृत्ति, पत्र २३७-२८ ।

२—गोम्मटसार (कर्मकाण्ड), गाथा ५७ ६१ ।

४—मरण के पाँच भेद

मूलाराधना में दूसरे प्रकार से भी मरण-विभाग प्राप्त होता है .

१—पण्डित-पण्डित-मरण,

२—पण्डित-मरण,

३—बाल-पण्डित-मरण,

४—बाल-मरण और

५—बाल-बाल-मरण ।^१

प्रस्तुत अध्ययन में मरण के दो प्रकार बतलाये गये हैं । इस अध्ययन का प्रतिपाद्य है अकाम-मृत्यु का परिहार और सकाम-मृत्यु का स्वीकरण ।

१ मूलाराधना आश्विन १, गाथा २६ पण्डित पण्डित मरणं पण्डित्य बालपण्डित चेव ।

बालमरण चउत्थ पचमय बालबाल च ॥

पंचम अञ्जयण : पचम अध्ययन अकाम-मरणिज्जं : अकाम-मरणीय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—अणवसि ^१ महोहसि ^१ एगे तिण्णे ^२ दुरुत्तर । तत्थ एगे महापन्ने इम पट्टमुदाहरे ^३ ॥	अणवे महींघे एकस्तीर्णो दुरुत्तरे । तत्र को महाप्रज्ञ इम स्पष्टमुदाहरेत् ॥	१—इस महा-प्रवाह वाले दुस्तर समार- समुद्र से कई तिर गए । उनमें एक महाप्राज्ञ (महावीर) ने स्पष्ट कहा—
२—सन्तिमे य ^४ दुवे ठाणा अक्खाया मारणन्तिया । अकाम-मरण चेव सकाम-मरण तथा ॥	स्त इमे च द्वे स्थाने आख्याते मारणान्तिके । अकाममरण चैव सकाममरणं तथा ॥	२—मृत्यु के दो स्थान कथित हैं— अकाम-मरण और सकाम-मरण ।
३—वालाण ^५ अकाम तु मरण असङ्ग भवे । पण्डियाण सकाम तु उक्कोसेण सङ्ग भवे ॥	वालानामकाम तु मरणमसङ्ग भवेत् । पण्डिताना सकाम तु उत्कर्षण सङ्ग भवेत् ॥	३—वाल जीवों के अकाम-मरण बार- बार होता है । पण्डितों के सकाम-मरण उत्कर्षण एक बार होता है ।
४—तत्थिम पढम ठाण महावीरेण देसिय । काम-गिद्धे जहा वाले भिस कूराड कुव्वई ॥	तत्रेद प्रथम स्थान महावीरेण देशितम् । काम-गृह्यो यथा वालो भृश क्रूराणि करोति ॥	४—महावीर ने उन दो स्थानों में पहला स्थान यह कहा है, जैसे कामामक्त वाल-जीव बहुत क्रूर-कर्म करता है ।

१ महोहसि (वृ० पा०) ।
२ तरह (वृ०, चू०,), तिण्णे (वृ० पा०) ।
३ पट्टमुदाहरे (वृ० पा०, चू० पा०, छ०) ।
४ खलु (चू०), ए (वृ०) ।
५ वालाण य (ऋ०) ।

५—जे गिद्धे काम-भोगेसु
एगे कूडाय गच्छई ।
न मे दिद्धे परे लोए
चक्खु-दिट्ठा इमा रई ॥

६—हत्थागया इमे कामा
कालिया जे अणागया ।
को जाणइ परे लोए
अत्थि वा नत्थि वा पुणो ? ॥

७—जणेण सद्धि होक्खामि
इइ बाले पगब्भई ।
काम-भोगाणुराएण
केस सपडिवज्जई ॥

८—तओ से दण्ड समारभई
तसेसु थावरेसु य ।
अट्ठाए य अणट्ठाए
भूयग्गाम विहिंसई ॥

९—हिंसे बाले मुसावाई
माइल्ले पिसुणे सढे ।
भुजमाणे सुर मसं
सेयमेय ति मन्नई ॥

१०—कायसा वयसा मत्ते
वित्ते गिद्धे य इत्थिसु ।
दुहओ मल सच्चिणइ
सिसुणागु व्व मट्ठिय ॥

यो गृद्ध' कामभोगेषु
एकः कूटाय गच्छति ।
न मया दृष्टः परो लोकः
चक्षुर्दृष्टेय रति ॥

हस्तागता इमे कामाः
कालिका येऽनागताः ।
को जानाति परो लोकः
अस्ति वा नास्ति वा पुनः ? ॥

“जनेन सार्धं भविष्यामि”
इति बाल प्रगल्भते ।
कामभोगानुरागेण
क्लेशं सम्प्रतिपद्यते ॥

ततः स दण्ड समारभते
त्रसेषु स्थावरेषु च ।
अर्थाय चानर्थाय
भूत-शर्म विहिनस्ति ॥

हिंस्रो बालो मृषावादी
मायी पिशुनः शठः ।
भुंजानः सुरां मास
श्रेय एतदिति मन्यते ॥

कायेन वचसा मत्त
वित्ते गृद्धश्च स्त्रीषु ।
द्विधामल सच्चिनोति
शिशुनाग इव मृत्तिकाम् ॥

५— जो कोई काम-भोगों में आसक्त होता है, उसकी गति मिथ्या-भाषण की ओर हो जाती है । वह कहता है—परलोक तो मैंने देखा नहीं, यह रति (आनन्द) तो चक्षु-दृष्ट है—आँखों के सामने है ।

६—ये काम-भोग हाथ में आए हुए हैं । भविष्य में होनेवाले सदिग्ध हैं । कौन जानता है—परलोक है या नहीं ?

७—‘मैं लोक-समुदाय के साथ रहूँगा’ (जो गति उनकी होगी वही मेरी)—ऐसा मानकर बाल-मनुष्य दृष्ट बन जाता है । वह काम-भोग के अनुराग से क्लेश पाता है ।

८—फिर वह त्रस तथा स्थावर जीवों के प्रति दण्ड का प्रयोग करता है और प्रयोजनवश अथवा बिना प्रयोजन ही प्राणी-समूह की हिंसा करता है ।

९—हिंसा करने वाला, झूठ बोलने वाला, छल-कपट करने वाला, चुगली खाने वाला, वेश परिवर्तन कर अपने आपको दूसरे रूप में प्रकट करने वाला अज्ञानी मनुष्य मद्य और मास का भोग करता है और ‘यह श्रेय है’—ऐसा मानता है ।

१०—वह शरीर और वाणी से मत्त होता है । धन और स्त्रियों में गृद्ध होता है । वह राग और द्वेष—दोनों से उसी प्रकार कर्म-मल का संचय करता है जैसे शिशुनाग (अलस या केंचुआ) मुख और शरीर—दोनों से मिट्टी का

११—तओ पुडो आयकेण
गिलाणो परितप्पई ।
पभीओ परलोगस्स
कम्माणुप्पेहि अप्पणो ॥

तत' स्पृष्टः आतकेन
ग्लान परितप्यते ।
प्रभीतः परलोकात्
कर्मानुप्रेक्षी आत्मन' ॥

११—फिर वह रोग से स्पृष्ट होने पर
ग्लान बना हुआ परितप करता है । अपने
कर्मों का चिन्तन कर परलोक में भयभीत
होता है ।

१२—सुया मे नरए ठाणा
असीलाण च जा गई ।
वालाण कूर-कम्माण
पगाढा जत्थ वेयणा ॥

श्रुतानि मया नरके स्थानानि
अशीलानां च या गतिः ।
वालाना क्रूर-कर्मणा
प्रगाढा यत्र वेदना ॥

१२—वह सोचता है—मैंने उन नारकीय
स्थानों के विषय में सुना है, जो शील
रहित तथा क्रूर-कर्म करने वाले अज्ञानी
मनुष्यों की अन्तिम गति है और जहाँ प्रगाढ़
वेदना है ।

१३—तत्थोववाडय ठाण
जहा मेयमणुस्सुय ।
आहाकम्मेहि गच्छन्तो
सो पच्छा परितप्पई ॥

तत्रोपपातिकं स्थानं,
यथा ममेतदनुभूतम् ।
यथाकर्मभिर्गच्छन्,
स पश्चात् परितप्यते ॥

१३—उन नरकों में जैसा औपपातिक
(उत्पन्न होने का) स्थान है, वैसा मैंने सुना
है । वह आयुष्य क्षीण होने पर अपने कृत-
कर्मों के अनुसार वहाँ जाता हुआ अनुताप
करता है ।

१४—जहा सागडिओ जाण
सम हिच्चा महापह ।
विसम मग्गमोइण्णो'
'अक्खे भग्गमि'^२ सोयई ॥

यथा शाकटिको जानन्,
समं हित्वा महापथम् ।
विषम मार्गमवतीर्णः,
अक्षे भग्ने शोचति ॥

१४—जैसे कोई गाड़ीवान् समतल राज-
मार्ग को जानता हुआ भी उसे छोड़कर विषम
मार्ग से चल पड़ता है और गाड़ी की धुरी
टूट जाने पर शोक करता है ।

१५—एव धम्म विउक्कम्म
अहम्म पडिवज्जिया ।
वाले मच्चु-मुह पत्ते
अक्खे भग्गे व सोयई ॥

एवं धर्मं व्युत्क्रम्य,
अधर्मं प्रतिपद्य ।
बाल' मृत्यु-मुखं प्राप्तः,
अक्षे भग्ने इव शोचति ॥

१५—इसी प्रकार धर्म का उल्लंघन कर,
अधर्म को स्वीकार कर, मृत्यु के मुख में पड़ा
हुआ अज्ञानी धुरी टूटे हुए गाड़ीवान् की
तरह शोक करता है ।

१६—तओ से मरणन्तमि
वाले सन्तस्सई^३ भया ।
अकाम-मरण मरई
धुत्ते व कलिना जिए ॥

तत' स मरणान्ते,
बालः सन्नस्यति भयात् ।
अकाम-मरणेन म्रियते,
धूर्त्त इव कलिना जितः ॥

१६—फिर मरणान्त के समय वह
अज्ञानी मनुष्य परलोक के भय से सन्नस्त
होता है और एक ही दाव में हार जाने वाले
जुआरी की तरह शोक करता हुआ अकाम-
मरण से मरता है ।

१ मग्गमोगाढा (चू०), मग्गमोगाढो (बृ० पा०) ।

२. अक्खभग्गमि (बृ०), अक्खस्स भग्गे (चू०) ।

३. सतसई (चू०) ।

१७—एय अकाम-मरण
बालाण तु पवेइय ।
एत्तो सकाम-मरण
पण्डियाण सुणेह मे ॥

एतदकाम-मरण,
बालाना तु प्रवेदितम् ।
इत. सकाम-मरण,
पण्डितानां शृणुत मे ॥

१७—यह अज्ञानियों के अकाम-मरण का प्रतिपादन किया गया है । अब पण्डितों के सकाम-मरण को मुझ से सुनो ।

१८—मरण पि सपुण्णाणं^१
जहा मेयमणुस्सुय ।
विप्पसणमणाघाय^२
सजयाण वुसीमओ ॥

मरणमपि सपुण्याना,
यथाममैतदनुश्रुतम् ।
विप्रसन्नमनाघात,
संयताना वृषीमताम् ॥

१८—जैसा मैंने सुना भी है—पुण्य-शाली, सयमी और जितेन्द्रिय पुरुषों का मरण प्रसन्न और आघात रहित होता है ।

१९—न इम 'सव्वेसु भिक्खू सु'^३
न इम सव्वेसुअगारिसु ।
नाणा-सीला अगारस्था
विसम-सीला य भिक्खुणो ॥

नेदं सर्वेषा भिक्षूणा,
नेदं सर्वेषा अगारिणाम् ।
नानाशीला अगारस्था,
विषमशीलाश्च भिक्षवः ॥

१९—यह सकाम-मरण न सब भिक्षुओं को प्राप्त होता है और न सभी गृहस्थों को । क्योंकि गृहस्थ विविध प्रकार के शील वाले होते हैं और भिक्षु भी विषम-शील वाले होते हैं ।

२०—सन्ति एगेहिं भिक्खूहिं
गारस्था संजमुत्तरा ।
गारस्थेहि य सव्वेहिं
साहवो सजमुत्तरा ॥

सन्त्येकेभ्यो भिक्षुभ्य,
अगारस्था. सयमोत्तराः ।
अगारस्थेभ्यश्च सर्वेभ्यः,
साधवः सयमोत्तरा ॥

२०—कुछ भिक्षुओं से गृहस्थों का सयम प्रधान होता है । किन्तु साधुओं का सयम सब गृहस्थों से प्रधान होता है ।

२१—चीराजिण नगिणिण^४
जडी-सघाडि-मुण्डिण ।
एयाणि वि न तायन्ति
दुस्सीळ परियागय ॥

चीराजिन नाग्न्यं,
जटित्व सङ्घाटीमुण्डित्वम् ।
एतान्यपि न त्रायन्ते,
दुशील पर्यागतम् ॥

२१—चीवर, चर्म, नग्नत्व, जटाधारीपन, सघाटी (उत्तरीय वस्त्र) और सिर मुडाना—ये सब दुष्टशील वाले साधु की रक्षा नहीं करते ।

२२—पिण्डोलए व^५ दुस्सीले
नरगाओ न मुच्चई ।
भिक्खाए वा गिहत्ये वा
सुव्वए कम्मई दिव ॥

पिण्डावल्लो वा दुःशीलो,
नरकान्न मुच्यते ।
भिक्षादो वा गृहस्थो वा,
सुव्रतः कामति दिवम् ॥

२२—भिक्षा से जीवन चलाने वाला भी यदि दुशील हो तो वह नरक से नहीं छूटता । भिक्षु हो या गृहस्थ, यदि वह सुव्रती है तो स्वर्ग में जाता है ।

१. सपुण्णाण (अ) ।

२. सपसन्नेहि अक्खाय (वृ० पा०, चू०), सप्पसन्नमणक्खाय (वृ०), विप्पसणमणाघाय (वृ० पा०) ।

३. सव्वेसि भिक्खूण (चू०) ।

४. गिणिणिण (वृ०), गियण (चू०) ।

५. वि० (अ० चू०) ।

२३—अगारि-सामाड्यगाड

सड्ढी काएण फासए ।
पोसह दुहओ पक्ख
एगाराय न हावए ॥

अगारि-सामायिकाङ्गानि,

श्रद्धी कायेन स्पृशति ।
पौषघ द्वयो पक्षयो,
एक रात्र न हापयति ॥

२३—अद्वालु श्रावक गृहस्थ-मामायिक
के अगों का आचरण करे । दोनों पक्षों में
किए जाने वाले पौषघ को एक दिन-रात के
लिए भी न छोड़ ।

२४—एव सिक्खा-समावन्ने

गिह-वासे^१ वि सुव्वए ।
मुच्चई छवि-पव्वाओ
गच्छे जक्ख-सलोगय ॥

एव शिक्षा-समापन्न,
गृह-वासेऽपि सुव्रत ।
मुच्यते छवि-पर्वणः,
गच्छेद्दयक्ष-सलोकताम् ॥

२४—उम प्रकार शिक्षा में समापन्न
मुव्रती मनुष्य गृहवास में रहता हुआ भी
औदारिक शरीर से मुक्त होकर देवलोक में
जाता है ।

२५—अह जे सवुडे भिक्खू

दोण्ह अन्नयरे^२ सिया ।
सव्वदुक्ख-प्पहीणे वा
देवे वावि महडिड्ढए ॥

अथ यः सवृत्तो भिक्षु,
द्वयोरन्यतर स्यात् ।
सर्व दुःख-प्रहीणो वा,
देवो वाऽपि महद्भिक्षः ॥

२५—जो सबूत-भिक्षु होता है, वह दोनों
में से एक होता है—सब दुःखों में मुक्त या
महान् ऋद्धि वाला देव ।

२६—उत्तराड विमोहाड

जुड्ढमन्ताणुपुव्वसो ।
समाडण्णाड जक्खेहि
आवासाड जससिणो ॥

उत्तरा विमोहा,
द्युतिमन्तोऽनुपूर्वशः ।
समाकीर्णा यक्षैः,
आवासा यशस्विन ॥

२६—देवताओं के आवास क्रमश उत्तम,
मोह रहित, द्युतिमान् और देवों से आकीर्ण
होते हैं । उनमें रहने वाले देव यशस्वी—

२७—दीहाउया डड्ढिमन्ता

समिद्धा काम-रूपिणो ।
अहुणोववन्न-सकासा
भुज्जो अच्चिमालि-प्पभा ॥

दीर्घायुष ऋद्धिमन्तः,
समृद्धा काम-रूपिण ।
अधुनोपपन्नसकाशा,
भूयोऽर्चिमालिप्रभा ॥

२७—दीर्घायु, ऋद्धिमान्, दीप्तिमान्,
इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, अभी
उत्पन्न हुए हों—ऐसी कान्ति वाले और सूर्य
के समान अति-तेजस्वी होते हैं ।

२८—ताणि ठाणाणि गच्छन्ति

सिक्खित्ता सजम तव ।
भिक्खाए वा गिहत्ये वा
जे सन्ति परिनिव्वुडा ॥

तानि स्थानानि गच्छन्ति,
शिक्षित्वा सयम तप ।
भिक्षादा वा गृहस्था वा,
ये सन्ति परिनिर्वृता ॥

२८—जो उपशान्त होते हैं, वे सयम और
तप का अभ्यास कर उन देव-आवासों में जाते
हैं, भले फिर वे भिक्षु हों या गृहस्थ ।

१ गिह-वासे (उ) ।

२ एगयरे (च०) ।

२९—तेसिं सोच्चा सपुज्जाण^१
संजयाण वुसीमओ ।
न सत्तसन्ति मरणन्ते
सीलवन्ता बहुस्सुया ॥

तेषां श्रुत्वा सत्पूज्यानां,
सयतानां वृषीमताम् ।
न सत्रस्यन्ति मरणान्ते,
शीलवन्तो बहुश्रुता ॥

३०—तुलिया विसेसमादाय
दया-धम्मस्स खन्तिए ।
विप्पसीएज्ज मेहावी
तहा-भूएण अप्पणा ॥

तोलयित्वा विशेषमादाय,
दया-धर्मस्य क्षान्त्या ।
विप्रसीदेन्मेघावी,
तथाभूतेनात्मना ॥

३१—तओ काले अभिप्पेए
सड्ढी तालिसमन्तिए ।
विणएज्ज लोम-हरिसं
भेय देहस्स कखए ॥

ततः काल अभिप्रेते,
श्रद्धा तादृशमन्तिके ।
विनयेल्लोम-हर्षं,
भेद देहस्य काङ्क्षेत् ॥

३२—अह कालमि सपत्ते
'आघायाय समुस्सय ।'^२
सकाम-मरण मरई
तिण्हमन्नयरं मुणी ॥
—त्ति वेमि ।

अथकाले सप्राप्ते,
आघातयन् समुच्छ्रयम् ।
सकाम-मरणेन म्रियते,
त्रयाणामन्यतरेण मुनि ॥

—इति ब्रवीमि ।

२९—उन सत्-पूजनीय, सयमी और
जितेन्द्रिय भिक्षुओं का पूर्वोक्त विवरण सुनकर
शीलवान् और बहुश्रुत भिक्षु मरणकाल में भी
सत्रस्त नहीं होते ।

३०—मेघावी मुनि अपने आपको तोल
कर, अकाम और सकाम-मरण के भेद को
जानकर यति-धर्मोचित सहिष्णुता और तथा-
भूत (उपशान्त मोह) आत्मा के द्वारा प्रसन्न
रहे—मरण-काल में उद्विग्न न बने ।

३१—जब मरण अभिप्रेत हो, उस समय
जिस श्रद्धा से मुनि-वर्म या सलेखना को
स्वीकार किया, वैसी ही श्रद्धा रखने वाला
भिक्षु गुरु के समीप कष्ट-जनित रोमाच को
दूर करे, शरीर के भेद की इच्छा करे—उसकी
सार संभाल न करे ।

३२—वह मरण-काल प्राप्त होने पर
सलेखना के द्वारा शरीर का त्याग करता है,
भक्त-परिज्ञा, इङ्गिनी या प्रायोपगमन—इन
तीनों में से किसी एक को स्वीकार कर
सकाम-मरण से मरता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. सपुज्जाण (चू०) ।

२. सतकखात समाहितो (चू०), आघायाए समुच्छयं (चू० पा०) ।

छठमः अध्यायः :
खुडुगनियंठिज्जं

षष्ठः अध्यायः :
शुल्लकः निर्यन्थीयः

आस्तुत्र

इस अध्ययन का नाम 'खुड्ढागनियठिज्ज'—'सुल्लक निग्रन्धीय' है। दशवैकालिक के तीसरे अध्ययन का नाम 'खुड्ढियायारकहा'—'सुल्लकाचार-कथा' और छठे अध्ययन का नाम 'महायारकहा'—'महाचार-कथा' है। इनमें क्रमशः मुनि के आचार का सक्षिप्त और विस्तृत निरूपण हुआ है। इसी प्रकार इस अध्ययन ने भी निग्रन्थ के बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थ-त्याग (परिग्रह-त्याग) का सक्षिप्त निरूपण है।^१

'निग्रन्थ' शब्द जैन-दर्शन का बहुत प्रचलित और बहुत प्राचीन शब्द है। बौद्ध-साहित्य में स्थान-स्थान पर भगवान् महावीर को 'निगण्ठ' (निग्रन्थ) कहा है। तपागच्छ पट्टावली के अनुसार सुधर्मा स्वामी ने आठ आचार्यों तक जैनधर्म 'निग्रन्थ-धर्म' के नाम से प्रचलित था।^२ अशोक के एक स्तम्भ-लेख में भी 'निग्रन्थ' का द्योतक 'निघट' शब्द प्रयुक्त हुआ है।^३

अविद्या और दुःख का गहरा सम्बन्ध है। जहाँ अविद्या है वहाँ दुःख है, जहाँ दुःख है वहाँ अविद्या है। पातजलि के शब्दों में अविद्या का अर्थ है—अनित्य से नित्य की अनुभूति, अशुचि से शुचि की अनुभूति, दुःख में सुख की अनुभूति और अनात्मा में आत्मा की अनुभूति।^४

सूत्र की भाषा में विद्या का एक पक्ष है सत्य और दूसरा पक्ष है मैत्री—'अप्पणा सच्चमेसेज्जा मेसिं भूयसु कप्पर (श्लोक २)।' जो कोरे विद्यावादी या ज्ञानवादी है उनकी मान्यता है कि यथार्थ को जान लेना पर्याप्त है, प्रत्याख्यान की कोई आवश्यकता नहीं। क्रिया का आचरण उनकी दृष्टि में व्यर्थ है। किन्तु भगवान् महावीर इसे वाग्वीर्य मानते थे, इसलिए उन्होंने आचरण-ग्रन्थ भाषावाद और विद्यानुशासन को अत्राण बतलाया (श्लोक ८-१०)।

ग्रन्थ (परिग्रह) को त्राण मानना भी अविद्या है। इसलिए भगवान् महावीर ने कहा—“परिवार त्राण नही है”, “धन भी त्राण नही है” (श्लोक ३-५)। और तो क्या अपनी देह भी त्राण नहीं है। साधुदेह-मुक्त नहीं होता फिर भी प्रतिपल उसके मन में यह चिन्तन होना चाहिए कि देह-धारण का प्रयोजन पूर्व-कर्मों को क्षीण करना है। लक्ष्य जो है वह बहुत ऊँचा है, इसलिए साधक को नीचे कही भी आसक्त नहीं होना चाहिए। उसकी दृष्टि सदा ऊर्ध्वगामी होनी चाहिये (श्लोक १३)। इस प्रकार इस अध्ययन में अध्यात्म की मौलिक विचारणाएँ उपलब्ध हैं।

इस अध्ययन के अन्तिम श्लोक का एक पाठान्तर है। उसके अनुसार इस अध्ययन के प्रज्ञापक भगवान् पार्श्वनाथ हैं।

मूल—

“एव से उदाहु अणुत्तरनाणी अणुत्तरदसी अणुत्तरनाणदसणधरे ।

अरहा नायपुत्ते भगव वेसाकिए वियाहिए ॥”

१ उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २४३ सावज्जगयमुक्का, अन्निभन्तरवाहिरेण गयेण । एसा खलु निज्जुत्ती, खुड्ढागनियठिज्जस्स ॥

२. तपागच्छपट्टावलि (५० कल्याणविजय संपादित) भाग १, पृष्ठ २५३ श्री सुधर्मास्वामिनोऽष्टौ सूरीन् यावत् निग्रन्था ।

३ दिल्ली-टोपरा का सप्तम स्तम्भ लेख निघटेसु पि मे'कटे (,) इमे वियापदा होएति ।

४ पातजल योगसूत्र २।५ अनित्याशुचिदु खानात्मसु नित्यशुचिदुःखात्मन्यातिरविद्या ।

पाठान्तर—

एव से उदाहृ अरिहा पासे पुरिसानाणीए ।

भगव वेसालीए बुद्धे परिणिव्वुर ॥ (बृहद् वृत्ति, पत्र ३७०)

यद्यपि चूर्णि और टीकाकार ने इस पाठान्तर का अर्थ भी महावीर से सम्बन्धित किया है। 'पास' का अर्थ—'पश्यतीति पाश' या 'पश्य' किया है। किन्तु यह सगत नहीं लगता। पुरुषादानीय—यह भगवान् पार्श्वनाथ का सुप्रसिद्ध विशेषण है। इसलिये उसके परिपार्श्व में 'पास' का अर्थ पार्श्व ही होना चाहिये। यद्यपि 'वेसालीय' विशेषण भगवान् महावीर से अधिक सम्बन्धित है फिर भी इसके जो अर्थ किये गए हैं उनकी मर्यादा से वह भगवान् पार्श्व का भी विशेषण हो सकता है।^१ भगवान् पार्श्व इक्ष्वाकुवशी थे। उनके गुण विशाल थे और उनका प्रवचन भी विशाल था, इसलिये उनके 'वैशालिक' होने में कोई आपत्ति नहीं आती। इस पाठान्तर के आधार से यह अनुमान किया जा सकता है कि यह अध्ययन मूलतः पार्श्व की परम्परा का रहा हो और इसे उत्तराध्ययन की श्रृंखला में सम्मिलित करते समय इसे महावीर की उपदेश-धारा का रूप दिया गया हो।

१. उत्तराध्ययन चूर्णि, पृष्ठ १५६ ५७. गुणा अस्य विशाला इति वैशालीय, विशाल शासन वा, विशाले वा इक्ष्वाकुवशे भवा वैशालिया।
"वैशाली जननी यस्य, विशाल कुलमेव च। विशाल प्रवचन वा, तेन वैशालिको जिन ॥"

छठमः अध्यायः : षष्ठ अध्यायन खुडुगनियंठिज्जं : क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय

मूल

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुवाद

१—जावन्तऽविज्जापुरिसा,
'सव्वे ते दुक्खसम्भवा ।'^१
लुप्पन्ति बहुसो मूढा
ससारमि अणन्तए ॥

यावन्तोऽविद्या पुरुषाः
सर्वे ते दुःख-सम्भवा ।
लुप्यन्ते बहुशो मूढाः
ससारेऽनन्तके ॥

१—जितने अविद्यावान् (मिथ्यात्व से अभिभूत) पुरुष हैं, वे सब दुःख को उत्पन्न करने वाले हैं। वे दिङ्मूढ़ की भाँति मूढ़ बने हुए इस अनन्त समार में बार-बार लुप्त होते हैं।

२—'समिक्ख पडिए तम्हा'^२
पासजार्इपहे वहू ।
अप्पणा^३ सच्चमेसेज्जा
मेत्ति भूएसु^४ कप्पए ॥

समीक्ष्य पण्डितस्तस्मात्
पाश-जातिपथान् ब्रून् ।
आत्मना सत्यमेव ये
मैत्रीं भूतेषु कल्पयेत् ॥

२—इसलिए पंडित पुरुष प्रचुर पाशों (बन्धनों) व जाति-पथों (चौरासी लाख योनियों) की समीक्षा कर स्वयं सत्य की गवेषणा करे और सब जीवों के प्रति मैत्री का आचरण करे।

३—माया पिया ण्डुसा भाया
, भज्जा पुत्ता य ओरसा ।
नाल ते मम ताणाय
लुप्पन्तस्स सकम्मुणा ॥

माता पिता स्नुषा भ्राता
भार्या पुत्राश्चौरसा ।
नालं ते मम त्राणाय
लुप्यमानस्य स्वकर्मणा ॥

३—जब मैं अपने द्वारा किये गये कर्मों से छेदा जाता हूँ, तब माता, पिता, पुत्र-वधू, भाई, पत्नी और औरस पुत्र—ये सभी मेरी रक्षा करने में समर्थ नहीं होते।

४—एयमट्ठ सपेहाए
पासे समियदसणे ।
छिन्द गेहि^५ सिणेहं च
न कखे पुव्वसथव ॥

एतमर्थं स्वप्रेक्षया
पश्येत् समित-दर्शनः ।
छिन्द्याद् गृद्धि स्नेहं च
न काङ्क्षेत् पूर्व-सस्तवम् ॥

४—सम्यक्-दर्शन वाला पुरुष अपनी बुद्धि से यह अर्थ देखे, गृद्धि और स्नेह का छेदन करे, पूर्व परिचय की अभिलाषा न करे।

१. ते सव्वे दुक्ख मज्झिमा (नागार्जुनीया) ।

२. तम्हा समिक्ख मेहावी (चू०, घृ० पा०), समिक्ख पंडिए तम्हा (चू० पा०) ।

३. अत्तट्ठा (घृ० पा०) ।

४. भूएसुहि (चू०) ।

५. गेह (उ) ।

५—गवास मणिकुण्डल
पशवो दासपोरुस ।
सव्वमेय चइत्ताणं
कामरूवी भविस्ससि ॥

गवाश्च मणि-कुण्डलं
पशवो दास-पौरुषेयं ।
सर्वमेतत् त्यक्त्वा
कामरूपी भविष्यसि ॥

५—गाय, घोडा, मणि, कुण्डल, पशु, दास और पुरुष-समूह—इन सबको छोड़ । ऐसा करने पर तू काम-रूपी (इच्छानुकूल रूप बनाने में समर्थ) होगा ।

१ [थावर जगम चैव
धण धण उवक्खरं ।
पच्चमाणस्स कम्मोहिं
नाल दुक्खाउ मोयणे ॥]

(स्थावरं जगम चैव
धन धान्यमुपस्करम् ।
पच्यमानस्य कर्मभि-
नालं दुःखान्मोचने ॥)

(चल और अचल संपत्ति, धन, धान्य और गृहोपकरण—ये सभी पदार्थ कर्मों से दुःख पाते हुए प्राणी को दुःख से मुक्त करने में समर्थ नहीं होते हैं ।

६—अज्झत्थ सव्वओ सव्व
दिस्स पाणे पियायए ।
'न हणे पाणिणो पाणे'^२
भयवेराओ उवरए ॥

अध्यात्मं सर्वतः सर्वं
दृष्ट्वा प्राणान्प्रियायुषः ।
न हन्यात्प्राणिनः प्राणान्
भय-वैरादुपरत ॥

६—सब दिशाओं से होने वाला सब प्रकार का अध्यात्म (सुख) जैसे मुझे इष्ट है, वैसे ही दूसरों को इष्ट है और सब प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है—यह देखकर भय और वैर से उपरत पुरुष प्राणियों के प्राणों का घात न करे ।

७—आयाण नरय दिस्स
नायएज्ज तणामवि ।
'दोगुच्छी'^३ अप्पणो पाए'^४
दिन्त भुजेज्ज भोयणं ॥

आदानं नरकं दृष्ट्वा
नाददीत तृणमपि ।
जुगुप्सी आत्मनः पात्रे
दत्त भुंजीत भोजनम् ॥

७—“परिग्रह नरक है”—यह देखकर वह एक तिनके को भी अपना बनाकर न रखे (अथवा “अदत्त का आदान नरक है”—यह देखकर बिना दिया हुआ एक तिनका भी न ले) । असयम से जुगुप्सा करने वाला मुनि अपने पात्र में गृहस्थ द्वारा प्रदत्त भोजन करे ।

८—इहमेगे उ मन्नन्ति
अप्पच्चक्खाय पावगं ।
आयरिय'^५ विदित्ताण
सव्वदुक्खा विमुच्चई ॥

इहैके तु मन्यन्ते
अप्रत्याख्याय पापकम् ।
आचरित विदित्वा
सर्व-दुःखा विमुच्यते ॥

८—इस ससार में कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि पापों का त्याग किये बिना ही आचार को जानने मात्र से जीव सब दुःखों से मुक्त हो जाता है ।

९—भणन्ता अकरेन्ता य
बन्धमोक्खपइण्णिणो ।
वायाविरियमेत्तेण
समासासेन्ति अप्पय ॥

भणन्तोऽकुर्वन्तश्च
बन्धमोक्ष-प्रतिज्ञावन्तः ।
वाग्-वीर्य-मात्रेण
समाश्वासयन्त्यात्मानम् ॥

९—“ज्ञान से ही मोक्ष होता है”—जो ऐसा कहते हैं, पर उसके लिए कोई क्रिया नहीं करते, वे केवल बन्ध और मोक्ष के सिद्धान्त की स्थापना करने वाले हैं । वे केवल वाणी की वीरता से अपने आपको आश्वासन देने वाले हैं ।

१. यह श्लोक चूर्णित व टीका में व्याख्यात नहीं है ।

२. नो हिंसेज्ज पाणिण पाणे (चू०), नो हणे पाणिण पाणे (वृ० पा०) ।

३. दोगच्छी (ऋ०) ।

४. अप्पणो पाणिपाते (चू० पा०) ।

५. आयरिय (वृ० पा०, उ० छ०) ।

१०—न चित्ता तायए भासा
कओ विज्जाणुसासण ?
विसन्ता पावकम्मेहि^१
वाला पडियमाणिणो ॥

न चित्रा त्रायते भाषा
कुतो विद्यानुशासनम् ?
विषण्णाः पाप-कर्मभिः
वालाः पण्डित-मानिनः ॥

१०—विविध भाषाएँ त्राण नहीं होती ।
विद्या का अनुशासन भी कहाँ त्राण देता है ?
(जो इनको त्राण मानते हैं वे) अपने आपको
पण्डित मानने वाले अज्ञानी मनुष्य विविध
प्रकार से पाप-कर्मों में डूबे हुए हैं ।

११—जे केई सरीरे सत्ता
वण्णे रूवे य सव्वसो ।
'मणसा कायवक्केण'^२
सव्वे ते दुक्खसभवा ॥

ये केचित् शरीरे सक्ताः
वर्णे रूपे च सर्वशः ।
मनसा काय-वाक्येन
सर्वे ते दुःखसभावाः ॥

११—जो कोई मन, वचन और काया
से शरीर, वर्ण और रूप में सर्वश आसक्त होते
हैं, वे सभी अपने लिए दुःख उत्पन्न करते हैं ।

१२—आवन्ता दीहमद्वाण
ससारमि अणत्तए ।
तम्हा सव्वदिस पस्स
अप्पमत्तो परिव्वए ॥

आपन्ता दीर्घमध्वान
ससारेऽनन्तके ।
तस्मात् सर्व दिशो दृष्ट्वा
अप्रमत्तः परिव्रजेत् ॥

१२—वे इम अनन्त ससार में जन्म-
मरण के लम्बे मार्ग को प्राप्त किए हुए हैं ।
इसलिए सब दिशाओं (उत्पत्ति स्थानों) को
देखकर मुनि अप्रमत्त होकर विचरे ।

१३—बहिया उड्ढमादाय
नावकखे कयाइ वि ।
पुव्वकम्मखयट्ठाए
इम देह समुद्धरे ॥

बहिरूर्ध्वमादाय
नावकाङ्क्षेत् कदाचिदपि ।
पूर्वकर्मक्षयार्थं
इम देह समुद्धरेत् ॥

१३—ऊर्ध्वलक्षी होकर कभी भी बाह्य
(विषयों) की आकांक्षा न करे । पूर्व कर्मों के
क्षय के लिए ही इस शरीर को धारण करे ।

१४—विविच्च^३ कम्मणो हेउं
कालकखी परिव्वए ।
माय पिंडस्स पाणस्स
कड लद्धूण भक्खए ॥

विविच्य कर्मणो हेतु
कालकांक्षी परिव्रजेत् ।
मात्रा पिण्डस्य पानस्य
कृत लब्ध्वा भक्षयेत् ॥

१४—कर्म के हेतुओं को दूर कर मुनि
समयज्ञ होकर विचरे । समय-निर्वाह के लिए
आहार और पानी की जितनी मात्रा आवश्यक
हो, उतनी गृहस्य के घर में सहज निष्पन्न
प्राप्त कर भोजन करे ।

१५—सन्निहि च न कुव्वेज्जा
लेवमायाए सजए ।
पक्खी पत्त समादाय
निरवेक्खो^४ परिव्वए ॥

सन्निधि च न कुर्वीत
लेप-मात्रया सयतः ।
पक्षी पात्र समादाय
निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥

१५—सयमी मुनि लेप लगे उतना भी
संग्रह न करे—वासी न रखे । पक्षी की भाँति
कल की अपेक्षा न रखता हुआ पात्र लेकर
भिक्षा के लिए पर्यटन करे ।

१. पावकिच्चेहि (वृ० पा०) ।

२. मणसा वयसा चेव (चू०, वृ), मणसा कायवक्केण (वृ० पा०) ।

३. विविच्च (अ, आ, इ, उ, वृ० पा०) ।

४. निरवेक्खी (चू०) ।

१६—एसणासमिओ लज्जू
गामे अणियओ चरे ।
अप्पमत्तो पमत्तेहिं
पिंडवाय गवेसए ॥

एषणा-समितो लज्जावान्
ग्रामेऽनियतश्चरेत् ।
अप्रमत्तः प्रमत्तेभ्य,
पिण्डपातं गवेषयेत् ॥

१६—एषणा-समिति से युक्त और
लज्जावान् मुनि गाँवों में अनियत विहार करे ।
वह अप्रमत्त रहकर गृहस्थों से पिण्डपात की,
गवेषणा करे ।

१७—एव से उदाहु अणुत्तरनाणी
अणुत्तरदसी अणुत्तरनाणदंसणधरे ।
अरहा नायपुत्ते
भगवं वेसालिए वियाहिए ॥^१
—त्ति वेमि ।

एव स उदाहृतवान् अनुत्तरज्ञानी
अनुत्तरदर्शी अनुत्तरज्ञानदर्शनधरः ।
अर्हन् ज्ञातपुत्रः
भगवान् वैशालिको व्याख्याता ॥
—इति ब्रवीमि

१७—अनुत्तर-ज्ञानी, अनुत्तर-दर्शी,
अनुत्तर-ज्ञान-दर्शन-धारी, अर्हन्, ज्ञातपुत्र,
वैशालिक और व्याख्याता भगवान् ने ऐसा
कहा है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. एव से उदाहु अरहा पासे पुरिसावाणीए ।

भगवते वेसालिए बुद्धे परिनिव्वुडे ॥ (नृ० पा०, चू० पा०) ।

સત્તમં અજ્ઞયણં :
ઉરન્નિજ્જં

સપ્તમ અધ્યયન :
ઉરધ્રીય

आसुख

इस अध्ययन का नामकरण इसके प्रारम्भ में प्रतिपादित 'उरभ्र' के दृष्टान्त के आधार पर हुआ है।

समवायाग (समवाय ३६) तथा उत्तराध्ययन निर्युक्ति में^१ इसका नाम 'उरब्भिज्ज' है। किन्तु अनुयोग-द्वारा (सूत्र १३०) में इसका नाम 'एलङ्गज' है। मूल पाठ (श्लोक १) में 'एलय' शब्द का ही प्रयोग हुआ है 'उरभ्र' का नहीं। उरभ्र और एलक—ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं, इसलिए ये दोनों नाम प्रचलित रहे हैं।

भ्रामण्य का आधार अनासक्ति है। जो विषय-वासना में आसक्त होता है, वह कभी दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता। विषयानुगृही में रसासक्ति का भी प्रमुख स्थान है। जो रसनेन्द्रिय पर विजय पा लेता है, वह अन्यान्य विषयों को भी सहजतया वश में कर लेता है। इस कथन को सूत्रकार ने दृष्टान्त से समझाया है। प्रथम चार श्लोकों में दृष्टान्त के संकेत दिए गए हैं। टीकाकार ने 'सम्प्रदायादवसेयम्' ऐसा उल्लेख कर उसका विस्तार किया है

एक सेठ था। उसके पास एक गाय, गाय का बछड़ा और एक मेढा था। वह मेढे को खूब खिलाता-पिलाता। उसे प्रतिदिन स्नान कराता, शरीर पर हल्दी आदि का लेप करता। सेठ के पुत्र उससे नाना प्रकार की क्रीड़ा करते। कुछ ही दिनों में वह स्थूल हो गया। बछड़ा प्रतिदिन यह देखता और मन ही मन यह सोचता कि मेढे का इतना लालन-पालन क्यों हो रहा है? सेठ का हम पर इतना प्यार क्यों नहीं है? मेढे को खाने के लिए जौ देता है और हमें सूखी घास। यह अन्तर क्यों? इन विचारों से उसका मन उदास हो गया। उसने स्तन-पान करना छोड़ दिया। उसकी माँ ने इसका कारण पूछा। उसने कहा—“माँ! यह मेढा पुत्र की तरह लालित-पालित होता है। उसे बढ़िया भोजन दिया जाता है। विशेष अलंकारों से उसे अलंकृत किया जाता है। और एक मैं हूँ मन्द-भाग्य कि कोई भी मेरी परवाह नहीं करता। सूखी घास चरता हूँ और वह भी भरपेट नहीं मिलती। समय पर पानी भी नहीं मिलता। कोई मेरा लालन-पालन नहीं करता। ऐसा क्यों है माँ?”

माँ ने कहा—

“आउरधिन्नाइ एयाइ, जाइ चरइ नदिओ।

सुवकत्तणोहि लादाहि, एय दीहाउलक्खण ॥ (उत्त० नि० गा० ३४६)

“वत्स! तू नहीं जानता। मेढा जो कुछ खा रहा है, वह आतुर-लक्षण है। आतुर (मरणासन्न) प्राणी को पथ्य और अपथ्य जो कुछ वह चाहता है, दिया जाता है। सूखी घास खाकर जीना दीर्घायु का लक्षण है। इस मेढे का मरण-काल सन्निकट है।”

कुछ दिन बीते। सेठ के घर मेहमान आए। बछड़े के देखते-देखते मोटे-ताजे मेढे के गले पर छुरी चली और उसका मांस पकाकर मेहमानों को परोसा गया। बछड़े का दिल भय से भर गया। उसने खाना-पीना छोड़ दिया। माँ ने कारण पूछा। बछड़े ने कहा—“माँ! जिस प्रकार मेढा मारा गया वया मैं भी मारा जाऊँगा?” माँ ने

१. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २४६

उरभाठणामगोय, वेयतो भावओ उ ओरुभो।

तत्तो समुट्ठियमिण, उरब्भिज्जन्ति अज्झयण ॥

कहा—“वत्स ! यह भय वृथा है । जो रस-गृह्य होता है, उसे उसका फल भी भोगना पड़ता है । तू सूखी घास चरता है, अतः तुझे ऐसा कटु विपाक नहीं सहना पड़ेगा ।”

इसी प्रकार हिंसक, अज्ञ, मृषावादी, मार्ग में लूटने वाला, चोर, मायावी, चुराने की कल्पना में व्यस्त, शठ, स्त्री और विषयो में गृह्य, महाभारम्भ और महापरिग्रह वाला, सुरा और मांस का उपभोग करने वाला, दूसरों का दमन करने वाला, बकरे की तरह कर-कर शब्द करते हुए मांस खाने वाला, तोंद वाला और उपचित रक्त वाला व्यक्ति उसी प्रकार नरक के आयुष्य की आकांक्षा करता है जिस प्रकार मेमना पाहुने की । (श्लोक ५-७)

भगवान् महावीर ने कहा—“अल्प के लिए बहुत को मत खोओ । जो ऐसा करता है, वह पीछे पश्चात्ताप करता है ।” इसी भावना को सूत्रकार ने दो दृष्टान्तों से समझाया है ।

(१) एक दमक था । उसने भीख माग-माग कर एक हजार कार्षापण एकत्रित किए । एक बार वह उन्हें साथ ले एक सार्थवाह के साथ अपने घर की ओर चला । रास्ते में भोजन के लिए उसने एक कार्षापण को काकिणियों में बदलाया और प्रतिदिन कुछ काकिणियों को खर्च कर भोजन लेता रहा । कई दिन बीते । उसके पास एक काकिणी शेष बची । उसे वह एक स्थान पर भूल आया । कुछ दूर जाने पर उसे वह काकिणी याद आ गई । अपने पास के कार्षापणों की नौली को एक स्थान पर गाड़ उसे लाने दौड़ा । परन्तु वह काकिणी किसी दूसरे के हाथों पड़ गई । उसे बिना प्राप्त किए लौटा तब तक एक व्यक्ति उस नौली को लेकर भाग गया । वह लुट गया । ज्यो-त्यों वह घर पहुँचा और पश्चात्ताप में डूब गया ।^१

(२) एक राजा था । वह आम बहुत खाता था । उसे आम का अजीर्ण हुआ । वैद्य आए । चिकित्सा की । वह स्वस्थ हो गया । वैद्यों ने कहा—“राजन् ! यदि तुम पुनः आम खाओगे तो जीवित नहीं बचोगे ।” उसने अपने राज्य के सारे आम के वृक्ष उखड़वा दिए । एक बार वह अपने मन्त्री के साथ अश्व-क्रीड़ा के लिए निकला । अश्व बहुत दूर निकल गया । वह थक कर एक स्थान पर रुका । वहाँ आम के बहुत वृक्ष थे । मन्त्री के निषेध करने पर भी राजा एक आम वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए बैठा । वहाँ अनेक फल गिरे पड़े थे । राजा ने उन्हें छुआ-

१. बृहद् वृत्ति पत्र २७२-७४ ।

जहेगो ऊरणगो पाहुणयणिमित्त पोसिज्जति, सो पीणियसरीरो छगहातो हलिदादिकयगरागो कयकणचूलतो कुमारगा य त नाणाविहेहि कीलाविसेसेहि कीलावेत्ति, त च वच्छगो एव लालिज्जमाण ददत्तण माऊए गेहेण य गोविय दोहएण य तयणुकपाए मुक्कमवि खीरं ण पिवति रोसेण, ताए पुच्छिओ भणति—अम्मो ! एस णदियगो सन्नेहि एएहि अम्हसामिसालेहि अद्देहि जवसजोगासणेहि तदुवधोगेहि च अलकारविसेसेहि अलकारितो पुत्त इव परिपालिज्जति, अहं तु मदभगो छक्काणि तणावि काहेवि लभामि, ताणिवि ण पज्जत्तगाणि, एव पाणियपि, ण य म कोऽवि लालेति । ताए भणति—पुत्त ! जहा आउरो मरिडकामो ज मग्गति पत्थ वा अपत्थ वा तं दिज्जति से, एव सो णदितो मारिज्जिहिति जदा तदा पेच्छिहिसि । ततो सो वच्छगो त नदियग पाहुणगेस आगएस वधिज्जमाण ददत्तु तिसितोऽवि भएण माऊए थण णामिलसति, ताए भणति—कि पुत्त ! भयभीतोऽसि ?, गेहेण पण्डुयपि मं ण पियसि, तेण भणइ—अम्म ! कतो मे थणा मिलासो ?, णणु सो वरातो णदितो अज केहिवि पाहुणएहि आगएहि मम अगगतो विणिग्गयजीहो विलोलनयणो विस्सर रसतो अत्ताणो असरणो मारितो, तवभयातो कतो मे पाउमिच्छा ?, ततो ताए भणति—पुत्त ! णणु तदा चेव ते कहिय, जहा—‘आउरचिण्णाइ “दीहाउलक्खण”, एस तेसि विवागो अणुपत्तो ।

२. वही, पत्र २७६ :

एगो दमगो, तेण विर्त्ति करेतेण सहस्स काहावणाण अज्जियं, सो य त गहाय सत्थेण सम सगिह पत्थितो, तेण भत्तणिमित्त रुवगो कागिणीहि भिन्नो, ततो दिणे दिणे कागिणीए भुज्जति, तस्स य अवसेसा एगा कागणी, सा विस्सारिया, सत्थे पहाविए सो चित्तेति—मा मे रुवगो भिदियव्वो होहिति णउल्लग एगत्य गोवेउ कागिणीणिमित्त णियत्तो, सावि कागिणी अन्नेण हडा, सोऽवि णउल्लतो अण्णेण दिट्ठो ठविज्जतो, सोवि त घेत्तण णट्ठो, पच्छा सो घर गतो सोयति ।

और सूँधा तथा खाने को इच्छा व्यक्त की। मंत्री ने निषेध किया पर राजा नहीं माना। उसने भरपेट आम खाए। उसकी तत्काल मृत्यु हो गई।^१

इसी प्रकार जो मनुष्य मानवीय काम-भोगों में आसक्त हो, थोड़े से सुख के लिए मनुष्य जन्म गँवा देता है वह शाश्वत सुखो को हार जाता है। देवताओं के काम-भागों के समक्ष मनुष्य के काम-भोग तुच्छ और अल्पकालीन है। दोनों के काम-भोगों में आकाश-पाताल का अन्तर है। मनुष्य के काम-भोग कुश के अग्रभाग पर टिके जल-बिन्दु के समान है और देवताओं के काम-भोग समुद्र के अपरिमेय जल के समान है (श्लोक ३३)। अतः मानवीय काम-भोगों में आसक्त नहीं होना चाहिए।

जो मनुष्य है और अगले जन्म में भी मनुष्य हो जाता है, वह मूल पूँजी की सुरक्षा है। जो मनुष्य-जन्म में अध्यात्म का आचरण कर आत्मा को पवित्र बनाता जाता है, वह मूल को बढ़ाता है। जो विषय-वासना में फँसकर मनुष्य जीवन को हार देता है—तिर्यच या नरक में चला जाता है—वह मूल को भी गँवा देता है (श्लोक १५)। इस आशय को सूत्रकार ने निम्न व्यावहारिक दृष्टान्त से समझाया है

एक बनिया था। उसके तीन पुत्र थे। उसने तीनों को एक-एक हजार कार्षापण देते हुए कहा—“इनसे तुम तीनों व्यापार करो और अमुक समय के बाद अपनी-अपनी पूँजी ले मेरे पास आओ।” पिता का आदेश पा तीनों पुत्र व्यापार के लिए निकले। वे एक नगर में पहुँचे और तीनों अलग-अलग स्थानों पर ठहरे। एक पुत्र ने व्यापार आरम्भ किया। वह सादगी से रहता और भोजन आदि पर कम खर्च कर धन एकत्रित करता। इससे उसके पास बहुत धन एकत्रित हो गया। दूसरे पुत्र ने भी व्यापार आरम्भ किया। जो लाभ होता उसको वह भोजन, मकान, वस्त्र आदि में खर्च कर देता। इससे वह धन एकत्रित न कर सका। तीसरे पुत्र ने व्यापार नहीं किया। उसने अपने शरीर-पोषण और व्यसनो में सारा धन गँवा डाला।

तीनों पुत्र यथासमय घर पहुँचे। पिता ने सारा वृत्तान्त पूछा। जिसने अपनी मूल पूँजी गँवा डाली थी, उसे नौकर के स्थान पर नियुक्त किया, जिसने मूल की सुरक्षा की थी, उसे गृह का काम-काज सौंपा और जिसने मूल को बढ़ाया था, उसे गृहस्वामी बना डाला।^२

मनुष्य-भव मूल पूँजी है। देवगति उसका लाभ है और नरकगति उसका क्षेदन है।

१ बृहद् वृत्ति, पत्र २७७

जहा कस्सइ रणो अवाजिणणेण विसूइया जाया, सा तस्स वेज्जेहि महता जत्तेण तिगिच्छया, भणितो य—जदि पुणो अवाणि खासि तो विणस्सति, तस्स य अतीव पीयाणि अवाणि, तेण सदेसे सन्वे अवा उच्छादिया। अणया अस्सवाहणियाण्णिगगतो सह अमच्चेण, अस्सेण अवहरिओ, अस्सो दूर गत्तूण परिस्सतो ठितो, एगमि वणसडे चूयच्छायाते अमच्चेण वारिज्जमाणोऽवि णिविट्ठो, तस्स य हेट्ठे अवाणि पडियाणि, सो ताणि परामुसति, पच्छा अग्धाति, पच्छा चक्खिउ णिदुहति, अमच्चो वारेइ, पच्छा भक्खेउ मतो।

२ वही, पत्र २७८-६ जहा एगस्स वाणियगस्स तिन्नि पुत्ता, तेण तेसि सहस्स सहस्स दिन्न काहावणाण भणिया य—एणुण ववहरिउण एत्तिण कालेण एज्जाह, ते त मूल घेत्तूण णिगगया सणगरातो, पिथप्पियेछ पट्ठेण्ड डिया, तत्थेगो भोयणच्छायणवज्ज जूयमज्जमसवेसाव-सणविरहितो विहीण ववहरमाणो विपुललाभसमन्नितो जातो, वित्तितो पुण मूलमवि दव्वतो लाभग भोयणच्छायणमल्लालकारादिछ उवभुजति, ण य अच्चादरेण ववहरति, तत्तितो न किंचि सववहरति, केवल जूयमज्जमसवेसगधमल्लतवोलसरीरकियाह अप्पेणेव कालेण त दव्व णिठुवियति, जहावहिकालस्स सपुरमागया। तत्थ जो छिन्नमूलो सो सव्वस्स असामी जातो, पेसण उवचरिज्जति, वित्तितो घरवावारे णिउत्तो भत्तपाणसतुट्ठो ण दायव्वभोत्तव्वेछ ववसायति, तत्तितो घरवित्थरस्स सामी जातो।

इस अध्ययन में पाँच दृष्टान्तों का निरूपण हुआ है ।^१ उनका प्रतिपाद्य भिन्न-भिन्न है । प्रथम (उरभ्र) दृष्टान्त विषय-भोगों के कटु-विपाक का दर्शन है (श्लोक १ से लेकर १० तक) । दूसरे और तीसरे (काकिणी और आम्रफल) दृष्टान्तों का विषय देव-भोगों के सामने मानवीय-भोगों की तुच्छता का दर्शन है (श्लोक ११ से लेकर १३ तक) । चौथे (व्यवहार) दृष्टान्त का विषय आय-व्यय के विषय में कुशलता का दर्शन है (श्लोक १४ से २२ तक) । पाँचवे (सागर) दृष्टान्त का विषय आय-व्यय की तुलना का दर्शन है (श्लोक २३ से २४ तक) ।

इस प्रकार इस अध्ययन में दृष्टान्त शैली से गहन तत्त्व की बड़ी सरस अभिव्यक्ति हुई है ।

१. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २४७ . ओरभ्रे अ काकिणी, अबए अ व्यवहार सागरे चेव ।
पचेए दिट्ठ ता, उरब्भिज्जमि अज्झयणे ॥

सप्तमं अज्झयणं : सप्तम अध्ययन

उरब्भिज्जं : उरभ्रीयम्

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—जहाएस कोइ पोसेज्ज एलय । ओयण 'जवस देज्जा' ^१ पोसेज्जा 'वि सयगणे' ^२ ॥	यथादेशं समुद्दिश्य कोऽपि पोषयेदेडकम् । ओदन यवस दद्यात् पोषयेदपि स्वकाङ्क्षणे ॥	१—जैसे पाहुने के उद्देश्य में कोई भेजने का पोषण करता है । उसे चावल, मूँग, उड़द आदि खिलाता है और अपने आँगन में ही पालता है ।
२—तओ से पुट्टे परिवूढे जायमेए महोदरे । पीणिए विउले देहे आएस परिकखए ^३ ॥	तत स पुण्डः परिवृढः जातमेदा महोदरः । प्रीणितो विपुले देहे आदेश परिकाङ्क्षति ॥	२—इस प्रकार वह पुष्ट, बलवान्, मोटा, बड़े पेट वाला, तृप्त और विपुल देह वाला होकर पाहुने की आकाङ्क्षा करता है ।
३—जाव न एइ ^४ आएसे ताव जीवइ से दुही । अह पत्तमि आएसे सीस छेत्तूण भुज्जई ॥	यावन्नन्त्यादेशः तावज्जीवति सोऽदु खी । अथ प्राप्त आदेशे शीर्षं छित्त्वा भुज्यते ॥	३—जब तक पाहुना नहीं आता है तब तक ही वह बेचारा जीता है । पाहुने के आने पर उसका मिर छेदकर उसे खा जाते हैं ।
४—जहा खलु से उरब्भे आएसाए समीहिए । एव वाले अहम्मिद्वे ईहई नरयाउय ॥	यथा खलु स उरभ्रः आदेशाय समीहितः । एव बालोऽर्घमिष्ठः ईहते नरकायुष्कम् ॥	४—जैसे पाहुने के लिए निश्चित किया हुआ वह भेजना यथार्थ में उसकी आकाङ्क्षा करता है, वैसे ही अर्घमिष्ठ अज्ञानी जीव यथार्थ में नरक के आयुष्य की इच्छा करता है ।

१. जवसे वेति (चू०) ।

२. विसयगणे (वृ० पा०, चू०) ।

३. पडि० (वृ०), परि० (वृ० पा०) ।

४. एज्जति (चू०) ।

५—हिंसे बाले^१ मुसावाई
अद्धाणमि विलोवए ।
अन्नदत्तहरे तेणे^२
माई कण्हुहरे^३ सढे ॥

६—इत्थीविसयगिद्धे य
महारभपरिगहे ।
भुजमाणे सुर मस
परिवूढे परदमे ॥

७—अयककरभोई य
तुदिल्ले चियलोहिण^४ ।
आउय नरए कंखे
जहाएस व एलए ॥

८—आसणं सयणं जाणं
वित्त कामे य भुजिया ।
दुस्साहड धण हिच्चा
बहु सचिणिया रयं ॥

९—तओ कम्मगुरू जन्तू
पच्चुप्पन्नपरायणे^५ ।
अय व्व आगयाएसे
मरणन्तमि सोयई ॥

१०—तओ आउपरिक्खीणे
'चुया देहा'^६ विहिंसगा^७ ।
आसुरिय दिसं बाला^८
'गच्छन्ति अवसा'^९ तम ॥

हिंस्रो बालो मृषावादी
अध्वनि विलोपकः ।
अन्यदत्तहरः स्तेन
मायीकुतोहरः शठः ॥

स्त्री-विषय-गुद्वश्च
महारम्भ-परिग्रहः ।
भुञ्जानः सुरा मांस
परिवृढः परन्दमः ॥

अजकर्कर-भोजी च
तुन्दिलः चित्तलोहितः ।
आयुर्नरके काङ्क्षति
यथाऽऽदेशमिव एडकः ॥

आसन शयन यान
वित्त कामांश्च भुक्त्वा ।
दुःसह्रतं घन हित्वा
बहु संचित्य रज ॥

ततः कर्मगुरुर्जन्तुः
प्रत्युत्पन्नपरायणः ।
अज इव आगते आदेशे
मरणान्ते शोचति ॥

तत आयुषि परिक्षीणे
च्युताः देहाद् विहिंसकाः
आसुरीया दिशं बालाः
गच्छन्ति अवशा. तमः ॥

५—हिंसक, अज्ञ, मृषावादी, मार्ग में लूटने वाला, दूसरो की दी हुई वस्तु का बीच में ही हरण करने वाला, चोर, मायावी, चुराने की कल्पना में व्यस्त, (किसका घन हरण करूँगा—ऐसे अव्यवसाय वाला) शठ,

६—स्त्री और विषयोमें गृद्ध, महाभारभ और महापरिग्रह वाला, सुरा और मांस का उपभोग करने वाला, बलवान्, दूसरो का दमन करने वाला,

७—बकरे की भाँति कर-कर शब्द करते हुए मांस को खाने वाला, तोंद वाला और उपचित्त लोही वाला व्यक्ति उसी प्रकार नरक के आयुष्य की आकाङ्क्षा करता है, जिस प्रकार मेमना पाहुने की ।

८—आसन, शय्या, यान, घन और काम-विषयों को भोगकर, दुःख से एकत्रित किये हुए घन को द्यूत आदि के द्वारा गँवाकर, बहुत कर्मों को संचित कर—

९—कर्मों से भारी बना हुआ, केवल वर्तमान को ही देखने वाला जीव मरणान्त-कालमें उसी प्रकार शोक करता है जिस प्रकार पाहुने के आने पर मेमना ।

१०—फिर आयु क्षीण होने पर वे नाना प्रकार की हिंसा करने वाले कर्मवशवर्ती अज्ञानी जीव देह से च्युत होकर अन्धकारपूर्ण आसुरीय दिशा (नरक) की ओर जाते हैं ।

१. कोही (वृ० पा०) ।
२. बाले (वृ०), तेणे (वृ० पा०) ।
३. किन्नुहरे (चू०), कन्नुहरे (छ०) ।
४. ंसोणिण (उ, ऋ०) ।
५. ंपलज्जणे (चू०) ।
६. चुओदेहा (वृ०), चुयदेहो (वृ० पा०) ।
७. विहिंसगो (वृ०) ।
८. बालो (वृ०) ।
९. गच्छद् अवसो (वृ०) ।

११—जहा कागिणिए हेउ
सहस्स हारए नरो ।
अपत्थ अम्बग भोच्चा
राया रज्ज तु हारए ॥

यथा काकिण्या हेतोः
सहस्र हारयेन्नर ।
अपथ्यमात्रक भुक्त्वा
राजा राज्य तु हारयेत् ॥

११—जैसे कोई मनुष्य काकिणी के लिए हजार (कार्पापण) गँवा देता है, जैसे कोई राजा अपथ्य व्राम को खाकर राज्य में हाथ धो बैठता है, वैसे ही जो व्यक्ति मानवीय भोगों में आसक्त होता है, वह देवी भोगों को हार जाता है ।

१२—एव माणुस्सगा कामा
देवकामाण अन्तिए ।
सहस्सगुणिया भुज्जो
आउ कामा य^१ दिव्विया ॥

एव मानुष्यका कामाः
देवकामानामन्तिके ।
सहस्र-गुणिता भूयः
आयुः कामाश्च दिव्यकाः ॥

१२—देवी भोगों की तुलना में मनुष्य के काम-भोग उतने ही नगण्य हैं जितने कि हजार कार्पापणों की तुलना में एक काकिणी और राज्य की तुलना में एक व्राम । दिव्य आयु और दिव्य काम-भोग मनुष्य की आयु और काम-भोगों में हजार गुना अधिक है ।

१३—अणेगवासानउया
जा सा पन्नवओ ठिई ।
जाणि जीयन्ति^२ दुम्मेहा
ऊणे वाससयाउए ॥

अनेकवर्ष-नयुतानि
या सा प्रज्ञावत स्थितिः ।
यानि जीयन्ते दुर्मेघसः
ऊने वर्षशतायुषि ॥

१३—प्रज्ञावान् पुरुष की देवलोक में अनेक वर्ष नयुत (अमर्यकाल) की स्थिति होती है—यह ज्ञात होने पर भी मूर्ख मनुष्य सौ वर्षों से कम जीवन के लिए उन दीर्घकालीन सुखों को हार जाता है ।

१४—जहा य तिन्नि वणिया
मूल घेत्तूण निग्गया ।
एगोऽत्थ लहई लाह
एगो मूलेण आगओ ॥

यथा च त्रयो वणिजः
मूलं गृहीत्वा निर्गता ।
एकोऽत्र लभते लाभम्
एको मूलेनागतः ॥

१४—जैसे तीन वणिक् मूल पूँजी को लेकर निकले । उनमें से एक लाभ उठाता है, एक मूल लेकर लौटता है ।

१५—एगो मूल पि हारित्ता
आगओ तत्थ वाणिओ ।
ववहारे उवमा एसा
एव धम्मे वियाणह ॥

एकोमूलमपि हारयित्वा,
आगतस्तत्र वाणिजः ।
व्यवहार उपमेषा
एव धर्मे विजानीत ॥

१५—और एक मूल को भी गँवाकर वापस आता है । यह व्यापार की उपमा है । इसी प्रकार धर्म के विषय में जानना चाहिए ।

१६—माणुसत्त भवे मूल
लाभो देवगई भवे ।
मूलच्छेएण जीवाण
नरगतिरिक्खत्तण ध्रुवं ॥

मानुषत्वं भवेन्मूलं
लाभो देवगतिर्भवेत् ।
मूलच्छेदेन जीवानां
नरक-तिर्यक्त्वं ध्रुवम् ॥

१६—मनुष्यत्व मूलधन है । देवगति लाभ रूप है । मूल के नाश से जीव निश्चित ही नरक और तिर्यञ्च गति में जाते हैं ।

१. उ (ऋ०) ।

२. हारिन्ति (वृ० पा०) ।

उत्तराध्ययनं (उत्तराध्ययन)

१७—दुहओ गई बालस्स
आवई वहमूलिया ।
देवत्त माणुसत्त च
ज जिए लोलयासढे ॥

१८—तओ जिए सइं होइ
दुविह दोगाइ गए ।
दुल्लाहा तस्स उम्मज्जा
अद्दाए सुइरादवि ॥

१९—एव जिय^१ सपेहाए
तुलिया बाल च पडिय ।
मूलियं ते पवेसन्ति
माणुस जोणिमेन्ति^२ जे ॥

२०—वेमायाहिं सिक्खाहिं
जे नरा गिहिसुच्चया ।
उवेन्ति माणुस जोणि
कम्मसच्चा^३ हु पाणिणो ॥

२१—जेसिं तु विउला सिक्खा
मूलिय ते अइच्छिया^४ ।
सीलवन्ता सवीसेसा
अदीणा जन्ति देवय ॥

२२—एवमदीणव^५ भिक्खु
अगारिं^६ च वियाणिया ।
कहण्णु जिच्चमेलिक्ख
'जिच्चमाणे न'^७ सविदे ? ॥

द्विधा गतिर्बालस्य
आपद् वध-मूलिका ।
देवत्व मानुषत्वं च
यज्जितो लोलता-शठ ॥

ततो जितः सदा भवति
द्विविधां दुर्गतिं गतः ।
दुर्लभा तस्योन्मज्जा
अद्धायां सुचिरादपि ॥

एवं जितं सम्प्रेक्ष्य
तोलयित्वा बाल च पण्डितम् ।
मौलिक ते प्रविशन्ति
मानुषीं योनिमायान्ति ये ॥

विमात्राभि शिक्षाभि.
ये नरा गृहि-सुव्रता ।
उपयन्ति मानुषीं योनिं
कर्म-सत्याः खलु प्राणिनः ॥

येषां तु विपुला शिक्षा
मौलिक तेऽतिक्रम्य ।
शीलवन्तः सविशेषाः
अदीना यान्ति देवताम् ॥

एवमदन्यवन्तं भिक्षुं
अगारिण च विज्ञाय ।
कथं नु जीयते ईदृक्ष
जीयमानो न सवित्ते ? ॥

१७—अज्ञानी जीव की दो प्रकार की गति होती है—नरक और तिर्यञ्च । वहाँ उसे वध-हेतुक आपदा प्राप्त होती है । वह लोलुप और वचक पुरुष देवत्व और मनुष्यत्व को पहले ही हार जाता है ।

१८—द्विविध दुर्गति में गया हुआ जीव सदा हारा हुआ होता है । उसका उनसे बाहर निकलना दीर्घकाल के बाद भी दुर्लभ है ।

१९—इस प्रकार हारे हुए को देखकर तथा बाल और पण्डित की तुलना कर जो मानुषी योनि में आते हैं, वे मूलघन के साथ प्रवेश करते हैं ।

२०—जो मनुष्य विविध परिमाण वाली शिक्षाओं द्वारा घर में रहते हुए भी सुव्रती है, वे मानुषी योनिभ्रं उत्पन्न होते हैं । क्योंकि प्राणी कर्म-सत्य होते हैं—अपने किये हुए का फल अवश्य पाते हैं ।

२१—जिनके पास विपुल शिक्षा है, वे शील-सम्पन्न और उत्तरोत्तर गुणों को प्राप्त करने वाले पराक्रमी (अदीन) पुरुष मूलघन (मनुष्यत्व) का अतिक्रमण करके देवत्व को प्राप्त होते हैं ।

२२—इस प्रकार पराक्रमी भिक्षु और गृहस्थ को (अर्थात् उनके पराक्रम-फल को) जानकर विवेकी पुरुष ऐसे लाभ को कैसे खोएगा ? वह कषायों के द्वारा पराजित होता हुआ क्या यह नहीं जानता कि "मैं पराजित हो रहा हूँ ?" यह जानते हुए उसे पराजित नहीं होना चाहिए ।

१ जिए (बु०) ।

२ जोणिमिन्ति (उ, चू०) ।

३ कम्मसच्चा (बु० पा०, चू० पा०) ।

४ तिउच्छिया (अ), ते उट्ठिया (चू०), ते अइच्छिया (चू० पा०), विउट्ठिया, अतिट्ठिया, अतिच्छिया (बु०) ।

५ एव अदीणव (चू०, बु०) ।

६ अगारिं (उ, ऋ०) ।

७ जिच्चमाणे न (चू०) ।

२३—जहा कुसगो उदग
समुद्रेण सम मिणे ।
एव माणुस्सगा कामा
देवकामाण अन्तिए ॥

यथा कुशाग्रे उदक
समुद्रेण सम भिनुयात् ।
एव मानुष्यकाः कामा
देव-कामानामन्तिके ॥

२३—मनुष्य सम्बन्धी काम-भोग, देव सम्बन्धी काम-भोगों की तुलना में वैसे ही है, जैसे कोई व्यक्ति कुश की नोक पर टिके हुए जल-विन्दु की ममूद्र से तुलना करता है ।

२४—कुसगमेत्ता इमे कामा
सन्निरुद्धमि आउए ।
कस्स हेउ पुराकाउ^१
जोगक्खेम न सविदे ? ॥

कुशाग्र-मात्रा इमे कामा
सन्निरुद्धे आयुषि ।
कं हेतु पुरस्कृत्य
योग-क्षेम न सवित्ते ?

२४—इस अति-मद्विष बायु में ये काम-भोग कुशाग्र पर स्थित जल-विन्दु जितने हैं । फिर भी किस हेतु को सामने रखकर मनुष्य योग-क्षेम को नहीं समझता ?

२५—इह कामाणियट्टस्स
अत्तट्ठे अवरज्झई ।
'सोच्चा^२ नेयाउय मग्ग
ज भुज्जो परिभस्सई'^३ ॥

इह कामाऽनिवृत्तस्य
आत्मार्योऽपराध्यति ।
श्रुत्वा नैर्यातृक मार्गं
यह भूय परिभ्रश्यति ॥

२५—इम मनुष्य भव में काम-भोगों में निवृत्त न होने वाले पुरुष का आत्म-प्रयोजन नष्ट हो जाता है । वह पार ले जाने वाले मार्ग को सुनकर भी बार-बार भ्रष्ट होता है ।

२६—'इह कामाणियट्टस्स
अत्तट्ठे नावरज्झई ।
पूइदेहनिरोहेण
भवे देवि त्ति मे सुय ॥'^४

इह काम-निवृत्तस्य
आत्मार्यो नापराध्यति ।
पूतिदेह-निरोधेन
भवेद् देव इति मयाश्रुतम् ॥

२६—इस मनुष्य भव में काम-भोगों में निवृत्त होने वाले पुरुष का आत्म-प्रयोजन नष्ट नहीं होता । वह पूतिदेह (औदारिक शरीर) का निरोध कर देव होता है—ऐसा मैंने सुना है ।

२७—इड्ढी जुई जसो वण्णो
आउं सुहमणुत्तर ।
भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु
तत्थ से उववज्जई ॥

ऋद्धिर्द्युतिर्यशोवर्णं
आयुः सुखमनुत्तरम् ।
भूयो यत्र मनुष्येषु
तत्र स उपपद्यते ॥

२७—(देवलोक से च्युत होकर) वह जीव विपुल ऋद्धि, द्युति, यश, वर्ण, जीवित और अनुत्तर मुख वाले मनुष्य-कुलों में उत्पन्न होता है ।

२८—वालस्स पस्स वालत्तं
अहम्म पडिवज्जिया^५ ।
चिच्चा धम्म अहम्मिट्ठे
नराए^६ उववज्जई ॥

बालस्य पश्यबालत्वम्
अधर्मं प्रतिपद्य ।
त्यक्त्वा धर्ममधर्मिष्ठः
नरके उपपद्यते ॥

२८—तू बाल (अज्ञानी) जीव की मूर्खता को देख । वह अधर्म को ग्रहण कर, धर्म को छोड़, अधर्मिष्ठ बन नरक में उत्पन्न होता है ।

१ पुरोकाउ (चू०) ।

२. पत्तो (वृ० पा०, चू० पा०) ।

३ पूइदेह निरोहेण
भवे देवे त्ति मे सुय (चू० पा०) ।

४. यह श्लोक चूर्णि में व्याख्यात नहीं है ।

५ पडिवज्जिणो (अ, वृ० पा०) ।

६. नराए (अ, उ) ।

२९—धीरस्स पस्स धीरत्तं
सव्वधम्ममाणुवत्तिणो ।
चिच्चा अधम्म धम्मिट्ठे^१
देवेसु उववज्जई ॥

धीरस्य पश्य धीरत्व
सर्वधर्मानुवर्तिनः ।
त्यक्त्वाऽधर्मं धर्मिष्ठ
देवेषु उपपद्यते ॥

२९—सब धर्मों का पालन करने वाले
धीर-पुरुष की धीरता को देख । वह अधर्म को
छोड़कर धर्मिष्ठ बन देवों में उत्पन्न होता है ।

३०—तुलियाण बालभावं
अबालं चेव पण्डिणं ।
चइऊण बालभावं
अबालं सेवए मुणि ॥
—त्ति वेमि ।

तोलयित्वा बाल-भावम्
अबालत्वं चैव पण्डितः ।
त्यक्त्वा बाल-भावम्
अबालत्वं सेवते मुनिः ॥
—इति ब्रवीमि ।

३०—पण्डित मुनि बाल-भाव और
अबाल-भाव की तुलनाकर, बाल-भाव को
छोड़, अबाल-भाव का सेवन करता है ।
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

अट्ठमं अज्झयणं :
काविलीयं

अष्टम अध्ययन :
कापिलीय

आस्तुत्त्व

कपिल ब्राह्मण था। लोभ की बाढ़ ने उसके मन में विरक्ति ला दी। उसे सही स्वरूप ज्ञात हुआ। वह मुनि बन गया। सयोगवश एक बार उसे चोरों ने घेर लिया। तब कपिल मुनि ने उन्हें उपदेश दिया। वह सगीतात्मक था। उसी का यहाँ संग्रह किया गया है। प्रथम मुनि गाते, चोर भी उनके साथ-ही-साथ गाने लग जाते। “अधुवे असासयमि, ससारमि दुक्खपउराए। न गच्छेज्जा ॥ यह प्रथम श्लोक ध्रुव पद था। मुनि कपिल द्वारा यह—अध्ययन गाया गया था, इसलिए इसे कापिलीय कहा गया है।^१ सूत्रकृताङ्ग चूर्णि में इस अध्ययन को ‘गेय’ माना गया है।^२

नाम दो प्रकार से होते हैं —(१) निर्देश्य (विषय) के आधार पर और (२) निर्देशक (वक्ता) के आधार पर। इस अध्ययन का निर्देशक कपिल है, इसलिए इसका नाम कापिलीय रखा गया है।^३

इसका मुख्य प्रतिपाद्य है—उस सत्य की शोध जिससे दुर्गति का अन्त हो जाए। सत्य-शोध में जो बाधाएँ हैं उन पर भी बहुत सुन्दर प्रकाश डाला गया है। लोभ कैसे बढ़ता है, इसका स्वयं अनुभूत चित्र प्रस्तुत किया गया है।

व्यक्ति के मन में पहले थोड़ा लोभ उत्पन्न होता है। वह उसकी पूर्ति करता है। मन पुनः लोभ से भर जाता है। उसकी पूर्ति का प्रयत्न होता है। यह क्रम चलता है परन्तु हर बार लोभ का उभार तीव्रता लिए होता है। ज्यों-ज्यों लाभ बढ़ता है त्यों-त्यों लोभ भी बढ़ता है। इसका अन्त तभी होता है जब व्यक्ति निर्लोभता की पूर्ण साधना कर लेता है।

उस काल और उस समय में कौशाम्बी नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसकी सभा में चौदह विद्याओं का पारगामी काश्यप नाम का ब्राह्मण था। उसकी पत्नी का नाम यशा था। उसके कपिल नाम का एक पुत्र था। राजा काश्यप से प्रभावित था। वह उसका बहुमान करता था। अचानक काश्यप की मृत्यु हो गई। उस समय कपिल की अवस्था छोटी थी। राजा ने काश्यप के स्थान पर दूसरे ब्राह्मण को नियुक्त कर दिया। वह ब्राह्मण जब घर से दरबार में जाता तब घोड़े पर आरुढ़ हो छत्र धारण करता था। काश्यप की पत्नी यशा जब यह देखती तो पति की स्मृति में विह्वल हो रोने लग जाती थी। कुछ काल बीता। कपिल भी बड़ा हो गया था। एक दिन जब उसने अपनी माँ को रोते देखा तो इसका कारण पूछा। यशा ने कहा—“पुत्र! एक समय था जब तुम्हारे पिता इसी प्रकार छत्र लगाकर दरबार में जाया-आया करते थे। वे अनेक विद्याओं के पारगामी थे। राजा उनकी विद्याओं से आकृष्ट था। उनके निधन के बाद राजा ने वह स्थान दूसरे को दे दिया है।” तब कपिल ने कहा—“माँ! मैं भी विद्या पढ़ूँगा।”

१ बृहद् वृत्ति, पत्र २८६.

ताहे ताणवि पच्चवि चोरसयाणि ताले कुट्टेति, सोऽवि गायति ध्रुवग, “अधुवे असासयमी, ससारमि दुक्खपउराए। किं णाम त होज कम्मय? जेणाह दुग्गह ण गच्छेज्जा ॥१॥” एव सन्वत्थ सिलोगन्तरे ध्रुवग गायति ‘अधुवेत्यादि’, तत्थ केह पढमसिलोगे सबुद्धा, केह धीए, एव जाव पच्चवि सया सबुद्धा पच्चतियति। “स हि भगवान् कपिलनामा ध्रुवक सङ्गीतवान्।

२ सूत्रकृताङ्ग चूर्णि, पृष्ठ ७

गेय णाम सरसचारेण, जधा काविलिज्जे—“अधुवे असासयमि, ससारमि दुक्खपउराए। न गच्छेज्जा ॥”

३ आवश्यक निर्युक्ति, गाथा १४१, वृत्ति

निर्देशकवशाज्जनवचन कापिलीयम्।

यश ने कहा—“ पुत्र ! यहाँ सारे ब्राह्मण ईर्ष्याकु है । यहाँ कोई भी तुम्हें विद्या नहीं देगा । यदि तू विद्या प्राप्त करना चाहता है तो श्रावस्ती नगरी में चला जा । वहाँ तुम्हारे पिता के परम मित्र इन्द्रदत्त नाम के ब्राह्मण हैं । वे तुम्हें विद्या पढ़ावेंगे ।”

कपिल ने माँ का आशीर्वाद ले श्रावस्ती की ओर प्रस्थान किया । पृथ्वी-पृथ्वी वह इन्द्रदत्त ब्राह्मण के यहाँ जा खड़ा हुआ । अपने समक्ष एक अपरिचित युवक को देखकर इन्द्रदत्त ने पूछा—“तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ?”

कपिल ने सारा वृत्तान्त सुनाया । इन्द्रदत्त कपिल के उत्तर से बहुत प्रभावित हुआ और उसके भोजन की व्यवस्था एक शालिभद्र नामक धनाढ्य वणिक् के यहाँ करके अध्यापन शुरू कर दिया । कपिल भोजन करने प्रतिदिन सेठ के यहाँ जाता और इन्द्रदत्त से अध्ययन करता । उसे एक दासी की पुत्री भोजन परोसा करती थी । वह हँसमुख स्वभाव की थी । कपिल कभी-कभी उससे मजाक कर लेता था । दिन बीते, उनका सम्बन्ध गाढ़ हो गया । एक बार दामी ने कपिल से कहा—“तू मेरा सर्वस्व है । तेरे पास कुछ भी नहीं है । मैं निर्वाह के लिए दूसरों के यहाँ रह रही हूँ अन्यथा तो मैं तेरी आज्ञा में रहती ।”

इसी प्रकार कई दिन बीते । दासी-महोत्सव का समय निकट आया । दासी का मन बहुत उदास हो गया । रात्रि में उसे नींद नहीं आई । कपिल ने इसका कारण पूछा । उसने कहा—“दासी-महोत्सव आ गया है । मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है । मैं कैसे महोत्सव को मनाऊँ ? मेरी सखियाँ मेरी निर्धनता पर हँसती हैं और मुझे तिरस्कार को दृष्टि से देखती हैं ।” कपिल का मन खिन्न हो गया । उसे अपने अपौरुष पर रोष आया । दासी ने कहा—“तुम इतना धैर्य मत खोओ । समस्या का एक समाधान भी है । इसी नगर में धन नाम का एक सेठ रहता है । जो व्यक्ति प्रातः काल उसे सबसे पहले बधाई देता है उसे वह दो माशा सोना देता है । तुम वहाँ जाओ । उसे बधाई देकर दो माशा सोना ले आओ । इससे मैं पूर्णता से महोत्सव मना लूँगी ।”

कपिल ने बात मान ली । कोई व्यक्ति उससे पहले न पहुँच जाए, यह सोच वह तुरंत घर से रवाना हो गया । रात्रि का समय था । नगर-आरक्षक इधर-उधर घूम रहे थे । उन्होंने इसे चोर समझ पकड़ कर बाँध लिया और प्रभात में उसे प्रसेनजित् राजा के सामने प्रस्तुत किया । राजा ने उससे रात्रि में अकेले घूमने का कारण पूछा । कपिल ने सहज व सरल भाव से सारा वृत्तान्त सुना दिया । राजा उसकी स्पष्टवादिता पर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—“ब्राह्मण ! आज मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ । तू जो कुछ माँगेगा वह मिलेगा ।” कपिल ने कहा—“राजन् ! मुझे कुछ सोचने का समय दिया जाए ।” राजा ने कहा—“यथा इच्छा ।”

कपिल राजा की आज्ञा ले अशोक वनिका में चला गया । वहाँ उसने सोचा—“दो माशा सोने से क्या होगा ? क्यों न मैं १०० मोहरें माँग लूँ ?” चिन्तन आगे बढ़ा । उसे १०० मोहरें भी तुच्छ लगने लगी । हजार, लाख, करोड़ तक उसने चिन्तन किया । परन्तु मन नहीं भरा । सन्तोष के बिना शान्ति कहाँ ? उसका मन आन्दोलित हो उठा । तत्क्षण उसे समाधान मिल गया । मन वैराग्य से भर उठा । चिन्तन का प्रवाह मुड़ा । उसे जाति-स्मृति-ज्ञान प्राप्त हो गया । वह स्वय-बुद्ध हो गया । वह स्वय अपना लुचन कर, प्रफुल्ल वदन हो राजा के पास आया । राजा ने पूछा—“क्या सोचा है, जल्दी कहो ।” कपिल ने कहा—“राजन् ! समय बीत चुका है । मुझे जो कुछ पाना था पा लिया है । तुम्हारी सारी वस्तुएँ मुझे वृत्ति नहीं कर सकीं । किन्तु उनकी अनाकाँक्षा ने मेरा मार्ग प्रशस्त कर दिया है । जहाँ लाभ है वहाँ लोभ है । ज्यों-ज्यों लाभ बढ़ता है त्यों-त्यों लोभ भी बढ़ता जाता है । दो माशा सोने की प्राप्ति के लिए मैं घर से निकला था किन्तु मेरी वृत्ति करोड़ में भी नहीं हुई । वृष्णा अनन्त है । इसकी पूर्ति वस्तुओं की उपलब्धियों से नहीं होती, वह होती है त्याग से, अनाकाँक्षा से ।”

राजा ने कहा—“ब्राह्मण ! मेरा वचन पूरा करने का मुझे अवसर दें। मैं करोड़ मोहरें भी देने के लिए तैयार हूँ।” कपिल ने कहा—“राजन् ! तृष्णा की अग्नि अब शान्त हो गई है। मेरे भीतर करोड़ से भी अधिक मूल्यवान् वस्तु पैदा हो गई है। मैं अब करोड़ का क्या करूँ ?” मुनि कपिल राजा के सान्निध्य से दूर चला गया। साधना चलती रहो। वे मुनि छह मास तक छद्मस्थ अवस्था में रहे।

राजगृही और कौशाम्बी के बीच १८ योजन का एक महा अरण्य था। वहाँ बलभद्र प्रमुख डकड़दास जाति के पाँच सौ चोर रहते थे। कपिल मुनि ने एक दिन ज्ञान-बल से जान लिया कि सभी चोर एक दिन अपनी पापकारी वृत्ति को छोड़कर सबुद्ध हो जायेंगे। उन सबको प्रतिबोध देने के लिए कपिल मुनि श्रावस्ती से चलकर उस महा अटवी में आये। चोरों के सन्देशवाहक ने उन्हें देख लिया। वह उन्हें पकड़ अपने सेनापति के पास ले गया। सेनापति ने इन्हें श्रमण समझ कर छोड़ते हुए कहा—“श्रमण ! कुछ सगान करो।” श्रमण कपिल ने हावभाव से सगान शुरू किया। “अधुवे असासयमि, ससारमि दुक्खपउरार” —यह ध्रुवपद था। प्रत्येक श्लोक के साथ यह गाया जाता था। कई चोर प्रथम श्लोक सुनते ही सबुद्ध हो गये, कई दूसरे, कई तीसरे, कई चौथे श्लोक आदि सुनकर। इस प्रकार पाँच सौ चोर प्रतिबुद्ध हो गये। मुनि कपिल ने उन्हें दीक्षा दी और वे सभी मुनि हो गये।

प्रसंगवश इस अध्ययन में अथित्याग, ससार की असारता, कुतोर्यिकों की अज्ञता, अहिंसा-विवेक, स्त्री-सगम का त्याग आदि-आदि विषय भी प्रतिपादित हुए हैं।

यह अध्ययन ‘ध्रुवक’ छन्द में प्रतिबद्ध है। जो छन्द सर्व प्रथम श्लोक में तथा प्रत्येक श्लोक के अन्त में गाया जाता है, उसे ‘ध्रुवक’ कहते हैं। वह तीन प्रकार का होता है—छह पदों वाला, चार पदों वाला और दो पदों वाला —

ज गिज्जइ पुव्व चिय, पुण पुणो सव्वकव्वधेसु ।

धुवयति तमिह तिविह, छप्पाय चउपय दुपय ॥ (बृहद् वृत्ति, पत्र ३८६)

इस अध्ययन में चार पदों वाले ध्रुवक का प्रयोग हुआ है।

अट्ठमं अज्झयण : अष्टम अध्यायन

काविलीयं : कापिलीयम्

मूल

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुवाद

१—‘अधुवे असासयमि’^१
ससारमि दुक्खपउराए ।
किं नाम होज्ज त कम्मय
‘जेणाह दोग्गइ न गच्छेज्जा’^२॥

अध्रु वेऽशाश्वते
ससारे दुःख-प्रचुरके ।
किं नाम तद् भवेत्कर्मक
येनाह दुर्गतिं न गच्छेयम् ॥

१—अध्रुव, अशाश्वत और दुःख-बहुल
ससार में ऐसा कौन-सा कर्म है, जिसमें मैं
दुर्गति में न जाऊँ ?

२—विजहित्तु पुव्वसजोगं
न सिणेह कहिंचि कुव्वेज्जा ।
असिणेह सिणेहकरेहिं
दोसपओसेहिं^३ मुच्चए भिक्खू ॥

विहाय पूर्व-सयोग
न स्नेह क्वचित् कुर्वीत ।
अस्नेह स्नेहकरेषु
दोष-प्रदोषं मुच्यते भिक्षु ॥

२—पूर्व सम्बन्धों का त्याग कर, किसी
भी वस्तु में स्नेह न करे । स्नेह करने वालों के
साथ भी स्नेह न करने वाला भिक्षु दोषों और
प्रदोषों से मुक्त हो जाता है ।

३—तो नाणदसणसमग्गो
हियनिस्सेसाए^४ सव्वजीवाण ।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए
भासई मुणिवरो विगयमोहो ॥

ततो ज्ञान-दर्शन-समग्रः
हित-निःश्रेयसाय सर्वजीवानाम् ।
तेषां विमोक्षणार्थं
भाषते मुनिवरो विगत-मोहः ॥

३—केवल ज्ञान और दर्शन में युक्त तथा
विगतमोह मुनिवर ने सब जीवों के हित और
कल्याण के लिए तथा उन पाँच सौ चोरो की
मुक्ति के लिए कहा ।

४—सव्व गन्थ कलह च
विप्पजहे तहाविहो^५ भिक्खू ।
‘सव्वेसु कामजाएसु’^६
पासमाणो न लिप्पई ताई ॥

सर्वं ग्रन्थ कलह च
विप्रजह्यात् तथाविध भिक्षुः ।
सर्वेषु काम-जातेषु
पश्यन् न लिप्यते त्रायी ॥

४—भिक्षु कर्म-बन्ध की हेतुभूत सभी
ग्रन्थियों और कलह का त्याग करे । काम-
भोगों के सब प्रकारों में दोष देखता हुआ
आत्म-रक्षक मुनि उनमें लिप्त न बने ।

१ अधुवमि मोहगहणए (नागार्जुनीया) ।

२ जेणाह (ध) दुग्गइतो मुच्छेज्जा (चू०, वृ० पा०) ।

३ दोसपण्हि (वृ०), दोसपउसेहिं (वृ० पा०) ।

४ हियनिस्सेसाय (चू०, छ०) ।

५ तहाविहो (वृ० पा०, चू० पा०) ।

६ सव्वेहिं कामजाण्हि (चू०) ।

५—भोगामिसदोसविसण्णे
हियनिस्सेयसबुद्धिवोच्चत्थे ।
वाले य मन्दिए मूढे
वज्झई मच्छिंया व खेलमि ॥

६—दुपरिच्चया इमे कामा
नो सुजहा अधीरपुरिसेहिं ।
अह सन्ति सुव्वया साहू^१
जे तरन्ति 'अतर वणिया व'^२ ॥

७—समणा मु एगे वयमाणा
पाणवह मिया अयाणन्ता ।
मन्दा निरय^३ गच्छन्ति
वाला पावियाहिं दिट्ठीहिं ॥

८—न हु पाणवह अणुजाणे
मुच्चेज्ज कयाइ सव्वदुक्खाण ।
एवारिएहिं^४ अक्खाय
जेहिं इमो साहुधम्मो पन्नत्तो ॥

९—पाणे य नाइवाएज्जा
से 'समि ए त्ति'^५ वुच्चई ताई ।
तओ से पावय कम्म
निज्जाइ^६ उदग व थलाओ ॥

१०—'जगनिस्सिएहिं भूएहिं
तसनामेहिं थावरेहिं च ।'^७
नो तेसिमारभे दंडं
मणसा वयसा कायसा चेव ॥

भोगामिष-दोष-विषण्ण.
व्यत्यस्त-हित-निःश्रेयस-बुद्धिः ।
बालश्च मन्दो मूढः
बध्यते मक्षिकेव क्ष्वेले ॥

दुष्परित्यजा इमे कामाः
नो सुहानाः अधीर-पुरुषैः ।
अथ सन्ति सुव्रताः साधवः
ये तरन्त्यतर वणिज इव ॥

श्रमणाः स्म एके वदन्तः
प्राण-वध मृगा अजानन्तः ।
मन्दा नरक गच्छन्ति
बाला पापिकाभिर्दृष्टिभिः ॥

न खलु प्राण-वध मनुजानन्
मुच्येत कदाचित्सर्व-दुःखैः ।
एवमार्यैराख्यात
यैरय साधु-धर्म-प्रज्ञप्तः ॥

प्राणांश्च नातिपातयेत्
स समित इत्युच्यते त्रायी ।
तत अथ पापक कर्म
निर्याति उदकमिव स्थलात् ॥

जगन्निश्चितेषु भूतेषु
त्रसनामसु स्थावरेषु च ।
न तेषु दण्डमारभेत
मनसा वचसाकायेन चैव ॥

५—आत्मा को दूषित करने वाले भोगामिष (आसक्ति-जनक भोग) में निमग्न, हित और श्रेयस् में विपरीत बुद्धि वाला, अज्ञानी, मन्द और मूढ़ जीव उसी तरह (कर्मों से) बध जाता है जैसे श्लेष्म में मक्खी ।

६—ये काम-भोग दुस्त्यज हैं, अधीर पुरुषों द्वारा ये सुत्यज नहीं हैं । जो सुव्रती साधु है, वे दुस्तर काम-भोगों को उसी प्रकार तर जाते हैं, जैसे वणिक समुद्र को ।

७—कुछ पशु की भाँति अज्ञानी पुरुष 'हम श्रमण हैं' ऐसा कहते हुए भी प्राण-वध को नहीं जानते । वे मन्द और बाल-पुरुष अपनी पापमयी दृष्टियों से नरक में जाते हैं ।

८—प्राण-वध का अनुमोदन करने वाला पुरुष कभी भी सर्व दुखों से मुक्त नहीं हो सकता । उन आर्य तीर्थङ्करों ने ऐसा कहा है, जिन्होंने इस साधु-धर्म की प्रज्ञापना की ।

९—जो जीवों की हिंसा नहीं करता, उस त्रायी मुनि को 'समित' (सम्यक् प्रवृत्त) कहा जाता है । उससे पाप-कर्म वैसे ही दूर हो जाते हैं, जैसे उन्नत प्रदेश से पानी ।

१०—जगत् के आश्रित जो त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उनके प्रति मन, वचन और काया—किसी भी प्रकार से दण्ड का प्रयोग न करे ।

१. सव्वे (चू०) ।

२. वणिया व समुह (वृ० पा०, चू०), अतर वणिया व (चू० पा०) ।

३. नरय (वृ० पा०, चू०) ।

४. एवारिएहिं (अ, ऋ०), एवमारिएहिं (आ, छ०) ।

५. समिय त्ति (चू०), समीए त्ति (अ); समीइ त्ति (उ, ऋ०) ।

६. निज्जाइ (वृ० पा०) ।

७. जगनिस्सियाण भूयाण तसाण थावराण य । (वृ० पा०); जगनिस्सित भूताण तसणामाणं च थावराण च । (चू०), जगनिस्सितेण थावरणामेण भूतेण तसणामेण वा । (चू० पा०), जगनिस्सिएहिं भूएहिं तसनामेहिं थावरे हिं वा । (चू०) ।

११—सुद्धेसणाओ नच्चाण
तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाण ।
जायाए घासमेसेज्जा
रसगिद्धे न सिया भिक्खाए ॥

शुद्धे षणा ज्ञात्वा
तत्रस्थापयेद् भिक्षुरात्मानम् ।
यात्रायै ग्रासमेषयेद्
रस-गृद्धो न स्याद् भिक्षादः ॥

११—भिक्षु शुद्ध एषणाओं को जानकर
उनमें अपनी आत्मा को स्थापित करे । यात्रा
(सयम-निर्वाह) के लिए ग्राम की एषणा करे ।
भिक्षा-जीवी रसों में गृद्ध न हो ।

१२—पन्ताणि चेव सेवेज्जा
सीयपिण्ड पुराणकुम्मास ।
अदु वुक्कस पुलग वा
'जवणट्टाए निसेवए'^१ मथु ॥

प्रान्तानि चैव सेवेत
शीत-पिण्ड पुराण-कुलमाषम् ।
अथ 'वुक्कस' पुलाक वा
यापनार्थं निषेवेत मन्थुम् ॥

१२—भिक्षु प्रान्त (नीरम) अन्न-पान,
शीत-पिण्ड, पुराने उडद, वुक्कस (सारहीन),
पुलाक (रुद्धा) या मथु (वैर या सत्तू का चूर्ण)
का जीवन-यापन के लिए मेवन करे ।

१३—जे लक्खण च सुविण च
अगविज्ज च जे पउजन्ति ।
न हु ते समणा वुच्चन्ति
एव आयरिएहि^२ अक्खाय ॥

ये लक्षण च स्वप्न च
अङ्ग-विद्याच ये प्रयुज्जन्ति ।
न खलु ते श्रमणा उच्यन्ते
एवमाचार्यैराख्यातम् ॥

१३—जो लक्षण-शाम्ब, स्वप्न-शाम्ब
और अङ्ग-विद्या का प्रयोग करते हैं, उन्हें साधु
नहीं कहा जाता—ऐसा आचार्यों ने कहा है ।

१४—इहजीविय अणियमेत्ता
पव्वभट्टा समाहिजोएहि ।
ते कामभोगरसगिद्धा
उववज्जन्ति आसुरे काए ॥

इह जीवित अनियम्य
प्रभ्रष्टाः समाधि-योगेभ्यः ।
ते कामभोग-रस-गृद्धाः
उपपद्यन्ते आसुरे काये ॥

१४—जो इस जन्म में जीवन को
अनियंत्रित रखकर समाधि-योग से परिभ्रष्ट
होते हैं, वे काम-भोग और रसों में आसक्त
वने हुए पुष्प अमुर-काय में उत्पन्न होते हैं ।

१५—तत्तो वि य उवट्टित्ता
ससार बहु अणुपरियडन्ति^३ ।
बहुकम्मलेवलित्ताण
वोही होइ^४ सुदुल्ला तेसि ॥

ततोऽपि च उद्भवृत्य
संसार बहुमनुपर्यटन्ति ।
बहुकर्म-लेप-लिप्तानां
बोधिर्भवति सुदुर्लभातेषाम् ॥

१५—वहाँ से निकल कर भी वे ममार में
बहुत पर्यटन करते हैं । वे प्रचुर कर्मों के लेप
से लिप्त होते हैं । इसलिए उन्हें बोधि प्राप्त
होना अत्यन्त दुर्लभ है ।

१६—कसिण पि जो इम लोय
पडिपुण्ण दलेज्ज इक्कस्स ।
तेणावि से न सत्तुस्से^५
इड दुप्परए इमे आया ॥

कृत्स्नमपि य इम लोक
प्रतिपूर्ण दद्यादेकस्मै ।
तेनापि स न सन्तुष्येत्
इति दुष्पूरकोऽप्यमात्मा ॥

१६—वन-वान्य से परिपूर्ण यह समूचा
लोक भी यदि कोई किसी को दे दे—उममे
भी वह सन्तुष्ट नहीं होता—वृत्त नहीं होता,
इतना दुष्पूर है यह आत्मा ।

१. जवणट्टा वा सेवए (वृ०), जवणट्टाए निसेवए (घृ० पा०) ।

२. आरिएहि (अ, घृ०) ।

३. अनुपरियटति (ऋ०), अनुपरियति (अ, वृ०), अनुचरति (वृ० पा०) ।

४. जत्थ (वृ० पा०) ।

५. सत्तुसिज्जा (ऋ०), तुसिज (उ), तुसिज्जा (अ), (स) तुस्से (चू०) ।

१७—जहा लाहो तहा लोहो
लाहा लोहो पवड्ढई ।
दोमासकय कज्जं
कोडीए वि न निट्ठिय ॥

१८—नो रक्खसीसु गिज्जेज्जा
गडवच्छासु ऽणेगचित्तासु ।
जाओ पुरिसं पलोभित्ता
खेल्लन्ति जहा व दासेहिं ॥

१९—नारीसु नोपगिज्जेज्जा
इत्थीविप्पजहे अणगारे ।
धम्म च पेसल नच्चा
तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं ॥

२०—इइ एस धम्मे अक्खाए
कविलेणं च विसुद्धपन्नेण ।
तरिहन्ति जे उ काहन्ति
तेहिं आराहिया दुवे लोग ॥
—त्ति वेमि ।

यथा लाभस्तथा लोभः
लाभाल्लोभ प्रवर्धते ।
द्विमाष-कृत कार्यं
कोट्याऽपि न निष्ठितम् ॥

न राक्षसीषु गृध्येत्
गण्डवक्षास्स्वनेक-चित्तासु ।
या पुरुष प्रलोभ्य
खेलन्ति यथे व दासैः ॥

नारीषु नोपगृध्येत्
स्त्री-विप्रजहोऽनगारः ।
धर्म च पेशलं ज्ञात्वा
तत्र स्थापयेद् भिक्षुरात्मानम् ॥

इत्येष धर्म आख्यातः
कपिलेन च विशुद्ध-प्रज्ञेन ।
तरिष्यन्ति ये तु करिष्यन्ति
तैराराधितौ द्वौ लोकौ ॥
—इति ब्रवीमि ।

१७—जैसे लाभ होता है वैसे ही लोभ
होता है । लाभ से लोभ बढ़ता है । दो मासे
सोने से पूरा होने वाला कार्य करोड़ से भी
पूरा नहीं हुआ ।

१८—वक्ष में ग्रन्थि (स्तनों) वाली, अनेक
चित्त वाली तथा राक्षसी की भाँति भयावह
स्त्रियो में आसक्त न हो, जो पुरुष को प्रलोभन
में डालकर उसे दास की भाँति नचाती है ।

१९—स्त्रियो को त्यागने वाला अनगार
उनमें गृद्ध न बने । भिक्षु धर्म को अति मनोज्ञ
जानकर उसमें अपनी आत्मा को स्थापित करे ।

२०—इस प्रकार विशुद्ध प्रज्ञा वाले कपिल
ने यह धर्म कहा । जो इसका आचरण करेंगे
वे तरेंगे और उन्होंने दोनो लोकों को आराध
लिया ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

नवमं अङ्गयणं :
नमिपव्वज्जा

नवम अध्ययन :
नमि-प्रवज्या

आस्तुत्र

मुनि वही बनता है जिसे बोधि प्राप्त है। वे तीन प्रकार के होते हैं—स्वय-बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध और बुद्ध-बोधित। (१) जो स्वयं बोधि प्राप्त करते हैं, उन्हें स्वय-बुद्ध कहा जाता है, (२) जो किसी एक घटना के निमित्त में बोधि प्राप्त करते हैं, उन्हें प्रत्येक-बुद्ध कहा जाता है और (३) जो बोधि-प्राप्त व्यक्तियों के उपदेश में बोधि-लाभ करते हैं, उन्हें बुद्ध-बोधित कहा जाता है।^१

इस सूत्र में तीनों प्रकार के मुनियों का वर्णन है—(१) स्वय-बुद्ध कपिल का आठवें अध्ययन में, (२)—प्रत्येक-बुद्ध - नमि का नौवें अध्ययन में और (३) बुद्ध-बोधित—मजय का अठारहवें अध्ययन में।

इस अध्ययन का सम्बन्ध प्रत्येक-बुद्ध मुनि से है। करकण्डु, द्विमुख, नमि और नग्गति—ये चारों समकालीन प्रत्येक-बुद्ध हैं। इन चारों प्रत्येक-बुद्धों के जीव पुष्पोत्तर नाम के विमान में एक साथ च्युत हुए थे। चारों ने एक साथ प्रव्रज्या ली, एक ही समय में प्रत्येक-बुद्ध हुए, एक ही समय में केवली बने और एक ही समय में सिद्ध हुए।^२

करकण्डु कलिंग का राजा था, द्विमुख पंचाल का, नमि विदेह का और नग्गति गंधार का।

बृद्धा वैल, इन्द्रध्वज, एक क कण की नीरवता और मजरी-विहीन आम्र वृक्ष—ये चारों घटनाएँ क्रमशः चारों की बोधि-प्राप्ति की हेतु बनीं।

एक बार चारों प्रत्येक-बुद्ध विहार करते हुए क्षितिप्रतिष्ठित नगर में आए। वहाँ व्यन्तरदेव का एक मन्दिर था। उसके चार द्वार थे। करकण्डु पूर्व दिशा के द्वार से प्रविष्ट हुआ, द्विमुख दक्षिण द्वार से, नमि पश्चिम द्वार से और नग्गति उत्तर द्वार से। व्यन्तरदेव ने यह सोच कर कि मैं साधुओं को पीठ देकर कैसे बैठूँ, अपना मुँह चारों ओर कर लिया।

करकण्डु खुजली से पीड़ित था। उसने एक कोमल कण्डूयन लिया और कान को खुजलाया। खुजला लेने के बाद उसने कण्डूयन को एक ओर धिपा लिया। द्विमुख ने यह देख लिया। उसने कहा—“मुने ! अपना राज्य, राष्ट्र, पुर, अत पुर—आदि सब कुछ छोड़कर तुम इस (कण्डूयन) का सचय क्यों करते हो ?” यह सुनते ही करकण्डु के उत्तर देने से पूर्व ही नमि ने कहा—“मुने ! आपके राज्य में आपके अनेक कृत्यकर—आज्ञा पाकने वाले थे। उनका

१—नदी, सूत्र ३०।

२—(क) सुखबोधा, पत्र १४४ नग्गति का मूल नाम मिहरथ था। वह कनकमाला (वैताद्व पर्वत पर तीरणपुर नगर के राजा वृद्धशक्ति की पुत्री) से मिलने पर्वत पर जाया करता था। प्रायः वहीं पर रहने के कारण उसका नाम ‘नग्गति’ पड़ा।

(ए) कुम्भकार जातक में उसे तक्षशिला का राजा बताया गया है और नाम नग्गजी (नग्गजित्) दिया है।

३—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २७०

पुष्फुत्तरात् चवण पव्वज्जा होइ एगसमएण।

पत्तेयबुद्धकेवलं सिद्धिं गया एगसमएण ॥

कार्य था दण्ड देना और दूसरों का परामर्श करना । इस कार्य को छोड़ आप मुनि बने । आज आप दूसरों के दोष क्यों देख रहे हैं ?” यह सुन नग्गति ने कहा—“जो मोक्षार्थी हैं, जो आत्म-मुक्ति के लिए प्रयत्न करते हैं, जिन्होंने सब कुछ छोड़ दिया है, वे दूसरों की गद्दी कैसे करेंगे ?” तब करकण्ठ ने कहा—“मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त साधु और ब्रह्मचारी यदि अहित का निवारण करते हैं तो वह दोष नहीं है । नमि, द्विमुख और नग्गति ने जो कुछ कहा है, वह अहित-निवारण के लिए हो अतः वह दोष नहीं है ।”^१

ऋषिभाषित प्रकीर्णक में ४५ प्रत्येक-बुद्ध मुनियों का जीवन निबद्ध है । उनमें से २० प्रत्येक-बुद्ध अरिष्टनेमि के तीर्थ में, १५ पार्श्वनाथ के तीर्थ में और १० महावीर के तीर्थ में हुए हैं।^२

(१) अरिष्टनेमि के तीर्थ में होने वाले प्रत्येक-बुद्ध—

१—नारद	११—मखली पुत्र
२—वज्जिय पुत्र	१२—याज्ञवल्क्य
३—असित दविल	१३—मैत्रय भयाली
४—भारद्वाज अगिरस	१४—बाहुक
५—पुष्पसाल पुत्र	१५—मधुरायण
६—वत्कलचीरि	१६—सोरियायण
७—कुर्मा पुत्र	१७—विदु
८—केतकी पुत्र	१८—वर्षप कृष्ण
९—महाकाश्यप	१९—आरियायण
१०—तेतलि पुत्र	२०—उत्कलवादी

(२) पार्श्वनाथ के तीर्थ में होने वाले प्रत्येक-बुद्ध—

१—गाहावती-पुत्र तरुण	९—वर्द्धमान
२—दगभाळ	१०—वायु
३—राम पुत्र	११—पार्श्व
४—हरिगिरि	१२—पिग
५—अम्बड़	१३—महाशाल-पुत्र अरुण
६—मातंग	१४—ऋषिगिरि
७—वारत्तक	१५—उद्दालक
८—आर्द्रक	

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २७६-२७९

जया रज्ज च रट्ट च, पुर अतेउर तहा ।
सव्वमेअ परिच्चज्ज, संचय किं करेसिम ? ॥
जया ते पेहणु रज्जे, कया किच्चकरा यहू ।
तेसि किच्च परिच्चज्ज, अज्ज किच्चकरो भव ॥
जया सव्व परिच्चज्ज, मुक्खाय घडसी भव ।
पर गरहसी कीस ? अत्तनीसेसकारण ॥
मुक्खमग्ग पवन्नेस, साहूस वभयारिह ।
अहिअत्थ निवारितो, न दोस वत्तुमरिहसि ॥

२—इसिभासिय, पढमा सगहिणी, गाथा १

पत्तेय बुद्धमिसिणो, वीरसं तित्थे अरिष्टनेमिस्स ।
पासस्म य पण्णरस, वीरस्स विलीणमोहस्स ॥

(३) महावीर के तीर्थ मे होने वाले प्रत्येक-बुद्ध—

१—विज तायायण

६—इन्द्रनाग

२—श्रीगिरि

७—सोम

३—साति-पुत्र बुद्ध

८—यम

४—सजय

९—वरुण

५—द्वीपायन

१०—वैश्रमण

करकण्डु आदि चार प्रत्येक-बुद्धों का उल्लेख इस तालिका मे नहीं है ।

विदेह राज्य मे दो नमि हुए है । दोनों अपने-अपने राज्य का त्यागकर अनगर बने । एक तीर्थङ्कर हुए, दूसरे प्रत्येक-बुद्ध ।' इस अध्ययन मे दूसरे नमि (प्रत्येक-बुद्ध) की प्रव्रज्या का विवरण है, इसलिए इसका नाम नमि-प्रव्रज्या रखा गया है ।

मालव देश के सुदर्शनपुर नगर मे मणिरथ राजा राज्य करता था । उसका कनिष्ठ भ्राता युगबाहु था । मदनरेखा युगबाहु की पत्नी थी । मणिरथ ने कपट पूर्वक युगबाहु को मार डाला । मदनरेखा उस समय गर्भवती थी । उसने जगल में एक पुत्र को जन्म दिया । उस शिशु को मिथिला-नरेश पद्मरथ ले गया । उसका नाम 'नमि' रखा ।

पद्मरथ के श्रमण बन जाने पर 'नमि' मिथिला का राजा बना । एक बार वह दाह-ज्वर से आक्रान्त हुआ । छह मास तक घोर वेदना रही । उपचार चला । दाह-ज्वर को शान्त करने के लिए रानियाँ स्वयं चन्दन घिसती । एक बार सभी रानियाँ चन्दन घिस रही थी । उनके हाथों मे पहिने हुए ककण बज रहे थे । उनकी आवाज से 'नमि' खिन्न हो उठा । उसने ककण उतार लेने को कहा । सभी रानियों ने सौभाग्य-चिह्न स्वरूप एक-एक ककण को छोड़कर शेष सभी उतार दिए ।

कुछ देर बाद राजा ने अपने मन्त्री से पूछा—“ककण का शब्द सुनाई क्यों नहीं दे रहा है ?” मन्त्री ने कहा—“स्वामिन् । ककणों के घर्षण का शब्द आपको अप्रिय लगा था इसलिए सभी रानियों ने एक-एक ककण रखकर शेष सभी उतार दिए । एक ककण से घर्षण नहीं होता और घर्षण के बिना शब्द कहाँ से उठे ?”

राजा नमि प्रबुद्ध हो गया । उसने सोचा सुख अकेलेपन मे है—जहाँ द्वन्द्व है—दो है—वहाँ दुःख है । विरक्त भाव से वह आगे बढ़ा । उसने प्रव्रजित होने का वृत्त सकल्प किया ।

अकस्मात् ही नमि को राज्य छोड़ प्रव्रजित होते देख उसकी परीक्षा के लिए इन्द्र ब्राह्मण का वेश बनाकर आता है, प्रणाम कर नमि को लुभाने के लिए अनेक प्रयत्न करता है और कर्त्तव्य-बोध देता है । राजा नमि ब्राह्मण को अध्यात्म की गहरी बात बताता है और ससार की असारता का बोध देता है ।

इन्द्र ने कहा—“राजन् । हस्तगत रमणीय भोगों को छोड़कर अपरोक्ष काम-भोगों की वाछा करना क्या उचित कहा जा सकता है (श्लोक ५१) ?” राजा ने कहा—“ब्राह्मण । काम त्याज्य है, वेशत्य है, विष के समान है, आशीविष सर्प के तुल्य है । काम-भोगों की इच्छा करने वाले उनका सेवन न करते हुए भी दुर्गति को प्राप्त होते हैं (श्लोक ५३) ।”

“आत्म-विजय ही परम विजय है”—इस तथ्य को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली है । इन्द्र ने कहा—“राजन् । जो कई राजा तुम्हारे सामने नहीं भुक्ते, पहले उन्हें वश मे करो, फिर मुनि बनना (श्लोक ३२) ।” नमि ने कहा—

“जो मनुष्य दुर्जेय सग्राम में दस लाख योद्धाओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा जो व्यक्ति एक आत्मा को जीतता है, वह उसकी परम विजय है। आत्मा के साथ युद्ध करना ही श्रेयस्कर है। दूसरों के साथ युद्ध करने से क्या लाभ ? आत्मा को आत्मा के द्वारा ही जीत कर मनुष्य सुख पाता है। पाँच इन्द्रियाँ तथा क्रोध, मान, माया, लोभ और मन—ये दुर्जेय हैं। एक आत्मा को जीत लेने पर ये सब जीत लिए जाते हैं (श्लोक ३४-३६)।”

“ससार में न्याय-अन्याय का विवेक नहीं है”—इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति यहाँ हुई है। इन्द्र ने कहा—“राजन् ! अभी तुम चोरों, कुटेरों, गिरहकटों का निग्रह कर नगर में शान्ति स्थापित करो, फिर मुनि बनना (श्लोक २८)।” नमि ने कहा—“ब्राह्मण ! मनुष्यों द्वारा अनेक बार मिथ्या-दण्ड का प्रयोग किया जाता है। अपराध नहीं करने वाले पकड़े जाते हैं और अपराध करने वाले छूट जाते हैं (श्लोक ३०)।”

इस प्रकार इस अध्ययन में जीवन के समग्र दृष्टिकोण को उपस्थित किया है। अन्यान्य आश्रमों से संन्यास आश्रम श्रेष्ठ है (श्लोक ४४), दान से सयम श्रेष्ठ है (श्लोक ४०), सन्तोष त्याग में है, भोग में नहीं (श्लोक ४८-४९) आदि-आदि भावनाओं का स्फुट निर्देश है। जब इन्द्र ने देखा कि राजा नमि अपने सकल्प पर अडिग है, तब उसने अपना मूल रूप प्रकट किया और नमि की स्तुति कर चला गया।

नवमं अङ्गथणं : नवम अध्ययन नमिपठवज्जा : नमि-प्रवज्जा

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—चइऊण देवलोगाओ उववन्तो माणुसमि लोगमि । उवसन्तमोहणिज्जो सरई पोराणिय जाइ ॥	च्युत्वा देवलोकात् उपपन्नो मानुषे लोके । उपशान्त-मोहनीयः स्मरति पौराणिकी जातिम् ॥	१—नमिराज का जीव देवलोक से च्युत होकर मनुष्य-लोक में उत्पन्न हुआ । उसका मोह उपशान्त था जिससे उसे पूर्व-जन्म की स्मृति हुई ।
२—जाइ सरित्तु भयव सहसबुद्धो अणुत्तरे धम्मो । पुत्त ठवेत्तु रज्जे अभिणिकखमई नमी राया ॥	जातिं स्मृत्वा भगवान् स्वय-सबुद्धोऽनुत्तरे धर्मे । पुत्र स्थापयित्वा राज्ये अभिनिष्क्रामति नमीराजा ॥	२—भगवान् नमिराज पूर्व-जन्म की स्मृति पाकर अनुत्तर धर्म की आराधना के लिए स्वय-सबुद्ध हुआ और राज्य का भार पुत्र के कंधों पर डालकर अभिनिष्क्रमण किया— प्रवज्जा के लिए चल पड़ा ।
३—से देवलोगसरिसे अन्तेउरवरगओ वरे भोए । भुजित्तु नमी राया बुद्धो भोगे परिच्चयई ॥	स देवलोक-सदृशान् वरान्त पुर-गतो वरान् भोगान् । भुक्त्वा नमीराजा बुद्धो भोगान् परित्यजति ॥	३—उस नमिराज ने प्रवर अन्त पुर में रहकर देवलोक के भोगों के समान प्रधान भोगों का भोग किया और सबुद्ध होने के पश्चात् उन भोगों को छोड़ दिया ।
४—मिहिल सपुरजणवय वलमोरोह च परियण सव्व । चिच्चा अभिमिक्खन्तो एगन्तमहिद्धिओ भयव ॥	मिथिला सपुरजनपदा वलमवरोध च परिजन सर्वम् । त्यक्त्वाऽभिनिष्क्रान्तः एकान्तमधिष्ठितो भगवान् ॥	४—भगवान् नमिराज ने नगर और जन-पद सहित मिथिला नगरी, सेना, रनिवास और सब परिजनो का छोड़ कर अभिनिष्क्रमण किया और एकान्तवासी बन गया ।
५—कोलाहलगभूय आसी मिहिलाए पव्वयन्तमि । तइया रायरिसिमि नमिमि अभिणिकखमन्तमि ॥	कोलाहलकभूतम् आसीन्मिथिलाया प्रव्रजति । तदारानर्थो नमौ अभिनिष्क्रामति ॥	५—जब राजपि नमि अभिनिष्क्रमण कर रहा था, प्रव्रजित हो रहा था, उस समय मिथिला में सब जगह कोलाहल होने लगा ।

६—अव्भुट्टिय रायरिसि
पव्वज्जाठाणमुत्तम ।
सक्को माहणरूवेण
इम वयणमव्ववी ॥

७—किण्णु भो । अज्ज मिहिलाए
कोलाहलगसकुला ।
सुव्वन्ति दारुणा सद्दा
पासाएसु गिहेसु य ? ॥

८—एयमट्ठ निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्द इणमव्ववी ॥

९—मिहिलाए चेइए वच्छे
सीयच्छाए मणोरमे ।
पत्तपुप्फफलोवेए
वहूण बहुगुणे सया ॥

१०—वाएण हीरमाणमि
चेइयमि मणोरमे ।
दुहिया असरणा अत्ता
एए कन्दन्ति भो । खगा ॥

११—एयमट्ठ निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

१२—एस अग्गी य वाऊ य
एय उज्झड मन्दिर ।
भयव । अन्तेउर तेणं
कीस ण नावपेक्खसि^१ ? ॥

अभ्युत्थित राजर्षि
प्रव्रज्या-स्थानमुत्तमम् ।
शक्रो ब्राह्मण-रूपेण
इद वचनमब्रवीत् ॥

किन्तु भो ! अद्य मिथिलायां
कोलाहलक-सकुलाः ।
श्रूयन्ते दारुणा. शब्दाः
प्रासादेषु गृहेषु च ? ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजर्षिः
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

मिथिलाया चैत्यो वृक्षः
शीतच्छायां मनोरम ।
पत्र-पुष्प-फलोपेतः
बहूनां बहु-गुणः सदा ॥

वातेन हियमाणे
चैत्ये मनोरमे ।
दुःखिता अशरणा आर्ता
एते क्रन्दन्ति भो ! खगाः ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

एषोऽग्निश्च वायुश्च
एतद् दह्यते मन्दिरम् ।
भगवन् ! अन्त पुरं तेन
कस्मान्नावप्रेक्षसे ? ॥

६—उत्तम प्रव्रज्या-स्थान के लिए उद्यत
हुए राजर्षि से देवेन्द्र ने ब्राह्मण के रूप में
आकर इस प्रकार कहा—

७—हे राजर्षि ! आज मिथिला के
प्रासादों और गृहों में कोलाहल से परिपूर्ण
दारुण शब्द क्यों सुनाई दे रहे हैं ?

८—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण से
प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस प्रकार
कहा—

९—मिथिला में एक चैत्य-वृक्ष था,
शीतल छाया वाला, मनोरम, पत्र, पुष्प और
फलों से लदा हुआ और बहुत पक्षियों के लिए
सदा उपकारी ।

१०—एक दिन हवा चली और उस
चैत्य-वृक्ष को उखाड़ कर फेंक दिया । हे ब्राह्मण ।
उसके आश्रित रहने वाले ये पक्षी दुःखी, अशरण
और पीड़ित होकर आक्रन्द कर रहे हैं ।

११—इस अर्थ को सुनकर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

१२—यह अग्नि है और यह वायु है ।
यह आपका मन्दिर जल रहा है । भगवन् !
आप अपने रनिवाम की ओर क्यों नहीं देखते ?

१३—एयमट्ट निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्द इणमव्ववी ॥

१४—सुह वसामो जीवामो
जेसि मो नत्थि किंचण ।
मिहिलाए डज्झमाणीए
न मे डज्झइ किंचण ॥

१५—चत्तपुत्तकलत्तस्स
निव्वावारस्स भिक्खुणो ।
पिय न विज्जई किंचि
अप्पिय पि न विज्जए ॥

१६—वहु खु मुणिणो भद्द
अणगारस्स भिक्खुणो ।
सव्वओ विप्पमुक्कस्स
एगन्तमणुपस्सओ ॥

१७—एयमट्ट निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

१८—पागार कारडत्ताण
गोपुरट्टालगाणि च ।
उस्सूलगसयग्घीओ^१
तओ गच्छसि खत्तिया । ॥

१९—एयमट्ट निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्द इणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजर्षि.
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

सुख वसामो जीवाम
येषा नो नास्ति किंचन ।
मिथिलाया दह्यमानाया
न मे दह्यते किंचन ॥

त्यक्त-पुत्र-कलत्रस्य
निर्व्यापारस्य भिक्षोः ।
प्रिय न विद्यते किंचित्
अप्रियमपि न विद्यते ॥

वहु खलु मुनेर्भद्र
अनगरस्य भिक्षोः ।
सर्वतो विप्रमुक्तस्य
एकान्तमनुपश्यतः ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

प्राकार कारयित्वा
गोपुराट्टालकानि च ।
अवचूलक-शतघ्नी
ततो गच्छ क्षत्रिय । ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजर्षि
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

१३—यह अर्थ सुनकर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

१४—वे हम लोग, जिनके पास अपना
कुछ भी नहीं है, सुख पूर्वक रहते और
सुख से जीते हैं । मिथिला जल रही है उसमें
मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है ।

१५—पुत्र और स्त्रियो से मुक्त तथा
व्यवसाय से निवृत्त भिक्षु के लिए कोई वस्तु
प्रिय भी नहीं होती और अप्रिय भी नहीं
होती ।

१६—सब वन्धनों से मुक्त, 'मैं अकेला
हूँ, मेरा कोई नहीं'—इस प्रकार एकत्व-दर्शी,
गृह-त्यागी एवं तपस्वी भिक्षु को विपुल सुख
होता है ।

१७—इस अर्थ को सुनकर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

१८—हे क्षत्रिय । अभी तुम परकोटा,
बुर्ज वाले नगर-द्वार, खाई और शतघ्नी (एक
बार में सौ व्यक्तियों का सहार करने वाला
यंत्र) बनवाओ, फिर मुनि वन जाना ।

१९—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण से
प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार
कहा—

२०—सद्धं नगर^१ किच्चा
तवसवरमंगल ।
'खन्ति निउणपागार
तिगुत्त दुप्पघसयं'^२ ॥

२१—धणु परक्कम किच्चा
जीव च इरिय सया ।
धिइ च केयण किच्चा
सच्चेण पलिमन्थए^३ ॥

२२—तवनारायजुत्तेण
भेत्तूण कम्मकचुय ।
मुणी विगयसगामो
भवाओ परिमुच्चए ॥

२३—एयमट्ट निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

२४—पासाए^४ कारइत्ताण
वद्धमाणगिहाणि य ।
वालग्गपोइयाओ य
तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥

२५—एयमट्ट निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्द इणमव्ववी ॥

श्रद्धां नगरं कृत्वा
तप संवरमंगलाम् ।
क्षान्ति निपुण-प्राकारं
त्रिगुणं दुष्प्रघर्षकम् ॥

धनुः पराक्रमं कृत्वा
जीवांचेर्या सदा ।
धृतिं च केतनं कृत्वा
सत्येन परिमथनीयात् ॥

तपो-नाराच-युक्तेन
भित्त्वा कर्म-कचुकम् ।
मुनिर्विगत-सङ्ग्रामः
भवात्परिमुच्यते ॥

एतमर्थं निश्चय्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

प्रासादान्कारयित्वा
वर्धमान-गृहाणि च ।
'वालग्गपोइयाओ' च
ततो गच्छ क्षत्रिय ! ॥

एतमर्थं निश्चय्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजर्षिः
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

२०—श्रद्धा को नगर, तप और सयम
को अर्गला, क्षमा को (बुर्ज, खाई और शतघ्नी
स्थानीय) मन, वचन और काय-गुप्ति से
सुरक्षित, दुर्जेय और सुरक्षा-निपुण परकोटा
बना,

२१—पराक्रम को धनुष, ईर्या-समिति
को उसकी डोर और धृति को उसकी मूठ बना,
उसे सत्य से बाँधे ।

२२—तप-रूपी लोह-वाण से युक्त धनुष
के द्वारा कर्म-रूपी कवच को भेद डाले । इस
प्रकार सग्राम का अन्त कर मुनि ससार से
मुक्त हो जाता है ।

२३—इस अर्थ को सुनकर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

२४—हे क्षत्रिय ! अभी तुम प्रासाद,
वर्धमान-गृह और चन्द्रशाला बनवाओ, फिर
मुनि वन जाना ।

२५—यह अर्थ सुनकर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

१ नगरि (वृ०) ।

२. खन्ति निउण पागार तिगुत्ति दुप्पघसय (वृ० पा०) ।

३. पलिक्कथए (वृ०) ।

४ पासाय (ऋ०) ।

२६—ससय खलु सो कुणई
जो मग्गे कुणई घर ।
जत्येव गन्तुमिच्छेज्जा
तत्थ कुव्वेज्ज सासय ॥

ससय खलु स कुस्ते
यो मार्गे कुस्ते गृहम् ।
यत्रैव गन्तुमिच्छेत्
तत्र कुर्वीत स्वाश्रयम् ॥

२६—वह सदिग्ध ही बना रहता है जो
मार्ग में घर बनाता है । (न जाने कब उसे
छोड़ कर जाना पड़े) । अपना घर वही बनाना
चाहिए जहाँ जाने की इच्छा हो—जहाँ जाने
पर फिर कहीं जाना न हो ।

२७—एयमट्ठ निसामित्ता
हेऊकारणचोडओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

२७—इस अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

२८—आमोसे लोमहारे य
गठिभेए य तक्करे ।
नगरस्स खेम काऊण
तओ गच्छसि खत्तिया । ॥

आमोषान् लोम-हारान्
ग्रन्थि-भेदांश्च तत्स्करान् ।
नगरस्य क्षेम कृत्वा
ततो गच्छ क्षत्रिय । ॥

२८—हे क्षत्रिय । अभी तुम वटमारो,
प्राण हरण करने वाले लुटेरो, गिरहकटो और
चोरो का निग्रह कर नगर में शान्ति स्थापित
करो, फिर मुनि बन जाना ।

२९—एयमट्ठ निसामित्ता
हेऊकारणचोडओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्दो इणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजर्षि
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

२९ - यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि गजर्षि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

३०—असइ तु मणुस्सेहि
मिच्छा दण्डो पजुजई ।
अकारिणोऽत्थ वज्झन्ति
मुच्चई कारओ जणो ॥

असकृत्तु मनुष्ये
मिथ्या-दण्डः प्रयुज्यते ।
अकारिणोऽत्रवध्यन्ते
मुच्यन्ते कारको जनः ॥

३०—मनुष्यों द्वारा अनेक बार मिथ्या-
दण्ड का प्रयोग किया जाता है । अपराध
नहीं करने वाले यहाँ पकड़े जाते हैं और
अपराध करने वाला छूट जाता है ।

३१—एयमट्ठ निसामित्ता
हेऊकारणचोडओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

३१—इस अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

३२—जे केइ पत्थिवा तुब्भ^१
नानमन्ति नराहिवा । ।
वसे ते ठावइत्ताण
तओ गच्छसि खत्तिया । ॥

ये केचित् पार्थिवास्तुभ्यं
नानमन्ति नराधिप ! ।
वसे तान्स्थापयित्वा
ततो गच्छ क्षत्रिय । ॥

३२—हे नराधिप क्षत्रिय । जो कई राजा
तुम्हारे सामने नहीं झुकते उन्हें वश में करो,
फिर मुनि बन जाना ।

३३—एयमदृ निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्द इणमव्ववी ॥

३४—जो सहस्स सहस्साण
सगामे दुज्जे जिणे ।
एग जिणेज्ज अप्पाणं
एस से परमो जओ ॥

३५—अप्पाणमेव जुज्झाहि
किं ते जुज्जेण बज्झओ ? ।
अप्पाणमेव^१ अप्पाण
जइत्ता सुहमेहए ॥

३६—पचिन्दियाणि कोह
माण माय तहेव लोह च ।
दुज्जय चेव अप्पाण
सव्व अप्पे जिए जिय ॥

३७—एयमदृ निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

३८—जइत्ता विउले जन्ने
भोइत्ता समणमाहणे ।
दच्चा भोच्चा य जट्ठा य
तओ गच्छसि खत्तिया । ॥

३९—एयमदृ निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्द इणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदित ।
ततो नमी राजर्षिः
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

य सहस्रं सहस्राणां
सङ्ग्रामे दुर्जये जयेत् ।
एकं जयेदात्मानं
एष तस्य परमो जयः ॥

आत्मनैव युद्ध्यस्व
किं ते युद्धेन बाह्यत ।
आत्मनैव आत्मानं
जित्वा सुखमेधते ॥

पञ्चेन्द्रियाणि क्रोधः
मानो माया तथैव लोभश्च ।
दुर्जयश्चैव आत्मा
सर्वमात्मनि जितेजितम् ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

याजयित्वा विपुलान् यज्ञान्
भोजयित्वा श्रमण-ब्राह्मणान् ।
दत्त्वा भुक्त्वा च इष्ट्वा च
ततो गच्छ क्षत्रिय ! ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदित ।
ततो नमी राजर्षिः
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

३३—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

३४—जो पुरुष दुर्जय संग्राम में दस
लाख योद्धाओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा
वह एक अपने आपको जीतता है, यह उसकी
परम विजय है ।

३५—आत्मा के साथ ही युद्ध कर,
बाहरी युद्ध से तुझे क्या लाभ ? आत्मा को
आत्मा के द्वारा ही जीत कर, मनुष्य सुख
पाता है ।

३६—पाँच इन्द्रियाँ, क्रोध, मान, माया,
लोभ और मन ये दुर्जय है । एक आत्मा को
जीत लेने पर ये सब जीत लिए जाते हैं ।

३७—इस अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

३८—हे क्षत्रिय ! अभी तुम प्रचुर यज्ञ
करो, श्रमण-ब्राह्मणों को भोजन कराओ,
दान दो, भोग भोगो और यज्ञ करो, फिर
मुनि बन जाना ।

३९—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

४०—जो सहस्स सहस्साण
मासे मासे गव दए ।
तस्सावि सजमो सेओ
अदिन्तस्स वि किंचण ॥

यः सहस्र सहस्राणा
मासे मासे गवा दद्यात् ।
तस्यापि सयमः श्रेयान्
अददतोऽपि किंचन ॥

४०—जो मनुष्य प्रतिमास दम लाख
गायों का दान देता है उसके लिए भी समय
ही श्रेय है, भले फिर वह कुछ भी न दे ।

४१—एयमट्ठ निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

४१—इस अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

४२—घोरासम चइत्ताण^१
अन्न पत्थेसि आसमं ।
इहेव पोसहरओ
भवाहि मणुयाहिवा । ॥

घोराश्रम त्यक्त्वा
अन्य प्रार्थयसे आश्रमम् ।
इहैव पौषध-रतः
भव मनुजाधिप ! ॥

४२—हे मनुजाधिप । तुम घोराश्रम
(गार्हस्थ्य) को छोड़ कर दूसरे आश्रम (सन्यास)
की इच्छा करते हो, यह उचित नहीं । तुम
यहीं रह कर पौषध में रत होओ—अणुव्रत, तप
आदि का पालन करो ।

४३—एयमट्ठ निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्द इणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजर्षि
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

४३—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण से
प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस प्रकार
कहा—

४४—मासे मासे तु जो बालो
कुसग्गेण तु^२ भुजए ।
न सो सुयक्खायधम्मस्स
कल अग्घइ सोलसि ॥

मासे मासे तु यो बालः
कुशाग्रेण तु भुङ्क्ते ।
न स स्वाख्यात-धर्मणः
कलामर्हति षोडशीम् ॥

४४—कोई बाल (अविवेकी) मास-मास
की तपस्या के अनन्तर कुश की नोक पर टिके
उतना-सा आहार करे तो भी वह सु-आख्यात
धर्म (सम्यक्-चारित्र्य सम्पन्न मुनि) की सोलहवीं
कला को भी प्राप्त नहीं होता ।

४५—एयमट्ठ निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

४५—इस अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

४६—हिरण्यं सुवर्णं मणिमुत्तं
कसं दूष्यं च वाहनम्^१ ।
कोसं वड्ढावइत्ताणं
तओ गच्छसि खत्तिया । ॥

४७—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्द इणमब्बवी ॥

४८—सुवर्णरूप्यस्स उ^२ पव्वया भवे
सिया हुकेलाससमा असखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि^३ किञ्चि
इच्छा उ आगाससमा अणन्तिया ॥

४९—पुढवी साली जवा चेव
हिरण्यं पसुभिस्सह ।
पडिपुण्ण^४ नालमेगस्स
इड विज्जा तव चरे ॥

५०—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमब्बवी ॥

५१—अच्छेरगमब्भुदए
भोए चयसि^५ पत्थिवा !^६ ।
असन्ते कामे पत्थेसि
सकप्पेण विहन्तसि ॥

हिरण्यं सुवर्णं मणि-मुक्तां
कास्थं दूष्यं च वाहनम् ।
कोशं वर्धयित्वा
ततो गच्छ क्षत्रिय ! ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमो राजर्षि-
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

सुवर्ण-रूप्यस्य च पर्वता भवेयुः
स्यात् खलुकैलास-समा असख्यकाः ।
नरस्य लुब्धस्य न तैः किञ्चित्
इच्छा खलु आकाश-समा अनन्तिका ॥

पृथिवी शालिर्यवाश्चैव
हिरण्यं पशुभिः सह ।
प्रतिपूर्णं नालमेकस्मै
इति विदित्वा तपश्चरेत् ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि-
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

आश्चर्यमभ्युदये
भोगास्त्यजसि पार्थिव ! ।
असतः कामान्प्रार्थयसे
सकल्पेन विहन्यसे ॥

४६—हे क्षत्रिय ! अभी तुम चाँदी, सोना,
मणि, मोती, काँसे के वर्तन, वस्त्र, वाहन और
भण्डार की वृद्धि करो, फिर मुनि बन जाना ।

४७—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

४८—कदाचित् सोने और चाँदी के
कैलास के समान असख्य पर्वत हो जाएँ, तो
भी लोभी पुरुष को उनसे कुछ भी नहीं होता,
क्योंकि इच्छा आकाश के समान अनन्त है ।

४९—पृथ्वी, चावल, जौ, सोना और
पशु—ये सर्व एक की इच्छापूर्ति के लिए
पर्याप्त नहीं है, यह जान कर तप का आचरण
करे ।

५०—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण से
प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार
कहा—

५१—हे पार्थिव ! आश्चर्य है कि तुम
इस अभ्युदय-काल में सहज प्राप्त भोगों को
त्याग रहे हो और अप्राप्त काम-भोगों की इच्छा
कर रहे हो—इस प्रकार तुम अपने सकल्प से
ही प्रताडित हो रहे हो ।

१. सवाहन (घृ० पा०, चू०) ।

२. य (अ) ।

३. तेण (घृ० पा०) ।

४. सव्वत (घृ० पा०) ।

५. जहासि (घृ०), चयसि (घृ० पा०) ।

६. खत्तिया ! (घृ० पा०) ।

५२—एयमट्ठ निसामित्ता
हेऊकारणचोडओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्द उणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदित ।
ततो नमी राजर्षि-
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

५२—यह अर्थ मुन कहेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इन
प्रकार कहा—

५३—सल्ल कामा विस कामा
कामा आसीविसोवमा ।
कामे पत्थेमाणा
अकामा जन्ति दोग्गड ॥

शल्य कामा विष कामा
कामा आशीविषोपमाः ।
कामान्प्रार्थयमाना
अकामा यान्ति दुर्गतिम् ॥

५३—काम-भोग शल्य है, विष है और
आशीविष मर्ष के तुल्य है । काम-भोग की
इच्छा करने वाले, उनका मेहनत करते हुए भी
दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।

५४—अहे वयड कोहेण
माणेण अहमा गड्ड ।
माया गड्डपडिग्घाओ
लोभाओ दुहओ भय ॥

अधो व्रजति क्रोधेन,
मानेनाधमा गति ।
मायया गति-प्रतिघातः
लोभाद् द्विधा भयम् ॥

५४—मनुष्य क्रोध से अधोगति में जाता
है । मान में अधम गति होती है । माया से
सुगति का विनाश होता है । लोभ में दोनों
प्रकार का— ऐहिक और पारलौकिक—भय
होता है ।

५५—अवउज्झिऊण माहणरूव
विउव्विऊण उन्दत्त ।
वन्दड अभित्थुणन्तो
डमाहि महुराहि वग्गूहि ॥

अपोज्झ्य ब्राह्मण-रूपं
विकृत्येन्द्रत्वम् ।
वन्दतेऽभिष्टुवन्
आभिमधूराभिर्वाग्भिः ॥

५५—देवेन्द्र ने ब्राह्मण का रूप छोड़,
इन्द्र रूप में प्रकट हो नमि राजर्षि की वन्दना
की और इन मधुर शब्दों में स्तुति करने लगा ।

५६—अहो । ते निज्जिओ कोहो
अहो । ते माणो पराजिओ ।
अहो । ते निरक्किया माया
अहो । ते लोभो वसीकओ ॥

अहो ! त्वया निजितः क्रोधः
अहो ! त्वया मानः पराजितः ।
अहो ! त्वया निराकृता माया
अहो ! त्वया लोभो वशीकृतः ॥

५६—हे राजर्षि ! आश्चर्य है तुमने क्रोध
को जीता है । आश्चर्य है तुमने मान को
पराजित किया है । आश्चर्य है तुमने माया
को दूर किया है । आश्चर्य है तुमने लोभ को
वश में किया है ।

५७—अहो । ते अज्जव साहु
अहो । ते साहु मद्व ।
अहो । ते उत्तमा खन्ती
अहो । ते मुत्ति उत्तमा ॥

अहो ! ते आर्जव साधु
अहो ! ते साधु मार्दवम् ।
अहो ! ते उत्तमा क्षान्तिः
अहो ! ते मुक्तिरुत्तमा ॥

५७—अहो ! उत्तम है तुम्हारा आर्जव ।
अहो ! उत्तम है तुम्हारा मार्दव । अहो !
उत्तम है तुम्हारी क्षमा । अहो ! उत्तम है
तुम्हारी निर्लोभता ।

५८—इह सि उत्तमो भस्ते !
पेच्चा होहिसि उत्तमो ।
लोगुत्तमुत्तम^१ ठाणं
सिद्धिं गच्छसि नीरजो ॥

इहास्युत्तमो भदन्त ।
प्रेत्य भविष्यस्युत्तम ।
लोकोत्तमोत्तम स्थानं
सिद्धिं गच्छसि नीरजाः ॥

५८—भगवन् ! तुम इस लोक में भी उत्तम हो और परलोक में भी उत्तम होओगे । तुम कर्म-रज से मुक्त होकर लोक के सर्वोत्तम स्थान (मोक्ष) को प्राप्त करोगे ।

५९—एव अभित्थुणन्तो
रायरिसि उत्तमाए सद्धाए ।
पयाहिणं^२ करेन्तो
पुणो पुणो वन्दई सक्को ॥

एवमभिष्टुवन्
राजर्षिमुत्तमया श्रद्धया ।
प्रदक्षिणां कुर्वन्
पुन पुनर्वन्दते शक्रः ॥

५९—इस प्रकार इन्द्र ने उत्तम श्रद्धा से राजर्षि की स्तुति की और प्रदक्षिणा करते हुए बार-बार वन्दना की ।

६०—तो^३ वन्दिऊण पाए
चक्ककुसलक्खणे मुणिवरस्स ।
आगासेणुप्पइओ
ललियचवलकुडलतिरीडी ॥

ततो वन्दित्वा पादौ
चक्राङ्कुश-लक्षणौ मुनिवरस्य ।
आकाशेनोत्पतितः
ललित-चपल-कुण्डल-किरीटी ॥

६०—इसके पश्चात् मुनिवर नमि के चक्र और अङ्कुश से चिह्नित चरणों में वन्दना कर ललित और चपल कुण्डल एवं मुकुट को धारण करने वाला इन्द्र आकाश मार्ग से चला गया ।

६१—नमी नमेइ अप्पाण
सक्ख^४ सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेह वइदेही
सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥

नमिर्नमयत्यात्मान
साक्षाच्छक्रेण चोदितः ।
त्यक्त्वा गृहं वैदेही
श्रामण्ये पर्युपस्थितः ॥

६१—नमि राजर्षि ने अपनी आत्मा को नमा लिया—सयम के प्रति समर्पित कर दिया । वे साक्षात् देवेन्द्र के द्वारा प्रेरित होने पर भी धर्म से विचलित नहीं हुए और गृह और वैदेही (मिथिला) को त्याग कर श्रामण्य में उपस्थित हो गये ।

६२—एव करेन्ति सबुद्धा^५
पडिया पवियक्खणा ।
विणियट्ठन्ति भोगेसु
जहा ते तमी रायरिसि ॥
—त्ति वेमि ।

एव कुर्वन्ति सबुद्धा
पण्डिता प्रविचक्षणाः ।
विनिवर्तन्ते भोगेभ्यः
यथा स नमी राजर्षिः ॥
इति ब्रवीमि ।

६२—सबुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण पुरुष इसी प्रकार करते हैं—वे भोगों से निवृत्त होते हैं जैसे कि नमि राजर्षि हुए ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१ लोगुत्तम मुत्तम (७० पा०) ।

२ पायाहिण (वृ०) ।

३ स (वृ० पा०) ।

४ सक्क (श्रु०) ।

५ सपन्ना (च०) ।

चसमं अङ्गयणं :
दुसपत्तयं

दशम अध्ययन :
दुम-पत्रक

आसुख

इस अध्ययन का नाम आद्य-पद (आदान-पद) 'द्रुम-पत्तर' के आधार पर 'द्रुम-पत्रक' रखा गया है ।^१ कई कारणों से गौतम गणधर के मन में विचिकित्सा हुई । भगवान् महावीर ने उसका निवारण करने के लिए इस अध्ययन का प्रतिपादन किया ।

उस काल और उस समय पृष्ठचम्पा नाम की नगरी थी । वहाँ शाल नाम का राजा था और युवराज का नाम था महाशाल । उसके यशस्वती नाम की वहिन थी । उसके पति का नाम पिठर था । उसके एक पुत्र हुआ । उसका नाम गागली रखा गया । एक बार भगवान् महावीर राजगृह से विहार कर पृष्ठचम्पा पधारे । सुभूमि-भाग उद्यान में ठहरे । राजा शाल भगवान् की वन्दना करने गया । भगवान् से धर्म सुना और विरक्त हो गया । उसने भगवान् से प्रार्थना की—“भन्ते । मैं महाशाल का राज्याभिषेक कर दीक्षित होने के लिए अभी वापस आ रहा हूँ ।” वह नगर में गया । महाशाल से सारी बात कही । उसने भी दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की । वह बोला—“मैं आपके साथ ही प्रव्रजित होऊँगा ।” राजा ने अपने भानजे गागली को काम्पित्यपुर से बुलाया और उसे राज्य का भार सौंप दिया । गागली अब राजा हो गया । उसने अपने माता-पिता को भी वहीं बुला लिया । इधर शाल और महाशाल भगवान् के पास दीक्षित हो गए । यशस्वती भी श्रमणोपासिका हुई । उन दोनों श्रमणों ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया ।

भगवान् महावीर पृष्ठचम्पा से विहार कर राजगृह गए । वहाँ से विहार कर चम्पा पधारे । शाल और महाशाल भगवान् के पास आए और प्रार्थना की—“यदि आपकी अनुज्ञा हो तो हम पृष्ठचम्पा जाना चाहते हैं । सम्भव है किसी को प्रतिबोध मिले और कोई सम्यग्दर्शी बने ।” भगवान् ने अनुज्ञा दी और गौतम के साथ उन्हें वहाँ भेजा । वे पृष्ठचम्पा गए । वहाँ के राजा गागली और उसके माता-पिता को दीक्षित कर वे पुनः भगवान् महावीर के पास आ रहे थे । मार्ग में चलते-चलते मुनि शाल और महाशाल के अध्यवसायों की पवित्रता बढी और वे केवली हो गए । गागली और उसके माता-पिता—तीनों को केवलज्ञान हुआ । सभी भगवान् के पास पहुँचे । गौतम ने भगवान् की वन्दना की और उन सबको वन्दना करने के लिए कहा । भगवान् ने गौतम को सम्बोधित कर कहा—“गौतम ! केवलियों की आशातना मत करो ।” गौतम ने उनसे क्षमा-याचना की, पर मन शकाओं से भर गया । उन्होंने सोचा—“मैं सिद्ध नहीं होऊँगा ।”

एक बार गौतम अष्टापद पर्वत पर गये । वहाँ पहले से ही तीन तापस अपने-अपने पाँच-पाँच सौ शिष्यों के परिवार से तप कर रहे थे । उनका नाम था कौडिन्य, दत्त और शैवाल ।

दत्त वेले-वेले को तपस्या करता । वह नीचे पड़े पीले पत्ते खा कर रहता था । वह अष्टापद की दूसरी मेखला तक ही चढ़ पाया ।

कौडिन्य उपवास-उपवास की तपस्या करता और पारण्य में मूक, कन्द आदि संचित आहार करता था । वह अष्टापद पर्वत पर चढ़ा किन्तु एक मेखला से आगे नहीं जा सका ।

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २८३

द्रुमपत्तेणोवम्म अहाडिईण उवक्कमेण च ।

इत्थं कय आहमी तो त द्रुमपत्तमज्झयण ॥

शैवाल तेले-तेले की तपस्या करता था। वह सूखी शैवाल (सेवार) खाता था। वह अष्टापद की तीसरी मेखला तक ही चढ़ सका।

गौतम आए। तापस उन्हें देख परस्पर कहने लगे—“हम महातपस्वी भी ऊपर नहीं जा सके, तो यह कैसे जाएगा ?” गौतम ने जघाचरण-लब्धि का प्रयोग किया और मकड़ी के जाले का सहारा ले पर्वत पर चढ़ गये। तापसों ने आश्चर्य मरी आँखों से यह देखा और वे अवाक् रह गए। उन्होंने मन ही मन यह निश्चय कर लिया कि ज्योंही मुनि नीचे उतरेंगे, हम उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लेंगे। गौतम ने रात्रिवास पर्वत पर ही किया। जब सुबह वे नीचे उतरे, तब तापसों ने उनका रास्ता रोकते हुए कहा—“हम आपके शिष्य हैं और आप हमारे आचार्य”। गौतम ने कहा—“तुम्हारे और हमारे आचार्य त्रैलोक्य गुरु भगवान् महावीर हैं।” तापसों ने आश्चर्य पूछा—“तो क्या आपके भी आचार्य हैं ?” गौतम ने भगवान् के गुणगान किए और सभी तापसों को प्रव्रजित कर भगवान् की दिशा में चल पड़े। मार्ग में भिक्षा-वेला के समय भोजन करते-करते शैवाल तथा उसके सभी शिष्यों को केवलज्ञान प्राप्त हो गया। दत्त तथा उसके शिष्यों को छत्र आदि अतिशय देख कर केवलज्ञान हुआ। कौडिन्य तथा उसके शिष्यों को भगवान् महावीर को देखते ही केवलज्ञान हो गया। गौतम इस स्थिति से अनभिज्ञ थे। सभी भगवान् के पास आए। गौतम ने वन्दना की, स्तुति की। वे सभी तापस मुनि केवली-परिषद् में चले गए। गौतम ने उन्हें भगवान् की वन्दना करने के लिए कहा। भगवान् ने कहा—“गौतम ! केवलियों की आशातना मत करो।” गौतम ने ‘मिच्छामि दुक्कड’ लिया।

गौतम का धैर्य टूट गया। भगवान् ने उनके मन की बात जान ली। उन्होंने कहा—“गौतम ! देवताओं का वचन प्रमाण है या जिनवर का ?”

गौतम ने कहा—“भगवन् ! जिनवर का वचन प्रमाण है।”

भगवान् ने कहा—“गौतम ! तू मुझ से अत्यन्त निकट है, चिर-ससृष्ट है। तू और मैं—दोनों ही एक ही अवस्था को प्राप्त होंगे। दोनों में कुछ भी पृथक्ता नहीं रहेगी।” भगवान् ने गौतम को सम्बोधित कर ‘द्रुमपुत्तर’ (द्रुम-पत्रक) अध्ययन कहा।

इस अध्ययन के प्रत्येक श्लोक के अन्त में ‘समय गोयम। मा पमायए’ है। निर्युक्ति (गा० ३०६) में ‘तण्णिस्सार भगव सीसाण देइ अनुसद्धि’—यह पद है। इसका तात्पर्य है कि भगवान् महावीर गौतम को सम्बोधित कर उनकी निश्राय में, अन्य सभी शिष्यों को अनुशासन-शिक्षा देते हैं।

दशवैकालिक निर्युक्ति गाथा ७८ में ‘निश्रावचन’ का उदाहरण यही अध्ययन है।^१ इसकी चर्चा आवश्यक निर्युक्ति में भी मिलती है।

इस अध्ययन में जीवन की अस्थिरता, मनुष्य-भव की दुर्लभता, शरीर तथा इन्द्रिय बल की उत्तरोत्तर क्षीणता, स्नेहापनयन की प्रक्रिया, वान्त भोगों को पुन स्वीकार न करने की शिक्षा आदि-आदि का सुन्दर चित्रण है।

१—दशवैकालिक हारिमद्दीय वृत्ति, पत्र ५१

पुच्छाए कोणिओ रलु निस्सावयणमि गोयमस्सामी।

नाहियवाइ पुच्छे जीवत्थित्तं अणिच्छत ॥७८॥

दसमं अज्ज्ञयणं : दशम अध्ययन

द्रुमपत्तयः : द्रुम-पत्रकम्

मूल

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुवाद

१—द्रुमपत्तए पण्डुए जहा
निवडइ राडगणाण अच्चए ।
एव मणुयाण जीविय
समय गोयम । मा पमायए ॥

द्रुम-पत्रक पाण्डुरक यथा
निपतति रात्रि-गणानामत्यये ।
एव मनुजाना जीवित
समय गौतम ! मा प्रमादीः ॥

१—रात्रियाँ दीतने पर वृक्ष का पका
हुआ पान जिम प्रकार गिर जाता है, उसी
प्रकार मनुष्य का जीवन एक दिन समाप्त हो
जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी
प्रमाद मत कर ।

२—कुसगो जह ओसविन्दुए
थोव चिट्ठइ लम्बमाणए ॥
एव मणुयाण जीविय
समय गोयम । मा पमायए ॥

कुशाग्रे यथा ओसविन्दुकः
स्तोक तिष्ठतिलम्बमानक ।
एव मनुजाना जीवित
समय गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२—कुश की नोक पर लटकते हुए ओस-
विन्दु की अवधि जैसे थोड़ी होती है वैसे ही
मनुष्य-जीवन की गति है, इसलिए हे गौतम !
तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३—'इइ इत्तरियम्मि आउए
जीवियए बहुपच्चवायए' ।
विहुणाहि रय पुरे कड
समय गोयम । मा पमायए ॥

इतीत्वरिके आयुषि
जीवितके बहु-प्रत्ययायके ।
विघुनीहि रजः पुराकृत
समय गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३—यह आयुष्य क्षण-भंगुर है, यह जीवन
विघ्नों से भरा हुआ है, इसलिए हे गौतम ! तू
पूर्व-संचित कर्म-रज को प्रकम्पित कर (दूर कर)
और क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

४—दुलहे खलु मानुसे भवे
चिरकालेण वि सव्वपाणिण ।
गाढा य विवाग कम्मणो
समय गोयम । मा पमायए ॥

दुर्लभः खलु मानुषो भव
चिरकालेनापि सर्वप्राणिनाम् ।
गाढाश्च विपाका कर्मणः
समय गौतम ! मा प्रमादीः ॥

४—सब प्राणियों को चिरकाल तक भी
मनुष्य-जन्म मिलना दुर्लभ है । कर्म के विपाक
तीव्र होते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर
भी प्रमाद मत कर ।

५—पुढविकायमडगओ
उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखाईय
समय गोयम । मा पमायए ॥

पृथिवी-कायमतिगतः
उष्कर्ष जीवस्तु सवसेत् ।
काल सख्यातीत
समय गौतम ! मा प्रमादीः ॥

५—पृथ्वी-काय में उत्पन्न हुआ जीव
अधिक से अधिक असंख्य-काल तक वहाँ रह
जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी
प्रमाद मत कर ।

६—आउक्कायमङ्गओ

उक्कोस जीवो उ सवसे ॥
काल सखाईयं
समय गोयम। मा पमायए ॥

७—तेउक्कायमङ्गओ

उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखाईयं
समय गोयम। मा पमायए ॥

८—वाउक्कायमङ्गओ

उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखाईयं
समय गोयम। मा पमायए ॥

९—वणस्सइक्कायमङ्गओ

उक्कोस जीवो उ सवसे ।
कालमणन्तदुरन्तं
समय गोयम। मा पमायए ॥

१०—वेइन्दियकायमङ्गओ

उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखिज्जसन्नियं
समय गोयम। मा पमायए ॥

११—त्वेइन्दियकायमङ्गओ

उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखिज्जसन्नियं
समय गोयम। मा पमायए ॥

१२—चउरिन्दियकायमङ्गओ

उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखिज्जसन्नियं
समय गोयम। मा पमायए ॥

अप्-कायमतिगतः

उत्कर्ष जीवस्तु सवसेत् ।
कालं संख्यातीतं
समय गौतम! मा प्रमादी ॥

तेजस्कायमतिगतः

उत्कर्ष जीवस्तु संवसेत् ।
काल सख्यातीतं
समय गौतम! मा प्रमादीः ॥

वायु-कायमतिगत

उत्कर्ष जीवस्तु सवसेत् ।
काल सख्यातीतं
समय गौतम। मा प्रमादी ॥

वनस्पति-कायमतिगतः

उत्कर्ष जीवस्तु सवसेत् ।
कालमनन्तं दुरन्तं
समय गौतम! मा प्रमादीः ॥

द्वीन्द्रिय-कायमतिगतः

उत्कर्ष जीवस्तु संवसेत् ।
काल सख्येय-संज्ञितं
समय गौतम! मा प्रमादीः ॥

त्रीन्द्रिय-कायमतिगतः

उत्कर्ष जीवस्तु संवसेत् ।
काल सख्येय-संज्ञितं
समय गौतम! मा प्रमादीः ॥

चतुरिन्द्रिय-कायमतिगतः

उत्कर्ष जीवस्तु संवसेत्
कालं सख्येय-संज्ञितं
समय गौतम! मा प्रमादीः ॥

६—अप्-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक असंख्य-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

७—तेजस्-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक असंख्य काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

८—वायु-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक असंख्य-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

९—वनस्पति-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक दुरन्त अनन्त-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भी प्रमाद मत कर ।

१०—द्वीन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक असंख्य-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

११—त्रीन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक संख्येय-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

१२—चतुरिन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक संख्येय काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

१३—पचिन्द्रियकायमङ्गओ
उक्कोस जीवो उ सवसे ।
सत्तट्ठभवग्गहणे
समयं गोयम । मा पमायए ॥

१४—देवे नेरइए य अङ्गओ
उक्कोस जीवो उ सवसे ।
इक्किक्कभवग्गहणे
समयं गोयम । मा पमायए ॥

१५—एव भवससारे
ससरइ सुहासुहेहि कम्महिं ।
जीवो पमायवहुलो
समयं गोयम । मा पमायए ॥

१६—लद्धूण वि माणुसत्तणं
आरिअत्त पुणरावि दुल्लहा ।
वहवे दसुया मिलेक्खुया
समयं गोयम । मा पमायए ॥

१७—लद्धूण वि आरियत्तण
अहीणपचिन्द्रियया हु दुल्लहा ।
विगलिन्द्रियया हु दीसई
समयं गोयम । मा पमायए ॥

१८—अहीणपचिन्द्रियत्तं पि से लहे
उत्तमधम्मसुई हु दुल्लहा ।
कुत्तिथिनिसेवए^१ जणे
समयं गोयम । मा पमायए ॥

१९—लद्धूण वि उत्तम सुइ
सद्धणा पुणरावि दुल्लहा ।
मिच्छत्तनिसेवए जणे
समयं गोयम । मा पमायए ॥

पचिन्द्रिय-कायमतिगतः
उत्कर्ष जीवस्तु सवसेत् ।
सप्ताष्ट भवग्रहणानि
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

देवान्नैरयिकाश्चातिगत
उत्कर्ष जीवस्तु सवसेत् ।
एकैकभवग्रहण
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

एव भव ससारे
ससरति शुभाशुभैः कर्मभिः ।
जीव प्रमाद-बहुलः
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

लब्ध्वापि मानुषत्वं
आर्यत्वं पुनरपि दुर्लभम् ।
वहवो दस्यवो म्लेच्छा
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

लब्ध्वाप्यार्यत्वं
अहीन-पचिन्द्रियता खलु दुर्लभा ।
विकलेन्द्रियता खलु दृश्यते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

अहीन-पचिन्द्रियत्वमपि स लभेत
उत्तम-धर्म-श्रुतिः खलु दुर्लभा ।
कुतीर्थि-निषेवको जनो
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

लब्ध्वाप्युत्तमा श्रुति
श्रद्धान पुनरपि दुर्लभम् ।
मिथ्यात्व-निषेवको जनो
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

१३—पचिन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव
अधिक से अधिक सात आठ जन्म-ग्रहण तक
वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण
भर भी प्रमाद मत कर ।

१४—देव और नरक-योनि में उत्पन्न
हुआ जीव अधिक से अधिक एक-एक जन्म-
ग्रहण तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे
गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

१५—इस प्रकार प्रमाद-बहुल जीव
शुभ-अशुभ कर्मों द्वारा जन्म-मृत्युमय ससार
में परिभ्रमण करता है, इसलिए हे गौतम !
तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

१६—मनुष्य-जन्म दुर्लभ है, उसके मिलने
पर भी आर्य देश में जन्म पाना और भी दुर्लभ
है । बहुत सारे लोग मनुष्य होकर भी दस्यु
और म्लेच्छ होते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू
क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

१७—आर्य देश में जन्म मिलने पर भी
पाँचो इन्द्रियो से पूर्ण स्वस्थ होना दुर्लभ है ।
बहुत सारे लोग इन्द्रियहीन दीख रहे हैं,
इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत
कर ।

१८—पाँचो इन्द्रियाँ पूर्ण स्वस्थ होने पर
भी उत्तम धर्म की श्रुति दुर्लभ है । बहुत सारे
लोग कुतीर्थिको की सेवा करने वाले होते हैं,
इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद
मत कर ।

१९—उत्तम धर्म की श्रुति मिलने पर
भी श्रद्धा होना और अधिक दुर्लभ है । बहुत
सारे लोग मिथ्यात्व का सेवन करने वाले होते
हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद
मत कर ।

२०—धम्म पि हु सदहन्तया
दुल्लह्या^१ काएण फासया ।
इह कामगुणेहि^२ मुच्छिंया
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

धर्ममपि खलु श्रद्धघत-
दुर्लभकाः कायेन स्पर्शकाः ।
इह काम-गुणेषु मूर्च्छिताः
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२०—उत्तम धर्म में श्रद्धा होने पर भी उसका आचरण करने वाले दुर्लभ है । इस लोक में बहुत सारे लोग काम-गुणों में मूर्च्छित होते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२१—परिजूरइ ते सरीरय
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से सोयवले य हायई
समय गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरक
केशा पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तच्छ्रोत्र-बलं च हीयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२१—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश सफेद हो रहे हैं और श्रोत्र का पूर्ववर्ती बल क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२२—परिजूरइ ते सरीरय
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से चक्षुबले य हायई
समय गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तच्चक्षु-बलं च हीयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२२—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश सफेद हो रहे हैं और चक्षु का पूर्ववर्ती बल क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२३—परिजूरइ ते सरीरय
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से घ्राणवले य हायई
समय गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तद्घ्राण-बलं च हीयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२३—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश सफेद हो रहे हैं और घ्राण का पूर्ववर्ती बल क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२४—परिजूरइ ते सरीरय
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से जिह्मवले य हायई
समय गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तज्जिह्मा-बलं च हीयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२४—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश सफेद हो रहे हैं और जिह्वा का पूर्ववर्ती बल क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२५—परिजूरइ ते सरीरयं
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से फासवले य हायई
समय गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तत् स्पर्श-बलं च हीयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२५—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश सफेद हो रहे हैं और स्पर्श का पूर्ववर्ती बल क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

१. दुल्लहा (उ) ।

२. कामगुणेषु (उ, म, वृ०), कामगुणेहि (धृ० पा०) ।

२६—परिजूरड ते सरीरय
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से सव्ववले य हायई
समय गोयम । मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरक
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तत् सर्व-बल च हीयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२६—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश
सफेद हो रहे हैं और सब प्रकार का पूर्ववर्ती
बल क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू
क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२७—अरई गण्डं विसूडया
आयका विविहा फुसन्ति ते ।
विवडइ विद्धसइ ते सरीरय
समय गोयम । मा पमायए ॥

अरतिगण्ड विसूचिका
आतङ्का विविधाः स्पृशन्ति ते ।
विपतति विध्वस्यते ते शरीरकं
समय गौतम ! मा प्रमादी ॥

२७—पित्त-रोग, फोड़ा-फुन्ती, हैजा और
विविध प्रकार के शीघ्र-घाती रोग शरीर का
स्पर्श करते हैं, जिनसे यह शरीर शक्तिहीन
और विनष्ट होता है, इसलिए हे गौतम ! तू
क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२८—वोछिन्द सिणेहमप्पणो
कुमुयं सारइय व' पाणिय ।
से सव्वसिणेहवज्जिए
समय गोयम । मा पमायए ॥

व्युच्छिन्धि स्नेहमात्मनः
कुमुदं शारद-मिव पानीयम् ।
तत्सर्वस्नेह-वर्जित
समय गौतम ! मा प्रमादी ॥

२८—जिस प्रकार शरद्-ऋतु का कुमुद
(रक्त-कमल) जल में लित नहीं होता, उसी
प्रकार तू अपने स्नेह का विच्छेद कर निर्लित
बन । हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत
कर ।

२९—चिच्चाण धण च भारिय
पव्वइओ हि सि अणगारिय ।
मा वन्त पुणो वि आडए
समय गोयम । मा पमायए ॥

त्यक्त्वा धनं च भार्या
प्रव्रजितो ह्यस्य न गारिताम् ।
मा वान्त पुनरप्यापिव
समय गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२९—गाय आदि धन और पत्नी का
त्याग कर तू अनगार-वृत्ति के लिए घर से
निकला है । व्रत किए हुए काम-भोगों को
फिर से मत पी । हे गौतम ! तू क्षण भर भी
प्रमाद मत कर ।

३०—अवउज्झिय मित्तवन्धव
विउल चैव धणोहसचय ।
मा त विइय गवेसए
समय गोयम । मा पमायए ॥

अपोज्झ्य मित्र-वान्धव
विपुलं चैव धनौघ-सचयम् ।
मा तद् द्वितीय गवेषय
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३०—मित्र, वान्धव और विपुल धन-
राशि को छोड़कर फिर से उनकी गवेषणा मत
कर । हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत
कर ।

३१—न हु जिणे अज्ज दिस्सई
बहुमए दिस्सई मग्गदेसिए ।
सपइ नेयाउए पहे
समय गोयम । मा पमायए ॥

न खलु जिनोऽद्य दृश्यते
बहुमतो दृश्यते मार्ग-देशिकः ।
सम्प्रति नैर्यातृके पथि
समय गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३१—“आज जिन नहीं दीख रहे हैं, जो
मार्ग-दर्शक हैं वे एक मत नहीं हैं”—ग्रगली
पीढियो को इस कठिनाई का अनुभव होगा,
किन्तु अभी मेरी उपस्थिति में तुझे पार ले
जाने वाला (न्यायपूर्ण) पथ प्राप्त है, इसलिए
हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३२—अवसोहिय कण्टगापहं
ओइण्णो सि पह महालय ।
गच्छसि मगं विसोहिया
समय गोयम । मा पमायए ॥

३३—अवले जह भारवाहए
मा मग्गे विसमे वगाहिया ।
पच्छा पच्छाणुतावए
समय गोयम । मा पमायए ॥

३४—तिण्णो हु सि अण्णव महं
किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ।
अभितुर पार गमित्तए
समय गोयम ! मा पमायए ॥

३५—अकलेवरसेणिमुस्सिया
सिद्धि गोयम लोय गच्छसि ।
खेम च सिव अणुत्तरं
समयं गोयम । मा पमायए ॥

३६—बुद्धे परिनिव्वुडे चरे
गामगए नगरे व सजए ।
सन्तिमग्ग च वहए
समय गोयम । मा पमायए ॥

३७—बुद्धस्स निसम्म भासिय
सुकहियमट्ठपओवसोहिय ।
राग दोसं च छिन्दिया
सिद्धिगइ गए गोयमे ॥
—त्ति वेमि ।

अवशोध्य कटक-पथ
अवतीर्णोऽसि पन्थान महालयं ।
गच्छसि मार्गं विशोध्य
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

अबलो यथा भार-वाहक
मा मार्गं विषममवगाह्य ।
पश्चात्पश्चादनुतापकः
समय गौतम ! मा प्रमादी ॥

तीर्णः खलु असि अर्णवं महान्तं
किं पुनस्तिष्ठसि तीरमागतः ।
अभित्वरस्व पारं गन्तुं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

अकलेवर-श्रेणिमुच्छ्रित्य
सिद्धिं गौतम ! लोक गच्छसि ।
क्षेमं च शिवमनुत्तरं
समय गौतम ! मा प्रमादीः ॥

बुद्धः परिनिवृत्तश्चरे.
ग्रामे गतो नगरे वा संयतः ।
शान्तिमार्गं बृंह्येः
समयं गौतम ! मा प्रमादी ॥

बुद्धस्य निशम्य भाषितं
सुकथितमर्थपदोपशोभितम् ।
राग द्वेष च छित्त्वा
सिद्धिर्गतिं गतो गौतमः ॥
इति ब्रवीमि ।

३२—काँटो से भरे मार्ग को छोड़ कर तू
विशाल-पथ पर चला आया है । दृढ़ निश्चय के
साथ उसी मार्ग पर चल । हे गौतम ! तू क्षण
भर भी प्रमाद मत कर ।

३३—बलहीन भार-वाहक की भाँति तू
विषम मार्ग में मत चले जाना । विषम-मार्ग में
जाने वाले को पछतावा होता है, इसलिए हे
गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३४—तू महान् समुद्र को तैर गया, अब
तीर के निकट पहुँच कर क्यों खड़ा है ? उसके
पार जाने के लिए जल्दी कर । हे गौतम ! तू
क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३५—हे गौतम ! तू क्षपक-श्रेणी पर
आरुढ़ होकर उस सिद्धि-लोक को प्राप्त होगा,
जो क्षेम, शिव और अनुत्तर है, इसलिए हे
गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३६—तू गाँव में या नगर में सयत, बुद्ध
और उपशान्त होकर विचरण कर, शान्ति-मार्ग
को बढ़ा । हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद
मत कर ।

३७—अर्थ और पद से उपशोभित एवं
सुकथित भगवान् की वाणी को सुन कर राग
और द्वेष का छेदन कर गौतम सिद्धि-गति को
प्राप्त हुए ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।—

इकारसमं अज्ज्ञयणं :
बहुस्सुयपुज्जा

एकादशम अध्ययन :
बहुश्रुत-पूजा

आस्तुरख

इस अध्ययन में बहुश्रुत की भाव-पूजा का निरूपण है, इसलिये इसका नाम 'बहुस्सुयपुज्जा'— 'बहुश्रुत-पूजा' रखा गया है। यहाँ बहुश्रुत का मुख्य अर्थ चतुर्दश-पूर्वी है। यह सारा प्रतिपादन उन्हीं से सम्बन्धित है। उपलक्षण से शेष सभी बहुश्रुत मुनियों की पूजनीयता भी प्राप्त होती है^१।

निशीथ-भाष्य-चूर्णि के अनुसार बहुश्रुत तीन प्रकार के होते हैं—

- १—जघन्य बहुश्रुत—जो निशीथ का ज्ञाता हो।
- २—मध्यम बहुश्रुत—जो निशीथ और चौदह-पूर्वी का मध्यवर्ती ज्ञाता हो।
- ३—उत्कृष्ट बहुश्रुत—जो चतुर्दश-पूर्वी हो।

सूत्रकार ने बहुश्रुत को अनेक उपमाओं से उपमित किया है। सारी उपमारों बहुश्रुत की आन्तरिक शक्ति और तेजस्विता को प्रकट करती हैं—

- १—बहुश्रुत कम्बोज के घोड़ों की तरह शील से श्रेष्ठ होता है।
- २—बहुश्रुत दृढ पराक्रमी योद्धा की तरह अजेय होता है।
- ३—बहुश्रुत ६० वर्ष के बलवान हाथी की तरह अपराजेय होता है।
- ४—बहुश्रुत यूथाधिपति वृषभ की तरह अपने गण का प्रमुख होता है।
- ५—बहुश्रुत दुष्पराजेय सिंह की तरह अन्य तीर्थिकों में श्रेष्ठ होता है।
- ६—बहुश्रुत वासुदेव की भाँति अबाधित पराक्रम वाला होता है।
- ७—बहुश्रुत चतुर्दश रत्नाधिपति चक्रवर्ती की भाँति चतुर्दश-पूर्वधर होता है।
- ८—बहुश्रुत देवाधिपति शक्र की भाँति सपदा का अधिपति होता है।
- ९—बहुश्रुत उगते हुए सूर्य की भाँति तप के तेज से प्रज्वलित होता है।
- १०—बहुश्रुत पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति सकल कलाओं से परिपूर्ण होता है।
- ११—बहुश्रुत धान से भरे कोठों की भाँति श्रुत से परिपूर्ण होता है।
- १२—बहुश्रुत जम्बू वृक्ष की भाँति श्रेष्ठ होता है।
- १३—बहुश्रुत सीता नदी की भाँति श्रेष्ठ होता है।
- १४—बहुश्रुत मन्दर पर्वत की भाँति श्रेष्ठ होता है।
- १५—बहुश्रुत नाना रत्नों से परिपूर्ण स्वयम्भूरमण समुद्र की भाँति अक्षय ज्ञान से परिपूर्ण होता है।

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ३१७

ते किर चउदसपुङ्गी, सव्वक्खरसन्निवाहणो निउणा।

जा तेसि पूया रल्लु, सा भावे ताइ अहिगारो ॥

२—निशीथ पीठिका भाष्य चूर्णि, पृष्ठ ४६५

बहुस्सुयं जस्स सो बहुस्सुतो, सो तिविहो—जहण्णो, मज्झिमो, उक्कोसो। जहण्णो जेणपकप्पज्झयण अधीत, उक्कोसो चोइस्स पुव्वधरो, तम्मज्जे मज्झिमो।

बहुश्रुतता का प्रमुख कारण है विनय । जो व्यक्ति विनीत होता है उसका श्रुत फलवान् होता है । जो विनीत नहीं होता उसका श्रुत फलवान् नहीं होता । स्तब्धता, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य—ये पाँच शिक्षा के विघ्न हैं ।^१ इनकी तुलना योगमार्ग के नौ विघ्नो से होती है ।^२

आठ लक्षण युक्त व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त होती है (श्लोक ४, ५)—

- १—जो हास्य नहीं करता ।
- २—जो इन्द्रिय और मन का दमन करता है ।
- ३—जो मर्म प्रकाशित नहीं करता ।
- ४—जो चरित्रवान् होता है ।
- ५—जो दुःशील नहीं होता ।
- ६—जो रसों में अतिगृह्य नहीं होता ।
- ७—जो क्रोध नहीं करता ।
- ८—जो सत्य में रत रहता है ।

सूत्रकार ने अविनीत के १४ लक्षण और विनीत के १५ गुणों का प्रतिपादन कर अविनीत और विनीत की सुन्दर समीक्षा की है (श्लोक ६-१३) ।

इस अध्ययन में श्रुत-अध्ययन के दो कारण बताए हैं (श्लोक ३२)—

- १—स्व की मुक्ति के लिए ।
- २—पर को मुक्ति के लिए ।

दशवैकालिक में श्रुत-अध्ययन के चार कारण दिए हैं—

- १—मुझे श्रुत प्राप्त होगा, इसलिये अध्ययन करना चाहिए ।
- २—मैं एकाग्र चित्त होऊँगा, इसलिये अध्ययन करना चाहिए ।
- ३—मैं आत्मा को धर्म में स्थापित करूँगा, इसलिये अध्ययन करना चाहिए ।
- ४—मैं धर्म में स्थित होकर दूसरे को उसमें स्थापित करूँगा, इसलिये अध्ययन करना चाहिए ।

१—उत्तराध्ययन ११।३ .

अहं पचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्धई ।

यम्भा कोहा पमाएण, रोगेणाऽलसएण य ॥

२—पातजल योगदर्शन १।३०

अप्राप्तिरनसययमादालस्यविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ।

३—दशवैकालिक ६।४ सू० ५

उय मे नविस्सइ त्ति अज्झादयव्व भवइ । एगगच्चित्तो भविस्सामि त्ति अज्झादयव्व भवइ । अप्पाण ठावइस्सामि त्ति अज्झादयव्व भवइ । ठिओ पर ठावइस्सामि त्ति अज्झादयव्व भवइ ।

इकारसमं अज्ज्ञयणं : एकादश अध्ययन

बहुस्सुयपुज्जा : बहुश्रुत-पूजा

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—सजोगा विप्पमुक्कस्स अणगारस्स भिक्खुणो । आयार पाउकरिस्सामि आणुपुण्वि सुणेह मे ॥	संयोगाद् विप्रमुक्तस्य अनगारस्य भिक्षोः । आचार प्रादुर्गकरिष्यामि आनुपूर्व्या शृणुत मे ॥	१—जो संयोग में मुक्त है, जो अनगार है, जो भिक्षु है, उसका मैं क्रमशः आचार कहूँगा । मुझे सुनो ।
२—जे यावि होइ निव्विज्जे थद्धे लुद्धे अणिग्गहे । अभिकखण उल्लवई अविणीए अबहुस्सुए ॥	यश्चापि भवति निर्विद्य स्तब्धो लुब्धोऽतिग्रहः । अभीक्ष्णमुल्लपति अविनीतोऽबहुश्रुतः ॥	२—जो विद्याहीन है, विद्यावान् होते हुए भी जो अभिमानी है, जो सरस आहार में लुब्ध है, जो अजितेन्द्रिय है, जो बार-बार असम्बद्ध बोलता है, जो अविनीत है, वह बहुश्रुत कहलाता है ।
३—अह पचहिं ठाणेहिं जेहिं सिक्खा न लब्भई । थम्भा कोहा पमाएण रोगेणाऽलस्सएण य ॥	अथ पञ्चभिः स्थानै यैः शिक्षा न लभ्यते । स्तम्भात् क्रोधात् प्रमादेन रोगेणालस्येन च ॥	३—मान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य—इन पाँच स्थानों (हेतुओं) से शिक्षा प्राप्त नहीं होती ।
४—अह अट्ठहिं ठाणेहिं सिक्खासीले त्ति वुच्चई । अहस्सिरे सया दन्ते न य मम्ममुदाहरे ॥	अथाष्टभिः स्थानैः शिक्षा-शील इत्युच्यते । अहसिता सदा दान्त न च मर्म उदाहरेत् ॥	४—आठ स्थानों (हेतुओं) से व्यक्ति को शिक्षा-शील कहा जाता है । (१) जो हास्य न करे, (२) जो सदा इन्द्रिय और मन का दमन करे, (३) जो मर्म-प्रकाशन न करे,
५—नासीले न विसीले न सिया अइलोलुए । अकोहणे सच्चरए सिक्खासीले त्ति वुच्चई ॥	नाशीलो न विशीलः न स्यादतिलोलुप । अक्रोधनः सत्य-रतः शिक्षा-शील इत्युच्यते ॥	५—(४) जो चरित्र से हीन न हो, (५) जिसका चरित्र दोषों से कलुषित न हो, (६) जो रसों में अति लोलुप न हो, (७) जो क्रोध न करे, और (८) जो सत्य में रत हो—उसे शिक्षा-शील कहा जाता है ।

६—अह चउदसहिं ठाणेहि
वट्टमाणे उ सजए ।
अविणीए वुच्चई सो उ
निव्वाण च न गच्छइ ॥

अथ चतुर्दशसु स्थानेषु
वर्तमानस्तु सयत ।
अविनीत उच्यते स तु
निर्वाण च न गच्छति ॥

७—अभिक्षण कोही हवइ
पबन्ध च पकुव्वई ।
मेत्तिज्जमाणो वमइ
सुय लद्धूण मज्जई ॥

अभिक्षणं क्रोधी भवति
प्रबन्धं च प्रकरोति ।
मित्रीय्यमाणो वमति
श्रुत लब्ध्वा माद्यति ॥

८—अवि पावपरिक्खेवी
अवि मित्तेसु कुप्पई ।
सुप्पियस्सावि मित्तस्स
रहे भासइ पावग ॥

अपि पाप-परिक्षेपी
अपि मित्रेभ्यः कुप्यति ।
सुप्रियस्यापि मित्रस्य
रहसि भाषते पापकम् ॥

९—पइण्णवाई दुहिले
थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
असविभागी अचियत्ते
अविणीए त्ति वुच्चई ॥

प्रकीर्ण-वादी द्रोग्धा
स्तब्धो लुब्धोऽनिग्रहः ।
असविभागी 'अचियत्त'
अविनीत इत्युच्यते ॥

१०—अह पन्नरसहिं ठाणेहि
सुविणीए त्ति वुच्चई ।
नीयावत्ती अचवले
अमाई अकुज्जहले ॥

अथ पचदशभि स्थानः
सुविनीत इत्युच्यते ।
नीचवर्त्यचपलः
अमाय्यकुतूहलः ॥

११—अप्प चाऽहिक्खिवई^१
पबन्ध च न कुव्वई ।
मेत्तिज्जमाणो भयई
सुयं लद्धु न मज्जई ॥

अल्प चाधिक्षिपति
प्रबन्धं च न करोति ।
मित्रीय्यमाणो भजति
श्रुतं लब्ध्वा न माद्यति ॥

६—चौदह स्थानों (हेतुओं) में वर्तन
करने वाला सयमी अविनीत कहा जाता है ।
वह निर्वाण को प्राप्त नहीं होता ।

७—(१) जो बार-बार क्रोध करता है,
(२) जो क्रोध को टिका कर रखता है, (३) जो
मित्रभाव रखने वाले को भी ठुकराता है,
(४) जो श्रुत प्राप्त कर मद करता है,

८—(५) जो किसी की स्वलना होने
पर उसका तिरस्कार करता है, (६) जो मित्रों
पर कुपित होता है, (७) जो अत्यन्त प्रिय मित्र
की भी एकान्त में वुराई करता है,

९—(८) जो असवद्ध-भाषी है, (९) जो
द्रोही है, (१०) जो अभिमानी है, (११) जो
सरस आहार आदि में लुब्ध है, (१२) जो
अजितेन्द्रिय है, (१३) जो असविभागी है, और
(१४) जो अप्रीतिकर है—वह अविनीत
कहलाता है ।

१०—पन्द्रह स्थानों (हेतुओं) से सुविनीत
कहलाता है । (१) जो नम्र व्यवहार करता है,
(२) जो चपल नहीं होता, (३) जो मायावी
नहीं होता, (४) जो कुतूहल नहीं करता,

११—(५) जो किसी का तिरस्कार नहीं
करता, (६) जो क्रोध को टिका कर नहीं
रखता, (७) जो मित्रभाव रखने वाले के
प्रति कृतज्ञ होता है, (८) जो श्रुत प्राप्त कर
मद नहीं करता,

१२—न य पावपरिक्षेवी
न य मित्तेसु कुप्पई ।
अप्पियस्सावि मित्तस्स
रहे कल्लाण भासई ॥

न च पाप-परिक्षेवी
न च मित्रेभ्यः कुप्यति ।
अप्रियस्यापि मित्रस्य
रहसि कल्याण भाषते ॥

१२—(६) जो स्वलना होने पर किसी का तिरस्कार नहीं करता, (१०) जो मित्रों पर क्रोध नहीं करता, (११) जो अप्रिय मित्र की भी एकान्त में प्रशंसा करता है,

१३—कलहडमरवज्जए
बुद्धे अभिजाइए ।
हिरिम पडिसलीणे
सुविणीए त्ति वुच्चई ॥

कलह-डमर-वर्जक.
बुद्धोऽभिजातिगः ।
हीमान् प्रतिसलीनः
विनीत इत्युच्यते ॥

१३—(१२) जो कलह और हाथापाई का वर्जन करता है, (१३) जो कुलीन होता है, (१४) जो लज्जावान् होता है और (१५) जो प्रतिसलीन (इन्द्रिय और मन का सगोपन करने वाला) होता है—वह बुद्धिमान् मुनि विनीत कहलाता है ।

१४—वसे गुरुकुले निच्च
जोगव उवहाणव ।
पियकरे पियवाई
से सिक्ख लद्धुमरिहई ॥

वसेद् गुरु-कुले नित्य
योगवानुपधानवान् ।
प्रियङ्करः प्रियवादी
स शिक्षा लब्धुमर्हति ॥

१४—जो सदा गुरु-कुल में वास करता है, जो समाधियुक्त होता है, जो उपवान (श्रुत-अध्ययन के समय तप) करता है, जो प्रिय करता है, जो प्रिय बोलता है—वह शिक्षा प्राप्त कर सकता है ।

१५—जहा सखम्मि पय
'निहिय दुहओ वि' विरायड ।
एव बहुस्सुए भिक्खू
धम्मो कित्ती तहा सुय ॥

यथाशङ्खे पयो
निहित द्विधापि विराजते ।
एव बहुश्रुते भिक्षो
धर्म. कीर्तिस्तथा श्रुतम् ॥

१५—जिस प्रकार शङ्ख में रखा हुआ दूध दोनों ओर (अपने और अपने आधार के गुणों) से सुशोभित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भिक्षु में धर्म, कीर्ति और श्रुत दोनों ओर (अपने और अपने आधार के गुणों) से सुशोभित होते हैं ।

१६—जहा से कम्बोयाण
आइण्णे कन्थए सिया ।
आसे जवेण पवरे
एव हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स काम्बोजाना
आकीर्णः कन्थकः स्यात् ।
अश्वो जवेन प्रवरः
एवं भवति बहुश्रुत ॥

१६—जिस प्रकार कम्बोज के घोड़ों में से कन्थक घोड़ा शील आदि गुणों से आकीर्ण और वेग से श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार भिक्षुओं में बहुश्रुत श्रेष्ठ होता है ।

१७—जहाइणसमारुढे
सूरे दढपरक्कमे ।
उभओ नन्दिघोसेणं
एव हवइ बहुस्सुए ॥

यथाऽऽकीर्ण-समारुढः
शूरो दढ-पराक्रमः ।
उभयतो नन्दि-घोषेण
एव भवति बहुश्रुतः ॥

१७—जिस प्रकार आकीर्ण (जातिमान्) अश्व पर चढा हुआ दढ पराक्रम वाला योद्धा दोनों ओर वजने वाले बाघों के घोप से अजेय होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत अपने आसपास होने वाले स्वाध्याय-घोष से अजेय होता है ।

१८—जहा करेणुपरिकिण्णे
कुजरे सट्ठिहायणे ।
बलवन्ते अप्पडिहए
एव हवइ बहुस्सुए ॥

यथा करेणुपरिकीर्णः
कुल्लरः षष्ठिहायनः ।
बलवानप्रतिहतः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

१८—जिस प्रकार हथिनियों से परिवृत
साठ वर्ष का बलवान् हाथी किसी से पराजित
नहीं होता, उसी प्रकार बहुश्रुत दूसरो से
पराजित नहीं होता ।

१९—जहा से तिक्खसिंगे
जायखन्वे विरायई ।
वसहे जूहाहिवई
एव हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स तीक्ष्ण-शृंगः
जात-स्कन्धो विराजते ।
वृषभो यूथाधिपतिः
एव भवति बहुश्रुतः ॥

१९—जिस प्रकार तीक्ष्ण सींग और
अत्यन्त पुष्ट स्कन्ध वाला वेल यूथ का अधिपति
बन सुशोभित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत
आचार्य बनकर सुशोभित होता है ।

२०—जहा से तिक्खदाढे
उदग्गे दुप्पहसए ।
सीहे मियाण पवरे
एव हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स तीक्ष्ण-दंष्ट्रः
उदगो दुष्प्रधर्षकः ।
सिंहो मृगाणां प्रवरः
एव भवति बहुश्रुतः ॥

२०—जिस प्रकार तीक्ष्ण दाढ़ों वाला
पूर्ण युवा और दुष्पराजेय सिंह आरण्य-पशुओ
में श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत अन्य
तीर्थिको में श्रेष्ठ होता है ।

२१—जहा से वासुदेवे
सखचक्कगयाधरे ।
अप्पडिहयबले जोहे
एव हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स वासुदेवः
शङ्ख-चक्र-गदा-धरः ।
अप्रतिहत-बलो योधः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

२१—जिस प्रकार शङ्ख, चक्र और गदा
को धारण करने वाला वासुदेव अबाधित बल
वाला योद्धा होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत
अबाधित बल वाला होता है ।

२२—जहा से चाउरन्ते
चक्कवट्टी महिडिहए ।
चउदसरयणाहिवई
एव हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स चतुरन्तः
चक्रवर्ती महर्द्धिकः ।
चतुर्दशरत्नाधिपतिः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

२२—जिस प्रकार महान् ऋद्धिशाली,
चतुरन्त चक्रवर्ती चौदह रत्नों का अधिपति
होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत चतुर्दश
पूर्वधर होता है ।

२३—जहा से सहस्सकखे
वज्जपाणी पुरन्दरे ।
सक्के देवाहिवई
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स सहस्राक्षः
वज्रपाणिः पुरन्दरः ।
शक्रो देवाधिपतिः
एव भवति बहुश्रुतः ॥

२३—जिस प्रकार सहस्रचक्षु, वज्रपाणि
और पुरों का विदारण करने वाला
शक्र देवों का अधिपति होता है, उसी प्रकार
बहुश्रुत देवी सम्पदा का अधिपति होता है ।

२४—जहा से तिमिरविद्धसे
उत्तिष्ठन्ते दिवायरे ।
जलन्ते इव तेएण
एव हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स तिमिर-विध्वसः
उत्तिष्ठन्दिवाकरः ।
ज्वलन्तिव तेजसा
एव भवति बहुश्रुतः ॥

२४—जिस प्रकार अन्धकार का नाश करने वाला उगता हुआ सूर्य तेज से जलता हुआ प्रतीत होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत तप के तेज से जलता हुआ प्रतीत होता है ।

२५—जहा से उडुवई चन्दे
नक्खत्तपरिवारिए ।
पडिपुण्णे पुण्णमासीए
एव हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स उडुपतिचन्द्रः
नक्षत्र-परिवारितः ।
प्रतिपूर्णः पौर्णमास्या
एव भवति बहुश्रुतः ॥

२५—जिस प्रकार नक्षत्र-परिवार में परिवृत्त ग्रहपति चन्द्रमा पूर्णिमा को प्रतिपूर्ण होता है, उसी प्रकार साधुओं के परिवार में परिवृत्त बहुश्रुत सकल कलाओं में परिपूर्ण होता है ।

२६—जहा से सामाइयाण'
कोट्टागारे सुरक्खिए ।
नाणाधन्तपडिपुण्णे
एव हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स सामाजिकाना
कोष्ठागारः सुरक्षितः ।
नानाधान्य-प्रतिपूर्ण
एव भवति बहुश्रुतः ॥

२६—जिस प्रकार सामाजिको (समुदाय वृत्ति वालों) का कोष्ठागार सुरक्षित और अनेक प्रकार के धान्यों से परिपूर्ण होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत नाना प्रकार के श्रुत से परिपूर्ण होता है ।

२७—जहा सा दुमाण पवरा
जम्बू नाम सुदसणा ।
अणाढियस्स देवस्स
एव हवइ बहुस्सुए ॥

यथा सा द्रुमाणा प्रवरा
जम्बूनाम्ना सुदर्शना ।
अनादृतस्य देवस्य
एव भवति बहुश्रुतः ॥

२७—जिस प्रकार अनादृत देव का आश्रय सुदर्शना नाम का जम्बू वृक्ष सब वृक्षों में श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत सब साधुओं में श्रेष्ठ होता है ।

२८—जहा सा नईण पवरा
सलिला सागरगमा ।
सीया नीलवन्तपवहा'
एव हवइ बहुस्सुए ॥

यथा सा नदीना प्रवरा
सलिला सागरङ्गमा ।
शीतानीलवत्प्रवहा
एव भवति बहुश्रुतः ॥

२८—जिस प्रकार नीलवान् पर्वत से निकल कर समुद्र में मिलने वाली शीता नदी शेष नदियों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुश्रुत सब साधुओं में श्रेष्ठ होता है ।

२९—जहा से नगाण पवरे
सुमह मन्दरे गिरी ।
नाणोसहिपज्जलिए
एव हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स नगाना प्रवरः
सुमहान्मन्दरो गिरिः ।
नानौषधि-प्रज्वलित
एव भवति बहुश्रुतः ॥

२९—जिस प्रकार अतिशय महान् और अनेक प्रकार की औषधियों से दीप्त मदर पर्वत सब पर्वतों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुश्रुत सब साधुओं में श्रेष्ठ होता है ।

३०—जहा से सयभूरमणे
उदही अक्खओदए ।
नाणारयणपडिपुण्णे^१
एव हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स स्वयम्भूरमणः
उदधिरक्षयोदकः ।
नानारत्न-प्रतिपूर्णः
एव भवति बहुश्रुतः ॥

३०—जिस प्रकार अक्षय जल वाला
स्वयम्भूरमण समुद्र अनेक प्रकार के रत्नों से भरा
हुआ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत अक्षय ज्ञान
से परिपूर्ण होता है ।

३१—समुद्गम्भीरसमा दुरासया
अचक्किया केणइ दुप्पहसया^२ ।
सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो
खवित्तु कम्म गइमुत्तमं गया ॥

समुद्रगाम्भीर्यसमा दुरासदाः
अचकिता केनापि दुष्प्रधर्षकाः ।
श्रुतेन पूर्णा विपुलेन त्रायिण
क्षपयित्वा कर्मगतमुत्तमांगता ॥

३१—समुद्र के समान गम्भीर, दुरासद
(कष्टों से अवाधित), अभय, किसी प्रतिवादी
के द्वारा अपराजेय, विपुलश्रुत से पूर्ण और
त्राता बहुश्रुत मुनि कर्मों का क्षय करके उत्तम
गति (मोक्ष) में गये ।

३२—तम्हा सुयमहिद्वेज्जा
उत्तमद्वगवेसए^३ ।
जेणप्पाण पर चैव
सिद्धि संपाउणेज्जासि ॥
—त्ति वेमि ।

तस्माच्छ्रुतमधितिष्ठेत्
उत्तमार्थ-गवेषकः ।
येनात्मानं परं चैव
सिद्धिं संप्रापयेत् ॥

—इति ब्रवीमि ।

३२—इसलिए उत्तम-अर्थ (मोक्ष) की
गवेषणा करने वाला मुनि श्रुत का आश्रयण
करे, जिससे वह अपने आपको और दूसरों को
सिद्धि (मुक्ति) की प्राप्ति करा सके ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. ^१सपुण्णे (अ) ।

२. दुप्पहसिया (चू०) ।

३. उत्तमिद्व^३ (अ) ।

वारसमं अज्ज्ञयणं :
हरिणसिज्जं

द्वावसमं अध्ययनं :
हरिकेशीय

आस्तुत्र

यह अध्ययन मुनि हरिकेशबल से सम्बन्धित है, इसलिए इसका नाम 'हरिगमिज्ज'—'हरिकेशोय' है।

मथुरा नगरी के राजा 'शख' विरक्त हो मुनि बन गए। ग्रामानुग्राम धूमते हुए एक बार वे हस्तिनापुर (हस्तिनापुर) आए और भिक्षा के लिए नगर की ओर चले। ग्राम-प्रवेश के दो मार्ग थे। मुनि ने एक ब्राह्मण से मार्ग पूछा। एक मार्ग का नाम 'हुताशन' था और वह अत्यन्त निकट था। वह अग्नि की तरह प्रज्वलित रहता था। ब्राह्मण ने कुतूहलवश उस ऊष्ण मार्ग की ओर सकेत कर दिया। मुनि निश्छल भाव से उसी मार्ग पर चल पड़े। वे लब्ध-सम्पन्न थे। अतः उनके पाद-स्पर्श से मार्ग ठण्डा हो गया। मुनि को अविचल भाव से आगे बढ़ते देख ब्राह्मण भी उसी मार्ग पर चल पड़ा। मार्ग को बर्फ जैसा ठण्डा देख उसने सोचा—'यह मुनि का ही प्रभाव है।' उसे अपने अनुचित कृत्य पर पश्चात्ताप हुआ। वह दौड़ा-दौड़ा मुनि के पास आया और उसने अपना पाप प्रकट कर क्षमा-याचना की। मुनि ने धर्म का उपदेश दिया। ब्राह्मण के मन में विरक्ति का भाव उत्पन्न हुए। वह मुनि के पास प्रव्रजित हो गया। उसका नाम सोमदेव था। उसमें जाति का अवलोक था। 'मैं ब्राह्मण हूँ, उत्तम जातीय हूँ'—यह मद् उसमें बना रहा। कालक्रम से मर कर वह देव बना। देव-आयुष्य को पूरा कर जाति-मद् के परिपाक से गङ्गा नदी के तट पर हरिकेश के अधिप 'बलकोष्ठ' नामक चाण्डाल की पत्नी 'गौरी' के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम बल रखा गया। यही बालक हरिकेशबल के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

एक दिन वह अपने साथियों के साथ खेल रहा था। खेलते-खेलते वह लड़ने लगा। लोगों ने जब यह देखा तो उसको दूर ढकेल दिया। दूसरे बालक पूर्ववत् खेलने लगे किन्तु वह दर्शक मात्र ही रहा। इतने में ही एक भयंकर सर्प निकला। लोगो ने उसे पत्थरों से मार डाला। कुछ ही क्षणों बाद एक अलसिया निकला। लोगों ने उसे छोड़ दिया। दूर बैठे बालक हरिकेश ने यह सब देखा। उसने सोचा—'प्राणी अपने दोषों से ही दुःख पाता है। यदि मैं सर्प के समान विषला होता हूँ तो यह स्वाभाविक ही है कि लोग मुझे मारेंगे और यदि मैं अलसिए की तरह निर्विष होता हूँ तो कोई दूसरा मुझे क्यों सताएगा?' चिन्तन आगे बढ़ा। जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। जाति-मद् के विपाक का चित्र सामने आ गया। निर्वेद को प्राप्त हो उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। मुनि हरिकेशबल श्रामण्य का विशुद्ध रूप से पालन करते हुए तपस्या में लीन रहने लगे। तप प्रभाव से अनेक यक्ष उनकी सेवा करने लगे। मुनि यक्ष-मन्दिर में कायोत्सर्ग, ध्यान आदि करते। एक बार वे ध्यानलीन खड़े थे। उस समय वाराणसी के राजा कौशलिक की लड़की भद्रा यक्ष की पूजा करने वहाँ आई। पूजा कर वह प्रदक्षिणा करने लगी। उसकी दृष्टि ध्यानलीन मुनि पर जा टिकी। उनके मैले कपड़े देख उसे घृणा हो आई। आवेश में आ उसने मुनि पर थूक दिया। यक्ष ने यह देखा। उसने सोचा—'इस कुमारी ने मुनि की आशातना की है। इसका फल इसे मिलना ही चाहिए।' यक्ष कुमारी के शरीर में प्रविष्ट हो गया। कुमारी पागल हो गयी। वह अनर्गल बातें कहने लगी। दासियाँ उसे राजमहल में ले गयीं। उपचार किया गया पर सब व्यर्थ। यक्ष ने कहा—'इस कुमारी ने एक तपस्वी मुनि का तिरस्कार किया है। यदि यह उस तपस्वी के साथ पाणिग्रहण करना स्वीकार कर लेती है तो मैं इसके शरीर में बाहर निकल सकता हूँ, अन्यथा नहीं।' राजा ने बात स्वीकार कर ली।

राजा अपनी कन्या को साथ ले यक्ष-मन्दिर में आया और मुनि को नमस्कार कर अपनी कन्या को स्वीकार करने की प्रार्थना की। मुनि ने ध्यान पारा और कहा—“राजन् ! मैं मुमुक्षु हूँ। स्त्री मोक्ष-मार्ग में बाधक है, इसलिए मैं इसका स्पर्श भी नहीं कर सकता।” इतना कह मुनि पुनः ध्यानलीन हो गए।

कन्या को मुनि के चरणों में छोड़ राजा अपने स्थान पर आ गया। यक्ष ने मुनि का रूप बनाया और राजकन्या का पाणिग्रहण किया। रात भर कन्या वहीं रही। प्रभात में यक्ष दूर हुआ। मुनि ने सही-सही बात कन्या से कही। वह दौड़ी-दौड़ी राजा के पास गई और यक्ष द्वारा ठगे जाने की बात बताई। राजा के पास बैठे रुद्रदेव पुरोहित ने कहा—“राजन् ! यह ऋषि-पत्नी है। मुनि ने इसे त्याग दिया है, अतः इसे किसी ब्राह्मण को दे देना चाहिए।” राजा ने उसी पुरोहित को कन्या सौंप दी। वह उसके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा। कुछ काल बीता। पुरोहित ने यज्ञ किया। दूर-दूर से विद्वान्-ब्राह्मण बुलाए गए। उन सबके आतिथ्य के लिए प्रचुर भोजन-सामग्री एकत्रित की गई।

उस समय मुनि हरिकेशबल एक-एक मास का तप कर रहे थे। पारणा के दिन वे भिक्षा के लिए घर-घर घूमते हुए उसी यज्ञ-मण्डप में जा पहुँचे।

उसके बाद मुनि और वहाँ के वरिष्ठ ब्राह्मणों के बीच जो वार्ता-प्रसंग चला उसका सकलन सूत्रकार ने किया है। वार्ता के माध्यम से ब्राह्मण-धर्म और निर्यन्थ-प्रवचन का सार प्रतिपादित हुआ है। सर्वप्रथम ब्राह्मण-कुमार मुनि की अवहेलना करते हैं परन्तु अन्त में वे उनसे मार्ग-दर्शन लेते हैं।

इस अध्ययन में निम्न विषयों पर चर्चा हुई है—

१—दान का अधिकारी — श्लोक १२ से १८।

२—जातिवाद — श्लोक ३६।

३—यज्ञ — श्लोक ३८ से ४४।

४—जल-स्नान — श्लोक ३८, ४५, ४६, ४७।

बौद्ध-साहित्य में मातंग जातक (४६७) में यह कथा प्रकारान्तर से मिलती है।

वारसमं अज्झयण : द्वादशम अध्ययन

हरिएसिज्जं : हरिकेशीय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—सोवागकुलसभूओ गुणुत्तरधरो ^१ मुणी । हरिएसवलो नाम आसि भिक्खू जिइन्दिओ ॥	श्वपाककुल-सभूतः उत्तर-गुण-धरो मुनि । हरिकेशवलो नाम आसीद् भिक्षुजितेन्द्रिय ॥	१—चाण्डाल-कुल में उत्पन्न, ज्ञान आदि उत्तम गुणों को धारण करने वाला, धर्म-अधर्म का मनन करने वाला हरिकेशवल नामक जितेन्द्रिय भिक्षु था ।
२—इरिएसणभासाए उच्चारसमिईसु य । जओ आयाणनिक्खेवे सजओ सुसमाहिओ ॥	ईर्येणभाषाया उच्चारसमितौ च । यत आदान-निक्षेपे संयतः सुसमाहित ॥	२—वह ईर्या, एणया, भाषा, उच्चार, आदान-निक्षेप—इन समितियों में सावधान था, सयमी और समाधिस्य था ।
३—मणगुत्तो वयगुत्तो कायगुत्तो जिइन्दिओ । भिक्खट्ठा वम्भइज्जम्मि जन्नवाडं उवट्ठिओ ॥	मनो-गुप्तो वचो-गुप्त काय-गुप्तो जितेन्द्रियः । भिक्षार्थं ब्रह्मे ज्ये यज्ञवाटे उपस्थितः ॥	३—वह मन, वचन और काया से गुप्त और जितेन्द्रिय था । वह भिक्षा लेने के लिए यज्ञ-मण्डप में गया, जहाँ ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे ।
४—त पासिऊणमेज्जन्तं तवेण परिसोसिय । पन्तोवहिउवगरण उवहसन्ति अणारिया ॥	तं दृष्ट्वाऽऽयान्त तपसा परिशोधितम् । प्रान्तोपध्युपकरणं उपहसन्त्यनार्याः ॥	४—वह तप से कृश हो गया था । उसके उपधि और उपकरण प्रान्त (जीर्ण और मलिन) थे । उसे आते देख, वे अनार्य (ब्राह्मण) हँसे ।
५—जाईमयपडिबद्धा ^२ हिंसगा अजिइन्दिया । अवम्भचारिणो वाला इम वयणमव्ववी ॥	जातिमद-प्रतिस्तब्धाः हिंसका अजितेन्द्रियाः । अब्रह्मचारिणो बालाः इद वचनमब्रुवन् ॥	५—जाति-मद से मत्त, हिंसक, अजितेन्द्रिय, अब्रह्मचारी और अज्ञानी ब्राह्मणों ने परस्पर इस प्रकार कहा—

१. अणुत्तरधरो (अ, बु० पा०, चू०) ।

२. ०पडिबद्धा (उ, बु० पा०) ।

६—‘कयरे आगच्छइ’^१ दित्तरूवे
काले विगराले फोक्कनासे ।
ओमचेलए पसुपिसायभूए
सकरदूस परिहरिय कण्ठे ॥

७—कयरे^२ तुम इय अदसणिज्जे
काए व आसा इहमागओ सि ।
ओमचेलगा पसुपिसायभूया
गच्छ क्वलाहि किमिह ठिओसि ? ॥

८—जक्खो तर्हि तिन्दुरस्खवासी
अणुकम्पओ तस्स महामुणिस्स ।
पच्छायइत्ता नियग सरीर
इमाइ वयणाइमुदाहरित्था ॥

९—समणो अह सजओ बम्भयारी
विरओ धणपयणपरिग्गहाओ ।
परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले
अन्नस्स अट्ठा इहमागओ मि ॥

१०—वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जइ य
अन्न पभूय भवयाणमेय ।
जाणाहि मे ‘जायणजीविणु त्ति’^३
सेसावसेस लभऊ तवस्सी ॥

११—उवक्खड भोयण माहणाण
अत्तट्ठिय सिद्धमिहेगपक्खं ।
न ऊ वय एरिसमन्नपाणं
दाहामुतुज्झ किमिहं ठिओ सि ? ॥

कतर आगच्छति दीप्तरूपः
कालो विकरालः ‘फोक्क’ नासः ।
अवम-चेलकः पाशुपिशाचभूतः
संकर-द्वयं परिधाय कण्ठे ? ॥

कतरस्त्वमित्यदर्शनीयः
कया वाऽऽशयेहागतोऽसि ? ।
अवम-चेलकः पाशु-पिशाचभूतः
गच्छ अपसर किमिह स्थितोसि ? ॥

यक्षस्तस्मिन् तिन्दुकवृक्ष-वासी
अनुकम्पकस्तस्य महामुनेः ।
प्रच्छाद्य निजकं शरीर
इमानि वचनानि उदाहर्षीत् ॥

श्रमणोऽहं सयतो ब्रह्मचार
विरतो धन-पचन-परिग्रहात् ।
पर-प्रवृत्तस्य तु भिक्षाकाले
अन्नस्यार्थं इहाऽऽगतोऽस्मि ॥

वितीर्यते खाद्यते भुज्यते च
अन्न प्रभूत भवतामेतत् ।
जानीत मा याचना-जीविनमिति
शेषावशेषं लभतां तपस्वी ॥

उपस्कृतं भोजनं ब्राह्मणानां
आत्मार्थिकं सिद्धमिहैक-पक्षम् ।
न तु वयमीदृशमन्न-पानं
दास्यामः तुभ्य किमिह स्थितोऽसि ? ॥

६—वीभत्स रूप वाला, काला, विकराल
और बड़ी नाक वाला, अधनङ्गा, पाशु-पिशाच
(चुडेल) सा, गले में संकर-द्वय (उकुरडी से
उठाया हुआ चिथड़ा) डाले हुए वह कौन आ
रहा है ?

७—ओ अदर्शनीय मूर्ति ! तुम कौन हो ?
किस आशा से यहाँ आए हो ? अधनगे तुम
पाशु-पिशाच (चुडेल) से लग रहे हो । जाओ,
बाँखो से परे चले जाओ । यहाँ क्यों खड़े हो ?

८—उस समय महामुनि हरिकेशवल की
अनुकम्पा करने वाला तिन्दुक (आवनूस) वृक्ष
का वासी यक्ष अपने शरीर का गोपन कर
मुनि के शरीर में प्रवेश कर इस प्रकार बोला—

९—“मैं श्रमण हूँ, सयमी हूँ, ब्रह्मचारी
हूँ, धन व पचन-पाचन और परिग्रह से विरत
हूँ । यह भिक्षा का काल है । मैं सहज निष्पन्न
भोजन पाने के लिए यहाँ आया हूँ ।”

१०—“आपके यहाँ पर यह बहुत सारा
भोजन दिया जा रहा है, खाया जा रहा है
और भोगा जा रहा है । मैं भिक्षा-जीवी हूँ,
यह आपको ज्ञात होना चाहिए । अच्छा ही है
कुछ बचा भोजन इस तपस्वी को मिल जाए ।”

११—(सोमदेव—) यहाँ जो भोजन
बना है, वह केवल ब्राह्मणों के लिए
ही बना है । वह एक-पाक्षिक है—अब्राह्मण को
अदेय है । ऐसा अन्न-पान हम तुम्हें नहीं
देंगे, फिर यहाँ क्यों खड़े हो ?

१. कयरे तुम एसिध (चू०), कयरे आगच्छति (चू० पा०), को रे आगच्छइ (वृ० पा०) ।

२. को रे (सु० पा०, वृ० पा०) ।

३. जीवणो त्ति (वृ० पा०) ।

१२—थलेसु वीयाड ववन्ति कासगा
तहेव निन्नेसु य आससाए ।
एयाए सद्धाए दलाह मज्झ
‘आराहए पुण्णमिण खुखेत्त’ ॥

१३—खेत्ताणि अम्ह विडयाणि लोए
जहि पकिण्णा विरुहन्ति पुण्णा ।
जे माहणा जाडविज्जोववेया
ताड तु खेत्ताड मुपेसलाड ॥

१४—कोहां य माणो य वहो य जेसि
मोस अदत्त च परिग्रह च ।
ते माहणा जाडविज्जाविहूणा
ताड तु खेत्ताड सुपावयाड ॥

१५—तुब्भेत्य भो । भारघरा^१ गिराण
अट्ट न जाणाह अहिज्ज वेए ।
उच्चावयाड मुणिणो चरन्ति
ताड तु खेत्ताड मुपेसलाड ॥

१६—अज्झावयाण पडिकूलभासी
पभाससे किं तु सगासि अम्ह ।
अवि एय विणस्सउ अन्नपाण^२
न य ण दहामु तुम नियण्ठा । ॥

१७—समिईहि मज्झ सुसमाहियस्स
गुत्तीहि गुत्तस्स जिडन्दियस्स ।
जड मे न दाहित्य अहेसणिज्ज
किमज्ज जन्नाण लहित्य लाह ? ॥

स्थलेषु वीजानि वपन्ति कर्षकाः
तथैव निम्नेषु चाऽऽशंसया ।
एतया श्रद्धया ददध्वं मया
आगवयत पुण्यमिदं खलु क्षेत्रम् ॥

क्षेत्राण्यस्माकं विदितानि लोके
येषु प्रकीर्णानि विरोहन्ति पूर्णानि ।
ये ब्राह्मणा जातिविद्योपेता
तानि तु क्षेत्राणि सुपेशलानि ॥

क्रोधश्च मानश्च वदश्च येषां
मृषा अदत्त च परिग्रहश्च ।
ते ब्राह्मणा जाति-विद्या-विहीनाः
तानि तु क्षेत्राणि सुपापकानि ॥

यूयमत्र भो । भारघरा गिरा
अर्थं न जानीथावीत्य वेदान् ।
उच्चावचानि चरन्ति मुनयः
तानि तु क्षेत्राणि सुपेशलानि ॥

अध्यापकानां प्रतिकूलभाषी
प्रभाषसे किं तु सकाशेऽस्माकम् ।
अप्येतद् विनश्यतु अन्न-पानं
न च दास्याम तुभ्य निर्ग्रन्थ ! ॥

समितिभिर्मह्य सुसमाहिताय
गुप्तिभिर्गुप्ताय जितेन्द्रियाय ।
यदि मह्य न दास्यथाऽथैषणीय
किमद्य यज्ञानां लप्स्यध्वे लाभम् ? ॥

१२—(यक्ष—) “अच्छी उपज की बाधा
में किसान जैसे म्यल (ऊँची भूमि) में बीज
बोते हैं, वैसे ही नीची भूमि में बोते हैं ।
इसी यद्धा से (अपने आपको निम्न भूमि और
मुझे म्यल तुल्य मानते हुए भी तुम) मुझ दान
दो, पुण्य की आराधना करो । यह क्षेत्र है,
बीज खाली नहीं जाएगा ।”

१३—(मामदेव—) “जहाँ बोए हुए मारे
के सारे बीज उग जाते हैं, वे क्षेत्र इस लोक
में हमें ज्ञात हैं । जो ब्राह्मण जानि और विद्या
से युक्त हैं, वे ही पुण्य-क्षेत्र हैं ।”

१४—(यक्ष—) “जिनमें क्रोध है, मान
है, हिंसा है, भ्रूट है, चोरी है और परिग्रह
है—वे ब्राह्मण जाति-विहीन, विद्या-विहीन
और पाप-क्षेत्र हैं ।

१५—“हे ब्राह्मणो । इस मसार
में तुम केवल वाणीका भार ढो रहे हो । वेदों
को पढ़ कर भी उनका अर्थ नहीं जानते । जो
मुनि उच्च और नीच घरों में भिक्षा के लिए
जाते हैं, वे ही पुण्य-क्षेत्र हैं ।”

१६—(सोमदेव—) “ओ । अध्यापकों के
प्रतिकूल बोलने वाले माधु । हमारे समक्ष तू
क्या बड़-बड़ कर बोल रहा है ? हे निर्ग्रन्थ ।
यह अन्न-पान भले ही सड़ कर नष्ट हो जाए
किन्तु तुझे नहीं दूँगे ।”

१७—(यक्ष—) “मैं समितियों से समाहित,
गुप्तियों से गुप्त और जितेन्द्रिय हूँ । यह एषणीय
(विशुद्ध) आहार यदि तुम मुझे नहीं दोगे, तो
इन यज्ञों का आज तुम्हें क्या लाभ होगा ?”

१. आराहणा होहिम पुण्ण मेत्त (वृ० पा०) ।

२. भारवहा (वृ० पा०) ।

३. भत्तपाण (ऋ०) ।

१८—के एत्थ खत्ता उवजोइया वा
अज्झावया वा सह खण्डिहं ।
एय^१ दण्डेण फलेण हत्ता
कण्ठम्मि घेतूण खलेज्ज जो णं ? ॥

१९—अज्झावयाण वयण सुणेत्ता
उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा ।
दण्डेहि वित्तेहि कसेहि चेव
समागया त 'इसि तालयन्ति'^२ ॥

२०—रन्तो तर्हि कोसलियस्स धूया
भद्दं त्ति नामेण अणिन्दियगी ।
त पासिया सजय हम्ममाण
कुद्धे कुमारे परिनिव्ववेइ ॥

२१—देवाभिओगेण निओइएण
दिन्ता मु रन्ता मणसान भाया ।
नरिन्ददेविन्दऽभिवन्दिएण
जेणम्हि वस्ता इसिणा स एसो ॥

२२—एसो हु सो उग्गतवो महप्पा
जिइन्दिओ सजओ बम्भयारी ।
'जो मे'^३ तथा नेच्छइ दिज्जमाणि
पिउणा सय कोसलिएण रन्ता ॥

२३—महाजसो एस महानुभागो^४
घोरव्वओ घोरपरक्कमो य ।
मा एय हीलह अहीलणिज्ज
मा सव्वे तेएण भे निद्देहज्जा ॥

केऽत्र क्षत्रा उपज्योतिषा वा
अध्यापका वा सह खण्डिकैः ।
एन खलु दण्डेन फलेन हत्वा
कण्ठे गृहीत्वा स्वलयेयुः ये ? ॥

अध्यापकानां वचनं श्रुत्वा
उद्धावितास्तत्र बहवः कुमाराः ।
दण्डैर्वैत्रै कशैश्चैव
समागतास्तमृषिं ताडयन्ति ॥

राजस्तत्र कौशलिकस्य दुहिता
भद्रेति नाम्ना अनिन्दिताङ्गी ।
तं दृष्ट्वा सयतं हन्यमान
क्रुद्धान्कुमारान्परिनिर्वापयति ॥

देवाभियोगेन नियोजितेन
दत्ता ऽस्मि राज्ञा मनसा न ध्याता ।
नरेन्द्रदेवेन्द्राभिवन्दिनेन
येनास्मि वान्ता ऋषिणा स एष ॥

एष खलु स उग्र-तपा महात्मा
जितेन्द्रियः सयतो ब्रह्मचारी ।
यो मां तदा नेच्छति दीयमानां
पित्रास्वयं कौशलिकेन राज्ञा ॥

महायशा एष महानुभाग
घोर-व्रतो घोर-पराक्रमश्च ।
मैनं हीलयताहीलनीयं
मा सर्वान् तेजसा भवतो निर्वाक्षीत् ॥

१८—(सोमदेव—) “यहाँ कौन है क्षत्रिय,
रसोइया, अध्यापक या छात्र, जो डण्डे और
फल से पीट, गलहत्या दे इस निर्ग्रन्थ को यहाँ
से बाहर निकाले ?”

१९—अध्यापको का वचन सुनकर बहुत से
कुमार उधर दौड़े । वहाँ आ डण्डो, बेंतों और
चाबुको से उस ऋषि को पीटने लगे ।

२०—राजा कौशलिक की सुन्दर पुत्री
भद्रा यज्ञ-मण्डप में मुनि को प्रताडित होते देख
क्रुद्ध कुमारों को शान्त करने लगी ।

२१—(भद्रा—) “राजाओं और इन्द्रों से
पूजित यह वह ऋषि है, जिसने मेरा त्याग
किया । देवता के अभियोग से प्रेरित हो कर
राजा द्वारा मैं दी गई, किन्तु जिसने मुझे मन
से भी नहीं चाहा ।

२२—“यह वही उग्र तपस्वी, महात्मा,
जितेन्द्रिय, सयमी और ब्रह्मचारी है, जिसने
मुझे मेरे पिता राजा कौशलिक द्वारा दिये जाने
पर भी नहीं चाहा ।

२३—“यह महान् यशस्वी है । महान्
अनुभाग (अचिन्त्य-शक्ति) से सम्पन्न है । घोर
व्रती है । घोर पराक्रमी है । इसकी अवहेलना
मत करो, यह अवहेलनीय नहीं है । कही यह
अपने तेज से तुम लोगों को भस्मसात् न कर
डाले ?”

१. एयं तु (अ, उ), एयं तु (आ) ।

२. इसि ताडयति (उ, ऋ०) ।

३. जो म (अ, आ) ।

४. महानुभावो (वृ० पा०, चू०) ।

२४—एयाइ तीसे वयणाइ सोच्चा
पत्तीइ भदाइ सुहासियाइ ।
इसिस्स वेयावडियट्टयाए
जक्खा कुमारे विणिवाडयन्ति ॥

एतानि तस्या वचनानि श्रुत्वा
पत्न्या भद्रायाः सुभाषितानि ।
ऋषेर्वैयापृत्यार्थं
यक्षाः कुमारान् विनिवारयन्ति ॥

२४—सोमदेव पुरोहित की पत्नी भद्रा के
सुभाषित वचनों को सुन कर यक्षों ने ऋषि का
वैयापृत्य (परिचर्या) करने के लिए कुमारों
को भूमि पर गिरा दिया ।

२५—ते घोररूपा ठिय अन्तलिक्खे
असुरा तर्हि त जण तालयन्ति ।
ते भिन्नदेहे रुहिर वमन्ते
पासित्तु भदा डणमाहु भुज्जो ॥

ते घोर-रूपाः स्थिता अन्तरिक्षे
असुरास्तत्र त जन ताडयन्ति ।
तान् भिन्न-देहान् रुधिर वमत-
दृष्ट्वा भद्रा दमाह भूयः ॥

२५—घोर रूप वाले यक्ष आकाश में
स्थिर हो कर उन द्यात्रों को मारने लगे । उनके
शरीरों को क्षत-विक्षत और उन्हें रुधिर का
वमन करते देख भद्रा फिर कहने लगी—

२६—गिरि नहेहि खणह
अय दन्तेहि खायह ।
जायतेय पाएहि हणह
जे भिक्खु अवमन्नह ॥

गिरि नरवै खनय
अयो दन्तैः खादय ।
जाततेजस पादहंथ
ये भिक्षुमवमन्यध्वे ॥

२६—“जो इस भिक्षु का अपमान कर
रहे हैं, वे नखों में पर्वत खोद रहे हैं, दाँतों से
लोहे को चबा रहे हैं और पैरों से अग्नि को
प्रताड़ित कर रहे हैं ।

२७—आसीविसो उगगतवो महेसी
घोरव्वओ घोरपक्कमो य ।
अगणि व पक्खन्द पयगसेणा
जे भिक्खुय भत्तकाले वहेह ॥

आशीविष उग्र-तपा महर्षि
घोर-व्रतो घोर-पराक्रमश्च ।
अग्निमिव प्रस्कन्दय पतङ्गसेना
ये भिक्षुक भक्त-काले विध्यथ ॥

२७—“यह महर्षि आशीविष-लव्य से
सम्पन्न हैं । उग्र तपस्वी हैं । घोर व्रती और
घोर पराक्रमी हैं । भिक्षा के समय जो भिक्षु
का वचन कर रहे हैं, वे पतंग-सेना की भाँति
अग्नि में क्षपापात कर रहे हैं ।

२८—सीसेण एय सरण उवेह
समागया सव्वजणेण तुब्भे ।
जइ डच्छह जीविय वा धण वा
लोग पि एसो कुविओ डहेज्जा ॥

शीर्षेणैः शरणमुपेत
समागताः सर्वजनेन यूयम् ।
यदीच्छथ जीवित वा धनं वा
लोकमण्येष कुपितो दहेत् ॥

२८—“यदि तुम जीवन और धन चाहते
हो तो सब मिलकर, शिर झुका कर इस मुनि
की शरण में आओ । कुपित होने पर यह
समूचे ससार को भस्म कर सकता है ।”

२९—अवहेडिय^१ पिट्टसउत्तमगे
पसारियावाहु अकम्मचेट्टे ।
निब्भेरियच्छे रुहिर वमन्ते
उड्डमुहे निगयजीहनेत्ते ॥

अवहेठित-पृष्ठ-सदुत्तमाङ्गान्
प्रसारित बाह्वकर्मचैष्टान् ।
प्रसारिताक्षान् रुधिर वमत
ऊर्ध्व-मुखान्निर्गत-जिह्वा-नेत्रान् ॥

२९—उन द्यात्रों के सिर पीठ की ओर
भुक्त गए । उनकी भुजाएँ फँस गई । वे
निष्क्रिय हो गए । उनकी आँखें खुली की
खुली रह गई । उनके मुँह से रुधिर निकलने
लगा । उनके मुँह ऊपर की ओर गए । उनकी
जीभें और नेत्र बाहर निकल आए ।

१. विनिवारयति (बु० पा०) ।

२. हणेह (अ०) ।

३. आवडिय (बु० पा०) ।

३०—ते पासिया खण्डिय कट्ठभूए
विमणो विसण्णो अह माहणो सो ।
इसि पसाएइ सभारियाओ
हील च निन्द च खमाह भन्ते ॥

३१—बालेहि मूढेहि अयाणएहि
ज हीलिया तस्स खमाह भन्ते ॥
महप्पसाया इसिणो हवन्ति
न हु मुणी कोवपरा हवन्ति ॥

३२—‘पुव्वि च इण्हि च अणागय च’^१
मणप्पदोसो न मे अत्थि कोइ ।
जक्खा हु वेयावडिय करेन्ति
तम्हा हु एए निहया कुमारा ॥

३३—अत्थ च धम्म च वियाणमाणा
तुब्भे न वि कुप्पह भूइपन्ना ।
तुब्भ तु पाए सरण उवेमो
समागया सव्वजणेण अम्हे ॥

३४—अच्चेमु ते महाभाग ।^२
न ते किञ्चि न अच्चिमो ।
भुजाहि सालिम कूरं
नाणावजणसजुय ॥

३५—इम च मे अत्थि पभूयमन्न
त भुजसू अम्ह अणुगहट्ठा ।
वाढ ति पडिच्छइ भत्तपाण
मासस्स ऊ पारणए महप्पा ॥

तान् दृष्ट्वा खण्डिकान्काष्ठभूतान्
विमना विषण्णोऽथ ब्राह्मणः सः ।
ऋषिं प्रसादयति सभार्याकः
हीला च निन्दां च क्षमस्व भदन्त ! ॥

बालैर्मूढैरज्ञैः
यद् हीलितास्तत्क्षमस्व भदन्त ! ।
महाप्रसादा ऋषयो भवन्ति
न खलु मुनयः कोपपरा भवन्ति ॥

पूर्वं चेदानीं चानागत च
मन -प्रदोषो न मेऽस्तिकोऽपि ।
यक्षाः खलु वैयापृत्यं कुर्वन्ति
तस्मात् खलु एतेनिहताः कुमाराः ॥

अर्थं च धर्मं च विजानन्त
यूय नापि कुप्यथ भूति-प्रज्ञाः ।
युष्माक तु पादौ शरणमुपेम
समागताः सर्वजनेन वयम् ॥

अर्चयामस्ते महाभाग !
न ते किञ्चिन्नार्चयाम ।
भुङ्क्ष्व शालिमत् कूरं
नानाव्यञ्जन-सयुतम् ॥

इदं च मेऽस्ति प्रभूतमन्न
तद्भुङ्क्ष्वास्माकमनुग्रहार्थम् ।
वाढमिति प्रतीच्छति भक्त-पानं
मासस्य तु पारणके महात्मा ॥

३०—उन छात्रों को काठ की तरह
निश्चेष्ट देख कर वह सोमदेव ब्राह्मण उदास
और, घबराया हुआ अपनी पत्नी सहित मुनि
के पास आ उन्हें प्रसन्न करने लगा—“भन्ते ।
हमने जो अवहेलना और निन्दा की उसे क्षमा
करें ।

३१—“भन्ते । मूढ़ वालकों ने अज्ञानवश
जो आपकी अवहेलना की, उसे आप क्षमा
करें । ऋषि महान् प्रसन्नचित्त होते हैं ।
मुनि कोप नहीं किया करते ।”

३२—(मुनि—) “मेरे मन में कोई प्रद्वेष
न पहले था, न अभी है और न आगे भी होगा ।
किन्तु यक्ष मेरा वैयापृत्य कर रहे हैं । इसी-
लिए ये कुमार प्रताडित हुए ।”

३३—(सोमदेव—) “अर्थ और धर्म को
जानने वाले भूति-प्रज्ञ (मगल-प्रज्ञा युक्त)
आप कोप नहीं करते । इसलिए हम सब
मिल कर आपके चरणों की शरण ले रहे हैं ।

३४—“महाभाग । हम आपकी अर्चा
करते हैं । आपका कुछ भी ऐसा नहीं है,
जिसकी हम अर्चा न करें । आप नाना व्यञ्जनों
से युक्त चावल-निष्पन्न भोजन ले कर खाइए ।

३५—“मेरे यहाँ यह प्रचुर भोजन पड़ा
है । हमें अनुग्रहीत करने के लिए आप कुछ
खाएँ ।” महात्मा हरिकेशवल ने हाँ भर ली
और एक मास की तपस्या का पारणा करने
के लिए भक्त-पान लिया ।

१ पुव्वि च पच्छा व तहेव मज्जे (वृ० पा०) ; पुव्वि च पच्छा व अणागय च (चू०) ।

२ महाभागा ! (अ, उ, ऋ०) ।

३६—तहिय गन्धोदयपुष्पवास
दिक्वा तहि वसुहारा य वुट्ठा ।
पह्याओ^१ दुन्दुहीओ सुरेहि
आगासे अहो दान च घुट्ट ॥

तस्मिन् गन्धोदक-पुष्पवर्ष
दिव्या तस्मिन् वसु-धारा च वृष्टा ।
प्रहता दुन्दुभय सुरैः
आकाशेऽहो दान च घुष्टम् ॥

३६—देवो ने वहाँ मुर्गाघृत जल, पुष्प
और दिव्य-घन की वर्षा की । आकाश में
दुन्दुभि बजाई और 'अहो दानम्' (आश्चर्यकारी
दान) —इस प्रकार का घोष किया ।

३७—सक्ख खु दीसइ तवोविसेसो
न दीसई जाइविसेस कोई ।
'मोवागपुत्ते हरिणससाहु'^२
जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा ॥

साक्षात् खलु दृश्यते तपो-विशेषः
न दृश्यते जाति-विशेष कोऽपि ।
श्वपाक-पुत्र हरिकेश-साधु
यस्येदृशी ऋद्धिर्महानुभागा ॥

३७—यह प्रत्यक्ष ही तप की महिमा
दीख रही है, जाति की कोई महिमा नहीं है ।
जिसकी ऋद्धि ऐसी महान् (अचिन्त्य शक्ति
सम्पन्न) है, वह हरिकेश मुनि चाण्डाल का
पुत्र है ।

३८—किं माहणा । जोडसमारभन्ता
उदएण सोहिं वहिया विमग्गहा^३ ।
ज मग्गहा वाहिरिय विसोहिं
न त मुदिट्ठ कुसला वयन्ति ॥

किं ब्राह्मणा । ज्योतिः समारभमाणाः
उदकेन शुद्धिं वाह्या विमार्गयथ ।
यद् मार्गयथ वाह्या विशुद्धिं
न तत् सुदृष्ट कुशला वदन्ति ॥

३८—(मुनि—) “ब्राह्मणो । अग्नि का
समारम्भ (यज्ञ) करते हुए तुम बाहर से
(जल से) शुद्धि की क्या माँग कर रहे हो ?
जिस शुद्धि की बाहर से माँग कर रहे हो, उसे
कुशल लोग सुदृष्ट (मम्यगदर्शन) नहीं कहते ।

३९—कुस च जूव तणकट्टमग्निं
साय च पाय उदग फुसन्ता ।
पाणाइ भूयाइ विहेडयन्ता
भुज्जो वि मन्दा । पगरेह पाव ॥

कुश च यूप तृण-काष्ठमग्निं
साय च प्रातरुदक स्पृशन्त^४ ।
प्राणान् भूतान् विहेठयन्त
भूयोऽपि मन्दा प्रकुर्य पापम् ॥

३९—‘दर्भ, यूप (यज्ञ-स्तम्भ), तृण, काष्ठ
और अग्नि का उपयोग करते हुए, सध्या और
प्रातः काल में जल का स्पर्श करते हुए, प्राणों
और भूतों की हिंसा करते हुए, मदबुद्धि वाले
तुम बार-बार पाप करते हो ।”

४०—कह चरे? भिक्खु । वय जयामो?
पावाइ कम्माइ पणोल्लयामो ? ।
अक्खाहि णे सजय । जक्खपूडया ।
कह सुजट्ट कुसला वयन्ति ? ॥

कथं चरामो ? भिक्षो । वयं यजाम ?
पापानि कर्माणि प्रणुदामः ? ।
आख्याहि न सयत ! यक्षपूजित !
कथं स्विष्ट कुशला वदन्ति ? ॥

४०—(सोमदेव—) “हे भिक्षो । हम कैसे
प्रवृत्त हो ? यज्ञ कैसे करें ? जिससे पाप-कर्मों
का नाश कर सकें । यक्ष-पूजित सयत ! आप
हमें बताएँ—कुशल पुरुषों ने सुदृष्ट (श्रेष्ठ-यज्ञ)
का विधान किस प्रकार किया है ?”

१. पह्या (उ, ऋ०) ।

२. मोवागपुत्त हरिणससाहु (वृ० पा०) ।

४१—छज्जीवकाए असमारभन्ता
मोस अदत्त च असेवमाणा ।
परिग्रह इत्थिओ माणमाय
एय परिन्नाय चरन्ति^१ दन्ता ॥

षड्जीवकायानसमारभमाणाः
मृषाअदत्त चासेवमाना ।
परिग्रहं स्त्रियो मान मायां
एतत्परिज्ञाय चरन्ति दान्ताः ॥

४१—(मुनि—) “मन और इन्द्रियों का दमन करने वाले छह जीव-निकाय की हिंसा नहीं करते, असत्य और चौर्य का सेवन नहीं करते, परिग्रह, स्त्री, मान और माया का परित्याग कर के विचरण करते हैं ।

४२—सुसवुडो^२ पचहिं सवरेहिं
इह जीविय अणवकखमाणो^३ ।
वोसट्टकाओ^४ सुइचत्तदेहो^५
महाजय जयई जन्नसिद्ध ॥

सुसवृताः पञ्चभिः संवरैः
इह जीवितमनवकांक्षन्तः ।
व्युत्सृष्ट-काय शुचि-त्यक्तदेहः
महाजयं यजते यज्ञ-श्रेष्ठम् ॥

४२—“जो पाँच सवरो से सुसवृत्त होता है, जो असयम-जीवन की इच्छा नहीं करता, जो काय का व्युत्सर्ग करता है, जो शुचि है और जो देह का त्याग करता है, वह महाजयी श्रेष्ठ यज्ञ करता है ।”

४३—के ते जोई ? के व ते जोइठाणे ?
का ते सुया ? किं व^६ ते कारिसग ? ।
एहा य ते कयरा सन्ति ? भिक्खू ।
कयरेण होमेण हुणासि जोइ ? ॥

किं ते ज्योतिः ? किं वा ते ज्योति-स्थानं ?
कास्ते श्रुव ? किं वा ते करीषाङ्गम् ? ।
एधाश्च ते कतराः ? शान्तिः ? भिक्षो !
कतरेण होमेन जुहोषि ज्योतिः ? ॥

४३—(सोमदेव—) “भिक्षो ! तुम्हारी ज्योति कौन-सी है ? तुम्हारा ज्योति-स्थान (अग्नि-स्थान) कौन-सा है ? तुम्हारे घी डालने की करछियाँ कौन-सी हैं ? तुम्हारे अग्नि को जलाने के कण्डे कौन-से हैं ? तुम्हारे ईंधन और शान्ति-पाठ कौन-से हैं ? और किस होम से तुम ज्योति को हुत (प्रीणित) करते हो ?”

४४—तवो जोई जीवो जोइठाण
जोगा सुया सरीर कारिसग ।
कम्म एहा सजमजोगसन्ती
होम हुणामी इसिण पसत्थ ॥

तपोज्योतिर्जीवो ज्योतिः-स्थान
योगा श्रुवः शरीर करीषाङ्गम् ।
कर्मधाः सयम-योगा शान्तिः
होम जुहोमि ऋषीणा प्रशस्तम् ॥

४४—(मुनि—) “तप ज्योति है । जीव ज्योति-स्थान है । योग (मन, वचन और काया की सत् प्रवृत्ति) घी डालने की करछियाँ हैं । शरीर अग्नि जलाने के कण्डे हैं । कर्म ईंधन है । सयम की प्रवृत्ति शान्ति-पाठ है । इस प्रकार मैं ऋषि प्रशस्त (अहिंसक) होम करता हूँ ।”

४५—के ते हरए ? के य ते सन्तितित्थे ?
कहिंसि ण्हाओ व रयजहासि ? ।
आइक्ख णे सजय ! जक्खपूइया ।
इच्छामो नाउ भवओ सगासे ॥

कस्ते ह्रद् ? किंच ते शान्ति-तीर्थ ?
कस्मिन् स्नातो वा रजो जहासि ? ।
आचक्ष्व नः सयत ! यक्षपूजित !
इच्छामो ज्ञातु भवतः सकाशे ॥

४५—(सोमदेव—) “आपका नद (जलाशय) कौन-सा है ? आपका शान्ति-तीर्थ कौन-सा है ? आप कहाँ नहा कर कर्मरज धोते हैं ? हे यक्ष-पूजित सयत ! हम आपसे जानना चाहते हैं—आप बताइए ।”

१ चरेज्ज (वृ०), चरन्ति (वृ० पा०) ।

२ सुसवुडा (उ, सु) ।

३ अणवकखमाणा (उ, सु) ।

४ वोसट्टकाया (उ, सु) ।

५ सुइचत्तदेहा (उ, सु) ।

६ च (उ, ऋ०) ।

४६—धम्मे हरए वम्भे सन्तितित्थे
अणाविले अत्तपसन्नलेसे ।
जहिंसि ण्हाओ विमलो विमुद्धो
सुसीइभूओ^१ पजहामि दोस ॥

धर्मो हृदः ब्रह्म शान्ति-तीर्थं
अनाविले आत्मप्रसन्न-लेश्ये ।
यस्मिन् स्नातो विमलो विशुद्धः
सुशीतीभूत प्रजहामि दोषम् ॥

४६—(मुनि—) “अकलुषित एव आत्मा
का प्रसन्न-लेश्या वाला धर्म-मेरा नद (जलाशय)
है । ब्रह्मचर्य मेरा शान्ति-तीर्थ है । जहाँ
नहा कर मैं विमल, विशुद्ध और मुशीतल होकर
कर्म-रज का त्याग करता हूँ ।”

४७—एय सिणाणं कुसलेहि दिट्ठ
महासिणाण इसिण पसत्थ ।
'जहिंसि ण्हाया'^२ विमला विसुद्धा
महारिसी उत्तम ठाण पत्त ॥
—त्ति वेमि ।

एतत्स्नान कुशलैर्दृष्ट
महास्नानमृषोणा प्रशस्तम् ।
यस्मिन्स्नाता विमला विशुद्धाः
महर्षय उत्तमं स्थान प्राप्ताः ॥
—इति ब्रवीमि ।

४७—“यह स्नान, कुशल पुरुषों द्वारा दृष्ट
है । यह महा स्नान है । अतः ऋषियों के लिए
यही प्रशस्त है । इस धर्म-नद में नहाए हुए
महर्षि विमल और विशुद्ध होकर उत्तम-स्थान
(मुक्ति) को प्राप्त हुए ।”

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१ सुसीलभूओ (बु० पा०) ।

२ जहिंसि ण्हाया (अ, उ, ऋ) ।

तेरसमं अज्झयणं :
चित्तसम्भूज्जं

त्रयोदश अध्ययन :
चित्र-सम्भूतीय

आसुरा

इस अध्ययन में चित्र और समूत के पारस्परिक सम्बन्ध और विसम्बन्ध का निरूपण है, इसलिए इसका नाम 'चित्सम्भूज्ज' 'चित्र-सम्भूतीय' है ।^१

उस काल और उस समय साकेत नगर में चन्द्रावतसक राजा का पुत्र मुनिचन्द्र राज्य करता था । राज्य का उपभोग करते-करते उसका मन काम-भोगों से विरक्त हो गया । उसने मुनि सागरचन्द्र के पास दीक्षा ग्रहण की । वह अपने गुरु के साथ-साथ देशान्तर जा रहा था । एक बार वह भिक्षा लेने गाँव में गया, पर सार्थ से विछुड़ गया और एक भयानक अटवी में जा पहुँचा । वह भूख और प्यास से व्याकुल हो रहा था । वहाँ चार ग्वाल-पुत्र गारँ चरा रहे थे । उन्होंने मुनि की अवस्था देखी । उनका मन करुणा से भर गया । उन्होंने मुनि की परिचर्या की । मुनि स्वस्थ हुए । चारों ग्वाल-बालकों को धर्म का उपदेश दिया । चारों बालक प्रतिबुद्ध हुए और मुनि के पास दीक्षित हो गए । वे सभी आनन्द से दीक्षा-पर्याय का पालन करने लगे । किन्तु उनमें से दो मुनियों के मन में मैले कपड़ों के विषय में जुगुप्सा रहने लगी । चारों मर कर देव-गति में गए । जुगुप्सा करने वाले दोनों देवलोक से च्युत हो दशपुर नगर में शौण्डित्य ब्राह्मण की दासी यशोमती की कुक्षी से युगल रूप में जन्मे । वे युवा हुए । एक बार वे जंगल में अपने खेत की रक्षा के लिए गए । रात हो गई । वे एक वट वृक्ष के नीचे सो गए । अचानक ही वृक्ष की कोटर से एक सर्प निकला और एक को ढँस कर चला गया । दूसरा जागा । उसे यह बात मालूम हुई । तत्काल ही वह सर्प की खोज में निकला । वही सर्प उसे भी ढँस गया । दोनों मर कर कालिंजर पर्वत पर एक मृगी के उदर से युगल रूप से उत्पन्न हुए । एक बार दोनों आसपास चर रहे थे । एक व्याध ने एक ही बाण से दोनों को मार डाला । वहाँ से मर कर वे गंगा नदी के तीर पर एक राजहंसिनी के गर्भ में आए । युगल रूप में जन्मे । वे युवा बने । वे दोनों साथ-साथ घूम रहे थे । एक बार एक मछुआ ने उन्हें पकड़ा और गर्दन मरोड़ कर मार डाला ।

उस समय वाराणसी नगरी में चाण्डालों का एक अधिपति रहता था । उसका नाम था भूतदत्त । वह बहुत समृद्ध था । वे दोनों हँस मर कर उसके पुत्र हुए । उनका नाम चित्र और सम्भूत रखा गया । दोनों भाइयों में अपार स्नेह था ।

उस समय वाराणसी नगरी में शङ्ख राजा राज्य करता था । नमुचि उसका मंत्री था । एक बार उसके किसी अपराध पर राजा क्रुद्ध हो गया और वध की आज्ञा दे दी । चाण्डाल भूतदत्त को यह कार्य सौंपा गया । उसने नमुचि को अपने घर में छिपा लिया और कहा—“मन्त्रिन् ! यदि आप मेरे तल-घर में रहकर मेरे दोनों पुत्रों को अध्यापन कराना स्वीकार करें तो मैं आपका वध नहीं करूँगा ।” जीवन की आशा से मंत्री ने बात मान ली । अब वह चाण्डाल के पुत्रों—चित्र और सम्भूत को पढ़ाने लगा । चाण्डाल-पत्नी नमुचि की परिचर्या करने लगी । कुछ काल बीता । नमुचि चाण्डाल-स्त्री में आसक्त हो गया । भूतदत्त ने यह बात जान ली । उसने नमुचि को मारने का विचार किया । चित्र और सम्भूत दोनों ने अपने पिता के विचार जान लिए । गुरु के प्रति कृतज्ञता से प्रेरित हो उन्होंने नमुचि को कहीं

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ३३२

चित्सम्भूताः वेअतो, भावभो अ नायव्वो ।

तत्तो समुट्ठिअमिण, अज्झयण चित्सम्भूय ॥

भाग जाने की सलाह दी। नमुचि वहाँ से भागा-भागा हस्तिनापुर में आया और चक्रवर्ती सनत्कुमार का मन्त्री बन गया।

चित्र और समूत बड़े हुए। उनका रूप और लावण्य आकर्षक था। नृत्य और संगीत में वे प्रवीण हुए। वाराणसी के लोग उनकी कलाओं पर मुग्ध थे।

एक बार मदन-महोत्सव आया। अनेक गायक-टोलियाँ मधुर राग में अलाप रही थीं और तरुण-तरुणियों के अनेक गण नृत्य कर रहे थे। उस समय चित्र-समूत की नृत्य-मण्डली भी वहाँ आ गई। उनका गाना और नृत्य सबसे अधिक मनोरम था। उसे सुन और देख कर सारे लोग उनकी मण्डली की ओर चले आए। युवतियाँ मंत्र-मुग्ध सी हो गयीं। सभी तन्मय थे। ब्राह्मणों ने यह देखा। मन में ईर्ष्या उभर आई। जातिवाद की आड़ ले वे राजा के पास गए और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने दोनों मातंग-पुत्रों को नगर से निकाल दिया। वे अन्यत्र चले गए।

कुछ समय बीता। एक बार कौमुदी-महोत्सव के अवसर पर वे दोनों मातंग-पुत्र पुनः नगर में आए। वे मुँह पर कपड़ा डाले महोत्सव का आनन्द ले रहे थे। चलते-चलते उनके मुँह से संगीत के स्वर निकल पड़े। लोग अवाक् रह गए। वे उन दोनों के पास आए। आवरण हटाते ही उन्हें पहचान गए। उनका रक्त ईर्ष्या से उबल गया। “ये चाण्डाल-पुत्र हैं”—ऐसा कहकर उन्हें लातों और चाटों से मारा और नगर से बाहर निकाल दिया। वे बाहर एक उद्यान में ठहरे। उन्होंने सोचा—“धिकार है हमारे रूप, यौवन, सौभाग्य और कला-कौशल को। आज हम चाण्डाल होने के कारण प्रत्येक वर्ग से तिरस्कृत हो रहे हैं। हमारा सारा गुण-समूह दूषित हो रहा है। ऐसा जीवन जीने से लाभ ही क्या?” उनका मन जीने से ऊब गया। वे आत्म-हत्या का दृढ़ सङ्कल्प ले वहाँ से चले। एक पहाड़ पर इसी विचार से चढ़े। ऊपर चढ़कर उन्होंने देखा कि एक श्रमण ध्यान-लीन है। वे साधु के पास आए और बैठ गए। ध्यान पूर्ण होने पर साधु ने उनका नाम-धाम पूछा। दोनों ने अपना पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया। मुनि ने कहा—“तुम अनेक कला-शास्त्रों के पारगामी हो। आत्म-हत्या करना नीच व्यक्तियों का काम है। तुम्हारे जैसे विमल-बुद्धि वाले व्यक्तियों के लिए वह उचित नहीं। तुम इस विचार को छोड़ो और जिन-धर्म की शरण में आओ। इससे तुम्हारे शारीरिक और मानसिक सभी दुःख उच्छिन्न हो जायेंगे।” उन्होंने मुनि के वचन को शिरोधार्य किया और हाथ जोड़कर कहा—“भगवन्। आप हमें दीक्षित करें।” मुनि ने उन्हें योग्य समझ दीक्षा दी। गुरु-चरणों की उपासना करते हुए वे अध्ययन करने लगे। कुछ समय बाद वे गीतार्थ हुए। विचित्र तपस्याओं से आत्मा को भावित करते हुए वे ग्रामानुग्राम विहार करने लगे। एक बार वे हस्तिनापुर आए। नगर के बाहर एक उद्यान में ठहरे। एक दिन मास-क्षमण का पारणा करने के लिए मुनि समूत नगर में गए। भिक्षा के लिए वे घर-घर घूम रहे थे। मन्त्री नमुचि ने उन्हें देख कर पहचान लिया। उसकी सारी स्मृतियाँ सद्यस्क हो गईं। उसने सोचा—यह मुनि मेरा सारा वृत्तान्त जानता है। वहाँ के लोगों के समक्ष यदि इसने कुछ कह डाला तो मेरी महत्ता नष्ट हो जायगी। ऐसा विचार कर उसने लाठी और मुक़्रो से मार कर मुनि को नगर से बाहर निकालना चाहा। कई लोग मुनि को पीटने लगे। मुनि शान्त रहे। परन्तु लोग जब अत्यन्त उग्र हो गए, तब मुनि का चित्त अशान्त हो गया। उनके मुँह से धुँआ निकला और सारा नगर अन्धकारमय हो गया। लोग घबड़ाए। अब वे मुनि को शान्त करने लगे। चक्रवर्ती सनत्कुमार भी वहाँ आ पहुँचा। उसने मुनि से प्रार्थना की—“भते। यदि हम से कोई त्रुटि हुई हो तो आप क्षमा करें। आगे हम ऐसा अपराध नहीं करेंगे। आप महान् हैं। नगर-निवासियों को जीवन-दान दें।” इतने से मुनि का क्रोध शान्त नहीं हुआ। उद्यान में बैठे मुनि चित्र ने यह सम्वाद सुना और आकाश को धूम्र से आच्छादित देखा। वे तत्काल वहाँ आये और उन्होंने मुनि समूत से कहा—“मुने। क्रोधान्त को उपशान्त करो, उपशान्त करो। महर्षि उपशम-प्रधान होते हैं। वे अपराधी पर भी क्रोध नहीं करते। तुम अपनी शक्ति का सवरण करो।” मुनि समूत का मन शान्त हुआ। उन्होंने तेजोलेइया का सवरण किया। अधकार मिट गया। लोग प्रसन्न हुए। दोनों मुनि उद्यान में

लौट गए। उन्होंने सोचा—“हम काय-सलेखना कर चुके हैं, इसलिए अब अनशन करना चाहिए।” दोनों ने बड़े धैर्य के साथ अनशन ग्रहण किया।

चक्रवर्ती सनत्कुमार ने जब यह जाना कि मन्त्री नमुचि के कारण ही सभी लोगों को सत्रास सहना पड़ा है तो उसने मन्त्री को बाँधने का आदेश दिया। मन्त्री को रस्सों से बाँध कर मुनियों के पास लाए। मुनियों ने राजा को समझाया और उसने मन्त्री को मुक्त कर दिया। चक्रवर्ती दोनों मुनियों के पैरों पर गिर पड़ा। रानी सुनन्दा भी साथ थी। उसने भी वन्दना की। अकस्मात् ही उसके केश मुनि सम्भूत के पैरों को छू गए। मुनि सम्भूत को अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ। उसने निदान करने का विचार किया। मुनि चित्र ने ज्ञान-शक्ति से यह जान लिया और निदान न करने की शिक्षा दी, पर सब व्यर्थ। मुनि सम्भूत ने निदान किया—“यदि मेरी तपस्या का फल है तो मैं चक्रवर्ती बनूँ।”

दोनों मुनियों का अनशन चालू था। वे मर कर सौधर्म देवलोक में देव बने। वहाँ का आयुष्य पूरा कर चित्र का जीव पुरिमताल नगर में एक इभ्य सेठ का पुत्र बना और सम्भूत का जीव काँपित्यपुर में ब्रह्म राजा की रानी चुलनी के गर्भ में आया। रानी ने चौदह महा स्वप्न देखे। बालक का जन्म हुआ। उसका नाम ब्रह्मदत्त रखा गया।

राजा ब्रह्म के चार मित्र थे—(१) काशी देश का अधिपति कटक, (२) गजपुर का राजा कणोरदत्त, (३) कोशल देश का राजा दीर्घ और (४) चम्पा का अधिपति पुष्पचूल। राजा ब्रह्म का इनके साथ अगाध प्रेम था। वे सभी एक-एक वर्ष एक-एक के राज्य में रहते थे। एक बार वे सब राजा ब्रह्म के राज्य में समुदित हो रहे थे। उन्हीं दिनों की बात है, एक दिन राजा ब्रह्म को असह्य मस्तक-वेदना उत्पन्न हुई। स्थिति चिन्ताजनक बन गई। राजा ब्रह्म ने अपने पुत्र ब्रह्मदत्त को चारों मित्रों को सौपते हुए कहा—“इसका राज्य तुम्हें चलाना है।” मित्रों ने स्वीकार किया।

कुछ काल बाद राजा ब्रह्म की मृत्यु हो गई। मित्रों ने उसका अन्त्येष्टि-कर्म किया। उस समय कुमार ब्रह्मदत्त छोटी अवस्था में था। चारों मित्रों ने विचार-विमर्श कर कोशल देश के राजा दीर्घ को राज्य का सारा भार सौंपा और बाद में सब अपने-अपने राज्य की ओर चले गए। राजा दीर्घ राज्य की व्यवस्था करने लगा। सर्वत्र उसका प्रवेश होने लगा। रानी चुलनी के साथ उसका प्रेम-बन्धन गाढ़ होता गया। दोनों निःसंकोच विषय-वासना का सेवन करने लगे।

रानी के इस दुश्चरण को जानकर राजा ब्रह्म का विद्वस्त मन्त्री धनु चिन्ताग्रस्त हो गया। उसने सोचा—“जो व्यक्ति अधम आचरण में फँसा हुआ है, वह भला कुमार ब्रह्मदत्त का क्या हित साध सकेगा?”

उसने रानी चुलनी और राजा दीर्घ के अवैध-सम्बन्ध की बात अपने पुत्र वरधनु के द्वारा कुमार तक पहुँचाई। कुमार को यह बात बहुत बुरी लगी। उसने एक उपाय ढूँढा। एक कौवे और एक कोकिल को पिंजरे में बन्द कर अन्त पुर में ले गया और रानी चुलनी को सुनाते हुए कहा—“जो कोई भी अनुचित सम्बन्ध जोड़ेगा, उसे मैं इसी प्रकार पिंजरे में डाल दूँगा।” राजा दीर्घ ने यह बात सुनी। उसने चुलनी से कहा—“कुमार ने हमारा सम्बन्ध जान लिया है। मुझे कौवा और तुम्हें कोयल मान सकेत दिया है। अब हमें सावधान हो जाना चाहिए।” चुलनी ने कहा—“वह अभी बच्चा है। जो कुछ मन में आता है कह देता है।” राजा दीर्घ ने कहा—“नहीं, ऐसा नहीं है। वह हमारे प्रेम में बाधा डालने वाला है। उसको मारे बिना अपना सम्बन्ध नहीं निभ सकता।” चुलनी ने कहा—“जो आप कहते हैं, वह सही है किन्तु उसे कैसे मारा जाय? लोकापवाद से भी तो हमें डरना चाहिए।” राजा दीर्घ ने कहा—“जनापवाद से बचने के लिए पहले हम इसका विवाह कर दें, फिर ज्यों-त्यों इसे मार देंगे।” रानी ने बात मान ली।

एक शुभ-वेला में कुमार का विवाह सम्पन्न हुआ। उसके शयन के लिए राजा दीर्घ ने हजार स्तम्भ वाला एक लाक्षा-गृह बनवाया।

इधर मन्त्री धनु ने राजा दीर्घ से प्रार्थना की—“स्वामिन् । मेरा पुत्र वरधनु मन्त्री-पद का कार्यभार सभालने के योग्य हो गया है। मैं अब कार्य से निवृत्त होना चाहता हूँ।” राजा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और छलपूर्वक कहा—“तुम और कहीं जा कर क्या करोगे ? यही रहो और दान आदि धर्मों का पालन करो।” मन्त्री ने राजा की बात मान ली। उसने नगर के बाहर गङ्गा नदी के तट पर एक विशाल प्याऊ बनाई। वहाँ वह पथिकों और परिव्राजकों को प्रचुर अन्न-पान देने लगा। दान और सम्मान के वशीभूत हुए पथिकों और परिव्राजकों द्वारा उसने लाक्षा-गृह से प्याऊ तक एक सुरंग खुदवाई। राजा-रानी को इस सुरंग की बात ज्ञात नहीं हुई।

रानी चुलनी ने कुमार ब्रह्मदत्त को अपनी नववधू के साथ उस लाक्षा-गृह में भेजा। दोनों वहाँ गए। रानी ने शेष सभी ज्ञाति-जनों को अपने-अपने घर भेज दिया। मन्त्री का पुत्र वरधनु वही रहा। रात्रि के दो पहर बीते। कुमार ब्रह्मदत्त गाढ़ निद्रा में लीन था। वरधनु जाग रहा था। अचानक लाक्षा-गृह एक ही क्षण में प्रदीप्त हो उठा। हाहाकार मचा। कुमार जागा और दिङ्मूढ़ बना हुआ वरधनु के पास आ बोला—“यह क्या हुआ ? अब क्या करें ?” वरधनु ने कहा—“यह राज-कन्या नहीं है, जिसके साथ आपका पाणि-ग्रहण हुआ है। इसमें प्रतिबन्ध करना उचित नहीं है। चलो हम चले।” उसने कुमार ब्रह्मदत्त को एक सकेतित स्थान पर लात मारने को कहा। कुमार ने लात मारी। सुरंग का द्वार खुल गया। वे उसमें घुसे। मन्त्री ने पहले ही अपने दो विश्वासी पुरुष सुरंग के द्वार पर नियुक्त कर रखे थे। वे घोड़ों पर चढ़े हुए थे। ज्यों ही कुमार ब्रह्मदत्त और वरधनु सुरंग से बाहर निकले त्यों ही उन्हें घोड़ों पर चढ़ा दिया। वे दोनों वहाँ से चले। पचास योजन दूर जा कर ठहरे। लम्बी यात्रा के कारण घोड़े खिन्न हो कर गिर पड़े। अब वे दोनों वहाँ से पैदल चले। वे चलते-चलते वाराणसी पहुँचे। राजा कटक ने जब यह सवाद सुना तब वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और पूर्ण सम्मान से कुमार ब्रह्मदत्त का नगर में प्रवेश करवाया। अपनी पुत्री कटकावती से उसका विवाह किया। राजा कटक ने दूत भेजकर सेना सहित घुष्यचूल को बुला लिया। मन्त्री धनु और राजा कणेरुदत्त भी वहाँ आ पहुँचे। और भी अनेक राजा मिल गए। उन सबने वरधनु को सेनापति के पद पर नियुक्त कर काँपिल्यपुर पर चढ़ाई कर दी। घमासान युद्ध हुआ। राजा दीर्घ मारा गया। “चक्रवर्ती की विजय हुई”—यह घोष चारों ओर फैल गया। देवों ने आकाश से फूल बरसाए। “बारहवाँ चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ है”—यह नाद हुआ। सामन्तों ने कुमार ब्रह्मदत्त का चक्रवर्ती के रूप में अभिषेक किया।

राज्य का परिपालन करता हुआ ब्रह्मदत्त सुखपूर्वक रहने लगा। एक बार एक नट आया। उसने राजा से प्रार्थना की—“मैं आज मधुकरी गीत नामक नाट्य-विधि का प्रदर्शन करना चाहता हूँ।” चक्रवर्ती ने स्वीकृति दे दी। अपराह्न में नाटक होने लगा। उस समय एक कर्मकरी ने फूल-मालायें ला कर राजा के सामने रखी। राजा ने उन्हें देखा और मधुकरी गीत सुना। तब चक्रवर्ती के मन में एक विकल्प उत्पन्न हुआ—“ऐसा नाटक उसके पहले भी कहीं देखा है।” वह इस चिन्तन में लीन हुआ और उसे पूर्व-जन्म की स्मृति हो आई। उसने जान लिया कि ऐसा नाटक मैंने सौधर्म देवलोक के पद्मगुल्म नामक विमान में देखा था।

इसकी स्मृति मात्र से वह मूर्च्छित हो कर भूमि पर गिर पड़ा। पास में बैठे हुए सामन्त उठे, चन्दन का लेप किया। राजा की चेतना लौट आई। सम्राट् आश्चस्त हुआ। पूर्वजन्म के भाई की याद सताने लगी। उसकी खोज करने के लिए उसने एक मार्ग ढूँढा। रहस्य को छिपाते हुए सम्राट् ने महामात्य वरधनु से कहा—“आस्वदासौ, मृगौ हसौ, मातगावमरौ तथा”—इस श्लोकार्द्ध को सब जगह प्रचारित करो और यह घोषणा करो कि इस श्लोक की पूर्ति करने वाले को सम्राट् अपना आधा राज्य देगा। प्रतिदिन यह घोषणा होने लगी। यह अर्द्ध श्लोक दूर-दूर तक प्रसारित हो गया और व्यक्ति-व्यक्ति को कण्ठस्थ हो गया।

इधर चित्र का जीव देवलोक से च्युत हो कर पुरिमताल नगर में एक इम्ह्य सेठ के घर जन्मा । युवा हुआ । एक दिन पूर्व-जन्म की स्मृति हुई और वह मुनि बन गया । एक बार ग्रामानुग्राम विहार करते-करते वही काँपित्यपुर में आया और मनोरम नाम के कानन में ठहरा । एक दिन वह कायोत्सर्ग कर रहा था । उसी समय रहँट को चलाने वाला एक व्यक्ति वहाँ बोल उठा—

“आस्वदासौ मृगौ हसौ, मातगावमरौ तथा ।”

मुनि ने यह सुना और उसके आगे के दो चरण पूरा करते हुए कहा—

“एषा नौ षष्ठिका जाति, अनन्योन्याभ्यां वियुक्तयो ॥”

रहँट चलाने वाले उस व्यक्ति ने उन दोनों चरणों को एक पत्र में लिखा और आधा राज्य पाने की खुशी में वह दौड़ा-दौड़ा राज-दरबार में पहुँचा । सम्राट् की अनुमति प्राप्त कर वह राज्यसभा में गया और एक ही साँस में पूरा श्लोक सम्राट् को सुना डाला । उसे सुनते ही सम्राट् स्नेहवश मूर्च्छित हो गए । सारी सभा क्षुब्ध हो गई । सभासद क्रुद्ध हुए और उसे पीटने लगे । उन्होंने कहा—“तू ने सम्राट् को मूर्च्छित कर दिया । यह कैसी तेरी श्लोक-पूर्ति ?” मार पड़ी तब वह बोला—“मुझे मत मारो । श्लोक की पूर्ति मैंने नहीं की है ।” “तो किसने की है ?”—सभासदों ने पूछा । वह बोला—“मेरे रहँट के पास खड़े एक मुनि ने की है ।” अनुकूल उपचार पा कर सम्राट् सचेतन हुआ । सारी बात की जानकारी प्राप्त की और वह मुनि के दर्शन के लिए सपरिवार चल पड़ा । कानन में पहुँचा । मुनि को देखा । वन्दना कर विनयपूर्वक उनके पास बैठ गया । बिछुड़ा हुआ योग पुन मिल गया । अब वे दोनों भाई सुख-दुःख के फल-विपाक की चर्चा करने लगे । वही चर्चा इस अध्ययन में प्रतिपादित है । बौद्ध ग्रंथों में भी इस कथा का प्रकारान्तर से उल्लेख मिलता है^१ ।

तेरसमं अज्झयणं : त्रयोदश अध्ययन

चित्तसम्भूड्जं : चित्र-सम्भूतीयम्

मूल
१—जाईपराजिओ खलु
कासि नियाण तु हत्थिणपुरम्मि ।
चुलणीए वम्भदत्तो
उववन्नो पउमगुम्माओ ॥

संस्कृत छाया
जाति-पराजितं खलु
अकार्षीत् निदानं तु हस्तिनापुरे ।
चुलन्या ब्रह्मदत्त
उपपन्नं पद्मगुल्मात् ॥

हिन्दी अनुवाद
१—जाति से पराजित हुए सम्भूत ने
हस्तिनापुर में निदान (चक्रवर्ती होऊँ—ऐसा
मङ्गल्य) किया । वह पद्म-गुल्म नामक विमान
में देव बना । वहाँ से व्यूत होकर चुलनी की
कोख में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के रूप में उत्पन्न
हुआ ।

२—कम्पिल्ले सभूओ
चित्तो पुण जाओ पुरिमतालम्मि ।
सेट्ठिकुलम्मि विसाले
धम्म सोऊण पव्वडओ ॥

काम्पिल्ये सम्भूत
चित्रं पुनर्जातः पुरिमताले ।
श्रेष्ठि-कुले विशाले
धर्म-श्रुत्वा प्रव्रजितः ॥

२—सम्भूत काम्पिल्य नगर में उत्पन्न
हुआ । चित्र पुरिमताल में एक विशाल श्रेष्ठि-
कुल में उत्पन्न हुआ । वह धर्म सुन प्रव्रजित
हो गया ।

३—कम्पिल्लम्मि य नयरे
समागया दो वि चित्तसम्भूया ।
सुहदुक्खफलविवाग
कहेन्ति ते एकमेकस्स ॥

काम्पिल्ये च नगरे
समागतौ द्वावपि चित्र-सम्भूतौ ।
सुख-दुःख-फल-विपाक
कथयतस्तावेकैकस्य ॥

३—काम्पिल्य नगर में चित्र और सम्भूत
दोनों मिले । दोनों ने परस्पर एक दूसरे के
सुख-दुःख के विपाक की बात की ।

४—चक्रवट्ठी महिड्ढीओ
वम्भदत्तो महायसो ।
भायर बहुमाणेण
इम वयणमव्ववी ॥

चक्रवर्ती महर्द्धिक
ब्रह्मदत्तो महायशा ।
भ्रातर बहु-मानेन
इदं वचनमब्रवीत् ॥

४—महान् ऋद्धि-सम्पन्न और महान्
यशस्वी चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने बहुमान-पूर्वक
अपने भाई से इस प्रकार कहा—

५—आसिमो भायरा दो वि
अन्नमन्नवसाणुगा ।
अन्नमन्नमणूरत्ता
अन्नमन्नहिणसिणो ॥

आस्व भ्रातरौ द्वावपि
अन्योऽन्यवशानुगौ ।
अन्योऽन्यमनुरक्तौ
अन्योऽन्य हितैषिणौ ॥

५—“हम दोनों भाई थे—एक दूसरे के
वशवर्ती, परस्पर अनुरक्त और परस्पर हितैषी ।

६—दासा दसणे आसी
मिया कालिजरे नगे ।
हसा मयगतीरे^१
सोवागा^२ कासिभूमि ॥

दासौ दशार्णेषु आस्व
मृगौ कालिजरे नगे ।
हंसौ मृत-गङ्गातीरे
श्वपाकौ काशीभूम्याम् ॥

६—“हम दोनो दशार्ण देश में दास,
कालिजर पर्वत पर हरिण, मृत-गङ्गा के
किनारे हंस और काशी देश में चाण्डाल थे ।

७—देवा य^३ देवलोगम्मि
आसि अम्हे महिङ्खिया ।
'इमा नो'^४ छट्ठिया जाई
अन्नमन्नेण जा विणा ॥

देवौ च देवलोक
आस्वाऽऽवा महर्द्धिकौ ।
इय नौ षष्ठिका जाति
अन्योऽन्येन या विना ॥

७—“हम दोनो सौधर्म देवलोक में महान्
ऋद्धि वाले देव थे । यह हमारा छठवाँ जन्म
है, जिसमें हम एक दूसरे से विछुड़ गये ।”

८—कम्मा नियाणप्पगडा
तुमे राय विचिन्तिया ।
तेसि फलविवागेण
विप्पओगमुवागया ॥

कर्माणि निदान-प्रकृतानि
त्वया राजन् ! विचिन्तितानि ।
तेषा फल-विपाकेन
विप्रयोगमुपागतौ ॥

८—(मुनि—) “राजन् ! तू ने निदान-
कृत (भोग-प्रार्थना से वद्धयमान) कर्मों का
चिन्तन किया । उनके फल-विपाक से हम
विछुड़ गये ।”

९—सच्चसोयप्पगडा
कम्मा मए पुरा कडा ।
ते अज्ज परिभुजामो
किं नु चित्ते वि से तहा ? ॥

सत्य-शौच-प्रकटानि
कर्माणि मया पुराकृतानि ।
तान्यद्य परिभुजे
किन्नु चित्रोऽपि तानि तथा ? ॥

९—(चक्री—) “चित्र । मैंने पूर्व-जन्म में
सत्य और शौचमय शुभ अनुष्ठान किये थे ।
आज मैं उनका फल भोग रहा हूँ । क्या
तू भी वैसा ही भोग रहा है ?”

१०—सव्व सुचिण्ण सफल नराण
कडाण कम्माण नमोक्ख अत्थि ।
अत्थेहि कामेहि य उत्तमेहि
आया मम पुण्णफलोववेए ॥

सर्व सुचीर्णं सफल नराणां
कृतेभ्यः कर्मभ्यो न मोक्षोऽस्ति ।
अर्थः कामैश्चोत्तमैः
आत्मा मम पुण्य-फलोपेत^१ ॥

१०—(मुनि—) “मनुष्यों का सब सुचीर्ण
(सुकृत) सफल होता है । किए हुए कर्मों का
फल भोगे बिना मुक्ति नहीं होती । मेरी
आत्मा उत्तम अर्थ और कामों के द्वारा पुण्य-
फल से युक्त है ।”

११—जाणासि सभूय । महानुभागं
महिङ्खिय पुण्णफलोववेयं ।
चित्त पि जाणाहि तहेव राय ।
इङ्खी जुई तस्स वि य प्पभूया ॥

जानासि सम्भूत ! महानुभागं
महर्द्धिक पुण्य-फलोपेतम् ।
चित्रमपि जानीहि तथैव राजन् !
ऋद्धिर्द्युतिस्तस्यापि च प्रभूता ॥

११—“सम्भूत ! जिस प्रकार तू अपने
को महान् अनुभाग (अचिन्त्य-शक्ति) सम्पन्न,
महान् ऋद्धिमान् और पुण्य-फल से युक्त मानता
है, उसी प्रकार चित्र को भी जान । राजन् !
उसको भी प्रचुर ऋद्धि और द्युति थी ।

१. मयगतीराए (अ, उ, ऋ०) ।

२. चडाला (उ, ऋ०) ।

३. वि (उ) ।

४. इमामे (वृ०), इमाणो (वृ० पा०) ।

१२—महत्थरूवा वयणप्पभूया
गाहाणुगीया नरसघमज्जे ।
ज भिक्खुणो सीलगुणोववेया
'इहज्जयन्ते समणो' म्हि जाओ ॥

महार्थरूपा वचनाऽल्पभूता
गाथाऽनुगीता नर-संघ-मध्ये ।
या भिक्षव शील-गुणोपेताः
इहार्जयन्ति श्रमणोऽस्मि जातः ॥

१२—“म्यविरो ने जन समुदाय के बीच
अल्पाक्षर और महान् अर्थ वाली जो गाथा
गाई, जिसे शील और श्रुत से सम्पन्न भिक्षु बड़े
यज में अर्जित करते हैं, उमे मुनकर मैं श्रमण
हो गया ।”

१३—उच्चोयए महु कक्के य वम्भे
पवेइया आवसहा 'य रम्मा' ।
इम गिह चित्तधणप्पभूय^३
पसाहि पचालगुणोववेय ॥

उच्चोदयो मधु कर्कश्च ब्रह्मा
प्रवेदिता आवसथाश्च रम्याः ।
इद गृह प्रभूत-चित्र-धन
प्रशाधि पञ्चालगुणोपेतम् ॥

१३—(चक्री—) “उच्चोदय, मधु, कर्क,
मव्य और ब्रह्मा—ये प्रवान प्रामाद तथा हमारे
अनेक रम्य प्रामाद हैं । पचाल देश की विशिष्ट
वस्तुओं में युक्त और प्रचुर एव विचित्र हिरण्य
आदि में पूर्ण यह घर है—इसका तू उपभोग
कर ।

१४—नट्टेहि गीएहि य वाडएहि
नारीजणाड परिवारयन्तो^४ ।
भुजाहि भोगाड इमाड भिक्खू ।
मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्ख ॥

नाट्यैर्गोतंश्च वादित्रं ।
नारी-जनान् परिवारयन् ।
भुङ्क्ष्व भोगानिमान् भिक्षो !
मह्य रोचते प्रव्रज्या खलु दुःखम् ॥

१४—“हे भिक्षु ! तू नाट्य, गीत और
वाद्यों के साथ नारी-जनो को परिवृत्त करता
हुआ इन भोगों को भोग । यह मुझे रुचता है ।
प्रव्रज्या वास्तव में ही कष्टकर है ।”

१५—त पुव्वनेहेण कयाणुराग
नराहिव कामगुणेषु गिद्ध ।
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेही
चित्तो इम वयणमुदाहरित्था^५ ॥

त पूर्व-स्नेहेन कृतानुराग
नराधिप काम-गुणेषु गृद्धम् ।
धर्माश्रितस्तस्य हितानुप्रेषी
चित्र इद वचनमुदाहार्षीत् ॥

१५—धर्म में स्थित और उम (राजा)
का हित चाहने वाले चित्र मुनि ने पूर्व-भव के
स्नेह-वश अपने प्रति अनुराग रखने वाले काम-
गुणों में आसक्त राजा से यह वचन कहा—

१६—सव्वं विलविय गीय
सव्व नट्ट विडम्बिय^६ ।
सव्वे आभरणा भारा
सव्वे कामा दुहावहा ॥

सर्वं विलपित गीत
सर्वं नाट्य विडम्बितम् ।
सर्वाण्याभरणानि भाराः
सर्वे कामा दुःखावहाः ॥

१६—“सब गीत विलाप है, सब नाट्य
विडम्बना है, सब आभरण भार है और सब
काम-भोग दुःखकर हैं ।

१. इहज्जयन्ते समणो (चू० पा०), इहज्जयन्ते समणो (वृ० पा०) ।

२. ऽतिरम्मा, छरम्मा वा (वृ० पा०) ।

३. चित्तधणोववेय (वृ०), धणवित्तोववेय (चू०); चित्तधणप्पभूय (वृ० पा०) ।

४. पवियारियतो (वृ० पा०), परियारयन्तो (अ, उ, ऋ०) ।

५. वक्क^० (वृ०), वयण० (वृ० पा०) ।

६. विडम्बणा (उ, चू०) ।

१७—‘बालाभिरामेषु दुहावहेसु
न त सुह कामगुणेषु राय ।।
विरक्तकामाण तवोधणाण
ज भिक्खुण सीलगुणे रयाण ॥’^१

१८—नरिंद। जाई अहमा नराण
सोवागजाई दुहओ गयाण ।
जहिं वय सव्वजणस्स वेस्सा
वसीय सोवागनिवेशेणसु ॥

१९—तीसे य जाईइ उ पावियाए
वुच्छामु सोवागनिवेशेणसु ।
सव्वस्स लोगस्स दुगच्छणिज्जा
इह तु कम्माइ पुरेकडाइ ॥

२०—सो दाणि सिं राय ! महानुभागो
महिद्धिओ पुण्णफलोववेओ ।
चइत्तु भोगाइ असासयाइ
‘आयाणहेउ अभिणिक्खमाहि’^२ ॥

२१—इह जीविए राय ! असासयम्मि
धणिय तु पुण्णाइ अकुव्वमाणो ।
से सोयई मच्चुमुहोवणीए
धम्म अकाऊण परसि लोए ॥

२२—जहेह सीहो व मिय गहाय
मच्चू नर नेइ हु अन्तकाले ।
न तस्स माया ‘व पिया व भाया’^३
कालम्मि तम्मिसहरा^४ भवंति ॥

बालाभिरामेषु दुःखावहेषु
न तत्सुखं काम-गुणेषु राजन् ! ।
विरक्त-कामानां तपोधनानां
यद् भिक्षूणा शील-गुणे रतानाम् ॥

नरेन्द्र । जातिरधमा नराणा
श्वपाक-जातिर्द्वयोः गतयोः ।
यस्यामावा सर्वजनस्य द्वेष्यौ
अवसाव श्वपाक-निवेशनेषु ॥

तस्या च जातौ तु पापिकायाम्
उषितौ आवां श्वपाक-निवेशनेषु ।
सर्वस्य लोकस्य जुगुप्सनीयौ
इह तु कर्माणि पुराकृतानि ॥

स इदानी राजा महानुभागः
महद्दिकः पुण्य-फलोपेतः ।
त्यक्त्वा भोगानशाश्वतान्
आदान-हेतोरभिनिष्क्राम ॥

इह जीविते राजन् ! अशाश्वते
अत्यर्थं तु पुण्यान्यकुर्वाणः ।
स शोचति मृत्युमुखोपनीत
धर्ममकृत्वा परस्मिँल्लोके ॥

यथेह सिंहो वा मृग गृहीत्वा
मृत्युर्नरं नयति खलु अन्तकाले ।
न तस्य माता वा पिता वा भ्राता
काले तस्यांशधरा भवन्ति ॥

१७—“राजन् । अज्ञानियो के लिए
रमणीय और दुःखकर काम-गुणों में वह सुख
नहीं है, जो सुख कामों से विरक्त, शील और
गुण में रत तपोधन भिक्षु को प्राप्त होता है ।

१८—“नरेन्द्र । मनुष्यों में चाण्डाल-
जाति अधम है । उसमें हम दोनों उत्पन्न हो
चुके हैं । वहाँ हम चाण्डालों की वस्ती में
रहते थे और सब लोग हम से द्वेष करते थे ।

१९—“दोनों ने कुत्सित चाण्डाल-जाति
में जन्म लिया और चाण्डालों की वस्ती में
निवास किया । सब लोग हमसे घृणा करते
थे । इस जन्म में जो उच्चता प्राप्त हुई है, वह
पूर्व-कृत शुभ कर्मों का फल है ।

२०—“उसी के कारण वह तू महान्
अनुभाव (अचिन्त्य-शक्ति) सम्पन्न, महान्
ऋद्धिमान् और पुण्य-फल युक्त राजा बना
है । इसीलिए तू अशाश्वत भोगों को छोड़
कर चारित्र-धर्म की आराधना के लिए
अभिनिष्क्रमण कर ।

२१—“राजन् । जो इस अशाश्वत जीवन
में प्रचुर शुभ अनुष्ठान नहीं करता, वह मृत्यु
के मुँह में जाने पर पश्चात्ताप करता है
और धर्म की आराधना नहीं होने के कारण
परलोक में भी पश्चात्ताप करता है ।

२२—“जिस प्रकार सिंह हरिण को पकड़
कर ले जाता है, उसी प्रकार अन्तकाल में मृत्यु
मनुष्य को ले जाती है । काल आने पर
उसके माता-पिता या भाई अश्वर नहीं होते—
अपने जीवन का भाग दे कर बचा नहीं पाते ।

१ यह श्लोक चूर्णि में व्याख्यात नहीं है ।

२. आदानमेव अणुचितयाहि (चू०), आदान हेउं अभिणिक्खमाहि (चू० पा०), आयाणमेवा अणुचितयाहि (बृ० पा०) ।

३. न पिया न भाया (उ) ।

४. तम्मसहरा (उ) ।

२३—न तस्स दुक्ख विभयन्ति नाइओ
न मित्तवग्गा न सुया न वन्धवा ।
एको सय पच्चणुहोड दुक्ख
कत्तारमेव अणुजाड कम्म ॥

२४—चेच्चा दुपय च चउप्पय च
खेत्त गिह धणधन्त च सव्व ।
कम्मप्पवीओ^१ अवसो पयाड
पर भव सुदर पावग वा ॥

२५—त डक्क तुच्छसरीरग से
चिईगय डहिय उ पावगेण ।
भज्जाय पुत्ता^२ वि य नायओय
दायारमन्त अणुसकमन्ति ॥

२६—उवणिज्जई जीवियमप्पमाय
वण्ण जरा हरड नरस्स राय ।।
पच्चालराया । वयण सुणाहि
मा कासि कम्माइ महालयाड ॥

२७—अह पि जाणामि 'जहेह साहू'^३
ज मे तुम साहसि वक्कमेय ।
भोगा इमे सगकरा हवन्ति
जे दुज्जया अज्जो । अम्हारिसेहि ॥

२८—हत्थिणपुरम्मि चित्ता ।
दट्ठूण नरवड महिडिड्य ।
कामभोगेसु गिद्धेण
नियाणमसुह कड ॥

न तस्य दुःख विभजन्ति ज्ञातयः
न मित्र-वर्गा न सुता न वान्धवाः ।
एकः स्वय प्रत्यनुभवति दुःख
कर्तारमेवानुयाति कर्म ॥

त्यक्त्वा द्विपद च चतुष्पद च
क्षेत्र गृह धन-धान्य च सर्वम् ।
कर्मात्म-द्वितीयोऽवशः प्रयाति
पर भव सुन्दर पापक वा ॥

तदेक तुच्छ-शरीरक तस्य
चित्ति-गत दग्ध्वा तु पावकेन ।
भार्या च पुत्रोपि च ज्ञातयश्च
दातारमन्यमनुसङ्कामन्ति ॥

उपनीयते जीवितमप्रमाद
वर्णं जरा हरति नरस्य राजन् ! ।
पञ्चाल-राज ! वचन शृणु
मा कार्षीः कर्माणि महालयानि ॥

अहमपि जानामि यथेह साधो !
यन्मम त्व साधयसि वाक्यमेतत् ।
भोगा इमे सङ्गकरा भवन्ति
ये दुर्जया आर्य ! अस्मादृशैः ॥

हस्तिनापुरे चित्र !
दृष्ट्वा नरपतिं महर्द्धिकम् ।
काम-भोगेषु गृद्धेन
निदानमशुभ कृतम् ॥

२३—“ज्ञाति, मित्र-वर्ग, पुत्र और
वान्धव उमका दुःख नहीं बँटा सकते । वह
स्वयं अकेला दुःख का अनुभव करता है ।
क्योंकि कर्म कर्ता का अनुगमन करता है ।

२४—“यह पराधीन आत्मा द्विपद,
चतुष्पद, खेत, घर, धन, धान्य, वस्त्र आदि सब
कुछ छोड़ कर केवल अपने किये कर्मों को साथ
लेकर सुखद या दुःखद पर-भव में जाता है ।

२५—“उम अकेले और अमार गरीर
को अग्नि से चिता में जलाकर स्त्री, पुत्र और
ज्ञाति किमी दूसरे दाता (जीविका देने वाले)
के पीछे चले जाते हैं ।

२६—“राजन् ! कर्म विना भूल किए
(निरन्तर) जीवन को मृत्यु के समीप ले जा रहे
हैं । बुढापा मनुष्य के वर्ण (सुम्निग्व काति)
का हरण कर रहा है । पच्चाल-राज ! मेरा
वचन सुन । प्रचुर कर्म मत कर ।”

२७—(चक्री—) “साधो ! तू जो मुझे
यह वचन जैसे कह रहा है, वैसे मैं भी जानता
हूँ कि ये भोग आसक्तिजनक होते हैं । किन्तु
हे आर्य ! हमारे जैसे व्यक्तियों के लिए वे
दुर्जय हैं ।

२८—“चित्र मुने ! हस्तिनापुर में महान्
ऋद्धि वाले चक्रवर्ती (सनत्कुमार) को देख
भोगों में आसक्त होकर मैंने अशुभ निदान
(भोग-सङ्कल्प) कर डाला ।

१. सकम्मप्पवीओ (उ), सकम्मयीओ (ऋ०), कम्मप्पविहओ (अ) ।

२. पुत्तो (वृ०) ।

३. जो एत्थ सारो (वृ० पा०, चू०) ।

२९—तस्स मे अपडिकन्तस्स
इम एयारिस फल ।
जाणमाणो वि ज धम्म
कामभोगेसु मुच्छिओ ॥

३०—नागो जहा पकजलावसन्नो
दट्ठु थल नाभिसमेइ तीर ।
एव वय कामगुणेसु गिद्धा
न भिक्खुणो मग्गमणुव्वयामो ॥

३१—अच्चेइ कालो तूरन्ति राइओ
न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा ।
उविच्च भोगा पुरिस चयन्ति^१
दुम जहा खीणफल व पक्खी ॥

३२—‘जइ ता सि’^२ भोगे चइउ असत्तो
अज्जाइ कम्माइ करेहिं राय । ।
धम्मे ठिओ सव्वपयाणुकम्पी
तो होहिसि देवो इओ विउव्वी ॥

३३—न तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी
गिद्धो सि आरम्भपरिग्गहेसु ।
मोह कओ एत्तिउ विप्पलावो
गच्छामि राय । आमन्तिओ सि ॥

३४—पचालराया वि य बम्भदत्तो
साहुस्स तस्स^३ वयण अकाउ ।
अणुत्तरे भुजिय कामभोगे
अणुत्तरे सो नरए पविट्ठो ॥

तस्मान्मेऽप्रतिक्रान्तस्य
इदमेतादृशं फलम् ।
जानन्नपि यद् धर्म
काम-भोगेषु मूर्च्छितः ॥

नागो यथा पङ्क-जलावसन्न
दृष्ट्वा स्थल नाभिसमेति तीरम् ।
एव वयं काम-गुणेषु गृद्धाः
न भिक्षोर्मर्गमनुव्रजाम ॥

अत्येति कालस्त्वरन्ते रात्रयः
न चापि भोगाः पुरुषाणा नित्याः ।
उपेत्य भोगाः पुरुष त्यजन्ति
द्रुम यथा क्षीणफलमिव पक्षी ॥

यदि तावदसि भोगान् त्यक्तुमशक्तः
आर्याणि कर्माणि कुरु राजन् ! ।
धर्मे स्थितः सर्वप्रजानुकम्पी
तस्माद् भविष्यसि देव इतो वैक्रियी ॥

न तव भोगान् त्यक्तु बुद्धिः
गृद्धोसि आरम्भ-परिग्रहेषु ।
मोघं कृत एतावान् विप्रलापः
गच्छामि राजन् ! आमन्त्रितोऽसि ॥

पञ्चाल-राजोपि च ब्रह्मदत्तः
साधोस्तस्य वचनमकृत्वा ।
अनुत्तरान् भुक्त्वा काम-भोगान्
अनुत्तरे स नरके प्रविष्टः ॥

२९—“उसका मैंने प्रतिक्रमण
(प्रायश्चित्त) नहीं किया । उसी का यह ऐसा
फल है कि मैं धर्म को जानता हुआ भी
काम-भोगों में मूर्च्छित हो रहा हूँ ।

३०—“जैसे पक-जल (दलदल) में फँसा
हुआ हाथी स्थल को देखता हुआ भी किनारे
पर नहीं पहुँच पाता, वैसे ही काम-गुणों में
आसक्त बने हुए हम श्रमण-धर्म को जानते हुए
भी उसका अनुसरण नहीं कर पाते ।”

३१—(मुनि—) “जीवन बीत रहा है ।
रात्रियाँ दौड़ी जा रही हैं । मनुष्यों के भोग
भी नित्य नहीं हैं । वे मनुष्य को प्राप्त कर उसे
छोड़ देते हैं, जैसे क्षीण फल वाले वृक्ष को
पक्षी ।

३२—“राजन् । यदि तू भोगों का त्याग
करने में असमर्थ है तो आर्य-कर्म कर । धर्म
में स्थित होकर सब जीवों पर अनुकम्पा
करने वाला बन, जिससे तू जन्मान्तर में वैक्रिय
शरीर वाला देव होगा ।

३३—“तुझ में भोगों को त्यागने की बुद्धि
नहीं है । तू आरम्भ और परिग्रह में आसक्त
है । मैंने व्यर्थ ही इतना प्रलाप किया । तुझे
आमन्त्रित (सम्बोधित) किया । राजन् । अब
मैं जा रहा हूँ ।”

३४—पचाल जनपद के राजा ब्रह्मदत्त ने
मुनि के वचन का पालन नहीं किया । वह
अनुत्तर काम-भोगों को भोग कर अनुत्तर नरक
में गया ।

१. जहति (चू०) ।

२. जइ तसि (उ, वृ० पा०, ऋ०), जईऽसि (चू०) ।

३. तस्सा (अ, आ, इ, स) ।

३५—चित्तो वि कामेहि विरक्तकामो
उदग्रचारित्तवो^१ महेसी ।
अणुत्तरं सजम पालइत्ता
अणुत्तरं सिद्धिगडं गओ ॥
—त्ति वेमि ।

चित्रोपि कामेभ्यो विरक्त-काम
उदग्र-चारित्र-तपा महर्षि^१ ।
अनुत्तर सयम पालयित्वा
अनुत्तरां सिद्धि-गतिं गतः ॥
—इति ब्रवीमि ।

३५—कामना से विरक्त और प्रवान
चारित्र-तप वाला महर्षि चित्र अनुत्तर सयम
का पालन कर अनुत्तर सिद्धि-गति को प्राप्त
हुआ ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

चउदसमं अज्झयणं :
उसुयारिज्जं

चतुर्दश अध्ययन :
इषुकारीय

आस्तुत्वं

इस अध्ययन के छह पात्र हैं—(१) महाराज इषुकार, (२) रानी कमलावती, (३) पुरोहित भृगु, (४) पुरोहित की पत्नी यज्ञा और (५-६) पुरोहित के दो पुत्र ।

इनमें भृगु पुरोहित का कुटुम्ब ही इस अध्ययन का प्रधान पात्र है । किन्तु राजा की लौकिक प्रधानता के कारण इस अध्ययन का नाम 'इषुकारीय' रखा गया है ।^१

इस अध्ययन का प्रतिपाद्य है 'अन्यत्व भावना' का उपदेश । आगम-काल में कई मतावलम्बियों की यह मान्यता थी कि पुत्र के बिना गति नहीं होती, स्वर्ग नहीं मिलता । जो व्यक्ति गृहस्थ-धर्म का पालन करता है वह स्वर्ग प्राप्त कर लेता है । जिसके कोई सन्तान नहीं है उसका कोई लोक नहीं होता । पुत्र से ही परभव होता है—सुधरता है । इसी के फलस्वरूप—

१—“अपुत्रस्य गतिर्नास्ति, स्वर्गो नैव च नैव च ।

गृहिधर्ममनुष्ठाय, तेन स्वर्गं गमिष्यति ॥”

२—“अनपत्यस्य लोका न सन्ति ।”

३—“पुत्रेण जायते लोक, इत्येषा वैदिकी श्रुति ।

अथ पुत्रस्य पुत्रेण, स्वर्गलोके महीयते ॥”

आदि-आदि सूक्त प्रचलित हो रहे थे और लोगों का अधिक भाग इसमें विश्वास करने लगा था । पुत्र-प्राप्ति के लिए सभी सभावित प्रयत्न किए जाते थे । पुत्रोत्पत्ति से जीवन की महान् सफलता मानी जाती थी । इस विचार-धारा ने दाम्पत्य-जीवन का उद्देश्य स्पष्ट कर दिया था, परन्तु अध्यात्म के प्रति उदासीन भाव प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे । उस समय यह भी मान्यता प्रचलित थी कि यदि पुत्र से ही स्वर्ग-प्राप्ति हो जाती है तो दान आदि धर्म व्यर्थ है ।

भगवान् महावीर स्वर्ग और नरक की प्राप्ति में व्यक्ति-व्यक्ति की प्रवृत्ति को महत्त्व देते थे । उन्होंने कहा—
“पुण्य-पाप व्यक्ति-व्यक्ति का अपना होता है । माता-पिता, भाई-बन्धु, पुत्र-स्त्री आदि कोई भी प्राणी त्राण नहीं होता । सबको स्वतन्त्र रूप से अपने-अपने कर्मों का फल-विपाक भोगना पड़ता है ।” इस अध्ययन में इस भावना का स्फुट चित्रण है ।

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ३६२

उद्युत्तारनामगोष् वेयतो भावओ अ उद्युत्तारो ।

ततो समुद्रियमिण उद्युत्तारिज्जति अज्जयण ॥

निर्युक्तिकार ने ग्यारह गाथाओं में कथावस्तु को प्रस्तुत किया है। उसमें सभी पात्रों के पूर्व-भव, वर्तमान-भव में उनकी उत्पत्ति तथा निर्वाण का संक्षिप्त चित्रण है।^१

पूर्व अध्यायन में वर्णित चित्र और सम्भूत के पूर्व-जन्म में दो ग्वाले मित्र थे। उन्हें साधु के अनुग्रह से सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। वे वहाँ से मर कर देवलोक में गए। वहाँ से च्युत हो कर उन्होंने क्षितिप्रतिष्ठित नगर के एक इम्ह्य-कुल में जन्म लिया। वे बड़े हुए। चार इम्ह्य-पुत्र उनके मित्र बने। उन सबने युवावस्था में काम-भोगों का उपभोग किया, फिर स्थविरो से धर्म सुन प्रव्रजित हुए। चिरकाल तक समय का अनुपादन किया। अन्त में अनशन कर सौधर्म देवलोक के पद्मगुल्म नामक विमान में चार पत्न्य की स्थिति वाले देव बने। दोनों ग्वाल-पुत्रों को छोड़ कर शेष चारों मित्र वहाँ से च्युत हुए। उनमें एक कुरु जनपद के इषुकार नगर में इषुकार नाम का राजा हुआ और दूसरा उसी राजा की रानी कमलावती। तीसरा भृगु नाम का पुरोहित हुआ और चौथा भृगु पुरोहित की पत्नी यशा। बहुत काल बीता। भृगु पुरोहित के कोई पुत्र नहीं हुआ। पति-पत्नी चिन्तित रहने लगे।

एक बार उन दोनों ग्वाल-पुत्रों ने, जो अभी देव-भव में थे, अवधिज्ञान से जाना कि वे भृगु पुरोहित के पुत्र होंगे। वे वहाँ से चले। श्रमण का रूप बना भृगु पुरोहित के पास आए। भृगु और यशा दोनों ने वन्दना की। मुनियों ने धर्म का उपदेश दिया। भृगु-दम्पति ने श्रावक के व्रत स्वीकार किए। पुरोहित ने पूछा—“भगवन् ! हमको कोई

१—उत्तराध्यायन निर्युक्ति, गाथा ३६३ ३७३.

पुव्वभवे सघडिआ सपीआ अन्नमन्नमणुरत्ता ।
भुत्तूण भोगभोए निग्गया पव्वए समणा ॥
काऊण य सामन्न पडमगुम्मे विमाणि उववन्ता ।
पलिओवमाह चउरो ठिई उक्कोसिआ तेसि ॥
तत्तो य चुआ सता कुरुजणवयपुरवरमि उट्ठआरे ।
छावि जणा उववन्ता चरिमसरीरा विगयमोहा ॥
राया उसुयारो या कमलावह देवि अगगमहिंसी से ।
भिगुनामे य पुरोहिं वासिट्ठा भारिआ तस्स ॥
उट्ठआरपुरे नयरे उट्ठआरपुरोहिओ अ अणवच्चो ।
पुत्तस्स कए बहुसो परितप्पती दुअग्गावि ॥
काऊण समणस्स तहिअ देवो पुरोहिअ भणह ।
होहिंति तुज्झ पुत्ता दुन्नि जणा देवलोगचुआ ॥
तेहि अ पव्वहअव्व जहा य न करेह अंतराय ण्हे ।
ते पव्वहआ सता बोहेहिंती जण बहुअ ॥
त वयण सोऊण नगराओ निति ते वयग्गामे ।
वड्ढति अ ते तहिअ गाहिंति अ ण असब्भाव ॥
एए समणा धुत्ता पेयपिसाया य पोत्सादा य ।
मा तेसि अल्लिअहा मा भे पुत्ता ! विणासिज्जा ॥
दट्ठूण तहिं समणे जाह पोरणिअ च सरिऊण ।
बोहितअम्मापिअर उट्ठआर रायपुत्त च ॥
सीमधरो य राया भिगूअ वासिट्ठ रायपत्ती य ।
चभणी दारगा चेव छप्पेए परिनिव्वुआ ॥

पुत्र होगा या नहीं ?” श्रमण युगल ने कहा—“तुम्हें दो पुत्र होंगे किन्तु वे बाल्यावस्था में ही दीक्षित हो जायेंगे। उनकी प्रव्रज्या में तुम्हें कोई व्याघात उपस्थित नहीं करना होगा। वे दीक्षित होकर धर्म-शासन की प्रभावना करेंगे।” इतना कह दोनों श्रमण वहाँ से चले गए। पुरोहित पति-पत्नी को प्रसन्नता हुई। कालान्तर में वे दोनों देव पुरोहित पत्नी के गर्भ में आए। दीक्षा के भय से पुरोहित नगर को छोड़ ब्रज गाँव में जा बसा। वहाँ पुरोहित की पत्नी यशा ने दो पुत्रों को जन्म दिया। वे कुछ बड़े हुए। माता-पिता ने सोचा ये कहीं दीक्षित न हो जाएँ अतः एक बार उनसे कहा—“पुत्रो! ये श्रमण सुन्दर-सुन्दर बालकों को उठा ले जाते हैं और मार कर उनका मास खाते हैं। उनके पास तुम दोनों कभी मत जाना।”

एक बार दोनों बालक खेलते-खेलते गाँव से बहुत दूर निकल गए। उन्होंने देखा कि कई साधु उसी मार्ग से आ रहे हैं। भयभीत हो वे एक वृक्ष पर चढ़ गए। संयोगवश साधु भी उसी वृक्ष की सघन छाया में आ बैठे। बालकों का भय बढ़ा। माता-पिता की शिक्षा स्मृति-पटल पर नाचने लगी। साधुओं ने कुछ विश्राम किया। भोली से पात्र निकाले और सभी एक मण्डली में भोजन करने लगे। बालकों ने देखा कि मुनि के पात्रों में मास जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। साधुओं को सामान्य भोजन करते देख बालकों का भय कम हुआ। बालकों ने सोचा—“अहो! हमने ऐसे साधु अन्यत्र भी कहीं देखे हैं।” चिन्तन चला। उन्हें जातिस्मृति-ज्ञान उत्पन्न हुआ। वे नीचे उतरे, मुनियों की वन्दना की और सीधे अपने माता-पिता के पास आए।

उन्होंने माता-पिता से कहा—“हमने देख लिया है कि मनुष्य-जीवन अनित्य है, विघ्न-बहुल है और आयु थोड़ी है इसलिए घर में हमें कोई आनन्द नहीं है। हम मुनि-चर्या को स्वीकार करने के लिए आपकी अनुमति चाहते हैं।” (श्लोक ७)

पिता ने कहा—“पुत्रो! वेदों को जानने वाले इस प्रकार कहते हैं कि जिनके पुत्र नहीं होता उनकी गति नहीं होती। इसलिए वेदों को पढ़ो। ब्राह्मणों को भोजन कराओ। स्त्रियों के साथ भोग करो। पुत्रोत्पन्न करो। पुत्रों का विवाह कर, उन्हें घर सौंप फिर अरण्यवासी प्रशस्त मुनि हो जाना।” (श्लोक ८, ९)

पुत्रो ने कहा—“वेद पढ़ने पर भी वे त्राण नहीं होते। ब्राह्मणों को भोजन कराने पर वे नरक में ले जाते हैं। औरस पुत्र भी त्राण नहीं होते। ये काम-भोग क्षण भर सुख और चिरकाल दुःख देने वाले, बहुत दुःख और थोड़ा सुख देने वाले, ससार-मुक्ति के विरोधी और अनर्थों की खान हैं। काल सदा तैयार खड़ा है। ऐसी स्थिति में प्रमाद कैसे किया जाए ?” (श्लोक १३, १३, १५)

पिता ने कहा—“पुत्रो! जिसके लिए सामान्यतया लोग तप किया करते हैं वह सब कुछ—प्रचुर धन, स्त्रियाँ, स्वजन और इन्द्रियों के विषय तुम्हें यहीं प्राप्त हैं फिर तुम किसलिए श्रमण होना चाहते हो ?” (श्लोक १६)

पुत्रों ने कहा—“जहाँ धर्म की धुरा को वहन करने का अधिकार है वहाँ धन, स्वजन और इन्द्रियों के विषय का क्या प्रयोजन ? हम सभी प्रतिबन्धों से मुक्त होकर भिक्षा से निर्वाह करने वाले श्रमण होंगे।” (श्लोक १७)

नास्तिक मान्यता का यह घोष था कि शरीर से भिन्न कोई चैतन्य नहीं है। पाँच भूतों के समवाय से उसकी उत्पत्ति होती है और जब वे भूत विलग हो जाते हैं तब चैतन्य भी नष्ट हो जाता है। “अरणि में अग्नि, दूध में घृत और तिल में तेल अविद्यमान होने पर भी उचित प्रक्रिया के द्वारा उत्पन्न हो जाते हैं। उसी प्रकार भूतों से चैतन्य की उत्पत्ति माननी चाहिए।” (श्लोक १८)

आस्तिक मान्यता को स्पष्ट करते हुए पुत्रो ने कहा—“आत्मा अमूर्त है इसलिए यह इन्द्रियों द्वारा गम्य नहीं है। यह अमूर्त है इसलिए नित्य है। आत्मा के आन्तरिक दोष ही उसके बन्धन के हेतु हैं और बन्धन ही ससार का हेतु है।” (श्लोक १९)

पिता-पुत्र का यह वार्तालाप आगे चलता है। पिता ब्राह्मण-संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर बातें करते हैं और दोनों पुत्र श्रमण-संस्कृति की भित्ति पर चर्चा करते हैं। अन्त में पुरोहित को संसार की असारता और क्षणभंगुरता पर विश्वास पैदा हो जाता है और उसका मन सवेग से भर जाता है। वह अपनी पत्नी को समझाता है। पूर्ण विचार-विमर्श कर चारों (माता-पिता तथा दोनों पुत्र) प्रव्रजित हो जाते हैं।

यहाँ एक सामाजिक तथ्य का उद्घाटन हुआ है। उस समय यह राज्य का विधान था कि जिसके कोई उत्तराधिकारी नहीं होता उसको सम्पत्ति राजा की मानी जाती थी। भृगु पुरोहित का सारा परिवार दीक्षित हो गया। राजा ने यह बात सुनी। उसने सारी सम्पत्ति पर अधिकार करना चाहा। रानी कमलावती को यह मालूम हुआ और उसने राजा से कहा—“राजन् ! वमन को खाने वाले पुरुष की प्रशंसा नहीं होती। आप ब्राह्मण के द्वारा परित्यक्त धन को लेना चाहते हैं यह वमन पीने जैसा है।” (श्लोक ३७, ३८)

रानी ने भोगों की असारता पर पूर्ण प्रकाश डाला। राजा के मन में विराग जाग उठा। राजा-रानी दोनों प्रव्रजित हो गए।

इस प्रकार यह अध्ययन ब्राह्मण-परम्परा तथा श्रमण-परम्परा की मौलिक मान्यताओं की चर्चा प्रस्तुत करता है। निर्युक्तिकार ने राजा के लिए ‘सीमधर’ नाम का भी प्रयोग किया है।^१ वृत्तिकार ने ‘इषुकार’ को राज्य-कालीन नाम और ‘सीमधर’ को राजा का मौलिक नाम होने की कल्पना की है।^२

बौद्ध-साहित्य के हस्तिपाल जातक (५०६) में कुछ परिवर्तन के साथ इस कथा का निरूपण हुआ है।

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ३७३

सीमधरो य राया “ ।

२—बृहद् वृत्ति, पत्र ३६४ .

अत्र चेपुकारमिति राज्यकालनाम्ना सीमन्धरश्चेति मौलिकनाम्नेति सम्भावयाम ।

चउदसमं अञ्जयणं : चतुर्दश अध्ययन

उसुयारिज्जं : इपुकारीयम्

मूल

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुवाद

१—देवा भवित्ताण पुरे भवम्मी
केई चुया एगविमाणवासी ।
पुरे पुराणे उसुयारनामे
खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे ॥

देवा भूत्वा पुरा भवे
केचिच्च्युता एकविमान-वासिनः ।
पुरे पुराणे इपुकारनाम्नि
ख्याते समृद्धे सुरलोक-रम्ये ॥

१—पूर्व-जन्म में, देवता हो कर एक ही विमान में रहने वाले कुछ जीव देवलोक में च्युत हुए। उस समय इपुकार नाम का एक नगर था—प्राचीन, प्रसिद्ध, समृद्धिशाली और देवलोक के समान।

२—सकम्मसेसेण पुराकएण
कुलेसु दग्गेसु^१ य ते पमूया ।
निव्विणससारभया जहाय
जिणिन्दमग्ग सरण पवन्ता ॥

स्वकर्म-शेषेण पुराकृतेन
कुलेषूदग्गेषु च ते प्रसूता^२ ।
निर्विण्णा ससार-भयाद् हित्वा
जिनेन्द्र-मार्गं शरण प्रपन्ताः ॥

२—उन जीवों के अपने पूर्वकृत पुण्य-कर्म बाकी थे। फलस्वरूप वे इपुकार नगर के उत्तम कुलों में उत्पन्न हुए। मसार के भय से खिन्न होकर उन्होंने भोगों को छोड़ा और जिनेन्द्र-मार्ग की शरण में चले गए।

३—पुमत्तमागम्म कुमार दो वी
पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती ।
विसालकित्ती य तहोसुयारो
रायत्थ देवी कमलावई य ॥

पुस्त्वमाऽऽगम्य कुमारी द्वावपि
पुरोहित^३ तस्य यशा च पत्नी ।
विशालकीर्तिश्च तयोपुकारः
राजात्र देवी कमलावती च ॥

३—दोनों पुरोहित कुमार, पुरोहित, उसकी पत्नी यशा, विशाल कीर्ति वाला इपुकार राजा और उसकी रानी कमलावती—ये छहों व्यक्ति मनुष्य-जीवन प्राप्त कर जिनेन्द्र-मार्ग की शरण में चले गए।

४—जाईजरामच्चुभयाभिभूया^४
वहिंविहाराभिनिविट्ठचित्ता ।
ससारचक्रस्स विमोक्खणट्ठा
दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता ॥

जाति-जरा-मृत्यु-भयाभिभूतौ
वर्हिंविहाराभिनिविष्टचित्तौ ।
ससार-चक्रस्य विमोक्षणार्थं
दृष्ट्वा तौ काम-गुणेभ्यो विरक्तौ ॥

४-५—ब्राह्मण के योग्य यज्ञ आदि करने वाले पुरोहित के दोनों प्रिय पुत्रों ने एक बार निर्ग्रन्थ को देखा। उन्हें पूर्व-जन्म की स्मृति हुई और भली-भाँति आचरित तप और समय की स्मृति जाग उठी। वे जन्म, जरा और मृत्यु के भय से अभिभूत हुए। उनका चित्त मोक्ष की ओर खिंच गया। मसार-चक्र से मुक्ति पाने के लिए वे काम-गुणों से विरक्त हो गए।

५—पियपुत्तगा दोन्नि वि माहणस्स
सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स ।
सरित्तु पोराणिय तत्थ जाडं
तहा सुचिण्णं तवसजम च ॥

प्रिय पुत्रकी द्वावपि ब्राह्मणस्य
स्वकर्म-शीलस्य पुरोहितस्य ।
स्मृत्वा पौराणिकीं तत्र जातिं
तथा सुचीर्णं तपः-सयम च ॥

१ दत्तेछ (चू०, वृ०), उग्गेछ (उ) ।

२ ०भयाभिभूए (वृ० पा०) ।

६—ते कामभोगेसु असज्जमाणा
माणुस्सएसुं जे यावि दिव्वा ।
मोक्खाभिकखी अभिजायसड्ढा
ताय उवागम्म इम उदाहु ॥

७—असासय दट्ठु इम विहार
बहुअन्तराय न य दीहमाउ ।
तम्हा गिहसि न रइं लहामो
आमन्तयामो चरिस्सामु मोण ॥

८—अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं
तवस्स वाघायकर वयासी ।
इम वय वेयविओ वयन्ति
जहा न होई असुयाण लोगो ॥

९—अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे
पुत्ते पडिद्वप्प^१ गिहसि जाया ।।
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं
'आरण्णगा होह मुणी पसत्था'^२ ॥

१०—सोयग्गिणा आयगुणिन्धणेण
मोहाणिला पज्जलणाहिएण ।
सतत्तभाव परित्तप्पमाण
लोलुप्पमाण बहुहा बहु च ॥

११—पुरोहिय त कमसोऽणुणन्त^३
निमतयन्त च सुए धणेण ।
जहक्कम कामगुणेहिं^४ चेव
कुमारगा ते पसमिक्ख वक्क ॥

तौ काम-भोगेष्वसज्जन्तौ
मानुष्यकेषु ये चापि दिव्याः ।
मोक्षाभिकाङ्क्षिणावभिजात-श्रद्धौ
तातमुपागम्येदमुदाहरताम् ॥

अशाश्वत दृष्ट्वेम विहार
बह्वन्तराय न च दीर्घमायुः ।
तस्माद् गृहे न रतिं लभावहे
आमन्त्रयावहे चरिष्यावो मौनम् ॥

अथ तातकस्तत्र मुन्योस्तयोः
तपसो व्याघातकरमवादीत् ।
इमां वाच वेद-विदो वदन्ति
यथा न भवत्यसुताना लोकः ॥

अधीत्य वेदान् परिवेष्य विप्रान्
पुत्रान् प्रतिष्ठाप्य गृहे जातौ ।।
भुक्त्वा भोगान् सह स्त्रीभिः
आरण्यकौ भवत मुनी प्रशस्तौ ॥

शोकाग्निना आत्म-गुणेन्धनेन
मोहानिलात् प्रज्वलनाधिकेन ।
संतप्त-भावं परित्यज्यमान
लोलुप्यमानं बहुधा बहु च ॥

पुरोहित त क्रमशोऽनुनयन्त
निमन्त्रयन्त च सुतौ धनेन ।
यथाक्रम काम-गुणैश्चैव
कुमारकौ तौ प्रसमीक्ष्य वाक्यम् ॥

६—उनकी मनुष्य और देवता सम्बन्धी
काम-भोगों में आसक्ति जाती रही । मोक्ष की
अभिलाषा और धर्म की श्रद्धा से प्रेरित होकर
पिता के पास आए और इस प्रकार कहने
लगे—

७—“हमने देखा है कि यह मनुष्य-जीवन
अनित्य है, उसमें भी विघ्न बहुत है और आयु
थोड़ी है । इसलिए घर में हमें कोई आनन्द नहीं
है । हम मुनि-चर्या को स्वीकार करने के लिए
आपकी अनुमति चाहते हैं ।”

८—उनके पिता ने उन कुमार मुनियों
की तपस्या में बाधा उत्पन्न करने वाली बातें
कही—“पुत्रो ! वेदों को जानने वाले इस
प्रकार कहते हैं कि जिनको पुत्र नहीं होता
उनकी गति नहीं होती ।

९—“पुत्रो ! इसलिए वेदों को पढो ।
ब्राह्मणों को भोजन कराओ । स्त्रियों के साथ
भोग करो । पुत्रों को उत्पन्न करो । उनका
विवाह कर, घर का भार सौंप फिर अरण्यवासी
प्रशस्त मुनि हो जाना ।”

१०-११—दोनों कुमारों ने सोच-विचार
पूर्वक उस पुरोहित को—जिसका मन और
शरीर, आत्म-गुण रूपी इन्धन और मोह रूपी
पवन से अत्यन्त प्रज्वलित शोकाग्नि से, सतप्त
और परितप्त हो रहा था, जिसका हृदय
वियोग की आशका से अतिशय छिन्न हो
रहा था, जो एक-एक कर अपना अभिप्राय
अपने पुत्रों को समझा रहा था और उन्हें धन
और क्रम-प्राप्त काम-भोगों का निमन्त्रण दे
रहा था—ये वाक्य कहे—

१. परिद्वप्प (वृ० पा०) ।

२. पच्छा वणप्पवेस पसत्थ (चू०) ।

३. णिणत (उ) ।

४. कामगुणेषु (वृ० पा०) ।

१२—वेया अहोया न भवन्ति ताण
भुत्ता दिया निन्ति तम तमेण ।
जाया य पुत्ता न हवन्ति ताण
को णाम ते अणुमन्नेज्ज' एय ॥

वेदा अधीता न भवन्ति त्राण
भोजिता द्विजा नयन्ति तमस्तमसि ।
जाताश्च पुत्रा न भवन्ति त्राण
को नाम तवानुमन्येतेतत् ॥

१२—“वेद पढ़ने पर भी वे त्राण नहीं होते । ब्राह्मणों को भोजन कराने पर वे नरक में ले जाते हैं । औरस पुत्र भी त्राण नहीं होते । इसलिए आपने जो कहा उमका अनुमोदन कोन कर सकता है ?

१३—खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा
पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा ।
ससारमोक्खस्स विपक्खभूया
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥

क्षणमात्र-सौख्या बहुकाल-दुःखाः
प्रकाम-दुःखा अनिकाम-सौख्याः ।
ससार-मोक्षस्य विपक्ष-भूताः
खानिरनर्थाना तु काम-भोगा ॥

१३—“ये काम-भोग क्षण भर सुख और चिरकाल दुःख देने वाले हैं, बहुत दुःख और थोड़ा सुख देने वाले हैं, ससार-मुक्ति के विरोधी हैं और अनर्थों की खान हैं ।

१४—परिव्वयन्ते अणियत्तकामे
अहो य राओ परितप्पमाणे ।
अन्नप्पमत्ते धणमेसमाणे
पप्पोति मच्चु पुरिसे जर च ॥

परिव्रजन्ननिवृत्त-काम
अहं च रात्रौ परितप्यमानः ।
अन्य-प्रमत्तो धनमेषयन्
प्राप्नोति मृत्युं पुरुषो जरा च ॥

१४—“जिसे कामनाओं से मुक्ति नहीं मिली वह पुरुष अतृप्ति की अग्नि से सतत होकर दिन-रात परिभ्रमण करता है । दूसरों के लिए प्रमत्त होकर धन की खोज में लगा हुआ वह जरा और मृत्यु को प्राप्त होता है ।

१५—इम च मे अत्थि इम च नत्थि
इम च मे किच्च इम अकिच्च ।
त एवमेव लालप्पमाण
हरा हरति त्ति कह पमाए ? ॥

इदं च मेऽस्ति इदं च नास्ति
इदं च मे कृत्यमिदमकृत्यम् ।
तमेवमेव लालप्यमान
हरा हरन्तीति कथं प्रमाद ? ॥

१५—“यह मेरे पास है और यह नहीं है, यह मुझे करना है और यह नहीं करना है—इस प्रकार धृष्टा बकवास करते हुए पुरुष को उठाने वाला (काल) उठा लेता है । इस स्थिति में प्रमाद कैसे किया जाय ?”

१६—धण पभूय सह इत्थियाहिं
सयणा तहा कामगुणा पगामा ।
तव कए तप्पइ जस्स लोगो
त सव्व साहीणमिहेव तुब्भ ॥

धन प्रभूत सह स्त्रीभिः
स्वजनास्तथा काम-गुणाः प्रकामाः ।
तपः कृते तप्यति यस्य लोकः
तत् सर्वं स्वाधीनमिहैव युवयो ॥

१६—“जिसके लिए लोग तप किया करते हैं वह सब कुछ—प्रचुर धन, स्त्रियाँ, स्वजन और इन्द्रियों के विषय तुम्हें यही प्राप्त हैं फिर किसलिए तुम श्रमण होना चाहते हो ?”—पिता ने कहा ।

१७—धणेण किं धम्मधुराहिगारे
सयणेण वा कामगुणेहि चेव ।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी
बहिंविहारा अभिगम्म भिक्षं ॥

धनेन किं धर्म-धुराधिकारे
स्वजनेन वा कामगुणैश्चैव ।
श्रमणौ भविष्यावो गुणौघधारिणौ
बहिर्विहारावभिगम्य भिक्षाम् ॥

१७—पुत्र बोले—“पिता । जहाँ धर्म की घुरा को बहन करने का अधिकार है वहाँ धन, स्वजन और इन्द्रिय-विषय का क्या प्रयोजन है ? कुछ भी नहीं । हम गुण-समूह से सम्पन्न श्रमण होंगे, प्रतिबन्ध-मुक्त होकर गाँवों और नगरों में विहार करने वाले और भिक्षा लेकर जीवन चलाने वाले ।”

१८—जहा य अग्गी अरणीउऽसन्तो
खीरे घय तेढल महातिलेसु ।
एमेव जाया । सरीरसि सत्ता
समुच्छई नासइ नावचिहे ॥

१९—नो इन्द्रियगेज्झ अमुत्तभावा
अमुत्तभावा वि य होइ निच्चो ।
अज्झत्थहेउ निययऽस्स बन्धो
ससारहेउ च वयन्ति बन्ध ॥

२०—जहा वय धम्ममजाणमाणा
पाव पुरा कम्ममकासि मोहा ।
ओरुज्झमाणा परिरक्खियन्ता
त नेव भुज्जो वि समायरामो ॥

२१—अब्भाहयमि लोगमि
सव्वओ परिवारिए ।
'अमोहाहि पडन्तीहि'^१
गिहसि न रइ लभे ॥

२२—केण अब्भाहओ लोगो ?
केण वा परिवारिओ ? ।
का वा अमोहा वुत्ता ?
जाया । चिंतावरो हुमि ॥

२३—मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो
जराए परिवारिओ ।
अमोहा रयणी वुत्ता
एव ताय । वियाणह ॥

यथा चाग्निररणितोऽसन्
क्षीरे घृत तैल महातिलेषु ।
एवमेव जातौ ! शरीरे सत्त्वा
समूर्च्छन्ति नश्यन्ति नावतिष्ठन्ते ॥

नो इन्द्रिय-ग्राह्योऽमूर्त-भावात्
अमूर्त-भावादपि च भवति नित्य ।
आध्यात्म-हेतुनियतोऽस्य बन्धः
संसार-हेतु च वदन्ति बन्धम् ॥

यथाऽऽवां धर्ममजानानौ
पापं पुरा कर्माकार्ष्व मोहात् ।
अवरुध्यमानौ परिरक्ष्यमाणौ
तन्नेव भूयोऽपि समाचराव ॥

अभ्याहते लोके
सर्वतः परिवारिते ।
अमोघाभिः पतन्तीभिः
गृहे न रतिं लभावहे ॥

केनाभ्याहतो लोकः ?
केन वा परिवारितः ? ।
का वाऽमोघा उक्ता ?
जातौ ! चिन्तापरो भवामि ॥

मृत्युनाऽभ्याहतो लोकः
जरया परिवारितः ।
अमोघा रात्रय उक्ता
एव तात ! विजानीहि ॥

१८—“पुत्रो ! जिस प्रकार अरणी में अविद्यमान अग्नि उत्पन्न होती है, दूध में घी और तिल में तैल पैदा होता है, उसी प्रकार शरीर में जीव उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं । शरीर का नाश हो जाने पर उनका अस्तित्व नहीं रहता”—पिता ने कहा ।

१९—कुमार बोले—“पिता ! आत्मा अमूर्त है इसलिए यह इन्द्रियों के द्वारा नहीं जाना जा सकता । यह अमूर्त है इसलिए नित्य है । यह निश्चय है कि आत्मा के आन्तरिक दोष ही उसके बन्धन के हेतु हैं और बन्धन ही संसार का हेतु है—ऐसा कहा है ।

२०—“हम धर्म को नहीं जानते थे तब घर में रहे, हमारा पालन होता रहा और मोह-वश हमने पाप-कर्म का आचरण किया । किन्तु अब फिर पाप-कर्म का आचरण नहीं करेंगे ।

२१—“यह लोक पीड़ित हो रहा है, चारों ओर से घिरा हुआ है, अमोघा आ रही है । इस स्थिति में हमें सुख नहीं मिल रहा है ।”

२२—“पुत्रो ! यह लोक किससे पीड़ित है ? किससे घिरा हुआ है ? अमोघा किसे कहा जाता है ? मैं जानने के लिए चिन्तित हूँ”—पिता ने कहा ।

२३—कुमार बोले—“पिता ! आप जानें कि यह लोक मृत्यु से पीड़ित है, जरा से घिरा हुआ है और रात्रि को अमोघा कहा जाता है ।

२४—जा जा वच्चइ रयणी
न सा पडिनियत्तई ।
अहम्म कुणमाणस्स
अफला जन्ति राइओ ॥

या या व्रजति रजनी
न सा प्रतिनिवर्तते ।
अधर्मं कुर्वाणस्य
अफला यान्ति रात्रयः ॥

२४—“जो-जो रात बीत रही है, वह लौट कर नहीं आती । अधर्म करने वाले की रात्रियाँ निष्फल चली जाती है ।

२५—जा जा वच्चइ रयणी
न सा पडिनियत्तई ।
धम्म च कुणमाणस्स
सफला जन्ति राइओ ॥

या या व्रजति रजनी
न सा प्रतिनिवर्तते ।
धर्मं च कुर्वाणस्य
सफला यान्ति रात्रयः ॥

२५—“जो-जो रात बीत रही है वह लौट कर नहीं आती । धर्म करने वाले की रात्रियाँ सफल होती हैं ।”

२६—एगओ सवसित्ताण
दुहओ सम्मत्तसजुया ।
पच्छा जाया । गमिस्सामो
भिक्षवमाणा कुले कुले ॥

एकत समुध्य
द्वये सम्यक्त्व-संयुताः ।
पश्चाज्जातो ! गमिष्यामि
भिक्षमाणाः कुले कुले ॥

२६—“पुत्रो ! पहले हम सब एक साथ रह कर सम्यक्त्व और व्रतो का पालन करें फिर तुम्हारा यौवन बीत जाने के बाद घर-घर से भिक्षा लेते हुए विहार करेंगे”—पिता ने कहा ।

२७—जस्सत्थि मच्चुणा सक्ख
जस्स वऽत्थि' पलायण ।
जो जाणे न मरिस्सामि
सो हु कखे सुए सिया ॥

यस्यास्ति मृत्युना सख्य
यस्य वास्ति पलायनम् ।
यो जानीते न मरिष्यामि
स खलु काङ्क्षति श्वः स्यात् ॥

२७—पुत्र बोले—“पिता ! कल की इच्छा वही कर सकता है, जिसकी मृत्यु के साथ मैत्री हो, जो मौत के मुँह से बच कर पलायन कर सके और जो जानता हो—मैं नहीं मरूँगा ।

२८—अज्जेव धम्म पडिवज्जयामो
जहिं पवन्ता न पुण्ढभवामो ।
अणागय नेव य अत्थि किंचि
सद्धाखम णे विणइत्तु राग ॥

अद्यैव धर्मं प्रतिपद्यामहे
य प्रपन्ता न पुनर्भविष्यामः ।
अनागत नैव चास्ति किंचित्
श्रद्धाक्षम नो विनीय रागम् ॥

२८—“हम आज ही उस मुनि-धर्म को स्वीकार कर रहे हैं, जहाँ पहुँच कर फिर जन्म लेना न पड़े । भोग हमारे लिए अप्राप्त नहीं है—हम उन्हें अनेक बार प्राप्त कर चुके हैं । राग-भाव को दूर कर श्रद्धा पूर्वक श्रेय की प्राप्ति के लिए हमारा प्रयत्न युक्त है ।”

२९—पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो
वासिट्ठि । भिक्षायरियाइ कालो ।
साहाहि रुक्खो लहए समाहि
छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणु ॥

प्रहीण पुत्रस्य खलु नास्ति वासः
वासिट्ठि ! भिक्षाचर्यायाः कालः ।
शाखाभिर्वृक्षो लभते समाधि
छिन्नाभि शाखाभिस्तमेव स्थाणुम् ॥

२९—“पुत्रों के चले जाने के बाद मैं घर में नहीं रह सकता । हे वासिट्ठि ! अब मेरे भिक्षाचर्या का काल आ चुका है । वृक्ष शाखाओं से समाधि को प्राप्त होता है । उनके कट जाने पर लोग उसे ठूठ कहते हैं ।

३०—पखाविहूणो^१ व्व^२ जहेह^३ पक्खी
भिच्चाविहूणो^३ व्व^४ रणे नरिन्दो ।
विवन्ससारो वणिगो व्व पोए
पहीणपुत्तो मि तहा अह पि ॥

३१—सुसभिया कामगुणा इमे ते
सपिण्डिया अगारसापभूया^५ ।
भुजामु ता कामगुणे पगाम
पच्छा गमिस्सामु पहाणमग्ग ॥

३२—भुत्ता रसा भोइ^६ । जहाइ णे वओ
न जीवियद्वा पजहामि भोए ।
लाभ अलाभ च सुह च दुक्ख
सचिक्खमाणो^७ चरिस्सामि^८ मोण ॥

३३—मा हू तुम सोयरियाण सम्भरे
जुण्णो व हसो पडिसोत्तगामी ।
भुजाहि भोगाइ मए समाण
दुक्ख खु भिक्खायरियाविहारो ॥

३४—जहा य भोई^९ । तणुय भुयगो^{१०}
निम्मोयणिं हिच्च पलेइ मुत्तो ।
एमेए^{११} जाया पयहन्ति भोए
‘ते ह’^{१२} कह नाणुगमिस्समेक्को ? ॥

पक्ष-विहीन इव यथेह पक्षी
भृत्य-विहीन इव रणे नरेन्द्र ।
विपन्न-सारो वणिगिव पोते
प्रहीण-पुत्रोऽस्मि तथाऽहमपि ॥

सुसभृताः काम-गुणा इमे ते
सम्पिण्डिता अभ्य-रस-प्रभूताः ।
भञ्जीवहितावत् काम-गुणान् प्रकामं
पदचात् गमिष्याव प्रधान-मार्गम् ॥

भुक्ता रसा भवति ! जहाति नो वयः
न जीवितार्थं प्रजहामि भोगान् ।
लाभमलाभं च सुखं च दुःखं
सर्वीक्षमाणश्चरिष्यामि मौनम् ॥

मा खलु त्व सोदर्याणा स्मार्षोः
जीर्ण इव हंसः प्रतिस्रोतोगामी ।
भुंक्ष्व भोगान् मया सम
दुःख खलु भिक्षाचर्या-विहारः ॥

यथा च भवति ! तनुजा भुजंगः
निर्मोचनी हित्वा पर्येति मुक्तः ।
एवमेतौ जातौ प्रजहीतो भोगान्
तौ अहं कथं नानुगमिष्याम्येकः ? ॥

३०—“विना पख का पक्षी, रण-भूमि में
सेना रहित राजा और जल-पोत पर धन-रहित
व्यापारी जैसा असहाय होता है, पुत्रों के चले
जाने पर मैं भी वैसा ही हो जाता हूँ ।”

३१—वाशिष्ठी ने कहा—“ये सुसंस्कृत
और प्रचुर शृंगार-रस से परिपूर्ण इन्द्रिय-
विषय, जो तुम्हें प्राप्त है, उन्हें अभी हम खूब
भोगें । उसके बाद हम मोक्ष-मार्ग को स्वीकार
करेंगे ।”

३२—पुरोहित ने कहा—“हे भवति !
हम रसों को भोग चुके हैं, वय हमें छोड़ते
चला जा रहा है । मैं असयम-जीवन के लिए
भोगों को नहीं छोड़ रहा हूँ । लाभ-अलाभ
और सुख-दुःख को समदृष्टि से देखता हुआ
मुनि-धर्म का आचरण करूँगा ।”

३३—वाशिष्ठी ने कहा—“प्रतिस्रोत में
वहने वाले बूढ़े हंस की तरह तुम्हें पीछे अपने
बन्धुओं को याद करना न पड़े, इसलिए मेरे
साथ भोगों का सेवन करो । यह भिक्षाचर्या
और भ्रामानुषाग विहार सचमुच दुःखदायी है ।”

३४—“हे भवति ! जैसे साप अपने शरीर
की केंचुली को छोड़ मुक्त-भाव से चलता है
वैसे ही पुत्र भोगों को छोड़ कर चले जा रहे
हैं । पीछे मैं अकेला क्यों रहूँ, उनका अनुगमन
क्यों न करूँ ?

१ व (उ, ऋ०) ।

२ जहेव (अ, उ, ऋ०) ।

३ भिच्चविहीणु (ऋ०), भिच्चुविहीणु (उ) ।

४ व (उ, ऋ०) ।

५ अगारसप्पभूया (उ, ऋ०) ।

६ होइ (वृ०) ।

७ सचिक्खमाणो (चू०, उ) ।

८ चरिस्सामि (अ, ऋ०), करिस्सामि (चू०) ।

९ भोइ (वृ० पा०) ।

१० भुयगमो (अ, वृ०) ।

११ इमेति (वृ० पा०) ।

१२ ताह (उ, चू०), तोह (अ) ।

३५—छिन्दित्तु जाल अबल व रोहिया
मच्छा जहा कामगुणे पहाय ।
धोरेयसीला तवसा उदारा
धीरा हु भिक्षायरिय चरन्ति ॥

छित्त्वा जालमबलमिव रोहिताः
मत्स्या यथाकाम-गुणान् प्रहाय ।
धौरेय-शीलास्तपसा उदारा.
धीराः खलु भिक्षाचर्या चरन्ति ॥

३५—“जैसे रोहित मच्छ जर्जरित जाल को काट कर बाहर निकल जाते हैं वैसे ही उठाए हुए भार को वहन करने वाले प्रधान तपस्वी और धीर पुरुष काम-भोगों को छोड़ कर भिक्षाचर्या को स्वीकार करते हैं ।”

३६—नहेव कुचा समइकमन्ता
तयाणि जालाणि दलित्तु हसा ।
पलेन्ति पुत्ता य पई य मज्झ
‘ते ह’^१ कह नाणुगमिस्समेका ? ॥

नभसीव क्रौंचा समतिक्रामन्तः
ततानि जालानि दलित्वा हंसाः ।
परियान्ति पुत्रो च पतिश्च मम
तानह कथं नानुगमिष्याम्येका ? ॥

३६—वाशिष्ठी ने कहा—“जैसे क्रौंच पक्षी और हंस बहेलियों द्वारा बिछाए हुए जालों को काट कर आकाश में उड़ जाते हैं वैसे ही मेरे पुत्र और पति जा रहे हैं । पीछे मैं अकेली क्यों रहूँ ? उनका अनुगमन क्यों न करूँ ?”

३७—पुरोहित्य त ससुय सदार
सोच्चाऽभिनिक्खम्म पहाय भोए ।
कुडुम्बसार विउलुत्तम त
राय अभिक्ख समुवाय देवी ॥

पुरोहित त ससुतं सवार
श्रुत्वाऽभिनिष्क्रम्य प्रहाय भोगान् ।
कुटुम्ब-सार विपुलोत्तम तद्
राजानमभीक्ष्ण समुवाच देवी ॥

३७—पुरोहित अपने पुत्र और पत्नी के साथ भोगों को छोड़ कर प्रव्रजित हो चुका है, यह सुन राजा ने उसके प्रचुर और प्रधान धन-धान्य आदि को लेना चाहा तब महारानी कमलावती ने बार-बार कहा—

३८—वन्तासी पुरिसो राय !
न सो होइ पससिओ ।
साहणेण परिच्चत्तं
धण आदाउमिच्छसि ॥

वान्ताशी पुरुषो राजन् !
न स भवति प्रशसनीयः ।
ब्राह्मणेन परित्यक्तं
धनमादातुमिच्छसि ॥

३८—“राजन् ! वमन खाने वाले पुरुष की प्रशंसा नहीं होती । तुम ब्राह्मण के द्वारा परित्यक्त धन को लेना चाहते हो—यह क्या है ?

३९—सव्व जग जइ तुह
सव्व वावि धण भवे ।
सव्व पि ते अपज्जत्त
नेव ताणाय त तव ॥

सर्वं जगद् यदि तव
सर्वं वापि धनं भवेत् ।
सर्वमपि ते अपर्याप्तं
नैव त्राणाय तत्तव ॥

३९—“यदि समूचा जगत् तुम्हें मिल जाए अथवा समूचा धन तुम्हारा हो जाए तो भी वह तुम्हारी इच्छा-पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं होगा और वह तुम्हें त्राण भी नहीं दे सकेगा ।

४०—मरिहिसि राय । जया तया वा
मणोरमे कामगुणे पहाय^२ ।
एको हु धम्मो नरदेव । ताण
न विज्जई अन्नमिहेह किंचि ॥

मरिष्यसि राजन् ! यदा तदा वा
मनोरमान् काम-गुणान् प्रहाय ।
एक खलु धर्मो नरदेव ! त्राण
न विद्यतेऽन्यमिहेह किंचित् ॥

४०—“राजन् ! इन मनोरम काम-भोगों को छोड़ कर जब कभी मरना होगा । हे नरदेव ! एक धर्म ही त्राण है । उसके सिवाय कोई दूसरी वस्तु त्राण नहीं दे सकती ।

१. ताह (उ, चू०), तोह (अ) ।

२. जहाय (चू०) ।

४१—नाह रमे पक्खिणि पजरे वा
सताणछिन्ता चरिस्सामि मोणं ।
अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा
परिग्गहारम्भनियत्तदोसा ॥

४२—दवग्गिणा जहा रण्णे
डज्झमाणेसु जन्तुसु ।
अन्ने सत्ता पमोयन्ति
रागदोसवस गया ॥

४३—एवमेव^१ वय मूढा
कामभोगेसु मुच्छिया ।
डज्झमाण न बुज्झामो
रागदोसग्गिणा जग ॥

४४—भोगे भोच्चा वमिन्ता य
लहुभूयविहारिणो ।
आमोयमाणा गच्छन्ति
दिया कामकमा इव ॥

४५—इमे य बद्धा^२ फन्दन्ति
मम हत्थज्जमागया ।
वय च सत्ता कामेसु
भविस्सामो जहा इमे ॥

४६—सामिस कुलल दिस्स
वज्झमाण निरामिस ।
आमिस सव्वमुज्झित्ता
विहरिस्सामि निरामिसा ॥

नाह रमे पक्षिणी पंजर इव
छन्न-सन्ताना चरिष्यामि मौनम् ।
अकिंचना ऋजु-कृता निरामिषा
परिग्रहारम्भ-दोष-निवृत्ता ॥

दवाग्निना यथारण्ये
दह्यमानेषु जन्तुषु ।
अन्ये सत्त्वाः प्रमोदन्ते
राग-द्वेष-वश गताः ॥

एवमेव वय मूढाः
काम-भोगेषु मूर्च्छिता ।
दह्यमान न बुध्यामहे
राग-द्वेषाग्निना जगत् ॥

भोगान् भुक्त्वा वान्त्वा च
लघुभूत-विहारिणः ।
आमोदमाना गच्छन्ति
द्विजाः काम-क्रमा इव ॥

इमे च बद्धाः स्पन्दन्ते
मम हस्तमार्य ! आगताः ।
वय च सक्ताः कामेषु
भविष्यामो यथेमे ॥

सामिष कुललं दृष्ट्वा
बाध्यमान निरामिषम् ।
आमिषं सर्वमुज्झित्वा
विहरिष्यामि निरामिषा ॥

४१—“जैसे पक्षिणी पिंजड़े में आनन्द नहीं मानती, वैसे ही मुझे इस बन्धन में आनन्द नहीं मिल रहा है । मैं स्नेह के जाल को तोड़ कर अकिंचन, सरल क्रिया वाली, विषय-वासना से दूर और परिग्रह एवं हिंसा के दोषों से मुक्त हो कर मुनि-धर्म का आचरण करूँगी ।

४२—“जैसे दवाग्नि लगी हुई है, अरण्य में जीव-जन्तु जल रहे हैं, उन्हें देख राग-द्वेष के वशीभूत हो कर दूसरे जीव प्रमुदित होते हैं,

४३—“उसी प्रकार काम-भोगों में मूर्च्छित हो कर हम मूढ लोग यह नहीं समझ पाते कि यह समूचा ससार राग-द्वेष की अग्नि से जल रहा है ।

४४—“विवेकी पुरुष भोगों को भोग कर फिर उन्हें छोड़ वायु की तरह अप्रतिबद्ध-विहार करते हैं और वे स्वेच्छा से विचरण करने वाले पक्षियों की तरह प्रसन्नतापूर्वक स्वतन्त्र विहार करते हैं ।

४५—“आर्ये ! जो काम-भोग अपने हार्थों में आए हुए हैं और जिनको हमने नियंत्रित कर रखा है, वे कूद-फाँद कर रहे हैं । हम कामनाओं में आसक्त बने हुए हैं किन्तु अब हम भी वैसे ही होंगे, जैसे कि अपनी पत्नी और पुत्रों के साथ भृगु हुए हैं ।

४६—“जिस गीध के पास मास होता है उस पर दूसरे पक्षी झपटते हैं और जिसके पास मास नहीं होता उस पर नहीं झपटते—यह देख कर मैं आमिष (घन, धान्य आदि) को छोड़, निरामिष हो कर विचरूँगी ।

४७—गिद्धोवमे उ नच्चाण
कामे ससारवड्ढणे ।
उरगो 'सुवण्णपासे व'^१
सकमाणो तणु चरे ॥

गृध्रोपमांस्तु ज्ञात्वा
कामान् ससार-वर्धनान् ।
उरगः सौपर्णेय-पाश्वे इव
शङ्कमानस्तनु चरेत् ॥

४७—“गीघ की उपमा से काम-भोगों को
ससार-वर्धक जान कर मनुष्य को इनसे इसी
प्रकार शक्ति होकर चलना चाहिए, जिस
प्रकार गरुड के सामने साँप शक्ति होकर
चलता है ।

४८—नागो व्व वन्धण छित्ता
अप्पणो वसहिं वए ।
एय पत्थ महाराय ।
उसुयारि त्ति मे सुय ॥

नाग इव वन्धन छित्त्वा
आत्मनो वर्सति व्रजेत् ।
एतत्पथ्य महाराज !
इषुकार ! इति मया श्रुतम् ॥

४८—“जैसे वन्धन को तोड़ कर हाथी
अपने स्थान (विव्याटवी) में चला जाता है,
वैसे ही हमें अपने म्यान (मोक्ष) में चले जाना
चाहिए । हे महाराज इषुकार ! यह पथ्य है,
इसे मैंने ज्ञानियों से सुना है ।”

४९—चडत्ता विउल रज्ज^२
कामभोगे य दुच्चए ।
निव्विसया निरामिसा
निन्हेहा निप्परिगहा ॥

त्यक्त्वा विपुल राज्यं
काम-भोगांश्च दुस्त्यजान् ।
निर्विषयी निरामिषी
निःस्नेही निष्परिग्रही ॥

४९—राजा और रानी विपुल राज्य
और दुष्यज काम-भोगों को छोड़ निर्विषय,
निरामिष, निस्नेह और निष्परिग्रह हो गए ।

५०—सम्मं धम्म वियाणित्ता
चेच्चा कामगुणे वरे ।
तव पगिज्झहक्खाय^३
घोर घोरपरक्कमा ॥

सम्यग् धर्म विज्ञाय
त्यक्त्वा काम-गुणान् वरान् ।
तपः प्रगृह्य यथाख्यात
घोरं घोर-पराक्रमी ॥

५०—धर्म को सम्यक् प्रकार से जान,
आकर्षक भोग-विलास को छोड़, वे तीर्थङ्कर के
द्वारा उपदिष्ट घोर तपश्चर्या को स्वीकार कर
सयम में घोर पराक्रम करने लगे ।

५१—एव ते कमसो बुद्धा
सव्वे धम्मपरायणा^४ ।
जम्ममच्चुभउव्विग्गा
दुक्खस्सन्तगवेसिणो ॥

एव ते क्रमशो बुद्धा
सर्वे धर्म-परायणाः ।
जन्म-मृत्यु-भयोद्विग्नाः
दुःखस्यान्त-गवेषिणः ॥

५१—इस प्रकार वे सब क्रमश बुद्ध
हो कर, धर्म-परायण, जन्म और मृत्यु के भय
से उद्विग्न बन गए तथा दुःख के अन्त की खोज
में लग गए ।

१. सुवण्णपासेव्व (उ, चू०, छ०), सुवण्णपासित्ता (ऋ०), सुवण्णपासिच्चा (अ) ।

२. रट्ट (वृ०, चू०); रज्ज (वृ० पा०) ।

३. ० अहकाम (चू० पा०) ।

४. ० परपरा (वृ० पा०) ।

५२—सासणे विगयमोहाण
पुर्व्वि भावणभाविया ।
अचिरेणेव कालेण
दुक्खस्सन्तमुवागया ॥

शासने विगत-मोहानां,
पूर्व्व भावना-भाविताः ।
अचिरेणैव कालेन
दुःखस्यान्तमुपागताः ॥

५२-५३—जिनकी आत्मा पूर्व-जन्म में
कुशल-भावना से भावित थी वे सब—राजा,
रानी, ब्राह्मण पुरोहित, ब्राह्मणी और दोनों
पुरोहित कुमार अर्हत् के शासन में आकर दुःख
का अंत पा गए—मुक्त हो गए ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

५३—राया सह देवीए
माहणो य पुरोहिओ ।
माहणी दारगा चैव
सव्वे ते परिनिव्वुड^१ ॥
—त्ति वेमि ॥

राजा सह देव्या
ब्राह्मणश्च पुरोहितः ।
ब्राह्मणी दारकौ चैव
सर्वे ते परिनिर्वृता ॥
—इति ब्रवीमि ॥

पनरसमं अज्ज्ञयणं :
सभिक्खुयं

पंचदश अध्ययन :
सभिक्षुक

आत्मसुख

इस अध्ययन में भिक्षु के लक्षणों का निरूपण है, इसलिए इसका नाम ‘समिक्खु’—‘समिक्खुक’ रखा गया है।

भिक्षु अकेला होता है। उसके न कोई मित्र होता है और न कोई शत्रु। वह सभी सम्बन्धों से विप्रमुक्त होता है। वह साधना करता है। वह अध्यात्म की कला को कभी जीविका-उपार्जन के लिए प्रयुक्त नहीं करता। वह सदा जितेन्द्रिय रहता है। (श्लोक १६)

जीवन भयाकुल है। उसके प्रत्येक चरण में भय ही भय है। भिक्षु अभय की साधना करता है। पहले-पहल वह भय को जीतने के लिए उपाश्रय में ही मध्य रात्रि में उठ कर अकेला ही कायोत्सर्ग करता है। दूसरी बार उपाश्रय से बाहर, तीसरी बार दूर चौराहे पर, चौथी बार शून्य-गृह में और अन्त में ज्ञान में अकेला जा कायोत्सर्ग करता है। वह भय-मुक्त हो जाता है। अभय अहिंसा का परिपाक है। (श्लोक १४)

मुनि को प्रत्येक वस्तु याचित ही मिलती है। अयाचित कुछ भी नहीं मिलता। जो इच्छित वस्तु मिलने पर प्रसन्न और न मिलने पर अप्रसन्न नहीं होता वह भिक्षु है। भिक्षु के लिए सभी द्वार खुले हैं। कोई दाता देता है और कोई नहीं भी देता। इन दोनों स्थितियों में जो सम रहता है वह भिक्षु है। (श्लोक ११, १२)

मुनि सरस आहार मिलने पर उसकी प्रशंसा और नीरस मिलने पर उसकी गहरी न करे। ऊँचे कुलों की भिक्षा करने के साथ-साथ प्रान्त कुलों से भी भिक्षा ले। भिक्षा में जो कुछ प्राप्त हो उसी में सन्तोष करने वाला भिक्षु होता है। (श्लोक १३)

मुनि अपनी आवश्यकता-पूर्ति के लिए हीन-भाव से किसी के आगे हाथ नहीं पसारता। वह याचना में भी अपने आत्म-गौरव को नहीं खोता। बड़े व्यक्तियों की न वह चापलूसी करता है और न छोटे व्यक्तियों का तिरस्कार, न वह धनवानों की श्लाघा करता है और न निर्धनों की निन्दा। सबके प्रति उसका बर्ताव सम होता है। (श्लोक ६)

दशवैकालिक का दसवाँ अध्ययन ‘समिक्खु’ है। उसमें २१ श्लोक हैं। इस अध्ययन में १६ श्लोक हैं। उद्देश्य-साम्य होने पर भी दोनों के वर्णन में अन्तर है। कहीं-कहीं श्लोकों के पदों में शब्द-साम्य है। इस अध्ययन में प्रयुक्त भिक्षु के कई विशेषण नए हैं। इसके समग्र अध्ययन से भिक्षु की जीवन-यापन विधि का अर्थ से इति तक सम्यक् परिज्ञान हो जाता है।

इस अध्ययन में अनेक दार्शनिक तथा सामाजिक तथ्यों का सकलन हुआ है। आगम काल में कुछ श्रमण और ब्राह्मण मन्त्र, चिकित्सा आदि का प्रयोग करते थे। भगवान् महावीर ने जैन-मुनि के लिए ऐसा करने का निषेध किया है।

वमन, विरेचन और धूमनेत्र—ये चिकित्सा-प्रणाली के अङ्ग हैं। आयुर्वेद में प्रचलित ‘पचकर्म’ की प्रक्रिया में प्रथम दो का महत्त्वपूर्ण स्थान है और आज भी इस प्रक्रिया से चिकित्सा की जाती है। धूमनेत्र मस्तिष्क-सम्बन्धी रोगों का निवारण करने के लिए प्रयुक्त होता था। इसका उल्लेख दशवैकालिक ३।६ और सूत्रकृतांग ३।४।६७ में भी हुआ है।

सातवें श्लोक में अनेक विद्याओं का उल्लेख हुआ है। आजीवक आदि श्रमण इन विद्याओं का प्रयोग कर अपनी आजीविका चलाते थे। इससे लोगों में आकर्षण और विकर्षण—दोनों होते थे। साधना भग होती थी। भगवान् ने इन विद्या-प्रयोगों से आजीविका चलाने का निषेध किया है।

निर्युक्तिकार ने भिक्षु के लक्षण इस प्रकार बतलाए हैं^५ —

भिक्षु वह है जो राग-द्वेष को जीत लेता है ।

भिक्षु वह है जो मन, वचन और काया—इन तीनों दण्डों में सावधान रहता है ।

भिक्षु वह है जो न सावध कार्य करता है, न दूसरों से करवाता है और न उसका अनुमोदन करता है ।

भिक्षु वह है जो ऋद्धि, रस और साता का गौरव नहीं करता ।

भिक्षु वह है जो मायावी नहीं होता, जो निदान नहीं करता और जो सम्यग्दर्शी होता है ।

भिक्षु वह है जो विकथाओं से दूर रहता है ।

भिक्षु वह है जो आहार, भय, मैथुन और परिग्रह—इन चार सज्जाओं को जीत लेता है ।

भिक्षु वह है जो कषायो पर विजय पा लेता है ।

भिक्षु वह है जो प्रमाद से दूर रहता है ।

भिक्षु वह है जो कर्म-बन्धन को तोड़ने के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है ।

जो ऐसा होता है वह समस्त ग्रन्थियों का छेदन कर अजर-अमर पद को पा लेता है ।

उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ३७८, ३७९ . रागदोसा दढा जोगा तह गारवा य सत्त्ला य ।

विगहाओ सण्णाओ खुह कसाया पमाया य ॥

एयाइ तु खुहाइ जे खलु भिदति सुव्वया रिसओ ।

ते भिन्नकम्मगठी उव्विति अयरामर ठाण ॥

पनरसमं अज्झयणं : पंचदश अध्ययन

सभिक्खुयं : सभिक्षुकम्

मूल

१—मोण चरिस्सामि^१ समिच्च धम्म
सहिए उज्जुकडे नियानछिन्ने ।
सथव जहिज्ज अकामकामे
अन्नायएसी परिव्वए जे स भिक्खू॥

संस्कृत छाया

मौन चरिष्यामि समेत्य धर्मं
सहित ऋजुकृतं छिन्न-निदानः ।
सस्तव जह्यादकाम-कामः
अज्ञातैषी परिव्रजेत् स भिक्षुः ॥

हिन्दी अनुवाद

१—'धर्म को स्वीकार कर मुनि-व्रत का आचरण करूँगा'—जो ऐसा सङ्कल्प करता है, जो दूसरे भिक्षुओं के साथ रहता है, जिसका अनुष्ठान ऋजु है, जो वासना के सकल्प का छेदन करता है, जो परिचय का त्याग करता है, जो काम-भोगों की अभिलाषा को छोड़ चुका है, जो तप आदि का परिचय दिए बिना भिक्षा की खोज करता है, जो अप्रतिवद्ध विहार करता है—वह भिक्षु है ।

२—राओवरय^२ चरेज्ज लाढे
विरए वेयवियाऽऽयरक्खिए ।
पन्ने अभिभूय सव्वदसी
जे कम्महिचि^३ न मुच्छिए स भिक्खू॥

रात्र्युपरतं चरेद् 'लाढे'
विरतो वेदविदात्म-रक्षितः ।
प्राज्ञोऽभिभूय सर्व-दर्शी
य कस्मिन्नपि न मूर्च्छित स भिक्षुः॥

२—जो रात्रि-भोजन या रात्रि-विहार नहीं करता, जो निर्दोष आहार से जीवन-यापन करता है, जो विरत, आगम को जानने वाला और आत्म-रक्षक है, जो प्राज्ञ है, जो परीपहो को जीतने वाला और सब जीवों को आत्म-मुल्य समझने वाला है, जो किसी भी वस्तु में मूर्च्छित नहीं होता—वह भिक्षु है ।

३—अक्कोसवह विइत्तु धीरे
मुणी चरे लाढे निच्चमायगुत्ते ।
अव्वग्गमणे असपहिट्टे
जे कसिण अहियासए स भिक्खू॥

आक्रोश-वध विदित्वा धीरः
मुनिश्चरेद् 'लाढे' नित्यमात्म-गुप्त ।
अव्यग्र-मना असप्रहृष्टः
य कृत्स्नमध्यास्ते स भिक्षुः ॥

३—जो धीर मुनि कठोर वचन और ताडना को अपने कर्मों का फल जान कर शान्त भाव से विचरण करता है, जो प्रशस्त है, जो सदा आत्मा का सवरण किये रहता है, जिसका मन आकुलता और हर्ष से रहित होता है, जो सब कुछ सहन करता है—वह भिक्षु है ।

४—पन्त सयणासण भइत्ता
सीउण्ह विविह च दसमसग ।
अव्वग्गमणे असपहिट्टे
जे कसिण अहियासए स भिक्खू॥

प्रान्त शयनासन भुक्त्वा
शीतोष्ण विविध च दश-मशकम् ।
अव्यग्र-मना असप्रहृष्टः
यः कृत्स्नमध्यास्ते स भिक्षुः ॥

४—निकृष्ट शयन और आसन का सेवन करके तथा सर्दों, गर्मियों, ठास और मच्छरों की घ्रास को सहन करके भी जिसका मन आकुलता और हर्ष से रहित होता है, जो सब कुछ सहन करता है—वह भिक्षु है ।

१. चरिस्सामो (घृ०) ।

२. रागोवरय (घृ०), रातोवरय (घृ० पा०) ।

३. कम्महि चि (अ, उ, ऋ०) ।

५—नो सक्कियमिच्छई न पूय
नो वि य वन्दणं कुओ पसंस ? ।
से सजए सुव्वए तवस्सी
सहिए आयगवेसए स भिक्खू ॥

नो सत्कृतमिच्छति न पूजां
नो अपि च वन्दनं कुतः प्रशंसाम् ? ।
स संयतः सुव्रतस्तपस्वी
सहित आत्म-गवेषकः स भिक्षुः ॥

५—जो सत्कार, पूजा और वन्दना की इच्छा नहीं करता वह प्रशंसा की इच्छा कैसे करेगा ? जो संयत, सुव्रत, तपस्वी, दूसरे भिक्षुओं के साथ रहने वाला और आत्म-गवेषक है—वह भिक्षु है ।

६—जेण पुण जहाइ जीविय
मोहं वा कसिण नियच्छई ।
नरनारिं पजहे सया तवस्सी
न य कोऊहल उवेइ स भिक्खू ॥

येन पुनर्जहाति जीवित
मोहं वा कृत्स्नं नियच्छति ।
नर-नारि प्रजह्यात् सदा तपस्वी
न च कुतूहलमुपैति स भिक्षुः ॥

६—जिसके संयोग मात्र से संयम-जीवन छूट जाये और समग्र मोह से बंध जाए वैसे स्त्री या पुरुष की सगति का जो त्याग करता है, जो सदा तपस्वी है, जो कुतूहल नहीं करता—वह भिक्षु है ।

७—छिन्न सर भोम अन्तलिकख
सुमिण लक्खणदण्डवत्थुविज्ज ।
अगवियार सरस्स विजय
जो विज्जाहिं न जीवइ स भिक्खू ॥

छिन्न स्वर भौममन्तरिक्ष
स्वप्न लक्षण-दण्ड-वास्तु-विद्या ।
अंग-विकारः स्वरस्य विचय
यो विद्याभिर्न जीवति स भिक्षुः ॥

७—जो छिन्न (छिद्र-विद्या), स्वर (सप्त-स्वर विद्या), भौम, अन्तरिक्ष, स्वप्न, लक्षण, दण्ड, वास्तु-विद्या, अंग-विकार और स्वर-विज्ञान (पशु-पक्षी स्वर-विद्या)—इन विद्याओं के द्वारा जो आजीविका नहीं करता—वह भिक्षु है ।

८—मन्त मूल विविह वेज्जचिन्ता
वमणविरेयणधूमणेत्तसिणाण ।
आउरे सरण तिगिच्छिय च
त परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥

मन्त्र मूल विविधा बंध-चिन्ता
वमन-विरेचन-धूमनेत्र-स्नानम् ।
आतुरे शरण चिकित्सितं च
तत् परिज्ञाय परिव्रजेत् स भिक्षुः ॥

८—मन्त्र, मूल, विविध प्रकार की आयुर्वेद सम्बन्धी चिन्ता, वमन, विरेचन, धूम-पान की नली, स्नान, आतुर होने पर स्वजन की शरण, चिकित्सा—इनका परित्याग कर जो परिव्रजन करता है—वह भिक्षु है ।

९—खत्तियगणउग्गरायपुत्ता
माहणभोइय विविहा 'य सिप्पिणो' ।
नो तेसिं वयइ^१ सिलोगपूय
त परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥

क्षत्रियगणोग्रराजपुत्राः
ब्राह्मण-भोगिका विविधाश्च शिल्पिनः ।
नो तेषां वदति श्लोक-पूजे
तत्परिज्ञाय परिव्रजेत् स भिक्षुः ॥

९—क्षत्रिय, गण, उग्र, राजपुत्र, ब्राह्मण, भोगिक (सामन्त) और विविध प्रकार के शिल्पी जो होते हैं, उनको श्लाघा और पूजा नहीं करता किन्तु उसे दोष-पूर्ण जान उसका परित्याग कर जो परिव्रजन करता है—वह भिक्षु है ।

१ सिप्पिणोऽणे (वृ० पा०) ।

० करेइ (चू०) ।

१०—गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा
अप्पव्वइएण व सथुया हविज्जा ।
तेसिं इहल्लोडयफलट्ठा^१
जो सथव न करेड स भिक्षू ॥

गृहिणो ये प्रव्रजितेन दृष्टा
अप्रव्रजितेन च सस्तुता भवेयुः ।
तेषामिहलौकिकफलार्थं
यः सस्तव न करोति स भिक्षुः ॥

१०—दीक्षा लेने के पश्चात् जिन्हें देखा
हो या उससे पहले जो परिचित हो उनके साथ
इहलौकिक फल (वस्त्र-पात्र आदि) की प्राप्ति
के लिए जो परिचय नहीं करता—वह भिक्षु है ।

११—सयणासणपाणभोयण
विविह खाडमसाडम परेसिं ।
अदए पडिसेहिए नियण्ठे
जे तत्थ न पउस्सई स भिक्षू ॥

शयनासन-पान-भोजन
विविध खाद्य-स्वाद्य परेभ्यः ।
अददद्भ्यः प्रतिषिद्धो निर्ग्रन्थः
यस्तत्र न प्रदुष्यति स भिक्षुः ॥

११—शयन, आसन, पान, भोजन और
विविध प्रकार के खाद्य-स्वाद्य गृहस्थ न दे तथा
कारण विशेष से माँगने पर भी इन्कार हो
जाए, उस स्थिति में जो प्रद्वेष न करे—वह
भिक्षु है ।

१२—ज किंचि आहारपाण^२ विविह
खाडमसाडम परेसिं लद्धु ।
जो त तिविहेण नाणुकम्पे
मणवयकायसुसवुडे स भिक्षू ॥

यत्किंचिदाहार-पानं
विविध खाद्य-स्वाद्य परेभ्योः लब्ध्वा ।
यस्तेन त्रिविधेन नानुकम्पते
सवृत्त-मनोवाक्कायः स भिक्षुः ॥

१२—गृहस्थों के घर से जो कुछ आहार,
पानक और विविध प्रकार के खाद्य-स्वाद्य
प्राप्त कर जो गृहस्थ की मन, वचन और काया
से अनुकम्पा नहीं करता—उन्हें आशीर्वाद
नहीं देता, जो मन, वचन और काया से
सुसंयुक्त होता है—वह भिक्षु है ।

१३—आयामग चैव जवोदण च
'सीय च सोवीरजवोदग च'^३ ।
नो हीलए पिण्ड नीरस तु
पन्तकुलाइ परिव्वए स भिक्षू ॥

आयामक चैव यवोदन च
शीत सौवीर यवोदक च ।
न हीलयेत् पिण्ड नीरस तु
प्रान्त-कुलानि परिव्रजेत् स भिक्षुः ॥

१३—ओसामन, जौ का दलिया, ठण्डा-
वासी आहार, काँजी का पानी, जौ का पानी
जैसी नीरस भिक्षा की जो निन्दा नहीं करता,
जो सामान्य घरों में भिक्षा के लिए जाता है—
वह भिक्षु है ।

१४—सद्दा विविहा भवन्ति लोए
दिव्वा 'माणुस्सगा तहा तिरिच्छा'^४ ।
भीमा भयभेरवा उराला
जो सोच्चा न वहिज्जई^५ स भिक्षू ॥

शब्दा विविधा भवन्ति लोके
दिव्या मानुष्यकास्तैरश्चाः ।
भीमा भय-भैरवा उदाराः
यः श्रुत्वा न विभेति स भिक्षुः ॥

१४—लोक में देवता, मनुष्य और
तिर्यश्चों के अनेक प्रकार के रौद्र, अमित भयकर
और अद्भुत शब्द होते हैं, उन्हें सुनकर जो
नहीं डरता—वह भिक्षु है ।

१. इहल्लोडयफलट्ठा (अ, आ, इ, चू०) ।

२. वाहार ० (अ) ।

३. सीय सुवीर च जवोदग च (स, छ) ।

४. माणुस्सगा तिरिच्छा य (चू०) ।

५. वहिज्ज (उ) ।

१५—वाद विविह समिच्च लोए
सहिण खेयाणुगएय कोवियप्पा ।
पन्ने अभिभूय सव्वदसी
उवसन्ते अविहेडए^१ स भिक्खू ॥

वादं विविधं समेत्य लोके
सहितः खेदानुगतश्च कोविदात्मा ।
प्राज्ञोऽभिमूय सर्वदर्शी
उपशान्तोऽविहेठकः स भिक्षुः ॥

१५—लोक में विविध प्रकार के वादों को जान कर भी जो भिक्षुओं के साथ रहता है, जो सयमी है, जिसे आगम का परम अर्थ प्राप्त हुआ है, जो प्राज्ञ है, जो परोषहों को जीतने वाला और सब जीवों को आत्म-तुल्य समझने वाला है, जो उपशान्त और किसी को भी अपमानित न करने वाला होता है—वह भिक्षु है ।

१६—असिप्पजीवी^२ अगिहे अमित्तै
जिइन्दिए सव्वओ विप्पमुक्के ।
अणुक्कसाई लहुअप्पभक्खी
चेच्चा गिह एगचरे स भिक्खू ॥
—त्ति वेमि ।

अशिल्पजीव्यगृहोऽमित्र
जितेन्द्रियः सर्वतो विप्रमुक्तः ।
अणु-कषायी लघ्वल्पभक्षी
त्यक्त्वा गृहमेकचरः स भिक्षुः ॥
—इति ब्रवीमि ।

१६—जो शिल्प-जीवी नहीं होता, जिसके घर नहीं होता, जिसके मित्र नहीं होते, जो जितेन्द्रिय और सब प्रकार के परिग्रह से मुक्त होता है, जिसका कषाय मन्द होता है, जो थोड़ा और निस्सार भोजन करता है, जो घर को छोड़ अकेला (राग-द्वेष से रहित हो) विचरता है—वह भिक्षु है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. उविहेडए (उ) ।

२. असिप्पजीवे (अ) ।

सोलसमं अङ्गयणं :
वम्भचेरसमाहिठाणं

षोडश अध्ययन :
ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान

आस्तुतव

ब्रह्मचर्य-समाधि का निरूपण होने के कारण इस अध्ययन का नाम 'वम्भचेरसमाहिठाण'—'ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान' है। इसमें ब्रह्मचर्य-समाधि के दस स्थानों का वर्णन है। स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग में भी ब्रह्मचर्य की नौ गुणियों का वर्णन प्राप्त होता है। तुलनात्मक तालिका यों है—

स्थानाङ्ग तथा समवायाङ्ग में वर्णित नौ गुणियाँ^१ :

उत्तराध्ययन के दस स्थान

- १—निर्ग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से ससक्त शयन और आसन का सेवन न करे।
- २—केवल स्त्रियों के बीच कथा न कहे अर्थात् स्त्री-कथा न करे।
- ३—स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे।^२
- ४—स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को न देखे और न अवधान पूर्वक उनका चिन्तन करे।
- ५—प्रणीत रसभोजी न हो।
- ६—मात्रा से अधिक न खाए और न पीए।
- ७—पूर्व-क्रीड़ाओं का स्मरण न करे।
- ८—शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा श्लोक-कीर्ति में आसक्त न हो।
- ९—साता और सुख में प्रतिबद्ध न हो।

- १—निर्ग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का प्रयोग न करे।
- २—स्त्रियों के बीच कथा न कहे।
- ३—स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे।
- ४—स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ाकर न देखे।
- ५—स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, विलाप आदि के शब्द न सुने।
- ६—पूर्व-क्रीड़ाओं का अनुस्मरण न करे।
- ७—प्रणीत आहार न करे।
- ८—मात्रा से अधिक न खाए और न पीए।
- ९—विभूषा न करे।
- १०—शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्श में आसक्त न हो।

उत्तराध्ययन में जो दसवाँ स्थान है, वह स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग में आठवाँ स्थान है। अन्य स्थानों का वर्णन प्रायः समान है। केवल पाँचवाँ स्थान स्थानाङ्ग तथा समवायाङ्ग में नहीं है।

१—(क) स्थानाङ्ग ६।६।६३

नव बभचेरगुत्तीतो प० त०—विवित्ताइ सयणासणाइ सेवित्ता भवति णो इत्थिससत्ताइ नो पछससत्ताइ नो पडगससत्ताइ १, नो इत्थिण कह कहेत्ता २, नो इत्थिठाणाइ सेवित्ता भवति ३, णो इत्थीणमिदिताइ मणोहराइ मणोरमाइ आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवइ ४, णो पणीतरसभोती ५, णो पाणभोयणस्स अतिमत्त आहारते सता भवति ६, णो पुव्वरत पुव्वकीलियं समरेत्ता भवति ७, णो सहाणुवाती णो रुवाणुवाती णो सिलोगाणुवाती ८, णो सातसोक्खपडिबद्धे यावि भवति ९।

(ख) समवायाङ्ग समवाय ६

नव बभचेरगुत्तीतो प० त०—नो इत्थीपछपडगससत्ताणि सिज्जासणाणि सेवित्ता भवइ १, नो इत्थीण कह कहेत्ता भवइ २, नो इत्थीण गणाइ सेवित्ता भवइ ३, नो इत्थीण इदियाणि मणोहराइ मणोरमाइ आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवइ ४, नो पणीयरसभोई ५, नो पाणभोयणस्स अइमायाए आहारइत्ता ६, नो इत्थीणं पुव्वरंयाइ पुव्वकीलिआइ समरइत्तो भवइ ७, नो सहाणुवाई नो रुवाणुवाई नो गन्धाणुवाई नो रसाणुवाई नो फासाणुवाई नो सिलोगाणुवाई ८, नो सायासोक्खपडिबद्धे याविभवेइ ९।

२—समवायाङ्ग में इसके स्थान पर—निर्ग्रन्थ स्त्री-समुदाय की संपासना न करे—ऐसा पाठ है। देखें पृ० टि० १ (ख)।

प्रस्तुत अध्ययन मे चक्षु-गृद्धि की भाँति पाँचवें स्थान में शब्द-गृद्धि का भी वर्जन किया गया है और दसवें स्थान मे पाँचों इन्द्रियों की आसक्ति का समवेत रूप मे वर्जन किया गया है ।

यहाँ दस समाधि-स्थानों का वर्णन बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है । शयन, आसन, काम-कथा, स्त्री-पुरुष का एक आसन पर बैठना, चक्षु-गृद्धि, शब्द-गृद्धि, पूर्व-क्रीडा का स्मरण, सरस आहार, अतिमात्र आहार, विमूषा, इन्द्रिय-विषयों की आसक्ति—ये सब ब्रह्मचर्य की साधना मे विघ्न हैं । इसलिए इनके निवारण को 'ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान' या 'ब्रह्मचर्य-गुप्ति' कहा गया है ।

ब्रह्मचर्य का अर्थ वस्ति-निग्रह है । वह पाँचों इन्द्रियों तथा मन के सयम के बिना प्राप्त नहीं होता ।^१ इसलिए उसका अर्थ 'सर्वेन्द्रिय-सयम' है । ये समाधि-स्थान इन्द्रिय-सयम के ही स्थान हैं :

स्पर्शन-इन्द्रिय-सयम के लिए सह-शयनासन और एक आसन पर बैठना वर्जित है ।

रसन-इन्द्रिय-सयम के लिए सरस और अति-मात्रा मे आहार करना वर्जित है ।

घ्राण इन्द्रिय-सयम के लिए कोई पृथक् विभाग निर्दिष्ट नहीं है ।

चक्षु इन्द्रिय-सयम के लिए स्त्री देह व उसके हाव-भावों का निरीक्षण वर्जित है ।

श्रोत्र-इन्द्रिय-सयम के लिए हास्य-विलास पूर्ण शब्दों का सुनना वर्जित है ।

मानसिक-सयम के लिए काम-कथा, पूर्व-क्रीडा का स्मरण और विमूषा वर्जित है ।

दसवाँ स्थान इन्द्रिय-सयम का सकलित रूप है ।

मूलाचार में शील-विराधना (अब्रह्मचर्य) के दस कारण बतलाए गए हैं^१—

१—स्त्री-ससर्ग—स्त्रियों के साथ ससर्ग करना ।

२—प्रणीत-रस-भोजन—अत्यन्त गृद्धि से पाँचों इन्द्रियों के विकारों को बढ़ाने वाला आहार करना ।

३—गधमात्य-सस्पर्श—सुगन्धित द्रव्यों तथा पुष्पों के द्वारा शरीर का सस्कार करना ।

४—शयनासन—शयन और आसन मे गृद्धि रखना ।

५—भूषण—शरीर का मण्डन करना ।

६—गीत-वाद्य—नाट्य, गीत आदि की अभिलाषा करना ।

७—अर्थ-सप्रयोजन—स्वर्ण आदि का व्यवहरण ।

८—कुशील-ससर्ग—कुशील व्यक्तियों का ससर्ग ।

९—राज-सेवा—विषयों की पूर्ति के लिए राजा का गुण कीर्तन करना ।

१०—रात्रि-सचरण—बिना प्रयोजन रात्रि में इधर-उधर जाना ।

दिगम्बर-विद्वान् पण्डित आशाधरजी ने ब्रह्मचर्य के दस नियमों को निम्न रूप मे रखा है^२—

१—मूलाचार ११।१३, १४ : इत्थीससर्गं पणीदरसभोजनं गधमल्लसठण्णं ।

सयणासणभूषणयं, छट्ठं पुणं गीयवाइयं चेव ॥

अत्थस्स सपभोगो, कुशीलससर्गि रायसेवा य ।

रत्ति वि यं सयरणं, दस सीलं विराहणा भणिया ॥

२—अनगारधर्मावृत ४।६१ : मा रूपादिरसं पिपासं सुदृशां मा वस्तिमोक्षं कृथा,

वृष्यं स्त्रीशयनादिकं च भजं मा मा दा वराङ्गे वृषम् ।

मा स्त्रीं सत्कुलं मा च सत्कुलं रतं वृत्तं स्मरस्मार्यं मा,

वत्स्यन्मेच्छं जुपस्व मेष्टविषयान् द्वि पञ्चधा ब्रह्मणे ॥६१॥

१—मा रूपादिरस पिपासा सुदृशाम्—ब्रह्मचारी रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द के रसों को पान करने की इच्छा न करे ।

२—मा वस्तिमोक्ष कृथा—वह ऐसा कार्य न करे, जिससे लिङ्ग-विकार हो ।

३—वृष्य मा भज—वह कामोद्दीपक आहार न करे ।

४—स्त्रीशयनादिक च मा भज—स्त्री तथा शयन-आसन आदि का प्रयोग न करे ।

५—वराहो दृश मा दा—स्त्रियों के अंगों को न देखे ।

६—स्त्री मा सत्कुरु—स्त्रियों का सत्कार न करे ।

७—मा च सत्कुरु—शरीर-सत्कार न करे ।

८—रत वृत्त मा स्मर—पूर्व सेवित का स्मरण न करे ।

९—वत्स्यन् मा इच्छ—भविष्य में क्रीड़ा करने का न सोचे ।

१०—इष्ट विषयान् मा जुजस्व—इष्ट रूपादि विषयों से मन को युक्त न करे ।

इनमें क्रमांक १, ३, ४, ५, ७ और ८ तो वे ही हैं जो श्वेताम्बर-आगमों में हैं, शेष भिन्न हैं ।

वेद अथवा उपनिषदों में ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए ऐसे शृङ्खलाबद्ध नियमों का उल्लेख नहीं मिलता । स्मृति में कहा है—स्मरण, क्रोड़ा, देखना, गुह्यभाषण, सकल्प, अध्यवसाय और क्रिया—इस प्रकार मैथुन आठ प्रकार के हैं । इन सबमें विलग्न हो ब्रह्मचर्य की रक्षा करनी चाहिए ।^१

बौद्ध-साहित्य में भी ब्रह्मचर्य-गुणियों जैसा कोई व्यवस्थित क्रम नहीं मिलता, किन्तु विकीर्ण रूप में कुछ नियम मिलते हैं । वहाँ रूप के प्रति आसक्ति-भाव को दूर करने के लिए अशुचि भावना के चिन्तन का मन्त्र मान्य रहा है । यह ‘कायगता-स्मृति’ के नाम से विख्यात है ।^२

बुद्ध मृत्यु-शय्या पर थे तब शिष्यों ने पूछा—“भते । स्त्रियों के साथ हम कैसा व्यवहार करेंगे ?”

“अदर्शन, आनन्द ।”

“दर्शन होने पर भगवन् । कैसा वर्ताव करेंगे ?”

“आलाप न करना, आनन्द ।”

“बातें करने वाले को कैसा करना चाहिए ?”

“स्मृति को सभाल रखना चाहिए ।”^३

उक्त अनेक परम्पराओं के सदर्थ में दस समाधि-स्थानों का अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है ।

१—दक्षस्मृति ७।३१-३३ ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टधा मैथुन पृथक् ।

स्मरण कीर्तन केलि प्रेक्षण गुह्यभाषणम् ॥

सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ।

एतन्मैथुनमप्याङ्गं प्रवदन्ति मनीषिण ॥

न ध्यातव्यं न वक्तव्यं न कर्त्तव्यं कदाचन ।

एते सर्वे ह्यसम्पन्नो यतिर्भवति नेतर ॥

२—सुत्तनिपात १।११, विशुद्धि मग्ग (प्रथम भाग) परिच्छेद ८, पृष्ठ २१८-२६० ।

३—दीघनिकाय (महापरिनिव्याण सुत्त) २।३ ।

सौलसमं अज्झयणं : षोडशम् अध्ययनम् वम्भचेरसमाहिठाणं : ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थानम्

मूल

सू० १—सुय मे, आउस । तेण
भगवया एवमक्खाय—

इह खलु थेरेहिं भगवन्तेहिं दस
वम्भचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे
भिक्षू सोच्चा, निसम्म, सजमवहुले,
सवरवहुले, समाहिवहुले, गुत्ते,
गुत्तिन्दिए, गुत्तवम्भयारी सया
अप्पमत्ते विहरेज्जा ।

संस्कृत छाया

श्रुत मया आयुष्मन् । तेन
भगवतैवमाख्यातम्—इह खलु स्थविरै
भगवद्भिर्दश ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थानानि
प्रज्ञप्तानि, यानि भिक्षुः श्रुत्वा, निशम्य,
सयम-बहुलः, सवर-बहुलः, समाधि-
बहुलः, गुप्त, गुप्तेन्द्रियः, गुप्त-ब्रह्मचारी,
सदाऽप्रमत्तो विहरेत् ।

हिन्दी अनुवाद

१—आयुष्मन् । मैंने सुना है, भगवान्
(प्रज्ञापक आचार्य) ने ऐसा कहा है—
निर्ग्रन्थ प्रवचन में जो म्यविर (गणवर)
भगवान् हुए हैं उन्होंने ब्रह्मचर्य-समाधि के दस
स्थान बतलाए हैं, जिन्हें सुन कर, जिनके अर्थ
का निश्चय कर, भिक्षु सयम, सवर और
समाधि का पुन-पुन अभ्यास करे । मन,
वाणी और शरीर का गोपन करे, इन्द्रियों को
उनके विषयो से बचाए, ब्रह्मचर्य को नौ
सुरक्षाओं से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त
होकर विहार करे ।

सू० २—कयरे खलु ते थेरेहिं
भगवन्तेहिं दस वम्भचेरसमाहिठाणा
पन्नत्ता जे भिक्षू सोच्चा, निसम्म,
सजमवहुले, सवरवहुले समाहिवहुले,
गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तवम्भयारी सया
अप्पमत्ते विहरेज्जा ?

कतराणि खलु तानि स्थविर-
भगवद्भिर्दश ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थानानि
प्रज्ञप्तानि, यानि भिक्षुः श्रुत्वा, निशम्य,
सयम-बहुलः, सवर-बहुलः, समाधि-
बहुलः, गुप्त, गुप्तेन्द्रियः, गुप्त-
ब्रह्मचारी, सदाऽप्रमत्तो विहरेत् ?

२—स्थविर भगवान् ने वे कौन से
ब्रह्मचर्य-समाधि के दस स्थान बतलाए हैं,
जिन्हें सुन कर, जिनके अर्थ का निश्चय कर,
भिक्षु सयम, सवर और समाधि का पुन-पुन
अभ्यास करे । मन, वाणी और शरीर का
गोपन करे, इन्द्रियों को उनके विषयो से बचाए,
ब्रह्मचर्य को नौ सुरक्षाओं से सुरक्षित रखे और
सदा अप्रमत्त होकर विहार करे ?

सू० ३—इमे खलु ते थेरेहि भगवन्तेहि दस बम्भचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा, निसम्म, सजमबहुले, सवरबहुले, समाहिबहुले, गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तबम्भयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा, त जहा—
'विवित्ताइ सयणासणाइ सेविज्जा'^१, से निग्गन्थे।'^२ नो इत्थीपसुपण्डगससत्ताइ सयणासणाइ सेवित्ता हवइ, से निग्गन्थे।

त कहमिति चे ?

आयरियाह—निग्गन्थस्स खलु इत्थीपसुपण्डगससत्ताइ सयणासणाइ सेवमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे सका वा, कखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेय वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ 'वा धम्माओ'^३ भसेज्जा। तम्हा नो इत्थीपसुपण्डगससत्ताइ सयणासणाइ सेवित्ता हवइ, से निग्गन्थे।

इमानि खलु स्थविरैर्भगवद्भिर्दश ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थानानि प्रज्ञप्तानि, यानि भिक्षुः श्रुत्वा, निशम्य, संयम-बहुल, संवर-बहुलः, समाधि-बहुलः, गुप्तः, गुप्तेन्द्रिय, गुप्त-ब्रह्मचारी, सदाऽप्रमत्तो विहरेत्। तद्यथा—
विविक्तानि शयनासनानि सेवेत स निर्ग्रन्थः नो स्त्री-पशु-पण्डक-संसक्तानि शयनासनानि सेविता भवति स निर्ग्रन्थः।

तत् कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निर्ग्रन्थस्य खलु स्त्री-पशु-पण्डक-संसक्तानि शयनासनानि सेवमानस्य ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगा-तङ्को भवेत्, केवलि-प्रज्ञप्ताद् धर्माद् भ्रश्येत्, तस्मान्तो स्त्री-पशु-पण्डक-संसक्तानि शयनासनानि सेविता भवति स निर्ग्रन्थः।

३—स्थविर भगवान ने ब्रह्मचर्य-समाधि के दस स्थान ये बतलाए हैं, जिन्हें सुन कर, जिनके अर्थ का निश्चय कर, भिक्षु सयम, संवर, और समाधि का पुन-पुन अभ्यास करे। मन, वाणी और शरीर का गोपन करे। इन्द्रियो को उनके विषयो से बचाए, ब्रह्मचर्य को नौ सुरक्षाओं से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त होकर विहार करे। वे इस प्रकार हैं—

जो एकान्त शयन और आसन का सेवन करता है, वह निर्ग्रन्थ है। निर्ग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का सेवन नहीं करता।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का सेवन करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शका, काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए जो स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का सेवन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

१ सेविज्जा हवइ (उ)।

२ x (चू०)।

३ धम्माओ (उ, इ)।

सू० ४—नो इत्थीण कह कहित्ता हवइ, से निगन्थे ।

त कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु इत्थीण कह कहेमाणस्स, वम्भयारिस्स वम्भचेरे सका वा, कखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेय वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भसेज्जा । 'तम्हा नो इत्थीण'^१ कह कहेज्जा ।

सू० ५—नो इत्थीहि^२ सद्धि सन्निसेज्जागए विहरित्ता हवइ, से निगन्थे ।

त कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु इत्थीहि सद्धि सन्निसेज्जागयस्स, वम्भयारिस्स वम्भचेरे सका वा, कखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेय वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भसेज्जा । तम्हा खलु नो निगन्थे इत्थीहि सद्धि सन्निसेज्जागए विहरेज्जा^३ ।

नो स्त्रीणा कथा कथयिता भवति, स निर्ग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निर्ग्रन्थस्य खलु स्त्रीणा कथा कथयतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेद वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवलि-प्रज्ञप्ताद् वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मान्नो स्त्रीणा कथा कथयेत् ।

नो स्त्रीभिः सार्धं सन्निषद्यागतो विहर्ता भवति स निर्ग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निर्ग्रन्थस्य खलु स्त्रीभिः सार्धं सन्निषद्यागतस्य ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेद वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवलि-प्रज्ञप्ताद् वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थः स्त्रीभिः सार्धं सन्निषद्यागतो विहरेत् ।

४—जो केवल स्त्रियों के बीच में कथा नहीं करता वह निर्ग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—केवल स्त्रियों के बीच कथा करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शका, काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म में भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए केवल स्त्रियों के बीच में कथा न करे ।

५—जो स्त्रियों के साथ पीठ आदि एक आसन पर नहीं बैठता, वह निर्ग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शका, काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे ।

१ तम्हा खलु निगन्थे नो इत्थीण (उ) ।

२ इत्थीण (अ, ऋ०) ।

३ विहरइ (अ) ।

उत्तरज्झयणं (उत्तराध्ययन)

सू० ६—नो इत्थीण इन्दियाइ मणोहराइ, मणोरमाइ आलोइत्ता, निज्झाइत्ता हवइ, से निगन्थे ।

त कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु इत्थीण इन्दियाइ मणोहराइ, मणोरमाइ आलोएमाणस्स, निज्झायमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे सका वा, कखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेय वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भसेज्जा । तम्हा खलु 'निगन्थे नो'^१ इत्थीण इन्दियाइ मणोहराइ, मणोरमाइ आलोएज्जा, निज्झाएज्जा ।

नो स्त्रीणामिन्द्रियाणि मनोहराणि मनोरमाण्यालोकयिता निर्ध्याता भवति स निर्ग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निर्ग्रन्थस्य खलु स्त्रीणामिन्द्रियाणि मनोहराणि मनोरमाण्यवलोकमानस्य निर्ध्यायितो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेद वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवलप्रज्ञप्ताइ वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थः स्त्रीणामिन्द्रियाणि मनोहराणि मनोरमाण्यालोकयेन्निर्ध्यायेत् ।

६—जो स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ा कर नहीं देखता, उनके विषय में चिन्तन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ा कर देखने वाले और उनके विषय में चिन्तन करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शका, काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए स्त्रियों के मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ा कर न देखे और उनके विषय में चिन्तन न करे ।

सू० ७—नो इत्थीण कुडुन्तरसि वा, दूसन्तरसि वा, भित्तन्तरसि वा, कुइयसद् वा, रुइयसद् वा, गीयसद् वा, हसियसद् वा, थणियसद् वा, कन्दियसद् वा, विलवियसद् वा, सुणेत्ता हवइ, से निगन्थे ।

त कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु इत्थीण 'कुडुन्तरसि वा, दूसन्तरसि वा, भित्तन्तरसि' वा^१, कुइयसद् वा, रुइयसद् वा, गीयसद् वा, हसियसद् वा, थणियसद् वा, कन्दियसद् वा, विलवियसद् वा, सुणेमाणस्स वम्भयारिस्स वम्भचेरे सका वा, कखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेय वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भसेज्जा । तम्हा खलु निगन्थे नो इत्थीण कुडुन्तरसि वा, दूसन्तरसि वा, भित्तन्तरसि वा, कुइयसद् वा, रुइयसद् वा, गीयसद् वा, हसियसद् वा, थणियसद् वा, कन्दियसद् वा, विलवियसद् वा सुणेमाणे विहरेज्जा ।

नो स्त्रीणा कुड्यान्तरे वा, दूष्यान्तरे वा, भित्त्यन्तरे वा, कूजित-शब्दं वा, रुदित-शब्द वा, गीत-शब्द वा, हसित-शब्द वा, स्तनित-शब्द वा, क्रन्दित-शब्द वा, विलपित-शब्द वा श्रोता भवति सनिर्ग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निर्ग्रन्थस्य खलु स्त्रीणा कुड्यान्तरे वा, दूष्यान्तरे वा, भित्त्यन्तरे वा कूजित-शब्द वा, रुदित-शब्द वा, गीत-शब्द वा, हसित-शब्द वा, स्तनित-शब्द वा, क्रन्दित-शब्द वा, विलपित-शब्द वा शृण्वतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेद वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केचलि-प्रज्ञप्ताद् वा धर्माद् भ्रश्यते । तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थः स्त्रीणा कुड्यान्तरे वा, दूष्यान्तरे वा, भित्त्यन्तरे वा कूजित-शब्दं वा, रुदित-शब्दं वा, गीत-शब्दं वा, हसित-शब्दं वा, स्तनित-शब्दं वा, क्रन्दित-शब्द वा, विलपित-शब्द वा शृण्वन् विहरेत् ।

७—जो मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को नहीं सुनता, वह निर्ग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पृच्छने पर आचार्य कहते हैं—मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को सुनने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शका, काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को न सुने ।

१. भित्ति अन्तरसि वा (अ, ऋ०) ; भित्तिन्तरसि (उ) ।

२. कुडुन्तरसि वा भित्तन्तरसि वा दूसन्तरसि वा (चू०, स) , कडुन्तरसि वा (झ) ।

सू० ८—नो निगन्थे पुव्वरय, पुव्वकीलिय अणुसरित्ता हवइ, से निगन्थे ।

त कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु पुव्वरय^१, पुव्वकीलिय अणुसरमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे सका वा, कखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेय वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायक हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भसेज्जा । तम्हा खलु नो निगन्थे पुव्वरयं, पुव्वकीलिय अणुसरेज्जा ।

सू० ९—नो पणीयं आहार आहारित्ता हवइ, से निगन्थे ।

त कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु पणीय पाणभोयणं आहारेमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे सका वा, कखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु नो निगन्थे पणीयं आहारं आहारेज्जा ।

नो निर्ग्रन्थ पूर्व-रत पूर्व-क्रीडित मनुस्मर्ता भवेत्, स निर्ग्रन्थ ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निर्ग्रन्थस्य खलु स्त्रीणां पूर्व-रतं पूर्व-क्रीडितमनुस्मरतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवलप्रज्ञप्ताद् वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थः स्त्रीणां पूर्व-रतं पूर्व-क्रीडित-मनुस्मरेत् ।

नो प्रणीतमाहारमाहर्ता भवति, स निर्ग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निर्ग्रन्थस्य खलु प्रणीतमाहारमाहरतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवलप्रज्ञप्ताद् वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थः प्रणीतमाहारमाहरेत् ।

८—जो गृहवास में की हुई रति और क्रीडा का अनुस्मरण नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—गृहवास में की हुई रति और क्रीडा का अनुस्मरण करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शका, काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए गृहवास में की हुई रति और क्रीडा का अनुस्मरण न करे ।

९—जो प्रणीत आहार नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—प्रणीत पान-भोजन करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शका, काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए प्रणीत आहार न करे ।

सू० १०—नो अइमायाए पाणभोयण आहारेत्ता हवइ, से निगन्थे ।

नो अतिमात्रया पान-भोजनमाहर्ता भवति, सनिर्ग्रन्थः ।

१०—जो मात्रा से अधिक नहीं पीता और नहीं खाता, वह निर्ग्रन्थ है ।

त कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु अइमायाए पाणभोयण आहारेमाणस्स वम्भयारिस्स वम्भचेरे सका वा, कखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेय वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भसेज्जा । तम्हा खलु नो निगन्थे अइमायाए पाणभोयण भुजिज्जा ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निर्ग्रन्थस्य खल्वति-मात्रया पान-भोजनमाहरतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेद वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात् दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवलि-प्रज्ञप्ताद् वा धर्माद् भ्रश्येत । तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थोऽतिमात्रया पान-भोजन भुजोत ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—मात्रा से अधिक पीने और खाने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शका, काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए मात्रा से अधिक न पीए और न खाए ।

सू० ११—नो विभूसाणुवाई हवइ, से निगन्थे ।

नो विभूषानुपाती भवति, स निर्ग्रन्थः ।

११—जो विभूषा नहीं करता—शरीर को नहीं सजाता, वह निर्ग्रन्थ है ।

त कहमिति चे ?

आयरियाह—विभूसावत्तिए^१, विभूसियसरीरे इत्थिजणस्स अभिलसणिज्जे हवइ । तओ ण तस्स इत्थिजणेण अभिलसिज्जमाणस्स वम्भचेरे सका वा, कखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेय वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भसेज्जा । तम्हा खलु नो निगन्थे विभूसाणुवाई सिया ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—विभूषावत्तिको विभूषितशरीरः स्त्रीजनस्याभिलषणीयो भवति । ततस्तस्य स्त्रीजनेनाभिलष्यमाणस्य ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत भेद वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात् दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवलि-प्रज्ञप्ताद् वा धर्माद् भ्रश्येत । तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थो विभूषानुपाती स्यात् ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—जिसका स्वभाव विभूषा करने का होता है, जो शरीर को विभूषित किए रहता है, उसे स्त्रियाँ चाहने लगती हैं । पश्चात् स्त्रियों के द्वारा चाहे जाने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के विषय में शङ्का, काङ्क्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए विभूषा न करे ।

सू० १२—नो सद्वरसगन्ध-
फासाणुवाई हवइ, से निगन्थे ।

त कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु
सद्वरसगन्धफासाणुवाइस्स बम्भ-
यारिस्स बम्भचेरे सका वा, कखा
वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा,
भेय वा लभेज्जा, उम्माय वा
पाउणिज्जा, दीहकालिय वा
रोगायक हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ
वा धम्माओ भसेज्जा । तम्हा खलु
नो निगन्थे सद्वरसगन्धफासाणु-
वाई हविज्जा । दसमे बम्भचेर-
समाहिठाणे हवइ ।

भवन्ति इत्थ मिलोगा, तं जहा—

नो शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्शानु-
पाती भवति, सनिर्ग्रन्थ ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निर्ग्रन्थस्य खलु
शब्द - रूप - रस-गन्ध-स्पर्शानुपातिनो
ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शङ्का वा काङ्क्षा
वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं
वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात्,
दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्,
केवलि-प्रज्ञप्ताह वा धर्माह भ्रश्येत् ।
तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थः शब्द-रूप-
रस-गन्ध-स्पर्शानुपाती भवेत् । दशम
ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान भवति ।

भवन्ति अत्र श्लोका, तद् यथा—

१२—जो शब्द, रूप, रस, गन्ध और
स्पर्श में आसक्त नहीं होता, वह निर्ग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—शब्द,
रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में आसक्त होने वाले
ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के विषय में शका,
काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा
ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद
पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और
आतक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म
से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए शब्द, रूप, रस,
गन्ध और स्पर्श में आसक्त न बने । ब्रह्मचर्य
की समाधि का यह दसवाँ स्थान है ।

यहाँ श्लोक हैं जैसे—

१—ज विवित्तमणाइण्ण
रहिय थीजणेण य ।
बम्भचेरस्स रक्खट्ठा
आलय तु निसेवए ॥

यो विवित्तोनाकीर्णः
रहित स्त्रीजनेन च ।
ब्रह्मचर्यस्य रक्षार्थम्
आलय तु निषेवते ॥

१—ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए मुनि वैसे
आलय में रहे जो एकान्त, अनाकीर्ण और
स्त्रियो से रहित हो ।

२—मणपल्हायजणणि
कामरागविवड्ढणि ।
बम्भचेररओ भिक्खू
थीकह तु विवज्जए ॥

मनः-प्रह्लाद-जननीं
काम-राग-विवर्धनीम् ।
ब्रह्मचर्य-रतो भिक्षुः
स्त्री-कथां तु विवर्जयेत् ॥

२—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु
मन को आह्लाद देने वाली तथा काम-राग
बढ़ाने वाली स्त्री-कथा का वर्जन करे ।

३—सम च सथव थीहिं
सकह च अभिक्खण ।
बम्भचेररओ भिक्खू
निच्चसो परिवज्जए ॥

सम च सस्तवं स्त्रीभि
सकथा चाभीक्षणम् ।
ब्रह्मचर्य-रतो भिक्षुः
नित्यशः परिवर्जयेत् ॥

३—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु
स्त्रियो के साथ परिचय और बार-बार वार्ता-
लाप का सदा वर्जन करे ।

४—अगपच्चगसठाण
चारुल्लवियपेहिय ।
वम्भचेररओ थोण^१
चक्खुगिज्झ विवज्जए ॥

अग-प्रत्यग-सस्थान
चारुल्लपित-प्रेक्षितम् ।
ब्रह्मचर्य-रतः स्त्रीणा
चक्षु-ग्राह्य विवर्जयेत् ॥

४—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु
स्त्रियों के चक्षु-ग्राह्य, अंग-प्रत्यग, आकार,
बोलने की मनहर-मुद्रा और चितवन को न
देखे—देखने का यत्न न करे ।

५—कुडय रुडय गीय
हसिय थणियकन्दिय ।
वम्भचेररओ थोण
सोयगिज्झ विवज्जए ॥

कूजित रुदित गीत
हसित स्तनित-क्रन्दितम् ।
ब्रह्मचर्य-रतः स्त्रीणा
श्रोत्र-ग्राह्य विवर्जयेत् ॥

५—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु
स्त्रियों के श्रोत्र-ग्राह्य कूजन, रोदन, गीत,
हास्य, गर्जन और क्रन्दन को न मुने—मुनने का
यत्न न करे ।

६—'हास किट्ठ रुड दप्प
सहसाऽवत्तासियाणि' य'^२ ।
वम्भचेररओ थोण
नाणुचिन्ते कयाड वि ॥

हास क्रीडा रति दर्प
सहसाऽवत्रासितानि च ।
ब्रह्मचर्य-रतः स्त्रीणा
नानुचिन्तयेत् कदाचिदपि ॥

६—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु
पूर्व-जीवन में स्त्रियों के साथ अनुभूत हास्य,
क्रीडा, रति, अभिमान और आकस्मिक हास
का कभी भी अनुचितन न करे ।

७—पणीय भत्तपाण तु^३
खिप्प मयविवड्ढण ।
वम्भचेररओ भिक्खू
निच्चसो परिवज्जए ॥

प्रणीत भक्त-पान तु
क्षिप्र मद-विवर्धनम् ।
ब्रह्मचर्य-रतो भिक्षु
नित्यशः परिवर्जयेत् ॥

७—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु
क्षीघ्र ही काम-वासना को बढ़ाने वाले प्रणीत
भक्त-पान का सदा वर्जन करे ।

८—धम्मलद्ध' मिय काले
जत्तत्थं पणिहाणव ।
नाइमत्त तु भुजेज्जा
वम्भचेररओ सया ॥

धर्म्य-लब्ध मित काले
यात्रार्थं प्रणिधानवान् ।
नाऽतिमात्रं तु भुञ्जीत
ब्रह्मचर्य-रत सदा ॥

८—ब्रह्मचर्य-रत और स्वस्थ चित्त वाला
भिक्षु जीवन निर्वाह के लिए उचित समय में
निर्दोष, भिक्षा द्वारा प्राप्त, परिमित भोजन
करे, किन्तु मात्रा से अधिक न खाए ।

१. भिक्खू (ऋ०) ।

२. सहसावित्ता० (ऋ०), सहसुत्ता० (अ०) ।

३. इत्थं दप्प रुड किट्ठ सहसुत्ता० (घृ० पा०) ।

४. च (अ०) ।

५. धम्म लद्ध (घृ०), धम्मलद्ध, धम्मलद्ध (घृ० पा०) ।

९—विभूष परिवज्जेज्जा
सरीरपरिमण्डण ।
वम्भचेररओ भिक्खू
सिंसारत्थ न धारए ॥

विभूषा परिवर्जयेत्
शरीर-परिमण्डनम् ।
ब्रह्मचर्य-रतो भिक्षुः
शृङ्गारार्थं न धारयेत् ॥

९—ब्रह्मचर्य में, रत रहने वाला भिक्षु
विभूषा का वर्जन करे और शरीर की शोभा
बढ़ाने वाले केश, दाढ़ी आदि को शृङ्गार के
लिए धारण न करे ।

१०—सट्ठे रूवे य गन्धे य
रसे फासे तहेव य ।
पचविहे कामगुणे
निच्चसो परिवज्जए ॥

शब्दान् रूपांश्च गन्धांश्च
रसान् स्पर्शांस्तथैव च ।
पञ्चविधान् काम-गुणान्
नित्यशः परिवर्जयेत् ॥

१०—शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श—
इन पाँच प्रकार के काम-गुणों का सदा वर्जन
करे ।

११—आलओ थीजणाइण्णो
थीकहा य मणोरमा ।
सथवो चैव नारीण^१
तासि इन्दियदरिसण ॥

आलयः स्त्रीजनाकीर्णः
स्त्री-कथा च मनोरमा ।
सस्तवश्चैव नारीणां
तासामिन्द्रिय-दर्शनम् ॥

११—(१) स्त्रियों से आकीर्ण आलय,
(२) मनोरम स्त्री-कथा,
(३) स्त्रियों का परिचय,
(४) उनके इन्द्रियों को देखना,

१२—कुइय रुइय गीय
हसिय^२ भुत्तासियाणि य ।
पणीय भत्तपाण च
अइमाय^३ पाणभोयण ॥

कूजितं रुदितं गीत
हसित भुक्तासितानि च ।
प्रणीतं भक्त-पान च
अतिमात्र पान-भोजनम् ॥

१२—(५) उनके कूजन, रोदन, गीत और
हास्य-युक्त शब्दों को सुनना,
(६) मुक्त-भोग और सहावस्थान,
को याद करना,
(७) प्रणीत पान-भोजन,

१३—गतभूषणमिट्ठ च
कामभोगा य दुज्जया ।
नरस्सत्तगवेसिस्स
विस तालुड जहा ॥

गात्र-भूषणमिष्ट च
काम-भोगाश्च दुर्जयाः ।
नरस्यात्म-गवेषिणः
विष तालपुट यथा ॥

१३—(८) मात्रा से अधिक पान-भोजन,
(९) शरीर को सजाने की इच्छा और
(१०) दुर्जय काम-भोग—ये दस
आत्म-गवेषी मनुष्य के लिए
तालपुट विष के समान हैं ।

१ नारिहि (ऋ०) ।

२ सहभुजा ० (अ) ।

३ अइमाण (ऋ०) ।

१४—दुज्जए कामभोगे य
निच्चसो परिवज्जए ।
सकट्टाणाणि सव्वाणि
वज्जेज्जा^१ पणिहाणव ॥

दुर्जयान् काम-भोगाश्च
नित्यशः परिवर्जयेत् ।
शका-स्थानानि सर्वाणि
वर्जयेत् प्रणिधानवान् ॥

१४—एकग्रचित्त वाला मुनि दुर्जय
काम-भोगो और ब्रह्मचर्य में शका उत्पन्न करने
वाले पूर्वोक्त सभी स्थानों का वर्जन करे ।

१५—धम्मारामे चरे भिक्खू
धिइम धम्मसारही ।
धम्मारामरए दन्ते
बम्भचेरसमाहिए ॥

धर्मारामे चरेद् भिक्षुः
धृतिमान् धर्म-सारथिः ।
धर्माराम-रतो दान्त
ब्रह्मचर्य-समाहितः ॥

१५—धैर्यवान्, धर्म के रथ को चलाने
वाला, धर्म के आराम में रत, दान्त और
ब्रह्मचर्य में चित्त का समाधान पाने वाला
भिक्षु धर्म के आराम में विचरण करे ।

१६—देवदाणवगन्धव्वा
जक्खरक्खसकिन्नरा ।
बम्भयारि नमसन्ति
दुक्कर जे करन्ति त^२ ॥

देव-दानव-गन्धर्वाः
यक्ष-राक्षस-किन्नराः ।
ब्रह्मचारिण नमस्कुर्वन्ति
दुष्कर यः करोति तत् ॥

१६—उस ब्रह्मचारी को देव, दानव,
गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर—ये सभी
नमस्कार करते हैं, जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का
पालन करता है ।

१७—एस धम्मे धुवे निअए
सासए जिणदेसिए ।
सिद्धा सिज्झन्ति चाणेण
सिज्झिस्सन्ति तहापरे ॥
—त्ति वेमि ॥

एष धर्मो ध्रुवो नित्य
शाश्वतो जिन-देशितः ।
सिद्धाः सिध्यन्ति चानेन
सेत्स्यन्ति तथापरे ॥

—इति ब्रवीमि ।

१७—यह ब्रह्मचर्य-धर्म ध्रुव, नित्य,
शाश्वत और अर्हत् के द्वारा उपदिष्ट है ।
इसका पालन कर अनेक जीव सिद्ध हुए हैं, हो
रहे हैं और भविष्य में भी होंगे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

सत्तरसमं अज्ज्ञयणं :
पावसमणिज्जं

सप्तदश अध्ययन :
पाप-श्रमणीयम्

आस्तुरव

इस अध्ययन में पाप-श्रमण के स्वरूप का निरूपण है, इसलिए इसे 'पावसमणिज्ज—'पाप-श्रमणीय' कहा गया है ।

श्रमण दो प्रकार के होते हैं—श्रेष्ठ-श्रमण और पाप-श्रमण । जो ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप और वीर्य—इन पाँच आचारों का पालन करता है वह श्रेष्ठ-श्रमण है । उसके लक्षण पन्द्रहवें अध्ययन में बताया गए हैं । जो ज्ञान आदि आचारों का सम्यक् पालन नहीं करता, इस अध्ययन में वर्णित अकरणीय कार्यों का आचरण करता है वह पाप-श्रमण होता है ।^१

जो प्रवज्या ग्रहण कर मुख-शील हो जाता है—'सोहत्ताय णिवत्ततो मियालत्ताय विहरति'—मिह की भाँति निष्क्रान्त होने पर भी गोदड़ की तरह प्रवज्या का पालन करता है, वह पाप-श्रमण होता है । (श्लो० १)

जो खा-पीकर सो जाता है वह पाप-श्रमण होता है । जैन-परम्परा में यह औत्सर्गिक मर्यादा रही है कि मुनि दिन में न सोए । इसके कई अपवाद भी हैं । जो मुनि विहार में परिश्रान्त हो गया हो, वृद्ध हो गया हो, रोगी हो, वह मुनि आचार्य में आज्ञा लेकर दिन में भी सो सकता है, अन्यथा नहीं ।^२

आयुर्वेद के ग्रन्थों में सोने का विधान इस प्रकार है—नींद लेने का उपयुक्त काल रात है । यदि रात में पूरी नींद न आए तो प्रातःकाल भोजन में पूर्व सोए । रात में जागने से रुक्षता^३ और दिन में लेट कर नींद लेने से स्निग्धता पैदा होती है । परन्तु दिन में धटे-बंटे नींद लेना न रुक्षता पैदा करता है और न स्निग्धता । यह स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है ।

जो मुनि आचार्य और उपाध्याय का प्रत्यनीक होता है, पापों से नहीं डरता, कलह की उद्दीरणा करता है, चंचल होता है, रस-गुच्छ होता है, तप कर्म नहीं करता, गण और गणी को छोड़ देता है, वह पाप-श्रमण है ।

इस अध्ययन में—

श्लोक १-४ में ज्ञान-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है ।

श्लोक ५ में दर्शन-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है ।

श्लोक ६-१४ में चरित्र-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है ।

श्लोक १५-१६ में तप-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है ।

श्लोक १७-१८ में वीर्य-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है ।

१ उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ३६० जे भावा अकरणिज्जा, इहमज्झयणमि वन्निअ जिणेहि ।

ते भावे सेवतो, नायव्वो पावसमणोत्ति ॥

२ आधनिर्युक्ति, गाथा ४१६

अद्धाण परिस्सतो, गिलाण बुद्धो अणुन्नवेत्ताण ।

सथास्तरपट्टो, अत्थरण निवज्जणा लोग ॥

३. अष्टागहृदय सूत्रस्थान ७।५५, ६५

यथाकाल मतो निद्रा, रात्रौ सेवेत सात्मत ।

असात्म्याद् जागरादर्ध, प्रातः स्वप्याद्भुक्तवान् ॥

रात्रौ जागरण रुक्ष, स्निग्ध प्रस्वपन दिवा ।

अरुक्षमनभिस्यन्दि, त्वासीनप्रचलायितम् ॥

सतरसमं अज्ज्ञयण : सप्तदश अध्ययन पावसमणिज्जं : पाप-श्रमणीयम्

मूल

१—जे 'के इमे'^१ पव्वइए नियण्ठे
धम्म सुणिता विणओववन्ते ।
सुदुल्लह लहिउ बोहिलाभं
विहरेज्ज पच्छा य जहासुह तु ॥

संस्कृत छाया

यः कश्चिदय प्रव्रजितो निर्ग्रन्थः
धर्मं श्रुत्वा विनयोपपन्नः ।
सुदुर्लभं लब्ध्वा बोधि-लाभं
विहरेत् पश्चाच्च यथासुखं तु ॥

हिन्दी अनुवाद

१—जो कोई निर्ग्रन्थ धर्म को सुन,
दुर्लभतम बोधि-लाभ को प्राप्त कर विनय से
युक्त हो प्रव्रजित होता है किन्तु प्रव्रजित होने
के पश्चात् स्वच्छन्द-विहारी हो जाता है,

२—सेज्जा दढा पाउरण मे अत्थि
उप्पज्जई भोत्तु^२ तहेव पाउ ।
जाणामि ज वट्टइ आउसु । त्ति
किं नाम काहामि सुएण भन्ते । ॥

शय्या दढा प्रावरण मेऽस्ति,
उत्पद्यते भोक्तुं तथैव पातुम् ।
जानामि यद्वर्तते आयुष्मन् ! इति
किं नाम करिष्यामि श्रुतने भदन्त ? ॥

२—(गुरु के द्वारा अध्ययन की प्रेरणा
प्राप्त होने पर वह कहता है—) मुझे रहने को
अच्छा उपाश्रय मिल रहा है, कपडा भी मेरे
पास है, खाने-पीने को भी मिल जाता है ।
आयुष्मन् ! जो हो रहा है, उसे मैं जान लेता हूँ ।
भन्ते ! फिर मैं श्रुत का अध्ययन कर के क्या
करूँगा ?

३—जे के इमे पव्वइए
निद्दासीले पगामसो ।
भोच्चा^३ पेच्चा सुह सुवइ^३
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

यः कश्चिदय प्रव्रजितो
निद्राशीलः प्रकामशः ।
भुक्त्वा पीत्वा सुखं स्वपिति
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

३—जो प्रव्रजित होकर बार-बार नींद
लेता है, खा-पी कर आराम से लेट जाता है,
वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

४—आयरियउवज्झाएहि
सुय विणय च गाहिए ।
ते चेव खिसई बाले
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

आचार्योपाध्यायः
श्रुत विनयं च ग्राहितः ।
तांश्चैव खिसति बालः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

४—जिन आचार्य और उपाध्याय ने
श्रुत और विनय सिखाया उन्हीं की निन्दा
करता है, वह विवेक-विकल भिक्षु पाप-श्रमण
कहलाता है ।

१ केइ उ (वृ०, ऋ०, छ०), के इमे (वृ० पा) ।

२. भुत्तु (ऋ०) ।

३. वसइ (वृ० पा०) ।

५—आयरियउवज्झायाण

सम्म नो पडितप्पइ ।
अप्पडिपूयए थद्धे
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

६—सम्मदमाणे पाणाणि
वीयाणि हरियाणि य ।
असजए सजयमन्नमाणे
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

७—सथार फलगं पीढं
निसेज्ज पायकम्बल ।
अप्पमज्जियमारुहइ
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

८—दवदवस्स चरई
पमत्ते य अभिक्खण ।
उल्लघणे य चण्डे य
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

९—पडिलेहेइ पमत्ते
अवउज्झइ पायकम्बल ।
पडिलेहणाअणाउत्ते^१
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

१०—पडिलेहेइ पमत्ते
से किंचि हु निसामिया ।
गुरुपरिभावए^२ निच्चं
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

आचार्योपाध्यायाना
सम्यग् न प्रतितप्यते ।
अप्रतिपूजकः स्तब्धः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

समर्दयन् प्राणान्
बीजानि हरितानि च ।
असयतः सयतोऽहमिति मन्यमानः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

सस्तार फलकं पीठ
निषद्या पाद-कम्बलम् ।
अप्रमृज्यारोहति
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

द्रव द्रवं चरति
प्रमत्तश्चाभीक्षणम् ।
उल्लघनश्च चण्डश्च
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

प्रतिलेखयति प्रमत्त
अपोज्झति पाद-कम्बलम् ।
प्रतिलेखनाऽनायुक्तः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

प्रतिलेखयति प्रमत्तः
सकिंचिन् खलु निश्म्य ।
गुरु-परिभावको नित्यं
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

५—जो आचार्य और उपाध्याय के कार्यों की सम्यक् प्रकार से चिन्ता नहीं करता—उनकी सेवा नहीं करता, जो बड़ों का सम्मान नहीं करता, जो अभिमानी होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

६—द्वीन्द्रिय आदि प्राणी तथा बीज और हरियाली का मर्दन करने वाला, असयमी होते हुए भी अपने आपको सयमी मानने वाला, पाप-श्रमण कहलाता है ।

७—जो बिछौने, पाट, पीठ, आसन और पैर पोछने के कम्बल का प्रमार्जन किए बिना (तथा देखे बिना) उन पर बैठता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

८—जो द्रुतगति से चलता है, जो बार-बार प्रमाद करता है, जो प्राणियों को लाध कर—उनके ऊपर होकर चला जाता है, जो क्रोधी है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

९—जो असावधानी से प्रतिलेखन करता है, जो पाद-कम्बल को जहाँ कहीं रख देता है, इस प्रकार जो प्रतिलेखना में असावधान होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१०—जो कुछ भी बातचीत हो रही हो उसे सुनकर प्रतिलेखना में असावधानी करने लगता है, जो गुरु का तिरस्कार करता है—'शिक्षा देने पर उनके सामने बोलने लगता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१ पडिलेहा ० (स) ।

२ गुरु परिभवइ (अ), गुरुपरिभासए (वृ०) ; गुरुपरिभावए (वृ० पा०) ।

११—बहुमाई पमुहरे'
थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
असविभागी अचियत्ते
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

बहुमायी प्रमुखरः
स्तब्धो लुब्धोऽनिग्रहः ।
असविभागी 'अचियत्ते'
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

११—जो बहुत कपटी, वाचाल, अभिमानी, लालची, इन्द्रिय और मन पर नियंत्रण न रखने वाला, भक्त-पान आदि का सविभाग न करने वाला और गुरु आदि से प्रेम न रखने वाला होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१२—विवाद च उदीरेड
अहम्मे अत्तपन्नहा^१ ।
वुग्गहे कलहे रत्ते
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

विवाद चोदीरयति
अघर्मे आत्म-प्रज्ञाहा ।
व्यग्रहे कलहे रक्तः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

१२—जो शान्त हुए विवाद को फिर ने उभाड़ता है, जो सदाचार से शून्य होता है, जो (कुतर्क से) अपनी प्रज्ञा का हनन करता है, जो कदाग्रह और कलह में रक्त होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१३—अथिरासणे कुक्कुर्डे
जत्थ तत्थ निसीयई ।
आसणम्मि अणाउत्ते
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

अस्थिरासन कौकुचिक
यत्र तत्र निपीदति ।
आसनेऽनायुक्त
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

१३—जो स्थिरासन नहीं होता—विना प्रयोजन इधर-उधर चक्कर लगाता है, जो हाथ, पैर आदि अवयवों को हिलाता रहता है, जो जहाँ कहीं बैठ जाता है—इस प्रकार आसन (या बैठने) के विषय में जो असावधान होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१४—ससरक्खपाए सुवई
सेज्ज न पडिलेहड ।
सथारए अणाउत्ते
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

ससरजस्क-पाद स्वपिति
शय्या न प्रतिलेखयति ।
सस्तारकेऽनायुक्तः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

१४—जो सचित्त रज से भरे हुए पैरों का प्रमार्जन किए बिना ही सो जाता है, सोने के स्थान का प्रतिलेखन नहीं करता—इस प्रकार विछौने (या सोने) के विषय में जो असावधान होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१५—दुद्धदहीविगईओ
आहारेड अभिक्खण ।
अरए य तवोकम्मे
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

दुग्ध-दधि-विकृती
आहरत्यभीक्षणम् ।
अरतश्च तपः-कर्मणि
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

१५—जो दूध, दही आदि विकृतियों का बार-बार आहार करता है और तपस्या में रत नहीं रहता, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१६—अत्थन्तम्मि^३ य सूरम्मि
आहारेड अभिक्खण ।
चोइओ पडिचोएइ
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

अस्तान्ते च सूर्ये
आहरत्यभीक्षणम् ।
चोदित प्रतिचोदयति
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

१६—जो सूर्य के उदय से लेकर अस्त होने तक बार-बार खाता रहता है । 'ऐसा नहीं करना चाहिए'—इस प्रकार सीख देने वाले को कहता है कि तुम उपदेश देने में कुशल हो, करने में नहीं, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१. पमुहरी (इ, चू, स) ।

२. अत्तपण्हहा (वृ०), अत्तपण्णहा (वृ० पा०) ।

३. अत्थतमयमि (वृ० पा०) ।

१७—आयरियपरिच्चाई
परपासण्डसेवए ।
गाणगणिए दुब्भूए
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

१८—सय गेह परिचज्ज
परगेहसि वावडे^१ ।
निमित्तेण य ववहरई
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

१९—सन्नाइपिण्ड जेमेइ
नेच्छई सामुदाणिय ।
गिहिनिसेज्ज च वाहेइ
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

२०—एयारिसे पचकुसीलसवुडे
रुवधरे मुणिपवराण हेट्ठिमे ।
अयसि लोए विसमेव गरहिए
न से इहं नेव परत्थ लोए ॥

२१—जे वज्जए एए सया उ दोसे
से सुव्वए होइ मुणीण मज्जे ।
अयसि लोए अमय व पूइए
आराहए 'दुहओ लोगमिण'^२ ॥
—ति वेमि ॥

आचार्य-परित्यागी
पर-पाषण्ड-सेवकः ।
गाणङ्गणिको दुर्भूतः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

स्वक गेहं परित्यज्य
पर-गेहे व्याप्रियते ।
निमित्तेन च व्यवहरति
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

स्व-ज्ञाति-पिण्ड जेमति
नेच्छति सामुदानिकम् ।
गृहि-निषद्या च वाहयति
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

एतादृशः पच-कुशीलाऽसवृत
रूपधरो मुनि-प्रवराणामघस्तनः ।
अस्मिँल्लोके विषमिव गर्हितः
न स इह नैव परत्र लोके ॥

यो वर्जयत्येतान् सदा तु दोषान्
स सुव्रतो भवति मुनीनां मध्ये ।
अस्मिँल्लोकेऽमृतमिव पूजितः
आराधयति लोकमिमं तथा परम् ॥
—इति ब्रवीमि

१७—जो आचार्य को छोड़ दूसरे धर्म-सम्प्रदायो में चला जाता है, जो छह मास की अवधि में एक गण से दूसरे गण में सक्रमण करता है, जिसका आचरण निन्दनीय है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१८—जो अपना घर छोड़ कर (प्रव्रजित होकर) दूसरों के घर में व्यापृत होता है—उनका कार्य करता है, जो शुभाशुभ बता कर धन का अर्जन करता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१९—जो अपने ज्ञाति-जनो के घरों में भोजन करता है, किन्तु सामुदायिक भिक्षा करना नहीं चाहता, जो गृहस्थ की शैया पर बैठा है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

२०—जो पूर्वोक्त आचरण करने वाला, पाँच प्रकार के कुशील साधुओं की तरह असवृत, मुनि के वेश को धारण करने वाला और मुनि-प्रवरों की अपेक्षा तुच्छ सयम वाला होता है, वह इस लोक में विष की तरह निन्दित होता है । वह न इस लोक में कुछ होता है और न परलोक में ।

२१—जो इन दोषों का सदा वर्जन करता है वह मुनियों में सुव्रत होता है । वह इस लोक में अमृत की तरह पूजित होता है तथा इस लोक और परलोक—दोनों लोकों की आराधना करता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१ वावरे (वृ०, छ०), ववहरे (वृ० पा०) ।

२ लोगमिण तहापर (उ, स, छ०, ऋ०) ।

अट्ठारसमं अज्झयणं :
संजइज्जं

अष्टादश अध्ययन :
संजयीयम्

आमुख

यह अध्ययन राजा सजय के वर्णन से समुत्पन्न है, इसलिए इसका नाम 'संजङ्ग'—'सजयीय' है ।^१

कापिल्य नगर में सजय नाम का एक राजा राज्य करता था । एक बार वह शिकार के लिए निकला । उसके साथ चारों प्रकार की सेनाएँ थी । वह केसर उद्यान में गया । वहाँ उसने सत्रस्त मृगों को मारा । इधर-उधर देखते उसकी दृष्टि गर्दमाली मुनि पर जा टिकी । वे ध्यानस्थ थे । उन्हें देख वह सभ्रान्त हो गया । उसने सोचा—मैंने यहाँ के मृगों को मार मुनि की आशातना की है । वह धोड़े से नीचे उतरा । मुनि के पास जा, वन्दना कर बोला—“भगवन् ! मुझे क्षमा करें ।” मुनि ध्यानलीन थे । वे कुछ नहीं बोले । राजा का भय बढ़ा । उसने सोचा—यदि मुनि क्रुद्ध हो गए तो वे अपने तेज से समूचे विश्व को नष्ट कर देंगे । उसने पुनः कहा—“भते ! मैं राजा सजय हूँ । मौन तोड़ कर मुझे कुछ कहे ।” (श्लोक १-१०)

मुनि ने ध्यान पारा और अभयदान देते हुए बोले—“राजन् ! तुम्हें अभय है । तू भी अभयदाता बन । इस अनित्य जीव-लोक में तू क्यों हिंसा में आसक्त हो रहा है ।” (श्लोक ११) मुनि ने जीवन की अस्थिरता, ज्ञाति-सम्बन्धी की असारता, कर्म-परिणामों की निश्चितता का उपदेश दिया । राजा ने सुना । वैराग्य उभर आया । वह राज्य को त्याग कर मुनि गर्दमाली के पास श्रमण बन गया ।

एक दिन एक क्षत्रीय मुनि सजय मुनि के पास आया और पूछा—“तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारा गोत्र क्या है ? किसलिए तुम माहन्—मुनि बने हो ? तुम किस प्रकार आचार्यों की सेवा करते हो और किस प्रकार विनीत कहलाते हो ।” (श्लोक २१)

मुनि सजय ने उत्तर दिया—“नाम से मैं सजय हूँ । गोत्र मेरा गौतम है । गर्दमाली मेरे आचार्य हैं । मुक्ति के लिए मैं माहन् बना हूँ । आचार्य के उपदेशानुसार मैं सेवा करता हूँ इसलिए मैं विनीत हूँ ।” (श्लोक २२, २३)

क्षत्रीय मुनि ने उनके उत्तर से आकृष्ट हो बिना पूछे ही कई तथ्य प्रकट किए और मुनि सजय को जैन प्रवचन में विशेष दृढ़ करने के लिए महापुरुषों के अनेक उदाहरण दिए । (श्लोक २३-३३)

इस अध्ययन में भरत, सगर, मधव, सनत्कुमार, शांति, अर, कुन्धु, महापद्म, हरिषेण, जय आदि चक्रवर्ती राजाओं के नाम हैं ।

दशार्णभद्र, नमि, करकण्डु, द्विमुख, नग्गति, उद्रायण, काशीराज, विजय, महाबल आदि नरेश्वरों के नाम हैं ।

दशार्ण, कलिग, पाचाळ, विदेह, गान्धार, सौवीर, काशी आदि देशों के नाम हैं ।

यह अध्ययन प्राग् ऐतिहासिक व ऐतिहासिक जैन-शासन की परम्परा का सकलन-सूत्र जैसा है । इसमें महावीर कालीन क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद और अज्ञानवाद का उल्लेख हुआ है । (श्लोक ३३)

१ उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ३६४ सजयनाम गोय, वेयतो भावसजओ होइ ।
तत्तो समुद्रियमिण, अज्झयण सजङ्गजति ॥

अष्टारसमं अज्ज्ञयणं : अष्टादश अध्यायन

संजइज्जं : संजयीयम्

मूल
१—कम्पिल्ले नयरे राया
उदिण्णवलवाहणे ।
नामेण सजए नाम
मिगव्व उवणिग्गए ॥

संस्कृत छाया
काम्पिल्ये नगरे राजा
उदार्ण-वल-वाहनः ।
नाम्ना सजयो नाम
मृगव्यामुपनिर्गतः ॥

हिन्दी अनुवाद

१—काम्पिल्य नगर में सेना और वाहनों
से सम्पन्न मजय नाम का राजा था । एक दिन
वह अधिकार करने के लिए गया ।

२—हयाणीए गयाणीए
रहाणीए तहेव य ।
पायत्ताणीए महया
सव्वओ परिवारिए^१ ॥

हयानीकेन गजानीकेन
स्थानीकेन तथैव च ।
पादातानीकेन महता
सर्वतः परिवारितः ॥

२—वह घोड़े, हाथी और रथ पर आरुढ़
तथा पैदल चलने वाले महान् सैनिकों द्वारा
चारों ओर से घिरा हुआ था ।

३—मिए छुभित्ता हयगओ
कम्पिल्लुज्जाणकेसरे ।
भीए सन्ते मिए तत्थ
वहेइ रसमुच्चिए ॥

मृगान् क्षिप्त्वा हय-गतः
काम्पिल्योद्यानकेसरे ।
भीतान् श्रान्तान् मृगान् तत्र
व्यथते रस-मूर्च्छितः ॥

३—वह छोटे पर चढ़ा हुआ था । सैनिक
हिरणों को काम्पिल्य नगर के केशर नामक
उद्यान की ओर ढकेल रहे थे । वह रस-मूर्च्छित
होकर उन डरे हुए और खिन्न बने हुए हिरणों
को वहाँ व्यथित कर रहा था—मार रहा था ।

४—अह केसरम्मि उज्जाणे
अणगारे तवोधणे ।
सज्झायज्झाणजुत्ते
धम्मज्झाण भियायई ॥

अथ केसर उद्याने
अनगरस्तपोधनः ।
स्वाध्याय-ध्यान-सयुक्त
धर्म्य-ध्यान ध्यायति ॥

४—उस केशर नामक उद्यान में
स्वाध्याय और ध्यान में लीन रहने वाले एक
तपोधन अनगर धर्म्य-ध्यान में एकाग्र हो
रहे थे ।

५—अप्फोवमण्डवम्मि

भायई भवियासवे^१ ।
तस्सागए मिए पासं
वहेई से नराहिवे ॥

६—अह आसगओ राया
खिप्पमागम्म सो तर्हि ॥
हए मिए उ पासित्ता
अणगारं तत्थ पासई ॥

७—अह राया तत्थ संभन्तो
अणगारो मणाऽऽहओ ।
मए उ मन्दपुण्णेणं
रसगिद्धेण घन्तुणा^२ ॥

८—आस विसज्जइत्ताणं
अणगारस्स सो निवो ।
विणएण वन्दए पाए
भगव । एत्थ मे खमे ॥

९—अह मोणेण सो भगवं
अणगारे भाणमस्सिए ।
रायाण न पडिमन्तेइ
तओ राया भयद्दुओ ॥

१०—सजओ अहमस्सीति
भगव । वाहराहि मे ।
कुद्धे तेएण अणगारे
डहेज्ज नरकोडिओ ॥

‘अप्फोव’ मण्डवे
ध्यायति क्षपितान्नवः ।
तस्यागतान् मृगान् पाश्वं
विध्यति स नराधिपः ॥

अथाश्वगतो राजा
क्षिप्रमागम्य स तस्मिन् ।
हतान् मृगान् तु दृष्ट्वा
अनगारं तत्र पश्यति ॥

अथ राजा तत्र सम्भ्रान्तः
अनगारो मनागाहतः ।
मया तु मन्द-पुण्येन
रस-गृद्धेन घातुकेन ॥

अद्वं विसृज्य
अनगारस्य स नृपः ।
विनयेन वन्दते पादौ
भगवन् ! अत्र मे क्षमस्व ॥

अथ मौनेन स भगवान्
अनगारो ध्यानमाश्रितः ।
राजानं न प्रतिमन्त्रयते
ततो राजा भय-द्रुतः ॥

संजयोऽहमस्मीति
भगवन् ! व्याहर माम् ।
क्रुद्धस्तेजसाऽनगारः
दहेत् नर-कोटीः ॥

५—कर्म-बन्धन के हेतुओं को निर्मूल करने वाले अनगार लता-मण्डप में ध्यान कर रहे थे । राजा ने उनके समीप आए हुए हिरणों पर बाणों के प्रहार किए ।

६—राजा अश्व पर आरुढ़ था । वह तुरन्त वहाँ आया । उसने पहले मरे हुए हिरणों को ही देखा, फिर उसने उसी स्थान में अनगार को देखा ।

७—राजा अनगार को देख कर भय-भ्रान्त हो गया । उसने सोचा—मैं भाग्यहीन, रस-लोलुप और जीवों को मारने वाला हूँ । मैंने तुच्छ प्रयोजन के लिए मुनि को आहत किया है ।

८—वह राजा घोंडे को छोड़ कर विनय पूर्वक अनगार को वन्दना करता और कहता है—“भगवन् ! इस कार्य के लिए मुझे क्षमा करें ।”

९—वे अनगार भगवान् मौन पूर्वक ध्यान में लीन थे । उन्होंने राजा को प्रत्युत्तर नहीं दिया । उससे राजा और अधिक भयाकुल हो गया ।

१०—राजा बोला—“हे भगवन् ! मैं सजय हूँ । आप मुझसे बातचीत कीजिए । अनगार क्रुपित होकर अपने तेज से करोड़ों मनुष्यों को जला डालता है ।”

१ खवियासवे (स) ।

२ घन्तुणा (उ), घम्मुणा (श्र०)

११—अभयो^१ पत्थिवा । तुव्व
अभयदाया भवाहि य ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि
किं हिंसाए पसज्जसि ? ॥

अभय पार्थिव ! तव
अभय-दाता भव च ।
अनित्ये जीव-लोके
किं हिंसाया प्रसजसि ? ॥

११—अनगार बोले—“पार्थिव ! तुझे अभय
है और तू भी अभयदाता बन । इन अनित्य
जीव-लोक में तू क्यों हिंसा में आमक्त हो
रहा है ?

१२—जया सव्व परिच्चज्ज
गन्तव्वमवसस्स ते ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि
किं रज्जम्मि^२ पसज्जसि ? ॥

यदा सर्वं परित्यज्य
गन्तव्यमवशस्य ते ।
अनित्ये जीव-लोके
किं राज्ये प्रसजसि ? ॥

१२—“जबकि तू पराधीन है और इसलिए
सब कुछ छोड़ कर तुझे चले जाना है तब इन
अनित्य जीव-लोक में तू क्यों राज्य में आमक्त
हो रहा है ?

१३—जीविय चैव रूप च
विज्जुसपायचचल ।
जत्थ त मुज्झसी राय
पेच्चत्थ नाववुज्झसे ॥

जीवित चैव रूप च
विद्युत्-सम्पात-चचलम् ।
यत्र त्वं मुह्यसि राजन् ।
प्रेत्यार्थं नावबुध्यसे ॥

१३—“राजन् ! तू जहाँ मोह कर रहा है
वह जीवन और सौन्दर्य विजली की चमक के
समान चचल है । तू परलोक के दिन को क्यों
नहीं समझ रहा है ?

१४—‘दाराणि य सुया चैव
मिक्खा य तह वन्धवा ।
जीवन्तमणुजीवन्ति
मय नाणुव्वयन्ति य ॥’^३

दाराश्च सुताश्चैव
मित्राणि च तथा बान्धवाः ।
जीवन्तमनुजीवन्ति
मृतं नानुव्रजन्ति च ॥

१४—“स्त्रियाँ, पुत्र, मित्र और बान्धव
जीवित व्यक्ति के साथ जीते हैं किन्तु वे मृत
के पीछे नहीं जाते ।

१५—नीहरन्ति मय पुत्ता
पियर परमदुक्खिया ।
पियरो वि तहा पुत्ते
बन्धू राय । तव चरे ॥

निःसारयन्ति मृत पुत्रा
पितर परम-दुःखिताः ।
पितरोऽपि तथा पुत्रान्
बन्धवो राजन् ! तपश्चरे ॥

१५—“पुत्र अपने मृत पिता को परम
दुःख के साथ ध्मशान ले जाते हैं और इसी
प्रकार पिता भी अपने पुत्रों और बंधुओं को
ध्मशान में ले जाता है, इसलिए हे राजन् !
तू तपश्चरण कर ।

१६—तओ तेणऽज्जिए दव्वे
दारे य परिरक्खिए ।
कीलन्तऽन्ते नरा राय ।
हट्ठुट्ठम ऱ्किया ॥

ततस्तेनाजिते द्रव्ये
दारेषु च परिरक्षितेषु ।
क्रीडन्त्यन्ये नरा राजन् !
हृष्ट-तुष्टाऽलङ्कृताः ॥

१६—“राजन् ! मृत्यु के पश्चात् उन
मृत व्यक्ति के द्वारा अर्जित धन और मुग्धजन
स्त्रियों को हृष्ट, तुष्ट और अलङ्कृत होकर
दूसरे व्यक्ति भोगते हैं ।

१ अभय (अ, आ) ।

२ रज्जेण (उ, ऋ०), हिंसाए (वृ० पा०) ।

३ इदं सूत्रं चिरन्तनवृत्तिकृता न व्याख्यात, प्रत्यन्तरेषु च दृश्यत इत्यस्माभिरुन्नीतम् (वृ०) ।

१७—तेणावि ज कय कम्म
सुह वा जइ वा दुह ।
कम्मुणा तेण सजुत्तो
गच्छई उ पर भवं ॥

तेनापि यत् कृत कर्म
सुखं वा यदि वा दुःखम् ।
कर्मणा तेन सयुक्तः
गच्छति तु पर भवम् ॥

१७—“उस मरने वाले व्यक्ति ने भी जो
कर्म किया—सुखकर या दुःखकर—उसी के
साथ वह परभव में चला जाता है ।”

१८—सोऊण तस्स सो धम्म
अणगारस्स अन्तिए ।
महया सवेगनिव्वेय
समावन्नो नराहिवो ॥

श्रुत्वा तस्य स धर्मम्
अनगारस्यान्तिके ।
महान्त सवेग-निर्वेदं
समापन्नो नराधिपः ॥

१८—वह सजय राजा अनगार के समीप
महान् आदर के साथ धर्म सुन कर मोक्ष का
इच्छुक और ससार से उद्धिन्न हो गया ।

१९—संजओ चइउ रज्ज
निक्खन्तो जिणसासणे ।
गद्भालिस्स भगवओ
अणगारस्स अन्तिए ॥

संजयस्त्यक्त्वा राज्यं
निष्क्रान्तो जिन-शासने ।
गर्दभालेर्भगवतः
अनगारस्यान्तिके ॥

१९—सजय राज्य छोड़ कर भगवान्
गर्दभालि अनगार के समीप जिन-शासन में
दीक्षित हो गया ।

२०—चिच्चा रट्ट पव्वइए
खत्तिए परिभासइ ।
जहा ते दीसई रूव
पसन्न ते तहा मणो ॥

त्यक्त्वा राष्ट्रं प्रव्रजितः
क्षत्रियः परिभाषते ।
यथा ते दृश्यते रूपं
प्रसन्न ते तथा मनः ॥

२०—जिसने राष्ट्र को छोड़ कर प्रव्रज्या
ली, उस क्षत्रिय ने (अप्रतिबद्ध विहारी राजर्षि
सजय से) कहा—“तुम्हारी आकृति जैसे प्रसन्न
दीख रही है वैसे ही तुम्हारा मन भी प्रसन्न
दीख रहा है ।

२१—किनामे ? किंगोत्ते ?
कस्सट्टाए व माहणे ? ।
कह पडियरसी बुद्धे ?
कह विणीए त्ति बुच्चसि ? ॥

किं नामा ? कि गोत्रः ?
कस्मिं अर्थाय वा माहनः ? ।
कथं प्रतिचरसि बुद्धान् ?
कथं विनीत इत्युच्यसे ? ॥

२१—“तुम्हारा नाम क्या है ? गोत्र क्या
है ? किसलिए तुम माहन—मुनि बने हो ? तुम
किस प्रकार आचार्यों की सेवा करते हो ?
और किस प्रकार विनीत कहलाते हो ?”

२२—सजओ नाम नामेण
तहा गोत्तेण गोयमो ।
गद्भाली ममायरिया
विज्जाचरणपारगा ॥

सयतो नाम नाम्ना
तथा गोत्रेण गौतमः ।
गर्दभालयो ममाचार्याः
विद्या-चरण-पारगाः ॥

२२—“नाम से मैं सजय हूँ । गोत्र से मैं
गौतम हूँ । गर्दभालि मेरे आचार्य हैं—विद्या
और चारित्र के पारगामी । मुक्ति के लिए मैं
माहन बना हूँ । आचार्य के उपदेशानुसार मैं
सेवा करता हूँ इसलिए मैं विनीत कहलाता हूँ ।”

२३—किरिय अकिरिय विणय
अन्नाण च महामुणी ।।
एएहि चउहि ठाणेहि
मेयन्ते^१ किं पभासई ? ॥

क्रियाऽक्रिया विनयः
अज्ञान च महामुने ।।
एतैश्चतुर्भिः स्यान्तः
मेयज्ञाः किं प्रभाषन्ते ॥

२३—वे क्षत्रिय श्रमण बोले—“महामुने ।
क्रिया, अक्रिया, विनय और अज्ञान—इन चार
म्यानों के द्वारा एकान्तवादी तत्त्ववेत्ता क्या
तत्त्व वतलाते हैं—

२४—इड पाउकरे बुद्धे
नायए परिनिव्वुडे ।
विज्जाचरणसपन्ने
सच्चे सच्चपरक्कमे ॥

इति प्रादुरकरोद् बुद्धः
ज्ञातकः परिनिवृत्तः ।
विद्या-चरण-सपन्न
सत्यः सत्य-पराक्रम ॥

२४—“उमे तत्त्ववेत्ता ज्ञात-वक्षीय,
उपशात, विद्या और चारित्र्य से सम्पन्न, सत्य-
वाक् और सत्य-पराक्रम वाले भगवान् महावीर
ने प्रकट किया है ।

२५—पडन्ति नरए घोरे
जे नरा पावकारिणो ।
दिव्व च गड गच्छन्ति
चरित्ता धम्ममारिय ॥

पतन्ति नरके घोरे
ये नराः पाप-कारिण^२ ।
दिव्या च गतिं गच्छन्ति
चरित्वा धर्ममार्यम् ॥

२५—“जो मनुष्य पाप करने वाले हैं वे
घोर नरक में जाते हैं और धर्म-धर्म का
आचरण कर मनुष्य दिव्य-गति को प्राप्त
होते हैं ।

२६—‘मायावुडयमेय तु
मुसाभासा निरत्थिया ।
सजममाणो वि अह
वसामि इरियामि य’ ॥^३

मायोक्तमेतत् तु
मृषाभाषा निरर्थिका ।
संयच्छन्त्यहम्
वसामि ईरे च ॥

२६—“इन एकान्त-दृष्टि वाले क्रियावादी
आदि वादियों ने जो कहा है, वह माया पूर्ण
है इसलिए वह मिथ्या-वचन है, निरर्थक है ।
मैं उन माया-पूर्ण एकान्तवादों से वच कर
रहता हूँ और चलता हूँ ।

२७—सव्वे ते विइया मज्झं
मिच्छादिट्ठी अणारिया ।
विज्जमाणे परे लोए
सम्म जाणामि अप्पग ॥

सर्वे ते विदिता मम
मिथ्यादृष्टयोऽनार्याः ।
विद्यमाने परे लोके
सम्यग जानाम्यात्मानम् ॥

२७—“मैंने उन सबको जान लिया है जो
मिथ्या-दृष्टि और अनार्थ हैं । मैं परलोक के
अस्तित्व में आत्मा को भली-भाँति जानता हूँ ।

२८—अहमासी महापाणे
जुइम वरिससओवमे ।
जा सा पाली महापाली
दिव्वा वरिससओवमा ॥

अहमास महाप्राणे
द्युतिमान् वर्षशतोपमः ।
या सा पाली महा-पाली
दिव्या वर्षशतोपमा ॥

२८—“मैं महाप्राण नामक विमान में
कान्तिमान देव था । मैंने वहाँ पूर्ण आयु का
भोग किया । जैसे यहाँ सौ वर्ष की आयु पूर्ण
होती है, वैसे ही देवलोक में पल्लोपम और
सागरोपम की आयु पूर्ण मानी जाती है ।

१. मियन्ता (चू०) ।

२. इदमपि सूत्र प्रायो न दृश्यते (छ०) ।

२९—से चुए^१ बम्भलोगाओ
माणुस्स भवमागए ।
अप्पणो य परेसि च
आउ जाणे जहा तहा ॥

३०—नाणारुइ च छन्द च
परिवज्जेज्ज सजए ॥
अणट्ठा जे य सव्वत्था
इइ विज्जामणुसचरे ॥

३१—पडिक्कमामि पसिणाण
परमन्तेहिं वा पुणो ।
अहो उट्ठिए अहोराय
इइ विज्जा तव चरे ॥

३२—ज च मे पुच्छसी काले
सम्म सुद्धेण^२ चेयसा ।
ताइ पाउकरे बुद्धे
तं नाण जिणसासणे ॥

३३—किरिय च रोयए धीरे
अकिरिय परिवज्जए ।
दिट्ठीए दिट्ठिसपन्ने
धम्म चर सुदुच्चर ॥

३४—एय पुण्णपय सोच्चा
अत्थधम्मोवसोहिय ।
भरहो वि भारहं वासं
चेच्चा कामाइ पव्वए ॥

अथ च्युतो ब्रह्म-लोकान्
मानुष्यं भवमागतः ।
आत्मनश्च परेषा च
आयुर्जानामि यथा तथा ॥

नानार्थं च छन्दश्च
परिवर्जयेत् संयतः ।
अनर्था ये च सर्वत्र
इति विद्या मनुसचरेः ॥

प्रतिक्रमामि प्रश्नेभ्य
पर-मन्त्रोभ्यो वा पुनः ।
अहो उत्थितोऽहोरात्रम्
इति विद्वान् तपश्चरेः ॥

यच्च मा पृच्छति काले
सम्यक् शुद्धेन चेतसा ।
तत् प्रादुरकरोद् बुद्धः
तज्ज्ञानं जिन-ज्ञाने ॥

क्रिया च रोचयेद् धीरः
अक्रिया परिवर्जयेत् ।
दृष्ट्या दृष्टि-सपन्नः
धर्मं चर सुदुश्चरम् ॥

एतन् पुण्य-पदं श्रुत्वा
अर्थ-धर्मोपशोभितम् ।
भरतोऽपि भारत वर्षं
त्यक्त्वा कामान् प्राव्रजन् ॥

२९—“वह मैं ब्रह्मलोक से च्युत होकर
मनुष्य-लोक में आया हूँ । मैं जिस प्रकार
अपनी आयु को जानता हूँ उसी प्रकार दूसरो
की आयु को भी जानता हूँ ।

३०—“सयमी को नाना प्रकार की रुचि,
अभिप्राय और जो सब प्रकार के अनर्थ हैं
उनका वर्जन करना चाहिए—इस विद्या के
पथ पर तुम्हारा संचरण हो” — (क्षत्रिय मुनि
ने राजर्षि से कहा)—

३१—“मैं (शुभाशुभ सूचक) प्रश्नो और
गृहस्थ-कार्य-सम्बन्धी मन्त्रणाओं से दूर रहता हूँ ।
अहो ! मैं दिन-रात धर्माचरण के लिए
सावधान रहता हूँ—यह समझ कर तुम तप
का आचरण करो ।

३२—“जो तुम मुझे सम्यक् शुद्ध-चित्त से
आयु के विषय में पूछते हो, उसे सर्वज्ञ भगवान्
ने प्रकट किया है, वह ज्ञान जिन-शासन में
विद्यमान है ।

३३—“धीर-पुरुष को क्रियावाद पर रुचि
करनी चाहिए और अक्रियावाद को त्याग
देना चाहिए । सम्यक् दृष्टि के द्वारा दृष्टि-
सम्पन्न होकर तुम सुदुश्चर धर्म का आचरण
करो ।

३४—“अर्थ और धर्म से उपशोभित इस
'पवित्र उपदेश को सुनकर भरत चक्रवर्ती ने
भारतवर्ष और काम-भोगों को छोड़कर
प्रव्रज्या ली ।

३५—सगरो वि सागरन्त
भरहवास नराहिवो ।
इस्सरिय केवल हिच्चा
दयाए परिनिवृडे' ॥

सगरो पि सागरान्त
भरतवर्ष नराधिप ।
ऐश्वर्य केवल हित्वा
दयया परिनिवृत्तः ॥

३५—“सगर चक्रवर्ती सागर पर्यन्त
भारतवर्ष और पूर्ण ऐश्वर्य को छोड़, मयम की
आराधना कर मुक्त हुए ।

३६—चडत्ता भारह वास
चक्रवट्टी महिड्डिओ ।
पव्वज्जमव्भुवगओ
मघव नाम महाजसो ॥

त्यक्त्वा भारत वर्ष
चक्रवर्ती महर्द्धिक ।
प्रव्रज्यामभ्युपगत
मघवा नाम महायज्ञा ॥

३६—“महर्द्धिक और महान् यशस्वी
मघवा चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को छोड़कर
प्रव्रज्या ली ।

३७—सणकुमारो मणुस्सिन्दो
चक्रवट्टी महिड्डिओ ।
पुत्त रज्जे ठवित्ताण'
सो वि राया तव चरे ॥

सनत्कुमारो मनुष्येन्द्रः
चक्रवर्ती महर्द्धिक ।
पुत्रा राज्ये स्थापयित्वा
सोऽपि राजा तपोऽचरत् ॥

३७—“महर्द्धिक राजा सनत्कुमार
चक्रवर्ती ने पुत्र को राज्य पर स्थापित कर
तपश्चरण किया ।

३८—चडत्ता भारह वास
चक्रवट्टी महिड्डिओ ।
सन्ती सन्तिकरे लोए
पत्तो गइमणुत्तर ॥

त्यक्त्वा भारत वर्ष
चक्रवर्ती महर्द्धिक ।
शान्तिः शान्तिकरो लोके
प्राप्तो गतिमनुत्तराम् ॥

३८—“महर्द्धिक और लोक में शान्ति
करने वाले शान्तिनाथ चक्रवर्ती ने भारतवर्ष
को छोड़कर अनुत्तर गति प्राप्त की ।

३९—इक्खागरायवसभो
कुन्थू नाम नराहिवो ।
विक्खायकित्ती धिइम'
'मोक्ख गओ अणुत्तर'^४ ॥

इक्ष्वाकु-राज-वृषभः
कुन्थुर्नामनराधिपः ।
विख्यात-कीर्तिर्धृतिमान्
मोक्ष गतोऽनुत्तरम् ॥

३९—“इक्ष्वाकु कुल के राजाओं में श्रेष्ठ,
विख्यात कीर्ति वाले, धृतिमान् भगवान् कुन्थु
नरेश्वर ने अनुत्तर मोक्ष प्राप्त किया ।

१. परिनिवृद्धो (उ, श्रु०) ।

२. उयेऊण (उ, श्रु०) ।

३. भगव (उ, श्रु०) ।

४. पत्तो गइमणुत्तर (उ, श्रु०) ।

[नमी नमेइ अप्पाण
सक्ख सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेह वइदेही
सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥]^१

(नमि-नमियति आत्मान
साक्षाच्छ्रृण चोदितः ।
त्यक्त्वा गेहं वैदेही
श्रामण्ये पर्युपस्थितः ॥)

“(विदेह के अधिपति नमिराज ने, जो
गृह को त्याग कर श्रामण्य में उपस्थित हुए
और देवेन्द्र ने जिन्हें साक्षात् प्रेरित किया,
आत्मा को नमा लिया—वे अत्यन्त नम्र बन
गए ।)

४५—करकण्डू कलिंसेसु
पचालेसु य दुम्महो^२ ।
नमी राया विदेहेसु
गन्धारेसु य नगई ॥

करकण्डु कलिङ्गेषु
पञ्चालेषु च द्विमुख ।
नमी राजा विदेहेषु
गान्धारेषु च नगतिः ॥

४५—“कलिग में करकण्डु, पाचाल में
द्विमुख, विदेह में नमि राजा और गान्धार में
नगति—

४६—एए^३ नरिन्दवसभा
निक्खन्ता जिणसासणे ।
पुत्ते रज्जे ठवित्ताण^४
सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥

एते नरेन्द्रः-वृषभाः
निष्क्रान्ता जिन-शासने ।
पुत्रान् राज्ये स्थापयित्वा
श्रामण्ये पर्युपस्थिताः ॥

४६—“राजाओं में वृषभ के समान ये
अपने-अपने पुत्रों को राज्य पर स्थापित कर
जिन-शासन में प्रव्रजित हुए और श्रमण-धर्म
में सदा यत्न-शील रहे ।

४७—सौवीररायवसभो
'चेच्चा रज्ज'^५ मुणी चरे ।
उदायणो^६ पव्वइओ
पत्तो गइमणुत्तर ॥

सौवीर-राज-वृषभः
व्यक्त्वा राज्य मुनिरचरत् ।
उद्रायणः प्रव्रजितः
प्राप्तो गतिमनुत्तराम् ॥

४७—“सौवीर राजाओं में वृषभ के
समान उद्रायण राजा ने राज्य को छोड़ कर
प्रव्रज्या ली, मुनि-धर्म का आचरण किया और
धनुत्तर गति प्राप्त की ।

४८—तहेव कासीराया
सेओसच्चपरक्कमे ।
कामभोगे परिच्चज्ज
पहणे कम्ममहावण ॥

तथैव काशी-राज
श्रेयः-सत्य-पराक्रमः ।
काम-भोगान् परित्यज्य
प्राहन् कर्म-महावनम् ॥

४८—“इसी प्रकार श्रेय और सत्य के
लिए पराक्रम करने वाले काशीराज ने काम-
भोगों का परित्याग कर कर्म-रूपी महावन का
उन्मूलन किया ।

१ x (आ, इ, स, चू०, वृ०) ।

२ दुम्महा (ऋ०) ।

३ एव (उ, ऋ०) ।

४ ठवेऊण (उ, ऋ०) ।

५ चइत्ताण (अ, उ, ऋ०) ।

६ उदाहणो (ऋ०) , उदायणो (वृ०, आ, उ, ऋ०) ।

४०—सागरन्तं जहिताणं^१
 'भरहं वासं नरीसरो'^२ ।
 अरो य अरयं^३ पत्तो
 पत्तो गइमणुत्तर ॥

सागरान्तं हित्वा
 भरत-वर्षं नरेश्वरः ।
 अरश्चारजः प्राप्त
 प्राप्तो गतिमनुत्तराम् ॥

४०—“सागर पर्यन्त भारतवर्ष को छोड़-
 कर, कर्म-रज से मुक्त हो कर नरेश्वर ने
 अनुत्तर गति प्राप्त की ।

४१—चइत्ता भारहं वास
 चक्कवट्ठी नराहिओ^४ ।
 चइत्ता उत्तमे भोए
 महापउमे तव चरे ॥

त्यक्त्वा भारतं वर्षं
 चक्रवर्ती नराधिपः ।
 त्यक्त्वा उत्तमान् भोगान्
 महापद्मस्तपोऽचरत् ॥

४१—“विपुल राज्य, सेना और वाहन
 तथा उत्तम भोगों को छोड़कर महापद्म चक्रवर्ती
 ने तप का आचरण किया ।

४२—एगच्छत्त पसाहिता
 महि माणनिसूरणो ।
 हरिसेणो मणुस्सिन्दो
 पत्तो^५ गइमणुत्तर ॥

एक-च्छत्रां प्रसाध्य
 महीं मान-निषूदनः ।
 हरिषेणो मनुष्येन्द्रः
 प्राप्तो गतिमनुत्तराम् ॥

४२—“(शत्रु-राजाओं का) मान-मर्दन
 करने वाले हरिषेण चक्रवर्ती ने पृथ्वी पर एक-
 छत्र शासन किया, फिर अनुत्तर गति प्राप्त की ।

४३—अग्निओ रायसहस्सेहि
 सुपरिच्चाई दम चरे ।
 जयनामो जिणक्खायं
 पत्तो गइमणुत्तर ॥

अन्वितो राज-सहस्रैः
 सुपरित्यागी दममचरत् ।
 जयनामा जिनाख्यात
 प्राप्तो गतिमनुत्तराम् ॥

४३—“जय चक्रवर्ती ने हजार राजाओं
 के साथ राज्य का परित्याग कर जिन-भाषित
 दम का आचरण किया और अनुत्तर गति
 प्राप्त की ।

४४—दसण्णरज्ज मुइय
 चइत्ताण मुणी चरे ।
 दसण्णभद्दो निक्खन्तो
 सक्ख सक्केण चोइओ ॥

दशार्ण-राज्य मुदितं
 त्यक्त्वा मुनिरचरत् ।
 दशार्णभद्रो निष्क्रान्त
 साक्षाच्छक्रेण चोदितः ॥

४४—“साक्षात् शक्र के द्वारा प्रेरित
 दशार्णभद्र ने दशार्ण देश का प्रमुदित राज्य
 छोड़ कर प्रव्रज्या ली और मुनि-धर्म का
 आचरण किया ।

१ चइत्ताण (उ, ऋ०, स) ।

२ भरहं नरवरीसरो (उ, ऋ०) ।

३ अरस (वृ० पा०) ।

४ महिडिडओ (उ, ऋ०) ।

५ गओ (अ) ।

४९—तहेव विजओ राया
‘अणट्टाकित्ति’ पव्वए^१ ।
रज्ज तु गुणसमिद्ध
पयहित्तु महाजसो ॥

तथैव विजयो राजा
अनष्ट-कीर्तिः प्राव्रजत् ।
राज्यं तु गुण-समृद्ध
प्रहाय महायशः ॥

४९—“इसी प्रकार विमल-कीर्ति, महा-
यशस्वी विजय राजा ने गुण से समृद्ध राज्य
को छोड़ कर जिन-शासन में प्रव्रज्या ली ।

५०—तहेवुग्ग^३ तव किच्चा
अव्वक्खित्तेण चेतसा ।
महाबलो^४ रायरिसी
अट्ठाय^५ सिरसा सिर^६ ॥

तथैवोग्र तपः कृत्वा
अव्याक्षिप्तेन चेतसा ।
महाबलो राजर्षिः
आदित शिरसा शिर ॥

५०—“इसी प्रकार अनाकुल-चित्त से उग्र
तपस्या कर राजर्षि महाबल ने अपना शिर
देकर शिर (मोक्ष) को प्राप्त किया ।

५१—कह धीरो अहेऊहिं
उम्मत्तो^७ व्व^८ महि चरे ? ।
एए विसेसमादाय
मूरा दढपरक्कमा ॥

कथ घोरः अहेतुभिः
उन्मत्त इव महीं चरेत् ? ।
एते विशेषमादाय
शूरा दृढ-पराक्रमाः ॥

५१—“ये भरत आदि शूर और दृढ
पराक्रम-शाली राजा दूसरे धर्म-शासनों से
जैन-शासन में विशेषता पाकर यही प्रव्रजित
हुए तो फिर धीर पुरुष एकान्त-दृष्टिमय
अहेतुवादों के द्वारा उन्मत्त की तरह कैसे पृथ्वी
पर विचरण करे ?

५२—अच्चन्तनियाणखमा
सच्चा^९ मे भासिया वई ।
अतरिंसु तरन्तेगे^{१०}
तरिस्सन्ति अणागया^{११} ॥

अत्यन्त-निदान-क्षमा
सत्या मया भाषिता वाक् ।
अतीर्षुः तरन्त्येके
तरिष्यन्ति अनागताः ॥

५२—“मैंने यह अत्यन्त युक्तियुक्त बात
कही है । इसके द्वारा कई जीवों ने ससार-
समुद्र का पार पाया है, पा रहे हैं और भविष्य
में पाएंगे ।

१ अणट्टा ० (वृ०), आणट्टा ० (छ०) ।

२ आणट्टा किइ पव्वइ (वृ० पा०) ।

३ तहेवउग्ग (अ) ।

४ महव्वलो (अ, आ, ऋ०), महवलो (उ) ।

५ आदाय (उ, ऋ०, छ, वृ०पा०) ।

६ सिरि (वृ० पा०, अ, आ, उ, ऋ०) ।

७ उम्मत्तु (उ, ऋ०) ।

८ व (अ) ।

९ एसा (वृ०); सच्चा, सच्चा (वृ० पा०) ।

१०. तरन्ते (वृ० पा०) ।

११. अणागय (अ) ।

५३—कह धीरे अहेऊहि
अत्ताण^१ परियावसे ? ।
सव्वसगविनिम्मक्के
सिद्धे हवइ नीरए ॥
—त्ति वेमि ॥

कथ धीरः अहेतुभिः
आत्मान पर्यावासयेत् ? ।
सर्व-सङ्ग-विनिर्मुक्त
सिद्धो भवति नीरजा ॥
—इति ब्रवीमि ।

५३—“धीर पुरुष एकान्त-दृष्टिमय
अहेतुवादों में अपने धापको कैसे लगाए ? जो
सब सगो में मुक्त होता है वह कर्म-रहित
होकर सिद्ध हो जाता है ।”

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

सगूणविसङ्गं अज्ज्ञयणं :
मियापुतिज्जं

एकोनविंश अध्ययन :
मृगापुत्रीयम्

आसुख

निर्युक्तिकार के अनुसार इस अध्ययन का नाम 'मिगपुत्तिज्ज'—'मृगापुत्रीय' है। मृगा रानी के पुत्र से यह अध्ययन समुत्पन्न है, इसलिए इसका नाम 'मृगापुत्रीय' रखा गया है।^१

समवायाग के अनुसार इसका नाम 'मियचारिया'—'मृगचारिका' है।^२ यह नामकरण प्रतिपाद्य के आधार पर है।

मुग्रीव नगर में बलभद्र नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पटरानी का नाम मृगावती था। उसके एक पुत्र था। माता-पिता ने उसका नाम बलश्री रखा। वह लोक में मृगापुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। युवा हुआ। पाणि-ग्रहण सम्पन्न हुआ। एक बार वह अपनी पत्नियों के साथ प्रासाद के ऋरोखे में बैठा हुआ क्रीड़ा कर रहा था। मार्ग में लोग आ-जा रहे थे। स्थान-स्थान पर नृत्य-संगीत की मण्डलियाँ आयोजित थी। एकाएक उसकी दृष्टि राजमार्ग पर मन्द गति में चलने हुए निर्यन्त्र पर जा टिकी। मुनि के तेजोदीप्त ललाट, चमकते हुए नेत्रों तथा तपस्या में कृश शरीर को वह अनिमेष दृष्टि में देखता रहा। मन आलोड़ित हुआ। चिन्तन तीव्र हुआ। उसने सोचा—“अन्यत्र भी मैंने ऐसा रूप देखा है।” विचारों में लीन हुआ और उसे जाति-स्मृति ज्ञान उत्पन्न हो गया। पूर्व जन्म की सारी घटनाएँ प्रत्यक्ष हो गईं। उसने जान लिया कि पूर्व-भव में वह श्रमण था। इस अनुभूति से उसका मन वैराग्य से भर गया। वह अपने माता-पिता के पास आया और बोला—“तात ! मैं प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ। शरीर अनित्य है, अशुचिमय है, दुःख और क्लेशों का भाजन है। मुझे इसमें कोई रस नहीं है। जिसे आज या कल छोड़ना ही होगा, उसे मैं अभी छोड़ देना चाहता हूँ। ससार में दुःख ही दुःख है। जन्म दुःख है, मरण दुःख है, जरा दुःख है और रोग दुःख है। सारे भोग आपात-भद्र है, परिणाम-विरस।”

माता-पिता ने उसे समझाया और श्रामण्य की कठोरता और उसकी दुश्चरता का दिग्दर्शन कराया। उन्होंने कहा—

“पुत्र ! श्रामण्य दुश्चर है। मुनि को हजारों गुण धारण करने होते हैं। उसे जीवन भर प्राणातिपात से विरति करनी होती है। इसी प्रकार मृषावाद, अदनादान, अन्नह्यचर्य और अपरिग्रह का विवर्जन करना होता है। रात्रि-भोजन का सर्वथा त्याग अत्यन्त कठिन है। अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं।

“भिक्षाचर्या दुःखप्रद होती है। याचना और अलाभ दोनों को सहना दुष्कर है। साधु को कुक्षि-सवल होना पड़ता है।

“तुम सुकोमल हो, श्रामण्य अत्यन्त कठोर है। तुम उसका पाठन नहीं कर सकोगे। दूसरी बात है कि यह श्रामण्य यावज्जीवन का होता है। इसमें अवधि नहीं होती। श्रामण्य वातुका-कवल की तरह निःस्वाद और असि-धारा की तरह दुश्चर है। इसका पाठन करना लोहे के चने चबाने जैसा है।”

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ४०८

मिगदेवीपुत्ताओ, बलसिरिनामा समुट्ठिय जम्हा।

तम्हा मिगपुत्तिज्ज, अज्झयण होइ नायव्व ॥

२—समवाय ३६

इस प्रकार मृगापुत्र और उसके माता-पिता के बीच सुन्दर सवाद चलता है । माता-पिता उसे भोग की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं और वह साधना की ओर अग्रसर होना चाहता है । माता-पिता ने श्रामण्य को जिन उपमाओं से उपमित किया है वे सयम की गुरुता और दुष्करता को प्रभावित करती है ।

मृगापुत्र का आत्म-विश्वास मूर्च हो जाता है और वह इन सबको आत्मसात् करने के लिए अपने आपको योग्य बताता है ।

अन्त में माता-पिता कहते हैं—“वत्स ! जो कुछ तू कहता है वह सत्य है परन्तु श्रामण्य का सबसे बड़ा दुःख है—निष्प्रतिकर्मता अर्थात् रोग की चिकित्सा न करना ।” (श्लोक ७५)

मृगापुत्र ने कहा—“तात् । अरण्य में बसने वाले मृग आदि पशुओं तथा पक्षियों की कौन चिकित्सा करता है ? कौन उनको औषधि देता है ? कौन उनकी सुख-पृच्छा करता है ? कौन उनको भक्ष-पान देता है ? मैं भी उन्हीं की भाँति रहूँगा—मृग-चारिका से अपना जीवन बिताऊँगा ।” (श्लोक ७६-८५)

माता-पिता ने मृगापुत्र की बातें सुनी । उसकी सयम-ग्रहण की दृढता से पराभूत हो उन्होंने प्रव्रज्या की आज्ञा दी । मृगापुत्र मुनि बन गया । उसने पवित्रता से श्रामण्य का पालन किया और अन्त में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गया ।

सगूणविसङ्गमं अज्ज्ञयणं : एकोनविंश अध्यायन

मियापुतिज्जं : मृगापुत्रीयम्

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—सुग्रीवे नयरे रम्मे काणणुज्जाणसोहिए । राया बलभदो त्ति मिया तस्सगमाहिंसी ॥	सुग्रीवे नगरे रम्ये काननोद्यान-शोभिते । राजा बलभद्र इति मृगा तस्याग्रमहिषी ॥	१—कानन और उद्यान से शोभित मुरम्य सुग्रीव नगर में बलभद्र राजा था । मृगा उसकी पटरानी थी ।
२—तेसिं पुत्ते बलसिरी मियापुत्ते त्ति विस्सुए । अम्मापिऊण दइए जुवराया दमीसरे ॥	तयो पुत्रो बलश्रीः मृगापुत्र इति विश्रुतः । अम्बापित्रोर्दयितः युवराजो दमोदरः ॥	२—उनके 'बलश्री' नाम का पुत्र था । जनता में वह 'मृगापुत्र'—इस नाम से विश्रुत था । वह माता-पिता को प्रिय, युवराज और दमोदर था ।
३—नन्दणे सो उ पासाए कीलए ^१ सह इत्थिहिं । देवो दोगुन्दगो चैव निच्च मुइयमाणसो ॥	नन्दने स तु प्रासादे क्राडति सह स्त्रीभिः । देवो गोगुन्दकश्चैव नित्य मुदित-मानसः ॥	३—वह दोगुन्दग देवों की भाँति सदा प्रमुदित-मन रहता हुआ आनन्द देने वाले प्रासाद में स्त्रियों के साथ क्रीडा कर रहा था ।
४—मणिरयणकुट्टिमतले पासायालोयणट्ठिओ । आलोएइ नगरस्स चउक्कतियचच्चरे ॥	मणि-रत्न-कुट्टिम-तले प्रसादालोकन-स्थितः । आलोकते नगरस्य चतुष्क-त्रिक-चत्वरणि ॥	४—मणि और रत्न से जडित फर्श वाले प्रासाद के गवाक्ष में बैठा हुआ मृगापुत्र नगर के चौराहों, तिराहों और चौहट्टों को देख रहा था ।
५—अह तत्थ अइच्छन्त पासई समणसजय । तवनियमसजमधर सीलड्ढ गुणआगर ॥	अथ तत्रातिक्रामन्त पश्यति श्रमण-सयतम् । तपो-नियम-सयम-धर शीलाढ्य गुणाकरम् ॥	५—उसने वहाँ जाते हुए एक सयत श्रमण को देखा, जो तप नियम और सयम को धारण करने वाला, शील से समृद्ध और गुणों का आकर था ।

६—त देहई^१ मियापुत्ते
दिट्ठीए अणिमिसाए उ ।
कहिं मन्नेरिस रूव
दिट्ठपुव्वं मए पुरा ॥

तं पश्यति मृगापुत्रः
दृष्ट्याऽनिमेषया तु ।
कुत्र मन्ये ईदृश रूप
दृष्ट-पूर्वं मया पुरा ? ॥

६—मृगापुत्र ने उसे अनिमेष-दृष्टि से
देखा और मन ही मन चिन्तन करने लगा—
“मैं मानता हूँ कि ऐसा रूप मैंने पहले कहीं
देखा है ।”

७—साहुस्स दरिसणे तस्स
अज्झवसाणम्मि सोहणे ।
मोहगयस्स सन्तस्स
जाईसरण समुप्पन्नं ॥

साधोर्दर्शने तस्य
अध्यवसाने शोभने ।
मोह गतस्य सतः
जाति-स्मरण समुत्पन्नम् ॥

७—साधु के दर्शन और अध्यवसाय पवित्र
होने पर “मैंने ऐसा कहीं देखा है”—ऐसी
सघन चित्त-वृत्ति हुई और उसे पूर्व-जन्म की
स्मृति हो आई ।

[देवलोग चुओ सतो
माणस भवमागओ ।
सन्निनाणे समुप्पण्णे
जाइ सरइ पुराणय ॥]^२

[देवलोक-च्युतः सन्
मानुषं भवमागतः ।
संज्ञि-ज्ञाने समुत्पन्ने
जातिं स्मरति पौराणिकीम् ॥]

[देवलोक से च्युत हो मनुष्य-जन्म
में आया । समनस्क-ज्ञान उत्पन्न हुआ तब
पूर्व-जन्म की स्मृति हुई ।]

८—जाईसरणे समुप्पन्ने
मियापुत्ते महिड्ढिए ।
सरई पोरणिय जाइं
सामण्ण च पुराकय ॥

जाति-स्मरणे समुत्पन्ने
मृगापुत्रो महर्द्धिकः ।
स्मरति पौराणिकीं जातिं
श्रामण्य च पुराकृतम् ॥

८—जाति-स्मृति ज्ञान उत्पन्न होने पर
महर्द्धिक मृगापुत्र को पूर्व-जन्म और पूर्व-कृत
श्रामण्य की स्मृति हो आई ।

९—विसएहि अरज्जन्तो
रज्जन्तो सजमम्मि य ।
अम्मापियर उवागम्म
इम वयणमब्बवी ॥

विष्येऽवरज्यन्
रज्यन् सयमे च ।
अम्बापितरावुपागम्य
इदं वचनमब्रवीत् ॥

९—अब विषयों में उसकी आसक्ति नहीं
रही । वह सयम में अनुरक्त हो गया । माता-
पिता के समीप आ उसने इस प्रकार कहा—

१०—सुयाणि मे पच्च महव्वयाणि
नरएमु दुक्ख च तिरिक्खजोणिसु ।
निविण्णकामो मि^३ महण्णवाओ
अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो । ॥

श्रुतानि मया पच्च महाव्रतानि
नरकेषु दुःखं च तिर्यग-योनिषु ।
निविण्णा-कामोऽस्मि महार्णवात्
अनुजानात प्रव्रजिष्यामि मातः ॥

१०—“मैंने पाँच महाव्रतों को सुना है ।
नरक और तिर्यंच योनियों में दुःख है । मैं
ससार समुद्र से निविण्ण-काम (विरक्त) हो
गया हूँ । मैं प्रव्रजित होऊँगा । माता ! मुझे
आप अनुज्ञा दें ।

१. पेहई (घृ०) ।

२. × (आ, इ, स, छ०, चू०, घृ०) ।

३. लि (स) ।

११—अम्मताय । मए भोगा
भुक्ता विसफलोवमा ।
पच्छा कडुयविवागा
अणुबन्धदुहावहा ॥

अम्ब-तात ! मया भोगाः
भुक्ता विष-फलोपमाः ।
पश्चात् कटुक-विपाकाः
अनुबन्ध-दुःखावहाः ॥

११—“माता-पिता । मैं भोगों को भोग
चुका हूँ । ये भोग विष के तुल्य हैं, इनका
परिणाम कटु होता है और ये निरन्तर दुःख
देने वाले हैं ।

१२—इमं शरीरं अणिच्च
अमुडं अमुडसंभव ।
असासयावासमिणं
दुक्खकेसाणं भायणं ॥

इदं शरीरमनित्यम्
अशुच्यशुचि-संभवम् ।
अशाश्वतावाममिदं
दुःख-क्लेशानां भाजनम् ॥

१२—“यह शरीर अनित्य है, अशुचि है,
अशुचि में उत्पन्न है, आत्मा का यह अशाश्वत
आवाम है तथा दुःख और क्लेशों का
भाजन है ।

१३—असासए^१ शरीरमि
रडं नोवलभामह ।
पच्छा पुरा व चडयञ्चे
फेणवुव्वुयसन्तिभे ॥

अशाश्वते शरीरे
रतिं नोपलभेऽहम् ।
पश्चान् पुरा वा त्यक्तव्ये
फेन-बुद्बुद्-सन्तिभे ॥

१३—“इमं अशाश्वत-शरीर में मुझे
आनन्द नहीं मिल रहा है । इमे पहले या पीछे
जब कभी छोड़ता है । यह पानी के बुद्बुदे
के समान नश्वर है ।

१४—माणुसत्ते असारमि
वाहीरोगाणं आलए ।
जरामरणघटथमि
खणं पि न रमामऽहं ॥

मानुषत्वे असारे
व्याधि-रोगाणामालये ।
जरा-मरण-ग्रस्ते
क्षणमपि न रमेऽहम् ॥

१४—“मनुष्य-जीवन असार है, व्याधि
और रोगों का घर है, जरा और मरण से ग्रस्त
है । इसमें मुझे एक क्षण भी आनन्द नहीं मिल
रहा है ।

१५—जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं
रोगा यं मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हं ससारो
जत्थं कीसन्ति जन्तवो^२ ॥

जन्म दुःखं जरादुःखं
रोगाश्च मरणानि च ।
अहो दुःखं खलु ससारं
यत्र क्लिश्यन्ति जन्तवः ॥

१५—“जन्म दुःख है, बुढ़ापा दुःख है,
रोग दुःख है और मृत्यु दुःख है । अहो !
ससार दुःख ही है, जिसमें जीव क्लेश पा
रहे हैं ।

१६—खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च
पुत्तदारं च बन्धवा^३ ।
चडत्ताणं इमं देहं
गन्तव्वमवसस्स मे ॥

क्षेत्रा वास्तु हिरण्यं च
पुत्र-दाराश्च बान्धवान् ।
त्यक्त्वेमं देहं
गन्तव्यमवशस्य मे ॥

१६—“भूमि, घर, सोना, पुत्र, स्त्री,
बान्धव और इस शरीर को छोड़ कर मुझे
अवश हो चले जाना है ।

१. आसागए (अ, उ) ।

२. जन्तुणो (आ, ऋ०), पाणिणो (उ, स) ।

३. बन्धव (उ) ।

१७—जहा किम्पागफलाण
परिणामो न सुन्दरो ।
एव भुत्ताण भोगाणं
परिणामो न सुन्दरो ॥

यथा किम्पाक-फलाना
परिणामो न सुन्दरः ।
एव भुक्ताना भोगाना
परिणामो न सुन्दरः ॥

१७—“जिम प्रकार किम्पाक-फल खाने
का परिणाम सुन्दर नहीं होता उमी प्रकार
भोगे हुए भोगो का परिणाम भी सुन्दर नहीं
होता ।

१८—अद्धाणं जो महन्त तु
अपाहेओ पवज्जई ।
गच्छन्तो सो दुही होइ
छुहातण्हाए पीडिओ ॥

अध्वान यो महान्त तु
अपाथेयः प्रव्रजति ।
गच्छन् स दुःखी भवति
क्षुधा-तृष्णया पीडितः ॥

१८—“जो मनुष्य लम्बा मार्ग लेता है
और साथ में मम्बल नहीं लेता, वह भूख और
प्यास से पीडित हो कर चलता हुआ दुःखी
होता है ।

१९—एव धम्म अकाऊण
जो गच्छइ पर भव ।
गच्छन्तो सो दुही होइ
वाहीरोगेहि पीडिओ ॥

एव धर्ममकृत्वा
यो गच्छति पर भवम् ।
गच्छन् स दुःखी भवति
व्याधि-रोगैः पीडितः ॥

१९—“इसी प्रकार जो मनुष्य धर्म किए
बिना परभव में जाता है वह व्याधि और रोग
से पीडित होकर जीवन-यापन करता हुआ
दुःखी होता है ।

२०—अद्धाण जो महन्त तु
सपाहेओ पवज्जई ।
गच्छन्तो सो सुही होइ
छुहातण्हाविवज्जिओ ॥

अध्वान यो महान्त तु
सपाथेयः प्रव्रजति ।
गच्छन् स सुखी भवति
क्षुधा-तृष्णा-विवर्जितः ॥

२०—“जो मनुष्य लम्बा मार्ग लेता है,
किन्तु नम्बल के साथ, वह भूख-प्यास से रहित
हो कर चलता हुआ सुखी होता है ।

२१—एव धम्म पि काऊण
जो गच्छइ पर भव ।
गच्छन्तो सो सुही होइ
अप्पकम्मे अवेयणे ॥

एव धर्ममपि कृत्वा
यो गच्छति पर भवम् ।
गच्छन् स सुखी भवति
अल्पकर्माऽवेदनः ॥

२१—“इसी प्रकार जो मनुष्य धर्म की
आराधना कर परभव में जाता है, वह अल्प-
कर्म वाला और वेदना रहित हो कर जीवन-
यापन करता हुआ सुखी होता है ।

२२—जहा गेहे पलित्तम्मि
तस्स गेहस्स जो पहू ।
सारभण्डाणि नीणेइ
असार अवउज्झइ ॥

यथा गेहे प्रदीप्ते
तस्य गेहस्य यः प्रभुः ।
सार-भाण्डानि गमयति
असारमपोज्झति ॥

२२—“जैसे घर में आग लग जाने पर
उस घर का जो स्वामी होता है, वह मूल्यवान्
वस्तुओं को उसमें से निकालता है और मूल्य-
हीन वस्तुओं को वही छोड़ देता है,

२३—एव लोए पलित्तम्मि
जराए मरणेण य ।
अप्पाण तारइस्सामि
, तुब्भेहिं अणुमन्निओ ॥

एव लोके-प्रदीप्ते
जरया मरणेन च ।
आत्मान तारयिष्यामि
युष्माभिरनुमतः ॥

२३—“इसी प्रकार यह लोक जरा और मृत्यु से प्रज्वलित हो रहा है । मैं आपकी आज्ञा पाकर उसमें से अपने आपको निकालूँगा ।”

२४—त विंत्त ऽम्मापियरो
सामण्ण पुत्त । दुच्चर ।
गुणाण तु सहस्साइ
धारेयव्वाइ भिक्खुणो^१ ॥

तबूतोऽम्बापितरो
श्रामण्य पुत्र । दुश्चरम् ।
गुणाना तु सहस्राणि
धारयितव्यानि भिक्षोः ॥

२४—माता-पिता ने उससे कहा—
“पुत्र । श्रामण्य का आचरण बहुत कठिन है ।
भिक्षु को हजारों गुण धारण करने होते हैं ।

२५—समया सव्वभूएसु
सत्तुमित्तेसु वा जगे ।
पाणाइवायविरई
जावज्जीवाए दुक्करा^२ ॥

समता सर्व-भूतेषु
शत्रु-मित्रेषु वा जगति ।
प्राणातिपात-विरतिः
यावज्जीव दुष्करा ॥

२५—“विश्व के शत्रु और मित्र सभी जीवों के प्रति समभाव रखना और यावज्जीवन प्राणातिपात की विरति करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

२६—निच्चकालऽप्पमत्तेण
मुसावायविवज्जण ।
भासियव्व हिय सच्च
निच्चाउत्तेण दुक्कर ॥

नित्य-कालाप्रमत्तेन
मृषावाद-विवर्जनम् ।
भाषितव्य हित सत्य
नित्यायुक्तेन दुष्करम् ॥

२६—“सदा अप्रमत्त रह कर मृषावाद का वर्जन करना और सतत सावधान रह कर हितकारी सत्य वचन बोलना बहुत ही कठिन कार्य है ।

२७—दन्तसोहणमाइस्स
अदत्तस्स विवज्जण ।
अणवज्जेसणिज्जस्स
गेप्फणा अवि दुक्कर ॥

दन्तशोधनादे
अदत्तस्य विवर्जनम् ।
अनवद्यैषणीयस्य
ग्रहणमपि दुष्करम् ॥

२७—“दन्तों आदि को भी बिना दिए न लेना और ऐसी दत्त वस्तु भी वही लेना, जो अनवद्य और एषणीय हो बहुत ही कठिन कार्य है ।

२८—विरई अवम्भचेरस्स
कामभोगरसन्तुणा ।
उग्ग महव्वय वम्भ
धारेयव्व सुदुक्कर ॥

विरतिरब्रह्मचर्यस्य
काम-भोग-रसज्ञेन ।
उग्र महाव्रत ब्रह्म
धारयितव्य सुदुष्करम् ॥

२८—“काम-भोग का रस जानने वाले व्यक्ति के लिए अब्रह्मचर्य की विरति करना और उग्र ब्रह्मचर्य महाव्रत को धारण करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

१ भिक्खुणा (वृ०), भिक्खुणो (वृ० पा०) ।

२ दुक्कर (वृ०, छ०) ।

२९—धणधन्तपेसवग्गेसु
परिग्गहविवज्जण^१ ।
सव्वारम्भपरिच्चाओ
निम्ममत्त सुदुक्कर ॥

३०—चउव्विहे वि आहारे
राईभोयणवज्जणा ।
सन्निहीसचओ चेव
वज्जेयव्वो सुदुक्करो^२ ॥

३१—छुहा तण्हा य सीउण्ह
दसमसगवेयणा ।
अक्कोसा दुक्खसेज्जा य
तणफासा जल्लमेव य ॥

३२—तालणा तज्जणा चेव
वहवन्धपरीसहा ।
दुक्ख भिक्षायरिया
जायणा य अलाभया ॥

३३—कावोया जा इमा वित्ती
केसलोओ य दारुणो ।
दुक्ख बम्भवय घोर
धारेउ अ महप्पणो ॥

३४—सुहोइओ तुम पुत्ता !
सुकुमालो सुमज्जिओ ।
न हु सी पभू तुमं पुत्ता !
सामणमणुपालिउ^३ ॥

धन-धान्य-प्रेष्यवर्गेषु
परिग्रह-विवर्जनम् ।
सर्वारम्भ-परित्यागः
निर्ममत्त्वं सुदुष्करम् ॥

चतुर्विधेऽप्याहारे
रात्रि-भोजन-वर्जनम् ।
सन्निधि-सचयश्चैव
वर्जयितव्यं सुदुष्करः ॥

क्षुधा तृषा च शीतोष्ण
दश-मशक-वेदना ।
आक्रोशा दुःख-शय्या च
तृण-स्पर्शा 'जल्ल' मेव च ॥

ताडना तर्जना चैव
वध-वन्धौ परीषहौ ।
दुःख भिक्षा-चर्या
याचना चालाभता ॥

कापोती येय वृत्तिः
केश-लोचश्च दारुणः ।
दुःख ब्रह्मव्रत घोर
धारयितुं च महात्मनः ॥

सुखोचितस्त्व पुत्र !
सुकुमारश्च सुमज्जितः ।
न खलु असि प्रभुस्त्व पुत्र !
श्रामण्यमनुपालयितुम् ॥

२९—“धन-धान्य और प्रेष्य-वर्ग के
परिग्रहण का वर्जन करना, सब आरम्भों (द्रव्य
की उत्पत्ति के व्यापारों) और ममत्व का
त्याग करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

३०—“चतुर्विध आहार को रात्रि में खाने
का त्याग करना तथा सन्निधि और सचय का
वर्जन करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

३१—“भूख, प्यास, गर्मी, ठंडा
और मच्छरों का कण्ट, आक्रोश-वचन, कण्टप्रद
उपाश्रय, घास का त्रिद्यौना, मेल,

३२—ताडना, तर्जना, वध, बन्धन का
कण्ट, भिक्षा-चर्या, याचना और अलाभ—इन्हें
सहन करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

३३—“यह जो कापोती-वृत्ति (कबूतर के
समान दोष-भीरु वृत्ति), दारुण केश-लोच
और घोर-ब्रह्मचर्य को धारण करना है, वह
महान् आत्माओं के लिए भी दुष्कर है ।

३४—“पुत्र ! तू सुख भोगने योग्य है,
सुकुमार है, साफ-सुथरा रहने वाला है । पुत्र !
तू श्रामण्य का पालन करने के लिए समर्थ
नहीं है ।

१ • विवज्जणा (आ, इ, श्रु०) ।

२. सुदुक्कर (उ) ।

३ • पालिया (अ, आ, इ, उ, छ०) ।

३५—जावज्जीवमविस्सामो
गुणाण तु महाभरो ।
गुरुओ लोहभारो व्व
जो पुत्ता । होइ दुव्वहो ॥

यावज्जीवमविश्राम
गुणाना तु महाभरः ।
गुरुको लोहभार इव
यः पुत्र ! भवति दुर्वह ॥

३५—“पुत्र ! श्रामण्य में जीवन पर्यन्त
विश्राम नहीं है । यह गुणों का महान् भार
है । भारी भरकम लोह-भार की भाँति डमे
उठाना बहुत ही कठिन है ।

३६—आगासे गगसोउ व्व
पडिसोओ व्व दुत्तरो ।
वाहाहि सागरो चेव
तरियव्वो गुणोयहो ॥

आकाशे गङ्गा-स्रोत इव
प्रतिस्रोत इव दुस्तरः ।
बाहुभ्यां सागरश्चैव
तरितव्यो गुणोदधिः ॥

३६—“आकाश-गंगा के स्रोत, प्रति-स्रोत
और भुजाओं से सागर को तैरना जैसे कठिन
कार्य है वैसे ही गुणोदवि-सयम को तैरना
कठिन कार्य है ।

३७—वालुयाकवले^१ चेव
निरस्साए उ^२ सजमे ।
असिधारागमण चेव
दुक्कर चरिउ तवो ॥

वालुका-कवलश्चैव
निरास्वादस्तु सयमः ।
असि-धारा-गमन चेव
दुष्कर चरितु तपः ॥

३७—“सयम वालू के कोर की तरह
स्वाद-रहित है । तप का आचरण करना
तलवार की धार पर चलने जैसा है ।

३८—अहीवेगन्तदिट्ठीए
चरित्ते पुत्त । दुच्चरे ।
जवा लोहमया चेव
चावेयव्वा सुदुक्कर ॥

अहिरिवैकान्तदृष्टया
चारित्र्य पुत्र ! दुश्चरम् ।
यवा लोहमयाश्चैव
चर्वयितव्या सुदुष्करम् ॥

३८—“पुत्र ! साँप जैसे एकाग्र-दृष्टि से
चलता है, वैसे एकाग्र-दृष्टि से चारित्र्य का
पालन करना बहुत ही कठिन कार्य है । लोहे
के जवों को चवाना जैसे कठिन है वैसे ही
चारित्र्य का पालन कठिन है ।

३९—जहा अगिसिहा दित्ता
पाउ होइ सुदुक्कर^३ ।
तह दुक्कर करेउ जे
तारुण्ये समणत्तण ॥

यथान्निशिखा दीप्ता
पातु भवति सुदुष्करम् ।
तथा दुष्कर कर्तुं 'जे'
तारुण्ये श्रमणत्वम् ॥

३९—“जैसे प्रज्वलित अग्नि-शिखा को
पीना बहुत ही कठिन कार्य है वैसे ही यौवन
में श्रमण-धर्म का पालन करना कठिन कार्य है ।

४०—जहा दुक्ख भरेउ जे
होइ वायस्स कोत्थलो ।
तहा दुक्ख करेउ जे
कीवेण समणत्तण ॥

यथा दुःख भर्तुं 'जे'
भवति वायो 'कोत्थलो'
तथा दुष्कर कर्तुं 'जे'
क्लीबेन श्रमणत्वम् ॥

४०—“जैसे वस्त्र के थैले को हवा से
भरना कठिन कार्य है वैसे ही सत्वहीन व्यक्ति
के लिए श्रमण-धर्म का पालन करना कठिन
कार्य है ।

१ °कवला (अ) ।

२ व (उ) ।

३ सुदुक्करा (दृ० पा०) ।

४१—जहा तुलाए तोलेउं
दुक्कर मन्दरो गिरी ।
तहा निहुय तीसक
दुक्कर समणत्तण ॥

था तुलया तोलयितुं
दुष्कर मन्दरो गिरिः ।
तथा निभृतं निःशङ्कं
दुष्करं श्रमणत्वम् ॥

४१—“जैसे मेरु-पर्वत को तराजू से तोलना बहुत ही कठिन कार्य है वैसे ही निश्चल और निर्भय भाव से श्रमण-धर्म का पालन करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

४२—जहा भुयाहिं तरिउ
दुक्कर रयणागरो ।
तहा अणुवसन्तेण
दुक्कर' दमसागरो ॥

यथा भुजाभ्यां तरितुं
दुष्करं रत्नाकरः ।
तथाऽनुपशान्तेन
दुष्कर दम-सागरः ॥

४२—“जैसे समुद्र को भुजाओं से तैरना बहुत ही कठिन कार्य है, वैसे ही उपशमहीन व्यक्ति के लिए दमरूपी समुद्र को तैरना बहुत ही कठिन कार्य है ।

४३—भुज माणुस्सए भोगे
पचलक्खणए तुम ।
भुत्तभोगी तओ जाया ।
पच्छा धम्म चरिस्ससि ॥

भुङ्क्व मानुष्याकान् भोगान्
पच-लक्षणकान् त्वम् ।
भुक्त-भोगी ततो जात !
पश्चाद् धर्मं चरेः ॥

४३—“पुत्र ! तू मनुष्य सम्बन्धी पाँच इन्द्रियो के भोगों का भोग कर । फिर मुक्त-भोगी हो कर मुनि-धर्म का आचरण करना ।”

४४—‘त बित्ता ऽम्मापियरो’^१
एवमेय जहा फुड ।
इह लोए निप्पिवासस्स
नत्थि किञ्चि वि दुक्कर ॥

तद् ब्रूतो अम्बापितरौ
एवमेतद् यथास्फुटम् ।
इह लोके निष्पिपासस्य
नास्ति किञ्चिदपि दुष्करम् ॥

४४—मृगापुत्र ने कहा—“माता-पिता ! जो आपने कहा वह सही है किन्तु जिस व्यक्ति की ऐहिक सुखों की प्यास बुझ चुकी है उसके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है ।

४५—सारीरमाणसा चेव
वेयणाओ अणन्तसो ।
मए सोढावो भीमाओ
असइं दुक्खभयाणि य ॥

शारीरमानस्यश्चैव
वेदनास्तु अनन्तश ।
मया सोढा भीमाः
असकृद् दुःख-भयानि च ॥

४५—“मैंने भयकर शारीरिक और मानसिक वेदनाओं को अनन्त बार सहा है और अनेक बार दुःख एवं भय का अनुभव किया है ।

४६—जरामरणकन्तारे
चाउरन्ते भयागरे ।
मए सोढाणि भीमाणि
जम्माणि मरणाणि य ॥

जरा-मरण-कान्तारे
चतुरन्ते भयाकरे ।
मया सोढानि भीमानि
जन्मानि मरणानि च ॥

४६—“मैंने चार अन्त वाले और भय के आकर जन्म-मरणरूपी जगल में भयकर जन्म-मरणों को सहा है ।

१ दुत्तर (आ) ।

२ सो वे अम्मापियरो (उ, वृ० पा०, ऋ०) , तो बेंतऽम्मापियरो (वृ० पा०) ।

४७—जहा इह अगणी उण्हो
‘एत्तोऽणन्तगुणे तर्हि’^१ ।
नरएसु वेयणा उण्हा
अस्साया वेडया मए ॥

४८—जहा ‘इम इह’^२ सीय
‘एत्तोऽणन्तगुणे तर्हि’^३ ।
नरएसु वेयणा सीया
अस्साया वेडया मए ॥

४९—कन्दन्तो कदुकुम्भीसु
उड्ढपाओ अहोसिरो ।
हुयासणे जलन्तम्मि
पक्कपुव्वो अणन्तसो ॥

५०—महादवग्गिसकासे
मरुम्मि वडरवालुए ।
कलम्बवालुयाए य
दड्ढपुव्वो अणन्तसो ॥

५१—रसन्तो कदुकुम्भीसु
उड्ढ वद्धो अवन्धवो ।
करवत्तकरकयाईहि
छिन्नपुव्वो अणन्तसो ॥

५२—अइत्तिक्खकण्टगाइणो
तुंगे सिम्बलिपायवे ।
खेविय^४ पासवद्धेण
कड्ढोकड्ढाहि दुक्कर ॥

ययेहाग्निरुण्णः
इतोऽणन्तगुणस्तत्र ।
नरकेषु वेदना उण्णा
असाता वेदिता मया ॥

ययेदमिह शीतम्
इतोऽणन्तगुण तत्र ।
नरकेषु वेदना शीता
असातावेदिता मया ॥

क्रन्दन् कन्दु-कुम्भीषु
ऊर्ध्व-पादोऽधः-शिराः ।
हुताशने ज्वलति
पक्व-पूर्वोऽणन्तशः ॥

महादवाग्नि-सकाशे
मरौ वज्र-वालुकायाम् ।
कदम्ब-वालुकाया च
दग्ध-पूर्वोऽणन्तशः ॥

रसन् कन्दु-कुम्भीषु
ऊर्ध्व वद्धोऽवान्ववः ।
करपत्र-श्रकचैः
छिन्न-पूर्वोऽणन्तशः ॥

अतितीक्ष्ण-कण्टकाकीर्णं
तुगे शाल्मलि-पादपे ।
क्षेपित पाश-बद्धेन
कर्षापकर्षेर्दुष्करम् ॥

४७—“जैसे यहाँ अग्नि उण्ण है, इससे
अनन्त गुना अधिक दुःखमय उण्ण-वेदना वहाँ
नरक में मैंने सही है ।

४८—“जैसे यहाँ यह शीत है, इससे
अनन्त गुना अधिक दुःखमय शीत-वेदना वहाँ
नरक में मैंने सही है ।

४९—“पकाने के पात्र में, जलती हुई
अग्नि में पैरों को ऊँचा और सिर को नीचा
कर आक्रन्द करता हुआ मैं अनन्त बार पकाया
गया हूँ ।

५०—“महा दवाग्नि और मरु-देश और
वज्रवालुका जैसी कदम्ब नदी के बालू में मैं
अनन्त बार जलाया गया हूँ ।

५१—“मैं पाक-पात्र में त्राण रहित हो
कर आक्रन्द करता हुआ ऊँचा बाधा गया तथा
करवत और आरा आदि के द्वारा अनन्त बार
छेदा गया हूँ ।

५२—“अत्यन्त तीखे काँटों वाले ऊँचे
शाल्मलि वृक्ष पर पाश से बाध, इधर-उधर
खींच कर असह्य वेदना से मैं खिन्न किया
गया हूँ ।

१. इत्तोऽणन्तगुणा तर्हि (वृ० पा०) ।

२. इह इम (उ, ऋ०) ।

३. एत्तोऽणन्तगुणा तर्हि (वृ० पा०) ।

४. खेदिय (वृ०) ।

५३—महाजन्तेसु उच्छू वा
आरसन्तो सुभेरव ।
पीलिओ मि सकम्मेहि
पावकम्मो अणन्तसो ॥

५४—कूवन्तो कोलसुणएहि
सामेहि सबलेहि य ।
पाडिओ फालिओ छिन्नो
विप्फुरन्तो^१ अणेगसो ॥

५५—असीहि^२ अयसिवण्णाहि
भल्लीहि पट्टिसेहि य ।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नो य
ओइण्णो^३ पावकम्मुणा ॥

५६—अवसो लोहरहे जुत्तो
जलन्ते^४ समिलाजुए ।
चोइओ तोत्तजुत्तेहि
रोज्जो वा जह पाडिओ ॥

५७—हुयासणे जलन्तम्मि
चियासु महिसो विव ।
दड्ढो पक्को य अवसो
पावकम्मेहि पाविओ ॥

५८—बला सडासतुण्डेहि
लोहतुण्डेहि पक्खिहि ।
विलुत्तो विलवन्तो ह
ढकगिद्धेहिऽणन्तसो ॥

महायन्त्रोष्णिवधुरिव
आरसन् सुभेरवम् ।
पीडितोऽस्मि स्वकर्मभिः
पाप-कर्माऽनन्तशः ॥

कूजन् कोल-शुनकैः
श्यामैः शबलैश्च ।
पातित स्फाटितः छिन्नः
विस्फुरन्नेकशः ॥

असिभिरतसी-वर्णाभिः
भल्लीभिः पट्टिष्वैश्च ।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नश्च
उपपन्नः पाप-कर्मणा ॥

अवशो लोह-रथे युक्तः
ज्वलति समिला-युते ।
चोदितस्तोत्र-योक्तैः
'रोज्जो' वा यथा पातितः ॥

हुताशने ज्वलति
चितासु महिष इव ।
दग्धः पक्वश्चावशः
पाप-कर्मभिः प्रावृत्तः ॥

बलात् सदश-तुण्डैः
लोह-तुण्डैः पक्षिभिः ।
विलुप्तो विलपन्तहम्
ढक-गृध्रै रनन्तशः ॥

५३—“पापकर्मा मैं अति भयकर आक्रन्द
करता हुआ अपने ही कर्मों द्वारा महायन्त्रों में
झुल की भाँति अनन्त बार पेरा गया हूँ ।

५४—“मैं डघर-उघर जाता और आक्रन्द
करता हुआ काले और चितकचरे सूअर एवं
कुत्तों के द्वारा अनेक बार गिराया, फाटा और
काटा गया हूँ ।

५५—“पाप-कर्मों के द्वारा नरक में
अवतरित हुआ मैं अलसी के फूलों के समान
नीले रंग वाली तलवारों, भट्टियों और लोह-
दण्डों के द्वारा छेदा, भेदा और छोटे-छोटे
टुकड़ों में विभक्त किया गया हूँ ।

५६—“युग-कीलक (जूए के छेदों में
ढाली जाने वाली लकड़ी की कीलों) से युक्त
जलते हुए लोह-रथ में परवश बनाया गया मैं
जोता गया, चावुक और रस्सी के द्वारा हाका
गया तथा रोज की भाँति भूमि पर गिराया
गया हूँ ।

५७—“पाप-कर्मों से घिरा और परवश
हुआ मैं भैसे की भाँति अग्नि की जलती हुई
चिताओं में जलाया और पकाया गया हूँ ।

५८—“सडासी जैसी चोच वाले और
लोहे जैसी कठोर चोच वाले ढक और गीध
पक्षियों के द्वारा विलाप करता हुआ मैं बल-
प्रयोग पूर्वक अनन्त बार नोचा गया हूँ ।

१ विप्फुरन्तो (अ, ऋ०) ।

२ अरसाहि (वृ०) ; असीहि (वृ० पा०) ।

३ उववण्णो (ऋ०) ।

४ जलन्त (वृ० पा०) ।

५९—तण्हाकिलन्तो धावन्तो
पत्तो वेयरणि नदि ।
जरु 'पाहि ति'^१ चिन्तन्तो
खुरधारहि विवाइओ^२ ॥

६०—उण्हाभित्तो सपत्तो
असिपत्त महावण ।
असिपत्तेहि पडन्तेहि
छिन्नपुव्वो अणेगसो^३ ॥

६१—मुग्गरेहि मुसढीहि
सूलेहि मुसलेहि य ।
गयास भग्गगत्तेहि
पत्त दुक्ख अणन्तसो ॥

६२—खुरेहि तिक्खधारेहि^४
छुरियाहि^५ कप्पणीहि य ।
कप्पिओ फालिओ छिन्नो
उक्कतो^६ य अणेगसो^७ ॥

६३—पासेहि कूडजालेहि
मिओ वा अवसो अह ।
वाहिओ^८ बद्धरुद्धो अ
'बहु सो'^९ चेव विवाइओ ॥

तृष्णा-क्लान्तो धावन्
प्राप्तो वंतरणीं नदीम् ।
जल पास्यामीति चिन्तयन्
क्षुर-धाराभिर्विपादितः ॥

उष्णाभितप्तः सप्राप्तः
असि-पत्र महावनम् ।
असि-पत्रोः पतद्भिः
छिन्न-पूर्वोऽनेकशः ॥

मुद्गरैः 'मुसुढीहि'
शूलैर्मुसलैश्च ।
गताश भग्न-गात्रौ.
प्राप्त दुःखमनन्तशः ॥

क्षुरैः तीक्ष्ण-धारैः
क्षुरिकाभिः कल्पनीभिश्च ।
कल्पितः पाटितश्छिन्नः
उत्क्रान्तश्चानेकशः ॥

पाशैः कूट-जालैः
मृग इव अवशोऽहम् ।
वाहितो बद्ध-रुद्धो वा
बहुशश्चैव विपादितः ॥

५९—“प्याम से पीडित होकर मैं दौडता
हुआ वंतरणी नदी पर पहुँचा । जल पीऊँगा—
यह सोच रहा था, इतने में छूरे की धार में मैं
चीरा गया ।

६०—“गर्मी से सतप्त होकर असि-पत्र
महावन में गया । वहाँ गिरते हुए तलवार के
समान तीखे पत्तों से अनेक बार छेदा गया हूँ ।

६१—“मुद्गरो, मुण्डियों, शूलो और
मुसलों से त्राण-हीन दशा में मेरा शरीर चूर-
चूर किया गया—इस प्रकार मैं अनन्त बार
दुःख को प्राप्त हुआ हूँ ।

६२—“तेज धार वाले छूरो, छुरियों और
कंचियों से मैं अनेक बार खण्ड-खण्ड किया
गया, दो टूक किया गया और छेदा गया हूँ
तथा मेरी चमड़ी उतारी गई है ।

६३—“पाशों और कूटजालों द्वारा मृग
की भाँति परवश बना हुआ मैं अनेक बार ठगा
गया, बाँधा गया, रोका गया और मारा
गया हूँ ।

१ पाह ति (वृ०) ।

२ विपाडिओ (वृ०), विवाइओ (वृ० पा०) ।

३, ८ अणत्तसो (उ, ऋ०) ।

४ तिक्ख दाढेहि (उ) ।

५ छुरीहि (ऋ०) ।

६ उक्कित्तो (वृ० पा०, उ) ।

७ गहिओ (वृ० पा०) ।

८ वाहिओ (उ, ऋ०) ।

६४—गलेहिं मगरजालेहिं
मच्छो वा अवसो अह ।
उल्लिओ^१ फालिओ गहिओ
मारिओ य अणन्तसो ॥

गलैर्मकर-जालैः
मत्स्य इव अवशोऽहम् ।
उल्लिखितः पाटितो गृहीतः
मारितश्चाऽनन्तशः ॥

६४—“मछली के फँसाने की कटियों और मगरों को पकड़ने के जालों के द्वारा मत्स्य की तरह परवश बना हुआ मैं अनन्त बार खींचा, फाड़ा, पकड़ा और मारा गया हूँ ।

६५—वीदसएहिं^२ जालेहिं
लेप्पाहिं सउणो विव ।
गहिओ लग्गो^३ बद्धो य
मारिओ य अणन्तसो ॥

विदशकैर्जालैः
लेपैः शकुन इव ।
गृहीतो लग्नो बद्धश्च
मारितश्चाऽनन्तशः ॥

६५—“वाज पक्षियों, जालों और वज्र-लेपों के द्वारा पक्षी की भाँति मैं अनन्त बार पकड़ा, चिपकाया, बाँधा और मारा गया हूँ ।

६६—कुहाडफरसुमाईहिं
वड्ढईहिं दुमो विव ।
कुट्टिओ फालिओ छिन्नो
तच्छिओ य अणन्तसो ॥

कुठार-परश्वादिभिः
वर्धकिभिर्द्रुम इव ।
कुट्टितः पाटितश्छिन्नः
तक्षितश्चाऽनन्तशः ॥

६६—“बडई के द्वारा वृक्ष की भाँति कुल्हाड़ी और फरसा आदि के द्वारा मैं अनन्त बार कूटा, दो टूक किया, छेदा और छीला गया हूँ ।

६७—चवेडमुट्टिमाईहिं
कुमारेहिं अय पिव ।
ताडिओ कुट्टिओ भिन्नो
चुणिओ य अणन्तसो ॥

चपेटा-मुष्ट्यादिभिः
कुमारै रय इव ।
ताडितः कुट्टितो भिन्नः
चूर्णितश्चाऽनन्तशः ॥

६७—“लोहार के द्वारा लोह की भाँति चपत और मुट्ठी आदि के द्वारा मैं अनन्त बार पीटा, कूटा, भेदा और चूरा किया गया हूँ ।

६८—तत्ताइ तम्बलोहाइं
तउयाइ सीसयाणि य ।
पाइओ कलकलन्ताइं
आरसन्तो सुभेरवं ॥

तप्तानि ताम्र-लोहानि
श्रपुकानि सीसकानि च ।
पायितः कलकलायमानानि
आरसन् सुभैरवम् ॥

६८—“भयकर आक्रन्द करते हुए मुखे गर्म और कलकल शब्द करता हुआ तावा, लोहा, रांगा और सीसा पिलाया गया ।

१ अल्लिओ (उ, ऋ०) ।

२ वीसदएहिं (ऋ०), वीस देहिण (उ) ।

३ भग्गो (अ) ।

६९—तुह पियाइ मसाइ
खण्डाईं सोल्लाणि य ।
खाविओ मि^१ समसाइ
अग्निवण्णाइ णेगसो ॥

तव प्रियाणि मासानि
खण्डानि शूल्यकानि च ।
खादितोऽस्मि स्व-मासानि
अग्निवर्णान्यनेकशः ॥

६९—“तुझे खण्ड किया हुआ और शूल में
खोंस कर पकाया हुआ मास प्रिय था—यह
याद दिलाकर मेरे शरीर का मास काट अग्नि
जैसा लाल कर मुझे खिलाया गया ।

७०—तुह पिया सुरा सीहू
मेरओ य महुणि य ।
पाइओ^२ मि जलन्तीओ
वसाओ रुहिराणि य ॥

तव प्रिया सुरा सीधु
मेरकश्च मधूनि च ।
पायितोऽस्मि ज्वलन्तीः
वसा रुधिराणि च ॥

७०—“तुझे सुरा, सीधु, मेरेय और मधु—
ये मदिराएँ प्रिय थीं—यह याद दिलाकर मुझे
जलती हुई चर्वी और रुधिर पिलाया गया ।

७१—निच्च^३ भीएण तत्येण
दुहिएण वहिएण य ।
परमा दुहसवद्धा
वेयणा वेइया मए ॥

नित्य भीतेन त्रस्तेन
दुःखितेन व्यथितेन च ।
परमा दुःख-सवद्धा
वेदना वेदिता मया ॥

७१—“सदा भयभीत, सत्रस्त, दुःखित
और व्यथित रूप में रहते हुए मैंने परम दुःखमय
वेदना का अनुभव किया है ।

७२—तिव्वचण्डप्पगाढाओ
घोराओ अइदुस्सहा ।
महवभयाओ^४ भीमाओ
नरएसु वेइया मए ॥

तीव्र-चण्ड-प्रगाढा
घोरा अतिदुस्सहाः ।
महाभया भीमाः
नरकेषु वेदिता मया ॥

७२—“तीव्र, चण्ड, प्रगाढ, घोर, अत्यन्त
दुःसह, भीम और अत्यन्त भयंकर वेदनाओं का
मैंने नरक-लोक में अनुभव किया है ।

७३—जारिसा माणुसे लोए
ताया । दीसन्ति वेयणा ।
एत्तो^५ अणन्तगुणिया
नरएसु दुक्खवेयणा ॥

यादृश्यो मानुषे लोके
तात ! दृश्यन्ते वेदनाः ।
इतोऽनन्तगुणिताः
नरकेषु दुःख-वेदनाः ॥

७३—“माता-पिता ! मनुष्य-लोक में
जैसी वेदना है उससे अनन्तगुणा अधिक दुःख
देने वाली वेदना नरक-लोक में है ।

१ वि (ऋ०) ।

२ पज्जितो (वृ०) ।

३ निच्च (अ, ऋ०) ।

४ महालया (वृ० पा०) ।

५ तत्तो (अ) ; इत्तो (उ, ऋ०) ।

७४—सव्वभवेसु अस्साया
वेयणा वेइया मए ।
निमेसन्तरमित्त पि
जं साया नत्थि वेयणा ॥

७५—त बित्तस्मापियरो
छन्देण पुत्त । पव्वया ।
नवर पुण सामण्ये
दुक्ख निप्पडिकम्मया ॥

७६—सो बित्त स्मापियरो !
एवमेय जहाफुड ।
पडिकम्म को कुणई
अरण्ये मियपक्खिण ? ॥

७७—एगभूओ अरण्ये वा
जहा उ चरई मिगो ।
एव धम्म चरिस्सामि
सजमेण तवेण य ॥

७८—जया मिगस्स आयको
महारणम्मि जायई ।
अच्छन्तं रुक्खमूलम्मि
को ण ताहे तिगिच्छई^१ ? ॥

७९—को वा से ओसह देई ?
को वा से पुच्छई सुह ? ।
को से भत्त च 'पाण च'^२
आहरित्त पणामए ? ॥

सर्व-भवेष्वसाता
वेदना वेदिता मया ।
निमेषान्तर-मात्रमपि
यत् साता नास्ति वेदना ॥

त ब्रूतोऽम्बापितरो
छन्दसा पुत्र ! प्रव्रज ।
'नवर' पुन श्रामण्ये
दुःखं निष्प्रतिकर्मता ॥

स ब्रूतेऽम्बापितरो !
एवमेतद् यथास्फुटम् ।
प्रतिकर्म कः करोति
अरण्ये मृग-पक्षिणाम् ? ॥

एकभूतोऽरण्ये वा
यथा तु चरति मृगः ।
एव धर्मं चरिष्यामि
सयमेन तपसा च ॥

यथा मृगस्यातङ्कः
महारण्ये जायते ।
तिष्ठन्तं वृक्ष-मूले
क एनं तदा चिकित्सति ? ॥

को वा तस्मै औषध दत्ते ?
को वा तस्य पृच्छति सुखम् ? ।
कस्तस्मै भक्त च पानं च
आहृत्यार्पयेत् ? ॥

७४—“मैंने सभी जन्मों में दुःखमय वेदना का अनुभव किया है । वहाँ एक निमेष का अन्तर पड़े उतनी भी मुखमय वेदना नहीं है ।”

७५—माता-पिता ने उससे कहा—“पुत्र ! तुम्हारी इच्छा है तो प्रव्रजित हो जाओ । परन्तु श्रमण बनने के बाद रोगों की चिकित्सा नहीं की जाती, यह कितना कठिन मार्ग है । (यह जानते हो ?)”

७६—उसने कहा—“माता-पिता ! आपने जो कहा वह ठीक है । किन्तु जगल में रहने वाले हरिण और पक्षियों की चिकित्सा कौन करता है ?

७७—“जैसे जगल में हरिण अकेला विचरता है, वैसे मैं भी सयम और तप के साथ एकाकी भाव को प्राप्त कर धर्म का आचरण करूँगा ।

७८—“जब महावन में हरिण के शरीर में आतक उत्पन्न होता है तब किसी वृक्ष के पास बैठे हुए उस हरिण की कौन चिकित्सा करता है ?

७९—“कौन उसे औषध देता है ? कौन उससे सुख की बात पूछता है ? कौन उसे खाने-पीने को भक्त-पान लाकर देता है ?

१ विगिच्छई (उ), चिगिच्छई (ऋ०) ।

२ पाण वा (ऋ०) ।

८०—जया य से सुही होइ
तया गच्छइ गोयरं ।
भक्तपाणस्स अट्ठाए
वल्लराणि सराणि य ॥

८१—खाइत्ता पाणिय पाउ
वल्लरेहि सरेहि वा ।
मिगचारिय चरित्ताण
गच्छई मिगचारिय ॥

८२—एव समुट्ठिओ भिक्खू
एवमेव अणेगओ^१ ।
मिगचारिय चरित्ताणं
उड्ढ पक्कमई दिस ॥

८३—जहा मिगे एग अणेगचारी
अणेगवासे धुवगोयरे य ।
एव मुणी गोयरिय पविट्ठे
नो हीलए नो वि य खिसएज्जा ॥

८४—मिगचारिय चरिस्सामि
एव पुत्ता । जहासुह ।
अम्मापिउहिअणुन्नाओ
जहाइ उवहि तओ ॥

८५—मियचारिय चरिस्सामि
सव्वदुक्खविमोक्खणि ।
तुवभेहि अम्म ! ऽणुन्नाओ
गच्छ पुत्त । जहासुह ॥

यदा च स सुखी भवति
तदा गच्छति गोचरम् ।
भक्त-पानस्याऽर्याय
वल्लराणि सरासि च ॥

खादित्वा पानीय पीत्वा
वल्लरेषु सरस्तु वा ।
मृग-चारिकां चरित्वा
गच्छति मृग-चारिकाम् ॥

एवं समुत्थितो भिक्षुः
एवमेवाऽनेकगः ।
मृग-चारिका चरित्वा
ऊर्ध्वा प्रकामति दिशम् ॥

यथा मृग एकोऽनेकचारी
अनेकवासो ध्रुव-गोचरश्च ।
एव मुनिर्गोचर्या प्रविष्टः
नो हीलयेन्नो अपि च खिसयेत् ॥

मृग-चारिका चरिष्यामि
एव पुत्र ! यथासुखम् ।
अम्बापितृभ्यामनुज्ञात
जहात्युर्पाध ततः ॥

मृग-चारिका चरिष्यामि
सर्व-दुःख-विमोक्षणीम् ।
युवाभ्यामम्ब ! अनुज्ञातः
गच्छ पुत्र ! यथासुखम् ॥

८०—“जब वह स्वस्थ हो जाता है तब
गोचर में जाता है । खाने-पीने के लिए लता-
निकुजों और जलाशयों में जाता है ।

८१—“लता-निकुजों और जलाशयों में
खा-पीकर वह मृग-चर्या (कुदान) के द्वारा
मृग-चर्या (स्वतन्त्र-विहार) को चला
जाता है ।

८२—“इसी प्रकार समय के लिए उठा
हुआ भिक्षु स्वतन्त्र विहार करता हुआ मृग-
चर्या का आचरण कर ऊँची-दिशा—मोक्ष को
चला जाता है ।

८३—“जिस प्रकार हरिण अकेला अनेक
स्थानों में भक्त-पान लेने वाला, अनेक स्थानों
में रहने वाला और गोचर से ही जीवन-यापन
करने वाला होता है, उसी प्रकार गोचर-
प्रविष्ट मुनि जब भिक्षा के लिए जाता है
तब किसी की अवज्ञा और निन्दा नहीं करता ।

८४—“मैं मृग-चर्या का आचरण करूँगा ।”
“पुत्र ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसे करो ।” इस
प्रकार माता-पिता की अनुमति पाकर वह
उपधि को छोड़ रहा है ।

८५—“मैं तुम्हारी अनुमति पाकर सब
दुःखों से मुक्ति दिलाने वाली मृग-चर्या का
आचरण करूँगा ।” (माता-पिता ने कहा) —
“पुत्र ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसे करो ।”

८६—एव सो अम्मापियरो
अणुमाणित्ताण बहुविह ।
ममत्त छिन्दई ताहे
महानागो व्व कच्चुय ॥

एव सोऽम्बापितरौ
अनुमान्य बहुविधम् ।
ममत्वं छिनत्ति तदा
महानाग इव कच्चुकम् ॥

८६—“इस प्रकार वह नाना उपायो से
माता-पिता को अनुमति के लिए राजी कर
ममत्व का छेदन कर रहा है जैसे महानाग
काचुली का छेदन करता है ।

८७—इडिंढ^१ वित्त च मित्ते य
पुत्तदार च नायओ ।
रेणुय व पडे लग्गं
निद्धुणित्ताण निग्गओ ॥

ऋद्धि वित्त च मित्राणि च
पुत्र-दाराश्च ज्ञातोन् ।
रेणुकमिव पटे लग्न
निर्धूय निर्गत ॥

८७—“ऋद्धि, धन, मित्र, पुत्र, कन्य और
ज्ञातिजनो को कपड़े पर लगी हुई धूल को
भाँति झटकाकर वह निकल गया—प्रव्रजित
हो गया ।

८८—पचमहव्वयजुत्तो
पचसमिओ तिगुत्तिगुत्तो य ।
सग्भिन्तरवाहिरओ
तवोकम्मसि उज्जुओ ॥

पञ्चमहाव्रत-युक्त
पञ्चभि समितस्त्रिगुप्ति-गुप्तश्च ।
साभ्यन्तरवाह्ये
तपः-कर्मणि उद्युक्तः ॥

८८—“वह पाँच महाव्रतो से युक्त, पाँच
समितियों से समित, तीन गुतियों से गुप्त,
आन्तरिक और बाहरी तपस्या में तत्पर—

८९—निम्ममो निरहकारो
निस्सगो चत्तगारवो ।
समो य सव्वभूएसु
तसेसु थावरेसु य ॥

निर्ममो निरहकारः
निस्सङ्गस्त्यक्त-गौरवः ।
समश्च सर्व-भूतेषु
त्रसेषु स्थावरेषु च ॥

८९—“ममत्व-रहित, अहकार-रहित,
निरलेप, गौरव को त्यागने वाला, घस और
स्थायर सभी जीवों में समभाव रखने वाला—

९०—लाभालाभे सुहे दुक्खे
जीविए मरणे तहा ।
समो निन्दापससासु
तहा माणावमाणओ ॥

लाभालाभे सुखे दुःखे
जीविते मरणे तथा ।
समो निन्दा-प्रशंसयो
तथा मानापमानयोः ॥

९०—“लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-
मरण, निन्दा-प्रशंसा, मान-अपमान में सम
रहने वाला—

९१—गारवेसु कसाएसु
दण्डसल्लभएसु य ।
नियत्तो हाससोगाओ
अनियाणो अबन्धणो ॥

गौरवेभ्यः कषायेभ्यः
दण्ड-शल्य-भयेभ्यश्च ।
निवृत्तो हास्य-शोकात्
अनिदानोऽबन्धनः ॥

९१—“गौरव, कषाय, दण्ड, शल्य, भय,
हास्य और शोक से निवृत्त, निदान और बन्धन
से रहित—

९२—अणस्सिओ इह लोए
परलोए अणस्सिओ ।
वासीचन्दणकप्पो य
असणे अणसणे तहा ॥

अनिश्रित इह लोके
परलोकेऽनिश्रितः ।
वासी-चन्दन-कल्पश्च
अशनेऽनशने तथा ॥

६२—“इहलोक और परलोक में अनासक्त,
वसूले से काटने और चन्दन लगाने पर तथा
आहार मिलने या न मिलने पर सम रहने
वाला—

९३—अप्पसत्थेहि दारेहि
सव्वओ पिहियासवे ।
अज्झप्पज्झाणजोगेहि
पसत्थदमसासणे ॥

अप्रशस्तेभ्यो द्वारेभ्यः
सर्वतः पिहितालवः ।
अध्यात्म-ध्यान-योगैः
प्रशस्त-दम-शासनः ॥

६३—“प्रशस्त द्वारों से आने वाले कर्म-
पुद्गलों का सर्वतोनिरोध करने वाला, शुभ-
ध्यान की प्रवृत्ति से प्रशस्त एवं उपगम-प्रधान
शासन में रहने वाला हुआ ।

९४—एव नाणेण चरणेण
दसणेण तवेण य ।
भावणाहि ‘य सुद्धाहि’
सम्म भावेत् अप्पय ॥

एवं ज्ञानेन चरणेन
दर्शनेन तपसा च ।
भावनाभिश्च शुद्धाभिः
सम्यग् भावयित्वाऽऽत्मानम् ॥

६४—“इस प्रकार ज्ञान, चारित्र्य, तप और
विशुद्ध भावनाओं के द्वारा आत्मा को भली-
भाँति भावित कर—

९५—वहुयाणि उ^२ वासाणि
सामण्णमणुपालिया ।
मासिएण उ^३ भत्तेण
सिद्धि पत्तो अणुत्तर ॥

बहुकानि तु वर्षाणि
श्रामण्यमनुपाल्य ।
मासिकेन तु भक्तेन
सिद्धि प्राप्तोऽनुत्तराम् ॥

६५—“बहुत वर्षों तक श्रमण-धर्म का
पालन कर, अन्त में एक महीने का अनशन कर
वह अनुत्तर सिद्धि—मोक्ष को प्राप्त हुआ ।

९६—एव करन्ति सबुद्धा^१
पण्डिया पवियक्खणा ।
विणियट्टन्ति भोगेसु
मियापुत्ते जहारिसी^५ ॥

एव कुर्वन्ति सबुद्धाः
पण्डिताः प्रविचक्षणाः ।
विनिवर्तन्ते भोगेभ्यः
मृगा-पुत्रो यथा ऋषि ॥

६६—“सबुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण जो
होते हैं वे ऐसा करते हैं । वे भोगों से उसी
प्रकार निवृत्त होते हैं, जिस प्रकार मृगा-पुत्र
ऋषि हुए थे ।

१ विच्छद्वाहि (वृ०, छ) ।

२. ओ (उ), अ (अ०) ।

३. य (अ) ।

४ सपन्ना (उ, वृ०) ।

५ जहामिसी (वृ०, छ) ।

९७—महापभावस्स महाजसस्स
मियाइ पुत्तस्स निसम्म भासियं ।
तवप्पहाण चरिय^१ च उत्तमं
गइप्पहाण च तिलोगविस्सुय ॥

९८—वियाणिया दुक्खविवद्धण धण
ममत्तबध च महब्भयावह ।
सुहावह धम्मधुर अणुत्तरं
धारेह निब्बाणगुणावहं^२ मह ॥
—ति बेमि ॥

महाप्रभावस्य महायशसः
मृगायाः पुत्रस्य निशम्य भाषितम् ।
तपः-प्रधानं चरित चोत्तम
प्रधान-गतिं च त्रिलोक-विश्रुताम् ॥

विज्ञाय दुःख-विवर्धनं धनं
ममत्व-बन्ध च महाभयावहम् ।
सुखावहा धर्म-धुरामनुत्तरा
धारय निर्वाण-गुणावहां महतीम् ॥
—इति ब्रवीमि ।

६७—“महा प्रभावशाली, महान् यशस्वी
मृगा-पुत्र का कथन, तप-प्रधान उत्तम-
आचरण और त्रिलोक-विश्रुत प्रधान-गति
(मोक्ष) को सुनकर—

६८—धन को दुःख बढ़ानेवाला और ममता
के बन्धन को महान् भयकर जानकर सुख देने
वाली, अनुत्तर निर्वाण के गुणों को प्राप्त कराने
वाली, महान् धर्म की धुरा को धारण करो ।”
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१ चरित्त (अ) ।

२. नेब्बाणु° (अ) ।

विसङ्गमं अङ्गयणं :
महानियण्ठिज्जं

विशति अध्ययन :
महानिर्ग्रन्थीय

आस्तुरा

मगध देश का सम्राट् श्रेणिक एक बार विहार-यात्रा के लिए मडितकुक्षि नामक उद्यान में आया। घूम-फिर कर उसने उद्यान की शोभा निहारी। देखते-देखते उसकी आँखें एक ध्यानस्थ मुनि पर जा टिकीं। राजा पास में गया। वन्दना की। मुनि के रूप-लावण्य को देख वह अत्यन्त विस्मित हुआ। उसने पूछा—‘मुने! भोग-काल में सन्यास-ग्रहण की बात समझ में नहीं आती। आप तरुण हैं, भोग भोगने योग्य हैं। इस अवस्था में आप मुनि क्यों बने?’ मुनि ने कहा—‘राजन्! मैं अनाथ हूँ। मेरा कोई भी नाथ नहीं है, त्राण नहीं है। इसीलिए मैं मुनि बना हूँ।’ राजा ने मुस्कराते हुए कहा—‘शरीर-सम्पदा से आप ऐश्वर्यशाली लगते हैं फिर अनाथ कैसे? कुछ भी हो मैं आपका नाथ बनता हूँ। आप मेरे साथ चलें। सुखपूर्वक भोग भोगें। मुने! मनुष्य-भव वार-वार नहीं मिलता।’ मुनि ने कहा—‘तुम स्वयं अनाथ हो। मेरे नाथ कैसे बन सकोगे?’ राजा को यह वाक्य तीर की भाँति चुभा। उसने कहा—‘मुने! आप झूठ क्यों बोलते हैं। मैं अपार-सम्पत्ति का स्वामी हूँ। मेरे राज्य में मेरी हर आज्ञा अखण्ड रूप से प्रवर्तित होती है। मेरे पास हजारों हाथी, घोड़े, रथ, सुभट और नौकर-चाकर हैं। सारी सुख-सामग्री उपनीत है। मेरे आश्रय में हजारों व्यक्ति पलते हैं। ऐसी अवस्था में मैं अनाथ कैसे?’ मुनि ने कहा—‘तुम अनाथ का अर्थ नहीं जानते और नहीं जानते कि कौन व्यक्ति कैसे सनाथ होता है और कैसे अनाथ?’

मुनि ने आगे कहा—‘मैं कौशाम्बी नगरी में रहता था। मेरे पिता अपार धन-राशि के स्वामी थे। हमारा कुल सम्पन्न था। मेरा विवाह उच्च कुल में हुआ था। एक बार मुझे असह्य अक्षि-रोग उत्पन्न हुआ। उसको मिटाने के लिए नानाविध प्रयत्न किए गए। पिता ने अपार धन-राशि का व्यय किया। सभी परिवार वालों ने नानाविध प्रयत्न किए, पर सब व्यर्थ। मेरे सगे-सम्बन्धियों ने मेरी वेदना पर अपार आँसू बहाए। पर मेरी वेदना को वे न बँटा सके। यह थी मेरी अनाथता। यदि इस पीड़ा से मैं मुक्त हो जाऊँ तो मैं मुनि बन जाऊँ—इस सकल को साथ ले मैं सो गया। जैसे-जैसे रात बीती वैसे-वैसे रोग शान्त होता गया। सूर्योदय होते-होते मैं स्वस्थ हो गया। मैं साधु बना—मैं अपना नाथ बन गया। अपना त्राण मैं स्वयं बन गया। त्रस और स्थावर सभी प्राणियों का नाथ बन गया। उन सबको मुझ से त्राण मिल गया। यह है मेरी सनाथता। मैंने आत्मा पर शासन किया—यह है मेरी सनाथता। मैं श्रामण्य का विधिपूर्वक पालना करता हूँ—यह है मेरी सनाथता।’

राजा ने सनाथ और अनाथ का यह अर्थ पहली बार सुना। उसके ज्ञान-चक्षु खुले। वह बोला—‘महर्षे! आप ही वास्तव में सनाथ और सबान्धव हैं। मैं आपसे धर्म का अनुशासन चाहता हूँ।’ (श्लोक ५५)

मुनि ने उसे निर्ग्रन्थ धर्म की दीक्षा दी। वह धर्म में अनुरक्त हो गया।

इस अध्ययन में अनेक विषय चर्चित हुए हैं—

१—आत्मकर्तृत्व के लिए ३६, ३७ एवं ४८ श्लोक मननीय हैं।

२—४४वें श्लोक में विषयोपपन्न धर्म के परिणामों का दिग्दर्शन है। जैसे पीया हुआ कालकूट विष, अविधि से पकड़ा हुआ शस्त्र और अनियन्त्रित वेताल विनाशकारी होता है, वैसे ही विषयों से युक्त धर्म भी विनाशकारी होता है।

३—द्रव्य-लिङ्ग से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती, इसके लिए ४९ से ५० श्लोक मननीय हैं।

मिलाइए—सुप्त निपात—महावग्ग—पवज्जा सुत्त।

विसद्वमं अज्झयणं : विंशति अध्ययन

महानियण्ठज्जं : महानिर्ग्रन्थीयम्

	मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—सिद्धाण	नमो	किञ्चा	सिद्धेभ्यो नमः कृत्वा
सजयाण	च	भावओ ।	सयतेभ्यश्च भावत ।
अत्थधम्मगइ ^१		तच्च	अर्थ-धर्म-गतिं तथ्याम्
अणुसट्ठि	सुणेह	मे ॥	अनुशिष्टि शृणुत मे ॥
२—पभूयरयणो	राया	प्रभूत-रत्नो राजा	२—प्रचुर रत्नो से सम्पन्न, मगध का
सेणिओ	मगहाहिवो ।	श्रेणिको मगधाधिपः ।	अधिपति राजा श्रेणिक मण्डिकुक्षि नामक
विहारजत्त	निज्जाओ	विहार-यात्रा निर्यातः	उद्यान में विहार-यात्रा (क्रीडा-यात्रा) के
मण्डिकुच्छिसि	चेडए ॥	मण्डिकुक्षी चैत्ये ॥	लिए गया ।
३—नाणादुमलयाडण		नाना-द्रुम-लताकीर्णं	३—वह उद्यान नाना प्रकार के द्रुमों
नाणापक्खिनिसेविय		नाना-पक्षि-निषेवितम् ।	और लताओं से आकीर्ण, नाना प्रकार के
नाणाकुसुमसच्छन्न		नाना-कुसुम-सच्छन्नम्	पक्षियों से आश्रित, नाना प्रकार के कुसुमों
उज्जाण	नन्दणोवम ॥	उद्यान नन्दनोपमम् ॥	से पूर्णतः ढका हुआ और नन्दनवन के समान
४—तत्थ सो पासई साहुं		तत्र स पश्यति साधु	४—वहाँ राजा ने सयत, मानसिक
सजय	सुसमाहिय ।	सयत सुसमाहितम् ।	समाधि से सम्पन्न, वृक्ष के पास बैठे हुए
निसन्न	खुखमूलम्मि	निषण्ण वृक्ष-मूले	सुकुमार और सुख भोगने योग्य साधु को
सुकुमाल	सुहोइय ॥	सुकुमार सुखोचितम् ॥	देखा ।
५—तस्स खुव तु पासित्ता		तस्य रूपं तु दृष्ट्वा	५—उसके रूप को देखकर राजा उस
राइणो तम्मि संजए ।		राजा तस्मिन् सयते ।	सयत के प्रति आकृष्ट हुआ और उसे अत्यन्त
अच्चन्तपरमो	आसी	अत्यन्त-परम आसीत्	उत्कृष्ट और अतुलनीय विस्मय हुआ ।
अउलो	खुवविम्हओ ॥	अतुलो रूप-विस्मयः ॥	

१. ० गत (अ), ० वह (वृ० पा०) ।

६—अहो । वण्णो अहो । रुव
अहो । अज्जस्स सोमया ।
अहो । खन्ती अहो । मुत्ती
अहो । भोगे असंगया ॥

अहो ! वर्णो अहो ! रूपम्
अहो ! आर्यस्य सोमता ।
अहो ! क्षान्तिरहो ! मुक्तिः
अहो ! भोगेऽसङ्गता ॥

६—आश्चर्य ! कैसा वर्ण और कैसा रूप है ।
आश्चर्य ! आर्य की कैसी सौम्यता है ।
आश्चर्य ! कैसी क्षमा और निर्लोभता है ।
आश्चर्य ! भोगों में कैसी अनासक्ति है ।

७—तस्स पाए उ वन्दित्ता
काळण य पयाहिण ।
नाइदूरमणासन्ने^१
पजली पडिपुच्छई ॥

तस्य पादौ तु वन्दित्वा,
कृत्वा च प्रदक्षिणाम् ।
नातिदूरमनासन्नः
प्राञ्जलिः प्रतिपृच्छति ॥

७—उसके चरणों में नमस्कार और
प्रदक्षिणा कर न अतिदूर न अतिनिकट रह राजा
ने हाथ जोड़कर पूछा ।

८—तरुणो सि अज्जो । पव्वइओ
भोगकालम्मि सजया । ।
उवट्ठिओ^२ सि सामण्णे
एयमट्ठ सुणेमि ता ॥

तरुणोऽस्यार्य ! प्रव्रजितः
भोग-काले संयत ! ।
उपस्थितोऽसि श्रामण्ये
एतमर्थं शृणोमि तावत् ॥

८—“आर्य ! अभी तुम तरुण हो । संयत !
तुम भोग-काल में प्रव्रजित हुए हो, श्रामण्य के
लिए उपस्थित हुए हो, इसका क्या प्रयोजन है ?
मैं सुनना चाहता हूँ ।”

९—अणाहो मि महाराय !
नाहो मज्झ न विज्जई ।
अणुकम्पग सुहिं वावि
'कचि नाभिसमेमऽहं'^३ ॥

अनाथोऽस्मि महाराज !
नाथो मम न विद्यते ।
अनुकम्पकं सुहृदं वापि
कंचिन्नाभिसमेम्यहम् ॥

९—“महाराज । मैं अनाथ हूँ, मेरा कोई
नाथ नहीं है । मुझ पर अनुकम्पा करने वाला
या मित्र कोई नहीं पा रहा हूँ ।”

१०—तओ सो पहसिओ राया
सेणिओ मगहाहिवो ।
एवं ते इड्ढिमन्तस्स
कह नाहो न विज्जई ? ॥

ततः स प्रहसितो राजा
श्रेणिको मगधाधिपः ।
एव ते ऋद्धिमतः
कथं नाथो न विद्यते ? ॥

१०—यह सुनकर मगधाधिपति राजा
श्रेणिक जोर से हँसा और उसने कहा—“तुम
ऐसे सहज सौभाग्यशाली हो फिर कोई तुम्हारा
नाथ कैसे नहीं होगा ?

१. निसण्णो नाइदूरमि (आ) ।

२. उवहितो (वृ० पा०) ।

३. कचीनाहि तुमे मह (वृ०, उ०) ; कची नाभिसमेमऽहं (वृ० पा०) ।

११—होमि नाहो भयन्ताण ।
भोगे भुजाहि सजया । ।
मित्तनार्हपरिवुडो
माणुस्स खु सुदुल्लह ॥

भवामि नाथो भदन्तानां !
भोगान् भुङ्क्ष्व संयत ! ।
मित्र-ज्ञाति-परिवृत
मानुष्यं खलु दुर्लभम् ॥

११—“हे भदन्त ! मैं तुम्हारा नाथ होता हूँ ।
संयत ! मित्र और ज्ञातियों में परिवृत होकर
विषयों का भोग करो । यह मनुष्य-जन्म बहुत
दुर्लभ है ।”

१२—अप्पणा वि अणाहो सि
सेणिया । मगहाहिवा । ।
अप्पणा अणाहो सन्तो
कह' नाहो भविस्ससि ? ॥

आत्मनाप्यनाथोऽसि
श्रेणिक ! मगधाधिप ! ।
आत्मनाऽनाथ सन्
कथं नाथो भविष्यसि ? ॥

१२—“हे मगध के अधिपति श्रेणिक ! तुम
स्वयं अनाथ हो । मगध अनाथ होते हुए भी तुम
दूसरों के नाथ कैसे होओगे ?”

१३—एव वुत्तो नरिन्दो सो
सुसभन्तो सुविम्हो ।
वयण अस्सुयपुव्व
साहुणा विम्हयन्तिओ^२ ॥

एवमुक्तो नरेन्द्र' स
सुसम्भ्रान्त सुविस्मितः ।
वचनमश्रुतपूर्वं
साधुना विस्मयान्वितः ॥

१३—श्रेणिक पहले ही विस्मयान्वित बना
हुआ था और साधु के द्वारा—तू अनाथ है—
ऐसा अश्रुतपूर्व-वचन कहे जाने पर वह अत्यन्त
व्याकुल और अत्यन्त आश्चर्यमग्न हो गया ।

१४—अस्सा हत्थी मणुस्सा मे
पुर अन्तेउर च मे ।
भुजामि माणुसे भोगे^३
आणाइस्सरिय च मे ॥

अश्वा हस्तिनो मनुष्या मे
पुरमन्तःपुरं च मे ।
भुज्जिमानुषान् भोगान्
आर्जं श्वर्यं च मे ॥

१४—“मेरे पास हाथी और घोड़े हैं, नगर
और अन्तःपुर हैं, मैं मनुष्य सम्बन्धी भोगों को
भोग रहा हूँ, आज्ञा और ऐश्वर्य मेरे पास हैं ।

१५—एरिसे सम्पयग्गम्मि^४
सव्वकामसमप्पिए ।
कह अणाहो भवइ ?
'मा हु भन्ते ! मुस वए'^५ ॥

ईदृशे सम्पदये
सर्मापित-सर्वकामे ।
कथमनाथो भवामि ?
मा खलु भदन्त ! मृषावादीः ॥

१५—“जिसने मुझे सब काम-भोग समर्पित
किए हैं वैसे उत्कृष्ट सम्पदा होते हुए मैं अनाथ
कैसे हूँ ? भदन्त ! असत्य मत बोलो ।”

१६—न तुम जाणे अणाहस्स
अत्थ 'पोत्थ व'^६ पत्थिवा । ।
जहा अणाहो भवई
सणाहो वा नराहिवा ? ॥

न त्व जानीषेऽनाथस्य
अर्थं प्रोत्था वा पार्थिव ! ।
यथाऽनाथो भवति
सनाथो नराधिप ? ॥

१६—“हे पार्थिव ! तू अनाथ शब्द का अर्थ
और उसकी उत्पत्ति—मैंने तुम्हें अनाथ क्यों
कहा—इसे नहीं जानता, इसलिए जैसे अनाथ
या सनाथ होता है, वैसे नहीं जानता ।

१ कस्स (अ) ।

२ विम्हयन्तिओ (अ, उ, ऋ०) ।

३ लोए (अ) ।

४ सपयायम्मि (वृ० पा०) ।

५ भन्ते ! माहु मुस वए (वृ० पा०) ।

६ उत्थ व (वृ०), पोत्थ च (अ), पोत्थं च (वृ० पा०) ।

१७—सुणेह मे महाराय ।
अव्वक्खित्तेण^१ चेयसा ।
जहा अणाहो भवई
जहा मे य पवत्तिय ॥

१८—कोसम्बी नाम नयरी
पुराणपुरभेयणी^२ ।
तत्थ आसी पिया मज्झ
पभूयधणसचओ ॥

१९—पढमे वए महाराय ।
अउला मे अच्छिवेयणा ।
अहोत्था विउलो^३ दाहो
'सव्वगेसु य'^४ पत्थिवा ॥

२०—सत्थ जहा परमतिकख
सरीरविवरन्तरे^५ ।
पवेसेज्ज^६ अरी कुद्धो
एवं मे अच्छिवेयणा ॥

२१—तिय मे अन्तरिच्छ च
उत्तमग च पीडई ।
इन्दासणिसमा घोरा
वेयणा परमदारुणा ॥

शृणु मे महाराज !
अव्याक्षिप्तेन चेतसा ।
यथाऽनाथो भवति
यथा मया च प्रवर्तितम् ॥

कौशाम्बी नाम नगरी
पुराणपुर-भेदिनी ।
तत्रासीन् पिता मम
प्रभूत-धन-सचयः ॥

प्रथमे वयसि महाराजः !
अतुला मेऽक्षि-वेदना ।
अभूद् विपुलो दाहः
सर्वाङ्गेषु च पार्थिव ! ॥

शस्त्रा यथा परम-तीक्ष्णं
शरीर-विवरान्तरे ।
प्रवेशयेदरि क्रुद्धः
एव मेऽक्षि-वेदना ॥

त्रिकं मे अन्तरेच्छ च
उत्तमाग च पीडयति ।
इन्द्राशनि-समा घोरा
वेदना परम-दारुणा ॥

१७—“महाराज ! तू अव्याकुल चित्त से
सुन—जैसे कोई पुरुष अनाथ होता है और
जिस रूप में मैंने उसका प्रयोग किया है ।

१८—“प्राचीन नगरों में अमाधारण
सुन्दर कौशाम्बी नाम की नगरी है । वहाँ
मेरे पिता रहते हैं । उनके पास प्रचुर धन का
सचय है ।

१९—“महाराज ! प्रथम-वय (यौवन)
में मेरी आँखों में अमाधारण वेदना उत्पन्न
हुई । पार्थिव ! मेरा समूचा शरीर पीड़ा देने
वाली जलन से जल उठा ।

२०—“जैसे कुपित बना हुआ शत्रु शरीर
के छेदों में अत्यन्त तीखे शस्त्रों को घुसेड़ता,
है, उसी प्रकार मेरी आँखों में वेदना हो
रही थी ।

२१—“मेरे कटि, हृदय और मस्तक में
परम दारुण वेदना हो रही थी, जैसे इन्द्र का
वज्र लगने से घोर वेदना होती है ।

१ अविविक्खित्तेण (ऋ०) ।

२ नगराण पुडभेयण (वृ० पा०) ।

३ तिसलो (वृ०), विउलो (वृ० पा०) ।

४ सव्वगत्तेसु (वृ०), सव्वगेसु य (वृ० पा०) ।

५ सरीर बीय अतरे (वृ० पा०) ।

६ आविल्लिज्ज (उ, व० पा०, ऋ०) ।

२२—उवट्ठिया मे आयरिया
विज्जामन्ततिगिच्छा^१ ।
'अवीया सत्यकुसला'^२
मन्तमूलविसारया ॥

उपस्थिता मे आचार्याः ।
विद्या-मन्त्र-चिकित्सकाः ।
अद्वितीयाः शास्त्र-कुशलाः
मन्त्र-मूल-विशारदाः ॥

२२—“विद्या और मन्त्र के द्वारा चिकित्सा करने वाले मन्त्र और औषधियों के विशारद अद्वितीय शास्त्र-कुशल प्राणाचार्य मेरी चिकित्सा करने के लिए उपस्थित हुए ।

२३—ते मे तिगिच्छ कुव्वन्ति
चाउप्पाय जहाहिय ।
न य दुक्खा विमोयन्ति
एसा मज्झ अणाहया ॥

ते मे चिकित्सा कुर्वन्ति
चतुष्पादा यथा हितम् ।
न च दुःखाद् विमोचयन्ति
एषा ममाऽनाथता ॥

२३—“उन्होंने जैसे मेरा हित हो वैसे चतुष्पाद-चिकित्सा (वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक) की, किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके—यह मेरी अनाथता है ।

२४—पिया मे सव्वसार पि
दिज्जाहि मम कारणा ।
न य दुक्खा^३ विमोएइ^४
एसा मज्झ अणाहया ॥

पिता मे सर्वसारमपि
दद्यान्मम कारणात् ।
न च दुःखाद् विमोचयति
एषा ममाऽनाथता ॥

२४—“मेरे पिता ने मेरे लिए उन प्राणाचार्यों को बहुमूल्य वस्तुएँ दीं, किन्तु वे (पिता) मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके—यह मेरी अनाथता है ।

२५—माया य^५ मे महाराय ।
पुत्तसोगदुहट्ठिया^६ ।
न य दुक्खा^७ विमोएइ
एसा मज्झ अणाहया ॥

माता च मे महाराज !
पुत्र-शोक-दुःखार्ता ।
न च दुःखाद् विमोचयति
एषा ममाऽनाथता ॥

२५—“महाराज ! मेरी माता पुत्र-शोक के दुःख से पीड़ित होती हुई भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी—यह मेरी अनाथता है ।

२६—भायरो^८ मे महाराय ।
सगा जेट्ठकणिट्ठगा ।
न य दुक्खा^९ विमोयन्ति
एसा मज्झ अणाहया ॥

भ्रातरो मे महाराज !
स्वका ज्येष्ठ-कनिष्ठकाः ।
न च दुःखाद् विमोचयन्ति
एषा ममाऽनाथता ॥

२६—“महाराज ! मेरे बड़े-छोटे सगे भाई भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके—यह मेरी अनाथता है ।

१. ^० विगिच्छा (ऋ०) ।

२. नाना सत्यत्थ कुसला (वृ० पा०), अधीया.....(अ) ।

३. दुक्खाओ (ऋ०), दुक्खाउ (उ) ।

४. विमोयति (वृ०) । एव सर्वत्र ।

५. वि (उ) ।

६. ^० दुहट्ठिया (वृ० पा०) ।

७. दुक्खाओ (ऋ०), दुक्खाउ (उ) ।

८. भाया (उ) ।

९. दुक्खाओ (ऋ०), दुक्खाउ (उ) ।

२७—भङ्गीओ मे महाराय ।
सगा जेद्वकणिद्वगा ।
न य दुक्खा^१ विमोयन्ति
एसा मज्झ अणाहया ॥

भगिन्यो मे महाराज !
स्वका ज्येष्ठ-कनिष्ठकाः ।
न च दुःखाद् विमोचयन्ति
एषा ममाऽनाथता ॥

२७—“महाराज । मेरी बड़ी-छोटी सगी बहनें भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी—यह मेरी अनाथता है ।

२८—भारिया मे महाराय ।
'अणुरत्ता अणुव्वया'^२ ।
असुपुण्णेहि नयणेहि
उर मे परिसिचई ॥

भार्या मे महाराज ।
अनुरक्ताऽनुव्रता ।
अश्रु-पूर्णाभ्यां नयनाभ्याम्
उरो मे परिषिचति ॥

२८—“महाराज । मुझमें अनुरक्त और पतिव्रता मेरी पत्नी आँसू भरे नयनों से मेरी छाती को भिगाती रही ।

२९—अन्न पाण च ण्हाण च
गन्धमल्लविलेपण ।
'मए नायमणाय वा'^३
सा बाला नोपभुंजई ॥

अन्न पान च स्नान च
गन्ध-माल्य-विलेपनम् ।
मया ज्ञातमज्ञात वा
सा बाला नोपभुङ्क्ते ॥

२९—“वह बाला मेरे प्रत्यक्ष या परोक्ष में अन्न, पान, स्नान, गन्ध, माल्य और विलेपन का भोग नहीं कर रही थी ।

३०—खण पि मे महाराय ।
पासाओ वि^४ न फिट्ई ।
न य दुक्खा विमोएइ
एसा मज्झ अणाहया ॥

क्षणमपि मे महाराज !
पार्श्वतोपि न भ्रश्यति ।
न च दुःखाद् विमोचयति
एषा ममाऽनाथता ॥

३०—“महाराज । वह क्षण भर के लिए भी मुझसे दूर नहीं हो रही थी, किन्तु वह मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी—यह मेरी अनाथता है ।

३१—तओ ह एवमाहसु
दुक्खमा हु पुणो पुणो ।
वेयणा अणुभविउ जे
ससारम्मि अणन्तए ॥

ततोऽहमेवमवोचम्
दुःक्षमा खलु पुनः पुनः ।
वेदनाऽनुभूयितं 'जे'
ससारेऽनन्तके ॥

३१—“तब मैंने इस प्रकार कहा—इस अनन्त ससार में बार-बार दुस्सह्य वेदना का अनुभव करना होता है ।

३२—सइ^५ च जइ मुच्चेज्जा
वेयणा विउला इओ ।
खन्तो दन्तो निरारम्भो
पव्वए^६ अणगारिय ॥

सकृच्च यदि मुच्ये
वेदनया विपुलया इतः ।
क्षान्तो दान्तो निरारम्भः
प्रव्रजेयमनगारिताम् ॥

३२—“इस विपुल वेदना से यदि मैं एक बार ही मुक्त हो जाऊँ तो क्षान्त, दान्त और निरारम्भ होकर अनगरवृत्ति को स्वीकार कर लूँ ।

१ दुक्खाओ (ऋ०), दुक्खाउ (उ) ।

२ अणुरत्तमणुव्वया (उ, ऋ०), अणुत्तरमणुव्वया (वृ० पा०) ।

३ तारिस रोगमावण्णे (वृ० पा०) ।

४ य (अ, आ, उ) ।

५ सय (उ, वृ०), सइय (अ) ।

६ पव्वहए (ङ) ।

३३—एव च चिन्तइत्ताण
पसुत्तो मि नराहिवा ।।
परियट्ठन्तीए राईए
वेयणा मे खय गया ॥

एव च चिन्तयित्वा
प्रसुप्तोऽस्मि नराधिप ।
परिवर्तमानायां रात्रौ
वेदना मे क्षयं गता ॥

३३—“हे नराधिप । ऐसा चिन्तन कर
मैं सो गया । बीतती हुई रात्रि के साथ-साथ
मेरी वेदना भी क्षीण हो गई ।

३४—तओ कल्ले पभायम्मि
आपुच्छित्ताण वन्धवे ।
खन्तो दन्तो निरारम्भो
पव्वइओऽणगारिय ॥

तत कल्य प्रभाते
आपृच्छ्य वान्धवान् ।
क्षान्तो दान्तो निरारम्भः
प्रव्रजितोऽनगरिताम् ॥

३४—“उसके पश्चात् प्रभातकाल में मैं
स्वस्थ हो गया । मैं अपने बन्धु-जनों को पूछ,
क्षान्त, दान्त और निरारम्भ होकर अनगर-
वृत्ति में आ गया ।

३५—ततो ह नाहो जाओ
अप्पणो य परस्स य ।
सव्वेसि चैव भूयाण
तसाण थावराण य ॥

ततोऽह नाथो जातः
आत्मनश्च परस्य च ।
सर्वेषा चैव भूताना
त्रसाना स्थावराणा च ॥

३५—“तब मैं अपना और दूसरो का
सभी—त्रस और म्यावर जीवों का नाथ हो
गया ।

३६—अप्पा नई वेयरणी
अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू
अप्पा मे नन्दण वण ॥

आत्मा नदी वैतरणी
आत्मा मे कूट-शाल्मली ।
आत्मा काम-दुघा धेनुः
आत्मा मे नन्दन वनम् ॥

३६—“मेरी आत्मा ही वैतरणी नदी है
और आत्मा ही कूट शाल्मली वृक्ष है, आत्मा
ही काम-दुघा-धेनु है और आत्मा ही नन्दन-
वन है ।

३७—अप्पा कत्ता विकत्ता य
दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्त च
दुष्प्रस्थितः सुप्रस्थितः ॥

आत्मा कर्त्ता विकर्त्ता च
दुःखाना च सुखाना च ।
आत्मा मित्रममित्र च
दुष्प्रस्थितः सुप्रस्थितः ॥

३७—“आत्मा ही दुःख-मुख की करने
वाली और उनका क्षय करने वाली है ।
सत्प्रवृत्ति में लगी हुई आत्मा ही मित्र है और
दुष्प्रवृत्ति में लगी हुई आत्मा ही शत्रु है ।

३८—इमा हु अन्ना वि अणाहया निवा !
तमेगचित्तो निहुओ सुणेहि ।
नियण्ठधम्म लहियाण वी जहा
सीयन्ति एगे बहुकायरा नरा ॥

इय खलु अन्याप्यनाथता नृप !
तामेकचित्तो निभृतः शृणु ।
निर्ग्रन्थ-धर्मं लब्ध्वाऽपि यथा
सीदन्त्येके बहुकातरा नराः ॥

३८—“हे राजन् । यह एक दूसरी
अनाथता ही है । एकाग्र-चित्त, स्थिर-क्षान्त
होकर तुम उसे मुझसे सुनो । जैसे कई एक
व्यक्ति बहुत कायर होते हैं । वे निर्ग्रन्थ-धर्म
को पाकर भी कष्टानुभव करते हैं—निर्ग्रन्था-
चार का पालन करने में शिथिल हो जाते हैं ।

३९—जो पव्वइत्ताण महव्वयाइ
सम्मं नो फासयई^१ पमाया ।
अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे
न मूलओ छिन्दइ बन्धण से ॥

४०—आउत्तया जस्स न अत्थि काइ
इरियाए भासाए तहेसणाए ।
आयाणनिक्खेवदुगु छणाए
न वीरजाय^२ अणुजाइ मग्ग ॥

४१—चिर पि से मुण्डरुई भवित्ता
अथिरव्वए तवनियमेहि भट्ठे ।
चिर पि अप्पाण किलेसइत्ता
न पारए होइ हु सपराए ॥

४२—‘पोल्ले व’^३ मुट्ठी जह से असारे
अयन्तिए कूडकहावणे वा ।
राढामणी वेरुलियप्पगासे
अमहग्घए होइ य जाणएसु ॥

४३—कुसील्लिङ्ग इह धारइत्ता
इसिज्झय जीविय वूहइत्ता ।
असजए संजयलप्पमाणे^४
विणिघायमागच्छइ से चिर पि ॥

य प्रव्रज्य महाव्रतानि
सम्यक् च नो स्पृशति प्रमादात् ।
अनिग्रहात्मा च रसेषु गृद्धः
न मूलतः छिनत्ति बन्धन सः ॥

आयुक्तता यस्य नास्ति कापि
ईर्यायां भाषाया तथैषणायाम् ।
आदान-निक्षेप-जुगुप्सनायां
न वीरयातमनुयाति मार्गम् ॥

चिरमपि स मुण्ड-रुचिर्भूत्वा
अस्थिर-व्रतस्तपो-नियमेभ्यो भ्रष्टः ।
चिरमप्यात्मानं क्लेशयित्वा
न पारगो भवति खलु संपरायस्य ॥

‘पोल्ला’ एव मुष्टिर्यथा सोऽसारः,
अयन्त्रितः कूट-कार्षापणो वा ।
राढा-मणिवैडूर्य-प्रकाशः
अमहार्घको भवति च शेषु ॥

कुशील-लिंगमिह धारयित्वा
ऋषि-ध्वज जीविकां बृंहयित्वा ।
असयतः संयतं लपन्
विनिघातमागच्छति स चिरमपि ॥

३९—“जो महाव्रतो को स्वीकार कर
भलीभाँति उनका पालन नहीं करता, अपनी
आत्मा का निग्रह नहीं करता, रसों में मूर्च्छित
होता है, वह बन्धन का मूलोच्छेद नहीं कर
पाता ।

४०—“ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-
निक्षेप और उच्चार-प्रस्रवण की परिस्थापना
में जो सावधानी नहीं वर्तता, वह उस मार्ग
का अनुगमन नहीं कर सकता जिस पर वीर-
पुरुष चले हैं ।

४१—“जो व्रतो में स्थिर नहीं है, तप
और नियमो से भ्रष्ट है, वह चिरकाल से
मुण्डन में रुचि रखकर भी और चिरकाल तक
आत्मा को कण्ट देकर भी ससार का पार नहीं
पा सकता ।

४२—“जो पोली मुट्ठी की भाँति असार
है, छोटे सिक्के की भाँति नियन्त्रण-रहित है,
काचमणि होते हुए भी वैडूर्य जैसे चमकता है,
वह जानकार व्यक्तियों की दृष्टि में मूल्य-हीन
हो जाता है ।

४३—“जो कुशील-वेश और ऋषि-ध्वज
(रजोहरण आदि मुनि-चिह्नो) को धारण
कर उनके द्वारा जीविका चलाता है, असयत
होते हुए भी अपने आपको सयत कहता है,
वह चिरकाल तक विनाश को प्राप्त होता है ।

१ फासइ (उ, ऋ०) ।

२ धीरजाय (छ०) ।

३ पोछार (बृ० पा०) ।

४ ^० लाभमाणे (बृ० पा०) ।

४४—‘विसं तु पीय’^१ जह कालकूड
हणाइ सत्थ जह कुग्गहीयं ।
‘एसे व’^२ धम्मो विसओववन्नो
हणाइ वेयाल इवाविवन्नो^३ ॥

विष तु पीत यथा कालकूट
हन्ति शस्त्रा यथा कुग्गहीतम् ।
एष एवं धर्मो विषयोपपन्नः
हन्ति वेताल इवाविवन्नः ॥

४४—“पिया हुआ काल-कूट विष,
अविधि में पकड़ा हुआ शस्त्र और नियन्त्रण में
नहीं लाया हुआ वेताल जैसे विनाशकारी
होता है, वैसे ही यह विषयों में युक्त धर्म भी
विनाशकारी होता है ।

४५—जे लक्खण मुविण पउजमाणे
निमित्तकोऊहल्लसपगाढे ।
कुहेडविज्जासवदारजीवी
न गच्छई सरण तम्मि काले ॥

यो लक्षणं स्वप्न प्रयुञ्जानः
निमित्त-कुतूहल-सप्रगाढः ।
कुहेट-विद्याश्रवद्वार-जीवी
न गच्छति शरणं तस्मिन् काले ॥

४५—“जो लक्षण-शास्त्र, स्वप्न-शास्त्र का
प्रयोग करता है, निमित्त शास्त्र और कौतुक कार्य
में अत्यन्त आमत्त है, मिथ्या आश्चर्य उत्पन्न
करने वाले विद्यात्मक आश्रव द्वार से जीविका
चलाता है, वह कर्म का फल भुगतने के समय
किमी की शरण को प्राप्त नहीं होता ।

४६—तमतमेणेव उ से असीले
सया दुही विप्परियासुवेड^४ ।
सधावई नरगतिरिक्खजोणिं
मोण विराहेत्तु असाहुरूवे ॥

तमस्तमसैव तु स अशीलः
सदा दुःखी विपर्यासमुपैति ।
सधावति नरक-तिर्यग्योनीः
मौन विराध्याऽसाधु-रूप ॥

४६—“वह शील-रहित साधु अपने तीव्र
अज्ञान में सतत दुःखी होकर विपरीत दृष्टि-
वाला हो जाता है । वह असाधु प्रकृति वाला
मुनि धर्म की विराधना कर नरक और तिर्यग्-
योनि में जाता-जाता रहता है ।

४७—उद्देसिय कीयगड नियाग
न मुचई किंचि अणेसणिज्जं ।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता
इओ चुओ गच्छइ कट्टु पाव ॥

औद्देशिक क्रीत-कृत नित्याग्रं
न मुञ्चति किञ्चिदनेपणीयम् ।
अग्निरिव सर्वभक्षी भूत्वा
इतश्च्युतो (दुर्गति) गच्छति कृत्वा
पापम् ॥

४७—“जो औद्देशिक, क्रीतकृत, नित्याग्र
और कुछ भी अनेपणीय को नहीं छोड़ता, वह
अग्नि की तरह सर्व-भक्षी होकर, पाप-कर्म
का अर्जन करता है और यहाँ से मरकर दुर्गति
में जाता है ।

४८—न त अरी कण्ठछेत्ता करेइ
ज से करे अप्पणिया दुरप्पा^५ ।
से नाहिई मच्चुमुह तु पत्ते
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥

न तमरिः कण्ठछेत्ता करोति
यं तस्य करोत्यात्मीया दुरात्मता ।
स ज्ञास्यति मृत्यु-मुखं तु प्राप्तः
पश्चादनुतापेन दया-विहीनः ॥

४८—“अपनी दुष्प्रवृत्ति जो अनर्थ उत्पन्न
करती है वह अनर्थ गला काटने वाला शत्रु
भी नहीं करता । वह दुष्प्रवृत्ति करने वाला
दया-विहीन मनुष्य मृत्यु के मुख में पहुँचने के
समय पश्चात्ताप के साथ इस तथ्य को जान
पाएगा ।

१. विस पिबित्ता (अ, आ), विस पिबन्ती (बु०) ।

२. एसो वि (अ), एसो व (ठ) ।

३. इवाविषघणो (बु० पा०) ।

४. ^० समेह (अ) ।

५. दुरप्पया (ऋ०) ।

४९—निरद्विया नगरुई उ तस्स
जे उत्तमद्व विवज्जासमेई ।
इमे वि से नत्थि परे वि लोए
दुहओ वि से भिज्जइ तत्थ लोए ॥

५०—एमेवऽहाछन्दकुशीलरूपे
मग्ग विराहेत्तु जिणुत्तमाण ।
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा
निरद्वसोया परियावमेइ ॥

५१—सोच्चाण मेहावि सुभासिय इम
अणुसासण नाणगुणोववेय ।
मग्ग कुशीलाण जहाय सव्व
महानियण्ठाण वए पहेण ॥

५२—चरित्तमायारगुणन्निए^१ तओ
अणुत्तर सजम पालियाण ।
निरासवे सखवियाण कम्म
उवेइ ठाण विउलुत्तम धुव ॥

५३—एवुग्गदन्ते वि महातवोधणे
महामुणो महापइन्ते महायसे ।
महानियण्ठिज्जमिण महासुय
से काहए महया वित्थरेण ॥

५४—तुट्ठो य सेणिओ राया
इणमुदाहु कयजली ।
अणाहत्त जहाभूय
सुट्ठ मे उवदसिय ॥

निरर्थिका नाग्न्य-रुचिस्तु तस्य
य उत्तमार्थे विपर्यासमेति ।
अयमपि तस्य नास्ति परोऽपिलोक
द्विधातोपि स क्षीयते तत्र लोके ॥

एवमेव यथाच्छन्दकुशीलरूपः
मार्गं विराध्य जिनोत्तमानाम् ।
कुररी इव भोग-रसानुगृद्धा
निरर्थ-शोका परितापमेति ॥

श्रुत्वा मेधावी सुभाषितमिदं
अनुशासनं ज्ञान-गुणोपेतम् ।
मार्गं कुशीलानां हित्वा सर्वं
महानिर्ग्रन्थानां व्रजेत् पथा ॥

चरित्राचारगुणान्वितस्ततः
अनुत्तरं सयमं पालयित्वा ।
निराम्रवः सक्षप्य कर्म
उपैति स्थानं विपुलोत्तमं ध्रुवम् ॥

एवमुग्रदान्तोपि महातपोधनः
महामुनिर्महाप्रतिज्ञो महायशः ।
महानिर्ग्रन्थीयमिदं महाश्रुतं
सोऽचीकथत् महता विस्तरेण ॥

तुष्टश्च श्रेणिको राजा
इदमुदाहृ कृताञ्जलिः ।
अनायत्त्वं यथाभूतं
सुष्टु मे उपदर्शितम् ॥

४९—“जो अन्तिम समय की आराधना में भी विपरीत बुद्धि रखता है—दुष्प्रवृत्ति को मत् प्रवृत्ति मानता है उसकी सयम-रुचि भी निरर्थक है । उसके लिए यह लोक भी नहीं है, परलोक भी नहीं है । वह दोनों लोको से भ्रष्ट होकर दोनों लोको के प्रयोजन की पूर्ति न कर सकने के कारण चिन्ता से छीज जाता है ।

५०—“इसी प्रकार यथाछन्द (स्वच्छन्द भाव से विहार करने वाले) और कुशील साधु जिनोत्तम भगवान् के मार्ग की विराधना कर परिताप को प्राप्त होते हैं, जैसे—भोग-रस में आसक्त होकर अर्थ-हीन चिन्ता करने वाली गीध पक्षिणी ।

५१—“मेधावी पुरुष इस सुभाषित, ज्ञान-गुण से युक्त अनुशासन को सुनकर कुशील व्यक्तियों के पूर्ण मार्ग को छोड़कर महा-निर्ग्रन्थ के मार्ग से चले ।

५२—“फिर चरित्र के आचरण और ज्ञान आदि गुणों से सम्पन्न निर्ग्रन्थ अनुत्तर सयम का पालन कर, कर्मों का क्षय कर निराम्रव होता है और वह विपुलोत्तम शाश्वत-मोक्ष में चला जाता है ।”

५३—इस प्रकार उग्र-दान्त, महा-तपोधन, महा-प्रतिज्ञ, महान् यशस्वी उस महामुनि ने इस महाश्रुत, महानिर्ग्रन्थीय अध्ययन को महान् विस्तार के साथ कहा ।

५४—श्रेणिक राजा सुष्टु हुआ और दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला—
“भगवन् ! तुमने अनाय का यथार्थ स्वरूप मुझे समझाया है ।

५५—तुज्झ सुलद्ध खु मणुस्सजम्मं
लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी । ।
तुब्भे सणाहा य सवन्धवा य
ज भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाण ॥

५६—त सि नाहो अणाहाण
सव्वभूयाण सजया । ।
खामेमि ते महाभाग ।
इच्छामि अणुसासिउ ॥

५७—पुच्छिऊण मए तुब्भ
भाणविग्घो उ' जो कओ ।
निमन्तिओ^२ य भोगेहि
तं सव्वं मरिसेहि मे ॥

५८—एव थुणित्ताण स रायसीहो
अणगारसीह परमाइ भत्तिए ।
'सओरोहो य सपरियणो य'^३
धम्माणुरत्तो विमलेण चेतसा ॥

५९—उत्तसियरोमकूवो
काऊण य पयाहिण ।
अभिवन्दिऊण सिरसा
अइयाओ^४ नराहिवो ॥

६०—इयरो वि गुणसमिद्धो
तिगुत्तिगुत्तो तिदण्डविरओ य ।
विहग इव विप्पमुक्को
विहरइ वसुहं विगयमोहो ॥
—त्ति वेमि ॥

तव सुलब्ध खलु मनुष्य-जन्म
लाभाः सुलब्धाश्च त्वया महर्षे ! ।
यूय सनाथाश्च सबान्धवाश्च
यद्भवन्तः स्थिता मार्गे
जिनोत्तमानाम् ॥

त्वमसि नाथोऽनाथानां
सर्वभूतानां सयत् । ।
क्षमयामि त्वां महाभाग !
इच्छाम्यनुशासयितुम् ॥

पृष्ट्वा मया तव
ध्यान-विघ्नस्तु यः कृतः ।
निमन्त्रितश्च भोगैः
तत् सर्वं मर्षय मे ॥

एव स्तुत्वा स राज-सिंहः
अनागार-सिंह परमया भक्त्या ।
सावरोधश्च सपरिजनश्च
धर्मानुरक्तो विमलेन चेतसा ॥

उच्छ्रवसित-रोमकूपः
कृत्वा च प्रदक्षिणाम् ।
अभिवन्द्य शिरसा
अतियातो नराधिप ॥

इतरोऽपि गुण-समृद्धः
त्रिगुप्ति-गुप्तिस्त्रिदण्ड-विरतश्च ।
विहग इव विप्रमुक्तः
विहरति वसुधा विगत-मोहः ॥

—इति ब्रवीमि ।

५५—“हे महर्षि ! तुम्हारा मनुष्य-जन्म
सुलब्ध है—सफल है । तुम्हें जो उपलब्धियाँ
हुई है वे भी सफल हैं । तुम सनाथ हो,
सवान्धव हो, क्योंकि तुम जिनोत्तम (तीर्थंकर)
के मार्ग में अवस्थित हो ।

५६—“तुम अनाथों के नाथ हो, तुम
सब जीवों के नाथ हो । हे महाभाग ! मैं
तुमसे क्षमा चाहता हूँ और तुमसे मैं
अनुशासित होना चाहता हूँ ।

५७—“मैंने तुमसे प्रश्न कर जो व्यान में
विघ्न किया और भोगों के लिए निमन्त्रण
दिया उन सबको तुम सहन करो—क्षमा
करो ।”

५८—इस प्रकार राजसिंह—श्रेणिक
अनगार-सिंह की परम भक्ति में स्तुति कर
अपने विमल चित्त से रनिवास, परिजन और
बन्धु-जन सहित धर्म में अनुरक्त हो गया ।

५९—राजा के रोमकूप उच्छ्रवसित
हो रहे थे । वह मुनि की प्रदक्षिणा कर, सिर
झुका, वन्दना कर चला गया ।

६०—“वह गुण से समृद्ध, त्रिगुप्तियों से
गुप्त, तीन दण्डों से विरत और निर्मोह मुनि भी
विहग की भाँति स्वतन्त्रभाव से भूतल पर
विहार करने लगे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. अ (ऋ०) ।

२. निमत्तिआ (अ, आ, इ, उ) ।

३. सओरोहो सपरियणो सबधवो (अ, आ, इ) ।

४. आइयो (उ) ।

सुगविसङ्गमं अज्झयणं :
समुद्रपालीयं

सुगविसङ्गमं अज्झयणं :
समुद्रपालीयं

आमुख

इस अध्ययन का प्रसिपादन 'समुद्रपाल'—'समुद्रपाल' के माध्यम से हुआ है, इसलिए इसका नाम 'समुद्रपालीय'—'समुद्रपालीय' रखा गया है।

'चम्पा' नाम की नगरी थी। वहाँ पाण्डित नाम का सारथवाह रहता था। वह श्रमणोपासक था। निर्यन्त्र-प्रवचन में उसे श्रद्धा थी। दूर-दूर तक उसका व्यापार फैला हुआ था। एक बार वह सामुद्रिक यात्रा के लिए 'यान-पात्र' पर आरुढ़ हो घर से निकला। वह अपने साथ गणिम—सुपारी आदि तथा धरिम—स्वर्ण आदि ले चला। जाते-जाते समुद्र के तट पर 'पिण्ड' नगर में रुका। अपना माल बेचने के लिए वह वहाँ कई दिनों तक रहा। नगर-वासियों से उसका परिचय बढ़ा और एक सेठ ने उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया।

कुछ समय वहाँ रह कर वह स्वदेश को चला। उसकी नवोढा गर्भवती हुई। समुद्र-यात्रा के बीच उसने एक सुन्दर और लक्षणोपेत पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम 'समुद्रपाल' रखा गया। वैभव से उसका लालन-पालन हुआ। वह ७२ कलाओं में प्रवीण हुआ। जब वह युवा बना तब ६४ कलाओं में पारंगत 'रूपिणी' नामक कन्या के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ। वह उसके साथ देव-तुल्य भोगों का उपभोग करता हुआ आनन्द से रहने लगा। एक बार वह प्रासाद के गवाक्ष में बैठा हुआ नगर की शोभा देख रहा था। उसने देखा कि राजपुरुष एक व्यक्ति को वध-भूमि की ओर लिए जा रहे हैं। वह व्यक्ति लाल-वस्त्र पहने हुए था। उसके गले में लाल कनेर की मात्तारें थीं। उसे यह समझते देर न लगी कि इसका वध किया जाएगा। यह सब देख कुमार का मन मवेग से भर गया। 'अच्छे कर्मों का फल अच्छा होता है और बुरे कर्मों का फल बुरा'—इस चिन्तन से उसका मार्ग स्पष्ट हो गया। माता-पिता की आज्ञा ले वह दीक्षित हुआ। साधना की और कर्मों को नष्ट कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुआ।

आत्मानुशासन के उपायों के साथ-साथ इस अध्ययन में समुद्र-यात्रा का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। उस काल में भारत के व्यापारी दूर-दूर तक व्यापार के लिए जाते थे। सामुद्रिक व्यापार उन्नत अवस्था में था। व्यापारियों के निजी यान-पात्र होते थे और वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल लेकर आते-जाते थे। उस समय अनेक वस्तुओं का भारत से निर्यात होता था। उनमें सुपारी, स्वर्ण आदि-आदि मुख्य थे। यह विशेष उल्लेखनीय है कि उस काल में भारत के पास प्रचुर सोना था। वह उसका दूसरे देशों को निर्यात करता था।

इस अध्ययन में 'व्यवहार' (श्लोक ३)—'व्यवहार' और 'वज्रमण्डणसोभाग' (श्लोक ८)—'वध्य-मडन-शोभाक'—ये दो शब्द ध्यान देने योग्य हैं। आगम-काल में 'व्यवहार' शब्द क्रय-विक्रय का द्योतक था। आयात और निर्यात इसी के अन्तर्गत थे।^१

मे) 'वध्य-मडन-शोभाक'—यह शब्द उस समय के दण्ड-विधान की ओर संकेत करता है। उस समय चोरी कर के चले को कठोर दण्ड दिया जाता था। जिसे वध की सजा दी जाती, उसे कनेर के लाल फूलों की मात्ता पहनाई जाती। उसको लाल कपड़े पहनाए जाते। शरीर पर लाल चन्दन का लेप किया जाता। सारे नगर में उसके कुकृत्यों की जानकारी दी जाती और उसे नगर के राज-मार्ग से वध-भूमि की ओर ले जाया जाता था।^२

१—सूत्ररत्नांग, १।११।५।

२—बही, १।६ बृहद वृत्ति, पत्र १५०।

इस अध्ययन में तात्कालिक राज्य-व्यवस्था का उल्लेख भी हुआ है। ग्रन्थकार कहते हैं—“मुनि उचित काल में एक स्थान से दूसरे स्थान में जाए।” यह कथन सामिप्राय हुआ है। उस समय भारत अनेक इकाइयों में बटा हुआ था। छोटे-छोटे राष्ट्र होते थे। आपसो कलह सीमा पार कर चुका था। इसीलिए मुनि को गमनागमन में पूर्ण सावधान रहने के लिए कहा है (श्लोक १४)। मौलिक दृष्टि से इस अध्ययन में “चम्पा” (श्लोक १) और “पिण्ड” (श्लोक ३) नगरों का उल्लेख हुआ है। चौबीस श्लोकों का यह छोटा-सा अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

एकविंशद्वयं अज्ज्ञयणं : एकविंश अध्ययन

समुद्रपालीयं : समुद्रपालीयम्

मूल

१—चम्पाए पालिए नाम
सावए आसि वाणिए ।
महावीरस्स भगवओ
सीसे सो उ महप्पणो ॥

संस्कृत छाया

चम्पाया पालितो नाम
श्रावक आसीद् वाणिजः ।
महावीरस्य भगवत
शिष्यः स तु महात्मन ॥

हिन्दी अनुवाद

१—चम्पा नगरी में पालित नामक
एक वणिक्-श्रावक हुआ । वह महात्मा भगवान्
महावीर का शिष्य था ।

२—निगन्थे पावयणे
सावए से विकोविए ।
पोएण ववहरन्ते
पिहुण्ड नगरमागए ॥

नैर्ग्रन्थे प्रवचने
श्रावकः स विकोविदः ।
पोतेन व्यवहरन्
पिहुण्ड नगरमागतः ॥

२—वह श्रावक निर्ग्रन्थ-प्रवचन में
कोविद् था । वह पोत से व्यापार करता हुआ
पिहुण्ड नगर में आया ।

३—पिहुण्डे ववहरन्तस्स
वाणिओ देइ धूयर ।
त ससत्त पइगिज्ज
सदेसमह पत्थिओ ॥

पिहुण्डे व्यवहरते
वाणिजो ददाति दुहितरम् ।
तां ससत्त्वा प्रतिगृह्य
स्वदेशमथ प्रस्थितः ॥

३—पिहुण्ड नगर में व्यापार करते
समय उसे किसी वणिक् ने पुत्री दी । कुछ
समय ठहरने के पश्चात् वह गर्भवती को लेकर
स्वदेश को विदा हुआ ।

४—अह पालियस्स धरणी
समुदमि पसवई ।
अह 'दारए' तहि^१ जाए
समुद्रपालि त्ति नामए ॥

अथ पालितस्य गृहिणी
समुद्रे प्रसूते ।
अथ दारक-स्तस्मिन्-जातः
समुद्रपाल इति नामकः ॥

४—पालित की स्त्री ने समुद्र में पुत्र
का प्रसव किया । वह समुद्र में उत्पन्न हुआ,
इसलिए उसका नाम समुद्रपाल रखा ।

५—खेमेण आगए चम्प
सावए वाणिए घरं ।
सवड्ढई घरे तस्स
दारए से सुहोइए ॥

क्षेमेणागतश्चम्पा
श्रावको वाणिजो गृहम् ।
संवर्धते गृहे तस्य
दारकः स सुखोचितः ॥

५—वह वणिक्-श्रावक सकुशल चम्पा
नगरी में अपने घर आया । वह सुखोचित
पुत्र अपने घर में बढने लगा ।

१ बालए (उ) ।

२ बालए तम्मि (श्रु०) ।

६—बावत्तरि कलाओ य
सिक्खए^१ नीइकोविए ।
जोव्वणेण य सपन्ने^२
सुखे पियदंसणे ॥

द्वासप्तति कलाश्च
शिक्षते नीति-कोविदः ।
यौवनेन च सम्पन्नः
सुरूपः प्रिय-दर्शनः ॥

६—उसने बहत्तर कलाएँ सीखी और
वह नीति-कोविद बना । वह पूर्ण यौवन में
सुरूप और प्रिय लगने लगा ।

७—तस्स रुववइ भज्ज
पिया आणेइ रुविणि ।
पासाए कीलए रम्मे
देवो दोगुन्दओ जहा ॥

तस्य रूपवतीं भार्या
पिताऽऽनयति रूपिणीम् ।
प्रासादे क्रीडति रम्ये
देवो दोगुन्दको यथा ॥

७—उसका पिता उसके लिए रूपिणी
नामक सुन्दर स्त्री लाया । वह दोगुन्दक देव
की भाँति उसके साथ सुरम्य प्रासाद में क्रीड़ा
करने लगा ।

८—अह अन्नया कयाई
पासायालोयणे ठिओ ।
वज्झमण्डणसोभाग
वज्झ पासइ वज्झग ॥

अथान्यदा कदाचित्
प्रासादालोके स्थितः ।
वध्यमण्डनशोभाकं
वध्यं पश्यति बाह्यगम् ॥

८—वह कभी एक बार प्रासाद के
भरोखे में बैठा हुआ था । उसने वध्य-जनोचित
मण्डनो से शोभित वध्य को नगर से बाहर ले
जाते हुए देखा ।

९—त पासिऊण सविणो^३
समुद्दपालो इणमब्बवी ।
अहोऽसुभाण कम्माणं
निज्जाण पावगं इमं ॥

तं दृष्ट्वा संविश
समुद्रपाल इदमब्रवीत् ।
अहो अशुभाना कर्मणां
निर्याणं पापकमिदम् ॥

९—उसे देख वैराग्य में भीगा हुआ
समुद्रपाल यो बोला—“अहो ! यह अशुभ कर्मों
का दुःखद अवसान है ।”

१०—सबुद्धो सो तहिं भगव
'पर सवेगमागओ'^४ ।
आपुच्छऽम्मापियरो
पव्वए^५ अणगारियं ॥

संबुद्धः स तत्र भगवान्
परं सवेगमागतः ।
आपृच्छऽम्बापितरौ
प्राज्ञाजीदनगारिताम् ॥

१०—वह भगवान् परम वैराग्य को
प्राप्त हुआ और सबुद्ध बन गया । उसने माता-
पिता को पूछकर साधुत्व स्वीकार किया ।

१. सिक्खिए (उ, ऋ०, वृ०), सिक्खिए (वृ० पा०) ।

२. अप्फुण्णे (वृ०), सम्पन्ने (वृ० पा०) ।

३. सवेग (उ, ऋ०, वृ०) ।

४. परमसवेगमागओ (उ) ।

५. पव्विए (उ) ।

११—‘जहित्तु संगं च’^१ महाकिलेस
महन्तमोह कसिण भयावह^२ ।
परियायधम्म चऽभिरोयएज्जा
वयाणि सीलाणि परीसहे य ॥

हित्वा सङ्गं महाकलेशं
महामोह कृष्ण भयानकम् ।
पर्याय-धर्मचाभिरोचयेत्
व्रतानि शीलानि परीषहंश्च ॥

११—मुनि महान् क्लेश और महान्
मोह को उत्पन्न करने वाले कृष्ण व भयावह
संग (आसक्ति) को छोड़कर पर्याय-धर्म
(प्रव्रज्या), व्रत और शील तथा परीषहों में
अभिरुचि ले ।

१२—अहिंस सच्च च अतेणग च
तत्तो य ‘वम्भ अपरिगह च’^३ ।
पडिवज्जिया पच महव्वयाणि
चरिज्ज धम्मं जिणदेसिय विऊ ॥

अहिंसा सत्य चास्तैन्यक च
ततश्चब्रह्मापरिग्रह च ।
प्रतिपद्य पचमहाव्रतानि
चरेद् धर्मं जिन-देशित विद्वान् ॥

१२—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य
और अपरिग्रह—इन पाँच महाव्रतों को
स्वीकार कर विद्वान् मुनि वीतराग-उपदिष्ट
धर्म का आचरण करे ।

१३—सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकुम्पी^४
खन्तिक्खमे सजयवम्भयारी ।
सावज्जजोगं परिवज्जयन्तो
चरिज्ज भिक्खू सुसमाहिइन्दिए ॥

सर्वेषु भूतेषु दयानुकम्पी
क्षान्ति-क्षम-सयतो ब्रह्मचारी ।
सावद्य-योग परिवर्जयन्
चरेद् भिक्षुः सुसमाहितेन्द्रियः ॥

१३—सुसमाहित-इन्द्रिय वाला भिक्षु
सब जीवों के प्रति दयानुकम्पी रहे । क्षान्ति-
क्षम (क्षमा-भाव से कुवचनो को सहने वाला),
सयत और ब्रह्मचारी हो । वह सावद्य योग का
वर्जन करता हुआ विचरण करे ।

१४—कालेण काल विहरेज्ज रट्ठे^५
बलावल जाणिय अप्पणो य^६ ।
सीहो व सट्ठेण न सतसेज्जा
वयजोग सुच्चा न असव्वमाहु ॥

कालेन काल विहरेत् राष्ट्रं
बलावल ज्ञात्वाऽऽत्मनश्च ।
सिंह इव शब्देन न सत्रस्येत्
वचोयोग श्रुत्वानासभ्यमाह ॥

१४—मुनि अपने बलावल को तौलकर
कालोचित कार्य करता हुआ राष्ट्र में विहरण
करे । वह सिंह की भाँति भयावह शब्दों से
सत्रस्त न हो । वह कुवचन सुन असभ्य वचन न
बोले ।

१५—उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा
पियमप्पिय सव्व तित्तिक्खएज्जा ।
न सव्व सव्वत्थऽभिरोयएज्जा
न यावि पूय गरह च सजए ॥

उपेक्षमाणस्तु परिव्रजेत्
प्रियमप्रिय सर्वं तितिक्षेत ।
न सर्वं सर्वत्राभिरोचयेन्
न चापि पूजां गृह्य च संयतः ॥

१५—सयमी मुनि कुवचनो की उपेक्षा
करता हुआ परिव्रजन करे । प्रिय और अप्रिय
सब कुछ सहें । सर्वत्र सब (जो कुछ देखें उसी)
की अभिलाषा न करे तथा पूजा और गृही
की भी अभिलाषा न करे ।

१. जहित्तु संग्गथ (वृ०) ऽजहित्तुऽसंग्गथ (वृ०); जहित्तु संग थ (छ०), जहित्तु संग च, जहाय संग च (वृ० पा०) ।

२. भयाणग (वृ०, वृ०) ।

३. अव्वभ परिगह च (वृ० पा०) ।

४. दयाणुकपो (वृ० पा०) ।

५. रट्ठे (ऋ०) ।

६. उ (अ) ।

१६—अणेगच्छन्दाइह^१ माणवेहिं
जे भावओ सपगरेइ^२ भिक्खू ।
भयभैरवा तत्थ उइन्ति^३ भीमा
दिब्बा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा॥

१७—परीसहा दुव्विसहा अणेगे
सीयन्ति जत्था बहुकायरा नरा ।
से तत्थ पत्ते न वहिज्ज भिक्खू
सगामसीसे इव नागराया ॥

१८—सीओसिणा दसमसा य फासा
आयका विविहा फुसन्ति देह ।
अकुक्कुओ^४ तत्थऽहियासएज्जा
रयाइ^५ खेवेज्ज पुरेकडाइ ॥

१९—पहाय रागं च तथैव दोसं
मोहं च भिक्खू सयय वियक्खणो ।
मेरु व्व वाएण अकम्पमाणो
परीसहे आयगुत्ते सहेज्जा ॥

२०—अणुन्नए नावणए महेसी
न यावि पूय गरहं च सजए ।
स उज्जुभाव पडिवज्ज संजए
निव्वाणमग्ग विरए उवेइ ॥

अनेकच्छन्दः इह मानवेषु
यान् भावतः सप्रकरोति भिक्षु ।
भयभैरवास्तत्रोद्यन्ति भीमाः
दिव्या मानुष्याः अथवा तैरश्वाः॥

परीषहा दुर्विषहा अनेके
सीदन्ति यत्र बहुकातरा नराः ।
स तत्र प्राप्तो न व्यथेत् भिक्षुः
सङ्ग्राम-शीर्ष इव नागराजः ॥

शीतोष्णं दंशमशकाश्च स्पर्शाः
आतङ्का विविधाः स्पृशन्ति देहम् ।
अकुक्कुजस्तत्राधिसहेत
रजांसि क्षपयेत् पुराकृतानि ॥

प्रहाय रागं च तथैव दोष
मोहं च भिक्षुः सतत विचक्षणः ।
मेरुरिव वातेनाऽकम्पमानः
परीषहान् आत्म-गुप्तः सहेत ॥

अनुन्नतो नावनतो महर्षिः
न चापि पूजा गर्हा च सजेत् ।
स ऋजुभाव प्रतिपद्य सयतः
निर्वाण-मार्गं विरत उपैति ॥

१६—पसार में मनुष्यों में जो अनेक
अभिप्राय होते हैं वस्तु-वृत्त्या वे भिक्षु में भी
होते हैं । किन्तु भिक्षु उन पर अनुशासन करे
और साधुपन में देव, मनुष्य अथवा तिर्यञ्च
सम्बन्धी भय पैदा करने वाले भीषण-भीषणतम
उपसर्ग उत्पन्न हो, उन्हें सहन करे ।

१७—जहाँ अनेक दुस्सह परीषह प्राप्त
होते हैं, वहाँ बहुत सारे कायर लोग खिल हो
जाते हैं । किन्तु भिक्षु उन्हें प्राप्त होकर व्यथित
न बने—जैसे सग्राम-शीर्ष (मोर्चे) पर नाग-
राज व्यथित नहीं होता ।

१८—शीत, ऊष्ण, डॉस, मच्छर, तृण-
स्पर्श और विविध प्रकार के आतङ्क जब देह
का स्पर्श करें तब मुनि क्षान्त भाव से उन्हें
सहन करे, पूर्वकृत रजो (कर्मों) को क्षीण
करे ।

१९—विचक्षण भिक्षु राग, द्वेष और
मोह का सतत त्याग कर, वायु से मेरु की
भाँति अकम्पमान होकर तथा आत्म-गुप्त बनकर
परीषहों को सहन करे ।

२०—पूजा में उन्नत और गर्ही में
अवनत न होने वाला महर्षी मुनि उन (पूजा
और गर्ही) में लिप्त न हो । अलिप्त रहने वाला
वह विरत समीप आर्जव को स्वीकार कर
निर्वाण-मार्ग को प्राप्त होता है ।

१ छदामिह (वृ०) ।

२ सोपगरेइ (वृ०) ।

३ उवेन्ति (वृ० पा०) ।

४ अकुक्कुरे (वृ० पा० , वृ०) ।

५ रजाइ (वृ०) ।

२१—अरइरइसहे पहीणसथवे
विरए आयहिए पहाणव ।
परमद्वएहिं चिट्ठई
छिन्नसोए अममे अकिंचणे ॥

अरति-रतिसहः प्रहीण-सस्तवः
विरतः आत्म-हितः प्रधानवान् ।
परमार्थ-पदेषु तिष्ठति
छिन्न-शोकोऽममोऽकिंचनः ॥

२१—जो अरति और रति को सहने वाला, परिचय को क्षीण करने वाला, अकर्तव्य से विरत रहने वाला, आत्म-हित करने वाला तथा प्रधानवान् (मयमवान्) होता है, वह छिन्न-शोक (अशोक), अमय और अकिंचन होकर परमार्थ-पदों में स्थित होता है ।

२२—विवित्तलयणाइ भएज्ज ताई'
निरोवलेवाइ असथडाइ ।
इसीहि चिण्णाइ महायसेहिं
काएण फासेज्ज परीसहाइ ॥

विवित्त-लयनानि भजेत् त्रायी
निरुपलेपान्यससुतानि ।
ऋषिभिश्चोर्णानि महायशोभिः
कायेन स्पृशेत् परीषहान् ॥

२२—त्रायी मुनि महायशस्वी ऋषियों द्वारा आचीर्ण, अलिप्त और अससुत (बीज आदि से रहित) विवित्त लयनो (एकान्त स्थानों) का सेवन करे तथा काया से परीषहों को सहन करे ।

२३—सन्नाणनाणोवगए^१ महेसी
अणुत्तर चरिउ धम्मसचय ।
अणुत्तरेनाणधरे^२ जससी
ओभासई सूरिए वन्तलिकखे^३ ॥

सज्ज्ञानज्ञानोपगतो महर्षिः
अनुत्तर चरित्वा धर्म-सचयम् ।
अनुत्तर-ज्ञानधरः यशस्वी
अवभासते सूर्य इवान्तरिक्षे ॥

२३—सद्ज्ञान से ज्ञान-प्राप्त करने वाला महर्षी मुनि अनुत्तर धर्म-सचय का आचरण कर अनुत्तर ज्ञानधारी और यशस्वी होकर अन्तरिक्ष में सूर्य की भाँति दीप्तिमान् होता है ।

२४—दुविह खवेऊण य पुण्णपाव
निरगणे^४ सव्वओ विप्पमुक्के ।
तरित्ता समुद्द व महाभवोघ
समुद्दपाले 'अपुणागम गए'^५ ॥
—त्ति वेमि ॥

द्विविध क्षपयित्वा च पुण्य-पाप
निरङ्गणः सर्वतो विप्रमुक्तः ।
तरित्वा समुद्रमिव महाभवौघ
समुद्रपालोऽपुनरागमा गतः ॥
—इति ब्रवीमि ।

२४—समुद्रपाल समय में निश्चल और सर्वतो मुक्त होकर, पुण्य और पाप दोनों को क्षीण कर तथा विशाल ससार-प्रवाह को समुद्र की भाँति तरकर अपुनरागम-गति (मोक्ष) में गया है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. ताया (ऋ०) ।

२. सन्नाईण^० (ऋ०), सन्नाण^० (वृ० पा०), सनाण^० (वृ०) ।

३. गुणुत्तरे^० (वृ० पा०) ।

४. वन्तलिकख (अ) ।

५. निरंजणे (वृ०), निरगणे (वृ० पा०) ।

६. ०गद् गड (अ, चू०, ऋ०, छ०) ।

याहसमं अज्झयणं :
रहनेमिज्जं

द्वाविश अध्ययन :
रहनेमीय

आमुख

इस अध्ययन में अन्धक-कुल के नेता समुद्रविजय के पुत्र रथनेमि का वृत्तान्त है, इसलिए इसका नाम 'रहनेमिउजति'—'रथनेमीय' है।

सोरियपुर नाम का नगर था। वहाँ वृष्णि-कुल के वसुदेव राज्य करते थे। उनके दो रानियाँ थीं—रोहिणी और देवकी। रोहिणी के एक पुत्र था। उसका नाम 'वकराम' था और देवकी के पुत्र का नाम 'केशव' था।

उसी नगर में अन्धक-कुल के नेता समुद्रविजय राज्य करते थे। उनकी पटरानी का नाम शिवा था। उसके चार पुत्र थे—अरिष्टनेमि, रथनेमि, सत्यनेमि और दृढनेमि। अरिष्टनेमि बाईसवें तीर्थङ्कर हुए और रथनेमि तथा सत्यनेमि प्रत्येक बुद्ध हुए।^१

उस समय सोरियपुर में द्वैध-राज्य था। अन्धक और वृष्णि—ये दो राजनैतिक दल वहाँ का शासन चलाते थे। वसुदेव वृष्णियों के नेता थे और समुद्रविजय अन्धकों के। इस प्रकार की राज्य-प्रणाली को 'विरुद्ध-राज्य' कहा जाता था।

कार्तिक कृष्ण द्वादशी को अरिष्टनेमि का जीव शिवा रानी के गर्भ में आया। माता ने १४ स्वप्न देखे। श्रावण शुक्ला ५ को रानी ने पुत्र-रत्न को जन्म दिया। स्वप्न में रिष्टरत्नमय नेमि देखे जाने के कारण पुत्र का नाम अरिष्टनेमि रखा। वे आठ वर्ष के हुए। कृष्ण ने कस का वध कर डाला। महाराज जरासंध यादवों पर कुपित हो गया। मरने के भय से सभी यादव पश्चिमी समुद्र तट पर चले गए। वहाँ द्वारवती नगरी में सुख से रहने लगे। कुछ समय के बाद वकराम और कृष्ण ने जरासंध को मार डाला और वे राजा बन गए। अरिष्टनेमि युवा बने। वे इन्द्रिय-विषयों से पराङ्गमुख रहने लगे। एक बार समुद्रविजय ने केशव से कहा—“ऐसा कोई उपक्रम किया जाए जिससे कि अरिष्टनेमि विषयों में प्रवृत्त हो सके।” केशव ने रुक्मणी, सत्यभामा आदि को इस ओर प्रयत्न करने के लिए कहा। अनेक प्रयत्न किए गए। अनेक प्रलोभनों से उन्हें विचलित करने का प्रयास किया गया। पर वे अपने लक्ष्य पर स्थिर रहे। एक बार केशव ने कहा—“कुमार! ऋषभ आदि अनेक तीर्थङ्कर भी गृहस्थाश्रम के भोगों को भोग कर, पश्चिम-वय में दीक्षित हुए थे। उन्होंने भी मोक्ष प्राप्त कर लिया। यह परमार्थ है।” अरिष्टनेमि ने नियति की प्रबलता जान केशव की बात स्वीकार कर ली। केशव ने समुद्रविजय को सारी बात कही। वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और योग्य कन्या की गवेषणा करने लगे। भोज-कुल के राजन्य उग्रसेन की पुत्री राजीमती को अरिष्टनेमि के योग्य समझ विवाह की बातचीत की। उग्रसेन ने इसे अनुग्रह मान स्वीकार कर लिया। दोनों कुलों में

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ४४३-४४५

सोरियपुरमि नयरे, आसी राया समुद्रविजभोत्ति।
तस्सासि अगमहिंसी, सिवत्ति देवी अणुज्जगी ॥
तेसि पुत्ता चउरो, अरिट्टनेमी तहेव रहनेमी।
तह्मो अ सच्चनेमी, चउत्थओ होइ दढनेमी ॥
जो सो अरिट्टनेमी, यावीसइमो अहेसि सो अरिहा।
रहनेमि सच्चनेमी, एए पत्तेयदुद्धा उ ॥

वर्द्धापन हुआ। विवाह से पूर्व समस्त कार्य सम्पन्न हुए। विवाह का दिन आया। राजीमती अलकृत हुई। कुमार भी अलकृत हो मच हाथी पर आरुढ़ हुए। सभी दशार्ह एकत्रित हुए। बाजे बजने लगे। मंगल दीप जलाए गए। वर-यात्रा प्रारम्भ हुई। हजारों लोगों ने उसे देखा। वह विवाह-मण्डप के पास आई। राजीमती ने दूर से अपने भावोपति को देखा। वह अत्यन्त प्रसन्न हुई।

उसी समय अरिष्टनेमि के कानों में करुण शब्द पड़े। उन्होंने सारथी से पूछा—“यह शब्द क्या है?” सारथी ने कहा—“देव! यह करुण शब्द पशुओं का है। वे आपके विवाह में सम्मिलित होने वाले व्यक्तियों के लिए भोज्य बनेंगे। मरण-भय से वे आक्रन्दन कर रहे हैं।” अरिष्टनेमि ने कहा—“यह कैसा आनन्द। जहाँ हजारों मूक और दीन पशुओं का वध किया जाता है। ऐसे विवाह से क्या जो ससार के परिभ्रमण का हेतु बनता है।” हाथी को अपने निवास की ओर मोड़ दिया। अरिष्टनेमि को मुडते देख राजीमती मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़ी। स्वजनो ने ठण्डा जल छिड़का, पखा भका। मूर्च्छा दूर हुई। चैतन्य प्राप्त कर वह विलाप करने लगे। अरिष्टनेमि ने अपने माता-पिता के पास जा प्रव्रज्या के लिए आज्ञा माँगे। तीन सौ वर्ष तक अगारवास में रह श्रावण शुक्ला ५ को सहस्रवन उद्यान में बेलों की तपस्या में दीक्षित हो गए।

अब रथनेमि राजीमती के पास आने-जाने लगे। उन्होंने कहा—“देवी! विषाद मत कर। अरिष्टनेमि वीतराग है। वे विषयानुबन्ध नहीं करते। तू मुझे स्वीकार कर। मैं जीवन भर तुम्हारी आज्ञा मानूँगा।” भगवती राजीमती का मन काम-भोगों से निर्विण्ण हो चुका था। उसे रथनेमि की प्रार्थना अयुक्त लगी। एक बार उसने मधु-घृत सयुक्त पेय पोया और जब रथनेमि आए तब मदन फल खा उल्टी की और रथनेमि से कहा—“इस पेय को पीरूँ।” उसने कहा—“वमन किए गए को कैसे पीऊँ?” राजीमती ने कहा—“क्या तुम यह जानते हो?” रथनेमि ने कहा—“इस बात को बालक भी जानता है।” राजीमती ने कहा—“यदि यह बात है तो मैं भी अरिष्टनेमि द्वारा वान्त हूँ। मुझे ग्रहण करना क्यों चाहते हो? धिक्कार है तुम्हें जो वमी हुई वस्तु को पीने की इच्छा करते हो। इससे तो तुम्हारा मरना श्रेयस्कर है।” इसके बाद राजीमती ने धर्म कहा। रथनेमि जागृत हुए और आसक्ति से उपरत हुए। राजीमती दीक्षाभिमुख हो अनेक प्रकार के तप और उपधानों को करने लगी।

भगवान् अरिष्टनेमि केवली हुए। देवों ने केवली-महोत्सव किया। रथनेमि प्रव्रजित हुए। राजीमती भी अनेक राज-कन्याओं के साथ प्रव्रजित हुई। एक बार भगवान् अरिष्टनेमि रैवतक पर्वत पर समवसृत थे। साध्वी राजीमती अनेक साध्वियों के साथ वन्दना करने गई। अचानक ही वर्षा प्रारम्भ हो गई। साथ वाली सभी साध्वियाँ इधर-उधर गुफाओं में चली गईं।^१ उसी गुफा में मुनि रथनेमि पहले से ही बैठे हुए थे। राजीमती को यह ज्ञात नहीं था। गुफा में अन्धकार व्याप्त था। उसने अपने कपड़े सुखने के लिए फैलाए। गन्नावस्था में उसे देख रथनेमि का मन विचलित हो गया। अचानक ही राजीमती ने रथनेमि को देख लिया और शीघ्र ही अपनी बाहों से अपने आपको ढकती हुई बठ गई। रथनेमि ने कहा—“मैं तुझ में अत्यन्त अनुरक्त हूँ। तेरे बिना मैं शरीर धारण नहीं कर सकता। तू मुझे स्वीकार कर। अवस्था आने पर हम दोनों सयम-मार्ग को स्वीकार कर लेंगे।” राजीमती ने विषयों के दारुण-विपाक, जीवन की अस्थिरता और व्रत-भग के फल का निरूपण किया। उसे धर्म कहा। वह सन्तुष्ट हुआ। राजीमती का अभिनन्दन कर वह अपने माण्डलिक साधुओं में चला गया। राजीमती भी आर्यिका के पास चली गईं। सयम को विशुद्ध पालते हुए दोनों सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए।

इस अध्ययन के ४३, ४३, ४४, ४६ और ४६—ये पाँच श्लोक दशवैकालिक के दूसरे अध्ययन में उद्यो-के-त्यो आर है।

इस अध्ययन में आए हुए भोज, अन्धक और वृष्णि— ये तीन शब्द प्राचीन कुलों के द्योतक हैं।

१—उस गुफा को आज भी राजीमती गुफा कहा जाता है।—विविध तीर्थ कल्प, पृ० ६

वाङ्मयसमं अङ्गव्ययण : द्वाविंश अध्यायन रहनेमिज्जं : रथनेमीयम्

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—सोरियपुरमि नयरे आसि राया महिड्डिए । वसुदेवे त्ति नामेण रायलक्खणसजुए ॥	सोरियपुरे नगरे आसीद्राजा महद्दिकः । वसुदेव इति नाम्ना राज-लक्षण-सयुतः ॥	१—सोरियपुर नगर में राज-लक्षणो से युक्त वसुदेव नामक महान् ऋद्धिमान् राजा था ।
२—तस्स भज्जा दुवे आसी रोहिणी देवई तहा । तासि दोण्ह पि दो पुत्ता इट्ठा रामकेसवा ॥	तस्य भार्ये द्वे आस्ता रोहिणी देवकी तथा । तयोर्द्वयोरपि द्वौ पुत्रौ इष्टौ राम-केशवौ ॥	२—उसके रोहिणी और देवकी नामक दो भार्याएँ थी । उन दोनों के राम और केशव—ये दो प्रिय पुत्र थे ।
३—सोरियपुरमि नयरे आसी राया महिड्डिए । समुद्रविजए नामं रायलक्खणसंजुए ॥	सोरियपुरे नगरे आसीद्राजा महद्दिकः । समुद्रविजयो नाम राज-लक्षण-सयुतः ॥	३—सोरियपुर नगर में राज-लक्षणों से युक्त समुद्रविजय नामक महान् ऋद्धिमान् राजा था ।
४—तस्स भज्जा सिवा नाम तीसे पुत्तो महायसो । भगव अरिष्टनेमि त्ति लोगनाहे दमीसरे ॥	तस्य भार्या शिवानाम्ना तस्याः पुत्रो महायशः । भगवानरिष्टनेमिरिति लोक-नाथो दमीश्वरः ॥	४—उसके शिवा नामक भार्या थी । उसके भगवान् अरिष्टनेमि नामक पुत्र हुआ । वह लोकनाथ एवं जितेन्द्रियों में प्रधान था ।
५—सोऽरिष्टनेमिनामो उ लक्खणस्सरसजुओ ^१ । अट्टसहस्सलक्खणघरो गोयमो कालगच्छवी ॥	सोऽरिष्टनेमिनामा तु स्वर-लक्षण-सयुतः । अष्ट-सहस्र-लक्षण-घरः गौतमः कालकच्छविः ॥	५—वह अरिष्टनेमि स्वर-लक्षणों से युक्त, एक हजार आठ शुभ-लक्षणों का धारक, गौतम गोत्री और श्याम वर्ण वाला था ।

६—वज्जरिसहसंघयणो

समचउरंसो भसोयरो ।
तस्स राईमइ कन्नं
भज्जं जायइ केसवो ॥

वज्रऋषभ-संहननः

समचतुरस्रो भषोदरः ।
तस्य राजीमती कन्या
भार्या याचते केशवः ॥

६—वह वज्रऋषभ सहनन और सम-
चतुरस्र सस्थान वाला था । उसका उदर
मछली के उदर जैसा था । केशव ने उसके
लिए राजीमती कन्या की माँग की ।

७—अह सा रायवरकन्ता
सुसीला चारुपेहिणी ।
सव्वलक्खणसंपुन्ता^१
विज्जुसोयामणिप्पभा ॥

अथ सा राजवर-कन्या
सुशीलाचारुप्रेक्षिणी ।
सर्वलक्षण-सम्पूर्णा
विद्युत्सौदामनी-प्रभा ॥

७—वह राजकन्या सुशील, चारु-प्रेक्षिणी
(मनोहर-चितवन वाली), स्त्री-जनोचित
सर्व-लक्षणों से परिपूर्ण और चमकती हुई
बिजली जैसी प्रभा वाली थी ।

८—अहाह जणओ तीसे
वासुदेवं महिड्ढियं ।
इहागच्छऊ कुमारो
जा से कन्न दलाम हं ॥

अथाह जनकस्तस्याः
वासुदेवं महर्द्धिकम् ।
इहागच्छतु कुमार
येन तस्मै कन्यां ददाम्यहम् ॥

८—उसके पिता उग्रसेन ने महान्
ऋद्धिमान् वासुदेव से कहा—“कुमार यहाँ
आए तो मैं उसे अपनी कन्या दे सकता हूँ ।”

९—सव्वोसहीहि ण्हविओ
कयकोउयमंगलो ।
दिव्वजुयलपरिहिओ
आभरणेहि विभूसिओ^२ ॥

सर्वोषधिभिः स्नापितः
कृत-कौतुक-मंगलः ।
परिहित-दिव्य-युगलः
आभरणै-विभूषितः ॥

९—अरिष्टनेमि को सर्व औषधियों के
जल से नहलाया गया, कौतुक और मंगल किए
गए, दिव्य वस्त्र-युगल पहनाया गया और
आभरणों से विभूषित किया गया ।

१०—मत्त च गन्धहत्थिं^३
वासुदेवस्स जेद्वगं ।
आरूढो सोहए अहियं
सिरे चूडामणी जहा ॥

मत्त च गन्धहस्तिन
वासुदेवस्य ज्येष्ठकम् ।
आरूढः शोभतेऽधिकं
शिरसि चूडामणिर्यथा ॥

१०—वासुदेव के मतवाले ज्येष्ठ गन्ध-
हस्ति पर आरूढ अरिष्टनेमि सिर पर चूडामणि
की भाँति बहुत सुशोभित हुआ ।

१ ० सपन्ता (उ०, ऋ०) ।

२. विभूसई (ऋ०) ।

३. ०हत्थि च (अ, आ, इ, उ) ।

११—‘अह ऊसिएण’^१ छत्तेण
चामराहि य सोहिए ।
दसारचक्केण य सो
सव्वओ परिवारिओ ॥

अयोच्छ्रितेन छद्मेण
चामराभ्यां च शोभितः ।
दशार्हं चक्रेण च स
सर्वतः परिवारितः ॥

११—अरिष्टनेमि ऊँचे छत्र-चामरों से
सुशोभित और दशार-चक्र में सर्वत परि-
वृत था ।

१२—चउरगिणीए सेनाए
रइयाए जहक्कम ।
तुरियाण सन्तिनाएण
दिब्बेण गगण फुसे ॥

चतुरङ्गिण्या सेनया
रचितया यथाक्रमम् ।
तूर्याणा सन्तिनादेन
दिव्येन गगन-स्पृशा ॥

१२—यथाक्रम सजाई हुई चतुरगिणी
सेना और वाद्यों के गगन-स्पर्शी दिव्यनाद —

१३—एयारिसीए इड्ढीए
जुईए उत्तिमाए य ।
नियगाओ भवणाओ
निज्जाओ वण्हिपुगवो ॥

एतादृश्या ऋद्ध्या
द्युत्या उत्तमया च ।
निजकात् भवनात्
निर्यातो वृष्णि पुङ्गवः ॥

१३—ऐसी उत्तम ऋद्धि और उत्तम-
द्युति के साथ वह वृष्णि-पुङ्गव अपने भवन से
चला ।

१४—अह सो तत्थ निज्जन्तो
दिस्स पाणे भयद्दुए ।
वाडेहि पजरेहि च
सन्निरुद्धे^२ सुदुक्खिए ॥

अथ सतत्र निर्यन्
दृष्ट्वा प्राणान् भय-द्रुतान् ।
वाटं पञ्जरैश्च
सन्निरुद्धान् सुदुःखितान् ॥

१४—उसने वहाँ जाते हुए भय से
सत्रस्त, वाटों और पिंजरो में निरुद्ध, सुदुःखित
प्राणियों को देखा ।

१५—जीवियन्तं तु सपत्ते
मसट्ठा भक्खियव्वए ।
पासेत्ता से महापन्ने
सारहि इणमव्ववी ॥

जीवितान्त तु सम्प्राप्तान्
मासार्थं भक्षयितव्यान् ।
दृष्ट्वा स महाप्राज्ञ
सारथिमिदमब्रवीत् ॥

१५—वे मरणासन्न दशा को प्राप्त थे
और मासाहार के लिए खाए जाने वाले थे ।
उन्हें देख कर महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि ने सारथि
से इस प्रकार कहा—

१६—कस्स अट्ठा ‘इमे पाणा’^३
एए सव्वे सुहेसिणो ।
वाडेहि पजरेहि च
सन्निरुद्धा य अच्छहि ? ॥

कस्यार्थादिमे प्राणा
एते सर्वे सुखैषिणः ।
वाटैः पञ्जरैश्च
सन्निरुद्धाश्च आसते ? ॥

१६—“सुख की चाह रखने वाले ये सब
प्राणी किसलिए इन वाटों और पिंजरो में
रोके हुए हैं ?”

१. से ओसिएण (वृ० पा०) ।

२. वदरुद्धे (वृ० पा०) ।

३. बहुपाणे (वृ० पा०) ।

१७—अहं सारही तओ भणइ
एए भद्दा उ पाणिणो ।
तुज्झ विवाहकज्जंमि
भोयावेउ बहुं जण ॥

अथ सारथिस्ततो भणति
एते भद्रास्तु प्राणिनः ।
सर्वे विवाह-कार्ये
भोजयितुं बहुं जनम् ॥

१७—सारथि ने कहा—“ये भद्र प्राणी
तुम्हारे विवाह-कार्य में बहुत जनों को खिलाने
के लिए यहाँ रोके हुए हैं ।”

१८—सोऊण तस्स^१ वयण
बहुपाणिविणासणं^२ ।
चिन्तेइ से महापन्ने
साणुक्कोसे जिएहि उ ॥

श्रुत्वा तस्य वचन
बहुप्राणि-विनाशनम् ।
चिन्तयति स महाप्राज्ञः
सानुक्रोशो जीवेषु तु ॥

१८—सारथि का बहुत जीवों के वध
का प्रतिपादक वचन सुन कर जीवों के प्रति
संक्रुण उस महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि ने सोचा—

१९—जइ मज्झ कारणा एए
‘हम्मिहिंति बहू’^३ जिया ।
न मे एयं तु निस्सेस
परलोणे भविस्सई ॥

यदि मम कारणादेते
हनिष्यन्ते बहवो जीवाः ।
न मे एतत्तु निःश्रेयसं
परलोके भविष्यति ॥

१९—“यदि मेरे निमित्त से इन बहुत से
जीवों का वध होने वाला है तो यह परलोक
में मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं होगा ।”

२०—सो कुण्डलाण जुयलं
सुत्तग च महायसो ।
आभरणाणि य सव्वाणि^४
सारहिस्स पणामए ॥

स कुण्डलयोर्युगलं
सूत्रकं च महायशाः ।
आभरणानि च सर्वाणि
सारथ्ये अर्पयति ॥

२०—उस महायशस्वी अरिष्टनेमि ने
दो कुडल, करघनी और सारे आभूषण उतार
कर सारथि को दे दिए ।

२१—मणपरिणामे य कए
देवा य जहोइय समोइण्णा^५ ।
सव्वड्ढीए सपरिसा
निक्खमणं तस्स काउं जे ॥

मनः-परिणामश्च कृतः
देवाश्च यथोचितं समवतीर्णाः ।
सर्वद्वर्ग्या सपरिषदः
निष्क्रमणं तस्य कर्तुं ‘जे’ ॥

२१—अरिष्टनेमि के मन में जैसे ही
निष्क्रमण (दीक्षा) की भावना हुई, वैसे ही
उसका निष्क्रमण-महोत्सव करने के लिए
औचित्य के अनुसार देवता आए । उनका
समस्त वैभव और उनकी परिषदें उनके
साथ थीं ।

१. तस्स सो (उ, ऋ०) ।

२. बहुपाण^० (वृ०) ।

३. हम्मति छयहू (उ, ऋ०, वृ०), हम्मिहिंति छयहू (वृ० पा०) ।

४. सेसाणि (उ, ऋ०) ।

५. समोवड्डिया (वृ० पा०) ।

२२—देवमणुस्सपरिवुडो
सीयारयण^१ तओ समारूढो ।
निक्खमिय वारगाओ
रेवययमि द्विओ भगवं ॥

देव-मनुष्य-परिवृतः
शिविका-रत्नं ततः समारूढः ।
निष्क्रम्य द्वारकातः
रैवतके स्थितो भगवान् ॥

२२—देव और मनुष्यों ने परिभृत
भगवान् अरिष्टनेमि शिविका-रत्न में आरूढ
हुआ । द्वारका से चल कर वह रैवतक
(गिरनार) पर्वत पर स्थित हुआ ।

२३—उज्जाणं सपत्तो
ओइण्णो उत्तिमाओ सीयाओ^२ ।
साहस्सीए परिवुडो
अह निक्खमई उ चित्ताहिं ॥

उद्यान सम्प्रातः
अवतीर्णः उत्तमायाः शिविकातः ।
साहस्र्या परिवृतः
अथ निष्क्रमति तु चित्रायाम् ॥

२३—अरिष्टनेमि सहस्राश्रमण उद्यान में
पहुँच कर उत्तम शिविका से नीचे उतरा ।
भगवान् ने एक हजार मनुष्यों के साथ चित्रा
नक्षत्र में निष्क्रमण किया ।

२४—अह से सुगन्धगन्धि^३
तुरिय मउयकुचि^४ ।
सयमेव लुंचई केसे
पचमुट्ठीहिं^५ समाहिओ ॥

अथ स सुगन्धि-गन्धिकान्
त्वरित मृदुक-कुंचितान् ।
स्वयमेव लुंचति केशान्
पंच-मुष्टिभिः समाहित ॥

२४—समाहित अरिष्टनेमि ने सुगन्ध से
मुवासित सुकुमार और घुँघराले वालों का
पचमुष्टि से अपने आप तुरन्त लोच किया ।

२५—वासुदेवो य ण भणइ
लुत्तकेस जिइन्दिय ।
इच्छियमणोरहे तुरियं
पावेसू^६ त दमीसरा ॥

वासुदेवश्चेमं भणति
लुप्त-केशं जितेन्द्रियम् ।
इच्छित-मनोरथं त्वरितं
प्राप्नुहि त्वं दमीश्वर ॥

२५—वासुदेव ने लुप्त-केश और जितेन्द्रिय
भगवान् से कहा—दमीश्वर । तुम अपने
इच्छित-मनोरथ को शीघ्र प्राप्त करो ।

२६—नाणेण दंसणेण च
चरित्तेण तहेव^७ य ।
खन्तीए मुत्तीए^८
वड्ढमाणो भवाहि य ॥

ज्ञानेन दर्शनेन च
चारित्र्येण तथैव च ।
क्षान्त्या मुक्त्या
वर्धमानो भव च ॥

२६—तुम ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, क्षान्ति
और मुक्ति से बढो ।

१. सीइया^० (ऋ०) ।
२. सीइया (ऋ०) ।
३. छगधि^० (ऋ०, वृ०) ।
४. मओणु^० (ऋ०) ।
५. पचमुट्ठाहिं (वृ०) ।
६. पावसु (वृ०) ।
७. तवेण (छ०) ।
८. मुत्तीए चैव (ङ०) ।

२७—एवं ते रामकेसवा
दसारा य बहू जणा ।
अरिष्टनेमि वन्दिता
अङ्गया बारगापुरि ॥

एवं तौ रामकेशवौ
दशार्हाश्च बहवा जनाः ।
अरिष्टनेमि वन्दित्वा
अतिगता द्वारका-पुरीम् ॥

२७—इस प्रकार राम, केशव, दसार
तथा दूसरे बहुत से लोग अरिष्टनेमि को वन्दना
कर द्वारका पुरी में लौट आए ।

२८—सोऊण रायकन्ना
पव्वज्ज सा जिणस्स उ ।
नीहासा य निराणन्दा
सोगेण उ समुत्थया^१ ॥

श्रुत्वा राजकन्या
प्रव्रज्यां सा जिनस्य तु ।
निर्हासा च निरानन्दा
शोकेन तु समवसृता ॥

२८—अरिष्टनेमि के प्रव्रज्या की बात
को सुन कर राजकन्या राजीमती अपनी हँसी,
खुशी और आनन्द को खो बैठी । वह शोक से
स्तब्ध हो गई ।

२९—राईमई विचिन्तेइ
धिरत्थु मम जीविय ।
जा हं तेण परिच्चत्ता
'सेय पव्वइउं'^२ मम ॥

राजीमती विचिन्तयति
धिगस्तु मम जीवितम् ।
याऽहं तेन परित्यक्ता
श्रेयः प्रव्रजितु मम ॥

२९—राजीमती ने सोचा—मेरे जीवन
को धिक्कार है । जो मैं अरिष्टनेमि के द्वारा
परित्यक्त हूँ । अब मेरे लिए प्रव्रजित होना ही
श्रेय है ।

३०—अह सा भमरसन्निभे^३
कुच्चफणगपसाहिण^४ ।
सयमेव लुंचई केसे
धिइमन्ता ववस्सिया^५ ॥

अथ सा भ्रमर-सन्निभान्
कूर्च-फणक-प्रसाधितान् ।
स्वयमेव लुंचति केशान्
धृतिमती व्यवसिता ॥

३०—घोर एव कृत-निश्चय राजीमती
ने कूर्च व कधी से सवारे हुए भौरे जैसे काले
केशों का अपने आप लुचन किया ।

३१—वासुदेवो य ण भणइ
लुत्तकेसं जिइन्दिय ।
ससारसागरं घोरं
तर कन्थे ! लहुं लहुं ॥

वासुदेवश्चेमा भणति
लुप्त-केशां जितेन्द्रियाम् ।
संसार-सागरं घोरं
तर कन्थे ! लघु लघु ॥

३१—वासुदेव ने लुप्त-केशा और जिते-
न्द्रिय राजीमती से कहा—“हे कन्ये ! तू घोर
संसार-सागर का अतिशीघ्रता से पार प्राप्त
कर ।”

१ समुत्थया (अ) ; समुन्मथया (आ) ।

२ सेउ पव्वइउं (श्रु०), सेओ पव्वइओ (उ) ; सेउ पव्वइय (अ) ।

३. 'सकासे (अ) ।

४ 'फलग' (अ) ।

५ वि तवस्सिया (अ) ।

३२—सा पव्वइया सन्ती
पव्वावेसी^१ तहिं वहुं ।
सयण परियण चैव
सीलवन्ता बहुस्मुया ॥

सा प्रव्रजिता सती
प्रावीव्रजत् तत्र बहु ।
स्वजन परिजन चैव
शीलवती बहुश्रता ॥

३२—शीलवती एवं बहुश्रुत राजीमती ने
प्रव्रजित हो कर द्वारका में बहुत स्वजन और
परिजन को प्रव्रजित किया ।

३३—गिरिं रेवयय^२ जन्ती
वासेणुल्ला उ अन्तरा ।
वासन्ते अन्धयारमि
अन्तो लयणस्स सा ठिया ॥

गिरिं रैवतकं यान्ती
वर्षेणार्द्रा त्वन्तरा ।
वर्षत्यन्धकारे
अन्तर्लयनस्य सा स्थिता ॥

३३—वह रैवतक पर्वत पर जा रही
थी । वीच में वर्षा में भीग गई । वर्षा हो
रही थी, अन्धेरा छाया हुआ था, उस समय
वह लयन (गुफा) में ठहर गई ।

३४—चीवराइ विसारन्ती
जहा जाय त्ति पासिया ।
रहनेमी भग्गचित्तो
पच्छा दिट्ठो य तीइ वि ॥

चीवराणि विसारयन्ती
यथाजातेति दृष्ट्वा ।
रथनेमिर्भग्नचित्तः
पश्चाद् दृष्टश्च तयाऽपि ॥

३४—चीवरों को सुखाने के लिए
फैलाती हुई राजीमती को रथनेमि ने यथा-
जात (नग्न) रूप में देखा । वह भग्न-चित्त हो
गया । बाद में राजीमती ने भी उसे देख
लिया ।

३५—भीया य सा तहिं दट्ठु
एगन्ते सजय तय ।
वाहाहिं काउ सगोफ
वेवमाणो निसीयई ॥

भीता च सा तत्र दृष्ट्वा
एकान्ते सयतं तकम् ।
बाहुभ्या कृत्वा सगोपं
वेपमाना निषीदति ॥

३५—एकान्त में उस सयति को देख वह
डरी और दोनों भुजाओं के गुम्फन में वक्ष को
ढाक कर कापती हुई बैठ गई ।

३६—अह सो वि रायपुत्तो
समुद्विजयगओ ।
भीय पवेविय दट्ठु
इमं वक्क उदाहरे ॥

अथ सोऽपि राज-पुत्र-
समुद्रविजयाऽङ्गजः ।
भीतां प्रवेपिता दृष्ट्वा
इदं वाक्यमुदाहरन् ॥

३६—उस समय समुद्रविजय के अगज
राज-पुत्र रथनेमि ने राजीमती को भीत और
प्रकम्पित देख कर यह वचन कहा—

३७—रहनेमी अह भद्रे ।
सुरुवे । चारुभासिणि । ।
मम^३ भयाहि सुयणू ।
न ते पीला भविस्सई ॥

रथनेमिरहं भद्रे ।
सुरूपे ! चारुभाषिणि ! ।
मां भजस्व सुतनु ।
न ते पीडा भविष्यति ॥

३७—“भद्रे । मैं रथनेमि हूँ । मुरूपे ।
चारुभाषिणि । तू मुझे स्वीकार कर । सुतनु ।
तुझे कोई पीडा नहीं होगी ।

१ पव्वावेसी (अ) ।

२ रेवइय (अ) ।

३. मम (म० पा०) ।

३८—एहि ता भुजिमो भोए
माणुस्स खु सुदुल्लह ।
'भुत्तभोगा तओ'^१ पच्छा
जिणमग्ग चरिस्सिमो ॥

३९—दट्ठूण रहनेमि तं
भग्गुज्जोयपराइय ।
राईमई असम्भन्ता
अप्पाण सवरे तहि ॥

४०—अह सा रायवरकन्ता
सुट्ठिया नियमव्वए ।
जाई कुल च सील च
रक्खमाणी तय वए ॥

४१—जइ सि रूवेण वेसमणो
लल्लिएण नलकूबरो ।
तहा वि ते न इच्छामि
जइ सि सक्खं पुरन्दरो ॥

[पक्खदे जलिय जोइ
धूमकेउ दुरासय ।
नेच्छन्ति वतय भोत्तुं
कुले जाया अगधणे ॥]^२

४२—धिरत्थु ते जसोकामी !
जो त जीवियकारणा ।
वन्त इच्छसि आवेउ
सेय ते मरण भवे ॥

एहि तावत् भुज्महे भोगान्
मानुष्यं खलु सुदुर्लभम् ।
भुक्त-भोगास्ततः पश्चाद्
जिन-मार्गं चरिष्यामः ॥

दृष्ट्वा रथनेमिं तं
भग्नोद्योग-पराजितम् ।
राजीमत्यसम्भ्रान्ता
आत्मानं समवारीत् तत्र ॥

अथ सा राजवर-कन्या
सुस्थिता नियम-व्रते ।
जातिं कुलं च शीलं च
रक्षन्ती तन्ममवदत् ॥

यद्यसि रूपेण वैश्रमणः
ललितेन नलकूबरः ।
तथापि त्वां नेच्छामि
यद्यसि साक्षात् पुरन्दर ॥

(प्रस्कन्दन्ति ज्वलितं ज्योतिषं
धूमकेतुं दुरासदम् ।
नेच्छन्ति वान्तक भोक्तुं
कुले जाता अगन्धने ॥)

धिगस्तु त्वां यशस्कामिन् !
यस्त्वं जीवित-कारणात् ।
वान्तमिच्छस्यापातुं
श्रेयस्ते मरणं भवेत् ॥

३८—“आ, हम भोग भोगें । निश्चित ही
मनुष्य-जीवन बहुत दुर्लभ है । भुक्त-भोगी हो,
फिर हम जिन-मार्ग पर चलेंगे ।”

३९—रथनेमि को सयम में उत्साहहीन
और भोगों से पराजित देख कर राजीमती
सम्भ्रान्त नहीं हुई । उसने वही अपने शरीर को
वस्त्रों से ढँक लिया ।

४०—नियम और व्रत में सुस्थित
राजवर-कन्या राजीमती ने जाति, कुल और
शील की रक्षा करते हुए रथनेमि से कहा—

४१—“यदि तू रूप से वैश्रमण है, लालित्य
से नलकूबर है और तो क्या, यदि तू साक्षात्
इन्द्र है तो भी मैं तुम्हें नहीं चाहती ।

“(अगधन कुल में उत्पन्न सर्प ज्वलित,
विकराल, धूमशिख-अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं
परन्तु (जीने के लिए) वमन किए हुए विष को
वापस पीने की इच्छा नहीं करते ।)

४२—“हे यश'कामिन् । धिक्कार है तुम्हें ।
जो तू भोगी-जीवन के लिये बसी हुई वस्तु को
पीने की इच्छा करता है । इससे तो तेरा
मरना श्रेय है ।

१ भुत्तभोगी तओ (उ, ऋ०) ; भुत्तभोगा पुणो (वृ०) ।

२. × (अ इ, ऋ०, स, छ०, चू०, वृ०) ।

४३—अहं च भोयरायस्स
त च सि अन्धगवण्हिणो ।
मा कुले गन्धणा होमो
सजम निहुओ चर ॥

अहं च भोज-राजस्य
त्व चाऽसि अन्धक-वृष्णेः ।
मा कुले गन्धनी भूव
सयम निभृतश्चर ॥

४३—“मैं भोज-राज की पुत्री हूँ और तू
अन्धक-वृष्णि का पुत्र । हम कुल में गन्धन
सर्प की तरह न हो । तू निभृत हो—स्थिर
मन हो—सयम का पालन कर ।

४४—जइ त काहिसि भाव
जा जा दिच्छसि नारिओ ।
वायाविद्धो व्व हढो
अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥

यदि त्व करिष्यसि भाव
या या द्रक्ष्यसि नारीः ।
वाताविद्धः इव हटः
अस्थितात्मा भविष्यसि ॥

४४—“यदि तू स्त्रियों को देख उनके प्रति
इस प्रकार राग-भाव करेगा तो वायू से
आहत हट की तरह अस्थितात्मा हो जाएगा ।

४५—गोवालो भण्डवालो^१ वा
जहा तद्द्वऽणिस्सरो ।
एव अणिस्सरो त पि
सामणस्स भविस्ससि ॥

गोपालो भाण्डपालो वा
यथा तद्द्रव्यानीश्वरः ।
एवमनीश्वरस्त्वमपि
श्रामण्यस्य भविष्यसि ॥

४५—“जैसे गोपाल और भाण्डपाल
गायों और किरानों के स्वामी नहीं होते,
इसी प्रकार तू भी श्रामण्य का स्वामी नहीं
होगा ।

[कोह माण निगिण्हित्ता
माय लोभ च सव्वसो ।
इन्दियाइ वसे काउ
अप्पाण उवसहरे ॥]^२

(क्रोध मान निगृह्य
माया लोभ च सर्वशः ।
इन्द्रियाणि वशीकृत्य
आत्मानमुपसहरेः ॥)

“(तू क्रोध और मान का निग्रह कर ।
माया और लोभ, पर सब प्रकार से विजय
पा । इन्द्रियों को अपने अधीन बना । अपने
शरीर का उपसहार कर—उसे अनाचार से
निवृत्त कर ।)”

४६—तीसे सो वयण सोच्चा
संजयाए सुभासिय ।
अकुसेण जहा नागो
धम्मे सपडिवाइओ ॥

तस्याः स वचन श्रुत्वा
सयतायाः सुभाषितम् ।
अकुशेन यथा नागो
धर्मे सम्प्रतिपादितः ॥

४६—सयमिनी के इन सुभाषित वचनों
को सुन कर, रथनेमि धर्म में वैसे ही स्थिर हो
गया, जैसे अकुश से हाथी होता है ।

४७—मणगुत्तो वयगुत्तो
कायगुत्तो जिइन्दिओ ।
सामण निच्चल फासे
जावजीव दढव्वओ ॥

मनो-गुप्तो वचो-गुप्तः
काय-गुप्तो जित्तेन्द्रियः ।
श्रामण्यं निश्चलमस्प्राक्षीत्
यावज्जीव दृढ-व्रतः ॥

४७—वह मन, वचन, और काया से
गुप्त, जित्तेन्द्रिय तथा दृढव्रती हो गया । उसने
फिर आजीवन निश्चल भाव से श्रामण्य का
पालन किया ।

१ दंडपालो (वृ० पा०) ।

२. × (अ उ, ऋ०, स, छ०, चू०, घ०) ।

४८—उग्नं तव चरित्ताण
जाया दोण्णि वि केवली ।
सव्व कम्म खवित्ताणं
सिद्धिं पत्ता अणुत्तर ॥

उग्नं तपश्चरित्वा
जातौ द्वावपि केवलिनौ ।
सर्वं कर्म क्षपयित्वा
सिद्धिं प्राप्तवानुत्तराम् ॥

४८—उग्न-तप का आचरण कर तथा सब
कर्मों को खपा, वे दोनो (राजीमती और
रथनेमि) अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त हुए ।

४९—एव करेन्ति सबुद्धा
पण्डिया पवियक्खणा ।
विणियट्ठन्ति भोगेसु
जहा सो पुरिसोत्तमो ॥
—त्ति वेमि ।

एव कुर्वन्ति सम्बुद्धाः
पण्डिताः प्रविचक्षणाः ।
विनिवर्तन्ते भोगेभ्यः
यथा स पुरुषोत्तमः ॥

इति ब्रवीमि ।

४९—सम्बुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण
पुरुष ऐसा ही करते हैं—वे भोगों से वैसे ही
दूर हो जाते हैं, जैसे कि पुरुषोत्तम रथनेमि
हुआ ।

ऐसा मैं कहता हूँ ।

तेविसद्वमं अज्झयणं :
केसिगोयमिज्जं

अयोविसा अध्ययन :
केशि-गौतमीय

आस्तुख

इस अध्ययन में पाश्चापत्यीय कुमार-श्रमण केशी और भगवान् महावीर के प्रमुख्य शिष्य गौतम का सवाद है । इसलिये इसका नाम 'केसिगोयमिज्ज'—'केशी-गौतमीय' है ।^१

भगवान् पाश्चिनाथ जैन-परम्परा के तेईसवें तीर्थंकर थे और उनका शासन-काल भगवान् महावीर से ढाई शताब्दी पूर्व का था ।^२ भगवान् महावीर के शासन-काल में अनेक पाश्चापत्यीय श्रमण तथा श्रावक रहते थे । पाश्चिनाथ की परम्परा के श्रमणों तथा श्रावकों का भगवान् महावीर के शिष्यों से आलाप-सलाप और मिलन हुआ । उसका उल्लेख आगमों तथा व्याख्या-ग्रन्थों में मिलता है । भगवान् महावीर के माता-पिता पाश्चिनाथ की परम्परा को मानने वाले श्रमणोपासक थे ।^३

भगवती सूत्र में 'कात्तास्यवैशिक पुत्र' पाश्चापत्यीय श्रमण का उल्लेख है । वे अनेक निर्ग्रन्थ स्थविरों से मिलते हैं । उनसे तार्त्विक चर्चा कर समाधान पाते हैं और अपनी पूर्व परम्परा का विसर्जन कर भगवान् महावीर की परम्परा को स्वीकार कर लेते हैं ।^४

एक बार भगवान् महावीर राजगृह में समवसूत थे । वहाँ भगवान् पाश्च की परम्परा के कई स्थविर आए और भगवान् से तार्त्विक चर्चा की । उनका मूल प्रश्न यह था—“इस परिमित लोक में अनन्त रात-दिन या परिमित रात-दिन की बात कैसे सगत हो सकती है ?” भगवान् महावीर उन्हें समाधान देते हैं और वे सभी स्थविर चातुर्याम-धर्म से पचयाम-धर्म में दीक्षित हो जाते हैं ।^५

भगवान् महावीर वाणिज्य ग्राम में थे । पाश्चापत्यीय श्रमण गागेय भगवान् के पास आया । उसने जीवों की उत्पत्ति और च्युति के बारे में प्रश्न किए । उसे पूरा समाधान मिला । उसने भगवान् की सर्वज्ञता पर विश्वास किया और उनका शिष्य बन गया ।^६

उदक पेढाल पाश्चिनाथ की परम्परा में दीक्षित हुआ था । एक बार जब गणधर गौतम नाकन्दा में स्थित थे तब वह उनके पास गया । चर्चा की और समाधान पा उनका शिष्य हो गया ।^७

भगवान् महावीर काकाय सन्निवेश से विहार कर पत्रालय ग्राम से होते हुए कुमार सन्निवेश में आए

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा, ४५१ ।

गोअम-केसाओ आ, सवाय-समुट्ठिय तु जम्हेय ।

तो केसि-गोयमिज्ज, अज्झयण होइ नायव्व ॥

२—आवश्यक निर्युक्ति, मल्लियागिरिउत्ति, पत्र २४१

पासजिणाओ य होइ वीरजिणो ।

अट्ठाइज्जसण्हि गण्हि चरिमो समुप्पन्नो ॥

३—आचारांग २, चूलिका ३, सूत्र-४०१

समणस्स ण भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा वावि होत्था ।

४—भगवती, १।९

५—वही, ५।६

६—वही, ६।३२

७—सूत्रकृतांग, २।७

और चम्पक रमणीय उद्यान में ठहरे। उसी सन्निवेश में पार्श्वपत्नीय स्थविर मुनिचन्द्र अपने शिष्य परिवार के साथ कूपनक नामक कुम्भकार की शाला में ठहरे हुए थे। वे जिनकल्प-प्रतिमा की साधना कर रहे थे। वे अपने शिष्य को गण का भार दे स्वयं 'सत्त्व-भावना' में अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते थे।

गोशाला भगवान् के साथ था। उसने गाँव में घूमते-घूमते पार्श्वपत्नीय स्थविर मुनिचन्द्र को देखा। उनके पास जा पूछा—तुम कौन हो ?

उन्होंने कहा—हम श्रमण निर्ग्रन्थ हैं।

गोशाला ने कहा—अहो तुम कैसे श्रमण निर्ग्रन्थ ? निर्ग्रन्थ होते हुए भी तुम अपने पास इतने ग्रन्थ—परिग्रह क्यों रखते हो ?

इतना कह उसने भगवान् की बात उनसे कही और पूछा—क्या तुम्हारे संघ में भी ऐसा कोई महात्मा है ?

मुनिचन्द्र ने कहा—जैसे तुम हो वैसे ही तुम्हारे आचार्य होंगे।

इस पर गोशाला कुपित हो गया। उसने क्रोधाग्नि से जलते हुए कहा—यदि मेरे धर्माचार्य के तप का प्रभाव है तो तुम्हारा यह प्रसिध्द—आश्रय जल कर भस्म हो जाए।

मुनिचन्द्र ने कहा—तुम्हारे कहने मात्र से हम नहीं जलेंगे।

गोशाला भगवान् के पास आया और बोला—भगवन् ! आज मैंने सारम्म, सपरिग्रही साधुओं को देखा है।

भगवान् ने कहा—वे पार्श्वनाथ की परम्परा के साधु हैं।

रात का समय हुआ। कुम्भकार कूपनक विकाल वेला में बाहर से अपने घर पहुँचा। उसने एक ओर एक व्यक्ति को ध्यानस्थ खड़े देखा और यह सोच कर कि 'यह चोर है', उसके गले को पकड़ा। स्थविर मुनिचन्द्र का गला घुटने लगा। असह्य-वेदना हो रही थी पर वे अकम्प रहे। ध्यान की लीनता बढ़ी। वे केवली हुए और समस्त कर्मों को क्षीण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गए।^१

एक बार भगवान् महावीर चोराग सन्निवेश में गए। गोशाला साथ था। वहाँ के अधिकारियों ने इन्हें गुप्तचर समझ पकड़ लिया। गोशाले को एक रस्सी से बाँध कर कुएँ में लटका दिया। वहाँ उत्पल की दो बहनें—सोभा और जयन्ति रहती थीं। वे दोनों दीक्षित होने में असमर्थ थीं, अतः पार्श्वपत्नीय परिव्राजिकाओं के रूप में रहती थीं। उन्होंने लोगों को महावीर के विषय में यथार्थ जानकारी दी। अधिकारियों ने महावीर तथा गोशाला को बन्धन-मुक्त कर दिया।^२

एक बार भगवान् 'सम्बाक' ग्राम में गए। वहाँ पार्श्वपत्नीय स्थविर नन्दिसेण अपने बहुश्रुत मुनियों के बहुत बड़े परिवार के साथ आए हुए थे। आचार्य नन्दिसेण जिनकल्प-प्रतिमा में स्थित थे। गोशाले ने उन्हें देखा और उनका तिरस्कार किया। गाँव के अधिकारियों ने भी आचार्य को 'चर' समझ पकड़ भालों से आहत किया। 'असह्य-वेदना को समभाव से सहते हुए उन्हें केवलज्ञान हुआ। वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गए।^३

एक बार भगवान् 'कूविय' सन्निवेश में गए। गोशाला साथ था। वहाँ के अधिकारियों ने दोनों को 'गुप्तचर' समझ कर पकड़ लिया। वहाँ पार्श्वपत्नीय परम्परा की दो परिव्राजिकाओं—विजया और प्रगल्भा ने आकर उन्हें छुड़ाया।^४

१—आवश्यक निर्युक्ति, वृत्ति पत्र, २७८

२—वही, शर्मा पत्र, २७८, २७९

३-४—वही पत्र २८२

इस प्रकार पार्श्वनाथ की परम्परा के साधुओं की जानकारी देने वाले अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं। मूल आगम-साहित्य में अनेक स्थलों पर भगवान् महावीर के मुख से पार्श्व के लिए 'पुरुषादानीय' शब्द का प्रयोग हुआ है। यह आदर सूचक शब्द है।

कुमार-श्रमण केशी भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के चौथे पट्टधर थे। प्रथम पट्टधर आचार्य शुभदत्त हुए। उनके उत्तराधिकारी आचार्य हरिदत्तसूरि थे। जिन्होंने वेदान्त-दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य 'लोहिय' से शास्त्रार्थ कर उनको ५०० शिष्यों सहित दीक्षित किया। इन नव दीक्षित मुनियों ने सौराष्ट्र, तैलंग आदि प्रान्तों में विहार कर जैन-शासन की प्रभावना की। तीसरे पट्टधर आचार्य समुद्रसूरि थे। इनके काल में विदेशी नामक एक प्रचारक आचार्य ने उज्जैन नगरी में महाराजा जयसेन, उनकी रानी अनगमुन्दरी और उनके राजकुमार 'केशी' को दीक्षित किया।^१ आगे चल कर मुनि केशी ने नास्तिक राजा परदेशी को समझाया और उसे जैन-धर्म में स्थापित किया।^२

एक बार कुमार-श्रमण केशी ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए 'श्रावस्ती' में आए और 'तिन्दुक' उद्यान में ठहरे। भगवान् महावीर के शिष्य गणधर गौतम भी संयोगवश उसी नगर में आए और 'कोष्ठक' उद्यान में ठहरे। नगर में आते-जाते दोनों परम्पराओं के शिष्य एक दूसरे से मिले। दोनों के मन जिज्ञासा से भर गए। आपस में ऊहापोह करते हुए वे अपने-अपने आचार्य के पास आए। उनसे पारस्परिक भेदों की चर्चा की।

कुमार-श्रमण केशी और गणधर गौतम विशिष्ट ज्ञानी थे। वे सब कुछ जानते थे। परन्तु अपने शिष्यों के समाधान के लिए वे कुछ व्यावहारिक प्रयत्न करना चाहते थे। कुमार-श्रमण केशी पार्श्व की परम्परा के आचार्य होने के कारण गौतम से उगेष्ठ थे, इसलिए गौतम अपने शिष्यों को साथ ले 'तिन्दुक' उद्यान में गए। आचार्य केशी ने आसन आदि दे उनका सत्कार किया। कई अन्य मतावलम्बी सन्यासी तथा उनके उपासक भी आए। आचार्य केशी तथा गणधर गौतम में सवाद हुआ। प्रश्नोत्तर चले। उनमें चातुर्याम और पचयाम धर्म तथा सचेतकत्व और अचेतकत्व के प्रश्न मुख्य थे।

आचार्य केशी ने गौतम से पूछा—“भते। भगवान् पार्श्व ने चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा की और भगवान् महावीर ने पचयाम धर्म की। दोनों का लक्ष्य एक है। फिर यह भेद क्यों? क्या यह पार्थक्य सदेह उत्पन्न नहीं करता?” (श्लो० २३, २४)

गौतम ने कहा—“भते। प्रथम तीर्थङ्कर के श्रमण ऋजु-जड़, अन्तिम तीर्थङ्कर के वक्र-जड़ और मध्यवर्ती बार्डस तीर्थङ्करों के श्रमण ऋजु-प्राज्ञ होते हैं। प्रथम तीर्थङ्कर के श्रमणों के लिए मुनि के आचार को यथावत् ग्रहण करना कठिन है, चरम तीर्थङ्कर के श्रमणों के लिए आचार का पालन करना कठिन है और मध्यवर्ती तीर्थङ्करों के मुनि उसे यथावत् ग्रहण करते हैं तथा सरलता से उसका पालन भी करते हैं। इन्हीं कारणों से धर्म के ये दो भेद हुए हैं।” (श्लो० २५, २६, २७)

आचार्य केशी ने पुनः पूछा—“भते। एक ही प्रयोजन के लिए अभिनिष्क्रमण करने वाले इन दोनों परम्पराओं के मुनियों के वेश में यह विविधता क्यों है? एक सवस्त्र है और दूसरे अवस्त्र।” (श्लो० २८, ३०)

गौतम ने कहा—“भते। मोक्ष के निश्चित साधन तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य हैं। वेश तो बाह्य उपकरण है। लोगों को यह प्रतीत हो कि वे साधु हैं, इसलिए नाना प्रकार के उपकरणों की परिकल्पना की है। सयम जीवन-यात्रा को निभाना और 'मैं साधु हूँ'—ऐसा ध्यान आते रहना—वेश धारण के ये प्रयोजन हैं।” (श्लो० ३३, ३३)

१—समरसिंह, पृष्ठ ७५, ७६

२—नाभिनन्दोद्धार प्रबन्ध १३६

केशिनामा तद्-विनेय, यः प्रदेशीनरेश्वरम्।
प्रबोध्य नास्तिकाद् धर्माद्, जैनधर्मेऽध्यरोपयत्॥

इन दो विषयों से यह आकलन किया जा सकता है कि किस प्रकार भगवान् महावीर ने अपने सघ मे परिष्कार, परिवर्द्धन और सम्बर्द्धन किया था । चार महाव्रतों की परम्परा को बदल पाँच महाव्रतों की स्थापना की । सचेत परम्परा के स्थान पर अचेत परम्परा को मान्यता दी । सामाजिक-चारित्र के साथ-साथ छेदोपस्थापनीय-चारित्र की प्ररूपणा की तथा समिति-गुप्ति का पृथक् निरूपण कर उनका महत्व बढ़ाया ।^१

भगवान् महावीर ने सचेत और अचेत—दोनों परम्पराओं के साधकों को मान्यता दी और उनकी साधना के लिए निर्दिष्ट पथ निर्दिष्ट किया । दोनों परम्परारुँ एक ही छत्र-छाया में पनपी, फूली-फली और उनमें कमी सघटन नहीं हुआ । भगवान् प्रारम्भ मे सचेत थे । एक देवदूष्य धारण किए हुए थे । तदनन्तर वे अचेत बने और जीवन भर अचेत रहे । किन्तु उन्होंने सचेत और अचेत किसी एक को एकागी मान्यता नहीं दी । दोनों के अस्तित्व को स्वीकार कर उन्होंने सघ को विस्तार दिया ।

इस अध्ययन में आत्म-विजय और मनोनुशासन के उपायों का अच्छा निरूपण है ।

१—मूलाचार, ७।३६-३८ :

वावीस तित्थयरा, सामाहयसजम उवदिसति ।
 छेदुवठावणिय पुण, भयव उसहो य धीरो य ॥
 आचक्खिदु विमज्झिदु, विण्णादु चावि छहदर होदि ।
 एदेण कारणेण दु, महव्वदा पंच पणत्ता ॥
 भादीए दन्विसोघणे, णिहणे वह छट्ठ, दुरणुपाले य ।
 पुरिमा य पच्छिमा वि दु, कप्पाकप्प ण जाणन्ति ॥

तेविसडमं अज्झयण : त्रयोविंश अध्यायन

केसिगोयमिज्जं : केशि-गौतमीयम्

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—जिणे पासे त्ति नामेण 'अरहा लोगपूइओ । सबुद्धप्पा य सव्वन्नू धम्मतित्थयरे जिणे' ^१ ॥	जिनः पार्श्व इति नाम्ना । अर्हन् लोक-पूजितः । सबुद्धात्मा च सर्वज्ञः धर्म-तीर्थकरो जिनः ॥	१—पार्श्व नाम के जिन हुए । वे अर्हन्, लोक-पूजित, सबुद्धात्मा, सर्वज्ञ, धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक और वीतराग थे ।
२—तस्स लोगपईवस्स आसि सीसे महायसे । केसीकुमारसमणे विज्जाचरणपारगे ॥	तस्य लोक-प्रदीपस्य आसीच्छिष्यो महायशः । केशिः कुमार-श्रमणः विद्या-चरण-पारगः ॥	२—लोक को प्रकाशित करने वाले उन भगवान् पार्श्व के केशी नामक शिष्य हुए । वे महान् यशस्वी, विद्या और आचार के पार- गामी, कुमार-श्रमण थे ।
३—ओहिनाणसुए बुद्धे सीससघसमाउले । गामाणुगाम रीयन्ते सावत्थि नगरिमागए ॥	अवधिज्ञान-श्रुताभ्यां बुद्धः शिष्य-सघ-समाकुलः । ग्रामानुग्राम रीयमाणः श्रावस्तीं नगरीमागतः ॥	३—वे अवधि-ज्ञान और श्रुत-सम्पदा से तत्त्वों को जानते थे । वे शिष्य-सघ से परिवृत हो कर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रावस्ती में आए ।
४—तिन्दुय नाम उज्जाणं तम्मी नगरमण्डले । फासुए सिज्जसथारे तत्थ वासमुवागए ॥	तिन्दुकं नामोद्यान तस्मिन् नगर-मण्डले । प्रासुके शय्या-सस्तारे तत्र वासमुपागतः ॥	४—उस नगर के पार्श्व में 'तिन्दुक' उद्यान था । वहाँ जीव-जन्तु रहित शय्या (मकान) और सस्तार (आसन) लेकर वे ठहर गए ।
५—अह तेणेव कालेण धम्मतित्थयरे जिणे । भगव वद्धमाणो त्ति सव्वलोगम्मि विस्सुए ॥	अथ तस्मिन्नेव काले धर्म-तीर्थकरो जिनः । भगवान् वर्धमान इति सर्वलोके विश्रुतः ॥	५—उस समय भगवान् वर्धमान विहार कर रहे थे । वे धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक, जिन और समूचे लोक में विश्रुत थे ।

६—तस्स लोपईवस्स
आसि सीसे महायसे^१ ।
भगव गोयमे नामं
विज्जाचरणपारगे ॥

७—बारसगविऊ बुद्धे
सीससघसमाउले ।
ग्रामाणुगाम रीयन्ते
से वि सावत्थिमागए ॥

८—कोट्टग नाम उज्जाण
तम्मो नयरमण्डले ।
फासुए सिज्जसथारे
तत्थ वासमुवागए ॥

९—केसीकुमारसमणे
गोयमे य महायसे ।
उभओ वि तत्थ विहरिंसु
अल्लीणा^२ सुसमाहिया ॥

१०—उभओ सीससघाण
सजयाण तवस्सिणं ।
तत्थ चिन्ता समुप्पन्ता
गुणवन्ताण ताइणं ॥

११—केरिसो वा इमो धम्मो ?
इमो धम्मो व केरिसो ? ।
आयारधम्मपणिही
इमा वा सा व केरिसी ? ॥

तस्य लोक-प्रदीपस्य
आसीच्छिष्यौ महायशः ।
भगवान् गौतमौ नाम
विद्या-चरण-पारगः ॥

द्वादशांगविद् बुद्धः
शिष्य-सङ्घ-समाकुलः ।
ग्रामानुग्रामं रीयमाणः
सोऽपि श्रावस्तीमागतः ॥

कोष्ठकं नामोद्यानं
तस्मिन्नगर-मण्डले ।
प्रासुके शय्या-संस्तारे
तत्र वासमुपागतः ॥

केशिः कुमार-श्रमणः
गौतमश्च महायशः ।
उभावपि तत्र व्यहाष्टां
आलीनौ सुसमाहितौ ॥

उभयोः शिष्य-सङ्घानां
संयताना तपस्विनाम् ।
तत्र चिन्ता समुत्पन्ना
गुणवतां त्रायिणाम् ॥

कीदृशो वाय धर्मः ?
अयं धर्मो वा कीदृशः ? ।
आचार-धर्म-प्रोणिधिः
अयं वा स वा कीदृशः ? ॥

६—लोक को प्रकाशित करने वाले उन
भगवान् वर्धमान के गौतम नाम के शिष्य थे ।
वे महान् यशस्वी, भगवान् तथा विद्या और
आचार के पारगामी थे ।

७—वे बारह अंगों को जानने वाले और
बुद्ध थे । शिष्य-सघ से परिष्ठृत हो कर ग्रामानु-
ग्राम विहार करते हुए वे भी श्रावस्ती में
आ गए ।

८—उस नगर के पार्श्व-भाग में 'कोष्ठक'
उद्यान-था । वहाँ जीव-जन्तु रहित शय्या और
सस्तार लेकर वे ठहर गए ।

९—कुमार-श्रमण केशी और महान्
यशस्वी गौतम—दोनों वहाँ विहार कर रहे थे ।
वे आत्म-लीन और मन की समाधि से
सम्पन्न थे ।

१०—उन दोनों के शिष्य-समूहों को वहाँ
एक तर्क उत्पन्न हुआ, जो सयत, तपस्वी,
गुणवान् और त्रायी थे ।

११—यह हमारा धर्म कैसा है ? और
यह धर्म कैसा है ? आचार-धर्म की व्यवस्था
यह हमारी कैसी है ? और वह उनकी
कैसी है ?

१. महिडिढए (अ) ।

२. अलीणा (वृ० पा०) ।

१२—चाउज्जामो य जो धम्मो
जो इमो पचसिक्खिओ ।
देसिओ वद्धमाणेण
पासेण य महामुणी ॥

चातुर्यामश्च यो धर्म
योऽय पच-शिक्षित ।
देशितो वर्धमानेन
पाश्वेण च महामुनिना ॥

१२—जो चातुर्याम-धर्म है, उसका
प्रतिपादन महामुनि पार्श्व ने किया है । और
यह जो पच-शिक्षात्मक-धर्म है, उसका
प्रतिपादन महामुनि वर्धमान ने किया है ।

१३—अचेलगो य जो धम्मो
जो इमो सन्तरुत्तरो ।
एकज्जपवन्ताण
विसेसे किं नु कारण ? ॥

अचेलकश्च यो धर्मः
योऽय सान्तरोत्तर ।
एककार्य-प्रपन्नयो.
विशेषे किन्तु कारणम् ? ॥

१३—महामुनि वर्धमान ने जो आचार-
धर्म की व्यवस्था की है वह अचेलक है और
महामुनि पार्श्व ने जो यह आचार-धर्म की
व्यवस्था की है, वह सान्तर (वर्ण आदि में
विशिष्ट) तथा उत्तर (मूल्यवान् वस्त्र वाली)
है । जबकि हम एक ही उद्देश्य से चले हैं तो
फिर इस भेद का क्या कारण है ?

१४—अह ते तत्थ सीसाण
विन्नाय पवित्तकिय ।
समागमे कयमई
उभओ केसिगोयमा ॥

अथ तौ तत्र शिष्याणा
विज्ञाय प्रवितर्कितम् ।
समागमे कृतमती
उभौ केशि-गौतमी ॥

१४—उन दोनों—केशी और गौतम ने
अपने-अपने शिष्यों की वितर्कणा को जान कर
परस्पर मिलने का विचार किया ।

१५—गोयमे पडिरूवन्नु
सीससघसमाउले ।
जेट्ट कुलमवेक्खन्तो
तिन्दुय वणमागओ ॥

गौतम प्रतिरूपज्ञ.
शिष्य-सङ्घ-समाकुलः ।
ज्येष्ठ कुलमपेक्षमाणः
तिन्दुक वनमागतः ॥

१५—गौतम ने विनय की मर्यादा का
ओचित्य देखा । केशी का कुल ज्येष्ठ था,
इसलिए वे शिष्य-सघ को साथ लेकर तिन्दुक वन
में चले आए ।

१६—केसीकुमारसमणे
गोयम दिस्समागय ।
पडिरूव पडिवत्ति
सम्म सपडिवज्जई ॥

केशिः कुमार-श्रमणः
गौतम दृष्ट्वागतम् ।
प्रतिरूपा प्रतिपत्तिम्
सम्यक् सप्रतिपद्यते ॥

१६—कुमार श्रमण केशी ने गौतम को
आए देख कर सम्यक् प्रकार से उनका उपयुक्त
आदर किया ।

१७—पलाल फासुय तत्थ
पचम कुसतणाणि य ।
गोयमस्स निसेज्जाए
खिप्प सपणामए ॥

पलालं प्रासुक तत्र
पचम कुश-तृणानि च ।
गौतमस्य निषद्यायै
क्षिप्र समर्पयति ॥

१७—उन्होंने तुरन्त ही गौतम को बैठने
के लिए प्रासुक पयाल (चार प्रकार के
अनाजों के ढठल) और पाँचवी कुश नाम की
घास दी ।

१८—केसीकुमारसमणे

गोयमे य महायसे ।
उभओ निसण्णा सोहन्ति
चन्द्रसूरसमप्पभा ॥

केशिः कुमार-श्रमणः
गौतमश्च महायशाः ।
उभौ निषण्णौ शोभेते
चन्द्र-सूर्य-समप्रभौ ॥

१८—चन्द्र और सूर्य के समान शोभा
वाले कुमार-श्रमण केशी और महान् यशस्वी
गौतम—दोनों बैठे हुए शोभित हो रहे थे ।

१९—समागया बहू तत्थ
पासण्डा 'कोउगा मिगा' ।
गिहत्थाण अणेगाओ
साहस्सीओ समागया ॥

समागता बहवस्तत्र
पाषण्डाः कौतुकामृगाः ।
गृहस्थानामनेकानि
सहस्राणि समागतानि ॥

१९—वहाँ कौतूहल को ढूँढने वाले दूसरे-
दूसरे सम्प्रदायो के अनेक साधु आए और
हजारो-हजारो गृहस्थ आए ।

२०—देवदाणवगन्धव्वा
जक्खरक्खसकिन्नरा ।
अदिस्साण च भूयाण
आसी तत्थ समागमो ॥

देव-दानव-गन्धर्वाः
यक्ष-राक्षस-किन्नराः ।
अदृश्यानां च भूतानाम्
आसीत् तत्र समागमः ॥

२०—देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष,
राक्षस, किन्नर और अदृश्य भूतो का वहाँ
मेला-सा हो गया ।

२१—पुच्छामि ते महाभाग !
केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसिं बुवंतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

पृच्छामि त्वां महाभाग !
केशिः गौतममब्रवीत् ।
तत केसिं ब्रुवंतं तु
गौतम इदमब्रवीत् ॥

२१—हे महाभाग ! मैं तुम्हें पूछता हूँ—
केशी ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते
ही गौतम ने इस प्रकार कहा—

२२—पुच्छ भन्ते ! जहिच्छं ते
केसिं गोयममब्बवी ।
तओ केसी अणुन्ताए
गोयम इणमब्बवी ॥

पृच्छ भदन्त ! यथेच्छं ते
केसिं गौतमोऽब्रवीत् ।
ततः केशिरनुज्ञातः
गौतममिदमब्रवीत् ॥

२२—भते ! जैसी इच्छा हो वैसे पूछो ।
केशी ने प्रश्न करने की अनुज्ञा पाकर गौतम से
इस प्रकार कहा—

२३—चाउज्जामो य जो धम्मो
जो इमो पचसिक्खिओ ।
देसिओ वद्धमाणेण
पासेण य महामुणी ॥

चातुर्यामिच्च यो धर्मः
योऽयं पंच-शिक्षितः ।
देशितो वर्धमानेन
पाश्वर्णेन च महामुनिना ॥

२३—जो चातुर्याम-धर्म है, उसका
प्रतिपादन महामुनि पार्श्व ने किया है और यह
जो पंच-शिक्षात्मक-धर्म है, उसका प्रतिपादन
महामुनि वर्धमान ने किया है ।

२४—एगकज्जपवन्ताण

विसेसे किं नु कारण ? ।
धम्मे दुविहे मेहावि ।
कह^१ विप्पच्चओ न ते ? ॥

एककार्य-प्रपन्नयोः

विशेषे किन्तु कारणम् ? ।
धर्मे द्विविधे मेधाविन् !
कथं विप्रत्ययो न ते ? ॥

२४—एक ही उद्देश्य के लिए हम चले हैं तो फिर इस भेद का क्या कारण है ? मेधाविन् ! धर्म के इन दो प्रकारों में तुम्हें सन्देह कैसे नहीं होता ?

२५—तओ केसिं वुवत तु
गोयमो इणमव्ववी ।
पन्ना समिक्खए धम्म
तत्त तत्तविणिच्छय^२ ॥

ततः केशिं ब्रुवन्त तु
गौतम इदमब्रवीत् ।
प्रज्ञा समीक्षते धर्म—
तत्त्व तत्त्व-विनिश्चयम् ॥

२५—केशी के कहते-कहते ही गौतम ने इस प्रकार कहा—धर्म के परम अर्थ की, जिसमें तत्त्वों का विनिश्चय होता है, समीक्षा प्रज्ञा से होती है ।

२६—पुरिमा उज्जुजडा^३ उ
वंकजडा य पच्छिमा ।
मज्झिमा 'उज्जुपन्ना य'^४
तेण धम्मे दुहा कए ॥

पूर्वे ऋजु-जडास्तु
धक्क-जडाश्च पश्चिमाः ।
मध्यमा ऋजु-प्राज्ञाश्च
तेन धर्मो द्विधा-कृतः ॥

२६—पहले तीर्थंकर के साधु ऋजु और जड होते हैं । अन्तिम तीर्थंकर के साधु धक्क और जड होते हैं । बीच के तीर्थंकरों के साधु ऋजु और प्राज्ञ होते हैं, इसलिए धर्म के दो प्रकार किए हैं ।

२७—पुरिमाण दुव्विसोज्झो उ
चरिमाण दुरणुपालओ ।
कप्पो मज्झिमगाण तु
सुविसोज्झो सुपालओ ॥

पूर्वेषा दुर्विशोध्यस्तु
चरमाणा दुरनुपालकः ।
कल्पो मध्यमकाना तु
सुविशोध्य सुपालकः ॥

२७—पूर्ववर्ती साधुओं के लिए मुनि के आचार को यथावत् ग्रहण कर लेना कठिन है । चरमवर्ती साधुओं के लिए मुनि के आचार का पालन कठिन है । मध्यवर्ती साधु उसे यथावत् ग्रहण कर लेते हैं और उसका पालन भी वे सरलता से करते हैं ।

२८—साहु गोयम । 'पन्ना ते'^५
छिन्नो मे ससओ इमो ।
अन्नो वि ससओ मज्झं
त मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे सशयोऽयम् ।
अन्योऽपि सशयो मे
तं मा कथय गौतम ! ॥

२८—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । तुमने मेरे इस सशय को दूर किया है । मुझे एक दूसरा सशय भी है । गौतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

१ कहि (अ) ।

२ ° विणिच्छिय (ड, ऋ०) ।

३ उज्जुकडा (अ) ।

४. उज्जुपन्नाओ (उ, ऋ०) ।

५. पन्नाए (वृ० पा०) ।

२९—अचेलगो य जो धम्मो
जो इमो सन्तरुत्तरो ।
देसिओ वद्धमाणेण
पासेण य महाजसा^१ ॥

३०—एगकज्जपवन्ताणं
विसेसे किं नु कारण ? ।
लिंगे दुविहे मेहावि !
कह विप्पच्चओ न ते ? ॥

३१—केसिमेवं बुवाणं तु
गोयमो इणमब्बवी ।
विन्नाणेण समागम्य
धम्मसाहणमिच्छिय ॥

३२—पच्चयत्थ च लोगस्स
नाणाविहविगप्पण ।
जत्तत्थ गहणत्थ च
लोगे लिगप्पओयण ॥

३३—अह भवे पइन्ना उ
मोक्खसब्भूयसाहणे^२ ।
नाण च दसणं चैव
चरित्त चैव निच्छए ॥

३४—साहु गोयम । पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
त मे कहसु गोयमा । ॥

अचेलकश्च यो धर्मः
योऽय सान्तरोत्तरः ।
देशितो वर्धमानेन
पाश्वर्णेन च महायशसा ॥

एककार्य-प्रपन्नयोः
विशेषे किन्तु कारणम् ? ।
लिङ्गे द्विविधे मेधाविन् !
कथं विप्रत्ययो न ते ? ॥

केशिमेव ब्रुवाणं तु
गौतम इदमब्रवीत् ।
विज्ञानेन समागम्य
धर्म-साधनमिच्छितम् ॥

प्रत्ययार्थं च लोकस्य
नानाविध-विकल्पनम् ।
यात्रार्थं ग्रहणार्थं च
लोके लिङ्गप्रयोजनम् ॥

अथ भवेत्प्रतिज्ञा तु
मोक्ष-सद्भूत-साधने ।
ज्ञानं च दर्शनं चैव
चारित्र्यं चैव निश्चये ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे सशयोऽयम् ।
अन्योऽपि सशयो मम
तं मां कथय गौतम । ॥

२९—महामुनि वर्धमान ने जो आचार-
धर्म की व्यवस्था की है वह अचेलक है और
महान् यशस्वी पाश्वर्ण ने जो यह आचार-धर्म
की व्यवस्था की है वह सान्तर (वर्ण आदि से
विशिष्ट) तथा उत्तर (मूल्यवान् वस्त्र
वाली) है ।

३०—एक ही उद्देश्य के लिए हम चले
हैं तो फिर इस भेद का क्या कारण है ?
मेधाविन् ! वेप के इन प्रकारों में तुम्हें सदेह
कैसे नहीं होता ?

३१—केशी के कहते-कहते ही गौतम ने
इस प्रकार कहा—विज्ञान से यथोचित ज्ञान कर
ही धर्म के साधनो—उपकरणों की अनुमति दी
गई है ।

३२—लोगों को यह प्रतीति हो कि ये
साधु हैं, इसलिए नाना प्रकार के उपकरणों
की परिकल्पना की गई है । जीवन-यात्रा को
निभाना और 'मैं साधु हूँ', ऐसा ध्यान आते
रहना—वेप-धारण के इस लोक में ये
प्रयोजन हैं ।

३३—यदि मोक्ष की वास्तविक साधना
की प्रतिज्ञा हो तो निश्चय-दृष्टि में उसके
साधन, ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य ही हैं ।

३४—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस सशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा सशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

१ महामुणी (बृ०), महाजसा (बृ० पा०) ।

२ मुक्ख सभूय^० (उ, ऋ०), मोक्खे सभूय^० (अ) ।

३५—अणेगाण सहस्साण
मज्जे चिट्ठसि गोयमा ।।
ते य ते अहिगच्छन्ति
कह ते निज्जिया तुमे ? ॥

अनेकेषा सहस्राणां
मध्ये तिष्ठसि गौतम ! ।
ते च त्वामभिगच्छन्ति
कथं ते निजितास्त्वया ? ॥

३५—गौतम ! तुम हजारों-हजारों शत्रुओं के बीच खड़े हो । वे तुम्हें जीतने को तुम्हारे सामने आ रहे हैं । तुमने उन्हें कैसे पराजित किया ?

३६—एगे जिए जिया पच
पच जिए जिया दस ।
दसहा उ जिणित्ताण
सव्वसत्तू जिणामह ॥

एकस्मिन् जिते जिताः पंच
पचसु जितेषु जिता दश ।
दशधा तु जित्वा
सर्वशत्रून् जयाम्यहम् ॥

३६—एक को जीत लेने पर पाँच जीते गए । पाँच को जीत लेने पर दस जीते गए । दसों को जीत कर मैं सब शत्रुओं को जीत लेता हूँ ।

३७—सत्तू य इड के वुत्ते ?
केसी गोयममव्ववी ।
तओ केसि वुवत तु
गोयमो इणमव्ववी ॥

शत्रवश्च इति के उक्ताः ?
केशिः गौतममब्रवीत् ।
ततः केशि ब्रुवन्तं तु
गौतम इदमब्रवीत् ॥

३७—शत्रु कौन कहलाता है ?—केशी ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही गौतम इस प्रकार बोले—

३८—एगप्पा अजिए सत्तू
कसाया इन्द्रियाणि य ।
ते जिणित्तु^१ जहानाय
विहरामि अहं मुणी ॥

एक आत्माऽजितः शत्रु
कषाया इन्द्रियाणि च ।
तान् जित्वा यथान्याय
विहराम्यहं मुने ! ॥

३८—एक न जीती हुई आत्मा शत्रु है । कषाय और इन्द्रियाँ शत्रु है । मुने ! मैं उन्हें जीत कर नीति के अनुसार विहार कर रहा हूँ ।

३९—साहु गोयम । पन्ना ते
छिन्नो मे ससओ इमो ।
अन्नो वि ससओ मज्झ
तं मे कहसु गोयमा । ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे सशयोऽयम् ।
अन्योऽपि सशयो मम
त मा कथय गौतम ! ॥

३९—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । तुमने मेरे इस सशय को दूर किया है । मुझे एक दूसरा सशय भी है । गौतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

४०—दीसन्ति वहवे लोए
पासवद्धा सरीरिणो ।
मुक्कपासो लहुभूओ
कह त विहरसी ? मुणी । ॥

दृश्यन्ते बहवो लोके
पाश-बद्धा शरीरिणः ।
मुक्त-पाशो लघुभूतः
कथं त्वं विहरसि ? मुने ! ॥

४०—इस ससार में बहुत जीव पाश से बन्धे हुए दीख रहे हैं । मुने ! तुम पाश से मुक्त और पवन की तरह प्रतिबध-रहित हो कर कैसे विहार कर रहे हो ?

४१—ते पासे सव्वसो छित्ता
निहत्तूण उवायओ ।
मुक्कपासो लहुब्भूओ
विहरामि अह मुणी ॥

तान् पाशान् सर्वशश्छित्त्वा
निहत्योपायतः ।
मुक्त-पाशो लघुभूतः
विहराम्यह मुने ! ॥

४१—मुने । उन पाशों को सर्वथा काट कर, उपायों से विलुप्त कर मैं पाश-मुक्त और प्रतिबन्ध-रहित हो कर विहार करता हूँ ।

४२—पासा य इइ के वुत्ता ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेव बुवतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

पाशाश्चेति के उक्ताः ?
केशिः गौतममब्रवीत् ।
केशिमेवं ब्रुवन्त तु
गौतम इदमब्रवीत् ॥

४२—पाश किसे कहा गया है ?—केशी ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही गौतम इस प्रकार बोले—

४३—रागद्दोसादओ तिक्वा
नेहपासा भयकरा ।
ते छिन्दित्तु जहानाय
विहरामि जहक्कम ॥

राग-द्वेषादयस्तीव्राः
स्नेह-पाशा भयङ्कराः ।
तान् छित्त्वा यथान्यायं
विहरामि यथाक्रमम् ॥

४३—प्रगाढ राग-द्वेष और स्नेह भयकर पाश है । मैं उन्हें काट कर मुनि-धर्म की नीति और आचार के साथ विहार करता हूँ ।

४४—साहु गोयम ! पन्ता ते
छिन्नो मे ससओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झ
त मे कहसु गोयमा । ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे सशयोज्यम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ! ॥

४४—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । तुमने मेरे इस सशय को दूर किया है । मुझे एक दूसरा सशय भी है । गौतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

४५—अन्तोहिययसभूया
लया चिट्ठइ गोयमा ! ।
फलेइ विसभक्खीणि^१
सा उ उद्धरिया कह ? ॥

अन्तर्हृदय-संभूता
लता तिष्ठति गौतम ! ।
फलति विष-भक्ष्याणि
सा तूदघृता कथम् ? ॥

४५—गौतम ! हृदय के भीतर उत्पन्न जो लता है जिसके विष-मुल्य फल लगते हैं, उसे तुमने कैसे उखाड़ा ?

४६—त लय सव्वसो छित्ता
उद्धरित्तां समूलिय ।
विहरामि जहानाय
मुक्को मि विसभक्खणं ॥

तां लतां सर्वशश्छित्त्वा
उद्धृत्य समूलिकाम् ।
विहरामि यथान्यायं
मुक्तोऽस्मि विष-भक्षणात् ॥

४६—उस लता को सर्वथा काट कर, जड़ से उखाड़ कर मैं मुनि-धर्म की नीति के अनुसार विहार करता हूँ, इसलिए मैं विष-फल के खाने से मुक्त हूँ ।

४७—लया य इइ का वुत्ता ?
केसी गोयममव्ववी ।
केसिमेव वुवत तु
गोयमो इणमव्ववी ॥

लता च इति का उक्ता ?
केशि गौतममव्ववीत् ।
ततः केशि व्रुवन्तं तु
गौतम इदमव्ववीत् ॥

४७—लता किसे कहा गया है ?—केशी ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही गौतम इस प्रकार बोले—

४८—भवतण्हा लया वुत्ता
भीमा भीमफलोदया ।
तमुद्धरित्तु^१ जहानायं
विहरामि महामुणी ॥

भव-तृष्णा लता उक्ता
भीमा भीमफलोदया ।
तामुद्धृत्य यथान्याय
विहरामि महामुने ! ॥

४८—भव-तृष्णा को लता कहा गया है । वह भयकर है और उसमें भयकर फलों का परिपाक होता है । महामुने ! मैं उसे उखाड़ कर मुनि-धर्म की नीति के अनुसार विहार करता हूँ ।

४९—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे ससओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
त मे कहसु गोयमा ॥

साधुः गौतम ! प्रजा ते
छिन्नो मे सशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मा कथय गौतम ! ॥

४९—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रजा । तुमने मेरे इस सशय को दूर किया है । मुझे एक दूसरा सशय भी है । गौतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

५०—सपज्जलिया घोरा
अग्गी चिट्ठइ गोयमा ! ।
'जे डहन्ति सरीरत्था'^२
कह विज्झाविया तुमे ? ॥

संप्रज्वलिता घोराः
अग्नयस्तिष्ठन्ति गौतम ! ।
ये दहन्ति शरीरस्थाः
कथं विध्यापितास्त्वया ? ॥

५०—गौतम ! घोर-अग्नियाँ प्रज्वलित हो रही हैं, जो शरीर में रहती हुई मनुष्य को जला रही हैं । उन्हें तुमने कैसे बुझाया ?

५१—महामेघप्पसूयाओ
गिज्झ वारि जलुत्तम ।
'सिंचामि सयय देह'^३
सित्ता नो व डहन्ति मे ॥

महामेघ-प्रसूतात्
गृहीत्वा वारि जलोत्तमम् ।
सिंचामि सततं देहं
सिक्ता नो एव दहन्ति माम् ॥

५१—महामेघ से उत्पन्न निर्भर से सब जलों में उत्तम जल लेकर मैं उन्हें सींचता रहता हूँ । वे सींची हुई अग्नियाँ मुझे नहीं जलाती ।

१. तमुच्छित्तु (उ, ऋ०), तमुद्धरित्ता (आ) ।

२. जा डहेति सरीरत्था (वृ० पा०) ।

३. सिंचामि सयय ते ओ (ते उ) (उ, ऋ०, वृ०); सिंचामि सयय देहा, सिंचामि सययं सं तु (वृ० पा०) ।

५२—अग्गी य इइ के वुत्ता ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेव बुवतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

अग्नयश्चेति के उक्ताः ?
केशिः गौतममब्रवीत् ।
ततः केशि ब्रुवन्तं तु
गौतम इदमब्रवीत् ॥

५२—अग्नि किन्हें कहा गया है ?—
केशी ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही गौतम इस प्रकार बोले—

५३—कसाया अग्गिणो वुत्ता
सुयसीलतवो जलं ।
सुयधाराभिहया सन्ता
भिन्ना हु न डहन्ति मे ॥

कषाया अग्नय उक्ताः
श्रुत-शील-तपो जलम् ।
श्रुतधाराभिहताः सन्तः
भिन्ना 'हु' न दहन्ति माम् ॥

५३—कषायों को अग्नि कहा गया है ।
श्रुत, शील और तप यह जल है । श्रुत की धारा से आहत किए जाने पर निस्तेज बनी हुई वे मुझे नहीं जलाती ।

५४—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे ससओ इमो । !
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे सशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मा कथय गौतम ! ॥

५४—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस सशय को दूर किया है । मुझे एक दूसरा सशय भी है । गौतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

५५—अय साहसिओ भीमो
दुट्ठस्सो परिधावई ।
जसि गोयम ! आरूढो
कह तेण न हीरसि ? ॥

अयं साहसिको भीमः
दुष्टाश्व परिधावति ।
यस्मिन् गौतम ! आरूढः
कथं तेन न हियसे ? ॥

५५—यह साहसिक, भयकर, दुष्ट-अश्व
दौड रहा है । गौतम ! तुम उस पर चढे हुए
हो । वह तुम्हें उन्मार्ग में कैसे नहीं ले
जाता ?

५६—पधावन्तं निगिण्हामि
सुयरस्सीसमाहियं ।
न मे गच्छइ उम्मगं
मग्ग च पडिवज्जई ॥

प्रधावन्तं निगृह्णामि
श्रुतरदिम-समाहितम् ।
न मे गच्छत्युन्मार्गं
मार्गं च प्रतिपद्यते ॥

५६—मैंने इसे श्रुत की लगाम से बाध
लिया है । यह जब उन्मार्ग की ओर दौडता
है तब मैं इस पर रोक लगा देता हूँ । इसलिए
मेरा अश्व उन्मार्ग को नहीं जाता, मार्ग में ही
चलता है ।

५७—अस्से य इइ के वुत्ते ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेव बुवतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

अश्वश्चेति क उक्तः ?
केशिः गौतममब्रवीत् ।
ततः केशि ब्रुवन्तं तु
गौतम इदमब्रवीत् ॥

५७—अश्व किसे कहा गया है ?—केशी
ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

५८—मणो साहसिओ भीमो
दुट्ठस्सो परिधावई ।
त सम्म निगिण्हामि
धम्मसिक्खाए कन्थग ॥

मनः साहसिको भीमः
दुष्टाश्वः परिधावति ।
तत् सम्पक् निगृह्णामि
धर्म-शिक्षया कन्थकम् ॥

५८—यह जो साहसिक, मयकर, दुष्ट-
अश्व दौड़ रहा है, वह मन है । उसे मैं भली-
भाँति अपने अधीन रखता हूँ । धर्म-शिक्षा के
द्वारा वह उत्तम-जाति का अश्व हो गया है ।

५९—साहु गोयम । पन्ता ते
छिन्नो मे ससओ इमो ।
अन्नो वि ससओ मज्झ
त मे कहस् गोयमा । ॥

साधुः गौतम । प्रज्ञा ते
छिन्नो मे सशयोऽयम् ।
अन्योऽपि सशयो मम
त मा कथय गौतम । ॥

५९—गौतम । उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस सशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा सशय भी है । गौतम । उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

६०—कुप्पहा वहवो लोए
जेहि नासन्ति जतवो ।
अट्ठाणे कह वट्ठन्ते
त न नस्ससि ? गोयमा । ॥

कुपथा वहवो लोके
यैर्नश्यन्ति जन्तवः ।
अध्वनि कथ वर्तमानः
त्व न नश्यसि ? गौतम । ॥

६०—लोक में कुमार्ग बहुत है । जिन
पर चलने वाले लोग भटक जाते हैं । गौतम !
मार्ग में चलते हुए तुम कैसे नहीं भटकते ?

६१—जे य मग्गेण गच्छन्ति
'जे य उम्मग्गपट्ठिया' ।
ते सव्वे विइया मज्झ
तो न नस्सामह^१ मुणी ! ॥

ये च मार्गेण गच्छन्ति
ये चोन्मार्ग-प्रस्थिताः ।
ते सर्वे विदिता मया
ततो न नश्यामह मुने । ॥

६१—जो मार्ग से चलते हैं और जो
उन्मार्ग से चलते हैं, वे सब मुझे ज्ञात हैं ।
मुने । इसीलिए मैं नहीं भटक रहा हूँ ।

६२—मग्गे य इइ के वुत्ते ?
केसी गोयममव्ववी ।
केसिमेव वुवत तु
गोयमो इणमव्ववी ॥

मार्गश्चेति क उक्तः ?
केशि गौतममव्ववीत् ।
ततः केशि ब्रुवन्त तु
गौतम इदमव्ववीत् ॥

६२—मार्ग किसे कहा गया है ?—केशी
ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

६३—कुप्पवयणपासण्डी
सव्वे उम्मग्गपट्ठिया ।
सम्मग्ग तु जिणक्खाय
एस भग्गे हि^२ उत्तमे ॥

कुप्रवचन-पाषण्डिनः
सर्वे उन्मार्ग-प्रस्थिता ।
सन्मार्गस्तु जिनाख्यातः
एष मार्गो हि उत्तमः ॥

६३—जो कुप्रवचन के ब्रती हैं, वे सब
उन्मार्ग की ओर चले जा रहे हैं । जो राग-
द्वेष को जीतने वाले जिन ने कहा है, वह
सन्मार्ग है, क्योंकि यह सबसे उत्तम मार्ग है ।

१ जे उम्मग्ग पट्ठिया (अ) ।

२. नस्सामिह (अ) ।

३. हे (अ) ।

६४—साहु गोयम । पन्ना ते
छिन्नो मे ससओ इमो ।
अन्नो वि ससओ मज्झं
त मे कहसु गोयमा ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ॥

६४—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस सशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा सशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

६५—महाउदगवेगेण
वुज्झमाणाण पाणिण ।
सरण गई पइट्ठा य
दीव 'क मन्नसी ?' १ मुणी ! ॥

महोदकवेगेन
डह्यमानानां प्राणिनाम् ।
शरणं गतिं प्रतिष्ठां च
द्वापं कं मन्यसे ? मुने ! ॥

६५—मुने ! महान् जल-प्रवाह के वेग
से बहते हुए जीवों के लिए तुम शरण, गति,
प्रतिष्ठा और द्वीप किसे मानते हो ?

६६—अत्थि एगो महादीवो
वारिमज्जे महालओ ।
महाउदगवेगस्स
गई तत्थ न विज्जई ॥

अस्त्येको महाद्वीपः
वारिमध्ये महालयः ।
महोदक-वेगस्य
गतिस्तत्र न विद्यते ॥

६६—जल के मध्य में एक लम्बा-चौड़ा
महाद्वीप है । वहाँ महान् जल-प्रवाह की गति
नहीं है ।

६७—दीवे य इइ के वुत्ते ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेव बुवतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

द्वीपश्चेति क उक्तः ?
केशिः गौतममब्रवीत् ।
ततः केशि ब्रुवन्तं तु
गौतम इदमब्रवीत् ॥

६७—द्वीप किसे कहा गया है ?—केशी
ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

६८—जरामरणवेगेण
वुज्झमाणाण पाणिण ।
धम्मो दीवो 'पइट्ठा य' २
गई सरणमुत्तम ॥

जरा-मरण-वेगेन
डह्यमानानां प्राणिनाम् ।
धर्मो द्वीपः प्रतिष्ठा च
गतिः शरणमुत्तमम् ॥

६८—जरा और मृत्यु के वेग से बहते
हुए प्राणियों के लिए धर्म द्वीप, प्रतिष्ठा, गति
और उत्तम शरण है ।

६९—साहु गोयम । पन्ना ते
छिन्नो मे ससओ इमो ।
अन्नो वि ससओ मज्झं
त मे कहसु गोयमा ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ॥

६९—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस सशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा सशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

१ कम्मुणसी ? (अ) ।

२. पत्तिट्ठा ण (अ) ।

७०—अण्वंसि महोहसि
नावा विपरिधावई ।
जसि गोयममारुढो
कह पार गमिस्ससि ? ॥

अण्वे महीधे
नौर्विपरिधावति ।
यस्यां गौतम ! आरुढः
कथं पारं गमिष्यसि ? ॥

७०—महा-प्रवाह वाले समुद्र में नौका
तीव्र गति से चली जा रही है । गौतम ! तुम
उसमें आरुढ हो । उस पार कैसे पहुँच
पाओगे ?

७१—जा उ अस्साविणी^१ नावा
न सा पारस्स गामिणी ।
जा निरस्साविणी नावा
सा उ पारस्स गामिणी ॥

या त्वाश्चाविणी नौ
न सा पारस्य गामिनी ।
या निराश्चाविणी नौ
सा तु पारस्य गामिनी ॥

७१—जो छेद वाली नौका होती है,
वह उस पार नहीं जा पाती । किन्तु जो
नौका छेद वाली नहीं होती, वह उस पार चली
जाती है ।

७२—नावा य इड का वुत्ता ?
केसी गोयममव्ववी ।
केसिमेव वुवतं तु
गोयमो इणमव्ववी ॥

नौश्चेति कोक्ता ?
केशिः गौतममब्रवीत् ।
तत' केशि ब्रुवन्त तु
गौतम इदमब्रवीत् ॥

७२—नौका किसे कहा गया है ?—केशी
ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

७३—शरीरमाहु नाव त्ति
जीवो वुच्चइ नाविओ ।
ससारो अण्वो वुत्तो
ज तरन्ति महेसिणो ॥

शरीरमाहुर्नौरिति
जीव उच्यते नाविकः ।
ससारोऽण्व उक्त
य तरन्ति महर्षयः ॥

७३—शरीर को नौका, जीव को
नाविक और ससार को समुद्र कहा गया है ।
महान् मोक्ष की एपणा करने वाले इसे तैर
जाते हैं ।

७४—साहु गोयम । पन्ना ते
छिन्नो मे ससओ इमो ।
अन्नो वि ससओ मज्झ
तं मे कहसु गोयमा । ॥

साधु. गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे सशयोऽयम् ।
अन्योऽपि सशयो मम
तं मां कथय गौतम् ॥

७४—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस सशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा सशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

७५—अन्धयारे तमे घोरे
चिट्ठन्ति पाणिणो बहू ।
को करिस्सइ उज्जोय
सव्वलोगमि पाणिण ? ॥

अन्धकारे तमसि घोरे
तिष्ठन्ति प्राणिनो बहव ।
कः करिष्यत्युद्योतं
सर्वलोके प्राणिनाम् ? ॥

७५—लोगों को अन्ध बनाने वाले
तिमिर में बहुत लोग रह रहे हैं । इस समूचे
लोक में उन प्राणियों के लिए प्रकाश कौन
करेगा ?

७६—उगओ विमलो भाणू
सव्वलोगप्पभकरो ।
सो करिस्सइ उज्जोय
सव्वलोगमि पाणिणं ॥

उद्गतो विमलो भानुः
सर्वलोक-प्रभाकरः ।
स करिष्यत्युद्योत
सर्वलोके प्राणिनाम् ॥

७६—समूचे लोक में प्रकाश करने वाला
एक विमल भानु उगा है । वह समूचे लोक में
प्राणियों के लिए प्रकाश करेगा ।

७७—भाणू य इइ के वुत्ते ?
केसी गोयममव्ववी ।
केसिमेव बुवत तु
गोयमो इणमव्ववी ॥

भानुश्चेति क उक्तः ?
केशिः गौतममब्रवीत् ।
ततः केशि ब्रुवन्तं तु
गौतम इदमब्रवीत् ॥

७७—भानु किसे कहा गया है ?—केशी
ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

७८—उगओ खीणससारो
सव्वन्नू जिणभव्वरो ।
सो करिस्सइ उज्जोय
सव्वलोगमि पाणिण ॥

उद्गतः क्षीण-ससारः
सर्वज्ञो जिन-भास्करः ।
स करिष्यत्युद्योत
सर्वलोके प्राणिनाम् ॥

७८—जिसका ससार क्षीण हो चुका है,
जो सर्वज्ञ है वह अर्हत्-रूपी भास्कर समूचे
लोक के प्राणियों के लिए प्रकाश करेगा ।

७९—साहु गोयम । पन्ता ते
छिन्नो मे ससओ इमो ।
अन्नो वि ससओ मज्झ
त मे कहसु गोयमा ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे सशयोऽयम् ।
अन्योऽपि सशयो मम
तं मा कथय गौतम ! ॥

७९—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेर इस सशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा सशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

८०—सारीरमाणसे दुक्खे
वज्झमाणण^१ पाणिणं ।
खेम सिवमणावा हं
ठाण किं मन्नसी ? मुणी ! ॥

शारीरमानसैर्दुःखैः
बाध्यमानानां प्राणिनाम् ।
क्षेम शिवमनाबाधं
स्थानं किं मन्यसे ? मुने ! ॥

८०—शारीरिक और मानसिक दुःखों
से पीड़ित होते हुए प्राणियों के लिए स्थान, शिव
और अनाबाध स्थान किसे मानते हैं ?
मुने !

८१—अत्थि एग ध्रुव ठाणं
लोगगमि दुरारुहं ।
जत्थ नत्थि जरा मच्चू
वाहिणो वेयणा तहा ॥

अस्त्येक ध्रुव स्थानं
लोकाग्रे दुरारोहं ।
यत्र नास्ति जरा मृत्युः
व्याधयो वेदनास्तथा ॥

८१—लोक के शिखर में एक स्थान
शाश्वत स्थान है, जहाँ पहुँच पाना बड़े कठिन
है और जहाँ नहीं है—जरा, मृत्यु,
व्याधि और वेदना ।

८२—ठाणे य डड के वुत्ते ?
केसी गोयममव्ववी ।
केसिमेव वुवत्त तु
गोयमो डणमव्ववी ॥

स्थानं चेति किमुक्त ?
केशि गौतममव्वीत् ।
तत् केशि व्रुवन्त तु
गौतम इदमव्वीत् ॥

८२—स्थान किमेकहा गया है ?—केशी ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही गौतम इस प्रकार बोले—

८३—निव्वाण ति अवाह ति
सिद्धी लोगगमेव य ।
खेम सिव अणावाह
ज चरन्ति महेसिणो ॥

निर्वाणमित्यवाधमिति
सिद्धिर्लोकप्रमेव च ।
क्षेम शिवमनावाध
यच्चरन्ति महैषिण ॥

८३—जो निर्वाण है, जो अवाध, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अनावाध है, जिसे महान् की एषणा करने वाले प्राप्त करते हैं—

८४—त ठाण सासयवास
लोगगमि दुरारुह ।
ज सपत्ता न सोयन्ति
भवोहन्तकरा मुणी ॥

तत् स्थान शाश्वत वास
लोकाग्रे दुरारोहम् ।
यत्सम्प्राप्ता न शोचन्ति
भर्वाधान्तकरा मुनयः ॥

८४—भव-प्रवाह का अन्त करने वाले मुनि जिसे प्राप्त कर शोक से मुक्त हो जाते हैं, जो लोक के शिखर में शाश्वत-रूप से अवस्थित हैं, जहाँ पहुँच पाना कठिन है, उसे मैं स्थान कहता हूँ ।

८५—साहु गोयम । पन्ना ते
छिन्नो मे ससओ डमो ।
नमो ते ससयाईय
सव्वसुत्तमहोयही ॥

साधुः गौतम । प्रज्ञा ते
छिन्नो मे सशयोऽयम् ।
नमस्तुभ्य सशयातीत !
सर्वसूत्र-महोदधे ! ॥

८५—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । हे सशयातीत ! हे सर्वसूत्र-महोदधि ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ।

८६—एव तु ससए छिन्ने
केसी घोरपरक्कमे ॥
'अभिवन्दिता सिरसा
गोयम तु महायस' ॥

एव तु सशये छिन्ने
केशिः घोर-पराक्रम ।
अभिवन्द्य शिरसा
गौतम तु महायशसम् ॥

८६—इस प्रकार सशय दूर होने पर घोर-पराक्रम वाले केशी महान् यशस्वी गौतम का शिर से अभिवन्दन कर—

८७—'पचमहव्वयधम्म
पडिवज्जड भावओ ।
पुरिमस्स पच्छिममी^२
मग्गे तत्थ सुहावहे ॥'^३

पचमहान्नत-धर्म
प्रतिपद्यते भावतः ।
पूर्वस्य पश्चिमे
मार्गे तत्र सुहावहे ॥

८७—पूर्व मार्ग से सुहावह पश्चिम मार्ग में प्रविष्ट हुए ।

१ वदित्तु पजलिठडो गौतम तु महामुणी (चू०) ।

२. पच्छिमस्सी (अ) ।

३. पच महव्वय सुत्त भावतो पडिवज्जिया ।

धम्म पुरिमस्स पच्छिममि मग्गे सुहावहे ॥ (चू०) ।

८८—केसीगोयमओ निच्चं
तम्मि आसि समागमे ।
सुयसीलसमुक्करिसो
महत्थत्थविणिच्छओ ॥

केशि-गौतमयोनित्य
तस्मिन्नासात् समागमे ।
श्रुत-शील-समुत्कर्ष.
महार्थार्थविनिश्चयः ॥

८८—उस वन में होने वाला केशी और
गौतम का सतत मिलन श्रुत और शील का
उत्कर्ष करने वाला और महान् प्रयोजन वाले
वर्णों का विनिश्चय करने वाला था ।

८९—तोसिया परिसा सव्वा
'सम्मग्ग' 'समुवट्ठिया'^१ ।
'सथुया ते पसीयन्तु'^२
भयव केसिगोयमे ॥
—त्ति वेमि ।

तोषिता परिषत् सर्वा
सन्मार्गं समुपस्थिताः ।
सस्तुतौ तौ प्रसीदताम्
भगवन्तौ केशि-गौतमौ ॥
—इति ब्रवीमि ।

८९—जिनकी गति-विधि से परिषद् को
सन्तोष हुआ और वह सन्मार्ग पर उपस्थित
हुई, वे परिषद् द्वारा प्रशंसित भगवान् केशी
और गौतम प्रसन्न हो ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१ पञ्जुवट्ठिया (घृ० पा०) ।

२ सम्मत्ते पञ्जुवट्ठिया (चू०) ।

३. सञ्जुता ते पदीसत्तु (चू०) ।

चतुर्विंशदं अध्यायः :

प्रवचन-माता

चतुर्विंश अध्यायः :

प्रवचन-माता

आसुख

जार्ज सरपेन्टियर के अनुसार सभी आदर्शों में इस अध्ययन का नाम 'समिर्द्धयो' है ।^१ समवायाग में भी इसका यही नाम है ।^२ निर्युक्तिकार ने इसका नाम 'प्रवचन-मात' या 'प्रवचन-माता' माना है ।^३

ईर्या, भाषा, रषणा, आदान-निक्षेप और उत्सर्ग—इन पाँच समितियों तथा मनो-गुप्ति, वाग्-गुप्ति और काय-गुप्ति—इन तीनों गुप्तियों का संयुक्त नाम 'प्रवचन-माता' या 'प्रवचन-मात' है । (श्लो० १)

रत्नत्रयी (सम्यग्-ज्ञान, सम्यग्-दर्शन और सम्यग्-चारित्र) को भी प्रवचन कहा जाता है । उसकी रक्षा के लिए पाँच समितियाँ और तीन गुप्तियाँ माता-स्थानीय हैं । अथवा प्रवचन (मुनि) के समस्त चारित्र के उत्पादन, रक्षण और विशोधन के ये आठों अनन्य साधन हैं अतः उन्हें 'प्रवचन-माता' कहा गया है ।^४

इनमें प्रवचन (गणिपिटक—द्वादशाङ्ग) समा जाता है । इसलिए उन्हें 'प्रवचन-मात' भी कहा जाता है । (श्लो० ३)

मन, वाणी और शरीर के गोपन, उत्सर्ग या विसर्जन को गुप्ति और सम्यग्-गति, भाषा, आहार की रषणा, उपकरणों का ग्रहण-निक्षेप और मल-मूत्र आदि के उत्सर्ग को समिति कहा जाता है । गुप्ति निवर्तन है और समिति सम्यक् प्रवर्तन । प्रथम श्लोक में इनका पृथक् विभाग है किन्तु तीसरे श्लोक में इन आठों को समिति भी कहा गया है ।

समिति का अर्थ है सम्यक्-प्रवर्तन । सम्यक् और असम्यक् का मापदण्ड अहिंसा है । जो प्रवृत्ति अहिंसा से सम्बलित है वह समिति है । समितियाँ पाँच हैं—

१—ईर्या समिति—गमनागमन सम्बन्धी अहिंसा का विवेक ।

२—भाषा समिति—भाषा सम्बन्धी अहिंसा का विवेक ।

३—रषणा समिति—जीवन-निर्वाह के आवश्यक उपकरणों—आहार, वस्त्र आदि के ग्रहण और उपभोग सम्बन्धी अहिंसा का विवेक ।

४—आदान समिति—दैनिक व्यवहार में आने वाले पदार्थों के व्यवहरण सम्बन्धी अहिंसा का विवेक ।

५—उत्सर्ग समिति—उत्सर्ग सम्बन्धी अहिंसा का विवेक ।

१—उत्तराध्ययन सूत्र, दी, पृष्ठ ३६५ ।

२—समवायाग, समवाय ३६

३—(क) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ४५८

जाणगसरीरभविण्णं तच्चहरित्ते अ भायणे दन्व ।

भावमि अ समिद्धो मायं खलु पवयणं जत्थ ॥

(ख) वही, गा० ४५९

अट्ठसुवि समिद्धं अ दुवालसगं समोअरहं जम्हा ।

तम्हा पवयणमाया अज्झयणं होइ नायव्व ॥

४—मूलाराधना, आग्रवास ६, श्लोक ११८५, मूलाराधना दर्पण, पृष्ठ ११७२

प्रवचनस्य रत्नत्रयस्य मातर इव पुत्राणां मातर इव सम्यग्दर्शनादीनां अपायनिवारणपरायणास्तिस्रो गुप्तयः, पञ्चसमितयश्च । अथवा प्रवचनस्य मुनेश्चारित्रमात्रस्योत्पादनरक्षण-विशोधनविधानात् तास्तथा व्यपदिश्यन्ते ।

इन पाँच समितियों का पालन करने वाला मुनि जीवाकुल ससार में रहता हुआ भी पापों से लिप्त नहीं होता ।^१

जिस प्रकार दृढ़ कवचधारी योद्धा बाणों की वर्षा होने पर भी नहीं बौँधा जा सकता, उसी प्रकार समितियों का सम्यक् पालन करने वाला मुनि साधु-जीवन के विविध कार्यों में प्रवर्तमान होता हुआ भी पापों से लिप्त नहीं होता ।^२

गुप्ति का अर्थ है निवर्तन । वे तीन प्रकार की हैं—

१—मनोगुप्ति—असत् चिन्तन से निवर्तन ।

२—वचनगुप्ति—असत् वाणी से निवर्तन ।

३—कायगुप्ति—असत् प्रवृत्ति से निवर्तन ।

जिस प्रकार क्षेत्र की रक्षा के लिए बाढ़, नगर की रक्षा के लिए खाई या प्राकार होता है, उसी प्रकार श्रामण्य की सुरक्षा के लिए, पाप के निरोध के लिए गुप्ति है ।^३

महान्नतों की सुरक्षा के तीन साधन हैं—

१—रान्नि-भोजन की निवृत्ति ।

२—आठ प्रवचन-माताओं में जागरूकता ।

३—भावना (सस्कारापादन—एक ही प्रवृत्ति का पुनः-पुनः अभ्यास) ।

इस प्रकार महान्नतों की परिपालना समिति-गुप्ति-सापेक्ष है । इनके होने पर महान्नत सुरक्षित रहते हैं और न होने पर असुरक्षित ।^४

यह अध्ययन साधु आचार का प्रथम और अनिवार्य अंग है । कहा गया है कि चौदह पूर्व पद लेने पर भी जो मुनि प्रवचन-माताओं में निपुण नहीं है, उसका ज्ञान अज्ञान है । जो व्यक्ति कुछ नहीं जानता और प्रवचन-माताओं में निपुण है, सचेत है, वह व्यक्ति स्व-पर के लिए त्राण है ।

मुनि कैसे खाए ?, कैसे बोले ?, कैसे चले ?, वस्तुओं का व्यवहरण कैसे करे ? उत्सर्ग कैसे करे ?—इनका स्पष्ट विवेचन इस अध्ययन में दिया गया है ।

मुनि जब चले तब गमन की क्रिया में उपयुक्त हो जाए, एक तान हो जाए । प्रत्येक चरण पर उसे यह मान रहे कि—“मैं चल रहा हूँ ।” वह चलने की स्मृति को क्षण मात्र के लिए भी न भूले । युग-मात्र भूमि को देख कर चले । चलते समय अन्यान्य विषयों का वर्जन करे । (श्लो० ६,७,८)

१—मूलाराधना, ६।१२००

एदाहि सदा जुत्तो, समिदीहि जगन्मि विहरमाणे हु ।

हिसादिहि न लिप्पइ, जीवणिकायाउले साहु ॥

२—वही, ६।१२०२ :

सरवासे वि पढते, जह दढकवचो ण विज्झदि सरेहि ।

तह समिदीहि ण लिप्पइ, साधू काएसु हरियंतो ॥

३—वही, ६।११८६ :

छेत्तस्स वदी णयरस्स, खाइया भहव होइ पायारो ।

तह पावस्स णिरोहो, ताओ गुत्तीओ साहुस्स ॥

४—मूलाराधना, ६।११८५ :

तेसि चैव वदाण, रक्खट्ट रादिभोयणणियत्ती ।

अट्ठप्पवयणमादाओ भावणाओ य सन्वाओ ॥

विजयोदया वृत्ति, पृष्ठ ११७२ • सत्यां रान्नि भोजन-निवृत्तौ प्रवचनमातृकास्य भावनास्य वा सतीषु हिसादिव्यावृत्तत्वं भवति । न तास्वसतीषु इति ॥

मुनि झूठ न बोले । झूठ के आठ कारण हैं—क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, मौख्य और विकथा । मुनि इनका वर्जन करे । यह भाषा समिति का विवेक है ।

मुनि शुद्ध रचना करे । गवेषणा, ग्रहणैषणा और भोगैषणा के दोषों का वर्जन करे । (श्लो० ११, १२)

मुनि को प्रत्येक वस्तु याचित मिलती है । उसका पूर्ण उपयोग करना उसका कर्तव्य है । प्रत्येक पदार्थ का व्यवहरण उपयोग-सहित होना चाहिए । वस्तु को लेने या रखने में अहिंसा की दृष्टि होनी चाहिए । (श्लो० १३, १४)

मुनि के उत्सर्ग करने की विधि भी बहुत विवेक-पूर्ण होनी चाहिए । ज्यों-त्यों, जहाँ-कहाँ वह उत्सर्ग नहीं कर सकता । जहाँ लोगों का आवागमन न हो, जहाँ चूहों आदि के बिल न हों, जो त्रस या स्थावर प्राणियों से युक्त न हो—ऐसे स्थान पर मुनि को उत्सर्ग करना चाहिए । यह विधि अहिंसा की पोषक तो है ही किन्तु सम्यजन-सम्मत भी है । (श्लो० १५, १६, १७, १८)

मानसिक तथा वाचिक संवत्सेशों से पूर्णतः निवृत्त होना मनोगुप्ति तथा वचनगुप्ति है ।

मनोयोग चार प्रकार का है—

- १—सत्य मनोयोग ।
- २—असत्य मनोयोग ।
- ३—मिश्र मनोयोग ।
- ४—व्यवहार मनोयोग ।

वचनयोग चार प्रकार का है—

- १—सत्य वचनयोग ।
- २—असत्य वचनयोग ।
- ३—मिश्र वचनयोग ।
- ४—व्यवहार वचनयोग ।

काययोग—

स्थान, निषीदन, शयन, उत्लघन, गमन और इन्द्रियों के व्यापार में असत् अश का वर्जन करना—काय-गुप्ति है ।

सम्पूर्ण दृष्टि से देखा जाए तो यह अध्ययन समूचे साधु-जीवन का उपष्टम्भ है । इसके माध्यम से ही भ्रामण्य का शुद्ध परिपालन संभव है । जिस मुनि की प्रवचन-माताओं के पाठन में विशुद्धता है उसका समूचा आचार विशुद्ध है । जो इसमें स्वकृत होता है वह समूचे आचार में स्वकृत होता है ।

चउविसइमं अज्झयण : चतुर्विंश अध्ययन

पवयण-माया : प्रवचन-माता

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
—अट्ट समिई गुत्ती तहेव य । पंचेव य समिईओ तओ गुत्तीओ आहिया ॥	अष्टौप्रवचन-मातर' समितयो गुप्तयस्तथैव च । पंचेव च समितय तिस्रो गुप्तय आख्याताः ॥	१—आठ प्रवचन माताएँ है—समिति और गुप्ति । समितियाँ पाँच और गुप्तियाँ तीन ।
२—इरियाभासेसणादाणे उच्चारं समिई इय । मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती य' अट्टमा ॥	ईर्याभाषैषणादाने उच्चारं समितिरिति । मनोगुप्तिवंचोगुप्तिः कायगुप्तिश्चाष्टमी ॥	२—ईर्या-समिति, भाषा-समिति, एषणा- समिति, आदान-समिति, उच्चार-समिति, मनो- गुप्ति, वचन-गुप्ति और आठवीं काय-गुप्ति है ।
३—एयाओ अट्ट समिईओ समासेण वियाहिया । दुवालसग जिणक्खाय माय जत्थ उ पवयण ॥	एता अष्टौ समितयः समासेन व्याख्याता । द्वादशाङ्ग जिनाख्यात मात यत्र तु प्रवचनम् ॥	३—ये आठ समितियाँ संक्षेप में कही गई है । इनमें जिन-भाषित द्वादशाङ्ग-रूप प्रवचन समाया हुआ है ।
४—आलम्बणेण कालेण मग्गेण जयणाइ य । चउकारणपरिसुद्ध सजए इरिय रिए ॥	आलम्बनेन कालेन मार्गेण यतनया च । चतुष्कारण-परिशुद्धां सयत ईर्या रीयेत ॥	४—सयमी मुनि आलम्बन, काल, मार्ग और यतना—इन चार कारणों से परिशुद्ध ईर्या (गति) से चले ।
५—तत्थ आलवण नाण दसण चरण तथा । काले य दिवसे वुत्ते मग्गे उप्पहवज्जिए ^२ ॥	तत्रालम्बन ज्ञानं दर्शनं चरणं तथा । कालश्च दिवस उक्तः मार्ग उत्पथ-वर्जित ॥	५—उनमें ईर्या का आलम्बन, ज्ञान, दर्शन और चारित्र है । उसका काल दिवस है और उत्पथ का वर्जन करना उसका मार्ग है ।

१ उ (अ) ।

२. उप्पहवज्जिए (अ) ।

६—द्ववओ खेतओ चेव
कालओ भावओ तहा ।
जयणा^१ चउव्विहा वुत्ता
त मे कित्तयओ सुण ॥

द्रव्यत. क्षेत्रतश्चैव
कालतो भावतस्तथा ।
यतना चतुर्विधा उक्ता
तां मे कीर्तयतः शृणु ॥

६—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से
यतना चार प्रकार की कही गई है । वह मैं कह
रहा हूँ, सुनो ।

७—द्ववओ चक्खुसा पेहे
जुगमित्त च खेतओ ।
कालओ जाव रीएज्जा
उवउत्ते य भावओ ॥

द्रव्यतश्चक्षुषा प्रेक्षेत
युग-मात्र च क्षेत्रतः ।
कालतो यावद्रीयेत
उपयुक्तश्च भावतः ॥

७—द्रव्य से—आँखों से देखे । क्षेत्र से—
युग-मात्र (गाड़ी के जुए जितनी) भूमि को
देखे । काल से—जब तक चले तब तक देखे ।
भाव से—उपयुक्त (गमन में दत्तचित्त) रहे ।

८—इन्दियत्थे विवज्जित्ता
सज्झाय चेव पचहा ।
तम्मृत्ती तप्पुरक्कारे
उवउत्ते इरिय^२ रिए ॥

इन्द्रियार्थान् विवर्ज्य
स्वाध्याय चैव पचधा ।
तन्मूर्तिः तत्पुरस्कारः
उपयुक्त ईर्या रीयेत ॥

८—इन्द्रियों के विषयों और पाँच प्रकार
के स्वाध्याय का वर्जन कर, ईर्या में तन्मय हो,
उसे प्रमुख बना उपयोग पूर्वक चले ।

९—‘कोहे माणे य मायाए
लोभे य उवउत्तया^३ ।
हासे भए मोहरिए
विगहासु तहेव च ॥’^४

क्रोधे माने च मायायां
लोभे चोपयुक्तता ।
हासे भये मौखर्ये
विकथासु तथैव च ॥

९—क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य,
भय, वाचालता और विकथा के प्रति सावधान
रहे—इनका प्रयोग न करे ।

१०—एयाइ अट्ट ठाणाइ
परिवज्जित्तु सजए ।
असावज्ज मिय काले
भासं भासेज्ज पन्नव ॥

एतान्यष्टौ स्थानानि
परिवर्ज्य सयत ।
असावद्या मितं काले
भाषां भाषेत प्रज्ञावान् ॥

१०—प्रज्ञावान् मुनि इन आठ स्थानों
का वर्जन कर यथा-समय निरवद्य और परि-
मित वचन बोले ।

११—‘गवेसणाए गहणे य
परिभोगेसणा य जा ।
आहारोवहिसेज्जाए
एए तिन्नि विसोहए ॥’^५

गवेषणाया ग्रहणे च
परिभोगैषणा च या ।
आहारोपधिशय्याया
एतास्तिस्रो विशोधयेत् ॥

११—आहार, उपधि और शय्या के
विषय में गवेषणा, ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा
इन तीनों का विशोधन करे ।

१ जायणा (ऋ०) ।

२ रिय (ऋ०) ।

३ उवउत्तओ (अ) ।

४ कोहे य माणे य माया य लोभे य तहेव य ।
हास भय मोहरीए विकहा य तहेव य ॥ (वृ० पा०) ।

५ गवेसणाए गहणेण परिभोगेसणाणि य ।
आहारमुवाहि मेज्ज एए तिन्नि विसोहिय ॥ (वृ० पा०) ।

१२—उगमुप्पायणं पढमे
बीए सोहेज्ज एसण ।
परिभोयमि चउक्कं
विसोहेज्ज जय जई ॥

उद्गमोत्पादनं प्रथमायां
द्वितीयाया शोधयेदेषणाम् ।
परिभोगे चतुष्क
विशोधयेद् यतं यतिः ॥

१२—यतनाशील यति प्रथम एपणा (गवेषणा-एपणा) में उद्गम और उत्पादन—दोनों का शोधन करे । दूसरी एपणा (ग्रहण-एपणा) में एपणा (ग्रहण) सम्बन्धी दोषों का शोधन करे और परिभोगेपणा में दोष-चतुष्क (संयोजना, अप्रमाण, अगार-धूम और कारण) का शोधन करे ।

१३—ओहोवहोवग्गहिय
भण्डग दुविह मुणी ।
गिण्हन्तो निक्खिवन्तो य
पउजेज्ज इम विहिं ॥

ओद्योपध्यौपग्रहिक
भाण्डक द्विविध मुनिः ।
गृह्णन्निक्षिपेच्च
प्रयुजीतेमं विधिम् ॥

१३—मुनि ओघ-उपधि (सामान्य उपकरण) और औपग्रहिक-उपधि (विशेष उपकरण)—दोनों प्रकार के उपकरणों को लेने और रखने में इस विधि का प्रयोग करे—

१४—चक्खुसा पडिलेहिता
पमज्जेज्ज जय जई ।
आइए निक्खिवेज्जा वा
दुहओ वि समिए सया ॥

चक्षुषा प्रतिलिख्य
प्रमार्जयेद् यत यतिः ।
आददीत निक्षिपेद् वा
द्विघातोपि समितः सदा ॥

१४—मदा सम्यक्-प्रवृत्त और यतनाशील यति दोनों प्रकार के उपकरणों का चक्षु से प्रतिलिखन कर तथा रजोहरण आदि में प्रमार्जन कर उन्हें ले और रखे ।

१५—उच्चार पासवण
खेल सिंघाणजल्लिय ।
आहार उवहिं देह
अन्न वावि तहाविह ॥

उच्चार प्रत्यवण
क्ष्वेल सिङ्घाण जल्लकम् ।
आहारमुर्पाधि देह
अन्यद्वापि तथाविधम् ॥

१५—उच्चार, प्रत्यवण, श्लेष्म, नाक का मैल, मैल, आहार, उपधि, शरीर या उन्मी 'कार की दूसरी कोई उत्सर्ग करने योग्य वस्तु का उपयुक्त स्थण्डिल में उत्सर्ग करे ।

१६—अणावायमसलोए
अणावाए चेव होइ सलोए ।
आवायमसलोए
आवाए चेय सलोए ॥

अनापातमसलोकम्
अनापात चैव भवति सलोकम् ।
आपातमसलोकम्
आपात चैव संलोकम् ॥

१६—स्थण्डिल चार प्रकार के होते हैं—
१—अनापात-असलोक—जहाँ लोगों का आवागमन न हो, वे दूर से भी न दीखते हो ।
२—अनापात-सलोक—जहाँ लोगों का आवागमन न हो, किन्तु वे दूर से दीखते हों ।
३—आपात-असलोक—जहाँ लोगों का आवागमन हो, किन्तु वे दूर से न दीखते हों ।
४—आपात-सलोक—जहाँ लोगों का आवागमन भी हो, और वे दूर से दीखते भी हो ।

१७—अणावायमसलोए
परस्सऽणुवघाइए ।
समे अज्झुसिरे यावि
अचिरकालकयमि य ॥

१८—विट्थिण्णे दूरमोगाढे
नासन्ने बिलवज्जिए ।
तसपाणवीयरहिए
उच्चाराईणि वोसिरे ॥

१९—एयाओ पच समिईओ
समासेण वियाहिया ।
एतो य तओ गुत्तीओ
वोच्छामि अणुपुव्वसो ॥

२०—सच्चा तहेव मोसा य
सच्चामोसा तहेव य ।
चउत्थी असच्चमोसा
मणगुत्ती चउव्विहा ॥

२१—संरम्भसमारम्भे
आरम्भे य तहेव य ।
मण पवत्तमाण तु
नियत्तेज्ज जय जई ॥

२२—सच्चा तहेव मोसा य
सच्चामोसा तहेव य ।
चउत्थी असच्चमोसा
वइगुत्ती चउव्विहा ॥

२३—सरम्भसमारम्भे
आरम्भे य तहेव य ।
वय पवत्तमाण तु
नियत्तेज्ज जयं जई ॥

आनापातेऽसंलोके
परस्याऽनुपघातिके ।
समेऽशुषिरे चापि
अचिरकालकृते च ॥

विस्तीर्णे दूरमवगाढे
नासन्ने बिलवर्जिते ।
त्रसप्राणबीजरहिते
उच्चारादीनि व्युत्सृजेत् ॥

एताः पचसमितयः
समासेन व्याख्याताः ।
इतश्च तिस्रो गुप्तीः
वक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥

सत्या तथैव मृषा च
सत्यामृषा तथैव च ।
चतुर्थ्यसत्यामृषा
मनोगुप्तिश्चतुर्विधा ॥

संरम्भ-समारम्भे
आरम्भे च तथैव च ।
मन-प्रवर्तमानं तु
निवर्तयेद्यतं यतिः ॥

सत्या तथैव मृषा च
सत्यामृषा तथैव च ।
चतुर्थ्य सत्यामृषा
वचो-गुप्तिश्चतुर्विधा ॥

संरम्भ-समारम्भे
आरम्भे च तथैव च ।
वचः प्रवर्तमानं तु
निवर्तयेद्यतं यतिः ॥

१७—जो स्थण्डिल, अनापात-असलोक,
पर के लिए अनुपघातकारी, सम, अशुषिर
(पोल या दरार रहित) कुछ समय पहले ही
निर्जीव बना हुआ—

१८—कम से कम एक हाथ विस्तृत
तथा नीचे से चार अंगुल की निर्जीव परत
वाला, गाँव आदि से दूर, बिल रहित और त्रस
प्राणी तथा बीजो से रहित हो—उसमें उच्चार
आदि का उत्सर्ग करे ।

१९—ये पाँच समितियाँ संक्षेप में कहीं
गई हैं । यहाँ से क्रमशः तीन गुप्तियाँ कहेंगे ।

२०—सत्या, मृषा, सत्यामृषा और
चौथी असत्यामृषा—इस प्रकार मनो-गुप्ति के
चार प्रकार हैं ।

२१—यतनाशील यति संरम्भ, समारम्भ
और आरम्भ में प्रवर्तमान मन का निवर्तन
करे ।

२२—सत्या, मृषा, सत्या-मृषा और
असत्या-मृषा—इस प्रकार वचन-गुप्ति के चार
प्रकार हैं ।

२३—यतनाशील यति संरम्भ, समारम्भ
और आरम्भ में प्रवर्तमान वचन का निवर्तन
करे ।

२४—ठाणे निसीयणे चैव
तहेव य तुयट्टणे ।
उल्लघणपल्लघणे
इन्द्रियाण य जुजणे ॥

स्थानेनिषदने चैव
तथैव च त्वग्-वर्तने ।
उल्लङ्घन-प्रलङ्घने
इन्द्रियाणा च योजने ॥

२४—ठहरने, बैठने, लेटने, उल्लघन-
प्रलघन करने और इन्द्रियों के व्यापार में—

२५—सरम्भसमारम्भे
आरम्भम्मि तहेव य ।
काय पवत्तमाण तु
नियत्तेज्ज जय जई ॥

सरम्भ-समारम्भे
आरम्भे तथैव च ।
काय प्रवर्तमान तु
निवर्तयेद्यत यतिः ॥

२५—सरम्भ, ममारम्भ और आरम्भ में
प्रवर्तमान काया का निवर्तन करे ।

२६—एयाओ पच समिडओ
चरणस्स य पवत्तणे ।
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता
असुभत्थेमु सव्वसो ॥

एता पच समितयः
चरणस्य च प्रवर्तने ।
गुप्तयो निवर्तने उक्ताः
अशुभार्थेभ्यः सवभ्यः ॥

२६—ये पाँच समितियाँ चारित्र की
प्रवृत्ति के लिए है और तीन गुप्तियाँ सब अशुभ
विषयों से निवृत्ति करने के लिए है ।

२७—एया पवयणमाया
जे सम्म आयरे मुणी ।
से खिप्प सव्वससारा
विप्पमुच्चड पण्डिए ॥
—त्ति वेमि ।

एता प्रवचन-मातृ
यः सम्यगाचरेन्मुनिः ।
स क्षिप्र सर्वससारात्
विप्रमुच्यते पण्डितः ॥
—इति ब्रवीमि ।

२७—जो पण्डित मुनि इन प्रवचन-
माताओं का सम्यक् आचरण करता है, वह
शीघ्र ही सर्व संसार से मुक्त हो जाता है ।
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

पंचविंशतमं अङ्गवर्णनं :
जन्मइज्जं

पंचविंश अङ्गवर्णन :
यज्ञीय

आस्तुख

इस अध्ययन का नाम 'जन्नइग्ज'--'यज्ञीय' है। इसका मुख्य विवक्षित विषय यज्ञ है।^१ यज्ञ शब्द का अर्थ देव-पूजा है। जीव-वध आदि बाह्य अनुष्ठान के द्वारा किए जाने वाले यज्ञ को जैन-परम्परा में द्रव्य (अवास्तविक)-यज्ञ कहा है। वास्तविक यज्ञ भाव-यज्ञ होता है। उसका अर्थ है—तप और सयम में यतना—अनुष्ठान करना।^२

प्रसंगवश इस अध्ययन में (१६ वें श्लोक से ३३ वें श्लोक तक) ब्राह्मण के मुख्य गुणों का उल्लेख हुआ है।

वाराणसी नगरी में जयघोष और विजयघोष नाम के दो ब्राह्मण रहते थे। वे काश्यप-गोत्रीय थे। वे पूजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन, दान और प्रतिग्रह इन छह कर्मों में रत और चार वेदों के अध्येता थे। वे दोनों युगल रूप में जन्मे हुए थे। एक बार जयघोष स्नान करने नदी पर गया हुआ था। उसने देखा कि एक सर्प मेढक को निगल रहा है। इतने में एक कुरर पक्षी वहाँ आया और सर्प को पकड़ कर खाने लगा। मरणकाल आसन्न होने पर भी सर्प मेढक को खाने में रत था और इधर कम्पायमान सर्प को खाने में कुरर आसक्त था। इस दृश्य को देख जयघोष उद्विग्न हो उठा। एक दूसरे के उपघात को देख कर उसका मन वैराग्य से भर गया। वह प्रतिबुद्ध हो गया। गंगा को पार कर श्रमणों के पास पहुँचा। अपने उद्वेग का समाधान पा श्रमण हो गया।

एक बार मुनि जयघोष एक-रात्रि की प्रतिमा को स्वीकार कर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वाराणसी आए। बहिर्भाग में एक उद्यान में ठहरे। आज उनके एक महीने की तपस्या का पारणा था। वे भिक्षा लेने नगर में गए। उसी दिन ब्राह्मण विजयघोष ने यज्ञ प्रारम्भ किया था। दूर-दूर से ब्राह्मण बुलाए गए थे। उनके लिए विविध भोजन-सामग्री तैयार की गई थी। मुनि जयघोष भिक्षा लेने यज्ञ-वाट में पहुँचे। भिक्षा की याचना की। प्रमुख याजक विजयघोष ने कहा—'मुने। मैं तुम्हें भिक्षा नहीं दूँगा। तुम कहीं अन्यत्र चले जाओ। जो ब्राह्मण वेदों को जानते हैं, जो यज्ञ आदि करते हैं, जो शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष—वेद के इन छह अंगों के पारगामी हैं तथा जो अपनी और दूसरों की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं—उन्हीं को यह प्रणीत अन्न दिया जाएगा, तुम जैसे व्यक्तियों को नहीं। (श्लो० ६, ७, ८)

मुनि जयघोष ने यह बात सुनी। प्रतिषिद्ध किए जाने पर रुष्ट नहीं हुए। सम-भाव का आचरण करते हुए स्थिर-चित्त हो, भोजन पाने के लिए नहीं किन्तु याजकों को सही ज्ञान कराने के लिए कई तथ्य प्रकट किए। ब्राह्मणों के लक्षण बताए। मुनि के वचन सुन विजयघोष ब्राह्मण सम्बुद्ध हुआ और उनके पास दीक्षित हो गया। सम्यक् आराधना कर दोनों सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए।

१—उत्तराध्ययन, निर्युक्ति गाथा ४६२

जयघोमा अणगारा विजयघोसस्स जन्नकिञ्चमि ।

ततो समुट्ठिमिण अज्झयण जन्नइज्जन्ति ॥

२—वही, गाथा ४६१

तवसज्जेसु जयणा भावे जन्नो मुणेयव्वो ॥

मुनि को भोजन के लिए, पान के लिए, वस्त्र के लिए, वसती के लिए आदि-आदि कारणों से धर्मोपदेश नहीं देना चाहिए, किन्तु केवल आत्मोद्धार के लिए ही उपदेश देना चाहिए। इसी तथ्य को स्पष्टता से व्यक्त करते हुए जयघोष मुनि ब्राह्मण विजयघोष से कहते हैं—

“मुनि न अन्न के लिए, न जल के लिए और न किसी अन्य जीवन-निर्वाह के साधन के लिए, लेकिन मुक्ति के लिए धर्मोपदेश देते हैं। मुझे भिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं। तुम निष्क्रमण कर मुनि-जीवन को स्वीकार करो। (श्लो० १०, ३८)

“भोग आसक्ति है और अभोग अनासक्ति। आसक्ति संसार है और अनासक्ति मोक्ष। मिट्टी के दो गोले हैं—एक गोला और दूसरा सूखा। जो गोला होता है वह भित्ति पर चिपक जाता है और जो सूखा होता है वह नहीं चिपकता। इसी प्रकार जो व्यक्ति आसक्ति से भरा है, कर्म-पुद्गल उसके चिपकते हैं और जो अनासक्त है, कर्म उसके नहीं चिपकते। (श्लो० ३८ से ४१)

“बाह्य-चिह्न, वेष आदि आन्तरिक पवित्रता के द्योतक नहीं हैं। बाह्य-लिंग सम्प्रदायानुगत अस्तित्व के द्योतक मात्र हैं। मुण्डित होने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता। ऊँकार का जाप करने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता, अरण्य में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता, दर्म-वल्कल आदि धारण करने मात्र से कोई तापस नहीं होता। (श्लो० ३९)

“समभाव से समण होता है, ब्रह्मचर्य का पालन करने से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तपस्या से तापस होता है। (श्लो० ३९)

“जातिवाद अतात्त्विक है। अपने-अपने कार्य से व्यक्ति ब्राह्मण आदि होता है। जाति कार्य के आधार पर विभाजित है, जन्म के आधार पर नहीं। मनुष्य कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय, कर्म से वैश्य और कर्म से शूद्र।” (श्लो० ३९)

वेद, यज्ञ, धर्म और नक्षत्र का मुख क्या है? अपनी तथा दूसरों की आत्मा का सुधार करने में कौन समर्थ है?—इन प्रश्नों का समाधान मुनि जयघोष ने विस्तार से दिया है। (श्लो० १६ से ३३)

पंचविंशद्वयं अज्ज्ञयणं : पंचविंश अध्यायन

जन्मइज्जं : यजीयम्

मूल
१—माहणकुलसभूयो
आसि विष्णो महायसो ।
जायाई जमजन्ममि
जयघोसे त्ति नामथो ॥

संस्कृत छाया
माहन-कुल-सभूतः
आमीइ विप्रो महायसा ।
यायाजो यम-यज्ञे
जयघोष इति नामतः ॥

हिन्दी अनुवाद
१—ब्राह्मण कुल में उत्पन्न एक महान्
यशस्वी विप्र था । वह जीव-संहारक यज्ञ में
लगा रहता था । उसका नाम था जयघोष ।

२—इन्द्रियगामनिग्गाही
मग्गगामी महामुणी ।
गामाणुगाम रीयन्ते
पत्ते वाणारसि पुरिं ॥

इन्द्रिय-ग्राम-निग्राही
मार्ग-गामी महामुनिः ।
ग्रामानुग्राम रीयमाणः
प्राप्तो वाराणसी पुरीम् ॥

२—वह इन्द्रिय-समूह का निग्रह करने
वाला मार्ग-गामी महामुनि हो गया । एक गाँव
से दूसरे गाँव जाता हुआ वह वाराणसी पुरी
पहुँच गया ।

३—वाणारसीए^१ वहिया
उज्जाणंमि मणोरमे ।
फासुए सेज्जसथारे
तत्थ वासमुवागए ॥

वाराणस्या ग्रहि
उद्याने मनोरमे ।
प्रासुके शय्या-मस्तारे
तत्र वासमुपागत ॥

३—वाराणसी के बाहर मनोरम उद्यान
में प्रासुक शय्या और बिछोना लेकर वहाँ
रहा ।

४—अह तेणेव कालेण
पुरीए तत्थ माहणे ।
विजयघोसे त्ति नामेण
जन्म ॥ जयइ वेयवी ॥

अथ तस्मिन्नेव काले
पुर्यां तत्र माहनः ।
विजयघोष इति नाम्ना
यज्ञं यजति वेद-वित् ॥

४—उसी समय उस पुरी में वेदों को
जानने वाला विजयघोष नाम का ब्राह्मण यज्ञ
करता था ।

५—अह से तत्थ अणगारे
मासक्खमणपारणे
विजयघोसस्स जन्ममि
भिक्खमट्ठा^२ उवट्ठिए ॥

अथ स तत्रानगर-
मास-क्षपण-पारणे ।
विजयघोषस्य यज्ञे
भिक्षार्थमुपस्थित ॥

५—वह जयघोष मुनि एक मास की
तपस्या का पारणा करने के लिए विजयघोष
के यज्ञ में मिला लेने को उपस्थित हुआ ।

१. वाणारसीय (अ, घृ०) ।

२. भिक्खस्स अट्ठा (घृ० पा०) ।

उत्तरजम्भयणं (उत्तराध्ययन)

६—समुवद्विष्य तर्हि सन्तं
जायगो पडिसेहए ।
न हु दाहामि ते भिक्ख
भिक्खू जायाहि अन्नओ ॥

७—जे य वेयविऊ विप्पा
जन्तुटा य 'जे दिया'^१ ।
जोइसगविऊ जे य
जे य धम्माण पारगा ।

८—जे समत्था समुद्धत्तु
पर अप्पाणमेव य ।
तेसि अन्नमिण देय
भो भिक्खू सव्वकामिय ॥

९—सो 'एव तत्थ'^२ पडिसिद्धो
जायगेण महामुणी ।
न वि रुट्ठो न वि तुट्ठो
उत्तमद्गवेसओ ॥

१०—नऽन्नट्ट पाणहेउं वा
न वि निव्वाहणाय वा ।
तेसि विमोक्खणट्ठाए
इम वयणमब्बवी ॥

११—नवि जाणसि वेयमुह
नवि जन्नाण जं मुह ।
नक्खत्ताण मुह ज च
ज च धम्माण वा मुह ॥

समुपस्थितं तत्र सन्त
याजकः प्रतिषेधयति ।
न खलु दास्यामि तुभ्य भिक्षां
भिक्षो ! याचस्वान्यतः ॥

ये च वेद-विदो विप्राः
यज्ञार्थाश्च ये द्विजाः ।
ज्योतिषाविदो ये च
ये च धर्माणा पारगाः ॥

ये समर्थाः समुद्धर्तुं
परमात्मानमेव च ।
तेभ्योऽन्नमिदं देय
भो भिक्षो ! सर्व-कामितम् ॥

स एव तत्र प्रतिषिद्धः
याजकेन महामुनिः ।
नापि रुष्टो नापि तुष्टः
उत्तमार्थ-गवेषकः ॥

नान्तार्थं पान-हेतुं वा
नापि निवर्हिणाय वा ।
तेषां विमोक्षणार्थम्
इदं वचनं मग्नवीत् ॥

नापि जानासि वेद-मुख
नापि यज्ञाना यन्मुखम् ।
नक्षत्राणां मुखं यच्च
यच्च धर्माणां वा मुखम् ॥

६—यज्ञ-कर्त्ता ने वहाँ उपस्थित हुए मुनि
को निषेध की भाषा में कहा—“भिक्षो ! तुझे
भिक्षा नहीं दूंगा और कही याचना करो ।

७-८—“हे भिक्षो ! यह सबके द्वारा
अभिलषित भोजन उन्हीं को देना है जो वेदों
को जानने वाले विप्र हैं, यज्ञ के लिए जो द्विज
हैं, जो ज्योतिष आदि वेद के छहों अंगों को
जानने वाले हैं, जो धर्म-शास्त्रों के पारगामी
हैं, जो अपना और पराया उद्धार करने में
समर्थ हैं ।”

९—वह उत्तम अर्थ की गवेषणा करने
वाला महामुनि वहाँ यज्ञ-कर्त्ता के द्वारा
प्रतिषेध किए जाने पर न रुष्ट ही हुआ और
न तुष्ट ही ।

१०—न अन्न के लिए, न जल के लिए
और न किसी जीवन-निर्वाह के साधन के लिए,
किन्तु उनकी विमुक्ति के लिए मुनि ने इस
प्रकार कहा—

११—“तू वेद के मुख को नहीं जानता ।
यज्ञ का जो मुख है, उसे भी नहीं जानता ।
नक्षत्र का जो मुख है और धर्म का जो मुख
है, उसे भी नहीं जानता ।

१२—जे समत्था समुद्धत्तुं
पर अप्पाणमेव य ।
न ते तुम वियाणासि
अह जाणासि तो भण ॥

ये समर्थाः समुद्धत्तुं
परमात्मानमेव च ।
न तान् त्व विजानासि
अय जानासि तदा भण ॥

१२—“जो अपना और पराया उद्धार करने में समर्थ है, उन्हें तू नहीं जानता । यदि जानता है तो बता ।”

१३—तस्सऽक्खेवपमोक्ख च
अचयन्तो तहिं दिओ ।
सपरिसो पजली होउ
पुच्छई त महामुणि ॥

तस्याक्षेपप्रमोक्ष च
अशक्नुवन् तत्र द्विजः ।
स-परिपत् प्राजलिभूत्वा
पृच्छति त महामुनिम् ॥

१३—मुनि के प्रश्न का उत्तर देने में अपने को असमर्थ पाते हुए द्विज ने परिपद् सहित हाथ जोड़ कर उस महामुनि से पूछा—

१४—वेयाण च मुह बूहि
बूहि जन्नाण ज मुह ।
नक्खत्ताण मुह बूहि
बूहि धम्माण वा मुह ॥

वेदाना च मुख ब्रूहि
ब्रूहि यज्ञानां यन्मुखम् ।
नक्षत्राणा मुख ब्रूहि
ब्रूहि धर्माणा वा मुखम् ॥

१४—“तुम कहो वेदों का मुख क्या है ? यज्ञ का जो मुख है वह तुम्हीं बतलाओ । तुम कहो नक्षत्रों का मुख क्या है ? धर्मों का मुख क्या है ? तुम्हीं बतलाओ ।

१५—जे समत्था समुद्धत्तुं
पर अप्पाणमेव य ।
एय मे ससय सव्व
साहू कहय' पुच्छिओ ॥

ये समर्थाः समुद्धत्तुं
परमात्मानमेव च ।
एत मे सशय सर्व
साधो । कथय पृष्ठः ॥

१५—“जो अपना और पराया उद्धार करने में समर्थ है (उनके विषय में तुम्हीं कहो) । हे साधु ! यह मुझे सारा सशय है, तुम मेरे प्रश्नों का समाधान दो ।”

१६—अग्निहोत्तमुहा वेया
जन्तट्ठी वेयसा मुह ।
नक्खत्ताण मुह चन्दो
धम्माण कासवो मुह ॥

अग्निहोत्र-मुखा वेदाः
यज्ञार्थी वेदसा मुखम् ।
नक्षत्राणा मुख चन्द्रः
धर्माणा काश्यपो मुखम् ॥

१६—“वेदों का मुख अग्निहोत्र है, यज्ञों का मुख यज्ञार्थी है, नक्षत्रों का मुख चन्द्रमा है और धर्मों का मुख काश्यप-ऋषभदेव है ।

१७—‘जहा चन्द्र गहाईया
चिट्ठन्ती पजलीउडा ।
वन्दमाणा नमसन्ता
उत्तम मणहारिणो ॥’^२

यथा चन्द्र ग्रहादिका
तिष्ठन्ति प्राजलि-पुटा ।
वन्दमाना नमस्यन्तः
उत्तम मनोहारिणः ॥

१७—“जिस प्रकार चन्द्रमा के सम्मुख ग्रह आदि हाथ जोड़े हुए, वन्दना-नमस्कार करते हुए और विनीत भाव से मन का हरण करते हुए रहते हैं उसी प्रकार भगवान् ऋषभ के सम्मुख सब लोग रहते थे ।

१ कहह (अ) ।

२. जहा चन्दे गहाईये चिट्ठन्ती पजलीउडा ।

णमसमाणा वंदती उद्धत्तमणहारिणो [उद्धत्तु मणहारिणो] ॥ (वृ० पा०) ।

१८—अजाणगा जन्नवाई
विज्जामाहणसपया ।
गूढा^१ सज्झायतवसा
भासच्छन्ता इवऽग्निणो ॥

अजायकाः यज्ञ-वादिनः ।
विद्या-माहन-सम्पदाम् ।
गूढाः स्वाध्याय-तपसा
भस्म-च्छन्ता इवाग्नयः ॥

१८—“जो यज्ञ-वादी है वे ब्राह्मण की सम्पदा—विद्या से अनभिज्ञ है। वे बाहर में स्वाध्याय और तपस्या से उसी प्रकार ढंके हुए हैं जिस प्रकार अग्नि राख से ढंकी हुई होती है ।

१९—जो लोए बम्भणो वुत्तो
अग्गी वा महिओ जहा ।
सया कुसलसदिट्ठ
तं वयं ब्रूम माहण ॥

यो लोके ब्राह्मण उक्तः
अग्निर्वा महितो यथा ।
सदा कुशल-संदिष्ट
तं वयं ब्रूमो माहनम् ॥

१९—“जिसे कुशल पुरुषो ने ब्राह्मण कहा है, जो अग्नि की भाँति सदा लोक में पूजित है, उसे हम कुशल पुरुष द्वारा कहा हुआ ब्राह्मण कहते हैं ।

२०—जो न सज्जइ आगन्तुं
पव्वयन्तो न सोयई^२ ।
रमए अज्जवयणमि
तं वयं ब्रूम माहण ॥

यो न स्वजत्यागन्तुं
प्रव्रजन्न शोचति ।
रमते आर्य-वचने
तं वयं ब्रूमो माहनम् ॥

२०—“जो आने पर आसक्त नहीं होता, जाने के समय शोक नहीं करता, जो आर्य-वचन में रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

२१—जायरूव जहामट्ट^३
निद्धन्तमलपावग ।
रागदोसभयाईय
तं वयं ब्रूम माहण ॥

जातरूप यथामृष्ट
निर्धर्मात्-मल-पापकम् ।
राग-दोष-भयातीत
तं वयं ब्रूमो माहनम् ॥

२१—“अग्नि में तपा कर शुद्ध किए हुए और धिसे हुए सोने की तरह जो विशुद्ध है तथा राग-द्वेष और भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

[तवस्सिय कियं दन्त
अवचियमससोणिय ।
सुव्वय पत्तनिव्वाण
तं वयं ब्रूम माहण ॥]^४

[तपस्विनं कृश दान्तं
अपचित्त-मांस-शोणितम् ।
सुव्रतं प्राप्त-निर्वाण
तं वयं ब्रूमो माहनम् ॥]

‘[जो तपस्वी है, कृश है, दान्त है, जिसके मांस और शोणित का अपचय हो चुका है, जो सुव्रत है, जो शान्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।]

१. मूढा (वृ०), गूढा (वृ० पा०) ।

२. सुव्वइ (उ) ।

३. महामट्ट (वृ०), जहामट्ट (वृ० पा०) ।

४. यह श्लोक बृहद् वृत्ति में व्याख्यात नहीं है ।

२२—तसपाणे वियाणेत्ता
संगहेण 'य थावरे'^१ ।
जो न हिंसइ तिविहेण^२
त वय वूम माहण ॥

अस-प्राणिनो विज्ञाय
संगहेण च स्यावरान् ।
यो न हिनस्ति त्रिविधेन
त वय ब्रूमो माहनम् ॥

२२—“जो अस और स्थावर जीवों को भलीभाँति जान कर मन, वाणी और शरीर से उनकी हिंसा नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

२३—कोहा वा जइ वा हासा
लोहा वा जइ वा भया ।
मुस न वयई जो उ
त वय वूम माहणं ॥

क्रोधाइ वा यदि वा हासात्
लोभाद्वा यदि वा भयात् ।
मृषा न वदति यस्तु
त वय ब्रूमो माहनम् ॥

२३—“जो क्रोध, हान्य, लोभ या भय के कारण अमत्य नहीं बोलता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

२४—चित्तमन्तमचित्तं वा
अप्प वा जइ वा वहुं ।
न गेण्हइ अदत्तं जो
तं वय वूम माहण ॥

चित्तवदचित्तं वा
अल्पं वा यदि वा बहुम् ।
न गृह्णात्यदत्तं यः
तं वयं ब्रूमो माहनम् ॥

२४—“जो सचित्त या अचित्त कोई भी पदार्थ, थोड़ा या अधिक कितना ही क्यों न हो, उसके अधिकारी के दिए बिना नहीं लेता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

२५—दिव्वमाणुसतेरिच्छं
जो न सेवइ मेहुणं ।
मणसा कायवक्केणं
तं वय वूम माहण ॥

दिव्य-मानुष-तैरश्चं
यो न सेवते मैयुनम् ।
मनसा काय-वाक्येन
तं वय ब्रूमो माहनम् ॥

२५—“जो देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी मैयुन का मन, वचन और काय में सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

२६—जहा पोम जले जाय
नोवलिप्पइ वारिणा ।
एव अलित्तो^३ कामेहि
त वय वूम माहण ॥

यथा पद्म जले जात
नोपलिप्यते वारिणा ।
एवमलिप्त कामैः
तं वय ब्रूमो माहनम् ॥

२६—“जिस प्रकार जल में उत्पन्न हुआ कमल जल से लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार काम-भोग के वातावरण में उत्पन्न हुआ जो मनुष्य उससे लिप्त नहीं होता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

२७—अलोलुय मुहाजीवी^४
अणगार अकिंचण ।
असंसत्त गिहत्येसु
त वय वूम माहण ॥

अलोलुप मुधा-जीविन
अनगारमकिंचनम् ।
असंसक्त गृहस्थेषु
त वय ब्रूमो माहनम् ॥

२७—“जो लोलुप नहीं है, जो निर्दोष भिक्षा से जीवन का निर्वाह करता है, जो गृह-त्यागी है, जो अकिंचन है, जो गृहस्थों में अनासक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

१. सथावरे (वृ० पा०) ।

२. एय तु (वृ०) ; त्रिविहेण (वृ० पा०) ।

३. अलित्त (आ, इ, छ०) ।

४. मुहाजीवि (वृ० पा०) ।

[जहिता पुव्वसंजोग
नाइसंगे^१ य बन्धवे ।
जो न सज्जइ एएहि^२
त वय बूम माहण ॥]^३

[त्यक्त्वा पूर्व-सयोग
ज्ञाति-संगाँश्च बान्धवान् ।
यो न स्वजति एतेषु
तं वय ब्रूमो माहनम् ॥]

[जो पूर्व-सयोग, ज्ञाति-जनो की आसक्ति
और बान्धवों को छोड़ कर उनमें आसक्त नहीं
होता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।]

२८—पसुबन्धा^४ सव्ववेया^५
जट्ट च पावकम्मुणा ।
न त तायन्ति दुस्सीलं
कम्माणि बलवन्ति ह ॥

पशु-बन्धाः सर्व-वेदाः
इष्ट च पाप-कर्मणा ।
न तं त्रायन्ते दुःशीलं
कर्माणि बलवन्ति इह ॥

२८—“जिनके शिक्षा-पद पशुओं को बलि
के लिए यज्ञस्तूपों में बाधे जाने के हेतु
बनते हैं, वे सब वेद और पशु-बलि आदि पाप-
कर्म के द्वारा किए जाने वाले यज्ञ दुराचार-
सम्पन्न उस यज्ञ-कर्त्ता को त्राण नहीं देते,
क्योंकि कर्म बलवान् होते हैं ।

२९—न वि मुण्डिण समणो
न ओकारेण बम्भणो ।
न मुणी रणवासेण
कुसचीरेण न तावसो ॥

नाऽपि मुण्डितेन श्रमणः
न ओकारेण ब्राह्मणः ।
न मुनिररण्य-वासेन
कुश-चीवरेण न तापसः ॥

२९—“केवल सिर मूढ़ लेने से कोई श्रमण
नहीं होता, ‘ओम्’ का जप करने मात्र से कोई
ब्राह्मण नहीं होता, केवल अरण्य में रहने से
कोई मुनि नहीं होता और कुश का चीवर
पहनने मात्र से कोई तापस नहीं होता ।

३०—समयाए समणो होइ
बम्भचेरेण बम्भणो ।
नाणेण य मुणी होइ
तवेण होइ तावसो ॥

समतया श्रमणो भवति
ब्रह्मचर्येण ब्राह्मण ।
ज्ञानने च मुनिर्भवति
तपसा भवति तापसः ॥

३०—“समभाव की साधना करने से
श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य के पालन से ब्राह्मण
होता है, ज्ञान की आराधना—मनन करने से
मुनि होता है, तप का आचरण करने से
तापस होता है ।

३१—कम्मुणा बम्भणो होइ
कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइस्सो कम्मुणा होइ
सुट्ठो हवइ^६ कम्मुणा ॥

कर्मणा ब्राह्मणो भवति
कर्मणा भवति क्षत्रियः ।
वैश्यो कर्मणा भवति
शूद्रो भवति कर्मणा ॥

३१—“मनुष्य कर्म से ब्राह्मण होता है,
कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है
और कर्म से ही शूद्र होता है ।

१. नाइ सजोगे (ऋ०) ।

२. भोगेह (ऋ०), एएह (उ) ।

३. यह श्लोक बृहद् वृत्ति में पाठान्तर रूप में स्वीकृत है ।

४. पसुवद्धा (वृ० पा०) ।

५. सव्व वेया य (अ) ।

६. होइय (अ) ; होइ उ (वृ०)

३२—एए 'पाउकरे वुद्धे'^१
जेहि होइ सिणायओ ।
सव्वकम्मविनिम्मुक्क
त वय वूम माहण ॥

एतान्प्रादुरकार्षीद्वुद्धः ।
यैर्भवति स्नातकः ।
सर्व-कर्म-विनिर्मुक्त
तं वयं ब्रूमो माहनम् ॥

३२—“इन तत्त्वों को बर्हत् ने प्रकट किया है । इनके द्वारा जो मनुष्य स्नातक होता है, जो सब कर्मों से मुक्त होता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

३३—एव गुणसमाउत्ता
जे भवन्ति दिउत्तमा ।
ते समत्था उ उद्धत्तु
पर अप्पाणमेव य ॥

एव गुण-समायुक्ताः
ये भवन्ति द्विजोत्तमाः ।
ते समर्थास्तूदधर्तुम्
परमात्मानमेव च ॥

३३—“इस प्रकार जो गुण-सम्पन्न द्विजोत्तम होते हैं, वे ही अपना और पराया उद्धार करने में समर्थ हैं ।”

३४—एव तु ससए छिन्ने
विजयघोसे य माहणे^२ ।
'समुदाय तय'^३ त तु'^४
जयघोस महामुणि ॥

एव तु सशये छिन्ने
विजयघोषश्च माहनः ।
समुदाय तका त तु
जयघोष महामुनिम् ॥

३४—“इस प्रकार सशय दूर होने पर विजयघोष ब्राह्मण ने जयघोष की वाणी को भली-भाँति समझा और—

३५—तुद्धे य विजयघोसे
इणमुदाहु कयजली ।
माहणत्त जहाभूय
सुद्धु मे उवदसिय ॥

तुण्डश्च विजयघोषः
इदमुदाहृ कृताजलिः ।
माहनत्त्व यथाभूत
सुद्धु मे उपदर्शितम् ॥

३५—“महामुनि जयघोष से मतुण्ड हो, हाथ-जोड़ कर इस प्रकार कहा—“तुमने मुझे यथार्थ ब्राह्मणत्व का बहुत ही अच्छा अर्थ समझाया है ।

३६—तुब्भे जइया जन्नाण
तुब्भे वेयविऊ विऊ ।
जोइसगविऊ तुब्भे
तुब्भे धम्माण पारगा ॥

यूय यण्टारो यज्ञाना
यूय वेद-विदो विदः ।
ज्योतिषाग-विदो यूय
यूय धर्माणा पारगाः ॥

३६—“तुम यज्ञों के यज्ञकर्त्ता हो, तुम वेदों को जानने वाले विद्वान् हो, तुम वेद के ज्योतिष आदि छहों अंगों को जानते हो, तुम धर्मों के पारगामी हो ।

३७—तुब्भे समत्था उद्धत्तु
पर अप्पाणमेव य ।
तमणुग्गह करेहम्मह^५
भिक्षवेण^६ भिक्षुउत्तमा ॥

यूय समर्थाः उदधर्तुं
परमात्मानमेव च ।
तदनुग्रहं कुरुतास्माकं
भैक्ष्येण भिक्षुत्तमाः ॥

३७—“तुम अपना और पराया उद्धार करने में समर्थ हो, इसलिए हे भिक्षु-श्रेष्ठ । तुम हम पर भिक्षा लेने का अनुग्रह करो ।”

१ पाउकराधम्मा (वृ० पा०) ।

२ वभणे (वृ०), माहणे (वृ० पा०) ।

३ तओ (अ, छ०, ऋ०) ।

४ सजाणतो तओ त तु (वृ० पा०), समादाय तय स व (उ) ।

५ करे अम्म (अ, इ) ।

६ भिक्षवण (वृ०) ।

३८—न कज्ज मज्झ भिक्खेण
खिप्प निक्खमसू दिया ।
मा भमिहिसि भयावट्टे^१
घोरे^२ ससारसागरे ॥

न कार्यं मम भैक्ष्येण
क्षिप्रं निष्काम द्विज ! ।
मा भ्रमीः भयावर्त्ते
घोरे ससार-सागरे ॥

३८—“मुझे भिक्षा मे कोई प्रयोजन नहीं है । हे द्विज ! तू तुरन्त ही निष्क्रमण कर मुनि-जीवन को स्वीकार कर । जिससे भय के आवर्त्तों से आकीर्ण इस घोर ससार-सागर में मुझे चक्कर लगाना न पड़े ।

३९—उवलेवो होइ भोगेसु
अभोगी नोवलिप्पई ।
भोगी भमइ ससारे
अभोगी विप्पमुच्चई ॥

उपलेपो भवति भोगेषु
अभोगी नोपलिप्यते ।
भोगी भ्रमति संसारे
अभोगी विप्रमुच्यते ॥

३९—“भोगो में उपलेप होता है । अभोगी लिप्त नहीं होता । भोगी ससार में भ्रमण करता है । अभोगी उससे मुक्त हो जाता है ।

४०—उल्लो सुक्को य दो छूढा
गोलया मट्टियामया ।
दो वि आवडिया कुड्डे
जो उल्लो सोतत्थ^३ लग्गई ॥

आर्द्रः शुष्कश्च द्वौ क्षिप्तौ
गोलकौ मृत्तिकामयौ ।
द्वावप्यापत्तिर्तौ कुड्ये
य आर्द्रः स तत्र लगति ॥

४०—“मिट्टी के दो गोले—एक गीला और एक सूखा-फेंके गए । दोनों भीत पर गिरे । जो गीला था वह वहाँ चिपक गया ।

४१—एव लगन्ति दुम्मेहा
जे नरा कामलालसा ।
विरत्ता उ न लगन्ति
जहा सुक्को उ गोलओ ॥

एव लगन्ति दुर्मेधस
ये नराः काम-लालसा ।
विरक्तास्तु न लगन्ति
यथा शुष्कस्तु गोलकः ॥

४१—“इसी प्रकार जो मनुष्य दुर्बुद्धि और काम-भोगों में आसक्त होते हैं, वे विषयों से चिपट जाते हैं । जो विरक्त होते हैं, वे उनसे नहीं चिपटते, जैसे सूखा गोला ।”

४२—एव से विजयघोसे
जयघोसस्स अन्तिए ।
अणगारस्स निक्खन्तो
धम्म ‘सोच्चा अणुत्तर’^४ ॥

एव स विजयघोष
जयघोषस्यान्तिके ।
अनगारस्य निष्क्रान्तः
धर्मं श्रुत्वाऽनुत्तरम् ॥

४२—“इस प्रकार वह विजयघोष जयघोष अनगार के समीप अनुत्तर धर्म सुन कर प्रव्रजित हो गया ।

४३—खवित्ता पुव्वकम्माइ
सजमेण तवेण य ।
जयघोसविजयघोसा
सिद्धि पत्ता अणुत्तर ॥
—ति वेमि ।

क्षपयित्वा पूर्व-कर्माणि
संयमेन तपसा च ।
जयघोष-विजयघोषौ
सिद्धिं प्राप्तवानुत्तराम् ॥
—इति ब्रवीमि ।

४३—“जयघोष और विजयघोष ने समय और तप के द्वारा पूर्व संचित कर्मों को क्षीण कर अनुत्तर सिद्धि प्राप्त की ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१ भयावर्त्ते (घृ० पा०) ।

२ दीहं (घृ० पा०) ।

३ सोत्थ (घृ०, ऋ०) ।

४ सोच्चाण केवलं (वृ० पा०) ।

छवीसइमं अज्झयणं :
सामायारी

षट्ठविंश अध्ययन :
सामाचारी

आस्तुत्र

इस अध्ययन में 'इच्छा' आदि का समाचरण वर्णित है इसलिए इस अध्ययन का नाम 'सामाचारी'—
'सामाचारी' है ।

‘णाणस्स सार आचारो’—ज्ञान का सार है आचार । आचार जीवन-मुक्ति का साधन है । जैन मनीषियों ने जिस प्रकार तत्त्वों की सूक्ष्मतम छानबीन की है उसी प्रकार आचार का सूक्ष्मतम निरूपण भी किया है । आचार दो प्रकार का होता है—व्रतात्मक-आचार और व्यवहारात्मक-आचार । व्रतात्मक-आचार अहिंसा है । वह शाश्वत धर्म है । व्यवहारात्मक-आचार है परस्परानुग्रह । वह अनेक विध होता है । वह अशाश्वत है ।

जो मुनि सधीय-जीवन यापन करते हैं उनके लिए व्यवहारात्मक-आचार भी उतना ही उपयोगी है जितना कि व्रतात्मक-आचार । जिस सध या समूह में व्यवहारात्मक-आचार की उन्नत विधि है और उसकी सम्यक् परि-
पालना होती है, वह सध दीर्घायु होता है । उसकी एकता अखण्ड होती है ।

जैन आचार-शास्त्र में दोनों आचारों का विशद् निरूपण प्राप्त है । प्रस्तुत अध्ययन में व्यवहारात्मक-
आचार के दस प्रकारों का स्फुट निदर्शन है । ये दस प्रकार सम्यक्-आचार के आधार हैं इसलिए इन्हें समाचार,
सामाचार या सामाचारी कहा है ।

सामाचारी के दो प्रकार हैं—

१—ओघ सामाचारी ।

२—पद-विभाग सामाचारी ।

प्रस्तुत अध्ययन में ओघ सामाचारी का निरूपण है । टीकाकार ने अध्ययन के अन्त में यह जानकारी
प्रस्तुत की है कि ओघ सामाचारी का अन्तर्भाव धर्मकथानुयोग में होता है और पद-विभाग सामाचारी का चरण-
करणानुयोग में । उत्तराध्ययन धर्मकथानुयोग के अन्तर्गत है ।^१ ओघ सामाचारी के दस प्रकार हैं । (३७० ३, ४)

१—आवश्यक

२—नैषेधिकी

३—आपृच्छा

४—प्रतिपृच्छा

५—छन्दना

६—इच्छाकार

७—मिच्छाकार

८—तथाकार

९—अभ्युत्थान

१०—उपसपदा

स्थानाङ्ग (१०।७४६) तथा भगवतो (३५।७) में दस सामाचारी का उल्लेख है । इनमें क्रम-भेद के अतिरिक्त
एक नाम-भेद भी है—‘अभ्युत्थान’ के बदले ‘निमत्रणा’ है । निर्युक्ति (गाथा ४८२) में भी ‘निमत्रणा’ ही दिया है ।
मूलाचार (गाथा १२५) में स्थानाङ्ग में प्रतिपादित क्रम से ओघ सामाचारी का प्रतिपादन हुआ है ।

१—बृहद् वृत्ति, पत्र ५४७

अनन्तरोक्ता सामाचारी दशविधा ओघरूपा च पदविभागात्मिका चेह नोक्ता धर्मकथाऽनुयोगत्वादस्य हेदसूत्रान्तर्गतत्वाच्च तस्या — ।

दिगम्बर-साहित्य में सामाचारी के स्थान पर समाचार, सामाचार शब्द का प्रयोग हुआ है और इसके चार अर्थ किए हैं—

- १—समता का आचार ।
- २—सम्यग् आचार ।
- ३—सम (तुल्य) आचार ।
- ४—समान (परिमाण सहित) आचार ।^१

वचिच् चक्रवाल-सामाचारी का भी उल्लेख मिलता है । वर्द्धमान देशना (पत्र १०३) में शिक्षा के दो प्रकार बताए हैं—आसेवना शिक्षा और ग्रहण शिक्षा ।

आसेवना शिक्षा के अन्तर्गत दस-विध चक्रवाल सामाचारी का उल्लेख हुआ है ।^२

- | | |
|--------------|----------------------------|
| १—प्रतिलेखना | ६—मोजन |
| २—प्रमार्जना | ७—पात्रक धावन |
| ३—मिक्षा | ८—विचारण (बहिर्भूमि-गमन) |
| ४—चर्या | ९—स्थण्डिल |
| ५—आलोचना | १०—आवश्यिकी |

उपर्युक्त दस सामाचारियों में आवश्यिकी विभाग में सारी औधिक सामाचारियों का ग्रहण हुआ है ।

सामाचारी का अर्थ है—मुनि का आचार-व्यवहार या इति-कर्तव्यता । इस व्यापक परिभाषा से मुनि-जीवन की दिन-रात की समस्त प्रवृत्तियाँ 'सामाचारी' शब्द से व्यवहृत हो सकती है । दस-विध औधिक सामाचारी के साथ-साथ प्रस्तुत अध्ययन में अन्यान्य कर्तव्यों का निर्देश भी हुआ है ।

शिष्य के लिए आवश्यक है कि वह जो भी कार्य करे गुरु से आज्ञा प्राप्त कर करे । (श्लो० ८, ९, १०) दिन-चर्या की व्यवस्था के लिए दिन के चार भागों और उनमें करणीय कार्यों का उल्लेख श्लो० ११ और १२ में है । श्लो० १३ से १६ तक दैवसिक काल-ज्ञान—दिन के चार प्रहरों को जानने की विधि है । श्लो० १७ और १८ में रात्रि-चर्या के चार भागों और उनमें करणीय कार्यों का उल्लेख है । श्लो० १९ और २० में रात्रिक काल-ज्ञान—रात के चार प्रहरों को जानने की विधि और प्रथम और चतुर्थ प्रहर में स्वाध्याय करने का निर्देश है । श्लो० २१ में उपधि-प्रतिलेखना और स्वाध्याय का विधान है । ८ वें श्लोक में भी यह विषय-प्रतिपादित है । यहाँ थोड़े परिवर्तन के साथ पुनरुक्त है । श्लो० २२ में पात्र-प्रतिलेखना तथा २३ में उसका क्रम है । श्लो० २४ से २८ तक वस्त्र-प्रतिलेखना की विधि है । श्लो० २९ और ३० में प्रतिलेखना-प्रमाद के दोष का निरूपण है । श्लो० ३१ से ३५ तक में दिन के तीसरे प्रहर के कतव्य-मिक्षाचरी, आहार तथा दूसरे गाँव में मिक्षार्थ जाने आदि का विधान है । श्लो० ३६ एवं ३७ तथा ३८ के प्रथम दो चरणों तक चतुर्थ प्रहर के कर्तव्य—वस्त्र-पात्र-प्रतिलेखन, स्वाध्याय, शय्या और उच्चार-भूमि की प्रतिलेखना का विधान है । श्लो० ३८ के अन्तिम दो चरणों से ४२ के तीन चरणों तक दैवसिक प्रतिक्रमण का विधान है । चतुर्थ चरण में रात्रिक काल-प्रतिलेखना का विधान है । श्लो० ४३ वाँ १८ वें का पुनरुक्त है तथा ४४ वाँ २० वें का पुनरुक्त है । श्लो० ४५ से ५१ तक रात्रिक प्रतिक्रमण का विधान है । ५२ वें श्लोक में उपसंहार है । २० वें श्लोक तक एक प्रकार से ओष सामाचारी (दिन और रात की चर्या) का प्रतिपादन हो चुका है । श्लोक २१ से ५१ तक प्रतिपादित विषय का ही विस्तार से प्रतिपादन किया है । इसलिए यत्र वचिच् पुनरुक्तियाँ भी है ।

१—मूलाचार, गाथा १२३

समदा सामाचारो, सम्माचारो समो व आचारो ।

सर्वेसि सम्माणं, सामाचारो हु आचारो ॥

२—प्रवचन सारोद्धार, गाथा ७६०, ७६१ में 'इच्छा, मिच्छा' आदि को चक्रवाल-सामाचारी के अन्तर्गत माना है और गाथा ७६८ में प्रतिलेखना, प्रमार्जना आदि को प्रकारान्तर से दस-विध सामाचारी माना है ।

मुनि दिन के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे में ध्यान, तीसरे में भिक्षाचर्या और चौथे में पुनः स्वाध्याय । (श्लो० १३)

मुनि रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे में ध्यान, तीसरे में निद्रा-मोक्ष (शयन) और चौथे में पुनः स्वाध्याय । (श्लो० १४)

यह मुनि के औत्सर्गिक कर्तव्यों का निर्देश है । इसमें कई अपवाद भी हैं ।

दैनिक-कृत्यों का विस्तार से वर्णन ३१ वें से ३८ वें श्लोकों तक हुआ है और रात्रिक-कृत्यों का ३९ वें से ५१ वें श्लोक तक ।

यह सारा वर्णन सामाचारी के अन्तर्गत आता है ॥ सामाचारी सधीय जीवन जीने की कला है । इससे पारस्परिक एकता की भावना पनपती है और इससे सध दृढ बनता है । दस-विध सामाचारी की सम्यक् परिपालना से व्यक्ति में निम्न विशेष गुण उत्पन्न होते हैं—

१—आवश्यक और नैषेधिकी से निष्प्रयोजन गमनागमन पर नियन्त्रण रखने की आदत पनपती है ।

२—मिच्छाकार से पापों के प्रति सजगता के भाव पनपते हैं ।

३—आपृच्छा और प्रतिपृच्छा से श्रमशील तथा दूसरों के लिए उपयोगी बनने के भाव बनते हैं ।

४—छन्दना से अतिथि-सत्कार की प्रवृत्ति बढ़ती है ।

५—इच्छाकार से दूसरों के अनुग्रह को सहर्ष स्वीकार करने तथा अपने अनुग्रह में परिवर्तन करने की कला आती है ।

परस्परानुग्रह सधीय-जीवन का अनिवार्य तत्त्व है । परन्तु व्यक्ति उस अनुग्रह को अधिकार मान बैठता है, वहाँ स्थिति जटिल बन जाती है । दूसरों के अनुग्रह की हार्दिक स्वीकृति स्वयं में विनय पैदा करती है ।

६—उपसम्पदा से परस्पर-ग्रहण की अभिलाषा पनपती है ।

७—अभ्युत्थान (गुरु-पूजा) से गुरुता की ओर अभिमुखता होती है ।

८—तथाकार से आग्रह की आदत छूट जाती है, विचार करने के लिए प्रवृत्ति सदा उन्मुक्त रहती है ।

छवीसइमं अज्झयण : पड्विंश अध्ययन

सामायारी : सामाचारी

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१--सामायारिं पवक्खामि सव्वदुक्खविमोक्खणिं । ज चरित्ताण निगन्था तिण्णा ससारसागरं ॥	सामाचारीं प्रवक्ष्यामि सर्व-दुःख-विमोक्षणीम् । या चरित्त्वा निग्रन्थाः तीर्णाः ससार-सागरम् ॥	१—मैं सब दुःखों से मुक्त करने वाली उस सामाचारी का निरूपण करूँगा, जिसका आचरण कर निर्ग्रन्थ ससार-सागर को तिर गए ।
२—पढमा आवस्सिया नाम विडया य' निसीहिया । आपुच्छणा य तडया चउत्थी पडिपुच्छणा ॥	प्रथमा आवश्यकी नाम्नी द्वितीया च निषोधिका । आप्रच्छना च तृतीया चतुर्थी प्रतिप्रच्छना ॥	२—पहली आवश्यकी, दूसरी नैषेधिकी, तीसरी आपृच्छना, चौथी प्रति-प्रच्छना—
३—पचमा छन्दणा नाम इच्छाकारो य छट्ठो । सत्तमो मिच्छकारो य' तहकारो य अट्ठमो ॥	पचमी छन्दना नाम्नी इच्छाकारश्च षष्ठः । सप्तमः मिथ्याकारश्च तथाकारश्च अष्टमः ॥	३—पाँचवी छन्दना, छठी इच्छाकार, सातवी मिथ्याकार, आठवी तथाकार—
४—अब्भुट्ठाण नवम दसमा उवसंपदा । एसा दसगा साहूणं सामायारी पवेइया ॥	अभ्युत्थान नवम दशमी उपसम्पदा । एषा दशागा साधूना सामाचारी प्रवेदिता ॥	४—नौवीं अभ्युत्थान, दशवीं उपसंपदा— भगवान् ने इस दश अग वाली साधुओं की सामाचारी का निरूपण किया है ।

१. होइ (उ) ।

२. उ (आ, इ) ।

५—गमणे आवस्सियं कुज्जा
ठाणे कुज्जा निसीहियं ।
आपुच्छणा सयकरणे
परकरणे पडिपुच्छणा ॥

गमने आवश्यकी कुर्यात्
स्थाने कुर्यान्निषेधिकाम् ।
आप्रच्छना स्वयं करणे
पर-करणे प्रतिप्रच्छना ॥

५—(१) स्थान से बाहर जाते समय
आवश्यकी करे—आवश्यकी का
उच्चारण करे ।
(२) स्थान में प्रवेश करते समय
नैषेधिकी करे—नैषेधिकी का
उच्चारण करे ।
(३) अपना कार्य करने से पूर्व
आपृच्छा करे—गुरु से अनुमति ले ।
(४) एक कार्य से दूसरा कार्य करते
समय प्रतिपृच्छा करे—गुरु से पुनः
अनुमति ले ।

६—छन्दणा दव्वजाएणं
इच्छाकारो य सारणे ।
मिच्छाकारो य निन्दाए
तहकारो य^१ पडिस्सुए ॥

छन्दना द्रव्यजातेन
इच्छाकारश्च सारणे ।
मिथ्याकारश्च निन्दायां
तथाकारश्च प्रतिश्रुते ॥

६—(५) पूर्व-गृहीत द्रव्यों से छन्दना करे—
गुरु आदि को निमन्त्रित करे ।
(६) सारणा (औचित्य से कार्य करने
और कराने) में इच्छाकार का
प्रयोग करे—आपकी इच्छा हो तो
मैं आपका अमुक कार्य करूँ ।
आपकी इच्छा हो तो कृपया
मेरा अमुक कार्य करें ।
(७) अनाचरित की निन्दा के लिए
मिथ्याकार का प्रयोग करे ।
(८) प्रतिश्रवण (गुरु द्वारा प्राप्त उपदेश
की स्वीकृति) के लिए तथाकार
(यह ऐसे ही है) का प्रयोग करे ।

७—अब्भुट्ठाणं गुरुपूया
अच्छणे उवसंपदा ।
'एव दुपंचसंजुत्ता'^२
सामायारी पवेइया ॥

अभ्युत्थानं गुरु-पूजायां
आसने उपसम्पद् ।
एवं द्विपच-संयुक्ता
सामाचारी प्रवेदिता ॥

७—(९) गुरु-पूजा (आचार्य, ग्लान, बाल
आदि साधुओं) के लिए अभ्युत्थान
करे—आहार आदि लाए ।
(१०) दूसरे गण के आचार्य आदि के
पास रहने के लिए उपसम्पदा ले—
मर्यादित काल तक उनका शिष्यत्व
स्वीकार करे—इस प्रकार दश-विघ्न
सामाचारी का निरूपण किया
गया है ।

८—पुव्विल्लमि चउब्भाए
आइच्चमि समुट्ठिए ।
भण्डयं पडिलेहिता
वन्दित्ता य तथो गुरुं ॥

पूर्वस्मिन् चतुर्भागे
आदित्ये समुत्थिते ।
भाण्डकं प्रतिलिख्य
वन्दित्वा च ततो गुरुम् ॥

८—सूर्य के उदय होने पर दिन के प्रथम
प्रहर के प्रथम चतुर्थ भाग में भाण्ड-उपकरणों
की प्रतिलेखना करे । तदनन्तर गुरु को वन्दना
कर—

१. × (उ) ।

२. एसा दसंगा साहूण (वृ० पा०) ।

९—पुच्छेज्जा पजलिउडो
किं कायव्वं मए इह ? ।
इच्छ निओइउ भन्ते !
वेयावच्चे व सज्भाए ॥

पृच्छेत् प्रांजलिपुटः
किं कर्त्तव्यं मया इह ? ।
इच्छामि नियोजयितुं भवन्त !
वैयावृत्ये वा स्वाध्याये ॥

९—हाथ जोड़ कर पूछे—अब मुझे क्या करना चाहिए ? भन्ते । मैं चाहता हूँ कि आप मुझे वैयावृत्य या स्वाध्याय में से किसी एक कार्य में नियुक्त करें ।

१०—वेयावच्चे निउत्तेण
कायव्वं अगिलायओ ।
सज्भाए वा निउत्तेणं
सव्वदुक्खविमोक्खणे ॥

वैयावृत्ये नियुक्तेन
कर्त्तव्यमग्लायकेन ।
स्वाध्याये वा नियुक्तेन
सर्व-दुःख-विमोक्षणे ॥

१०—वैयावृत्य में नियुक्त किए जाने पर अग्लान भाव से वैयावृत्य करे अथवा सर्व दुःखों से मुक्त करने वाले स्वाध्याय में नियुक्त किए जाने पर अग्लान भाव से स्वाध्याय करे ।

११—दिवसस्स चउरो भागे
कुज्जा भिक्खू वियक्खणो ।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा
दिणभागेसु चउसु वि ॥

दिवसस्य चतुरो भागान्
कुर्याद् भिक्षुर्विचक्षणः ।
तत् उत्तर-गुणान् कुर्यात्
दिन-भागेषु चतुर्वर्षि ॥

११—विचक्षण भिक्षु दिन के चार भाग करे । उन चारों भागों में उत्तर-गुणों (स्वाध्याय आदि) की आराधना करे ।

१२—पढम पोरिसि सज्भायं
वीय भाण भियायई ।
तइयाए भिक्खायरियं
पुणो चउत्थीए सज्भाय ॥

प्रथमां पौर्ण्वीं स्वाध्यायं
द्वितीयां ध्यानं ध्यायति ।
तृतीयाया भिक्षाचर्या
पुनश्चतुर्थ्या स्वाध्यायम् ॥

१२—प्रथम प्रहर में स्वाध्याय और दूसरे में ध्यान करे । तीसरे में भिक्षाचरी और चौथे में पुनः स्वाध्याय करे ।

१३—आसाढे मासे दुपया
पोसे मासे चउप्पया ।
चित्तासोएसु मासेसु
तिपया हवइ पोरिसी ॥

आषाढे मासे द्विपदा
पौषे मासे चतुष्पदा ।
चैत्राश्विनयोर्मासयोः
त्रिपदा भवति पौर्ण्वी ॥

१३—आषाढ मास में दो पाद प्रमाण, पौष मास में चार पाद प्रमाण, चैत्र तथा आश्विन मास में तीन पाद प्रमाण पौर्ण्वी होती है ।

१४—अगुल सत्तरत्तेणं
पक्खेण य दुअंगुलं ।
वड्ढए हायए वावी
मासेणं चउरगुलं ॥

अंगुल सप्त-रात्रेण
पक्षेण च द्व्यंगुलम् ।
वर्धते हीयते वापि
मासेन चतुरंगुलम् ॥

१४—सात दिन रात में एक अंगुल, पक्ष में दो अंगुल और एक मास में चार अंगुल वृद्धि और हानि होती है । श्रावण मास से पौष मास तक वृद्धि और माघ से आषाढ तक हानि होती है ।

१५—आसाढवहुलपक्षे

भद्वए कत्तिए य पोसे य ।
फगुणवइसाहेसु य
नायव्वा' अमोरत्ताओ ॥

१६—जेट्टामूले आसाढसावणे

छहि अगुलेहि पडिलेहा ।
अट्टहि बीयतियमी
तइए दस अट्टहि चउत्थे ॥

१७—रत्ति पि चउरो भागे

भिकखू कुज्जा वियक्खणो ।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा
राइभाएसु चउसु वि ॥

१८—पढम पोरिसि सज्झायं

वीय भाण फियायई ।
तइयाए निद्धमोक्ख तु
चउत्थी भुज्जो^१ वि सज्झाय ॥

१९—ज नेइ जया रत्ति

नक्खत्त तमि नहचउम्भाए ।
सपत्ते विरमेज्जा
सज्झाय पओसकालम्मि ॥

२०—तम्मेव य नक्खत्ते

गयणचउम्भागसावसेसमि ।
वेरत्तिय पि कालं
पडिलेहिता मुणी कुज्जा ॥

आषाढ-बहुलपक्षे

भाद्रपदे कार्तिके च पौषे च ।
फाल्गुन-वैशाखयोश्च
ज्ञातव्या अवम-रात्रयः ॥

ज्येष्ठा-मूले आषाढ-श्रावणे

षड्भिरंगुलैः प्रतिलेखा ।
अष्टाभिर्द्वितीयत्रिके
तृतीये दशभिरष्टमिश्चतुर्थे ॥

रात्रिमपि चतुरो भागान्

भिक्षुः कुर्याद् विचक्षणः ।
तत उत्तर-गुणान् कुर्यात्
रात्रि-भागेषु चतुर्ष्वपि ॥

प्रथमां पौरुषीं स्वाध्याय

द्वितीयां ध्यान ध्यायति ।
तृतीयायां निद्रा-मोक्ष तु
चतुर्थ्या भूयोपि स्वाध्यायम् ॥

यन्नयति यदा रात्रि

नक्षत्रं तस्मिन् नभश्चतुर्भागे ।
सम्प्राप्ते विरमेत
स्वाध्यायात् प्रदोष-काले ॥

तस्मिन्नेव च नक्षत्रे

गगन-चतुर्भाग-सावशेषे ।
वैरात्रिकमपि कालं
प्रतिलिख्य मुनिः कुर्यात् ॥

१५—आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक, पौष,
फाल्गुन और वैशाख—इनके कृष्ण-पक्ष में
एक-एक अहोरात्र (तिथि) का क्षय होता है ।

१६—ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण इस प्रथम-
त्रिक में छह, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक इस
द्वितीय-त्रिक में आठ, मृगशिर, पौष, माघ
इस तृतीय-त्रिक में दश और फाल्गुन, चैत्र,
वैशाख इस चतुर्थ-त्रिक में आठ आगुल की
वृद्धि करने से प्रतिलेखना का समय होता है ।

१७—विचक्षण भिक्षु रात्रि के भी चार
भाग करे । उन चारो भागो में उत्तर-गुणो की
आराधना करे ।

१८—प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में
ध्यान, तीसरे में नीद और चौथे में पुन
स्वाध्याय करे ।

१९—जो नक्षत्र जिस रात्रि की पूर्ति
करता हो, वह (नक्षत्र) जब आकाश के
चतुर्थ भाग में आए (प्रथम प्रहर समाप्त हो)
तब प्रदोष-काल (रात्रि के 'प्रारम्भ') में
प्रारब्ध स्वाध्याय से विरत हो जाए ।

२०—वही नक्षत्र जब आकाश के चतुर्थ
भाग में शेष रहे तब वैरात्रिक काल (रात
का चतुर्थ प्रहर) आया हुआ जान फिर
स्वाध्याय में प्रवृत्त हो जाए ।

१. बोद्धव्वा (अ) ।

२. पुणो (अ) ।

२१—पुव्विल्लंमि चउवभाए
पडिलेहित्ताण भण्डय ।
गुरु वन्दित्तु सज्झाय
कुज्जा दुक्खविमोक्खण ॥

पूर्वस्मिन् चतुर्भागे
प्रतिलिख्य भाण्डकम् ।
गुरु वन्दित्वा स्वाध्यायं
कुर्याद् दुःख-विमोक्षणम् ॥

२१—दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चतुर्थ भाग में भाण्ड-उपकरणों का प्रतिलेखन कर, गुरु को वन्दना कर, दुःख से मुक्त करने वाला स्वाध्याय करे ।

२२—पोरिसीए चउवभाए
वन्दित्ताण तओ गुरु ।
अपडिकमित्ता कालस्स
भायण पडिलेहए ॥

पौरुष्याश्चतुर्भागे
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
अप्रतिक्रम्य कालस्य
भाजन प्रतिलिखेत् ॥

२२—पीन पौरुषी बीत जाने पर गुरु को वन्दना कर, काल का प्रतिक्रमण—कायोत्सर्ग किए बिना ही भाजन की प्रतिलेखना करे ।

२३—मुहपोत्तिय^१ पडिलेहित्ता
पडिलेहिज्ज गोच्छ्छा ।
गोच्छ्छालइयगुलिओ
वत्थाइ पडिलेहए ॥

मुख-पोतिकां प्रतिलिख्य
प्रतिलिखेत् गोच्छ्रकम् ।
अगुलिलात-गोच्छ्रकः
वस्त्राणि प्रतिलिखेत् ॥

२३—मुख-वांस्त्रका की प्रतिलेखना कर गोच्छ्रक की प्रतिलेखना करे । गोच्छ्रक को अंगुलियों से पकड़ कर भाजन को ढाकने के पटलों की प्रतिलेखना करे ।

२४—उड्ढ थिर अतुरिय
पुव्व ता वत्थमेव पडिलेहे ।
तो विइयं पप्फोडे
तइय च पुणो पमज्जेज्जा ॥

ऊर्ध्वं स्थिरमत्त्वरित
पूर्वं तावद् वस्त्रमेव प्रतिलिखेत् ।
ततो द्वितीय प्रस्फोटयेत्
तृतीय च पुनः प्रमृज्यात् ॥

२४—सबसे पहले ऊकड़ू-आसन बैठ, वस्त्र को ऊँचा रखे, स्थिर रखे और शीघ्रता किए बिना उसकी प्रतिलेखना करे—चक्षु से देखे । दूसरे में वस्त्र को झटकए और तीसरे में वस्त्र की प्रमार्जना करे ।

२५—अणच्चाविय अवलिय
अणाणुवन्धि अमोसलि^२ चेव ।
छप्पुरिमा नव खोडा
^३पाणीपाणविसोहण^४ ॥

अनर्तितमवलितं
अननुवन्धप्रसमौशली चैव ।
षट्-पूर्वा नव-खोडा
पाणि-प्राणि-विशोधनम् ॥

२५—प्रतिलेखना करते समय (१) वस्त्र या शरीर को न नचाए, (२) न मोड़े, (३) वस्त्र के दृष्टि से अलक्षित विभाग न करे, (४) वस्त्र का भीत आदि से स्पर्श न करे, (५) वस्त्र के छह पूर्व और नौ खोटक करे और (६) जो कोई प्राणी हो उसका हाथ पर नौ बार विशोधन (प्रमार्जन) करे ।

१ मुहपत्ति (आ, इ, उ, ऋ०) ।

२ अमोसल (अ), आमोसलि (वृ०) ।

३ पाणीपाणि० (वृ०) ।

४ ^०पमज्जण (आ, वृ०पा०), ^०पमज्जणया (ओघनिर्युक्ति, ४२५) ।

२६—आरभडा सम्मद्दा
वज्जेयव्वा य मोसली तइया ।
पप्फोडणा चउत्थी
विक्खित्ता वेइया छट्ठा ॥

आरभटा सम्मर्दा
वर्जयितव्या च मौशली तृतीया ।
प्रस्फोटना चतुर्थी
विक्षिप्ता वेदिका षष्ठी ॥

२६—मुनि प्रतिलेखना के छह दोषों का वर्जन करे—(१) आरभटा - विधि से विपरीत प्रतिलेखन करना अथवा एक वस्त्र का पूरा प्रतिलेखन किए बिना आकुलता से दूसरे वस्त्र को ग्रहण करना ।

(२) सम्मर्दा—प्रतिलेखन करते समय वस्त्र को इस प्रकार पकड़ना कि उसके बीच में सलवटें पड़ जाय अथवा प्रतिलेखनीय उपधि पर बैठ कर प्रतिलेखना करना ।

(३) मोसली—प्रतिलेखन करते समय वस्त्र को ऊपर, नीचे, तिरछे किसी वस्त्र या पदार्थ से सघट्टित करना ।

(४) प्रस्फोटना—प्रतिलेखन करते समय रज-लिप्त वस्त्र को गृहस्थ की तरह वेग से भटकाना ।

(५) विक्षिप्ता—प्रतिलेखित वस्त्रों को अप्रतिलेखित वस्त्रों पर रखना अथवा वस्त्र के अञ्चल को इतना ऊँचा उठाना कि उसकी प्रतिलेखना न हो सके ।

(६) वेदिका—प्रतिलेखना करते समय घुटनों के ऊपर, नीचे या पार्श्व में हाथ रखना अथवा घुटनों को भुजाओं के बीच रखना ।

२७—(१) प्रशिथिल—वस्त्र को ढीला पकड़ना ।

(२) प्रलम्ब—वस्त्र को विषमता से पकड़ने के कारण कोनो का लटकना ।

(३) लोल—प्रतिलेख्यमान वस्त्र का हाथ या भूमि से सघर्षण करना ।

(४) एकामर्शा—वस्त्र को बीच में से पकड़ कर उसके दोनों पार्श्वों का एक बार में ही स्पर्श करना—एक दृष्टि में ही समूचे वस्त्र को देख लेना ।

(५) अनेक रूप धूनना—प्रतिलेखना करते समय वस्त्र को अनेक बार (तीन बार से अधिक) भटकाना अथवा अनेक वस्त्रों को एक साथ भटकाना ।

(६) प्रमाण-प्रमाद—प्रस्फोटन और प्रमार्जन का जो प्रमाण (नौ-नौ बार करना) बतलाया है, उसमें प्रमाद करना ।

(७) गणनोपगणना - प्रस्फोटन और प्रमार्जन के निर्दिष्ट प्रमाण में शङ्का होने पर उसकी गिनती करना ।

२७—पसिढिलपलम्बलोल
एगामोसा अणेगरूवधुणा^१ ।
कुणइ पमाणि पमाय
सकिएगणणोवग कुज्जा ॥

प्रशिथिल-प्रलम्ब-लोलः
एकामर्शनिकरूपधूनना ।
करोति प्रमाणे प्रमादं
शक्ति गणनोपगं कुर्यात् ॥

२८—अणूणाडरित्तपडिलेहा
अविवच्चासा तहेव य ।
पढम पय पसत्थ
सेसाणि उ अप्पसत्थाइ ॥

२९—पडिलेहण कुणन्तो
मिहोकह कुणइ जणवयकह वा ।
देइ व पच्चक्खाण
वाएइ सय पडिच्छइ वा ॥

३०—पुढवीआउक्काए
तेऊवाऊवणस्सइतसाण ।
पडिलेहणापमत्तो
छण्ह पि विराहओ होइ ॥

[पुढवीआउक्काए
तेऊवाऊवणस्सइतसाण ।
पडिलेहणाउत्तो
छण्ह आराहओ होइ ॥]^१

३१—तइयाए पोरिसीए
भत्त पाण गवेसए ।
छण्ह अन्नयरागम्मि
कारणमि समुट्टिए ॥

३२—वेयणवेयावच्चे
इरियट्टाए य संजमट्टाए ।
तह पाणवत्तियाए
छट्ठ पुण धम्मचिन्ताए ॥

अनूनाऽतिरिक्ता प्रतिलेखा
अविव्यत्यासा तथैव च ।
प्रथम पद प्रशस्त
शेषाणि त्वप्रशस्तानि ॥

प्रतिलेखना कुर्वन्
मिथः-कथा करोति जनपद-कथां
वा ।
ददाति वा प्रत्याख्यान
वाचयति स्वय प्रतीच्छति वा ॥

पृथिव्यप्काययो
तेजो-वायु-वनस्पति-त्रसाणाम् ।
प्रतिलेखना-प्रमत्तः
षण्णामपि विराघको भवति ॥

[पृथिव्यप्काययोः
तेजो-वायु-वनस्पति-त्रसाणाम् ।
प्रतिलेखना-आयुक्त
षण्णामाराघको भवति ॥]

तृतीयाया पौरुष्या
भक्त पान गवेषयेत् ।
षण्णामन्यतरस्मिन्
कारणे समुत्थिते ॥

वेदना-वैयावृत्याय
ईर्यार्थाय च सयमार्थाय ।
तथा प्राण-प्रत्ययाय
षष्ठ पुनः धर्म-चिन्तायै ॥

२८—वस्त्र के प्रम्फोटन और प्रमार्जन के प्रमाण में अन्यून अनतिरिक्त (न कम और न अधिक) और अविपरीत प्रतिलेखना करनी चाहिए । इन तीन विशेषणों के आधार पर प्रतिलेखना के आठ विकल्प बनते हैं । इनमें प्रथम विकल्प (अन्यून अनतिरिक्त और अविपरीत) प्रशस्त है और शेष अप्रशस्त ।

२९—जो प्रतिलेखना करते समय काम-कथा करता है अथवा जन-पद की कथा करता है अथवा प्रत्याख्यान कराता है, दूसरों को पढाता है अथवा स्वय पढता है—

३०—वह प्रतिलेखना में प्रमत्त मुनि पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय—इन छहों कार्यों का विराघक होता है ।

[प्रतिलेखना में अप्रमत्त मुनि पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय—इन छहों कार्यों का आराघक होता है ।]

३१—छह कारणों में से किसी एक के उपस्थित होने पर तीसरे प्रहर में भक्त और पान की गवेषणा करे ।

३२—वेदना (क्षुधा) शान्ति के लिए, वैयावृत्य के लिए, ईर्या समिति के शोधन के लिए, सयम के लिए तथा प्राण-प्रत्यय (जीवित रहने) के लिए और धर्म-चिन्तन के लिए भक्त-पान की गवेषणा करे ।

३३—निगन्थो धिइमन्तो
निगन्थी वि न करेज्ज छहिं चेव ।
ठाणेहिं उ इमेहिं
अणइक्कमणा य से होइ ॥

३४—आयके उवसग्गे^१
तितिक्खया बम्भचेरगुत्तीसु ।
पाणिदया तवहेउं
सरीरवोच्छेयणदृष्टाए ॥

३५—अवसेस भण्डगं गिज्झा
चक्खुसा पडिलेहए ।
परमद्धजोयणाओ
विहार विहरए मुणी ॥

३६—चउत्थीए पोरिसीए
निक्खिवित्ताण भायण ।
सज्झाय तओ कुज्जा
सव्वभावविभावण^२ ॥

३७—पोरिसीए चउढभाए
वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्ता कालस्स
सेज्ज तु पडिलेहए ॥

३८—पासवणुच्चारभूमि च
पडिलेहिज्ज जय जई ।
काउस्सग्ग तओ कुज्जा
सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥

निर्ग्रन्थोऽधृतिमान्
निर्ग्रन्थ्यपि न कुर्याद्दृष्टिभिश्चैव ।
स्थानं स्त्वेभिः
अनतिक्रमणं च तस्य भवति ॥

आतङ्क उपसर्ग
तितिक्षया ब्रह्मचर्य-गुप्तिषु ।
प्राणि-दया तपोहेतोः
शरीर-व्यवच्छेदार्थाय ॥

अवशेषं भाण्डकं गृहीत्वा
चक्षुषा प्रतिलिखेत् ।
परमर्घ्ययोजनात्
विहारं विहरेन्मुनिः ॥

चतुर्थ्या पौरुष्यां
निक्षिप्य भाजनम् ।
स्वाध्याय ततः कुर्यात्
सर्व-भाव-विभावनम् ॥

पौरुष्याश्चतुर्भागे
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
प्रतिक्रम्य कालस्य
शय्या तु प्रतिलिखेत् ॥

प्रस्रवणोच्चार-भूमि च
प्रतिलिखेद् यतं यतिः ।
कायोत्सर्गं ततः कुर्यात्
सर्व-दुःख-विमोक्षणम् ॥

३३—वृतिमान् साधु और साध्वी इन
छह कारणों से भक्त-पान की गवेषणा न करे,
जिससे उनके समय का अतिक्रमण न हो ।

३४—रोग होने पर, उपसर्ग आने पर,
ब्रह्मचर्य गुप्ति की तितिक्षा (सुरक्षा) के लिए,
प्राणियों की दया के लिए, तप के लिए और
शरीर-विच्छेद के लिए मुनि भक्त-पान की
गवेषणा न करे ।

३५—सब (भिक्षोपयोगी) भाण्डोपकरणों
को ग्रहण कर चक्षु से उनकी प्रतिलेखना करे
और दूसरे गाँव में भिक्षा के लिए जाना
आवश्यक हो तो अधिक से अधिक अर्घ-योजन
प्रदेश तक जाए ।

३६—चौथे प्रहर में भाजनों को प्रति-
लेखन पूर्वक बाध कर रख दे, फिर सर्व भावों
को प्रकाशित करने वाला स्वाध्याय करे ।

३७—चौथे प्रहर के चतुर्थ भाग में पौन
पौरुषी बीत जाने पर स्वाध्याय के पश्चात्
गुरु को वन्दना कर, काल का प्रतिक्रमण कर
(स्वाध्याय-काल से निवृत्त होकर) शय्या की
प्रतिलेखना करे ।

३८—यतनाशील यति फिर प्रस्रवण और
उच्चार-भूमि की प्रतिलेखना करे । तदनन्तर
सर्व-दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग
करे ।

३९—देसिय च अईयार
चिन्तिज्ज अणुपुव्वसो ।
नाणे^१ दसणे चेव
चरित्तम्मि तहेव य ॥

दैवसिक चातिचार
चिन्तयेदनुपूर्वशः ।
ज्ञाने दर्शने चैव
चरित्रो तथैव च ॥

३९—ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य सम्बन्धी
दैवसिक अतिचार का अनुक्रम से चिन्तन करे ।

४०—पारियकाउस्सगो
वन्दित्ताण तओ गुरु ।
देसियं तु अईयार
आलोएज्ज जहक्कम ॥

पारित-कायोत्सर्गः
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
दैवसिक त्वतिचार
आलोचयेत् यथाक्रमम् ॥

४०—कायोत्सर्ग को समाप्त कर, गुरु
को वन्दना करे । फिर अनुक्रम से दैवमिक
अतिचार की आलोचना करे ।

४१—पडिक्कमित्तु निस्सल्लो
वन्दित्ताण तओ गुरु ।
काउस्सग तओ कुज्जा
सव्वदुक्खविमोक्खण ॥

प्रतिक्रम्य निःशल्यः
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
कायोत्सर्गं ततः कुर्यात्
सर्व-दुःख-विमोक्षणम् ॥

४१—प्रतिक्रमण से नि शल्य होकर
गुरु को वन्दना करे । फिर सर्व दुःखों से मुक्त
करने वाला कायोत्सर्ग करे ।

४२—पारियकाउस्सगो
वन्दित्ताण तओ गुरु ।
'थुइमगल च काळण'^२
काल सपडिलेहए ॥

पारित-कायोत्सर्ग
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
स्तुति-मगल च कृत्वा
काल सप्रतिलिखेत् ॥

४२—कायोत्सर्ग को समाप्त कर गुरु को
वन्दना करे । फिर स्तुति-मगल करके काल
की प्रतिलेखना करे ।

४३—'पढम पोरिसि सज्झाय
वीय भाण क्रियायई ।
तइयाए निदमोक्ख तु
सज्झाय तु चउत्थिए ॥'^३

प्रथमा पौरुषी स्वाध्याय
द्वितीया ध्यान ध्यायति ।
तृतीयाया निद्रा-मोक्ष तु
स्वाध्याय तु चतुर्थ्याम् ॥

४३—प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे
में ध्यान, तीसरे में नीद और चौथे में पुन
स्वाध्याय करे ।

४४—'पोरिसीए चउत्थीए
काल तु पडिलेहिया ।
सज्झाय तओ कुज्जा
अबोहेन्तो असजए ॥'^४

पौरुष्या चतुर्थ्या
काल तु प्रतिलिख्य ।
स्वाध्याय ततः कुर्यात्
अबोधयन्नसयतान् ॥

४४—चौथे प्रहर में काल की प्रतिलेखना
कर असयत व्यक्तियों को न जगाता हुआ
स्वाध्याय करे ।

१. नाणे य (आ), नाणमि (उ) ।

२. सिद्धाण सथव किच्चा (वृ० पा०) ।

३. पढमा पोरिसि सज्झाय वीए भाण क्रियायति ।
ततियाए निदमोक्ख च चउत्थाए चउत्थिए ॥ (वृ० पा०) ।

४. काल तु पडिलेहिच्चा अबोहितो असजए ।
कुज्जा मुणी य सज्झाय सव्वदुक्खविमोक्खण ॥ (वृ० पा०) ।

४५—पोरिसीए चउब्भाए
'वन्दिरुण तओ गुरु'^१ ।
पडिकमित्तु कालस्स
काल तु पडिलेहए ॥

पौरुष्याश्चतुर्भणि
वन्दित्वा ततो गुरुम्
प्रतिक्रम्य कालस्य
काल तु प्रतिलिखेत ॥

४५—चौथे प्रहर के चतुर्थ भाग में गुरु को वन्दना कर, काल का प्रतिक्रमण कर (स्वाध्याय काल से निवृत्त होकर) काल की प्रतिलेखना करे ।

४६—आगए कायवोस्सग्गे
सव्वदुक्खविमोक्खणे ।
काउस्सग्ग तओ कुज्जा
सव्वदुक्खविमोक्खण ॥

आगते काय-व्युत्सर्गं
सर्व-दुःख-विमोक्षणे ।
कायोत्सर्गं ततः कुर्यात्
सर्व दुःख-विमोक्षणम् ॥

४६—सर्व दुःखों से मुक्त करने वाला काय-व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग) का समय आने पर सर्व दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ।

४७—राइय च अईयार
चिन्तिज्ज अणुपुव्वसो ।
नाणमि दसणमी
चरित्तमि तवमि य ॥

रात्रिकं चातिचारं
चिन्तयेदनुपूर्वश ।
ज्ञाने दर्शने
चरित्रे तपसि च ॥

४७—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप सम्बन्धी रात्रिक अतिचार का अनुक्रम से चिन्तन करे ।

४८—पारियकाउस्सग्गे
वन्दित्ताण तओ गुरु ।
राइय तु अईयार
आलोएज्ज जहक्कम ॥

पारित्त-कायोत्सर्गः
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
रात्रिकं त्वतिचारं
आलोचयेद् यथाक्रमम् ॥

४८—कायोत्सर्ग को समाप्त कर, गुरु को वन्दना करे । फिर अनुक्रम से रात्रिक अतिचार की आलोचना करे ।

४९—पडिकमित्तु निस्सल्लो
वन्दित्ताण तओ गुरु ।
काउस्सग्ग तओ कुज्जा
सव्वदुक्खविमोक्खण ॥

प्रतिक्रम्य निःशल्यः
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
कायोत्सर्गं ततः कुर्यात्
सर्व-दुःख-विमोक्षणम् ॥

४९—प्रतिक्रमण से निःशल्य होकर गुरु को वन्दना करे, फिर सर्व दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ।

५०—किं तवं पडिवज्जामि
एव तत्थ विचिन्तए ।
काउस्सग्गं तु पारित्ता
वन्दई य तओ गुरु ॥

किं तपः प्रतिपद्ये
एवं तत्र विचिन्तयेत् ।
कायोत्सर्गं तु पारयित्वा
वन्दते च ततो गुरुम् ॥

५०—मैं कौन-सा तप ग्रहण करूँ— कायोत्सर्ग में ऐसा चिन्तन करे । कायोत्सर्ग को समाप्त कर, गुरु को वन्दना करे ।

५१—पारिकाउस्सगो

वन्दित्ताण तओ गुरु ।
तव संपडिवज्जेत्ता^१
करेज्ज सिद्धाण सथवं ॥

पारित-कायोत्सर्गः

वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
तपः सप्रतिपद्य
कुर्यात् सिद्धानां संस्तवम् ॥

५१—कायोत्सर्ग पारित होने पर मुनि
गुरु को वन्दना करे । फिर तप को स्वीकार
कर सिद्धों का सस्तव (स्तुति) करे ।

५२—एसा

सामायारी

अमासेण

वियाहिया ।

ज चरित्ता वहू जीवा
तिण्णा संसारसागरं ॥

—ति वेमि ।

एषा सामाचारी

समासेन व्याख्याता ।

या चरित्वा बहवो जीवाः
तीर्णाः संसार-सागरम् ॥

—इति ब्रवीमि ।

५२—यह सामाचारी मैंने मक्षेप में कही
है । इसका आचरण कर बहुत से जीव मसार-
सागर को तर गए ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

सत्रावीसहमं अज्झयणं :
खलुंकिज्जं

सप्तविंश अध्यायन :
खलुंकीय

आस्तुख

इस अध्ययन में खलुक (दुष्ट बैल) को उद्दण्डता के माध्यम से अविनीत की उद्दण्डता का चित्रण किया गया है, इसलिए इसका नाम 'खलुकिज्ज'—'खलुकीय' है ।

इस ग्रन्थ के प्रथम अध्ययन में विनीत और अविनीत के स्वरूप की व्याख्या की गई है । विनीत को पग-पग पर सम्पत्ति मिलती है और अविनीत को विपत्ति । अनुशासन विनय का एक अंग है । भगवान् महावीर के शासन में अनुशासन की शिक्षा-दीक्षा का बहुत महत्त्व रहा है । आत्मानुशासन अध्यात्म का पहला सोपान है । जो आत्म-शासित है वही मोक्ष-मार्ग के योग्य है । जो शिष्य अनुशासन की अवहेलना करता है, उसका न इहलोक सधता है और न परलोक ।

आन्तरिक अनुशासन में प्रवीण व्यक्ति ही बाह्य अनुशासन को क्रियान्वित कर सकता है । जिसकी आन्तरिक वृत्तियाँ अनुशासित हैं उसके लिए बाह्य अनुशासन, चाहे फिर वह कितना ही कठोर क्यों न हो, सरल हो जाता है ।

यह अध्ययन प्रथम अध्ययन का ही पूरक अंश है । इसमें अविनीत शिष्य के अविनय का यथार्थ चित्रण किया गया है और उसकी 'खलुक' (दुष्ट बैल) से तुलना की गई है—

“दुष्ट बैल शकट और स्वामी का नाश कर देता है, यत्किञ्चित् देख कर सन्नस्त हो जाता है, जुर और चाबुक को तोड़ डालता है और विपथगामी हो जाता है ।”^१

“अविनीत शिष्य खलुक जैसा होता है । वह दश-मशक की तरह कष्ट देने वाला, जलोक की तरह गुरु के दोष ग्रहण करने वाला, वृश्चिक की तरह वचन-कण्टकों से बीधने वाला, असहिष्णु, आलसी और गुरु के कथन को न मानने वाला होता है ।”^२

“वह गुरु का प्रत्यनीक, चारित्र्य में दोष लगाने वाला, असमाधि उत्पन्न करने वाला और झगड़ करने वाला होता है ।”^३

“वह पिशुन, दूसरों को तपाने वाला, रहस्य का उद्घाटन करने वाला, दूसरों का तिरस्कार करने वाला, श्रमण-धर्म से खिन्न होने वाला और मायावी होता है ।”^४

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ४८६ .

भवदाली उत्तसभो जोत्तजुगभज तुत्तभजो अ ।

उप्पहविप्पहगामी एय खलुका भवे गोणा ॥

२—वही, गाथा ४९२

दसमसगस्समाणा जलुयकविच्छुयसमा य जे हुंति ।

ते किर होंति खलुका तिक्खम्मिउच्चढमहविभा ॥

३—वही, गाथा ४९३

जे किर गुह्यदिणीआ सयला अपमाहिकारणा पावा ।

अहिगरणकारगप्पा जिणवयणे ते किर खलुका ॥

४—वही, गाथा ४९४

पिण्णो परोवतावी भिन्नरहस्सा पर परिभवति ।

निच्चिअणिज्जा य सदा जिणवयणे ते किर खलुका ॥

स्थविर गणधर गार्ग्य मृदु, समाधि-सम्पन्न और आचारवान् गणी थे । जब उन्होंने देखा कि उनके सारे शिष्य अविनीत, उद्विग्न और उच्छ्वसित हो गए, तब आत्म-भाव से प्रेरित हो, शिष्य-समुदाय को छोड़, वे अकेले हो गए । आत्म-निष्ठ मुनि के लिए यही कर्तव्य है । जो शिष्य-सम्पदा समाधि में सहायक होती है वही गुरु के लिए आदेय है, अनुशासनीय है और जो समाधि में बाधक बनती है वह त्याज्य है, अवाञ्छनीय है ।

सामुदायिकता साधना की समृद्धि के लिए है । वह लक्ष्य की पूर्ति के लिए सहायक हो तो उसे अंगीकार किया जाता है और यदि वह बाधक बनने लगे तो साधक स्वयं अपने को उससे मुक्त कर लेता है । यह तथ्य सदा से मान्य रहा है । यह अध्ययन उसी परम्परा की ओर संकेत करता है ।

सत्तावीसद्वयं अज्ज्ञयणं : सप्तविंश अध्ययन

खलुंकिज्जं : खलुंकीय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—थेरे गणहरे गग्गे मुणी आसि विसारए । आइण्णे गणिभावम्मि समाहि पडिसधए ॥	स्यविरो गणधरो गार्ग्यः मुनिरासीद् विशारदः । आकीर्णो गणि-भावे समार्धिं प्रतिसधत्ते ॥	१—एक गर्ग नामक मुनि हुआ । वह स्यविर, गणवर और शास्त्र विशारद था । वह गुणों से आकीर्ण, गणी पद पर स्थित होकर समाधि का प्रतिभधान करता था ।
२—वहणे कन्तार जोए ससारो वहमाणस्स ^१ अइवत्तई । वहमाणस्स अइवत्तई ॥	वहने वहमानस्य कान्तारमत्तिवर्तते । योगे वहमानस्य ससारोऽतिवर्तते ॥	२—वाहन को वहन करते हुए बैल के अरण्य स्वयं उल्लिखित हो जाता है । वैसे ही योग को वहन करते हुए मुनि के ससार स्वयं उल्लिखित हो जाता है ।
३—खलुके जो उ जोएइ विहम्माणो किलिस्सई ^२ । असमाहि च वेएइ तोत्तओ य से भज्जई ॥	खलुको यस्तु योजयति विघ्नं क्लिश्यति । असमार्धि च वेदयति तोत्रकं च तस्य भज्यते ॥	३—जो अयोग्य बैलों को जोनता है, वह उनकी आहत करता हुआ क्लेश पाता है । उसे असमाधि का संवेदन होता है और उसका चाबुक टूट जाता है ।
४—एग उसइ पुच्छमि एग विन्धइऽभिक्षण । एगो भजइ समिल एगो उप्पहपट्ठिओ ॥	एक दशति पुच्छे एक विघ्नत्यभीक्षणम् । एको भनक्ति समिल एक उत्पथ-प्रस्थितः ॥	४—वह क्रुद्ध हुआ वाहक किसी एक की पूँछ को काट देता है और किसी एक को बार-बार वीधता है । तब कोई अयोग्य बैल जुए की कील को तोड़ देता है और कोई उत्पथ में प्रस्थान कर जाता है ।
५—एगो पडइ पासेण निवेसइ निवज्जई । उक्कुट्ठइ उप्पिडई सठे वालगवी वए ॥	एक पतति पार्श्वेन निविशति निपद्यते । उत्कूदते उत्प्लवते शठ वालगवीं व्रजेत् ॥	५—कोई एक पार्श्व से गिर पड़ता है, कोई बैठ जाता है तो कोई लेट जाता है । कोई कूदता है, कोई उछलता है तो कोई शठ तरुण गाय की ओर भाग जाता है ।

१ वाहयमाणस्स (अ, छ०), वहणमाणस्स (श्र०) ।

२ किलामई (वृ०), किलिस्सई (वृ० पा०) ।

६—माई मुद्रेण पडइ
कुद्रे गच्छइ पडिप्पह ।
'मयलक्खेण चिट्ठई'^१
वेगेण य पहावई ॥

मायी मूर्ध्ना पतति
क्रुद्धो गच्छति प्रतिपथम् ।
मृत-लक्षणे तिष्ठति
वेगेन च प्रधावति ॥

६—कोई धूर्त बेल शिर को निढाल बना कर लुट जाता है तो कोई क्रुद्ध होकर पीछे की ओर चलता है । कोई मृतक-सा बन कर गिर जाता है तो कोई वेग से दौड़ता है ।

७—छिन्नाले छिन्दइ सेल्लि
दुदन्तो भजए जुग ।
से वि य सुस्सुयाइत्ता^२
उज्जाहिता^३ पलायए ॥

'छिन्नाले' छिनन्ति 'सेल्लि'
दुर्दान्तो भनक्ति युगम् ।
सोपि च सूतकृत्य
उद्घाय पलायते ॥

७—छिनाल वृषभ रास को छिन्न-भिन कर देता है, दुर्दान्त होकर जुग को तोड़ देता है और सो-सो कर वाहन को छोड़ कर भाग जाता है ।

८—खलुका जारिसा जोज्जा
दुस्सीसा वि हु तारिसा ।
जोइया धम्मजाणम्मि
भजन्ति धिइदुब्बला ॥

खलुंका यादृशा योज्याः
दुःशिष्याः अपि खलुतादृशाः ।
योजिता धर्म-याने
भज्यन्ते धृति-दुर्बलाः ॥

८—जुते हुए अयोग्य बेल जैसे वाहन को भग्न कर देते हैं, वैसे ही दुर्बल धृति वाले शिष्यों को धर्म-यान में जोत दिया जाता है तो वे उसे भग्न कर डालते हैं ।

९—इड्ढीगारविए एगे
एगेऽत्थ रसगारवे ।
सायागारविए एगे
एगे सुचिरकोहणे ॥

ऋद्धि-गौरविक एकः
एकोत्र रस-गौरव ।
सात-गौरविक एकः
एकः सुचिर-क्रोधनः ॥

९—कोई शिष्य ऋद्धि का गौरव करता है तो कोई रस का गौरव करता है, कोई साता का गौरव करता है तो कोई चिरकाल तक क्रोध रखने वाला होता है ।

१०—भिक्षालसिए एगे
एगे ओमाणभीरुए थद्वे ।
एग च^४ अणुसासम्मी
हेऊहि कारणेहि य ॥

भिक्षालस्यिक एकः
एकोऽवमान-भीरुक स्तब्धः ।
एकं च अनुशास्ति
हेतुभि कारणेश्च ॥

१०—कोई भिक्षाचरी में आलस्य करता है तो कोई अपमान-भीरु और अहकारी होता है । किसी को गुरु हेतुओं व कारणों द्वारा अनुशासित करते हैं—

१ पल्ल (यल) ते ण चिट्ठिया (वृ० पा०) ।

२ सुस्सुयत्ता (अ) ।

३ उज्जुहिता (आ, वृ०, सु०) ।

४ × (अ) ।

११—सो वि अन्तरभासिल्लो
दोसमेव पकुव्वई^१ ।
आयरियाण त वयणं
पडिक्कूलेइ अभिक्खण ॥

१२—न सा मम वियाणाड
न वि^२ सा मज्झ दाहिई ।
निग्गया होहिई मन्ते
साहू अन्नोऽत्य वच्चउ ॥

१३—पेसिया^३ पलिउचन्ति
ते परियन्ति समन्तओ ।
रायवेट्ठि^४ व मन्नन्ता
करेन्ति भिउडि मुहे ॥

१४—वाडया सगहिया चेव
'भत्तपाणे य'^५ पोसिया ।
जायपक्खा जहा हसा
पक्कमन्ति दिसोदिसि ॥

१५—अह सारही विचिन्तेइ^६
खलुकेहि समागओ ।
कि मज्झ दुट्ठसीसेहि
अप्पा मे अवसीयई ॥

सोप्यन्तर-भाषावान्
दोषमेव प्रकरोति ।
आचार्याणा तद् वचन
प्रतिकूलयत्यभोक्षणम् ॥

न सा मां विजानाति
नापि सा मह्यं दास्यति ।
निर्गता भविष्यति मन्ये
साधुरन्योऽत्र व्रजतु ॥

प्रेषिता परिकुञ्चन्ति
ते परियन्ति समन्ततः ।
राज-वेष्टिमिव मन्यमानाः
कुर्वन्ति भृकुटि मुखे ॥

वाचिता सगृहीताश्चैव
भक्त-पानेन च पोषिताः ।
जात-पक्षा यथा हसा
प्रक्रामन्ति दिशो दिशम् ॥

अथ सारथिर्विचिन्तयति
खलुकैः श्रमागतः ।
किं मम दुष्ट-शिष्यैः
आत्मा मेऽवसीदति ॥

११—तब वह बीच में ही बोल उठता है, मन में द्वेष ही प्रकट करता है तथा बार-बार आचार्य के वचनों के प्रतिकूल आचरण करता है ।

१२—(गुरु प्रयोजनवश किसी आशुका से कोई वस्तु लाने को कहे, तब वह कहता है,) वह मुझे नहीं जानती, वह मुझे नहीं देगी, मैं जानता हूँ, वह घर में बाहर गई होगी । इस कार्य के लिए मैं ही क्यों, कोई दूसरा साधु चला जाए ।

१३—किसी कार्य के लिए उन्हें भेजा जाता है और वह कार्य किए बिना ही लौट आते हैं । पृच्छने पर कहते हैं—उस कार्य के लिए आपने हमसे कब कहा था ? वे चारों ओर घूमने हैं, किन्तु गुरु के पाम कभी नहीं बैठते । कभी गुरु का कहा कोई काम करते हैं तो उसे राजा की वेगार की भाँति मानते हुए मुँह पर भृकुटी तान लेते हैं—मुँह को मचोट लेते हैं ।

१४—(आचार्य सोचते हैं) मैंने उन्हें पढाया, सगृहीत (दीक्षित) किया, भक्त-पान में पोषित किया, किन्तु कुछ योग्य बनने पर ये वैसे ही बन गए हैं, जैसे पक्ष आने पर हम विभिन्न दिशाओं में प्रक्रमण कर जाते हैं—दूर-दूर उड़ जाते हैं ।

१५—कुशिष्यों द्वारा खिन्न होकर सारथि (आचार्य) सोचते हैं—इन दुष्ट शिष्यों से मुझे क्या ? इनके ससर्ग में मेरी आत्मा अवसन्न—व्याकुल होती है ।

१. पभासए (वृ० पा०) ।

२. व (उ) ।

३. पोसिया (वृ० पा०) ।

४. रायाविट्ठ (अ) ।

५. भत्तपाणेण (अ, आ, इ) ।

६. वि चिन्तेइ (अ) ।

१६—जारिसा^१ मम सीसाउ
तारिसा^२ गलिगद्दहा ।
गलिगद्दहे चइत्ताण^३
दढ परिगिण्हइ^४ तवं ॥

यादृशा मम शिष्यास्तु
तादृशा गलि-गर्दभाः ।
गलि-गर्दभान् त्यक्त्वा
दढं परिगृह्णामि तपः ॥

१६—जैसे मेरे शिष्य है वैसे ही गली-
गदर्भ होते हैं। इन गली-गदर्भों को छोड़ कर
गर्गाचार्य ने दृढता के साथ तप मार्ग को
अंगीकार किया ।

१७—मिउ मद्दवसपन्ने
गम्भीरे सुसमाहिण् ।
विहरड महिं महप्पा
सीलभूएण अप्पणा ॥
—त्ति वेमि ।

मृदुमर्दव-सम्पन्नो
गम्भीरः सुसमाहितः ।
विहरति मही महात्मा
शीलभूतेनात्मना ॥
—इति ब्रवीमि ।

१७—वह मृदु और मार्दव से सम्पन्न
गम्भीर और सुसमाहित महात्मा शील-सम्पन्न
होकर पृथ्वी पर विचरने लगा ।
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. तारिसा (अ) ।

२. जारिमा (अ) ।

३. जहिताण (आ) ।

४. परिगिण्हामि (वृ०) ; परिगिण्हइ (य० पा०) ।

अष्टावीसहस्रं अज्ज्ञयणः
मोक्षमार्गगई

अष्टाविंश अध्ययनः
मोक्ष-मार्ग-गति

आस्तुख

इस अध्ययन का नाम 'मोक्खमग्गई'—'मोक्ष-मार्ग-गति' है। मोक्ष प्राप्य है और मार्ग है उसकी प्राप्ति का उपाय। गति व्यक्ति का अपना पुरुषार्थ है। प्राप्य हो और प्राप्ति का उपाय न मिले तो वह प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार प्राप्य भी हो और प्राप्ति का उपाय भी हो किन्तु उसकी ओर गति नहीं होसी तो वह प्राप्त नहीं होता। मार्ग और गति—ये दोनों प्राप्त हों तभी प्राप्य प्राप्त हो सकता है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—इन चारों द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसलिए इनके समवाय को मोक्ष का मार्ग कहा गया है। जैन-दर्शन ज्ञान-योग, भक्ति-योग (श्रद्धा) और कर्म-योग (चारित्र और तप) इन तीनों को संयुक्त रूप में मोक्ष का मार्ग मानता है, किसी एक को नहीं। (श्लो० २) इस चतुरंग मार्ग को प्राप्त करने वाले जीव ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

चौथे से चौदहवें श्लोक तक ज्ञान-योग का निरूपण है—ज्ञान और ज्ञेय का प्रतिपादन है।

पन्द्रहवें से इकतीसवें श्लोक तक श्रद्धा-योग का निरूपण है।

बत्तीसवें से चौत्तीसवें श्लोक तक कर्म-योग का निरूपण है।

पैंतीसवें श्लोक में इन योगों के परिणाम बतलाए गए हैं।

मोक्ष-प्राप्ति का पहला साधन ज्ञान है। ज्ञान पाँच है—मति, श्रुत, अवधि, मन.पर्यव और केवल। ज्ञान के विषय है—द्रव्य, गुण और पर्याय। धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव—ये छह द्रव्य हैं। गुण और पर्याय अनन्त हैं।

मोक्ष-प्राप्ति का दूसरा साधन दर्शन है। उसका विषय है तथ्य की उपलब्धि। वे नौ हैं—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, सवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। दर्शन को दस रुचियों में विभक्त किया गया है। यह विभाग स्थानांग (१०।७५१) और प्रज्ञापना (प्रथम पद) में भी मिलता है। वह विभाग यह है—

- | | |
|---------------|-----------------|
| १—निसर्गरुचि, | ६—अभिगमरुचि, |
| २—उपदेशरुचि, | ७—विस्ताररुचि, |
| ३—आज्ञारुचि, | ८—क्रियारुचि, |
| ४—सूत्ररुचि, | ९—सक्षेपरुचि और |
| ५—बीजरुचि, | १०—धर्मरुचि। |

मोक्ष-प्राप्ति का तीसरा साधन चारित्र—आचार है। वे पाँच हैं

- १—सामायिक चारित्र,
- २—छेदोपस्थापनीय चारित्र,
- ३—परिहार-विशुद्धि चारित्र,
- ४—सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र और
- ५—यथारुयात चारित्र।

मोक्ष-प्राप्ति का चौथा साधन तप है। वह दो प्रकार का है—बाह्य और आभ्यन्तर। प्रत्येक के छह-छह विभाग हैं।

दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना चारित्र नहीं आता । चारित्र के बिना मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के बिना निर्वाण नहीं होता । (श्लो० ३०)

ज्ञान से तत्त्व जाने जाते हैं ।

दर्शन से उन पर श्रद्धा होती है ।

चारित्र से आस्रव का निरोध होता है ।

तप से शोधन होता है । (श्लोक ३५)

इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन में इन चार मार्गों का निरूपण है । जब आत्म-शोधन पूर्ण होता है तब जीव सिद्ध-गति को प्राप्त हो जाता है ।

सूत्रकृताग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के ग्यारहवें अध्ययन का नाम 'मार्गाध्ययन' है । उसमें भी मोक्ष के मार्गों का निरूपण है ।

अट्ठावीसइमं अज्झयण : अष्टविंश अध्ययन मोक्खमग्गई : मोक्ष-मार्ग-गति

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—मोक्खमग्गइ तच्च सुणेह जिणभासिय । चउकारणसजुत्त नाणदसणलक्खण ॥	संस्कृत छाया मोक्ष-मार्ग-गतिं तथ्या श्रुतं जिन-भाषिताम् । चतुष्कारण-सयुक्ता ज्ञान-दर्शन-लक्षणाम् ॥	१—चार कारणों से सयुक्त, ज्ञान-दर्शन, लक्षण वाली जिन-भाषित मोक्ष-मार्ग की गति को सुनो ।
२—नाण च दसण चेव चरित्त च तवो तहा । एस ^१ मग्गो त्ति पन्नत्तो जिणेहि वरदसिहि ^२ ॥	ज्ञान च दर्शन चैव चरित्रं च तपस्तथा । एष मार्ग इति प्रज्ञप्तः जिनैर्वर-दर्शभिः ॥	२—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—यह मोक्ष-मार्ग है, ऐसा वरदर्शी अर्हंतों ने प्ररूपित किया ।
३—नाण च दसण चेव चरित्त च तवो तहा । एयमग्गमणुप्पत्ता ^३ जीवा गच्छन्ति सोग्गइ ॥	ज्ञान च दर्शन चैव चरित्रं च तपस्तथा । एन मार्गं मनुप्राप्ता जीवा गच्छन्ति सुगतिम् ॥	३—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—इस मार्ग को प्राप्त करने वाले जीव सुगति में जाते हैं ।
४—तत्थ पच्चविह नाण सुय आभिनिवोहिय । ओहीनाण तइय मणनाण च केवल ॥	तत्र पचविध ज्ञान श्रुतमाभिनिबोधिकम् । अवधिज्ञान तृतीय मनोज्ञान च केवलम् ॥	४—उनमें ज्ञान पाँच प्रकार का है— श्रुत ज्ञान, आभिनिबोधिक ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन ज्ञान और केवल ज्ञान ।
५—एय पच्चविह नाण दव्वाण य गुणाण य । पज्जवाण च सव्वेसि नाण नाणीहि देसिय ॥	एतत् पचविध ज्ञान द्रव्यानां च गुणानां च । पर्यवाणां च सवषा ज्ञान ज्ञानिभिर्देशितम् ॥	५—यह पाँच प्रकार का ज्ञान सर्व द्रव्य, गुण और पर्यायों का अवबोधक है—ऐसा ज्ञानियों ने बतलाया है ।

१ एय (अ) ।

२ सव्वदसिहि (अ) ।

३ एव* (अ) ।

६—गुणानमासओ दव्व
एगदव्वस्सिया गुणा ।
लक्खण पज्जवाण तु
उभओ^१ अस्सिया भवे ॥

गुणानामाश्रयो द्रव्य
एक द्रव्याश्रिता गुणाः ।
लक्षण पर्यवाणा तु
उभयोराश्रिता भवेयुः ॥

६—जो गुणों का आश्रय होता है, वह द्रव्य है । जो किसी एक द्रव्य के आश्रित रहते हैं, वे गुण होते हैं । द्रव्य और गुण दोनों के आश्रित रहना पर्याय का लक्षण है—जो द्रव्य और गुण दोनों के आश्रित रहते हैं, वे पर्याय होते हैं ।

७—धम्मो अहम्मो आगासं
कालो पुग्गलजन्तवो ।
एस लोगो त्ति पन्नत्तो
जिणेहि वरदसिहि ॥

धर्मोऽधर्म आकाशं
कालः पुद्गल-जन्तवः ।
एष लोक इति प्रज्ञप्तः
जिनैर्वर-दर्शिभिः ॥

७—धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव—ये छह द्रव्य हैं । यह षट्-द्रव्यात्मक जो है वही लोक है—ऐसा 'वरदर्शी' ब्रह्मर्षियों ने प्ररूपित किया है ।

८—धम्मो अहम्मो आगासं
दव्व इक्किमाहिय ।
अणन्ताणि य दव्वाणि
कालो पुग्गलजन्तवो ॥

धर्मोऽधर्म आकाश
द्रव्यमेकैकमाख्यातम् ।
अनन्तानि च द्रव्याणि
कालः पुद्गल-जन्तवः ॥

८—धर्म, अधर्म, आकाश—ये तीन द्रव्य एक-एक हैं । काल, पुद्गल और जीव ये तीन द्रव्य अनन्त-अनन्त हैं ।

९—गइलक्खणो उ^२ धम्मो
अहम्मो ठाणलक्खणो ।
भायण सव्वदव्वाण
नह ओगाहलक्खण ॥

गति-लक्षणस्तु धर्मः
अधर्मः स्थान-लक्षणः ।
भाजन सर्व-द्रव्याणां
नभोऽवगाह-लक्षणम् ॥

९—धर्म का लक्षण है गति, अधर्म का लक्षण है स्थिति और आकाश सर्व द्रव्यों का भाजन है । उसका लक्षण है अवकाश ।

१०—वत्तणालक्खणो कालो
जीवो उवओगलक्खणो ।
नाणेण दसणेण च
मुहेण य दुहेण य ॥

वर्तना-लक्षण कालः
जीव उपयोग-लक्षणः ।
ज्ञानेन दर्शनेन च
सुखेन च दुःखेन च ॥

१०—वर्तना काल का लक्षण है । जीव का लक्षण है उपयोग । वह ज्ञान, दर्शन, सुख और दुःख से जाना जाता है ।

११—नाण च दसण चेव
चरित्त च तवो तहा ।
वीरिय उवओगो य
एय जीवस्स लक्खण ॥

ज्ञान च दर्शनं चैव
चरित्र च तपस्तथा ।
वीर्यमुपयोगश्च
एतज्जीवस्य लक्षणम् ॥

११—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग—ये जीव के लक्षण हैं ।

१२—सद्वन्धवारउज्जोओ

पहा 'छायातवे इ वा' ।

वण्णरसगन्धफासा

पुग्गलाण तु लक्खण ॥

शब्दान्धकार उद्योतः

प्रभाच्छायाऽऽतप इति वा ।

वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्शः

पुद्गलानां तु लक्षणम् ॥

१२—शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श—ये पुद्गल के लक्षण हैं ।

१३—एगत्त च पुहत्त^१ च

संखा सठाणमेव य ।

सजोगा य विभागा य

पज्जवाण तु लक्खण ॥

एकत्वं च पृथक्त्वं च

संख्या संस्थानमेव च ।

सयोगाश्च विभागाश्च

पर्यवाणां तु लक्षणम् ॥

१३—एकत्वं, पृथक्त्वं, संख्या, संस्थान, सयोग और विभाग—ये पर्यायों के लक्षण हैं ।

१४—जीवाजीवा य वन्धो य

पुण्ण पावासवो तहा ।

सवरो निज्जरा मोक्खो

सन्तेए तहिया नव ॥

जीवाऽजीवाश्च वन्धश्च

पुण्य पापाश्रवौ तथा ।

सम्बरो निर्जरा मोक्षः

सन्त्येते तथ्या नव ॥

१४—जीव, अजीव, वन्ध, पुण्य, पाप, आश्रव, सवर, निर्जरा और मोक्ष—ये नौ तथ्य (तत्त्व) हैं ।

१५—तहियाण तु भावाण

'सव्भावे उवएसण ।

भावेण सदहन्तस्स

सम्मत्त त वियाहिय'^२ ॥

तथ्यानां तु भावानां

सद्भावे उपदेशनम् ।

भावेन श्रद्दघतः

सम्यक्त्वं तद्व्याख्यातम् ॥

१५—इन तथ्य भावों के सद्भाव (वास्तविक अस्तित्व) के निरूपण में जो अन्तःकरण से श्रद्धा करता है, उसे सम्यक्त्वं होता है । उस अन्तःकरण की श्रद्धा को ही भगवान् ने सम्यक्त्वं कहा है ।

१६—निसग्गुवएसरुई

आणारुई सुत्तवीयरुइमेव ।

अभिगमवित्थाररुई

किरियासखेवधम्मरुई ॥

निसर्गोपदेश-रुचिः

आज्ञा-रुचिः सूत्र-बीज-रुचिरेव ।

अभिगम-विस्तार-रुचिः

क्रिया-सक्षेप-धर्म-रुचिः ॥

१६—वह दस प्रकार का है—निसर्ग-रुचि, उपदेश-रुचि, आज्ञा-रुचि, सूत्र-रुचि, बीज-रुचि, अभिगम-रुचि, विस्तार-रुचि, क्रिया-रुचि, सक्षेप-रुचि और धर्म-रुचि ।

१७—भूयत्थेणाहिगया

जीवाजीवा य पुण्णपाव च ।

सहसम्ममुड्यासवसवरो य^३

रोएइ उ निसग्गो ॥

भूतार्थेनाविगताः

जीवाऽजीवाश्च पुण्य पाप च ।

स्व-सम्मत्त्याऽऽश्रव-सवरौ च

रोचते तु निसर्ग ॥

१७—जो परोपदेश के बिना केवल अपनी आत्मा में उपजे हुए भूतार्थ (यथार्थ ज्ञान) से जीव, अजीव, पुण्य, पाप को जानता है और जो आश्रव और सवर पर श्रद्धा करता है, वह निसर्ग-रुचि है ।

१. ^१तवे इ या (अ, ऋ०), ^२तपुत्ति वा (बृ०) ।

२. दुहत्त (उ) ।

३. सम्भावो (वेणो) वएसणे ।

भावेण उ सदहणा सम्मत्त होति आहिय ॥ (बृ० पा०) ।

४. उ (अ) ।

१८—जो जिणदिट्ठे भावे
चउव्विहे सदहाइ सयमेव ।
एमेव^१ नऽन्नह ति य
निसगरुइ ति नायव्वो ॥

यो जिन-दृष्टान् भावान्
चतुर्विधान् श्रद्दधाति स्वयमेव ।
एवमेव नान्यथेति च
निसर्ग-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

१८—जो जिनेन्द्र द्वारा दृष्ट तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से विशेषित पदार्थों पर स्वयं ही—“यह ऐसा ही है अन्यथा नहीं है”—ऐसी श्रद्धा रखता है, उसे निसर्ग-रुचि वाला जानना चाहिए ।

१९—एए चेव उ^२ भावे
उवड्ढे जो परेण सदहई ।
छउमत्थेण जिणेण व^३
उवएसरुइ ति नायव्वो ॥

एतान् चैव तु भावान्
उपदिष्टान् यः परेण श्रद्दधाति ।
छद्मस्थेन जिनेन वा
उपदेश-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

१९—जो दूसरो—छद्मस्थ या जिन—के द्वारा उपदेश प्राप्त कर, इन भावों पर श्रद्धा करता है, उसे उपदेश-रुचि वाला जानना चाहिए ।

२०—रागो दोसो मोहो
अन्नाणं जस्स अवगयं होइ ।
आणाए रोयतो
सो खलु आणारुई नाम ॥

रागो दोषो मोहः
अज्ञानं यस्यापगतं भवति ।
आज्ञया रोचमान
स खल्वज्ञा-रुचिर्नाम ॥

२०—जो व्यक्ति राग, द्वेष, मोह और अज्ञान के दूर हो जाने पर वीतराग की आज्ञा में रुचि रखता है, वह आज्ञा-रुचि है ।

२१—जो सुत्तमहिज्जन्तो
सुएण ओगाहई उ सम्मत्त ।
अगेण बाहिरेण व^४
सो सुत्तरुइ ति नायव्वो ॥

यः सूत्रमधीयानः
श्रुतेनावगाहते तु सम्यक्त्वम् ।
अङ्गेन बाह्येन वा
स सूत्र-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

२१—जो अग-प्रविष्ट या अग-बाह्य सूत्रों को पढ़ता हुआ सम्यक्त्व पाता है, वह सूत्र-रुचि है ।

२२—एगेण अणेगाइ
पयाइ जो पसरई उ सम्मत्त ।
उदए व्व तेलविन्दु
सो वीयरुइ ति नायव्वो ॥

एकेनानेकानि
पदानि यत् प्रसरति तु सम्यक्त्वम् ।
उदके इव तैल-विन्दु
स बीज-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

२२—पानी में डाले हुए तेल की बूद की तरह जो सम्यक्त्व (रुचि) एक पद (तत्त्व) से अनेक पदों में फैलता है, उसे बीज-रुचि जानना चाहिए ।

१. एमेय (अ, ड, ष०) ।

२. हु (ऋ०) ।

३. य (ऋ०) ।

४. य (ऋ०) ।

२३—सो होइ अभिगमरुई
सुयनाण जेण अत्थओ दिट्ठ ।
'एक्कारस अगाइ'^१
पडण्णग^२ दिट्ठिवाओ य ॥

स भवति अभिगम-रुचि
श्रुतज्ञान येन अर्थतो दृष्टम् ।
एकादशाङ्गानि
प्रकीर्णकानि दृष्टि-वादश्च ॥

२३—जिसे ग्यारह अंग, प्रकीर्णक और
दृष्टिवाद आदि श्रुत-ज्ञान अर्थ सहित प्राप्त है,
वह अभिगम-रुचि है ।

२४—दब्बाण सव्वभावा
सव्वपमाणेहि जस्स उवलद्धा ।
सव्वाहि नयविहीहि य
वित्थारुइ त्ति नायव्वो ॥

द्रव्याणा सर्वभावा.
सर्वप्रमाणैर्यस्योपलब्धाः ।
सर्वैर्नय-विविभिश्च
विस्तार-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

२४—जिसे द्रव्यों के सब भाव, सभी
प्रमाणों और सभी नय-विधियों में उपलब्ध है,
वह विस्तार-रुचि है ।

२५—दसणनाणचरित्ते
तवविणए सच्चसमिइगुत्तीसु^३ ।
जो किरियाभावरुई
सो खलु किरियारुई नाम ॥

दर्शन-ज्ञान-चरित्रो
तपो-विनये सत्य-समिति गुप्तिषु ।
यः क्रिया-भाव-रुचि
स खलु क्रिया-रुचिर्नाम ॥

२५—दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य, तप, विनय,
सत्य, समिति, गुप्ति आदि क्रियाओं में जिसकी
वास्तविक रुचि है, वह क्रिया-रुचि है ।

२६—अणभिगगहियकुदिट्ठी
सखेवरुइ त्ति होइ नायव्वो ।
अविसारओ पवयणे
अणभिगगहिओ य सेसेसु ॥

अनभिगृहीत-कुट्टिष्ठः
सक्षेप-रुचिरिति भवति ज्ञातव्यः ।
अविशारद प्रवचने
अनभिगृहीतश्च शेषेषु ॥

२६—जो जिन-प्रवचन में विशारद नहीं
है और अन्यान्य प्रवचनों का अभिज्ञ भी नहीं
है, किन्तु जिसे कुट्टिष्ठ का आग्रह न होने के
कारण स्वल्प ज्ञान मात्र से जो तत्त्व-श्रद्धा
प्राप्त होती है, उसे सक्षेप-रुचि जानना
चाहिए ।

२७—जो अत्थिकायधम्म
सुयधम्म खलु चरित्तधम्म च ।
सद्दहइ जिणाभिहिय
सो धम्मरुइ त्ति नायव्वो ॥

योऽस्तिकाय-धर्म
श्रुत-धर्म खलु चरित्र-धर्म च ।
श्रद्धाति जिनाभिहित
स धर्म-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

२७—जो जिन-प्ररूपित अस्तिकाय-धर्म,
श्रुत-धर्म और चारित्र्य-धर्म में श्रद्धा रखता है,
उसे धर्म-रुचि जानना चाहिए ।

२८—परमत्थसथवो वा
सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वा वि ।
वावन्नकुदसणवज्जणा
य सम्मत्तसद्दहणा ॥

परमार्थ-सस्तवो वा
सुदृष्ट-परमार्थ-सेवन वापि ।
व्यापन्न-कुदर्शन-वर्जन
च सम्प्रवृत्त-श्रद्धानम् ॥

२८—परमार्थ का परिचय, जिन्होंने
परमार्थ को देखा है उनकी सेवा, व्यापन्न-
दर्शनी (सम्यक्त्व से भ्रष्ट) और कुदर्शनी
व्यक्तियों का वर्जन, यह सम्यक्त्व का
श्रद्धान है ।

१. इक्कारसमगाइ (उ, ऋ०) ।

२. पडण्णय (अ) ।

३. सव्व^० (अ) ।

२९—नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं
दमणे उ भइयव्व ।
सम्मत्तचरित्ताइ
जुगव पुव्व व^१ सम्मत्त ॥

३०—नादसणिस्स नाण
नाणेण विणा न हुन्ति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो
नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण ॥

३१—निस्सकिय निक्कखिय
निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ।
उववूह थिरीकरणे
वच्छल्ल पभावणे अट्ट ॥

३२—सामाइयत्थ^२ पढमं
छेओवट्ठावण भवे बोय ।
परिहारविसुद्धीय
सुहुम तह सपराय च ॥

३३—अकसाय अहक्खाय
छउमत्थस्स जिणस्स वा ।
एय चयरित्तकर
चारित्तं होइ आहिय ॥

३४—तवो य दुविहो वुत्तो
वाहिरब्भन्तरो तहा ।
वाहिरो छव्विहो वुत्तो
एवमब्भन्तरो तवो ॥

नास्ति चरित्रं सम्यक्त्व-विहीनं
दर्शने तु भक्तव्यम् ।
सम्यक्त्व-चरित्रे
युगपत् पूर्व वा सम्यक्त्वम् ॥

नाऽदर्शनिनो ज्ञानं
ज्ञानेन विना न भवन्ति चरणगुणाः ।
अगुणिनो नास्ति मोक्षः
नास्ति अमोक्षस्य निर्वाणम् ॥

निःशङ्कित-निष्काङ्क्षितं
निर्विचिकित्सं अमूढ-दृष्टिश्च ।
उपबृंहा-स्थिरीकरणं
वात्सल्य-प्रभावनमष्ट ॥

सामायिकमत्र प्रथमं
छेदोपस्थापनं भवेद् द्वितीयम् ।
परिहार-विशुद्धि
सूक्ष्मं तथा सम्पराय च ॥

अकषायं यथाख्यात
छद्मस्थस्य जिनस्य वा ।
एतत् चय-रिक्तकरं
चरित्रं भवत्याख्यातम् ॥

तपश्च द्विविधमुक्तं
बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
बाह्यं षड्विधमुक्तं
एवमाभ्यन्तरं तप ॥

२९—सम्यक्त्व-विहीन चारित्र नहीं होता । दर्शन (सम्यक्त्व) में चारित्र की भजना (विकल्प) है । सम्यक्त्व और चारित्र युगपत् (एक साथ) उत्पन्न होते हैं और जहाँ वे युगपत् उत्पन्न नहीं होते, वहाँ पहले सम्यक्त्व होता है ।

३०—अदर्शनी (असम्यक्त्व) के ज्ञान (सम्यग् ज्ञान) नहीं होता, ज्ञान के बिना चारित्र-गुण नहीं होते । अगुणी व्यक्ति की मुक्ति नहीं होती । अमुक्त का निर्वाण नहीं होता ।

३१—नि शका, निष्काक्षा, निर्विचिकित्सा, अमूढ-दृष्टि, उपबृ हण (सम्यक् दर्शन की पुष्टि), स्थिरीकरण, वात्सल्य और प्रभावना—ये आठ सम्यक्त्व के अंग हैं ।

३२—चारित्र पाँच प्रकार के होते हैं—पहला—सामायिक, दूसरा—छेदोपस्थापनीय, तीसरा—परिहार-विशुद्धि, चौथा—सूक्ष्म-सम्पराय और ।

३३—पाँचवाँ-यथाख्यात-चारित्र कषाय रहित होता है । वह छद्मस्थ और केवली दोनों के होता है । ये सभी चारित्र कर्म-सचयको रिक्त करते हैं, इसीलिए इन्हें चारित्र कहा जाता है ।

३४—तप दो प्रकार का कहा है—बाह्य और आभ्यन्तर । बाह्य-तप छह प्रकार का कहा है । इसी प्रकार आभ्यन्तर-तप भी छह प्रकार का है ।

१ च (अ उ, ऋ०) ।

२ सामाइय च (उ, ऋ०) ।

३५—नाणेण जाणई भावे
दंसणेण य सदहे ।
चरित्तेण निगिण्हाइ^१
तवेण परिसज्झई ॥

ज्ञानेन जानाति भावान्
दर्शनेन च श्रद्धते ।
चरित्रेण निगृह्णाति
तपसा परिशुध्यति ॥

३५—जीव ज्ञान से पदार्थों को जानता है, दर्शन से श्रद्धा करता है, चारित्र से निग्रह करता है और तप से शुद्ध होता है ।

३६—खवेत्ता पुव्वकम्माडं
सजमेण तवेण य ।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा
पक्कमन्ति महेसिणो ॥
—त्ति वेमि ।

क्षपयित्वा पूर्व-कर्माणि
सयमेन तपसा च ।
सर्व-दु ख-प्रहाणार्थाः
प्रक्रामन्ति महर्षय ॥
—इति ब्रवीमि ।

३६—सर्व दुःखों से मुक्ति पाने का लक्ष्य रखने वाले महर्षि सयम और तप के द्वारा पूर्व-कर्मों का क्षय कर सिद्धि को प्राप्त होते हैं ।
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

सगुणतीसइमं अज्झयणं :

सम्मत्तपरक्कमे

सकोनत्तिश अधयन :

सम्यक्त्व-पराक्रम

आस्तुख

इस अध्ययन का नाम 'सम्मत्तपरवकमे'—'सम्यक्त्व-पराक्रम' है। इससे सम्यक्त्व में पराक्रम करने की दिशा मिलती है, इसलिये यह 'सम्यक्त्व-पराक्रम' गुण-निष्पन्न नाम है। निर्युक्तिकार के अनुसार 'सम्यक्त्व-पराक्रम' आदि पद में है, इसलिये इसका नाम 'सम्यक्त्व-पराक्रम' हुआ है।^१ उनके अभिमत्त में इसका गुण-निष्पन्न नाम 'अप्रमाद-श्रुत' है।^२ कुछ आचार्य इसे 'वीतराग-श्रुत' भी कहते हैं।^३

प्रस्तुत अध्ययन में ७१ प्रश्न और उत्तर हैं। उनमें साधना-पद्धति का बहुत सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। साधना के सूत्रों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१—सवेग (१)^४

२—निर्वेद (२)

३—धर्म-श्रद्धा (३)

४—शुश्रूषा—सेवा (४), वैयावृत्त्य (४३)^५

५—आलोचना (५)

६—निन्दा (६)

७—गर्हा (७)

८—आवश्यक-कर्म—

सामायिक (८), चतुर्विंशतिस्तव (९), वन्दना (१०), प्रतिक्रमण (११), कायोत्सर्ग (१२), प्रत्याख्यान (१३), स्तव-स्तुति (१४)

९—प्रायश्चित्त (१६)

१०—क्षमा-याचना (१७)

११—स्वाध्याय (१८)—

वाचना (१९), प्रतिप्रश्न (२०), परिवर्तना (२१), अनुप्रेक्षा (२२), धर्म-कथा (२४), श्रुताराधना (२५), काल-प्रतिलेखन (२५)

१२—मानसिक अनुशासन—

एकाग्र-मन-सन्निवेश (२५), मनो-गुप्ति (५३), मन-समाधारणता (५६), भाव-सत्यता (५०)

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ५०३—

आयाणपण्णोय, सम्मतपरक्कमति अज्झयण ।

२—वही, गाथा ५०६—

सम्मत्तमप्पमाओ, इहमज्झयणमि वण्णिओ जेण ।

तम्हेस अज्झयण, णायन्व अप्पमाय छमं ॥

३—वही, गाथा ५०३

• • • एगे पुण वीयरागस्य ।

४—कोष्ठकों के अन्दर के अङ्क सूत्र सख्या के सूचक हैं।

१३—वाचिक अनुशासन—

वचो-गुप्ति (५४), वचन-समाधारणता (५७)

१४—कार्यिक अनुशासन—

करण-सत्यता (५१), काय-गुप्ति (५५), काय-समाधारणता (५८)

१५—योग-सत्य (५३)

१६—कषाय-विजय—

क्रोध-विजय (६७), मान-विजय (६८), माया-विजय (६९), लोभ-विजय (७०), क्षान्ति (७६), मुक्ति (७७), आर्जव (८८), मार्दव (८९), वीतरागता (८५), राग, द्वेष और मिथ्यादर्शन-विजय (७१)

१७—सम्पन्नता—

सर्वगुण-सम्पन्नता (४४), ज्ञान-सम्पन्नता (५९), दर्शन-सम्पन्नता (६०), चारित्र-सम्पन्नता (६१)

१८—इन्द्रिय-निग्रह—

श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रह (६३), चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह (६३), घ्राणेन्द्रिय-निग्रह (६४), रसनेन्द्रिय-निग्रह (६५), स्पर्शनेन्द्रिय-निग्रह (६६) ।

१९—प्रत्याख्यान—

सम्भोग-प्रत्याख्यान (३३), उपधि-प्रत्याख्यान (३४), आहार-प्रत्याख्यान (३५), कषाय-प्रत्याख्यान (३६), योग-प्रत्याख्यान (३७), शरीर-प्रत्याख्यान (३८), सहाय-प्रत्याख्यान (३९), भक्त-प्रत्याख्यान (४०), सद्भाव-प्रत्याख्यान (४१)

२०—सयम (३६)

२१—तप (३०)

२२—विशुद्धि (३८)

२३—सुखासक्ति का त्याग (३९)

२४—अप्रतिबद्धता (३०)

२५—विविक्तशयनाशन (३१)

२६—विनिवर्तना (३२)

२७—प्रतिरूपता (४३)

जिस प्रकार पातञ्जल योग-दर्शन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, ईश्वर-प्रणिधान, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और सयम के परिणाम बतलाए गए हैं, उसी प्रकार यहाँ सवेग आदि के परिणाम बतलाए गए हैं ।

सवेग के परिणाम—

(१) अनुत्तर धर्म-श्रद्धा की प्राप्ति ।

(२) अनुत्तर धर्म-श्रद्धा से तीव्र सवेग की प्राप्ति ।

(३) तीव्रतम (अनन्तानुबन्धी) क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय ।

(४) मिथ्यात्व-कर्म का अपुनर्बन्ध ।

(५) मिथ्यात्व-विशुद्धि ।

(६) उसी जन्म में या तीसरे जन्म में मुक्ति । (सू० १)

निर्वेद के परिणाम—

- (१) काम-भोगों के प्रति अनासक्त-भाव ।
- (२) इन्द्रियों के विषयों में विरक्ति ।
- (३) आरम्भ-परित्याग ।
- (४) संसार-मार्ग का विच्छेद और मोक्ष-मार्ग का स्वीकरण । (सू० २)

धर्म-श्रद्धा के परिणाम—

- (१) सुख-सुविधा के प्रति विरक्ति ।
- (२) अनगार-धर्म का स्वीकरण ।
- (३) छेदन-भेदन आदि शारीरिक और सयोग-वियोग आदि मानसिक दुःखों का उच्छेद ।
- (४) निर्बाध-सुख की प्राप्ति । (सू० ३)

गुरु और साधर्मिकों की सेवा के परिणाम—

- (१) विनय-प्रतिपत्ति—आवश्यक कर्त्तव्यों का पालन ।
- (२) अनाशातनशीलता—गुरुजनों की अवज्ञा आदि से दूर रहने की मनोवृत्ति ।
- (३) दुर्गति का निरोध ।
- (४) गुण-ग्राहिता, गुण-प्रकाशन, भक्ति और बहुमान की मनोवृत्ति का विकास ।
- (५) सुगति की ओर प्रयाण ।
- (६) विनय-हेतुक ज्ञान आदि की प्राप्ति ।
- (७) दूसरों को सेवा-धर्म में प्रवृत्त करना । (सू० ४)

आलोचना के परिणाम—

- (१) आन्तरिक शक्तियों की चिकित्सा ।
- (२) सरल मनोभाव की विशेष उपलब्धि ।
- (३) तीव्रतर विकारों से दूर रहने की क्षमता और पूर्व-संचित विकार के सस्कारों का विलय । (सू० ५)

आत्म-निन्दा के परिणाम—

- (१) पश्चात्ताप-पूर्ण मनोभाव ।
- (२) अभूत-पूर्व विशुद्धि की परिणाम-धारा का प्रादुर्भाव ।
- (३) मोह का विलय । (सू० ६)

आत्म-गर्हा के परिणाम—

- (१) अपने लिए अवज्ञा-पूर्ण वातावरण का निर्माण ।
- (२) अप्रशस्त आचरण से निवृत्ति ।
- (३) ज्ञान आदि के आवरण का विलय । (सू० ७)

सामायिक का परिणाम—

- (१) विषमता-पूर्ण मनोभाव (सावध प्रवृत्ति) की विरति । (सू० ८)

चतुर्विंशति-स्तव का परिणाम—

- (१) दर्शन की विशुद्धि । (सू० ९)

वन्दना के परिणाम—

- (१) नीच गोत्र-कर्म का क्षय और उच्च गोत्र-कर्म का अर्जन ।
- (२) सौभाग्य—लोक-प्रियता ।
- (३) अनुत्कथनीय आज्ञा की प्राप्ति ।
- (४) अनुकूल परिस्थिति । (सू० १०)

प्रतिक्रमण के परिणाम—

- (१) व्रत में होने वाले छेदों का निरोध ।
- (२) चारित्र के ध्वजों का परिमार्जन ।
- (३) आठ प्रवचन-माताओं के प्रति जागरूकता ।
- (४) अपृथक्त्व—सयमलीनता ।
- (५) मानसिक निर्मलता । (सू० ११)

कायोत्सर्ग के परिणाम—

- (१) अतिचार का विशोधन ।
- (२) हृदय की स्वस्थता और भार-हीनता ।
- (३) प्रशस्त-ध्यान की उपलब्धि । (सू० १२)

प्रत्याख्यान का परिणाम—

- (१) आश्रव-निरोध । (सू० १३)

स्तव-स्तुति-मंगल के परिणाम—

- (१) बोधि-लाभ ।
- (२) अन्त-क्रिया—मुक्ति ।
- (३) स्वर्ग-गमन । (सू० १४)

काल-प्रतिलेखना का परिणाम—

- (१) ज्ञानावरण कर्म का विलय । (सू० १५)

प्रायश्चित्तकरण के परिणाम—

- (१) पाप-कर्म का विशोधन ।
- (२) दोष-विशुद्धि ।
- (३) मार्ग और मार्ग-फल—ज्ञान की प्राप्ति ।
- (४) आचार और आचार-फल—आत्म-स्वतंत्रता की आराधना । (सू० १६)

क्षमा-याचना के परिणाम—

- (१) आह्लाद्-पूर्ण मनोभाव ।
- (२) सबके प्रति मैत्रीभाव ।
- (३) मन की निर्मलता ।
- (४) अमय । (सू० १७)

स्वाध्याय का परिणाम—

- (१) ज्ञानावरण कर्म का विलय । (सू० १८)

वाचना—अध्यापन के परिणाम—

- (१) निर्जग—सस्कार-क्षय ।
- (२) श्रुत की अनायातना—ज्ञान का विनय ।
- (३) तीर्थ-धर्म का अवलम्बन—धर्म-परम्परा की अविच्छिन्नता ।
- (४) चरम साध्य की उपलब्धि । (सू० १६)

प्रतिप्रश्न के परिणाम—

- (१) सूत्र, अर्थ और तदुभय की विशुद्धि—संशय, विपर्यय आदि का निराकरण ।
- (२) काङ्क्षा—मोहनीय कर्म का विच्छेद । (सू० २०)

परावर्तना के परिणाम—

- (१) स्मृत की पुष्टि और विस्मृत की याद ।
- (२) व्यजन-लब्धि—पटानुसारिणी बुद्धि का विकास । (सू० २१)

अनुप्रेक्षा के परिणाम—

- (१) दृढ कर्म का शिथिलीकरण, दीर्घकालीन कर्म-स्थिति का संक्षेपीकरण और शीघ्र अनुभाव का मन्दोकरण ।
- (२) असातवेदनीय कर्म का अनुपचय ।
- (३) ससार से शीघ्र मुक्ति । (सू० २२)

धर्म-कथा के परिणाम—

- (१) निर्जरा ।
- (२) प्रवचन—धर्म-शासन की प्रभावना ।
- (३) कुशल-कर्मों का अर्जन । (सू० २३)

श्रुताराधना के परिणाम—

- (१) अज्ञान का क्षय ।
- (२) क्लेश-हानि । (सू० २४)

मन को एकाग्र करने का परिणाम—

- (१) चित्त-निरोध । (सू० २५)

सयम का परिणाम—

- (१) अनाश्रव—आश्रव-निरोध । (सूत्र २६)

तप का परिणाम—

- (१) व्यवदान—कर्म-निर्जरा । (सू० २७)

व्यवदान के परिणाम—

- (१) अक्रिया—प्रवृत्ति-निरोध ।
- (२) सर्व दुःख-मुक्ति । (सू० २८)

सुख-स्पृहा त्यागने के परिणाम—

- (१) अनुत्सुक मनोभाव ।
- (२) अनुकम्पा-पूर्ण मनोभाव ।
- (३) प्रशान्तता ।

(४) शोक-रहित मनोभाव ।

(५) चारित्र को विकृत करने वाले मोह का विलय । (सू० ३६)

अप्रतिबद्धता—मानसिक अनासक्ति के परिणाम—

(१) निःसगता—निर्लेपता ।

(२) चित्त की एकाग्रता ।

(३) प्रतिपल अनासक्ति । (सू० ३०)

विविक्त शयनासन के परिणाम—

(१) चारित्र की सुरक्षा ।

(२) विविक्त-आहार—विकृति-रहित भोजन ।

(३) निस्पृहता ।

(४) एकान्त रमण ।

(५) कर्म-ग्रन्थि का मोक्ष । (सू० ३१)

विनिवर्चना—विषयो से मन को सहस करने के परिणाम—

(१) पापाचरण के प्रसि अनुत्साह ।

(२) अशुभ सस्कारों के विलय का प्रयत्न ।

(३) ससार की पार-प्राप्ति । (सू० ३२)

समोग (मडली-भोजन) प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) परावलम्बन से मुक्ति ।

(२) प्रवृत्तियों का मोक्ष की ओर केन्द्रीकरण ।

(३) अपने लाभ में सन्तुष्टि और परलाभ की ओर निस्पृहता ।

(४) दूसरी सुख-शय्या की प्राप्ति । (सू० ३३)

उपधि-प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) प्रतिलेखना आदि के द्वारा होने वाली स्वाध्याय की क्षति से बचाव ।

(२) वस्त्र की अभिलाषा से मुक्ति ।

(३) उपधि के बिना होने वाले संव्लेश का अभाव । (सू० ३४)

आहार-प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) जीने के मोह से मुक्ति ।

(२) आहार के बिना होने वाले संव्लेश का अभाव । (सू० ३५)

कषाय-प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) वीतरागता ।

(२) सुख-दुःख में सम रहने की स्थिति की उपलब्धि । (सू० ३६)

योग-प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) स्थिरता ।

(२) नवीन कर्म का अग्रहण और पूर्वोक्त कर्म का विलय । (सू० ३७)

शरीर-प्रत्याख्यान के परिणाम—

- (१) आत्मा का पूर्णोदय ।
- (२) लोकाग्र-स्थिति ।
- (३) परम सुख की प्राप्ति । (सू० ३८)

सहाय-प्रत्याख्यान के परिणाम—

- (१) अकेलेपन की प्राप्ति ।
- (२) कलह आदि से मुक्ति ।
- (३) समय, सवर और समाधि की विशिष्ट उपलब्धि । (सू० ३९)

भक्त-प्रत्याख्यान—अनशन का परिणाम—

- (१) जन्म-परम्परा का अन्तीकरण । (सू० ४०)

सद्भावना-प्रत्याख्यान—पूर्ण सवर के परिणाम—

- (१) अनिवृत्ति—मन-वचन और काया की प्रवृत्ति का सर्वथा और सर्वदा अभाव ।
- (२) अघाति-कर्म का विलय ।
- (३) सर्व दुःख-मुक्ति । (सू० ४१)

प्रतिरूपता—अचेलकता के परिणाम—

- (१) लाघव ।
- (२) अप्रमाद ।
- (३) प्रकट लिंग होना ।
- (४) प्रशस्त लिंग होना ।
- (५) विशुद्ध सम्यक्त्व ।
- (६) सत्त्व और समिति को प्राप्त करना ।
- (७) सर्वत्र विश्वसनीय होना ।
- (८) अप्रतिलेखना ।
- (९) जितेन्द्रियता ।
- (१०) विपुल तप सहित होना—परीषह-सहिष्णु होना । (सू० ४२)

वैयावृत्य का परिणाम —

- (१) धर्म-शासन के सर्वोच्च पद तीर्थकरत्व की प्राप्ति । (सू० ४३)

सर्व-गुण सम्पन्नता के परिणाम—

- (१) अपुनरावृत्ति—मोक्ष की प्राप्ति ।
- (२) शारीरिक और मानसिक दुःखों से पूर्ण मुक्ति । (सू० ४४)

वीतरागता के परिणाम—

- (१) स्नेह और तृष्णा के बन्धन का विच्छेद ।
- (२) प्रिय शब्द आदि इन्द्रिय-विषयों में विरक्ति । (सू० ४५)

क्षान्ति—सहिष्णुता का परिणाम—

- (१) परीषह-विजय । (सू० ४६)

मुक्ति के परिणाम—

- (१) आर्किचन्य ।
- (२) अर्थ-लुब्ध व्यक्तियों के द्वारा अस्पृहणीयता । (सू० ४७)

ऋजुता के परिणाम—

- (१) काया की सरलता ।
- (२) भावों की सरलता ।
- (३) भाषा की सरलता ।
- (४) अविसवादन—अवंचना-वृत्ति । (सू० ४८)

मृदुता के परिणाम—

- (१) अनुद्धत मनोभाव ।
- (२) आठ मद-स्थानों पर विजय । (सू० ४९)

भाव-सत्य के परिणाम—

- (१) भाव-विशुद्धि ।
- (२) अर्हद्-धर्म की आराधना ।
- (३) परलोक धर्म की आराधना । (सू० ५०)

करण-सत्य के परिणाम—

- (१) कार्यजा शक्ति की प्राप्ति ।
- (२) कथनी और करनी का सामजस्य । (सू० ५१)

योग-सत्य का परिणाम—

- (१) मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्ति की विशुद्धि । (सू० ५२)

मनो-गुप्ति के परिणाम—

- (१) एकाग्रता ।
- (२) सयम की आराधना (सू० ५३)

वचन-गुप्ति के परिणाम—

- (१) विकार-शून्यता या विचार-शून्यता ।
- (२) अध्यात्म-योग और ध्यान की प्राप्ति । (सू० ५४)

काय-गुप्ति के परिणाम—

- (१) सवर ।
- (२) पापाश्रव का निरोध । (सू० ५५)

मन-समाधारणा के परिणाम—

- (१) एकाग्रता ।
- (२) ज्ञान की विशिष्ट क्षमता ।
- (३) सम्यक्त्व की विशुद्धि और मिथ्यात्व का क्षय । (सू० ५६)

वचन-समाधारणा के परिणाम—

- (१) वाचिक सम्यग्-दर्शन की विशुद्धि ।
- (२) सुलभ-बोधिता की प्राप्ति और दुर्लभ-बोधिता का क्षय । (सू० ५७)

काय-समाधारणा के परिणाम—

- (१) चारित्र-विशुद्धि ।
- (२) वीतराग-चारित्र की प्राप्ति ।
- (३) भवोपग्राही कर्मों का क्षय ।
- (४) सर्व-दुःखों से मुक्ति । (सू० ५८)

ज्ञान-सम्पन्नता के परिणाम—

- (१) पदार्थ-बोध ।
- (२) पारगामिता ।
- (३) विशिष्ट विनय आदि की प्राप्ति ।
- (४) प्रामाणिकता । (सू० ५९)

दर्शन-सम्पन्नता के परिणाम—

- (१) भव-मिथ्यात्व का छेदन ।
- (२) सतत प्रकाश ।
- (३) ज्ञान और दर्शन की उत्तरोत्तर विशुद्धि । (सू० ६०)

चारित्र-सम्पन्नता के परिणाम—

- (१) अप्रकम्प-दशा की प्राप्ति ।
- (२) भवोपग्राही कर्मों का विनाश ।
- (३) मुक्ति । (सू० ६१)

श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय शब्दों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) शब्द-हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६२)

चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय रूपों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) रूप-हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६३)

घ्राणेन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय गन्धों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) गन्ध-हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६४)

रसनेन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय रसों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) रस-हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६५)

स्पर्शनेन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय स्पर्शों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) स्पर्श-हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६६) ।

क्रोध-विजय के परिणाम—

- (१) क्षमा ।
- (२) क्रोध-वेदनीय कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित क्रोध-वेदनीय कर्म का विनाश । (सू० ६७)

मान-विजय के परिणाम—

(१) मार्दव ।

(२) मान-वेदनीय कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित मान-वेदनीय कर्म का विलय । (सू० ६८)

माया-विजय के परिणाम—

(१) आर्जव ।

(२) माया-वेदनीय कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित माया-वेदनीय कर्म का विलय । (सू० ६९)

लोभ-विजय के परिणाम—

(१) सन्तोष ।

(२) लोभ-वेदनीय कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित लोभ-वेदनीय कर्म का विलय । (सू० ७०)

प्रेम, द्वेष, और मिथ्या-दर्शन विजय के परिणाम —

(१) ज्ञान, दर्शन और चारित्र-आराधना की तत्परता ।

(२) मुक्ति । (सू० ७१)

एगूणतीसडमं अज्झयणं : एकोनत्रिंश अध्ययन

सम्मत्तपरक्कमे : सम्यक्त्व-पराक्रम

मूल

सू०१—सुय मे आउस । तेण भगवया एवमक्खाय—इह खलु सम्मत्त-परक्कमे 'नाम अज्झयणे'^१ समणेण भगवया महावीरेण कासवेणं पवेइए ज सम्म सद्विहत्ता पत्तियाइत्ता रोयइत्ता फासइत्ता पालइत्ता^२ तीरइत्ता किट्टइत्ता सोहइत्ता आराहइत्ता आणाए अणुपालइत्ता वहवे जीवा सिज्झन्ति बुज्झन्ति मुचन्ति परिनिव्वायन्ति सव्वदुक्खाणमन्त करेन्ति । तस्स ण अयमट्ठे एवमाहिज्जइ त जहा—

सवेगे १

निव्वेए २

धम्मसद्धा ३

गुरुसाहम्मियसुसूसणया ४

आलोयणया ५

निन्दणया ६

गरहणया ७

सामाडए ८

चउव्वीसत्थए ९

वन्दणए^३ १०

संस्कृत छाया

सू०१—श्रुत मया आयुष्मन् ! तेन भगवतैवमाख्यातम् । इह खलु सम्यक्त्व-पराक्रम नामाध्ययन श्रमणन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदितम् । यत्सम्यक् श्रद्धाय, प्रतीत्य, रोचयित्वा, स्पृष्ट्वा, पालयित्वा, तीरयित्वा, कीर्तयित्वा, शोधयित्वा, आराध्य, आज्ञया अनुपाल्य, वहवो जीवाः सिध्यन्ति, बुध्यन्ते, मुच्यन्ते, परि-निर्वान्ति, सर्वदुःखानामन्त कुर्वन्ति । तस्य अयमर्थः एवमाख्यायते, तद् यथा—

सवेग १

निर्वेद २

धर्म-श्रद्धा ३

गुरु-साधर्मिक-शुश्रूषणम् ४

आलोचनम् ५

निन्दनम् ६

गर्हणम् ७

सामायिकम् ८

चतुर्विंशति-स्तवः ९

वन्दनम् १०

हिन्दी अनुवाद

सू०१—आयुष्मन् ! मैंने सुना है भगवान् ने इस प्रकार कहा है—इस निर्गन्ध-प्रवचन में कश्यप-गोत्री श्रमण भगवान् महावीर ने सम्यक्त्व-पराक्रम नाम का अध्ययन कहा है, जिस पर भलीभाँति श्रद्धा कर, प्रतीति कर, रुचि रख कर, जिसके विषय का स्पष्ट कर, स्मृति में रख कर, समग्र रूप में हस्तगत कर, गुरु को पठित पाठ का निवेदन कर, गुरु के समीप उच्चाचरण की शुद्धि कर, सही अर्थ का बोध प्राप्त कर और अहंत् की आज्ञा के अनुसार अनुपालन कर बहुत जीव सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण (शान्त) होते हैं और सब दुखों का अन्त करते हैं । सम्यक्त्व-पराक्रम का अर्थ इस प्रकार कहा गया है । जैसे—

सवेग १

निर्वेद २

धर्म-श्रद्धा ३

गुरु और साधर्मिक की शुश्रूषा ४

आलोचना ५

निन्दा ६

गर्हा ७

सामायिक ८

चतुर्विंशति-स्तव ९

वदन १०

१ नाम मज्झयणे (अ, ५०), नामज्झयणे (स, ४) ।

२ पालइत्ता, पूरइत्ता (अ) ।

३. वदणे (अ) ।

पडिक्रमणे ११
 काउस्सग्गे १२
 पच्चक्खाणे १३
 थवथुडमगले^१ १४
 कालपडिलेहणया १५
 पायच्छित्तकरणे १६
 खमावणया १७
 सज्झाए १८
 वायणया^२ १९
 पडिपुच्छणया २०
 परियट्ठणया २१
 अणुप्पेहा २२
 धम्मकहा २३
 सुयस्स आराहणया २४
 एगगमणसनिवेशणया २५
 सज्जे २६
 तवे २७
 वोदाणे २८
 मुहसाए २९
 अप्पडिवद्धया ३०
 विवित्तसयणासणसेवणया ३१
 विणियट्ठणया ३२
 सम्भोगपच्चक्खाणे ३३
 उवहिपच्चक्खाणे ३४
 आहारपच्चक्खाणे ३५
 कसायपच्चक्खाणे ३६
 जोगपच्चक्खाणे ३७
 सरीरपच्चक्खाणे ३८
 सहायपच्चक्खाणे ३९

प्रतिक्रमणम् ११
 कायोत्सर्गः १२
 प्रत्याख्यानम् १३
 स्तव-स्तुति-मङ्गलम् १४
 काल-प्रतिलेखनम् १५
 प्रायश्चित्तकरणम् १६
 क्षमापनम् १७
 स्वाध्यायः १८
 वाचनम् १९
 प्रतिप्रच्छनम् २०
 परिवर्तनम् २१
 अनुप्रेक्षा २२
 धर्म-कथा २३
 श्रुतस्य आराधना २४
 एकाग्रमन-सन्निवेशनम् २५
 संयम २६
 तपः २७
 व्यवदानम् २८
 सुख-शातम् २९
 अप्रतिबद्धता ३०
 विविक्त-शयनासन-सेवनम् ३१
 विनिवर्तनम् ३२
 सम्भोग-प्रत्याख्यानम् ३३
 उपधि-प्रत्याख्यानम् ३४
 आहार-प्रत्याख्यानम् ३५
 कषाय-प्रत्याख्यानम् ३६
 योग-प्रत्याख्यानम् ३७
 शरीर-प्रत्याख्यानम् ३८
 सहाय-प्रत्याख्यानम् ३९

प्रतिक्रमण ११
 कायोत्सर्ग १२
 प्रत्याख्यान १३
 स्तव-स्तुति-मङ्गल १४
 काल-प्रतिलेखन १५
 प्रायश्चित्तकरण १६
 क्षामणा १७
 स्वाध्याय १८
 वाचना १९
 प्रतिप्रच्छना २०
 परावर्तना २१
 अनुप्रेक्षा २२
 धर्म-कथा २३
 श्रुताराधना २४
 एकाग्र-मन की स्थापना २५
 संयम २६
 तप २७
 व्यवदान २८
 सुख की स्पृहा का त्याग २९
 अप्रतिबद्धता ३०
 विविक्त-शयनासन-सेवन ३१
 विनिवर्तना ३२
 सम्भोग-प्रत्याख्यान ३३
 उपधि-प्रत्याख्यान ३४
 आहार-प्रत्याख्यान ३५
 कषाय-प्रत्याख्यान ३६
 योग-प्रत्याख्यान ३७
 शरीर-प्रत्याख्यान ३८
 सहाय-प्रत्याख्यान ३९

१. थव थुड मगले (अ, ऋ०), थण थुई मगले (उ)।

२. वायणाए (अ०); वायणा (उ)।

भक्तपञ्चखाणे ४०
 सन्भावपञ्चखाणे ४१
 पडिरूवया^१ ४२
 वेयावच्चे ४३
 सन्वगुणसपण्णया^२ ४४
 वीयरागया ४५
 खन्ती ४६
 मुत्ती ४७
 अज्जवे^३ ४८
 मद्दे^४ ४९
 भावसच्चे ५०
 करणसच्चे ५१
 जोगसच्चे ५२
 मणगुत्तया ५३
 वयगुत्तया ५४
 कायगुत्तया ५५
 मणसमाधारणया ५६
 वयसमाधारणया ५७
 कायसमाधारणया ५८
 नाणसपन्नया ५९
 दसणसपन्नया ६०
 चरित्तसपन्नया ६१
 सोइन्दियनिग्गहे ६२
 चक्खिन्दियनिग्गहे ६३
 घाणिन्दियनिग्गहे ६४
 जिह्विन्दियनिग्गहे ६५
 फासिन्दियनिग्गहे ६६
 कोहविजए ६७

भक्त-प्रत्याख्यानम् ४०
 सद्भाव-प्रत्याख्यानम् ४१
 प्रतिरूपता ४२
 वैयावृत्त्यम् ४३
 सर्वगुण-सम्पन्नता ४४
 वीतरागता ४५
 क्षान्तिः ४६
 मुक्तिः ४७
 आर्जवम् ४८
 मार्दवम् ४९
 भाव-सत्यम् ५०
 करण-सत्यम् ५१
 योग-सत्यम् ५२
 मनो-गुप्तता ५३
 वक्त्र-गुप्तता ५४
 काय-गुप्तता ५५
 मनः-समाधारणम् ५६
 वाक्-समाधारणम् ५७
 काय-समाधारणम् ५८
 ज्ञान-सम्पन्नता ५९
 दर्शन-सम्पन्नता ६०
 चरित्र-सम्पन्नता ६१
 श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रहः ६२
 चक्षुरिन्द्रिय-निग्रहः ६३
 घ्राणेन्द्रिय-निग्रहः ६४
 जिह्वेन्द्रिय-निग्रहः ६५
 स्पर्शेन्द्रिय-निग्रहः ६६
 क्रोध-विजय ६७

भक्त-प्रत्याख्यान ४०
 सद्भाव-प्रत्याख्यान ४१
 प्रतिरूपता ४२
 वैयावृत्त्य ४३
 सर्वगुण-सम्पन्नता ४४
 वीतरागता ४५
 क्षांति ४६
 मुक्ति ४७
 आर्जव ४८
 मार्दव ४९
 भाव-सत्य ५०
 करण-सत्य ५१
 योग-सत्य ५२
 मनो-गुप्तता ५३
 वाक्-गुप्तता ५४
 काय-गुप्तता ५५
 मनःसमाधारणा ५६
 वाक्-समाधारणा ५७
 काय-समाधारणा ५८
 ज्ञान-सम्पन्नता ५९
 दर्शन-सम्पन्नता ६०
 चारित्र-सम्पन्नता ६१
 श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रह ६२
 चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह ६३
 घ्राणेन्द्रिय-निग्रह ६४
 जिह्वेन्द्रिय-निग्रह ६५
 स्पर्शनेन्द्रिय-निग्रह ६६
 क्रोध-विजय ६७

१ पडिरूवणया (ऋ०) ।

२. °सपुण्णया (अ, आ, इ, वृ०) ।

३. मद्दे (अ, छ०, वृ०) ।

४ अज्जवे (अ, छ०, वृ०) ।

माणविजए ६८
मायाविजए ६९
लोहविजए ७०
पेज्जदोसमिच्छादसणविजए ७१
सेलेसी ७२
अकम्मया ७३

मान-विजयः ६८
माया-विजयः ६९
लोभ-विजयः ७०
प्रेयो-दोष-मिथ्यादर्शन-विजयः ७१
शैलेशी ७२
अकर्मता ७३

मान-विजय ६८
माया-विजय ६९
लोभ-विजय ७०
प्रेयो-द्वेष-मिथ्या-दर्शन विजय ७१
शैलेशी ७२
अकर्मता ७३

सवेगेण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

सवेगेण अणुत्तर धम्मसद्ध जणयइ । अणुत्तराए धम्मसद्धाए सवेग हव्वमागच्छइ । अणन्ताणुबन्धि-कोहमाणमायालोभे खवेइ । कम्म^१ न बन्धइ । तप्पच्चइय च ण मिच्छत्त-विसोहिं काऊण दसणाराहए भवइ । दसणविसोहीए य ण विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्जइ । सोहीए य ण विसुद्धाए तच्च पुणो भवग्गहणं नाइक्कमइ ॥

सू०२—निव्वेएणं भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

निव्वेएण दिव्वमाणुसतेरिच्छिएसु कामभोगेसु निव्वेय हव्वमागच्छइ । सव्वविसएसु विरज्जइ सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरम्भपरिच्चाय^२ करेइ । आरम्भपरिच्चाय करेमाणे ससारमग्ग वोच्छिन्दइ सिद्धिमग्गे पडिवन्ते य भवइ ॥

सवेगेन भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

सवेगेनानुत्तरा धर्म-श्रद्धां जनयति अनुत्तरया धर्म-श्रद्धया सवेगं शीघ्रमागच्छति । अनन्तानुबन्धि-क्रोध-मान-माया-लोभान् क्षययति । नव कर्म न बध्नाति । तत् प्रत्ययिकां च मिथ्यात्व-विशोधिं कृत्वा दर्शना-राघको भवति । दर्शन-विशोध्या च विशुद्धया स्त्येककः तेनैव भव-ग्रहणेन सिध्यति । विशोध्या च विशुद्धः तृतीयं पुनर्भव-ग्रहणम् नातिक्रामति ॥

सू०२—निर्वेदेन भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

निर्वेदेन दिव्य-मानुष-तेरश्चकेषु काम-भोगेषु निर्वेदं शीघ्रमागच्छति । सर्वविषयेषु विरज्यति । सर्वविषयेषु विरज्यमानः परित्यागं करोति । आरम्भ-परित्यागं कुर्वाणः संसार-मार्गं व्युच्छिन्नं सिद्धि-मार्गं प्रतिपन्तश्च भवति ॥

भन्ते । सवेग (मोक्ष की अभिलाषा) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सवेग से वह अनुत्तर धर्म-श्रद्धा को प्राप्त होता है । अनुत्तर धर्म-श्रद्धा से शीघ्र ही और अधिक सवेग को प्राप्त करता है । अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय करता है । नये कर्मों का संग्रह नहीं करता । कषाय के क्षीण होने से प्रकट होने वाली मिथ्यात्व-विशुद्धि कर दर्शन (सम्यक् श्रद्धान) की आराधना करता है । दर्शन-विशोधि के विशुद्ध होने पर कई एक जीव उसी जन्म से सिद्ध हो जाते हैं और कई उसके विशुद्ध होने पर तीसरे जन्म का अतिक्रमण नहीं करते—उसमें अवश्य ही सिद्ध हो जाते हैं ।

सू०२—भन्ते । निर्वेद (भव-वैराग्य) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

निर्वेद से वह देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी काम-भोगों में ग्लानि को प्राप्त होता है । सब विषयों से विरक्त हो जाता है । सब विषयों से विरक्त होता हुआ वह आरम्भ और परिग्रह का परित्याग करता है । आरम्भ और परिग्रह का परित्याग करता हुआ संसार-मार्ग का विच्छेद करता है और सिद्धि-मार्ग को प्राप्त होता है ।

सू० ३—धम्मसद्धाए ण भन्ते ।
जीवे किं जणयड ?

धम्मसद्धाए ण सायासोक्खेसु
रज्जमाणे विरज्जड । अगारधम्म च
ण चयइ अणगारे ण जीवे सारीर-
माणसाण दुक्खाण छेयणभेयण-
सजोगाईण वोच्छेय करेइ अव्वावाह
च सुह निव्वत्तेड' ॥

सू० ३—धर्म-श्रद्धया भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

धर्म-श्रद्धया सात-सौख्येषु रज्यमान
विरज्यति । अगार-धर्म च त्यजति ।
अनगारो जीवः शारीर-मानसाना
दुःखाना छेदन-भेदन-सयोगादीना
व्युच्छेद करोति अव्यावाध च सुख
निर्वर्तयति ॥

सू० ३—भन्ते ! धर्म-श्रद्धा से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

धर्म-श्रद्धा से वह वैषयिक सुखों की
आमक्ति को छोड़ विरक्त हो जाता है, अगार-
धर्म—गृहस्थी को त्याग देता है । वह अनगार
होकर छेदन-भेदन, संयोग-वियोग आदि
शारीरिक और मानसिक दुःखों का विच्छेद
करता है और निर्वाण (बाधा-रहित) सुख
को प्राप्त करता है ।

सू० ४—गुरुसाहम्मियसुस्सूणयाए
ण भन्ते । जीवे किं जणयड ?

गुरुसाहम्मियसुस्सूणयाए ण
विणयपडिवत्ति जणयइ । 'विणय-
पडिवन्ते य ण'^१ जीवे अणच्चासायण-
सीले नेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्स-
देवदोगईओ निरुम्भड । वण्णसजलण-
भत्तिवहुमाणयाए मणुस्सदेवसोगईओ
निवन्धड सिद्धि सोग्गड च विसोहेइ ।
पसत्थाइ च ण विणयमूलाड सव्व-
कज्जाड साहेइ । अन्ते य वहवे जीवे
विणइत्ता भवड ॥

सू० ४—गुरु-साधर्मिक-शुश्रूषणया
भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

गुरु-साधर्मिक शुश्रूषणया विनय-
प्रतिपत्तिं जनयति । विनय-प्रतिपन्नश्च
जीवः अनत्याशातनशीलो नैरयिक-
तिर्यग्गोनिक-मनुष्य-देव दुर्गती
निरुणद्धि । वर्ण-सज्ज्वलन-भक्ति-
बहुमानेन मनुष्य-देव-सुगती
निवध्नाति । सिद्धिं सुगतिं च
विशोधयति । प्रशस्तानि च विनयमूलानि
सर्वकार्याणि साधयति । अन्याश्च
बहून् जीवान् विनेता भवति ॥

सू० ४—भन्ते ! गुरु और साधर्मिक की
शुश्रूषा (पर्युपासना) से जीव क्या प्राप्त
करता है ?

गुरु और साधर्मिक की शुश्रूषा से वह
विनय को प्राप्त होता है । विनय को प्राप्त
करने वाला व्यक्ति गुरु का अधिनय या
परिवाद करने वाला नहीं होता, इसलिए वह
नैरयिक, तिर्यग्-योनिक, मनुष्य और देव
सम्बन्धी दुर्गति का निरोध करता है । श्लाघा,
गुण-प्रकाशन, भक्ति और बहुमान के द्वारा
मनुष्य और देव-सम्बन्धी सुगति से सम्बन्ध
जोड़ता है । सिद्धि और सुगति का मार्ग
प्रशस्त करता है । विनय-मूलक सब प्रशस्त
कार्यों को सिद्ध करता है और हमारे बहुत
व्यक्तियों को विनय के पथ पर ले आता है ।

१. निव्वत्ते (ऋ०) ।

२. पडिवन्णण (ऋ०) ।

सू०५—आलोयणाए ण भन्ते ।
जीवे किं जणयइ ?

आलोयणाए ण मायानियाण-
मिच्छादसणसल्लाण मोकखमग्ग-
विग्घाण अणन्तससारवद्धणाण^१
उद्धरण करेइ । उज्जुभाव च^२
जणयइ । 'उज्जुभावपडिवन्ते य ण'^३
जीवे अमाई इत्थीवेयनपुंसगवेय च
न बन्धइ । पुव्ववद्ध च ण निज्जरेइ ॥

सू०६—निन्दणयाए णं भन्ते ।
जीवे किं जणयइ ?

निन्दणयाए ण पच्छाणुताव
जणयइ । पच्छाणुतावेण विरज्जमाणे
करणगुणसेट्ठि^४ पडिवज्जइ ।
करणगुणसेट्ठि 'पडिवन्ते य'^५ ण
अणगारे मोहणिज्ज कम्म उग्घाएइ ॥

सू०७—गरहणयाए ण भन्ते ।
जीवे किं जणयइ ?

गरहणयाए ण अपुरक्कार
जणयइ । अपुरक्कारगए ण जीवे
अप्पसत्थेहिंतो जोगेहिंतो नियत्तेइ^६
पसत्थजोगपडिवन्ते य ण अणगारे
अणन्तघाइपज्जवे खवेइ ॥

सू०५—आलोचनया भदन्त ! जीवः
किं जनयति ?

आलोचनया माया-निदान-मिथ्या-
दर्शन-शल्यानां मोक्ष-मार्ग-विघ्नाना-
मनन्त-ससार-वर्द्धनानामुद्धरणं करोति ।
ऋजुभावं च जनयति । प्रतिपन्नर्जु-
भावश्च जीवोऽमायी स्त्री-वेदं नपुसक-
वेदं च न बध्नाति । पूर्ववद्धं च
निर्जरयति ॥

सू०६—निन्दनेन भदन्त ! जीवः
किं जनयति ?

निन्दनेन पश्चादनुतापं जनयति ।
पश्चादनुतापेन विरज्यमानः करण-
गुण-श्रेणिं प्रतिपद्यते । करण-गुण-
श्रेणिं प्रतिपन्नश्चानगारो मोहनीय
कर्मोद्घातयति ॥

सू०७—गर्हणेन भदन्त ! जीवः
किं जनयति ?

गर्हणेनापुरस्कारं जनयति ।
अपुरस्कारगतो जीवोऽप्रशस्तेभ्यो
योगेभ्यो निवर्तते, प्रतिपन्न-प्रशस्त-
योगश्च अनगारोऽनन्त-घाति-पर्यवान्
क्षपयति ॥

सू०५—भन्ते । आलोचना (गुरु के सम्मुख
अपनी भूलों का निवेदन करने) से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

आलोचना से वह अनन्त ससार को बढ़ाने
वाले, मोक्ष-मार्ग में विघ्न उत्पन्न करने वाले,
माया, निदान तथा मिथ्या-दर्शन-शल्य को
निकाल फेंकता है और ऋजु-भाव को प्राप्त
होता है । ऋजु-भाव को प्राप्त हुआ व्यक्ति
अमायी होता है, इसलिए वह स्त्री-वेद और
नपुसक-वेद कर्म का बन्ध नहीं करता और यदि वे
पहले बन्धे हुए हों तो उनका क्षय कर देता है ।

सू०६—भन्ते । निन्दा (अपनी भूलों के
प्रति अनादर का भाव प्रकट करने) से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

निन्दा से वह पश्चात्ताप को प्राप्त होता
है । उसके द्वारा विरक्त होता हुआ मोह को
क्षीण करने में समर्थ परिणाम-धारा को प्राप्त
करता है । वैसी परिणाम-धारा को प्राप्त
हुआ अनगार मोहनीय-कर्म को क्षीण कर
देता है ।

सू०७—भन्ते । गर्ही (दूसरों के समक्ष
अपनी भूलों को प्रकट करने) से जीव क्या प्राप्त
करता है ?

गर्ही से वह अनादर को प्राप्त होता है ।
अनादर को प्राप्त हुआ वह अप्रशस्त प्रवृत्तियों
से निवृत्त होता है और प्रशस्त प्रवृत्तियों को
अंगीकार करता है । वैसा अनगार आत्मा के
अनन्त-विकास^१ का घात करने वाले ज्ञानावरण
आदि कर्मों की परिणतियों को क्षीण करता है ।

१ ° बद्धमाणाण (२५) ।

२. च ण (उ, ऋ०, स्) ।

३ ° पडिवन्नेण (ऋ०) ।

४ ° सेट्ठीए (अ), °सेट्ठी (वृ०) ।

५ पडिवन्ने य (ऋ०), पडिवन्ने (उ, अ) ।

६ नियत्तेइ पसत्थे य पवत्तइ (उ, ऋ०) ।

सू०८—सामादृएण भन्ते ।
जीवे किं जणयइ ?

सामादृएण सावज्जजोगविरइ
जणयइ ॥

सू०८—सामायिकेन भदन्त । जीवः
किं जनयति ?

सामायिकेन सावद्य-योग-विरतिं
जनयति ॥

सू०८—भन्ते । सामायिक (समभाव
की भावना) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सामायिक से वह असत् प्रवृत्ति की विरति
को प्राप्त होता है ।

सू०९—चउव्वीसत्थएण भन्ते ।
जीवे किं जणयइ ?

चउव्वीसत्थएण दसणविसोहिं
जणयइ ॥

सू०९—चतुर्विंशति-स्तवेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

चतुर्विंशति-स्तवेन दर्शन-विशोधिं
जनयति ॥

सू०९—भन्ते । चतुर्विंशति-स्तव (चौबीस
तीर्थंकरों की स्तुति करने) से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

चतुर्विंशति-स्तव से वह सम्यक्त्व की
विशुद्धि को प्राप्त होता है ।

सू०१०—वन्दणएण भन्ते ।
जीवे किं जणयइ ?

वन्दणएण नीयागोय कम्म
खवेइ । उच्चागोय निवन्धइ । सोहग्ग
च ण अप्पडिह्य आणाफल निव्वत्तेइ
दाहिणभाव च ण जणयइ ॥

सू०१० - वन्दनकेन भदन्त । जीवः
किं जनयति ?

वन्दनकेन नीचेर्गोत्र कर्म
क्षपयति । उच्चैर्गोत्र निवध्नाति ।
सौभाग्य चाऽप्रतिहत आज्ञा-फल-
निर्वर्तयति । दक्षिण-भाव च जनयति ॥

सू०१०—भन्ते । वन्दना से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

वन्दना से वह नीच-कुल में उत्पन्न करने
वाले कर्मों को क्षीण करता है । ऊँचे-कुल
में उत्पन्न करने वाले कर्म का अर्जन करता
है । जिसकी आज्ञा को लोग शिरोधार्य करें
वैसा अवाधित सौभाग्य और जनता की
अनुकूल भावना को प्राप्त होता है ।

सू०११—पडिक्कमणेण भन्ते ।
जीवे किं जणयइ ?

पडिक्कमणेण वयच्छिद्दाइ पिहेइ ।
पिहियवयच्छिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे
असवलचरित्ते अट्टसु पवयणमायासु
उवउत्ते अपुहत्ते^१ सुप्पणिहिण^२
विहरइ ॥

सू०११—प्रतिक्रमणेन भदन्त ।
जीवः किं जनयति ?

प्रतिक्रमणेन व्रत-च्छिद्राणि पिद-
धाति । पिहित-व्रत-च्छिद्रः पुनर्जीवो
निरुद्धाश्रवोऽशवल-चरित्रः अष्टसु
प्रवचन-मातृषु उपयुक्तोऽपृथक्त्वः
सुप्रणिहितो विहरति ॥

सू०११—भन्ते । प्रतिक्रमण से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

प्रतिक्रमण से वह व्रत के छेदों को ढक
देता है । जिसने व्रत के छेदों को भर दिया
वैसा जीव आश्रवों को रोक देता है, चारित्र के
घट्टों को मिटा देता है, आठ-प्रवचन माताओं
में सावधान हो जाता है, समय में एक-रस
हो जाता है और भलीभाँति समाधिस्थ होकर
विहार करता है ।

१ अपमत्ते (वृ० पा०) ।

२ सुप्पणिहिण (वृ० पा०) , सुप्पणिहिण (अ, उ, ऋ०) ।

सू०१२—काउस्सग्गेण भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

काउस्सग्गेणं तीयपडुप्पन्नं
पायच्छित्तं विसोहेइ । विसुद्धपाय-
च्छित्ते य जीवे निव्वयहियए
'ओहरियभारो व्व'^१ भारवहे
पसत्थज्झाणोवगए^२ सुहसुहेण
विहरइ ॥

सू०१३—पच्चक्खाणेण भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
पच्चक्खाणेण आसवदाराइ
निरुम्भइ^३ ॥

सू०१४—थवथुइमगलेण भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
थवथुइमगलेण नाणदसणचरित्त-
बोहिलाभं जणयइ । नाणदसण-
चरित्तबोहिलाभसपन्ने य ण जीवे
अन्तकिरिय कप्पविमाणोववत्तिग
आराहण आराहेइ ॥

सू०१५—कालपडिलेहणयाए
ण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
कालपडिलेहणयाए णं नाणा-
वरणिज्जं कम्म खवेइ ॥

सू०१२—कायोत्सर्गेण भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

कायोत्सर्गेण अतीत-प्रत्युत्पन्नं
प्रायश्चित्तं विशोध्यति । विशुद्ध-
प्रायश्चित्तश्च जीवो निर्वृत-हृदयोऽपहृत
भार इव भारवहः प्रशस्तध्यानोपगतः
सुखं सुखेन विहरति ॥

सू०१३—प्रत्याख्यानं भदन्त !
जीवः किं जनयति ?
प्रत्याख्यानेनाश्रव-द्वाराणि
निरुणधि ॥

सू०१४—स्तव-स्तुति-मङ्गलेन
भदन्त ! जीवः किं जनयति ?
स्तव-स्तुति-मङ्गलेन ज्ञान-दर्शन-
चारित्र-बोधि-लाभं जनयति । ज्ञान-
दर्शन-चारित्र-बोधि-लाभ - सम्पन्नश्च
जीवोऽन्त-क्रियां कल्पविमानोपपत्तिका-
माराधनामाराधयति ॥

सू०१५—काल-प्रतिलेखनेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?
काल-प्रतिलेखनेन ज्ञानावरणीयं
कर्म क्षपयति ॥

सू०१२—भन्ते ! कायोत्सर्ग (ध्यान की
मुद्रा) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

कायोत्सर्ग से वह अतीत और वर्तमान
के प्रायश्चित्तोचित कार्यों का विशोधन करता
है । ऐसा करने वाला व्यक्ति भार को नीचे
रख देने वाले भार-वाहक की भाँति स्वस्थ
हृदय वाला—हल्का हो जाता है और प्रशस्त-
ध्यान में लीन होकर उत्तरोत्तर बढ़ने वाले
सुखपूर्वक विहार करता है ।

सू०१३—भन्ते ! प्रत्याख्यान से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

प्रत्याख्यान से वह आश्रव-द्वारों (कर्म-
बन्धन के हेतुओं) का निरोध करता है ।

सू०१४—भन्ते ! स्तव और स्तुति रूप
मगल से जीव क्या प्राप्त करता है ?

स्तव और स्तुति रूप मगल से वह ज्ञान,
दर्शन और चारित्र की बोधि का लाभ करता
है । ज्ञान, दर्शन और चारित्र के बोधि-लाभ
से सम्पन्न व्यक्ति मोक्ष-प्राप्ति या वैमानिक देवों
में उत्पन्न होने योग्य आराधना करता है ।

सू०१५—भन्ते ! काल-प्रतिलेखना (स्वा-
ध्याय आदि के उपयुक्त समय का ज्ञान करने)
से जीव क्या प्राप्त करता है ?

काल-प्रतिलेखना से वह ज्ञानावरणीय कर्म
को क्षीण करता है ।

१ ° भरुव (उ, ऋ०) ।

२ ° ज्झाणज्झाइ (वृ० पा०) ।

३ निरुम्भइ । पच्चक्खाणेण इच्छानिरोहं जणयइ । इच्छानिरोहं गए य ण जीवे सव्वद्वेषं विणीयतएहे सीइभूए विहरइ । (इ, उ) ।

सू० १६—पायच्छित्तकरणेण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

पायच्छित्तकरणेण पावकम्म-विसोहिं जणयइ निरइयारे यावि भवइ । सम्म च ण पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्ग च मग्गफल च विसोहेइ आयार च आयारफल च आराहेइ ॥

सू० १७—खमावणयाए ण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

खमावणयाए ण पल्हायणभाव^१ जणयइ । पल्हायणभावमुवगए य सव्वपाणभूयजीवसत्तेसु मित्तीभाव-मुप्पाएइ । मित्तीभावमुवगए यावि जीवे भावविसोहिं काळण निव्वभए भवइ ॥

सू० १८—सज्झाएण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

सज्झाएण नाणावरणिज्ज कम्म खवेइ ॥

सू० १९—वायणाए ण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

वायणाए ण निज्जर जणयइ । सुयस्स य 'अणासायणाए वट्टए'^२ । सुयस्स अणासायणाए वट्टमाणे तित्थधम्म अवलम्बइ । तित्थधम्म अवलम्बमाणे महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ ॥

सू० १६—प्रायश्चित्त-करणेन भदन्त । जीवः किं जनयति ?

प्रायश्चित्त करणेन पाप-कर्म-विशोधिं जनयति । निरतिचारइचापि भवति । सम्यक् च प्रायश्चित्त प्रतिपद्यमानो मार्गं च मार्ग-फलं च विशोधयति । आचारउचाचार-फलद्वाराधयति ॥

सू० १७—क्षमणया भदन्त । जीवः किं जनयति ?

भन्ते । क्षमणया प्रह्लादन-भाव जनयति । प्रह्लादन-भावमुपगतश्च सर्व-प्राण-भूत-जीव-सत्त्वेषु मित्री-भावमुत्पादयति मित्री-भाव-मुपगतश्चापि जीवः भाव-विशोधिं कृत्वा निर्भयो भवति ॥

सू० १८—स्वाध्यायेन भदन्त । जीवः किं जनयति ?

स्वाध्यायेन ज्ञानावरणीयं कर्म क्षपयति ॥

सू० १९—वाचनया भदन्त । जीवः किं जनयति ?

वाचनया निर्जरा जनयति । श्रुतस्य अनाशातनाया वर्तते । श्रुतस्य अनाशातनाया वर्तमानः तीर्थ-धर्ममवलम्बते । तीर्थ-धर्ममवलम्बमानो महानिर्जरो महापर्यवसानश्च भवति ॥

सू० १६—भन्ते । प्रायश्चित्त करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

प्रायश्चित्त करने से वह पाप-कर्म को विशुद्ध करता है और निरतिचार हो जाता है । सम्यक्-प्रकार से प्रायश्चित्त करने वाला मार्ग (सम्यक्त्व) और मार्ग-फल (ज्ञान) को निमल करता है तथा आचार (चारित्र्य) और आचार-फल (मुक्ति) की धाराधना करता है ।

सू० १७—भन्ते । क्षमा करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

क्षमा करने से वह मानसिक प्रसन्नता को प्राप्त होता है । मानसिक प्रसन्नता को प्राप्त हुआ व्यक्ति सब प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के साथ मैत्री-भाव उत्पन्न करता है । मैत्री-भाव को प्राप्त हुआ जीव भावना को विशुद्ध बनाकर निर्भय हो जाता है ।

सू० १८—भन्ते । स्वाध्याय से जीव क्या प्राप्त करता है ?

स्वाध्याय से वह ज्ञानावरणीय कर्म को क्षीण करता है ।

सू० १९—भन्ते । वाचना (अध्यापन) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

वाचना से वह कर्मों को क्षीण करता है । श्रुत की उपेक्षा के दोष से वचन जाता है । इस उपेक्षा के दोष से वचने वाला तीर्थ-धर्म का अवलम्बन करता है—वह गणधर की भौति शिष्यों को श्रुत देने में प्रयत्न होता है । तीर्थ-धर्म का अवलम्बन करने वाला कर्मों और ससार का अन्त करने वाला होता है ।

१ पल्हायणत भाव (वृ०), पल्हायणभाव (वृ० पा०) ।

२ अणुसज्जाणए वट्टइ (वृ० पा०) ।

सू० २०—पडिपुच्छणयाए ण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?
पडिपुच्छणयाए ण
सुत्तत्थतदुभयाइं विसोहेइ ।
कखामोहणिज्ज कम्म वोच्छिन्दइ ॥

सू० २०—प्रतिप्रच्छनेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?
प्रतिप्रच्छनेन सूत्रार्थतदुभयानि
विशोधयति । काङ्क्षा-मोहनीयं कर्म
व्युच्छिनत्ति ॥

सू० २०—भन्ते ! प्रतिप्रश्न करने से
जीव क्या प्राप्त करता है ?
प्रतिप्रश्न करने से वह सूत्र, अर्थ और उन
दोनों से सम्बन्धित सन्देहों का निवर्तन करता
है और काङ्क्षा-मोहनीय कर्म का विनाश
करता है ।

सू० २१—परियट्ठणाए ण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?
परियट्ठणाए ण वजणाइ जणयइ
वजणलद्धि च उप्पाएइ ॥

सू० २१—परिवर्तनया भदन्त !
जीवः किं जनयति ?
परिवर्तनया व्यञ्जनानि जनयति ।
व्यञ्जन-लब्धि-चोत्पादयति ॥

सू० २१—भन्ते ! परावर्तना (पठित-
पाठ के पुनरावर्तन) से जीव क्या प्राप्त
करता है ?
परावर्तना से वह अक्षरों को उत्पन्न
करता है—स्मृत को परिपक्व और विस्मृत
को याद करता है तथा व्यञ्जन-लब्धि (वर्ण-
विद्या) को प्राप्त होता है ।

सू० २२—अणुप्पेहाए ण भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

सू० २२—अनुप्रेक्षया भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

अणुप्पेहाए ण आउयवज्जाओ
सत्तकम्मप्पगडोओ घणियबन्धणबद्धाओ
सिद्धिलबन्धणबद्धाओ पकरेइ ।
दीहकालट्ठिइयाओ हस्सकालट्ठिइयाओ
पकरेइ । तिब्वाणुभावाओ
मन्दाणुभावाओ पकरेइ । 'बहुपए-
सग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ'^१ ।
आउय च ण कम्म सिय बन्धइ सिय
नो बन्धइ । 'असायावेयणिज्ज च
ण कम्म नो भुज्जो भुज्जो
उवचिणाइ'^२ अणाइय च णं
अणवदग्ग दोहमद्धं चाउरन्त ससार-
कन्तार खिप्पामेव वीइवयइ ॥

अनुप्रेक्षया आयुष्क-वर्जा सप्त-
कर्म-प्रकृतीः दृढ-बन्धन-बद्धाः शिथिल-
बन्धन-बद्धाः प्रकरोति । दीर्घ-काल-
स्थितिका ह्रस्व-काल-स्थितिकाः
प्रकरोति । तीव्रानुभावा मन्दानुभावाः
प्रकरोति । बहु-प्रदेशका अल्प-प्रदेशकाः
प्रकरोति । आयुष्कञ्च कर्म स्याद्
बध्नाति स्थान्ते बध्नाति । असात-
वेदनीयञ्च कर्म नो भूयोभूय
उपचिनोति । अनादिकं च अनवदग्ग
दीर्घाध्वं चतुरन्त ससार-कान्तारं
क्षिप्रमेव व्यतिव्रजति ॥

सू० २२—भन्ते ! अनुप्रेक्षा (अर्थ-
चिन्तन) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

अनुप्रेक्षा से वह आयुष्-कर्म को छोड़ कर
शेष सात कर्मों की गाढ-बन्धन से बन्धी हुई
प्रकृतियों को शिथिल-बन्धन वाली कर देता है,
उनकी दीर्घ-कालीन स्थिति को अल्प-कालीन
कर देता है, उनके तीव्र अनुभ-व को मन्द कर
देता है । उनके बहु-प्रदेशों को अल्प-प्रदेशों
में बदल देता है । आयुष्-कर्म का बन्धन
कदाचित् करता है, कदाचित् नहीं भी करता ।
असात-वेदनीय कर्म का बार-बार उपचय
नहीं करता और अनादि-अनन्त लम्बे-मार्ग
वाली तथा चतुर्गति-रूप चार अन्तों वाली
ससार अटवी को तुरन्त ही पार कर जाता है ।

१. बहुपएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ (वृ० पा०) ।

२. साया वेयणिज्ज च ण कम्म भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ (वृ० पा०) ।

सू० २३—धम्मकहाए ण भन्ते ।
जीवे किं जणयइ ?

धम्मकहाए ण 'निज्जर
जणयइ'^१ । 'धम्मकहाए ण पवयण
पभावेइ'^२ । पवयणपभावे ण जीवे
आगमिसस्स भद्दताए कम्मं
निबन्धइ ॥

सू० २४—सुयस्स आराहणयाए
ण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

सुयस्स आराहणयाएण अन्ताणं
खवेइ न य सकिलिस्सइ ॥

सू० २५—एगगमणसनिवेशण-
याए ण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?
एगगमणसनिवेशणयाए णं
चित्तनिरोह करेइ ॥

सू० २६—सजमेणं भन्ते । जीवे
किं जणयइ ?
सजमेण अण्हयत्त जणयइ ॥

सू० २७—तवेण भन्ते । जीवे
किं जणयइ ?
तवेण वोदाण जणयइ ॥

सू० २३—धर्म-कथया भदन्त ।
जीवः किं जनयति ?

धर्म-कथया निर्जरा जनयति !
धर्म-कथया प्रवचन प्रभावयति ।
प्रवचन-प्रभावको जीवः आगमिष्यतः
भद्रतया कर्म निवध्नाति ॥

सू० २४—श्रुतस्य आराधनया
भदन्त । जीवः किं जनयति ?

श्रुतस्य आराधनया अज्ञानं
क्षपयति, न च सकलिश्यते ॥

सू० २५—एकाग्र-मनः-संनिवेशनेन
भदन्त ! जीवः किं जनयति ?
एकाग्र-मनः-संनिवेशनेन^१ चित्त-
निरोधं करोति ॥

सू० २६—सयमेन भदन्त । जीवः
किं जनयति ?
सयमेन अनास्नवत्त्वं जनयति ॥

सू० २७—तपसा भदन्त ! जीवः
किं जनयति ?
तपसा व्यवदान जनयति ॥

२३—भन्ते ! धर्म-कथा मे जीव क्या
प्राप्त करता है ?

धर्म-कथा से वह प्रवचन की प्रभावना
करता है । प्रवचन की प्रभावना करने वाला
जीव भविष्य में कल्याणकारी फल देने वाले
कर्मों का अर्जन करता है ।

सू० २४—भन्ते ! श्रुत की आराधना से
जीव क्या प्राप्त करता है ?

श्रुत की आराधना से अज्ञान का क्षय
करता है और राग-द्वेष आदि से उत्पन्न
होने वाले मानसिक सक्लेशों से बच जाता है ।

सू० २५—भन्ते ! एक अग्र (आलम्बन)
पर मन को स्थापित करने से जीव क्या प्राप्त
करता है ?

एकाग्र-मन की स्थापना से वह चित्त का
निरोध करता है ।

सू० २६—भन्ते ! सयम से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

सयम से वह आश्रव का निरोध
करता है ।

सू० २७—भन्ते ! तप से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

तप से वह व्यवदान—पूर्व-संचित कर्मों
को क्षीण कर विशुद्धि को प्राप्त होता है ।

१. पवयण पभावेइ (बु० पा०) ।

२. x (बु०) ।

सू० २८—वोदाणेण भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

वोदाणेण अकिरिय जणयइ ।
अकिरियाए भवित्ता तओ पच्छा
सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ
सव्वदुक्खाणमन्त करेइ ॥

सू० २९—सुहसाएण^१ भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

सुहसाएण अणुस्सुयत्त जणयइ ।
अणुस्सुयाए ण जीवे अणुकम्पए
अणुब्भडे विगयसोगे चरित्तमोहणिज्ज
कम्म खवेइ ॥

सू० ३०—अप्पडिबद्धयाए ण
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

अप्पडिबद्धयाए ण निस्संगत्त
जणयइ । निस्सगत्तेणं^२ जीवे एगे
एगगचित्ते दिया य राओ य
असज्जमाणे अप्पडिबद्धे यावि
विहरइ ॥

सू० ३१—विवित्तसयणासण-
याए^३ ण भन्ते ! जीवे किं
जणयइ ?

विवित्तसयणासणयाए ण
चरित्तगुत्ति जणयइ । चरित्तगुत्ते य
ण जीवे विवित्ताहारे दढचरित्ते
एगन्तरए मोक्खभावपडिवन्ते
अट्टविहकम्मगण्ठि निज्जरेइ ॥

सू० २८—व्यवदानेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

व्यवदानेन अक्रियां जनयति ।
अक्रियाको भूत्वा ततः पश्चात्
सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते, परिनिर्वाति,
सर्व-दुःखानामन्त करोति ॥

सू० २९—सुख-शातेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

सुख-शातेन अनुत्सुकत्वं जनयति ।
अनुत्सुको जीवोऽनुकम्पकोऽनुदभटो
विगत-शोकश्चारित्र-मोहनीयं कर्म
क्षपयति ॥

सू० ३०—अप्रतिबद्धतया भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

अप्रतिबद्धतया निस्सङ्गत्वं
जनयति । निस्सङ्गत्वेन जीवः एकः
एकाग्र-चित्तो दिवा च रात्रौ
चाऽसज्जन्तऽप्रतिबद्धश्चापि विहरति ॥

सू० ३१—विविक्त-शयनासनेन
भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

विविक्त-शयनासनेन चरित्र-गुप्ति
जनयति चरित्र-गुप्तश्च जीवः
विविक्ताहारः दढ-चारित्रः एकान्त-रतः
मोक्ष-भाव-प्रतिपन्न अष्टविध-
कर्मग्रन्थि निजरयति ॥

सू० २८—भन्ते ! व्यवदान से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

व्यवदान से वह अक्रिया (मन, वचन और
शरीर की प्रवृत्ति के पूर्ण निरोध) को प्राप्त
होता है, वह अक्रियावान होकर सिद्ध होता
है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण
होता है और दुःखों का अन्त करता है ।

सू० २९—भन्ते ! सुख की स्पृहा का
निवारण करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सुख की स्पृहा का निवारण करने से
वह विषयो के प्रति अनुत्सुक-भाव को प्राप्त
करता है । विषयो के प्रति अनुत्सुक जीव
अनुकम्पा करने वाला, प्रशान्त और शोक-मुक्त
होकर चरित्र को विकृति करने वाले मोह-कर्म
का क्षय करता है ।

सू० ३०—भन्ते ! अप्रतिबद्धता (मन
की अनासक्ति) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

अप्रतिबद्धता से वह असंग हो जाता
है—बाह्य ससर्गों से मुक्त हो जाता है ।
असंगता से जीव अकेला (राग-द्वेष रहित),
एकाग्र-चित्त वाला, दिन और रात बाह्य-
ससर्गों को छोड़ता हुआ प्रतिबन्ध रहित होकर
विहार करता है ।

सू० ३१—भन्ते ! विविक्त-शयनासन के
सेवन से जीव क्या प्राप्त करता है ?

विविक्त-शयनासन के सेवन से वह चारित्र-
की रक्षा को प्राप्त होता है । चारित्र की
सुरक्षा करने वाला जीव पौष्टिक आहार का
वर्जन करने वाला, दृढ चरित्र वाला, एकांत
में रत, अन्तःकरण से मोक्ष साधना में लगा
हुआ आठ प्रकार के कर्मों की गाँठ को तोड़
देता है ।

१ सहसाइयाएणं (वृ०), सहसायाएणं, सहसाएण (वृ० पा०), सहसायाएणं (अ, आ, इ, उ, ऋ०) ।

२ निस्सगच्च गण्ठि (उ, ऋ०) ।

३ सयणासणसेवणयाए (आ, इ) ।

सू० ३२—विणियट्ठणयाए ण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

विणियट्ठणयाए ण पावकम्माण अकरणयाए अवभुद्देइ । पुव्वबद्धाण य निज्जरणयाए त नियत्तेइ तओ पच्छा चाउरन्त ससारकन्तार वीइवयइ ॥

सू० ३३—सभोगपच्चक्खाणेण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

सभोगपच्चक्खाणेण आलम्बणाइ खवेइ । निरालम्बणस्स य आययट्ठिया जोगा भवन्ति । सएण लाभेण सतुस्सइ^१ परलाभ 'नो आसाएइ'^२ नो तक्केइ नो पीहेइ नो पत्थेइ नो अभिलसइ । परलाभ अणासायमाणे अतक्केमाणे अपोहेमाणे अपत्थेमाणे अणभिलसमाणे दुच्च सुहसेज्ज उवसपज्जित्ताण विहरइ ॥

सू० ३४—उवहिपच्चक्खाणेण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

उवहिपच्चक्खाणेण अपलिमन्थ जणयइ । निरुवहिए ण जीवे निक्कखे^३ उवहिमन्तरेण य न सकिलिस्सई ॥

सू० ३२—विनिवर्तनेन भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

विनिवर्तनेन पाप-कर्मणा अकरणेन अभ्युत्तिष्ठते । पूर्व-बद्धानाञ्च निर्जरेण तत् निर्वर्तयति । ततः पश्चात् चतुरन्त ससार-कान्तार व्यतिव्रजति ॥

सू० ३३—सभोग-प्रत्याख्यानानेन भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

सभोग-प्रत्याख्यानानेन आलम्बनानि क्षपयति । निरालम्बनस्य च आयता-र्थिकायोगाः भवन्ति । स्वकेन लाभेन सन्तुष्यति । परलाभ 'नो' आस्वादयति नो तर्कयति, नो स्पृहयति, नो प्रार्थयति, नो अभिलषति । परलाभमनास्वादयन्, अतर्कयन्, अस्पृहयन्, अप्रार्थयन्, अनभिलषन्, द्वितीया सुख-शय्यामुपसम्पद्य विहरति ॥

सू० ३४—उपधि-प्रत्याख्यानानेन भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

उपधि-प्रत्याख्यानानेन अपरिमन्थ जनयति । निरुपविकोजीवो निष्काङ्क्ष उपधिमन्तरेण च न सकिलिष्यति ॥

सू० ३२—भन्ते ! विनिवर्तना (इन्द्रिय और मन को विषयों से दूर रखने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

विनिवर्तना से वह नए सिरे से पाप-कर्मों को नहीं करने के लिए तत्पर रहता है और पूर्व-अर्जित पाप-कर्मों का क्षय कर देता है— इस प्रकार वह पाप-कर्म का विनाश कर देता है । उसके पश्चात् चार-गति रूप चार अन्तो वाली ससार अटवी को पार कर जाता है ।

सू० ३३—भन्ते । सम्भोग-प्रत्याख्यान (मण्डली-भोजन) का त्याग करने वाला जीव क्या प्राप्त करता है ?

सम्भोग-प्रत्याख्यान से वह परावलम्बन को छोड़ता है । उस परावलम्बन को छोड़ने वाले मुनि के सारे प्रयत्न मोक्ष की सिद्धि के लिए होते हैं । वह भिक्षा में स्वयं को जो कुछ मिलता है उसी में सन्तुष्ट हो जाता है । दूसरे मुनियों को मिली हुई भिक्षा में आस्वाद नहीं लेता, उसकी स्पृहा नहीं करता, प्रार्थना नहीं करता और अभिलाषा नहीं करता । दूसरे को मिली हुई भिक्षा में आस्वाद न लेता हुआ उसकी ताक न रखता हुआ, स्पृहा न करता हुआ, प्रार्थना न करता हुआ और अभिलाषा न करता हुआ दूसरी सुख-शय्या को प्राप्त कर विहार करता है ।

सू० ३४—भन्ते ! उपधि (वस्त्र आदि उपकरणों) के प्रत्याख्यान से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उपधि के प्रत्याख्यान से वह स्वाध्याय-ध्यान में होने वाली क्षति से बच जाता है । उपधि रहित मुनि अभिलाषा से मुक्त होकर उपधि के अभाव में मानसिक सकलेश को प्राप्त नहीं होता ।

१. तुस्सइ (उ, श्रु०) ।

२. × (उ, श्रु०, वृ०) ।

३. 'निक्कखे' एतच्च पद क्वचिदेव दृश्यते (वृ०) ।

सू० ३५—आहारपचक्खाणेण भन्ते ।
जीवे किं जणयइ ?

आहारपचक्खाणेण 'जीविया-
संसप्पओग'^१ वोच्छिन्दइ । जीविया-
संसप्पओग वोच्छिन्दिता^२ जीवे
आहारमन्तरेण न सकिस्सइ ॥

सू० ३६—कसायपचक्खाणेण भन्ते ।
जीवे किं जणयइ ?

कसायपचक्खाणेण वीयरगभाव
जणयइ । वीयरगभावपडिवन्ते वि
य णं जीवे समसुहदुक्खे भवइ ॥

सू० ३७—जोगपचक्खाणेण भन्ते ।
जीवे किं जणयइ ?

जोगपचक्खाणेण अजोगत्त
जणयइ । अजोगी^३ ण जीवे नवं
कम्म न बन्धइ पुव्वबद्ध निज्जरेइ ॥

सू० ३८—सरीरपचक्खाणेण भन्ते ।
जीवे किं जणयइ ?

सरीरपचक्खाणेण सिद्धादिसय-
गुणत्तणं^४ निव्वत्तेइ । सिद्धादिसय-
गुणसपन्ते य णं जीवे लोगगमुवगए
परमसुही भवइ ॥

सू० ३५—आहार-प्रत्याख्यानेन
भदन्त ! जीव किं जनयति ?

आहार-प्रत्याख्यानेन जीविताशसा-
प्रयोग व्युच्छिनत्ति । जीविताशसा-
प्रयोग व्यवच्छिद्य जीव आहार-
मन्तरेण न सक्लिश्यति ॥

सू० ३६—कषाय-प्रत्याख्यानेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

कषाय-प्रत्याख्यानेन वीतराग-
भाव जनयति वीतरागभाव-प्रतिपन्नोपि
च जीवः सम-सुख-दुःखो भवति ॥

सू० ३७—योग-प्रत्याख्यानेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

योग-प्रत्याख्यानेन अयोगत्व
जनयति । अयोगी जीवो नवं कर्म न
बध्नाति, पूर्व-बद्धं निर्जरयति ॥

सू० ३८—शरीर-प्रत्याख्यानेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

शरीर-प्रत्याख्यानेन सिद्धातिशय-
गुणत्वं निर्वर्तयति । सिद्धातिशय-
गुण-सम्पन्नश्च जीवो लोकाग्रमुपगतः
परम-सुखी भवति ॥

सू० ३५—भन्ते । आहार-प्रत्याख्यान
(सदोष भक्त-पान का त्याग करने) से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

आहार-प्रत्याख्यान से वह जीवित रहने
की अभिलाषा के प्रयोग का विच्छेद कर देता
है । जीवित रहने की अभिलाषा का विच्छेद
कर देने वाला व्यक्ति आहार के बिना (तपस्या
आदि में) सकलेश को प्राप्त नहीं होता ।

सू० ३६—भन्ते । कषाय (क्रोध, मान,
माया और लोभ) के प्रत्याख्यान से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

कषाय-प्रत्याख्यान से वह वीतराग-भाव
को प्राप्त होता है । वीतराग-भाव को प्राप्त
हुआ जीव सुख-दुःख में सम हो जाता है ।

सू० ३७—भन्ते । योग (शरीर, वचन
और मन की प्रवृत्ति) के प्रत्याख्यान से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

योग-प्रत्याख्यान से वह अयोगत्व (सर्वथा
अप्रकम्प भाव) को प्राप्त होता है । अयोगी
जीव नए कर्मों का अर्जन नहीं करता और
पूर्वार्जित कर्मों को क्षीण कर देता है ।

सू० ३८—भन्ते । शरीर के प्रत्याख्यान
(देह-मुक्ति) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

शरीर के प्रत्याख्यान से वह मुक्त-
आत्माओं के अतिशय गुणों को प्राप्त करता
है, मुक्त-आत्माओं के अतिशय गुणों को प्राप्त
करने वाला जीव लोक के शिखर में पहुँचकर
परम सुखी हो जाता है ।

१. जीवियास विप्पओग (बृ० पा०) ।

२. वोच्छिदिय (बृ० पा०) ।

३. अजोगीय (ऋ०) ।

४. सयगुणत्त (उ. ऋ०) ।

सू० ३९—सहायपच्चक्खाणेण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

सहायपच्चक्खाणेण एगीभाव जणयइ । एगीभावभूए वि^१ य ण^२ जीवे एगग भावेमाणे अप्पसद्वे^३ अप्पभक्के अप्पकलहे अप्पकसाए अप्पतुमतुमे सजमवहुले संवरवहुले समाहिए यावि भवइ ॥

सू० ३९—सहाय-प्रत्याख्यानेन भदन्त ! जीव किं जनयति ?

सहाय-प्रत्याख्यानेन एकीभावं जनयति । एकीभाव-भूतोऽपि च जीव ऐकाग्र्य भावयन् अल्प-शब्दः अल्प-भुज्ज अल्प-कलहः अल्प-कषायः अल्प-त्वत्त्वः सयम-बहुलः सवर-बहुलः, समाहितश्चापि भवति ॥

सू० ३९—भन्ते । सहाय-प्रत्याख्यान (दूसरों का सहयोग न लेने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सहाय-प्रत्याख्यान से वह अकेलेपन को प्राप्त होता है । अकेलेपन को प्राप्त हुआ जीव एकत्व के आलम्बन का अभ्यास करता हुआ कोलाहल पूर्ण शब्दों से मुक्त, वाचिक-कलह से मुक्त, क्षणिक से मुक्त, कषाय से मुक्त, तू-तू से मुक्त, सयम बहुल, सवर बहुल और समाधिस्थ हो जाता है ।

सू० ४०—भक्तपच्चक्खाणेण भन्ते । जीवे किं जणयइ ॥

भक्तपच्चक्खाणेण अणेगाड भवसयाड निरुम्भइ ॥

सू० ४०—भक्त-प्रत्याख्यानेन भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

भक्त-प्रत्याख्यानेन अनेकानि भव-शतानि निरुणद्धि ॥

सू० ४०—भन्ते । भक्त-प्रत्याख्यान (अनशन) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

भक्त-प्रत्याख्यान से वह अनेक सैकड़ों जन्म-मरणों का निरोध करता है ।

सू० ४१—सवभावपच्चक्खाणेण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

सवभावपच्चक्खाणेण अनियट्ठि^४ जणयइ । अनियट्ठिपडिवन्ते^५ य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मसे खवेइ तं जहा वेयणिज्ज आउय नाम गोय । तओ^६ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिब्बाएइ सव्वदुक्खानमन्त करेइ ॥

सू० ४१—सद्भाव-प्रत्याख्यानेन भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

सद्भाव-प्रत्याख्यानेन अनिवृत्तिं जनयति । अनिवृत्तिप्रतिपन्नश्चानगार-चतुरः केवलि-कर्मांशान् क्षययति, तद् यथा—वेदनीय, आयुः नाम गोत्रम् । ततः पश्चात् सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते, परिनिर्वाति, सर्व-दुःखानामन्तं करोति ॥

सू० ४१—भन्ते । सद्भाव-प्रत्याख्यान (पूर्ण सवर रूप शैलेशी) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सद्भाव-प्रत्याख्यान से वह अनिवृत्ति को प्राप्त होता है—फिर मन, वाणी और शरीर की प्रवृत्ति नहीं करता । अनिवृत्ति को प्राप्त हुआ अनगार केवलि-सत्क (केवली के विद्यमान) चार कर्मों, जैसे—वेदनीय, आयुप् नाम और गोत्र को क्षीण कर देता है । उसके पश्चात् वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है और सब दुःखों का अन्त करता है ।

१. × (उ, ऋ०) ।

२. × (उ, ऋ०) ।

३. × (ऋ०) ।

४. निवट्ठि (ऋ० पा०) ।

५. निवट्ठि (ऋ० पा०) ।

६. × (उ, ऋ०) ।

सू० ४२—पडिरुवयाए णं भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

पडिरुवयाए ण लाघविय जणयइ । लहुभूए णं^१ जीवे अप्पमत्ते पागडलिंगे पसत्थलिंगे विसुद्धसम्मत्ते सत्तसमिइसमत्ते सव्वपाणभूय-जीवसत्तेसु वीससणिज्जरूवे अप्पडिलेहे^२ जिइन्दिए विउलतव-समिइसमन्तागए यावि भवइ ॥

सू० ४३—वेयावच्चेण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वेयावच्चेण तित्थयरनामगोत्तं कम्म निबन्धइ ॥

सू० ४४—सव्वगुणसंपन्नयाए^३ ण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

सव्वगुणसंपन्नयाए णं अपुणरावत्ति जणयइ । अपुणरावत्ति पत्तए य^४ ण जीवे सारीरमाणसाणं दुक्खाण नो भागी भवइ ॥

सू० ४५—वीयरागयाए णं भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

वीयरागयाए णं 'नेहाणुबन्धणाणि तण्हाणुबन्धणाणि'^५ य वोच्छिन्नइ मणुन्नेसु^६ सद्दफरिसरसरूवगन्धेसु चैव विरज्जइ ॥

सू० ४२—प्रतिरूपतया भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

प्रतिरूपतया लाघवित्तां जनयति । लघुभूतो जीवः अप्रमत्त प्रकट-लिंगः प्रशस्त-लिंग विशुद्ध-सम्यक्त्वः समाप्त-सत्त्व-समितिः सर्व-प्राण-भूत-जीव-सत्त्वेषु विश्वसनीय-रूपोऽल्प-प्रतिलेखो जितेन्द्रियो विपुल-तपः-समिति-समन्वागतश्चापि भवति ॥

सू० ४३—वैयावृत्येन भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

वैयावृत्येन तीर्थङ्कर-नाम-गोत्रं कर्म निबध्नाति ॥

सू० ४४—सर्व-गुण-सम्पन्नतया भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

सर्व-गुण-सम्पन्नतया अपुनरावृत्तिं जनयति । अपुनरावृत्तिं प्राप्तश्च जीवः शारीर-मानसानां दुःखानां नो भागी भवति

सू० ४५—वीतरागतया भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

वीतरागतया स्नेहानुबन्धनानि तृष्णानुबन्धनानि च व्युच्छिन्नन्ति । मनोज्ञेषु शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धेषु चैव विरज्यते ॥

सू० ४२—भन्ते ! प्रतिरूपता (जिनकल्पिक जैसे आचार का पालन करने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

प्रतिरूपता से वह हल्केपन को प्राप्त होता है । उपकरणों के अल्पीकरण से हल्का बना हुआ जीव अप्रमत्त, प्रकटलिंग वाला, प्रशस्त-लिंग वाला, विशुद्ध सम्यक्त्व वाला, पराक्रम और समिति से परिपूर्ण, सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के लिए विश्वसनीय रूप वाला, अल्प-प्रतिलेखन वाला, जितेन्द्रिय तथा विपुल तप और समितियों का सर्वत्र प्रयोग करने वाला होता है ।

सू० ४३—भन्ते ! वैयावृत्य (साधु-सच की सेवा करने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

वैयावृत्य से वह तीर्थङ्कर नाम-गोत्र का अर्जन करता है ।

सू० ४४—भन्ते ! सर्व-गुण-सम्पन्नता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सर्व-गुण-सम्पन्नता से वह अपुनरावृत्ति (मुक्ति) को प्राप्त होता है । अपुनरावृत्ति को प्राप्त करने वाला जीव शारीरिक और मानसिक दुःखों का भागी नहीं होता ।

सू० ४५—भन्ते ! वीतरागता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

वीतरागता से वह स्नेह के अनुबन्धनों और तृष्णा के अनुबन्धनों का विच्छेद करता है तथा मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध से विरक्त हो जाता है ।

१ य ण (उ, ऋ०) ।

२ अप्पडिलेहे (वृ० पा०) ।

३ सपुण्णयाए (अ, आ) ।

४ × (उ, ऋ०) ।

५ बध्दणाणि तण्हाबध्दणाणि (वृ०), नेहाणुबन्धणाणि, तण्हाणुबन्धणाणि (वृ० पा०) ;

६ मणुन्तामणुन्नेसु (अ) ।

सू० ४६—खन्तीए ण भन्ते।
जीवे किं जणयइ ?

खन्तीए ण परीसहे जिणइ ॥

सू० ४७—मुत्तीए ण भन्ते।
जीवे किं जणयइ ?

मुत्तीए ण अकिचण जणयइ ।
अकिचणे य जीवे अत्थल्लोलाण^१
अपत्थणिज्जो भवइ ॥

सू० ४८—अज्जवयाए ण भन्ते।
जीवे किं जणयइ ?

अज्जवयाए ण कानुज्जुयय
भावुज्जुयय भासुज्जुयय अविस्वायण
जणयइ । अविरत्तायणसपन्नयाए णं
जीवे धम्मस्स आराहए भवइ ॥

सू० ४९—महवयाए ण भन्ते।
जीवे किं जणयइ ?

महवयाए ण 'अणुस्सियत्त
जणयइ । अणुस्सियत्ते ण जीवे
मिउमहवसपन्नस्से अट्ट मयट्ठाणाइ
निट्ठवेइ^२ ॥

सू० ५०—भावसच्चेण भन्ते।
जीवे किं जणयइ ?

भावसच्चेण भावविसोहिं
जणयइ । भावविसोहीए वट्ठमाणे
जीवे अरहन्तपन्नत्तस्स धम्मस्स
आराहणए अब्भुट्ठेइ । अरहन्त-
पन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए^३
अब्भुट्ठित्तिपरलोकधम्मस्स आराहए^४
हवइ ॥

सू० ४६—क्षान्त्या भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

क्षान्त्या परीषहान् जयति ॥

सू० ४७—मुक्त्या भदन्त ! जीवः
किं जनयति ?

मुक्त्या अकिंचन्यं जनयति ।
अकिंचनश्च जीवो अर्थ-लोलानां
अप्रार्थनीयो भवति ॥

सू० ४८—आर्जवेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

आर्जवेन कायर्जुक्ता, भावर्जुक्तां
भाषर्जुक्तां, अविस्वादनं जनयति ।
अविस्वादन-सम्पन्नतया जावोधर्म-
स्याराधको भवति ॥

सू० ४९—मार्दवेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

मार्दवेन अनुत्सिक्तत्वं जनयति ।
अनुत्सिक्तत्वेन जीवो मृदु-मार्दव-
सम्पन्नः अष्ट मद-स्थानानि
निष्ठापयति ॥

सू० ५०—भाव-सत्येन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

भाव-सत्येन भाव-विशोधिं
जनयति । भाव-विशोधीं वर्तमानो
जीवोऽर्हत्-प्रज्ञप्तस्य धर्मस्याराधनायै
अभ्युत्तिष्ठते । अर्हत्-प्रज्ञप्तस्य धर्म-
स्याराधनायै अभ्युत्थाय परलोक-
धर्मस्याराधको भवति ॥

सू० ४६—भन्ते ! क्षमा से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

क्षमा से वह परीपहों पर विजय प्राप्त कर
लेता है ।

सू० ४७—भन्ते ! मुक्ति (निर्लोभता)
से जीव क्या प्राप्त करता है ?

मुक्ति से वह अकिंचनता को प्राप्त होता
है । अकिंचन जीव अय-लोलुप पुरुषों के द्वारा
अप्रार्थनीय होता है—उसके पास कोई याचना
नहीं करता ।

सू० ४८—भन्ते ! ऋजुता से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

ऋजुता से वह काया की सरलता,
मन की सरलता, भाषा की सरलता
और अवचक वृत्ति को प्राप्त होता है । अवचक
वृत्ति से सम्पन्न जीव धर्म का आराधक
होता है ।

सू० ४९—भन्ते ! मृदुता से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

मृदुता से वह अनुद्धत मनोभाव को प्राप्त
करता है । अनुद्धत मनोभाव वाला जीव मृदु-
मार्दव से सम्पन्न होकर मद के आठ स्थानों
का विनाश कर देता है ।

सू० ५०—भन्ते ! भाव-सत्य (अन्तर-
आत्मा की सचाई) से जीव क्या प्राप्त
करता है ?

भाव-सत्य से वह भाव की विशुद्धि को
प्राप्त होता है । भाव-विशुद्धि में वर्तमान जीव
अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म की आराधना के लिए तैयार
होता है । अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म की आराधना में
तत्पर होकर वह परलोक-धर्म का आराधक
होता है ।

१ अत्थल्लोलाण (आ, इ, उ, ऋ०, स) ।

२ अणुस्स अणुस्सियत्ते (अ), महवयाए णं मिउ० (उ, ऋ०, ऋ०), मह० अणुस्सियत्त जणेति,
(वृ० पा०) ।

३ आराहण (वृ० पा०) ।

४ परलोगाराहए (वृ० पा०) ।

सू० ५१—करणसच्चेण भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

करणसच्चेणं करणसत्तिं
जणयइ । करणसच्चे वट्टमाणे जीवे
जहावाई तहाकारी यावि भवइ ॥

सू० ५२—जोगसच्चेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

जोगसच्चेण जोगं विसोहेइ ॥

सू० ५३—मणगुत्तयाए ण भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

मणगुत्तयाए ण जीवे एगग
जणयइ । एगगचित्ते ण जीवे मणगुत्ते
सजमाराहए भवइ ॥

सू० ५४—वयगुत्तयाए ण भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

वयगुत्तयाए ण निव्वियार^१
जणयइ । 'निव्वियारेण जीवे वइगुत्ते
अज्झप्पजोगज्झाणगुत्ते^{२,३} यावि
भवइ ॥

सू० ५५—कायगुत्तयाए ण
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

कायगुत्तयाए णं सवरं जणयइ ।
सवरेणं कायगुत्ते पुणो पावासवनिरोहं
करेइ ॥

सू० ५१—करण-सत्येन भदन्त !
जीव किं जनयति ?

करण-सत्येन करण-शक्तिं जन-
यति । करण-सत्येन वर्तमानो जीवो
यथावादी तथाकारी चापि भवति ॥

सू० ५२—योग-सत्येन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

योग-सत्येन योगान् विशोधयति ॥

सू० ५३—मनो-गुप्ततया भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

मनो-गुप्ततया ऐकाग्र्यं जनयति ।
एकाग्र-चित्तो जीवो मनो-गुप्तः
सयमाराधको भवति ॥

सू० ५४—वाग्-गुप्ततया भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

वाग्-गुप्ततया निर्विकारं जनयति ।
निर्विकारो जीवो वाग्-गुप्तोऽव्यात्म-
योग-ध्यान-गुप्तश्चापि भवति ॥

सू० ५५—काय-गुप्ततया भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

काय-गुप्ततया सवरं जनयति ।
संवरेण काय-गुप्तः पुनः पापाश्रव-
निरोधं करोति ॥

सू० ५१—भन्ते ! करण-सत्य (कार्य
की सचाई) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

करण-सत्य से वह करण-शक्ति (अपूर्व
कार्य करने को सामर्थ्य) को प्राप्त होता है ।
करण-सत्य में वर्तमान जीव जैसा कहता है
वैसा करता है ।

सू० ५२—भन्ते ! योग-सत्य (मन,
वाणी और काया की सचाई) से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

योग-सत्य से वह मन, वाणी और काया
को प्रवृत्ति को विशुद्ध करता है ।

सू० ५३—भन्ते ! मनो-गुप्तता (कुशल
मन के प्रयोग) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

मनो-गुप्तता से वह एकाग्रता को प्राप्त
होता है । एकाग्र-चित्त वाला जीव अशुभ
सकल्पों से मन की रक्षा करने वाला और
सयम की आराधना करने वाला होता है ।

सू० ५४—भन्ते ! वाग्-गुप्तता (कुशल
वचन के प्रयोग) से जीव क्या प्राप्त
करता है ?

वाग्-गुप्तता से वह निर्विकार भाव को
प्राप्त होता है । निर्विकार जीवता सर्वथा वाग्-
गुप्त और अव्यात्म-योग के साधन-चित्त की
एकाग्रता आदि से युक्त हो जाता है ।

सू० ५५—भन्ते ! काय-गुप्तता (कुशल
काय के प्रयोग) से जीव क्या प्राप्त
करता है ?

काय-गुप्तता से वह सवर (शुभ प्रवृत्ति
के निरोध) को प्राप्त होता है । सवर के
द्वारा कायिक स्थिरता को प्राप्त करने वाला
जीव फिर पाप-कर्म के निरोध-हेतुओं
(आश्रवों) का निरोध करता है ।

१. निव्वियारत्त (अ, स) ।

२. साहणजुत्ते (उ, ऋ०, घृ०) ।

३. निव्वियारे ण जीवे वयगुत्तय जणयइ (घृ० पा०) ।

सू० ५९—नाणसंपन्नयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

नाणसंपन्नयाए णं जीवे सव्व-भावाहिगम जणयइ । नाणसंपन्ने णं जीवे चाउरन्ते संसारकन्तारे न विणस्सइ ।

जहा सूई ससुत्ता

पडिया वि न विणस्सइ ।

तहा जीवे ससुत्ते

ससारे न विणस्सइ ॥

नाणविणयतवचरित्तजोणे सं-पाउणइ ससमयपरसमय^१ सघाय-णिज्जे भवइ ॥

सू० ६०—दसणसंपन्नयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

दसणसंपन्नयाए णं भवमिच्छत्त-छेयण करेइ, पर न विज्झायइ^२ । 'अणुत्तरेण नाणदसणेण अप्पाण सजोएमाणे सम्म भावेमाणे विहरइ'^३ ॥

सू० ६१—चरित्तसंपन्नयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

चरित्तसंपन्नयाए णं सेलेसीभाव जणयइ । 'सेलेसि पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मसे खवेइ । तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ सव्वदुक्खाण-मन्त करेइ'^४ ॥

सू० ५९—ज्ञान-सम्पन्नतया भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

ज्ञान-सम्पन्नतया जीवः सर्व-भावाभिगम जनयति । ज्ञान-सम्पन्नो जीवश्चतुरन्ते संसार-कान्तारे न विनश्यति ।

यथा सूची ससूत्रा,

पतिताऽपि न विनश्यति । इन्ते

तथा जीवः ससूत्रः

ससारे न विनश्यति ॥

ज्ञान-विनय-तपश्चरित-योगान् सम्प्राप्नोति, स्वसमय-परसमय-संघातनीयो भवति ॥

सू० ६०—दर्शन-सम्पन्नतया भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

दर्शन-सम्पन्नतया भव-मिध्यात्व-छेदनं करोति । परं न विध्यायति अनुत्तरेण ज्ञान-दर्शनेनात्मानं संयोजयन् सम्यग् भावयन् विहरति ॥

सू० ६१—चरित्र-सम्पन्नतया भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

चरित्र-सम्पन्नतया शैलेशी-भाव जनयति । शैलेशी प्रतिपन्नश्च अनगारः चतुरः केवलि-कर्मा शान् क्षपयति । ततः पश्चात् सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते, परिनिर्वाति सर्वदुःखा-नामन्त करोति ॥

सू० ५९—भन्ते ! ज्ञान-सम्पन्नता (श्रुत ज्ञान की सम्पन्नता) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

ज्ञान-सम्पन्नता से वह सब पदार्थों को जान लेता है । ज्ञान-सम्पन्न जीव चार गति-रूप चार अन्तो वाली संसार-अटवी में विनष्ट नहीं होता ।

जिस प्रकार ससूत्र (धागे में पिरोई हुई) सुई गिरने पर भी गुम नहीं होती, उसी प्रकार ससूत्र (श्रुत सहित) जीव संसार में रहने पर भी विनष्ट नहीं होता ।

(ज्ञान-सम्पन्न) अवधि आदि विशिष्ट ज्ञान, विनय, तप और चरित्र के योगों को प्राप्त करता है तथा स्वसमय और परसमय की व्याख्या या तुलना के लिए प्रामाणिक पुरुष माना जाता है ।

सू० ६०—भन्ते ! दर्शन-सम्पन्नता (सम्यक्-दर्शन की सम्प्राप्ति) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

दर्शन-सम्पन्नता से वह संसार-पर्यटन के हेतु-भूत मिध्यात्व का उच्छेद करता है—आयिक सम्यक्-दर्शन को प्राप्त होता है । उससे आगे उसकी प्रकाश-शिक्षा बुझती नहीं । वह अनुत्तर ज्ञान और दर्शन के आत्मा से संयोजित करता हुआ, उन्हे सम्यक् प्रकार से आत्मसात् करता हुआ विहरण करता है ।

सू० ६१—भन्ते ! चरित्र-सम्पन्नता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

चरित्र-सम्पन्नता से वह शैलेशी-भाव को प्राप्त होता है । शैलेशी-दशा को प्राप्त करने वाला अनगार चार केवलि-सत्क कर्मों को क्षीण करता है । उसके पश्चात् वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है अर सब दुःखों को ओन्त करता है ।

१ 'समय विसारए य (अ) ।

२ विज्झाइ (ऋ०), वज्झाइ । पर आणाज्झायमाणे (अ) ।

३ अप्पाण सजोएमाणे सम्म भावेमाणे अणुत्तरेण नाणदसणेण विहरइ (अ), अनुत्तरेण नाणदसणेण विहरइ (वृ० पा०) ।

४. सेलेसी पडिवन्ने विहरइ (वृ०), सेलेसि पडिवन्ने अणगारे चत्तारि केवलिकम्मसे खवेति, ततो पच्छा सिज्झात ... (वृ० पा०) ।

सू० ६२—सोइन्द्रियनिगहेण
भन्ते। जीवे किं जणयइ ?

सोइन्द्रियनिगहेण मणुन्ता-
मणुन्नेसु सहेसु रागदोसनिगह
जणयइ तप्पच्चइय कम्म न वन्धइ
पुव्ववद्ध च निज्जरेइ ॥

सू० ६३—चक्खिन्द्रियनिगहेण
भन्ते। जीवे किं जणयइ ?

चक्खिन्द्रियनिगहेण मणुन्ता-
मणुन्नेसु रुवेसु^१ रागदोसनिगह
जणयइ तप्पच्चइय कम्म न वन्धइ
पुव्ववद्ध च निज्जरेइ ॥

सू० ६४—घाणिन्द्रियनिगहेण
भन्ते। जीवे किं जणयइ ?

घाणिन्द्रियनिगहेण मणुन्ता-
मणुन्नेसु गन्धेसु रागदोसनिगह
जणयइ तप्पच्चइय कम्म न वन्धइ
पुव्ववद्ध च निज्जरेइ ॥

सू० ६५—जिह्विन्द्रियनिगहेण
भन्ते। जीवे किं जणयइ ?

जिह्विन्द्रियनिगहेण मणुन्ता-
मणुन्नेसु रसेसु रागदोसनिगह
जणयइ तप्पच्चइय कम्म न वन्धइ
पुव्ववद्ध च निज्जरेइ ॥

सू० ६२—श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रहेण
भदन्त! जीवः किं जनयति ?

श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रहेण मनोज्ञामनोज्ञेषु
शब्देषु राग-दोष-निग्रह जनयति ।
तत्-प्रत्ययिक कर्म न वध्नाति । पूर्व-
वद्धं च निर्जरयति ॥

पठते

सू० ६३—चक्षुरिन्द्रिय-निग्रहेण
भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

चक्षुरिन्द्रिय-निग्रहेण मनोज्ञामनो-
ज्ञेषु रूपेषु राग-दोष-निग्रह जनयति ।
तत्-प्रत्ययिक कर्म न वध्नाति पूर्व-
वद्धं च निर्जरयति ॥

सू० ६४—घ्राणेन्द्रिय-निग्रहेण
भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

घ्राणेन्द्रिय-निग्रहेण मनोज्ञामनोज्ञेषु
गन्धेषु राग-दोष-निग्रह जनयति ।
तत्-प्रत्ययिक कर्म न वध्नाति । पूर्व-
वद्धं च निर्जरयति ॥

सू० ६५—जिह्वेन्द्रिय-निग्रहेण
भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

जिह्वेन्द्रिय-निग्रहेण मनोज्ञा-
मनोज्ञेषु रसेषु राग-दोष-निग्रह
जनयति । तत्-प्रत्ययिक कर्म न
वध्नाति । पूर्व-वद्धं च निर्जरयति ॥

सू० ६२—भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय का निग्रह
करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

श्रोत्रेन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और
अमनोज्ञ शब्दों में होने वाले राग और द्वेष का
निग्रह करता है । वह शब्द सम्बन्धी राग-द्वेष
के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-वद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू० ६३—भन्ते ! चक्षु-इन्द्रिय का निग्रह
करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

चक्षु-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और
अमनोज्ञ रूपों में होने वाले राग और द्वेष का
निग्रह करता है । वह रूप सम्बन्धी राग-द्वेष
के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-वद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू० ६४—भन्ते ! घ्राण-इन्द्रिय का निग्रह
करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

घ्राण-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और
अमनोज्ञ गन्धों में होने वाले राग और द्वेष का
निग्रह करता है । वह गन्ध सम्बन्धी राग-द्वेष
के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-वद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू० ६५—भन्ते ! जिह्वा-इन्द्रिय का
निग्रह करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

जिह्वा-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ
और अमनोज्ञ रसों में होने वाले राग और द्वेष
का निग्रह करता है । वह रस सम्बन्धी राग-
द्वेष के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-वद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०६६—फासिन्द्रियनिगहेण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

फासिन्द्रियनिगहेण मणुन्ता-
मणुन्तेसु फासेसु रागदोसनिगह
जणयइ तप्पच्चइय कम्म न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०६७—कोहविजएण भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

कोहविजएणं खन्ति जणयइ
कोहवेयणिज्ज कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०६८—माणविजएण भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

माणविजएण मह्वं जणयइ
माणवेयणिज्ज कम्म न बन्धइ पुव्व-
बद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०६९—मायाविजएण भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

मायाविजएण उज्जुभाव जणयइ
मायावेयणिज्ज कम्म न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०७०—लोभविजएण भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

लोभविजएण सतोसीभाव
जणयइ लोभवेयणिज्जं कम्म न
बन्धइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०६६—स्पर्शेन्द्रिय-निग्रहेण
भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

स्पर्शेन्द्रिय-निग्रहेण मनोज्ञा-
मनोज्ञेषु स्पर्शेषु राग-दोष-निग्रहं
जनयति । तत्-प्रत्ययिकं कर्म न
बध्नाति । पूर्व-बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०६७—क्रोध-विजयेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

क्रोध-विजयेन क्षान्तिं जनयति ।
क्रोध-वेदनीय कर्म न बध्नाति । पूर्व-
बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०६८—मान-विजयेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

मान-विजयेन मार्दवं जनयति ।
मान-वेदनीय कर्म न बध्नाति । पूर्व-
बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०६९—माया-विजयेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

माया-विजयेन ऋजुभावं जनयति ।
माया-वेदनीयं कर्म न बध्नाति । पूर्व-
बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०७०—लोभ-विजयेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?

लोभ-विजयेन सन्तोषीभावं
जनयति । लोभ-वेदनीयं कर्म न
बध्नाति । पूर्व-बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०६६—भन्ते ! स्पर्श-इन्द्रिय का निग्रह
करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

स्पर्श-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और
अमनोज्ञ स्पर्शों में होने वाले राग और द्वेष का
निग्रह करता है । वह स्पर्श सम्बन्धी राग-द्वेष
के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०६७—भन्ते ! क्रोध-विजय से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

क्रोध-विजय से वह क्षमा को उत्पन्न
करता है । वह क्रोध-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०६८—भन्ते ! मान-विजय से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

मान-विजय से वह मृदुता को उत्पन्न-
करता है । वह मान-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०६९—भन्ते ! माया-विजय से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

माया-विजय से वह ऋजुता को उत्पन्न
करता है । वह माया-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू० ७०—भन्ते ! लोभ-विजय से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

लोभ-विजय से वह सन्तोष को उत्पन्न
करता है । वह लोभ-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०७१—पेज्जदोसमिच्छा-
एण भन्ते! जीवे किं
जणयइ ?

सू०७१—प्रेयो-दोष-मिथ्यादर्शन-
विजयेन भदन्त ! जीवः किं जनयति ?

सू०७१—भन्ते ! प्रेम, द्वेष और मिथ्या-
दर्शन के विजय से जीव क्या प्राप्त करता है ?

पेज्जदोसमिच्छादसणविजएण
नाणदसणचरित्ताराहणयाए अब्भुट्ठेइ ।
'अट्ठविहस्स कम्मस्स कम्मगण्ठि-
विमोयणयाए'^१ तप्पढमयाए जहाणु-
पुब्बि अट्ठवीसइविह मोहणिज्ज
कम्म उग्घाएइ पचविह नाणा-
वरणिज्ज नवविह दसणावरणिज्ज^२
पचविह अन्तराय एए तिन्नि वि
कम्मसे जुगव खवेइ । तओ पच्छा
अणुत्तर अणत कसिण पडिपुण्ण
निरावरण वितिमिर विमुद्ध लोगा-
लोगप्पभावग^३ केवल-वरणाणदसण
समुप्पाडेइ । जाव सजोगी भवइ ताव
य इरियावहिय कम्म वन्धइ सुह-
फरिस दुसमयठिइय । त पढमसमए
वद्ध विइयसमए वेइय तट्ठयसमए
नज्जिण्ण^४ त वद्ध पुट्ट उदीरिय
वेइय निज्जिण्ण सेयाले य अकम्म
चावि भवइ ॥

प्रेयो-दोष-मिथ्यादर्शन-विजयेन
ज्ञान-दर्शन-चारित्र्याराधनाया अभ्यु-
त्तिष्ठते । अष्टविधस्य कर्मण कर्म-
गन्ध-विमोचनाय तत्प्रथमतया
यथानुपूर्वि अष्टाविंशतिविध मोहनीय
कर्मोद्घातयति । पचविध ज्ञाना-
वरणीयम् नवविध दर्शनावरणीय
पचविधमन्तराय एतान् त्रीनपि
कर्माज्ञान् युगपत् क्षपयति । तत्.
पश्चादनुत्तर अनन्त कृत्स्न प्रतिपूर्ण
निरावरणं वितिमिर विशुद्ध लोका-
लोक-प्रभावक केवलवरज्ञान-दर्शनं
समुत्पादयति । यावत्-सयोगी भवति
तावदेर्यापथिक कर्म वध्नाति सुख-
स्पर्शं द्विसमय-स्थितिकम् । तत् प्रथम-
समये वद्धं द्वितीय-समये वेदित तृतीय-
समये निर्जोर्णं तद् वद्ध स्पृष्टमुदीरितं
वेदित निर्जोर्णं एष्यत्काले चाकर्मचापि
भवति ॥

प्रेम, द्वेष और मिथ्या-दर्शन के विजय से
वह ज्ञान, दर्शन और चाग्रिय की आराधना के
लिए उद्यत होता है । आठ कर्मों में जो कर्म-
गन्ध (धात्य-कर्म) है, उसे खोलने के लिए
वह उद्यत होता है । वह जिसे पहले कभी भी
पूर्णतः क्षीण नहीं कर पाया उस अट्ठाईस
प्रकार वाले मोहनीय कर्म को क्रमशः सर्वथा
क्षीण करता है, फिर वह पाँच प्रकार वाले
ज्ञानावरणीय, नौ प्रकार वाले दर्शनावरणीय
और पाँच प्रकार वाले अन्तराय—इन तीनों
विद्यमान कर्मों को एक साथ क्षीण करता है ।
उसके पश्चात् वह अनुत्तर, अनन्त, कृत्स्न,
प्रतिपूर्ण, निरावरण, तिमिर रहित, विशुद्ध,
लोक और अलोक को प्रकाशित करने वाले
केवल ज्ञान और केवल दर्शन को उत्पन्न करता
है । जब तक वह सयोगी होता है तब तक
उसके ईर्या-पथिक-कर्म का बन्ध होता है । वह
बन्ध सुख-स्पर्श (पुण्य-मय) होता है । उसकी
स्थिति दो समय की होती है और तीसरे समय
में वह निर्जोर्ण हो जाता है । वह कर्म वद्ध
होता है, स्पृष्ट होता है, उदय में आता है,
भोगा जाता है, नष्ट हो जाता है और अन्त में
अकर्म भी हो जाता है ।

१ अट्ठविहकम्म विमोयणाए (४० पा०) ।

२. दसणावरण (३, ४०) ।

३. लोगालोगसभाव (४० पा०) ।

४. निज्जिण (अ) ।

सू० ७२—अहाउयं पालइत्ता अन्तोमुहुत्तद्वावसेसाउए^१ जोगनिरोहं करेमाणे सुहुमकिरिय अप्पडिवाइ सुक्कज्झाण भायमाणे तप्पढमयाए 'मणजोग निरुम्भइ २ ता वइजोगं निरुम्भइ २ ता आणापाणुनिरोह'^२ करेइ २ ता ईसि पचरहस्सक्ख-रुच्चारद्धाए य ण अणगारे समुच्छिन्न-किरिय अनियट्टिसुक्कज्झाण भियाय-माणे वेयणिज्जं आउय नाम गोत्त च एए चत्तारि वि^३ कम्मसे जुगवं^४ खवेइ ॥

सू० ७३—तओ ओरालिय-कम्माइं च सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहिता उज्जुसेट्ठिपत्ते अफुसमाण-गई उड्ढ एगसमएण अविग्गहेणं तत्थ गन्ता सागारोवउत्ते सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ सव्व-दुक्खाणमन्त करेइ^५ ॥

एस खलु सम्मत्तपरक्कमस्स अज्झयणस्स अट्ठे समणेण भगवया महावीरेण आघविए पन्तविए परुविए दसिए^६ उवदसिए ॥

—त्ति वेमि ।

सू० ७२—अथ आयुष्कं पालयित्वाऽ-न्तर्मुहूर्तध्वावशेषायुष्कः योग-निरोधं कुर्वाणः सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाति शुक्ल-ध्यान ध्यायन् तत्प्रथमतया मनो-योगं निरुणद्धि निरुध्य वाग्-योगं निरुणद्धि निरुध्य आनापान-निरोधं करोति कृत्वा ईषत् पंच ह्रस्वाक्षरोच्चारणाध्वनि च अनगारः समुच्छिन्नक्रियं अनिवृत्ति शुक्लध्यानं ध्यायन् वेदनीयमायुष्कं नाम गोत्रञ्चैतान् चतुरः कर्मांशान युगपत् क्षपयति ॥

सू० ७३—तत औदारिक-कार्मणे च सर्वाभिः विप्रहाणिभिः विप्रहाय ऋजु-श्रेणिप्राप्तो स्पृशद्-गतिरूर्ध्वं एक सम-येन अविग्रहेण तत्र गत्वा साकारोपयुक्तः सिध्यति बुध्यते मुच्यते परिनिर्वाति सर्वदुखानामन्तं करोति ॥

एष खलु सम्यक्त्वपराक्रमस्या-ध्ययनस्यार्थः श्रमणेन भगवता महावीरेणाख्यातः प्रज्ञापित प्ररूपितः दर्शितः उपदर्शितः ॥

—इति ब्रवीमि ।

सू० ७२—केवली होने के पश्चात् वह शेष आयुष्य का निर्वाह करता है। जब अन्तर-मुहूर्त परिमाण आयु शेष रहती है, तब वह योग-निरोध करने में प्रवृत्त होता है। उस समय सूक्ष्म-क्रिय अप्रतिपाति नामक शुक्ल ध्यान में लीन बना हुआ वह सबसे पहले मनो-योग का निरोध करता है। फिर वचन-योग का निरोध करता है, उसके पश्चात् आनापान (उच्छ्वासनिश्वास) का निरोध करता है। उसके पश्चात् स्वल्पकाल तक पाँच ह्रस्वाक्षरो अ इ उ ऋ लृ का उच्चारण किया जाए उतने काल तक समुच्छिन्न-क्रिय अनिवृत्ति नामक शुक्ल ध्यान में लीन बना हुआ अनगार वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र—इन चारों सत्कर्मों को एक साथ क्षीण करता है।

सू० ७३—उसके अनन्तर ही औदारिक और कार्मण शरीर को पूर्ण अनस्तित्व के रूप में छोड़ कर वह मोक्ष स्थान में पहुँच साकारोपयुक्त (ज्ञान प्रवृत्ति काल) में सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है और सब दुखों का अन्त करता है। सिद्ध होने से पूर्व वह ऋजुश्रेणी (आकाश-प्रदेशों की सीधी पक्ति) से गति करता है। उसकी गति ऊपर को होती है, आत्म-प्रदेश जितने ही आकाश-प्रदेशों का स्पर्श करने वाली होती है और एक समय की होती है—ऋजु होती है।

सम्यक्त्व-पराक्रम अध्ययन का यह पूर्वोक्त अर्थ श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा आख्यात, प्रज्ञापित, प्ररूपित, दर्शित और उपदर्शित है।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१ अन्तोमुहुत्तद्वावसेसाए (वृ० पा०), अन्तोमुहुत्तावसेसाउए (उ, ऋ०, वृ० पा०) ।

२ मणजोग निरुम्भइ वइजोग निरुम्भइ आणापाणुनिरोह करेइ (वृ०); मणजोग निरुम्भइ, वइजोग निरुम्भइ, आणापाण० (आ, इ) ।

३. × (उ, ऋ०) ।

४. × (उ, ऋ०) ।

५. (क) इह च चूर्णकृता—“सेलैसीए ण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ? अकम्मय जणति, अकम्मयाए जीवा सिज्झन्ति” इति पाठ, पूर्वत्र च क्वचित्किञ्चित्पाठभेदेनाल्पा एव प्रश्ना आश्रिता, अस्माभिस्तु भूयसीषु प्रतिषु यथाव्याख्यातपाठदर्शनादित्यमुन्नीतमिति (वृ० पा०) ।

(ख) सेलैसीएण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ? अकम्मय जणति अकम्मयाए जीवा सिज्झन्ति बुज्झन्ति मुच्चन्ति परिनिव्वायन्ति सव्वदुक्खाण अर्थं करेति (च०) ।

६. दसिए निदसिए (वृ०) ।

तीसहमं अज्झयणं :
तवमग्गगई

त्रिशम अध्ययन :
तपो-मार्ग-गति

आस्तुख

तपस्या मोक्ष का मार्ग है। उससे तपस्वी की मोक्ष की ओर गति होती है—यह इस अध्ययन का प्रतिपाद्य विषय है। इसलिए इस अध्ययन का नाम ‘तवमग्गई’—‘तपो-मार्ग-गति’ है।^१

प्रत्येक ससारी जीव प्रतिक्रिया कुछ-न-कुछ प्रवृत्ति अवश्य करता है। जब वह अक्रिय होता है तब वह मुक्त हो जाता है। जहाँ प्रवृत्ति है वहाँ कर्म-पुद्गलों का आवर्षण और निर्जरण होता है। प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है—शुभ और अशुभ। शुभ प्रवृत्ति से अशुभ कर्मों का निर्जरण और शुभ-कर्म (पुण्य) का बन्ध होता है। अशुभ प्रवृत्ति से अशुभ-कर्म (पाप) का बन्ध होता है।

तपस्या कर्म-निर्जरण का मुख्य साधन है। इससे आत्मा पवित्र होती है।

भारतीय साधना-पद्धति में तपस्या का प्रमुख स्थान रहा है। जैन और वैदिक मनीषियों ने उसे साधना का अपरिहार्य अंग माना है। बौद्ध तत्त्व-द्रष्टा उससे उदासीन ही रहे हैं।

महात्मा बुद्ध अपनी साधना के प्रथम चरण में उग्र तपस्वी थे। उन्होंने कई वर्षों तक कठोर तपस्या की थी, परन्तु जब उन्हें सफलता नहीं मिली तब उन्होंने उसे अपनी साधना में स्थान नहीं दिया।

जैन-साधना के अनुसार तपस्या का अर्थ काय-क्लेश या उपवास हो नहीं है। स्वाध्याय, ध्यान, विनय आदि सब तपस्या के विभाग हैं।

काय-क्लेश और उपवास अकरणीय नहीं हैं और उनकी सबके लिए कोई समान मर्यादा भी नहीं है। अपनी रुचि और शक्ति के अनुसार जो जितना कर सके उसके लिए उतना ही विहित है।

जैन-दृष्टि से तपस्या दो प्रकार की है—बाह्य और आभ्यन्तर।

बाह्य तप के छह प्रकार हैं—

- १—अनशन,
- २—अवमोदरिका,
- ३—भिक्षा-चर्या,
- ४—रस-परित्याग,
- ५—काय-क्लेश और
- ६—प्रतिसलीनता।

इनके आचरण से देहाध्यास छूट जाता है। देहासक्ति साधना का विघ्न है। इसीलिए मनीषियों ने देह के ममत्व-त्याग का उपदेश दिया है। शरीर धर्म-साधना का साधन है इसलिए उसकी नितान्त उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। देहासक्ति विलासिता और प्रमाद की जन्म देती है। परन्तु धर्म-साधना के लिए देह की सुरक्षा करना भी नितान्त अपेक्षित है। जैन मुनि का ‘वोसहचत्तदेहे’—यह विशेषण देहासक्ति के त्याग का परिचायक है।

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ५१३

दुविहृतवोमग्गई, वन्निज्जइ जम्ह इत्थ अज्झयणे।

तम्हा पुअज्झयण, तवमग्गइत्ति नाथव्व ॥

- १-२—अनशन और अवमोदरिका से भूख और प्यास पर विजय पाने की ओर गति होती है ।
 ३-४—मिक्षा-चर्या और रस-परित्याग से आहार की लालसा सीमित होती है । जिह्वा की लोलुपता मिटती है और निद्रा, प्रमाद, उन्माद आदि को प्रोत्साहन नहीं मिलता ।
 ५—काय-वर्णन से सहिष्णुता का विकास होता है । देह में उत्पन्न दुःखों को समभाव से सहने की वृत्ति बनती है ।
 ६—प्रतिसत्कीर्णता से आत्मा की सन्निधि में रहने का अभ्यास बढ़ता है ।
 आभ्यन्तर तप के छह भेद हैं—

- १—प्रायश्चित्त,
- २—विनय,
- ३—वैयावृत्य,
- ४—स्वाध्याय,
- ५—ध्यान और
- ६—व्युत्सर्ग ।

- १—प्रायश्चित्त से अतिचार-भीरुता और साधना के प्रति जागरूकता विकसित होती है ।
 २—विनय से अभिमान-मुक्ति और परस्परपद्म का विकास होता है ।
 ३—वैयावृत्य से सेवाभाव पनपता है ।
 ४—स्वाध्याय से विकृता त्यक्त हो जाती है ।
 ५—ध्यान से एकाग्रता, एकाग्रता से मानसिक विकास एवं मन तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण पाने की क्षमता बढ़ती है और अन्त में उनका पूर्ण निरोध हो जाता है ।
 ६—व्युत्सर्ग से शरीर, उपकरण आदि पर होने वाले ममत्व का विसर्जन होता है ।

अथवा तप दो प्रकार का है—सकाम और अकाम । एकमात्र मोक्ष-साधना की दृष्टि से किया जाने वाला तप सकाम होता है । और इसके अतिरिक्त अन्यान्य उपलब्धियों के लिए किया जाने वाला अकाम । जैन साधना-पद्धति में सकाम तप को उपादेयता है और उसे ही पूर्ण पवित्र माना गया है ।

तप के तीन प्रकार भी किए गए हैं—कायिक, वाचिक और मानसिक । शौच, आर्जव, ब्रह्मचर्य आदि का पालन करना कायिक तप है । प्रिय, हितकर, सत्य और अनुद्विग्न वचन बोलना, स्वाध्याय में रत रहना वाचिक तप है । आत्म-निग्रह, मौन-भाव, सौम्यता आदि मानसिक तप है ।

शिष्य ने पूछा—“भन्ते । तप से जीव क्या प्राप्त करता है ?”

भगवान् ने कहा—“तप से वह पूर्व-संचित कर्मों का क्षय कर विशुद्धि को प्राप्त होता है । इस विशुद्धि से वह मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति के पूर्ण निरोध को प्राप्त होता है । अक्रियावान् होकर वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है और दुःखों का अन्त करता है ।”^१

भगवान् ने कहा—“इहलोक के निमित्त तप मत करो । परलोक के लिए तप मत करो । इलाघा-प्रशंसा के लिए तप मत करो । केवल निर्जरा के लिए—आत्म-विशुद्धि के लिए तप करो ।”^२

तपस्या के अवान्तर भेदों का निरूपण आगमों तथा ठ्याख्या-ग्रन्थों में प्रचुरता से हुआ है ।

१—उत्तराध्ययन, २६।सू०२७, २८ ।

२—दशवैकालिक, ६।४ । सू० ६ ।

तीसइमं अज्झयणं : त्रिंशु अध्ययन तवमग्गई : तपो-मार्ग-गति

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—जहा उ पावग कम्म रागदोससमज्जिय । खवेइ तवसा भिक्खू तमेग्गमणो सुण ॥	यथा तु पापक कर्म राग-दोष-समर्जितम् । क्षपयति तपसा भिक्षु तमेकाग्र-मना शृणु ॥	१—राग-द्वेष में अर्जित पाप-कर्म को भिक्षु तपस्या से जिस प्रकार क्षीण करता है, उसे एकाग्र-मन होकर सुन ।
२—पाणवहमुसावाया' अदत्तमेहुणपरिग्गहा विरओ । राईभोयणविरओ जीवो भवइ अणासवो ॥	प्राणवध-मृषावादा- ऽदत्त-मैथुन-परिग्रहेभ्यो विरतः । रात्रिभोजन-विरतो जीवो भवति अनाश्रवः ॥	२—प्राण-वध, मृषावाद, अदत्त-ग्रहण, मैथुन, परिग्रह और रात्रि-भोजन में विरत जीव अनाश्रव होता है ।
३—पचसमिओ तिगुत्तो अकसाओ जिइन्दिओ । अगारवो य निस्सल्लो जीवो होइ अणासवो ॥	पच-समितस्त्रि-गुप्तः अकषायो जितेन्द्रिय । अगौरवश्च निःशल्पः जीवो भवत्यनाश्रवः ॥	३—पाँच समितियों से समित, तीन गुप्तियों से गुप्त, अकषाय, जितेन्द्रिय, अगौरव (गर्व रहित) और निःशल्य जीव अनाश्रव होता है ।
४—एएसि तु विवच्चासे' रागदोससमज्जिय । 'जहा खवयइ भिक्खू' 'त मे एग्गमणो' ^४ सुण ॥	एतेषां तु विव्यत्यासे राग-दोष-समर्जितम् । यथा क्षपयति भिक्षुः तन्मे एक-मनाः शृणु ॥	४—इनसे विपरीत आचरण में राग-द्वेष में जो कर्म उपार्जित होता है, उसे भिक्षु जिस प्रकार क्षीण करता है, उसे एकाग्र-मन होकर सुन ।
५—जहा महातलायस्स सन्निरुद्धे जलागमे । उस्सिचणाए तवणाए कमेण सोसणा भवे ॥	यथा महातडागस्य सन्निरुद्धे जलागमे । उत्सेवनेन तपनेन क्रमेण शोषणं भवेत् ॥	५—जिस प्रकार कोई बड़ा तालाव जल आने के मार्ग का निरोध करने से, जल को उलीचने से, सूर्य के ताप से क्रमशः सूख जाता है—

१ पाणिवह मुसावाए (उ, ऋ०) ।

२ विवच्चासे (वृ०) ।

३. खवेइ अ जहा कम्म (उ, ऋ०), खवेइ त जहा भिक्खू (वृ०) ।

४. त मे एग्गमणा (स), तमेग्गमणो (छ०) ।

६—‘एव तु’^१ सजयस्सावि
पावकम्मनिरासवे ।
भवकोडीसचिय कम्मं
तवसा निज्जरिज्जइ ॥

एवं तु संयतस्यापि
पापकर्म-निराश्रवे ।
भव-कोटी-सञ्चितं कर्म
तपसा निर्जोयते ॥

६—उसी प्रकार सयमी पुरुष के पाप-
कर्म आने के मार्ग का निरोध होने से करोड़ों
भवों के सचित कर्म तपस्या के द्वारा निर्जोर्ण
हो जाते हैं ।

७—सो तवो दुविहो वुत्तो
बाहिरम्भन्तरो तथा ।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो
एवमम्भन्तरो तवो ॥

तत्तपो द्विविधमुक्त
बाह्यमाभ्यन्तर तथा ।
बाह्यं षड्विधमुक्तं
एवमाभ्यन्तरं तपः ॥

७—वह तप दो प्रकार का कहा है—
(१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर ।
बाह्य तप छह प्रकार का है, उसी प्रकार
आभ्यन्तर तप भी छह प्रकार का है ।

८—अणसणमूणोयरिया
भिक्षायरिया य रसपरिच्चाओ ।
कायकिलेसो सलीणया य
बज्झो तवो होइ ॥

अनशनमूनोदरिका
भिक्षा-चर्या च रस-परित्यागः ।
काय-क्लेशः सलीनता
च बाह्यं तपो भवति ॥

८—(१) अनशन, (२) ऊनोदरिका,
(३) भिक्षा-चर्या, (४) रस-परित्याग, (५)
काय-क्लेश और (६) सलीनता—यह बाह्य
तप है ।

९—इत्तिरिया मरणकाले^२
‘दुविहा अणसणा’^३ भवे ।
इत्तिरिया सावकंखा
निरवकखा^४ बिइज्जिया ॥

इत्वरकं मरण-कालं
अनशनं द्विविधं भवेत् ।
इत्वरक सावकाङ्क्षं
निरवकाङ्क्षं द्वितीयम् ॥

९—अनशन दो प्रकार का होता है—
(१) इत्वरिक, (२) मरण-काल । इत्वरिक
सावकाक्ष (अनशन के पश्चात् भोजन की
इच्छा से युक्त) और दूसरा निरवकाक्ष (भोजन
की इच्छा से मुक्त) होता है ।

१०—जो सो इत्तरियतवो
सो समासेण छव्विहो ।
सेढितवो पयरतवो
घणो य ‘तह होइ वग्गो य’^५ ॥

यत्त इत्वरिक तपः
तत्समासेन षड्विधम् ।
श्रेणि-तपः प्रतर-तपः
घनश्च तथा भवति वर्गश्च ॥

१०—जो इत्वरिक तप है, वह सक्षेप में
छह प्रकार का है—(१) श्रेणि-तप, (२) प्रतर-
तप, (३) घन तप, (४) वर्ग-तप,

११—तत्तो य वग्गवग्गो उ
पचमो छट्ठओ पइण्णतवो ।
मणइच्छियचित्तत्थो
नायव्वो होइ इत्तरिओ ॥

ततश्च वर्गवर्गस्तु
पंचम षष्ठक प्रकीर्णतपः ।
मनईण्णित्तचित्रार्थं
ज्ञातव्यं भवति इत्वरकम् ॥

११—(५) वर्ग-वर्ग-तप, (६) प्रकीर्ण-
तप ।

इत्वरिक तप नाना प्रकार के मनो-
वाञ्छित फल देने वाला होता है ।

१. एमेव (अ) ।

२. ° काला य (उ, ऋ०) ।

३. अणसणा दुविहा (उ, ऋ०, वृ०) ।

४. निरकखा उ (वृ०), निरवकखा उ (झ०), निरवकखा (वृ० पा०) ।

५. वग्गो चरत्थो उ (अ) ।

१२—जा सा अणसणा मरणे
दुविहा सा वियाहिया ।
सवियारअवियारा^१
कायचिट्ठ पई भवे ॥

यत्तदनशन मरणे
द्विविधं तद्व्याख्यातम् ।
सविचारमविचार
काय-चेष्टां प्रति भवेत् ॥

१२—मरण-काल अनशन के काय-चेष्टा के आधार पर सविचार और अविचार—ये दो भेद होते हैं ।

१३—अहवा 'सपरिकम्मा
अपरिकम्मा'^२ य आहिया ।
नीहारिमणीहारी
आहारच्छेदो य दोसु वि ॥

अथवा सपरिकर्म
अपरिकर्म व्याख्यातम् ।
निर्हारि अनिर्हारि
आहारच्छेदश्च द्वयोरपि ॥

१३—अथवा इसके दो भेद ये होते हैं—
(१) सपरिकर्म और (२) अपरिकर्म ।

१४—ओमोयरिय^३ पचहा
समासेण वियाहियं ।
दव्वओ खेत्तकालेण^४
भावेण^५ पज्जवेहि य ॥

अवमौदर्य^३ पंचधा
समासेन व्याख्यातम् ।
द्रव्यतः क्षेत्र-कालेन
भावेन पर्यवैश्च ॥

१४—अविचार अनशन के (१) निर्हारी और (२) अनिर्हारी—ये दो भेद होते हैं । आहार का त्याग दोनों (सविचार और अविचार तथा सपरिकर्म और अपरिकर्म) में होता है ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और पर्यायों की दृष्टि से अवमौदर्य (ऊनोदरिका) सक्षेप में पाँच प्रकार का है ।

१५—जो जस्स उ आहारो
ततो ओम^६ तु जो करे ।
जहन्नेणेगसित्थाई
एव दव्वेण ऊ भवे ॥

यो यस्य त्वाहारः
ततोऽवमं तु य कुर्यात् ।
जघन्येनैकसिक्खादि
एवं द्रव्येण तु भवेत् ॥

१५—जिसका जितना आहार है उससे कम खाता है, कम से कम एक सिक्ख (धान्य कण) खाता है और उत्कृष्टतः एक कवल कम खाता है, वह द्रव्य से अवमौदर्य तप होता है ।

१६—ग्रामे नगरे तह रायहाणि-
निगमे य आगरे पल्ली ।
खेडे कव्वडदोणमुह-
पट्टणमडम्बसंवाहे ॥

ग्रामे नगरे तथा राजधानीं
निगमे चाऽऽकरे पल्ल्याम् ।
खेटे कर्वट-द्रोणमुख-
पत्तन-मडम्ब-सम्बाधे ॥

१६—ग्राम, नगर, राजधानी, निगम, आकर, पल्ली, खेडा, कर्वट, द्रोणमुख, पत्तन, मण्डप, सबाध,

१. सवियारमवियारा (उ, ऋ०, वृ०, छ०) ।
२. सपडिकम्मा अपडिकम्मा (अ) ।
३. ओमोयरिय (अ, वृ०पा०, ऋ०) ।
४. खित्तओ काले (ऋ०), खेत्त काले य (अ) ।
५. भावओ (अ) ।
६. ऊण (अ) ।

१७—आसमपए विहारे
सन्निवेशे समाजघोसे य ।
थलिसेणाखन्धारे
सत्ये सवट्टकोट्टे य ॥

आश्रम-पदे विहारे
सन्निवेशे समाज-घोषे च ।
स्थली-सेना-स्कन्धावारे
सार्थसंवर्त-कोट्टे च ॥

१७—आश्रम-पद, विहार, सन्निवेश,
समाज, घोष, स्थली, सेना का शिविर, सार्थ,
सवर्त, कोट,

१८—वाडेसु व रच्छासु व
घरेसु वा एवमित्थिं खेत्त ।
कप्पइ उ एवमाई
एव खेत्तेण ऊ भवे ॥

वाटेषु वा रक्ष्यासु वा
गृहेषु वैवमेतावत् क्षेत्रम् ।
कल्पते त्वेवमादि
एव क्षेत्रेण तु भवेत् ॥

१८—पाडा, गलियाँ, घर—इनमें अथवा
इस प्रकार के अन्य क्षेत्रों में से पूर्व निश्चय के
अनुसार निर्धारित क्षेत्र में भिक्षा के लिए जा
सकता है । इस प्रकार यह क्षेत्र से अवमौदर्य
तप होता है ।

१९—पेडा य अद्धपेडा
गोमुत्तिपयगवीहिया चेव ।
सम्बुक्कावट्टाऽऽययगन्तुं
पच्चागया छट्ठा ॥

पेटा चार्ध-पेटा
गोमूत्रिका पतंग-वीथिका चैव ।
शम्बूकावर्ता
आयतं-गत्वा-प्रत्यागता षष्ठी ॥

१९—(प्रकारान्तर से) पेटा, अर्द्ध-पेटा,
गोमूत्रिका, पतंग-वीथिका, शम्बूकावर्ता और
आयत-गत्वा-प्रत्यागता—यह छह प्रकार का
क्षेत्र से अवमौदर्य तप होता है ।

२०—दिवसस्स पोरुसीणं
चउण्ह पि उ जत्तिओ भवे कालो ।
एव चरमाणो खलु
कालोमाण मुणेयव्वो^१ ॥

दिवसस्य पौरुषीणां
चतसृणामपि तु यावान् भवेत् कालः ।
एवं चरतः खलु
कालावमानं ज्ञातव्यम् ॥

२०—दिवस के चार प्रहरों में जितना
अभिग्रह-काल हो उसमें भिक्षा के लिए
जाऊँगा, अन्यथा नहीं—इस प्रकार चर्चा करने
वाले मुनि के काल से अवमौदर्य तप होता है ।

२१—अहवा तइयाए पोरिसीए
ऊणाइ वासमेसन्तो ।
चउभागूणाए वा
एवं कालेण ऊ भवे ॥

अथवा तृतीयायां पौरुष्यां
ऊनायां प्रासमेवयन् ।
चतुर्भागोनायां वा
एवं कालेन तु भवेत् ॥

२१—अथवा कुछ न्यून तीसरे प्रहर
(चतुर्थ भाग आदि न्यून प्रहर) में जो भिक्षा
की एषणा करता है, उसे (इस प्रकार) काल से
अवमौदर्य तप होता है ।

२२—इत्थो वा पुरिसो वा
अलकिओ वाऽणलंकिओ वा वि ।
अन्तयरवयत्थो वा
अन्तयेरेण व वत्थेणं ॥

स्त्री वा पुरुषो वा
अलङ्कृतो वाऽनलङ्कृतो वापि ।
अन्धतर-वयस्स्थो वा
अन्धतरेण वा वस्त्रेण ॥

२२—स्त्री अथवा पुरुष, अलङ्कृत अथवा
अनलङ्कृत, अमृक वय वाले, अमृक वस्त्र वाले—

२३—अन्तेण विसेसेण
वण्णेणं भावमणुमुयन्ते उ ।
एव चरमाणो खलु
भावोमाणं मुणेयव्वो^१ ॥

अन्येन विशेषेण
वर्णेन भावमनुमुंचन् तु ।
एवं चरतः खलु
भाववमानं ज्ञातव्यम् ॥

२३—अमुक विशेष प्रकार की दशा वर्ण या भाव से युक्त दाता से भिक्षा ग्रहण करेगा , अन्यथा नहीं—इस प्रकार चर्या करने वाले मुनि के भाव से अवमोदर्य तप होता है ।

२४—द्वे खेत्ते काले
भावम्मि य आहिया उ जेभावा ।
एएहि ओमचरओ
पज्जवचरओ भवे भिक्खू ॥

द्रव्ये क्षेत्रे काले
भावे चाख्यातास्तु ये भावाः ।
एतैरवमचरकः
पर्यवचरको भवेद् भिक्षुः ॥

२४—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में जो पर्याय (भाव) कहे गए हैं, उन सबके द्वारा अवमोदर्य करने वाला भिक्षु पर्यवचरक होता है ।

२५—अट्टविहगोयरग्ग तु
तहा सत्तेव एसणा ।
अभिग्गहा य जे अन्ते
भिक्खायरियमाहिया ॥

अष्टविधाग्रगोचरस्तु
तथा सप्तवैषणा ।
अभिग्रहाश्च ये अन्ये
भिक्षा-चर्या आख्याता ॥

२५—आठ प्रकार के गोचराग्र तथा सात प्रकार की एषणाएँ और जो अन्य अभिग्रह हैं, उन्हें भिक्षा-चर्या कहा जाता है ।

२६—खीरदहिसप्पिमाई
पणीय पाणभोयण ।
परिवज्जण रसाण तु
भणिय रसविवज्जण ॥

क्षीर-दधि-सर्पिरादि
प्रणीतं पान-भोजनं ।
परिवर्जनं रसाना तु
भणितं रस-विवर्जनम् ॥

२६—दूध, दही, घृत आदि तथा प्रणीत पान-भोजन और रसों के वर्जन को रस-विवर्जन तप कहा जाता है ।

२७—ठाणा वीरासणाईया
जीवस्स उ सुहावहा ।
उग्गा जहा धरिज्जन्ति
कायकिलेस तमाहिय ॥

स्थानानि वीरासनादिकानि
जीवस्य तु सुखावहानि ।
उग्राणि यथा धार्यन्ते
काय-क्लेशः स आख्यातः ॥

२७—आत्मा के लिए सुखकर वीरासन आदि उत्कट आसनों का जो अभ्यास किया जाता है, उसे कायक्लेश कहा जाता है ।

२८—एगन्तमणावाए
इत्थोपसुविवज्जिए ।
सयणासणसेवणया
विवित्तसयणासण ॥

एकान्तेऽनापाते
स्त्री-पशु-विवर्जिते ।
शयनासन-सेवन
विविक्त-शयनासनम् ॥

२८—एकान्त, अनापात (जहाँ कोई आता-जाता न हो) और स्त्री-पशु आदि से रहित शयन और आसन का सेवन करना विविक्त-शयनासन (सलीनता) तप है ।

२९—एसो बहिरगतवो
समासेण वियाहिओ ।
अब्भित्तर 'तवं एत्तो'^१
वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥

एतद्ब्राह्मणं तपः
समासेन व्याख्यातम् ।
आभ्यन्तर तप इतो
वक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥

२९—यह बाह्य तप सक्षेप में कहा गया है । अब मैं अनुक्रम से आभ्यन्तर तप को कहूँगा ।

३०—पायच्छित्त विणओ
वेयावच्च तहेव सज्झाओ ।
'क्काणं च विउस्सग्गो'^२
'एसो अब्भित्तरो तवो'^३ ॥

प्रायश्चित्त विनयः
वैयावृत्यं तथैव स्वाध्यायः ।
ध्यान च व्युत्सर्गः
एतदाभ्यन्तरं तपः ॥

३०—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग—यह आभ्यन्तर तप है ।

३१—आलोयणारिहाईय
पायच्छित्त तु दसविह ।
जे भिक्खू वहई सम्म
पायच्छित्त तमाहिय ॥

आलोचनार्हादिक
प्रायश्चित्त तु दशविधम् ।
यद् भिक्षुर्वहति सम्यक्
प्रायश्चित्त तदाख्यातम् ॥

३१—आलोचनार्ह आदि जो दस प्रकार का प्रायश्चित्त है, जिसका भिक्षु सम्यक् प्रकार से पालन करता है, उसे प्रायश्चित्त कहा जाता है ।

३२—अब्भुट्ठाणं अजलिकरणं
तहेवासणदायण ।
गुरुभक्तिभावसुस्सूसा
विणओ एस वियाहिओ ॥

अभ्युत्थानमल्लि-करणं
तथैव आसन-दानम् ।
गुरु-भक्तिः भाव-शुश्रूषा
विनय एष व्याख्यातः ॥

३२—अभ्युत्थान (खड़े होना), हाथ जोड़ना, आसन देना, गुरुजनो की भक्ति करना, और भावपूर्वक शुश्रूषा करना विनय कहलाता है ।

३३—आयरियमाइयम्मि^४ य
वेयावच्चम्मि दसविहे ।
आसेवण जहाथाम
वेयावच्च तमाहियं ॥

आचार्यादिके च
वैयावृत्ये दशविधे ।
आसेवनं यथास्थाम
वैयावृत्य तदाख्यातम् ॥

३३—आचार्य आदि सम्बन्धी दस प्रकार के वैयावृत्य का यथाशक्ति आसेवन करने को वैयावृत्य कहा जाता है ।

३४—वायणा पुच्छणा चैव
तहेव परियट्ठणा ।
अणुप्पेहा धम्मकहा
सज्झाओ पचहा भवे ॥

वाचना प्रच्छन्ना चैव
तथैव परिवर्तना ।
अनुप्रेक्षा धर्म-कथा
स्वाध्याय पठनञ्च भवेत् ॥

३४—स्वाध्याय पाँच प्रकार का होता है—

- (१) वाचना (अध्यापन)
- (२) पृच्छना
- (३) परिवर्तना (पुनरावृत्ति)
- (४) अनुप्रेक्षा (अर्थ-चिन्तन) और (५) धर्म-कथा ।

१ तवो इत्तो (उ, ऋ०) ।

२. क्काण उस्सग्गो वि य (उ, ऋ०, स) ।

३. अब्भित्तरो तवो होइ (उ, ऋ०, स) ।

४. आयरिमाईए (उ, ऋ०) ।

३५—अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता
भाएज्जा सुसमाहिए ।
धम्मसुक्काइं भाणाइं
भाण तं तु बुहा वए ॥

आत्त-रौद्रे वर्जयित्वा
ध्यायेत् सुसमाहितः ।
धर्म-शुक्ले ध्याने
ध्यान तत्तु बुधा वदन्ति ॥

३५—मुसमाहित मुनि आर्त और रोद्र
व्यान को छोड़ कर धर्म और शुक्ल ध्यान का
अभ्यास करे । बुध-जन उसे ध्यान कहते हैं ।

३६—सयणासणठाणे वा
जे उ भिक्खू न वावरे ।
कायस्स विउस्सग्गो
छट्ठो सो परिकित्तिओ ॥

शयनासन-स्थाने वा
यस्तु भिक्षुर्न व्याप्रियते ।
कायस्य व्युत्सर्गः
षष्ठः स परिकीर्तितः ॥

३६—सोने, बैठने या खड़े रहने के समय
जो भिक्षु व्यापृत नहीं होता (काया को नहीं
हिलाता-डुलाता) उसके काया की चेष्टा का
जो परित्याग होता है, उसे व्युत्सर्ग कहा जाता
है । वह आभ्यन्तर तप का छठा प्रकार है ।

३७—एय तव तु दुविहं
जे सम्म आयरे मुणो ।
'से खिप्प सव्वसंसारा
विप्पमुच्चइ पण्डिए' ॥
—त्ति वेमि ।

एवं तपस्तु द्विविध
यत्सम्यगाचरेन्मुनिः ।]
स क्षिप्रं सर्व-ससारात्
विप्रमुच्यते पण्डितः ॥
—इति ब्रवीमि ।

३७—इस प्रकार जो पण्डित मुनि दोनों
प्रकार के तपों का सम्यक् रूप से आचरण
करता है, वह क्षीघ्र ही समस्त ससार से मुक्त
हो जाता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

एगतीसडमं अज्झयणं :
चरणविही

एकत्रिंश अध्ययन :
चरण-विधि

आस्तुख

इस अध्ययन में मुनि की चरण-विधि का निरूपण हुआ है, इसलिए इसका नाम 'चरणविही' — 'चरण-विधि' है। चरण का प्रारम्भ यतना से होता है और उसका अन्त पूर्ण निवृत्ति (अक्रिया) में होता है। निवृत्ति के इस उत्कर्ष को प्राप्त करने के लिए जो मध्यवर्ती साधना की जाती है, वह चरण है। मोक्ष प्राप्ति की चार साधनाओं में यह तीसरी साधना है।^१

प्रवृत्ति और निवृत्ति—ये दोनों साधना के अंग हैं। मन, वचन और काया को गुप्ति का अर्थ है निवृत्ति। मन, वचन और काया के सम्यक् प्रयोग का अर्थ है प्रवृत्ति। चौबीसवें अध्ययन (श्लोक ३६) में बताया गया है कि समितियों से चरण का प्रवर्तन होता है और गुप्तियों से अशुभ-अर्थों का निवर्तन होता है—

एयाओ पच समिईओ, चरणस्स य पवत्तणे।

गुत्ती नियत्तणे वुत्ता, असुमत्थेसु सव्वसो ॥

प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों सापेक्ष शब्द हैं। निवृत्ति का अर्थ पूर्ण निषेध नहीं है और प्रवृत्ति का अर्थ पूर्ण विधि नहीं है। प्रत्येक निवृत्ति में प्रवृत्ति और प्रत्येक प्रवृत्ति में निवृत्ति रहती है। इसके अनुसार निवृत्ति का अर्थ होता है—एक कार्य का निषेध और दूसरे कार्य की विधि तथा प्रवृत्ति का अर्थ होता है—एक कार्य की विधि और दूसरे कार्य का निषेध। इसी तथ्य को प्रस्तुत अध्ययन के दूसरे श्लोक में प्रतिपादित किया गया है—

एगओ विरइं कुब्जा, एगओ य पवत्तण।

असंजमे नियत्तिं च, सजमे य पवत्तणं ॥

इससे एक यह तथ्य निष्पन्न होता है कि प्रत्येक प्रवृत्ति सम्यक् नहीं होती। किन्तु निवृत्ति में से जो प्रवृत्ति फलित होती है, वही सम्यक् होती है। उसी का नाम चरण-विधि है। इसे साधना-पद्धति भी कहा जा सकता है।

भगवान् महावीर की चरण-विधि का प्रारम्भ संयम से होता है। उसका आचरण करते हुए जिन विषयों को स्वीकार या अस्वीकार करना चाहिए, उन्हीं का इस अध्ययन में साकेतिक उल्लेख है। किन्तु कुछ विषय ऐसे भी हैं, जिनका संयम-पालन से सम्बन्ध नहीं किन्तु वे ज्ञेयमात्र हैं। जैसे—परमाधार्मिकों के पन्द्रह प्रकार (श्लोक १३) तथा देवताओं के चौबीस प्रकार (श्लोक १६)।

ग्यारह उपासक-प्रतिमाओं का भी मुनि के चरण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। सम्भव है सख्या-पूति की दृष्टि से इन्हें सम्मिलित किया गया हो।

छेद-सूत्रों की रचना श्रुत-केवली भद्रबाहु ने की। उनका सत्रहवें और अठारहवें श्लोक में नामोल्लेख हुआ है। इससे दो सम्भावनाओं की ओर ध्यान जाता है—

१—उत्तराध्ययन की रचना छेद-सूत्रों की रचना के पश्चात् हुई है।

२—उत्तराध्ययन की रचना एक साथ नहीं हुई है।

दूसरा विकल्प ही अधिक सम्भव है।

इस अध्ययन के आदि के दो श्लोकों तथा अन्त के एक श्लोक को छोड़ कर शेष १८ श्लोकों में “जे भिक्खू चयङ्ग निच्च, से न अच्छङ्ग मण्डले” —ये दो चरण समान हैं। इनके अध्ययन से भिक्षु के स्वरूप का सहज ज्ञान हो जाता है। साथ-साथ ससार-मुक्ति के साधनों का भी ज्ञान होता है।

इस अध्ययन में एक से तेईस तक की संख्या में अनेक विषयों का ग्रहण हुआ है। उनमें से कुछ शब्दों का विस्तार अन्य अध्ययनों में प्राप्त होता है। जैसे—कषाय का ३६।६७-७० में, ध्यान का ३०।३५ में, व्रत का २१।१२ में, इन्द्रिय-अर्थ का ३२।३३, ३६, ४६, ६२, ७५ में, समिति का २४।२ में, लेइया का ३४।३ में, छह जीवनिक्काय का ३६।६६, १०७ में, आहार के छह कारण का ३६।३२-३४ में और ब्रह्मचर्य गुप्ति का १६ में।

इसे पन्द्रहवें अध्ययन ‘समिक्खु’ का परिशेष भी माना जा सकता है। समवायाग (३३) तथा आवश्यक (४) में भी इस अध्ययन में वर्णित विषयों का उल्लेख हुआ है।

सातवें श्लोक से २१ वें श्लोक तक ‘यतते’ का प्रयोग हुआ है। इसका सामान्य अर्थ ‘यत्न करता है’ होता है। प्रसंगानुसार यत्न का अर्थ है—पालनीय का पालन, परिहरणीय का परिहार, ज्ञेय का ज्ञान और उपदेष्टव्य का उपदेश।

सगतीसहस्रं अज्ज्ञयणः एकत्रिंश अध्ययन

चरणविही : चरण-विधिः

मूल
१—चरणविहिं पवक्खामि
जीवस्स उ सुहावह ।
ज चरित्ता वहू जीवा
तिण्णा ससारसागर ॥

संस्कृत छाया
चरण-विधिं प्रवक्ष्यामि
जीवस्य तु सुखावहम् ।
यं चरित्वा बहवो जीवा
तीर्णाः ससार-सागरम् ॥

हिन्दी अनुवाद
१—अब मैं जीव को मुख देने वाली उस
चरण-विधि का कथन कहूँगा जिसका आचरण
कर बहुत में जीव समार-सागर को तर गए ।

२—एगओ विरड कुज्जा
एगओ य पवत्तण ।
असजमे नियत्ति च
सजमे य पवत्तण ॥

एकतो विरतिं कुर्यात्
एकतश्च प्रवर्तनम् ।
असयमान्निवृत्तिं च
संयमे च प्रवर्तनम् ॥

२—भिक्षु एक म्यान से निवृत्ति करे
और एक स्थान में प्रवृत्ति करे । असयम से
निवृत्ति करे और संयम में प्रवृत्ति करे ।

३—रागदोसे य दो पावे
पावकम्मपवत्तणे ।
जे भिक्खू रुम्भई निच्च
से न अच्छइ^१ मण्डले ॥

राग-दोषौ च द्वौ पापौ
पाप-कर्म-प्रवर्तकौ ।
यो भिक्षुः रुणद्धि नित्यं
सन आस्ते मण्डले ॥

३—राग और द्वेष—ये दो पाप पाप-कर्म
के प्रवर्तक हैं । जो भिक्षु इनका सदा निरोध
करता है, वह मसार में नहीं रहता ।

४—दण्डाण गारवाण च
सल्लाण च तिय तिय ।
जे भिक्खू चयई निच्च
से न अच्छइ^२ मण्डले ॥

दण्डानां गौरवाणां च
शल्ल्यानां च त्रिक त्रिकम् ।
यो भिक्षुस्त्यजति नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

४—जो भिक्षु तीन-तीन दण्डों, गौरवों
और शल्यों का सदा त्याग करता है, वह
ससार में नहीं रहता ।

५—दिब्बे य जे^३ उवसग्गे
तहा तेरिच्छमाणुसे ।
जे भिक्खू सहई निच्च
से न अच्छइ^४ मण्डले ॥

दिव्यांश्च यानुपसर्गान्
तथा तैरश्चांश्चमानुषान् ।
यो भिक्षुः सहते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

५—जो भिक्षु देव, तिर्यञ्च और मनुष्य
सम्बन्धी उपसर्गों को सदा सहता है, वह ससार
में नहीं रहता ।

१, २ अच्छइ (अ, वृ०पा०) ।

३. × (उ, ऋ०) ।

४. अच्छइ (अ, वृ०पा०) ।

६—विगहाकसायसन्नाण

भाणाण च दुय तहा ।
जे भिक्खू वज्जई निच्चं
से न अच्छइ^१ मण्डले ॥

विकथा-कषाय-सज्जानां
ध्यानप्रोश्च द्विक तथा ।
यो भिक्षुर्वर्जयति नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

६—जो भिक्षु विकथाओ, कषायो, सज्जाओ तथा आर्त्त और रौद्र—इन दो ध्यानो का सदा वर्जन करता है, वह ससार में नहीं रहता ।

७—वएसु इन्दियत्थेसु

'समिईसु किरियासु य'^२ ।
जे भिक्खू जयई निच्च
से न अच्छइ मण्डले ॥

व्रतेष्विन्द्रियाथेषु
समितिषु क्रियासु च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

७—जो भिक्षु व्रतो और समितियों के पालन में, इन्द्रिय-विषयो और क्रियाओं के परिहार में सदा यत्न करता है, वह ससार में नहीं रहता ।

८—लेसासु छसु काएसु

छक्के आहारकारणे ।
जे भिक्खू जयई निच्च
से न अच्छइ मण्डले ॥

लेस्यासु षट्सु कायेषु
षट्के आहार-कारणे ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

८—जो भिक्षु छह लेस्याओं, छह कायो और आहार के (विधि-निषेध के) छह कारणों में सदा यत्न करता है, वह ससार में नहीं रहता ।

९—पिण्डोग्रहपडिमासु

भयट्ठाणसु सत्तसु ।
जे भिक्खू जयई निच्च
से न अच्छइ मण्डले ॥

पिण्डावग्रह-प्रतिमासु
भय-स्थानेषु सप्तषु ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

९—जो भिक्षु, आहार-ग्रहण की सात प्रतिमाओं में और सात भय-स्थानों में सदा यत्न करता है, वह ससार में नहीं रहता ।

१०—मयेसु बम्भगुत्तीसु

भिक्खुधम्ममि दसविहे ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

मदेषु ब्रह्म-गुप्तिषु
भिक्षु-धर्म दशविधे ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१०—जो भिक्षु आठ मद-स्थानों में, ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों में और दस प्रकार के भिक्षु-धर्म में सदा यत्न करता है, वह ससार में नहीं रहता ।

११—उवासगाणं पडिमासु

भिक्खूण पडिमासु य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

उपासकाना प्रतिमासु
भिक्षूणां प्रतिमासु च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

११—जो भिक्षु उपासकों की ग्यारह प्रतिमाओं तथा भिक्षुओं की बारह प्रतिमाओं में सदा यत्न करता है, वह ससार में नहीं रहता ।

१. अच्छइ (अ, वृ० पा०) ।

२. समीतीसु य नहेव य (वृ० पा०) ।

१२—किरियासु भूयगामेसु
परमाहम्मिएसु य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

क्रियासु भूत-ग्रामेषु
परमाधार्मिकेषु च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१२—जो भिक्षु तेरह क्रियाओं, चौदह जीव-समुदायों और पन्द्रह परमाधार्मिक देवों में सदा यत्न करता है, वह ससार में नहीं रहता ।

१३—गाहासोलसएहि
तहा अस्सजमम्मि य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

गाथा-षोडशकेषु
तथाऽसयमे च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१३—जो भिक्षु गाथा-षोडशक (सूत्र-कृतांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अव्ययनों) और सत्रह प्रकार के असयम में सदा यत्न करता है, वह ससार में नहीं रहता ।

१४—वम्भम्मि नायज्झयणेसु
ठाणेसु यऽसमाहि ए ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

ब्रह्मणि ज्ञाताध्ययनेषु
स्थानेषु चाऽसमाधेः ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१४—जो भिक्षु अठारह प्रकार के ब्रह्मचर्य, उन्नीस ज्ञात-अध्ययनों और बीस असमाधि-स्थानों में सदा यत्न करता है, वह ससार में नहीं रहता ।

१५—एगवीसाए सवलेसु
वावीसाए परीसहे ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

एकविंशतीशवलेषु
द्वाविंशतीपरीषहेषु ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१५—जो भिक्षु इक्कीस प्रकार के सवल-दोषों और बाईस परीषहों में सदा यत्न करता है, वह ससार में नहीं रहता ।

१६—तेवीसइ सूयगडे
रूवाहिएसु सुरेसु^१ अ ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

त्रयोविंशतिसूत्रकृतेषु
रूपाधिकेषु सुरेषु च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१६—जो भिक्षु सूत्रकृतांग के तेईस अध्ययनों और चौबीस प्रकार के देवों में सदा यत्न करता है, वह ससार में नहीं रहता ।

१७—पणवीसभावणाहि^२
उद्देसेसु दसाइण ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

पञ्चविंशति-भावनासु
उद्देशेषु दशादीनाम् ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१७—जो भिक्षु पचीस भावनाओं और दशाश्रुतस्कन्ध, व्यवहार और वृहत्कल्प के छवीस उद्देशों में सदा यत्न करता है, वह ससार में नहीं रहता ।

१ देवेसु (घृ० पा०) ।

२. पणुं (अ) ।

१८—अणगारगुणेहि च
पक्कप्पम्मि तहेव य^१ ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

अनगार-गुणेषु च
प्रकल्पे तथैव च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१८—जो भिक्षु साधु के सत्ताईस गुणों
और अठाईस आचार-प्रकल्पों में सदा यत्न
करता है, वह ससार में नहीं रहता ।

१९—पावसुयपसगेसु
मोहद्वानेसु चेव य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

पाप-श्रुत-प्रसगेषु
मोह-स्थानेषु चैव च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१९—जो भिक्षु उनतीस पाप-श्रुत
प्रसगों और तीस मोह के स्थानों में सदा यत्न
करता है, वह ससार में नहीं रहता ।

२०—सिद्धादिगुणजोगेसु
तेत्तीसासायणासु^२ य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

सिद्धादिगुण-योगेषु
अर्यस्त्रिंशदाशातनासु च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

२०—जो भिक्षु सिद्धों के इकतीस आदि
गुणों, बत्तीस योग-संग्रहों तथा तैंतीस आशात-
नाओं में सदा यत्न करता है, वह ससार में
नहीं रहता ।

२१—इइ एएसु ठाणेसु
जे भिक्खू जयई सया ।
खिप्प से सच्चसंसारा
विप्पमुच्चइ पण्डितो^३ ॥
—त्ति वेमि ।

इत्येतेषु स्थानेषु
यो भिक्षुर्यतते सदा ।
क्षिप्रं स सर्व-संसाराह
विप्रमुच्यते पण्डितः ॥
—इति ब्रवीमि ।

२१—जो पण्डित भिक्षु इस प्रकार इन
स्थानों में सदा यत्न करता है, वह शीघ्र ही
समस्त ससार से मुक्त हो जाता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. उ (उ, ऋ०, वृ०) ।

२. ०णाणि (अ) ।

बत्तीसहमं अज्झयणं :
पमायट्ठाणं

द्वात्रिंश अज्झयण :
प्रमाद-स्थान

आसुर्य

इस अध्ययन में प्रमाद के कारण तथा उनके निवारण के उपायों का प्रतिपादन किया गया है। इसलिये इसका नाम 'पमायद्वाण'—'प्रमाद-स्थान' है। प्रमाद साधना का विधन है। उसका निवारण कर साधक जितेन्द्रिय बनता है। प्रमाद के प्रकारों का विभिन्न क्रमों में सकलन हुआ है।

१—प्रमाद के पाँच प्रकार^१—

मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा।

२—प्रमाद के छह प्रकार^२—

मद्य, निद्रा, विषय, कषाय, द्यूत और प्रतिलेखना।

३—प्रमाद के आठ प्रकार^३—

अज्ञान, सशय, मिथ्या-ज्ञान, राग, द्वेष, स्मृति-भ्रम, धर्म में अनादर, मन, वचन और काया का दुष्प्रणिधान।

मानसिक, वाचिक और कायिक—इन सभी दुःखों का मूल है विषयों की सतत आकांक्षा।

विषय आपात-भद्र (सेवन काल में सुखद) होते हैं किन्तु उनका परिणाम विरस होता है। शास्त्रकारों ने उन्हें 'किंपाक फल' की उपमा से उपमित किया है। (श्लो० १६, २०)

आकांक्षा के मूल हैं—राग और द्वेष। वे ससार-भ्रमण के हेतु हैं। उनकी विद्यमानता में वीतरागता नहीं आती। वीतराग-भाव के बिना जितेन्द्रियता सम्पन्न नहीं होती।

जितेन्द्रियता का पहला साधन है—आहार-विवेक। साधक को प्रणीत आहार नहीं करना चाहिए। अति-मात्रा में भोजन नहीं करना चाहिए। बार-बार नहीं खाना चाहिए। प्रणीत या अति-मात्रा में किया हुआ आहार उद्दीपन करता है, उससे वासनाएँ उभरती हैं और मन चंचल हो जाता है।

इसी प्रकार एकान्तवास, अल्पभोजन, विषयों में अननुरक्ति, दृष्टि-संयम, मन, वाणी और काया का संयम, चिन्तन की पवित्रता—ये भी जितेन्द्रिय बनने के साधन हैं।

प्रथम २१ श्लोकों में इन उपायों का विशद निरूपण हुआ है। पाँच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होने से क्या-क्या दोष उत्पन्न होते हैं? उनके उत्पादन, संरक्षण और व्यापरण से क्या-क्या दुःख उत्पन्न होते हैं?—इन प्रश्नों का स्पष्ट समाधान मिलता है।

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ५२०।

२—स्थानांग ६, सूत्र ५०२ :

छन्विहे पमाए पणते—त जहा—मज्जपमाए, णिहापमाए, विसयपमाए, कसायपमाए, जूयपमाए, पडिहेहणापमाए।

३—प्रवचन सारोद्धार, द्वार २०७, गाथा ११२२, ११२३

पमाओ य मुणिदेहि, भणिओ अट्टमेयओ।

अन्नाण ससओ चेव, मिच्छानाण तहेव य॥

रागो दोपो महभसो, धम्मस्मि य अणायरो।

जोगाण दुप्पणीहाण, अट्टहा वज्जियच्चओ॥

जब तक व्यक्ति इन सब उपायों को जान कर अपने आचरण में नहीं उतार लेता तब तक वह दुःखों के दारुण परिणामों से नहीं छूट सकता ।

विषय अपने आप में अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं है । वह व्यक्ति के राग-द्वेष से सम्मिश्रित होकर अच्छा या बुरा बनता है । इन्द्रिय तथा मन के विषय वीतराग के लिए दुःख के हेतु नहीं है, राग-ग्रस्त व्यक्ति के लिए वे प्रमदादरुण परिणाम वाले हैं । इसलिए बन्धन और मुक्ति अपनी ही प्रवृत्ति पर अवलम्बित है ।

जो साधक इन्द्रियों के विषयों के प्रति विरक्त है, उसे उनकी मनोज्ञता या अमनोज्ञता नहीं सताती । उसमें ममता का विकास होता है । साम्य के विकास से काम-गुणों की तृष्णा का नाश हो जाता है और साधक उत्तरोत्तर गुणस्थानों में आरोह करता हुआ लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है । (श्लो० १०६, १०७, १०८)

साधना की दृष्टि से इस अध्ययन का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है । अप्रमाद ही साधना है । साधक को प्रतिफल अप्रमत्त या जागरूक रहना चाहिए । निर्युक्तिकार ने बताया है कि भगवान् ऋषभ साधना में प्रायः अप्रमत्त रहे । उनका साधना-काल हजार वर्ष का था । उसमें प्रमाद-काल एक दिन-रात का था । भगवान् महावीर ने बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक साधना की । उसमें प्रमाद-काल एक अन्तर्मुहूर्त का था । दोनों तीर्थङ्करों के प्रमाद-काल को निर्युक्तिकार ने 'संकलित-काल' कहा है । इसका तात्पर्य यह है कि एक दिन-रात और एक अन्तर्मुहूर्त का प्रमाद एक साथ नहीं हुआ था । किन्तु उनके साधना-काल में जो प्रमाद हुआ, उसे संकलित किया जाए तो वह एक दिन-रात और एक अन्तर्मुहूर्त का होता है ।^१

शान्त्याचार्य ने बताया है कि कुछ आचार्य अनुपपत्ति के मय से भगवान् ऋषभ और महावीर के प्रमाद को केवल निद्रा-प्रमाद मानते हैं ।^२ किन्तु निर्युक्तिकार और शान्त्याचार्य का यह अभिमत नहीं है और वह सगत भी है । निर्युक्तिकार के निरूपण का उद्देश्य यह है कि जिस प्रकार भगवान् ऋषभ और महावीर अधिक से अधिक अप्रमत्त रहे हैं, उसी प्रकार सब श्रमण भी अधिक से अधिक अप्रमत्त रहे ।

१—(क) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ५२३, ५२४ :

वाससहस्स उग्ग, तवमाइगरस्स भायरत्तस्स ।
जो किर पमायकालो, अहोरत्त तु सकल्लिअ ॥
वारसवासे अहिण्ण, तवं चरत्तस्स वद्धमाणस्स ।
जो किर पमायकालो, अतमुहुत्त तु सकल्लिअ ॥

(ख) बृहद्बृत्ति, पत्र ६२० :

किमयमेकावस्याभाविन प्रमादस्य काल उतान्ययेत्याशङ्क्याह—सङ्कलित, किमुक्तं भवति ?—अप्रमादोऽप्यन्यथाऽन्यथाऽन्तर्मुहूर्तकत्वेनानेकयोऽपि प्रमादप्राप्तौ तदवस्थितिविषयभूतस्यान्तर्मुहूर्तस्याङ्गयेयभेदत्वात्तेषामतिसूक्ष्मतया सर्वकालसङ्कलनायामप्यहोरात्रमेवामूत् तथाद्वादश वर्षाण्यधिकानि तपश्चरतो वर्द्धमानस्य य किल प्रमादकाल, प्राग्वत्सोऽन्तर्मुहूर्तमेव सङ्कलित, इहाप्यन्तर्मुहूर्तानामसङ्गयेयभेदत्वात्प्रमादस्थितिविषयान्तर्मुहूर्तानां सूक्ष्मत्व, सङ्कलनान्तर्मुहूर्तस्य च बृहत्तरत्वमिति भावनीयम् ।

२—बृहद्बृत्ति, पत्र ६२० :

अन्ये त्वेतदनुपपत्तिभीत्या निद्राप्रमाद एवाय विवक्षित इति व्याचक्षत इति ।

वत्तीसहमं अज्झयणं : द्वात्रिंश अध्ययन

पमायट्टाणं : प्रमाद-स्थानम्

मूल

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुवाद

- १—अच्चन्तकालस्स समूलगस्स
सव्वस्स दुक्खस्स उ जो पमोक्खो ।
त भासओ मे पडिपुण्णचित्ता
सुणेह एगगहिय^१ हियत्थ ॥
- २—नाणस्स सव्वस्स^२ पगासणाए
अन्नाणमोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दोसस्स य सखएण
एगन्तसोक्ख समुवेइ मोक्ख ॥
- ३—तस्सेस मग्गो गुरुविद्धसेवा
विवज्जणा वालजणस्स दूरा ।
'सज्झायएगन्तनिसेवणा य'^३
सुत्तत्थसच्चिन्तणया विई य ॥
- ४—आहारमिच्छे मियमेसणिज्ज
सहायमिच्छे निउणत्थबुद्धि^४ ।
निकेयमिच्छेज्ज विवेगजोग्ग
समाहिकामे समणे तवस्सो ॥
- ५—न वा लभेज्जा निउण सहाय
गुणाहिय वा गुणओ सम वा ।
एको वि पावाइ विवज्जयन्तो^५
विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥

- अत्यन्त-कालस्य समूलकस्य
सर्वस्य दुःखस्य तु य प्रमोक्षः ।
तं भावमाणस्य मे प्रतिपूर्ण-चित्ताः
शृणुतैकाग्र्य-हित हितार्थम् ॥
- ज्ञानस्य सर्वस्य प्रकाशनया
अज्ञान-मोहस्य विवर्जनया ।
रागस्य दोषस्य च सक्षयेण
एकान्त-सौख्य समुपैति मोक्षम् ॥
- तस्यैव मार्गो गुरु-वृद्ध-सेवा
विवर्जना बाल-जनस्य दूरात् ।
स्वाध्यायैकान्त-निषेवणा च
सूत्रार्थ-सच्चिन्तना धृतिश्च ॥
- आहारमिच्छेन्मिमतमेवणीय
सहायमिच्छेन्निपुणार्थ-बुद्धिम् ।
निकेतमिच्छेद् विवेक-योग्य
समाधिकामः श्रमणस्तपस्वी ॥
- न वा लभेत निपुणं सहाय
गुणाधिक वा गुणत सम वा ।
एकोऽपि पापानि विवर्जयन्
विहरेत् कामेष्वसज्जन् ॥

१—अनादि-कालीन सब दुखों और उनके कारणों (कपाय आदि) के मोक्ष का जो उपाय है वह मैं कह रहा हूँ । वह ऐकाग्र्य-हित (ध्यान के लिए हितकर) है, अतः तुम प्रतिपूर्ण चित्त होकर हिन (मोक्ष) के लिए मुनो ।

२—सम्पूर्ण ज्ञान का प्रकाश, अज्ञान और मोह का नाश तथा राग और द्वेष का क्षय होने से आत्मा एकान्त सूखमय मोक्ष को प्राप्त होता है ।

३—गुरु और वृद्धों (स्थविर मुनियों) की सेवा करना, अज्ञानी-जनो का दूर से ही वर्जन करना, स्वाध्याय करना, एकान्तवास करना, सूत्र और अर्थ का चिन्तन करना तथा वैर्य रखना, यह मोक्ष का मार्ग है ।

४—समाधि चाहने वाला तपस्वी श्रमण परिमित और एषणीय आहार को इच्छा करे । जीव आदि पदार्थ के प्रति निपुण बुद्धि वाले गीतार्थ को महायक बनाए और विविक्त (स्त्री, पशु, नपुंसक से रहित) घर में रहे ।

५—यदि अपने में अविक गुणवान् या अपने समान निपुण सहायक न मिले तो वह पापों का वर्जन करता हुआ, विषयों में अनासक्त रह कर अकेला ही विहार करे ।

१. एगन्त° (वृ०पा०, छ०) ।

२. सव्वस्स (वृ०पा०, छ०, आ) ।

३. ° निसेवणाए (वृ०पा०), ° निसेवणा य (वृ०) ।

४. निउणेह° (वृ०पा०) ।

५. अणायरन्तो (वृ०पा०) ।

६—जहा य अण्डप्पभवा बलागा
अण्ड बलागप्पभव जहा य ।
एमेव मोहाययण खु तण्ह^१
मोह च तण्हाययण वयन्ति ॥

७—रागो य दोसो वि य कम्मबीय
कम्म च मोहप्पभव वयन्ति ।
कम्म च जाईमरणस्स मूलं
दुक्ख च जाईमरण वयन्ति ॥

८—दुक्ख हय जस्स न होइ मोहो
मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा ।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो
लोहो हओ जस्स न किंचणाइ^२ ॥

९—राग च दोसं च तहेव मोहं
उद्धत्तुकामेण समूलजालं ।
जे जे 'उवाया पडिवज्जियव्वा'^३
ते कित्तइस्सामि अहाणुपुन्वि ॥

१०—रसा पगाम न निसेवियव्वा
पाय रसा दित्तिकरा^४ नराण ।
दित्त च कामा समभिद्वन्ति
दुम जहा साउफल व पक्खी ॥

११—जहा दवग्गी पउरिन्धणे वणे
समारुओ नोवसमं उवेइ ।
एविन्दियग्गी वि पगामभोइणो
न वग्गभयारिस्स हियाय कस्सई ॥

यथा चाण्ड-प्रभवा बलाका
अण्डं बलाका-प्रभवं यथा च ।
एवमेव मोहायतनं खलु तृष्णां
मोहं च तृष्णायतनं वदन्ति ॥

रागश्च दोषोऽपि च कर्म-बीजं
कर्म च मोह-प्रभवं वदन्ति ।
कर्म च जाति-मरणस्य मूलं
दुःख च जाति-मरणं वदन्ति ॥

दुःखं हतं यस्य न भवति मोहो
मोहो हतो यस्य न भवति तृष्णा ।
तृष्णा हता यस्य न भवति लोभः
लोभो हतो यस्य न किंचनानि ॥

रागं च दोषं च तथैव मोहं
उद्धर्तुकामेन समूलजालम् ।
ये ये उपायाः प्रतिपत्तव्याः
तान् कीर्तयिष्यामि यथानुपूर्वि ॥

रसाः प्रकामं न निषेवितव्याः
प्रायो रसा दृष्टिकरा नराणाम् ।
दृष्टं च कामाः समभिद्वन्ति
द्रुम यथा स्वादु फलमिव पक्षिणः ॥

यथा दवाग्निः प्रचुरेन्धने वने
स-मारुतो नोपशममुपैति ।
एवमिन्द्रियाग्निरपि प्रकामभोजिनो
न ब्रह्मचारिणो हिताय कस्यचित् ॥

६—जैसे बलाका अण्डे से उत्पन्न होती है और अण्डा बलाका से उत्पन्न होता है, उसी प्रकार तृष्णा मोह से उत्पन्न होती है और मोह तृष्णा से उत्पन्न होता है ।

७—राग और द्वेष कर्म के बीज है । कर्म मोह से उत्पन्न होता है और वह जन्म-मरण का मूल है । जन्म-मरण को दुःख को मूल कहा गया है ।

८—जिसके मोह नहीं है, उसने दुःख का नाश कर दिया । जिसके तृष्णा नहीं है, उसने मोह का नाश कर दिया । जिसके लोभ नहीं है, उसने तृष्णा का नाश कर दिया । जिसके पास कुछ नहीं है, उसने लोभ का नाश कर दिया ।

९—राग, द्वेष और मोह का समूल उन्मूलन चाहने वाले मुनि को जिन-जिन उपायों का आलम्बन लेना चाहिए उन्हें मैं क्रमशः कहूँगा ।

१०—रसों का प्रकाम (अधिक मात्रा में) सेवन नहीं करना चाहिए । वे प्रायः मनुष्य की धातुओं को उद्दीप्त करते हैं । जिसकी धातुएँ उद्दीप्त होती हैं उसे काम-भोग सताते हैं, जैसे स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष को पक्षी ।

११—जैसे पवन के भोकों के साथ प्रचुर इन्धन वाले वन में लगा हुआ दावानल उप-शान्त नहीं होता, उसी प्रकार प्रकाम-भोजी (ठूस-ठूस कर खाने वाले) की इन्द्रियाग्नि (कामाग्नि) शान्त नहीं होती । इसलिए प्रकाम-भोजन किसी भी ब्रह्मचारी के लिए हितकर नहीं होता ।

१. तण्हा (अ) ।

२. किंचनत्थि (वृ० पा०) ।

३. उवाया परि^० (वृ० पा०) ।

४. दित्तिकरा (वृ० पा०) ।

१२—विविक्तसेजासणजन्तियाण
ओमासणाण^१ दमिडन्द्रियाण ।
न रागसत्तू धरिसेड चित्तं
पराडओ बाहिरिवोसहेहि ॥

विविक्त शय्यामन-यन्त्रितानां
अवमाशनानां दमितेन्द्रियाणाम् ।
न राग-शत्रु धर्णयति चित्तं
पराजितो व्याधिरिवोपधैः ॥

१२—जो विविक्त-शय्या और आसन में नियन्त्रित होते हैं, जो कम खाते हैं और जितेन्द्रिय होते हैं, उनके चित्त को राग-शत्रु वैसे ही आक्रान्त नहीं कर सकता—जैसे ओपध से पराजित रोग देह को ।

१३—जहा विरालावमहस्स मूले
न मूसगाण वसही पसत्था ।
एमेव इत्थीनिलयस्स मज्जे
न वम्भयारिस्स खमो निवासो ॥

यथा विडालावमयस्य मूले
न मूपकाणा वसतिः प्रशस्ना ।
एवमेव स्त्री-निलयस्य मध्ये
न ब्रह्मचारिणः क्षमो निवासः ॥

१३—जैसे विट्टी की बस्ती के पाम चूहों का रहना अच्छा नहीं होता, उसी प्रकार स्त्रियों की बस्ती के पाम ब्रह्मचारी का रहना अच्छा नहीं होता ।

१४—न ख्वलावण्णविलासहासं
न जपिय डगियपेहिय^२ वा ।
इत्थीण चित्तसि निवेसडत्ता
दट्ठं ववस्से समणे तवस्सी ॥

न रूप-लावण्य-विलास-हासं
न जल्पितमंगितं वीक्षितं वा ।
स्त्रीणां चित्ते निवेश्य
ब्रह्मं व्यवस्येत् श्रमणस्तपस्वी ॥

१४—तपस्वी श्रमण स्त्रियों के रूप, लावण्य, विलास, हास्य, मवुर आलाप, झङ्गित और चितवन को चित्त में रमा कर उन्हें देखने का मकल्प न करे ।

१५—अदसणं चेव अपत्थण च
अचिन्तण चेव अकित्तण च ।
इत्थीजणस्सारियक्काणजोग्ग
हिय सया वम्भवए^३ रयाण ॥

अदर्शनं चैवाप्रार्थन च
अचिन्तनं चैवाकीर्तनं च ।
स्त्रीजनस्याशयध्यान-योग्यं
हितं सदा ब्रह्मव्रतेरतानाम् ॥

१५—जो मदा ब्रह्मचर्य में रत है, उनके लिए स्त्रियों को न देखना, न चाहना, न चिन्तन करना और न वर्णन करना हितकर है तथा धर्म-ध्यान के लिए उपयुक्त है ।

१६—काम तु देवीहि विभूसियाहि
न चाइया खोभइउ तिगुत्ता ।
तहा वि एगन्तहिय ति नच्चा
विवित्तवासो^४ मुणिणं^५ पसत्थो ॥

कामं तु देवीर्भिविभूषिताभिः
न शक्विताः क्षोभयितुं त्रिगुप्ताः ।
तथाप्येकान्तहितमिति ज्ञात्वा
विविक्त-वासो मुनीनां प्रशस्तः ॥

१६—यह ठीक है कि तीन गुणियों ने गुप्त मुनियों को विभूषित देवियों भी विचलित नहीं कर सकतीं, फिर भी भगवान् ने एकान्त हित की दृष्टि से उनके विविक्त-वास को प्रशस्त कहा है ।

१. ओमासणाए, ओमासणाई (४०, पा०) ।

२. °वीडिय (४०, छ०) ।

३. वम्भवेरे (उ, ४०पा०, ४०) ।

४. °मावो (उ, ४०) ।

५. मणिणो (अ) ।

१७—मोक्षाभिकखिस्स वि माणवस्स
ससारभीरुस्स ठियस्स धम्मे ।
नेयारिस्स^१ दुत्तरमत्थि लोए
जहत्थिओ बालमणोहराओ ॥

मोक्षाभिकांक्षिणोपि मानवस्य
संसार-भीरोः स्थितस्य धर्मे ।
नैतादृश दुस्तरमस्ति लोके
यथा स्त्रियो बाल-मनोहराः ॥

१७—मोक्ष चाहने वाले संसार-भीरु एवं धर्म में स्थित मनुष्य के लिए लोक में और कोई वस्तु ऐसी दुस्तर नहीं है, जैसी दुस्तर अज्ञानियों के मन को हरने वाली स्त्रियाँ हैं ।

१८—एए य सगे समइक्कमित्ता
सुहुत्तरा चेव भवन्ति सेसा ।
जहा महासागरमुत्तरित्ता
नई भवे अवि गगासमाणा ॥

एतांश्च सङ्गान् समतिक्रम्य
सुखोत्तराश्चैव भवन्ति शेषाः ।
यथा महासागरमुत्तीर्य
नदी भवेदपि गंगा-समाना ॥

१८—जो मनुष्य इन स्त्री-विषयक आसक्तियों का पार पा जाता है, उसके लिए शेष सारी आसक्तियाँ वैसे ही सुतर (सुख से पार पाने योग्य) हो जाती हैं जैसे महासागर का पार पाने वाले के लिए गंगा जैसी बड़ी नदी ।

१९—कामाणुगिद्विप्पभवं खु दुक्खं
सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स ।
ज काइय माणसिय च किंचि
तस्सऽन्तग गच्छइ वीयरारो ॥

कामानुगृद्धि-प्रभवं खलु दुःखं
सर्वस्य लोकस्य सदेवकस्य ।
यत्कायिकं मानसिकं च किंचित्
तस्यान्तकं गच्छति वीतरागः ॥

१९—सब जीवों के, और क्या देवताओं के भी जो कुछ कायिक और मानसिक दुःख है, वह काम-भोगों की सतत अभिलाषा से उत्पन्न होता है । वीतराग उस दुःख का अन्त पा जाता है ।

२०—जहा य किपागफला मणोरमा
रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा ।
'ते खुहुए जीविय'^२ पच्चमाणा
एओवमा कामगुणा विवागे ॥

यथा च किम्पाक-फलानि
मनोरमाणि
रसेन वर्णेन च भुज्यमानानि ।
तानि क्षुद्रके जीविते पच्यमानानि
एतदुपमाः काम-गुणाविपाके ॥

२०—जैसे किपाक फल खाने के समय रस और वर्ण से मनोरम होते हैं और परिपाक के समय क्षुद्र-जीवन का अन्त कर देते हैं, काम-गुण भी विपाक काल में ऐसे ही होते हैं ।

२१—जे इन्द्रियाण विसया मणुन्ना
न तेसु^३ भाव निसिरे कयाइ ।
न याऽमणुन्नेसु मण पि^४ कुज्जा
समाहिकामे समणे तवस्सी ॥

ये इन्द्रियाणां विषया मनोज्ञाः
न तेषु भावं निसृजेत् कदापि ।
न चामनोज्ञेषु मनोऽपि कुर्यात्
समाधि-कामः श्रमणस्तपस्वी ॥

२१—समाधि चाहने वाला तपस्वी श्रमण इन्द्रियों के जो मनोज्ञ विषय हैं उनको और भी मन न करे—राग न करे और जो अमनोज्ञ विषय हैं उनकी ओर भी मन न करे—द्वेष न करे ।

१. न तारिस्स (आ, इ, उ, ऋ०) ।

२. ते जीविय खुदए (अ) ; ते जीविय खुदति (ब० पा०) ; ते खुदए जीवियं (घ०) ।

३. तेसि (अ) ।

४. तु (अ) ।

२२—चक्खुस्स रूव ग्रहण वयन्ति
त रागहेउ तु मणुन्नमाहु ।
त दोसहेउ अमणुन्नमाहु
समो य जो तेसु स वीयरगो ॥

चक्षुषो रूप ग्रहण वदन्ति
तद् राग-हेतु तु मनोज्ञमाहुः ।
तद् दोष हेतु अमनोज्ञमाहुः
समश्च यस्तयोः स वीतरागः ॥

२२—चक्षु का विषय रू है । जो रूप
राग का हेतु होता है उसे मनोज्ञ कहा जाता
है, जो दोष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा
जाता है । जो मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूपों में
ममान रहता है, वह वीतराग होता है ।

२३—रूवस्स चक्खु ग्रहण वयन्ति
चक्खुस्स रूव ग्रहण वयन्ति ।
रागस्स हेउ समणुन्नमाहु^१
दोसस्स हेउ अमणुन्नमाहु^२ ॥

रूपस्य चक्षुर्ग्रहण वदन्ति
चक्षुषो रूप ग्रहण वदन्ति ।
रागस्य हेतु समनोज्ञमाहु
दोषस्य हेतु अमनोज्ञमाहुः ॥

२३—चक्षु रूप का ग्रहण करता है । रूप
चक्षु का ग्राह्य है । जो रूप राग का हेतु होता
है उसे मनोज्ञ कहा जाता है, जो दोष का
हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा जाता है ।

२४—रूवेसु जो गिद्धिमुवेइ तिब्ब^३
अकालिय पावइ से विणास^४ ।
रागाउरे से जह वा पयगे
आलोयलोले समुवेइ मच्चु ॥

रूपेषु यो गृद्धिमुपैति तीव्रा
अकालिक प्राप्नोति स विनाशम् ।
रागातुर स यथा वा पतङ्गः
आलोक-लोलः समुपैति मृत्युम् ॥

२४—जो मनोज्ञ रूपों में तीव्र आसक्ति
करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त
होता है, जैसे प्रकाश-लोलुप पतंगा रूप में
आसक्त होकर मृत्यु को प्राप्त होता है ।

२५—जे यावि दोस समुवेइ तिब्ब^५
तसि क्खणे से उ 'उवेइ दुक्ख'^६ ।
दुद्धन्तदोसेण सएण जन्तू
न किंचि रूव अवरज्झई से ॥

यश्चापि दोष समुपैति तीव्र
तस्मिन्क्षणे स तूपैति दुःखम् ।
दुर्दान्त-दोषेण स्वकेन जन्तुः
न किंचिद्रूपमपराध्यति तस्य ॥

२५—जो मनोज्ञ रूपों में तीव्र द्वेष करता
है, वह अपने दुर्दम दोष से उसी क्षण दुःख को
प्राप्त होता है । रूप उसका कोई अपराध नहीं
करता ।

२६—एगन्तरत्ते^७ रुइरसि रूवे
अताल्लिसे से कुणई पओस ।
दुक्खस्स सपीलमुवेइ वाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥

एकान्तरक्तो रुचिरे रूपे
अतादृशे स करोति प्रदोषम् ।
दुःखस्य सम्पीडामुपैति वाल-
न लिप्यते तेन मुनिर्विरागः ॥

२६—जो मनोहर रूप में एकान्त अनुरक्त
होता है और अमनोहर रूप में द्वेष करता है,
वह अज्ञानी दुःखात्मक पीडा को प्राप्त होता
है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं
होता ।

१. तमणुण्णमाहु (वृ० पा०) ।

२. तमणुण्णमाहु (वृ० पा०) ।

३. निच्च (अ) ।

४. किलेस (वृ० पा०) ।

५. निच्च (वृ०, अ) ।

६. समुवेति सव्व (वृ० पा०) ।

७. ०रुत्तो (अ) ।

२७—रूवाणुगासाणुगए^१ य जीवे
चराचरे हिंसइ णेगरूवे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले
पीलेइ अत्तद्दुगुरु किलिह्वे ॥

२८—रूवाणुवाएण^२ परिग्गहेण
उप्पायणे रक्खणसन्निओगे^३ ।
वए विओगे य कहिं सुह से ?
सभोगकाले य अतित्तिलाभे^४ ॥

२९—रूवे अतित्ते य परिग्गहे य
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स
लोभाविले आययई अदत्तं ॥

३०—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
रूवे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुस वड्ढइ लोभदोसा
तत्थाऽवि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

३१—मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य
पओगकाले य दुही दुरन्ते ।
एव अदत्ताणि समाययन्तो
रूवे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

रूपानुगाशानुगतश्च जीवान्
चराचरान् हिनस्त्यनेक-रूपान् ।
चित्रैस्तान्परितापयति बालः
पीडयत्यात्मार्थ-गुरुः क्लिष्टः ॥

रूपानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्नियोगे ।
व्यये वियोगे च क्व सुखं तस्य ?
सम्भोग-काले चाऽतृप्ति-लाभः ॥

रूपेऽतृप्तश्च परिग्रहे च
सक्तोपसक्तो नोपैति तृष्टिम् ।
अतृष्टि-दोषेण दुःखी परस्य
लोभाविल आदत्तेऽदत्तम् ॥

तृष्णाभिभूतस्याऽदत्तहारिणः
रूपेऽतृप्तस्य परिग्रहे च ।
माया-मृषा वर्द्धते लोभ-दोषात्
तत्रापि दुःखान्न विमुच्यते सः ॥

मुषा पश्चाच्च पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखी दुरन्तः ।
एवमदत्तानि समाददानः
रूपेऽतृप्तौ दुःखितोऽनिश्चरः ॥

२७—मनोज्ञ रूप की अभिलाषा के पीछे
चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के वस-स्थावर
जीवों की हिंसा करता है । अपने प्रयोजन को
प्रधान मानने वाला वह क्लेश-युक्त अज्ञानी
पुरुष नाना प्रकार से उन चराचर जीवों को
परितप्त और पीडित करता है ।

२८—रूप में अनुराग और ममत्व का
भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पादन,
रक्षण और व्यापार करता है । उसका व्यय
और वियोग होता है । इन सब में उसे सुख
कहाँ है ? और क्या, उसके उपभोग-काल में
भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

२९—जो रूप में अतृप्त होता है और
उसके परिग्रहण में आसक्त-उपसक्त होता है,
उसे सन्तुष्टि नहीं मिलती । वह असन्तुष्टि के
दोष से दुःखी और लोभग्रस्त होकर दूसरों की
रूपवान् वस्तुएँ चुरा लेता है ।

३०—वह तृष्णा से पराजित होकर चोरी
करता है और रूप-परिग्रहण में अतृप्त होता
है । अतृप्ति-दोष के कारण उसके माया-मृषा
की वृद्धि होती है । माया-मृषा का प्रयोग
करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता ।

३१—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले
और बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका
पर्यवसान भी दुःखमय होता है । इस प्रकार
वह रूप में अतृप्त होकर चोरी करता हुआ,
दुःखी और आश्रय-हीन हो जाता है ।

१ वायाणुगए (वृ० पा०) ।

२ वाए य (अ), रागेण (वृ० पा०), वाए ण (छ०) ।

३ तन्निओगे (उ) ।

४ अतित्तं (वृ०), अतित्तिं (वृ० पा०) ।

३२—रूपाणुरत्तस्स नरस्स एव
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि? ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्ख
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्ख ॥

रूपानुरक्तस्य नरस्यैव
कुतः सुख भवेत्कदापि किंचित् ? ।
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःख
निर्वर्त्यति यस्य कृते दुःखम् ॥

३२—रूप में अनुरक्त पुरुष को उक्त
कथनानुसार कदाचित् किंचित् सुख भी कहाँ
से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख
प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-
दुःख (अवृत्ति का दुःख) बना रहता है ।

३३—एमेव रूप्पे गतो पओस
उवेड दुक्खोहपरपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य' चिणाइ कम्म
ज से पुणो होइ दुह विवागे ॥

एवमेव रूपे गतः प्रदोष
उपैति दुःखौघ-परम्पराः ।
प्रदुष्ट-चित्तश्च चिनोति कर्म
यत्तस्य पुनर्भवति दुःख विपाके ॥

३३—इसी प्रकार जो रूप में द्वेष रखता
है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त होता
है । प्रद्वेष-युक्त चित्त वाला व्यक्ति कर्म का
वध करता है, वही परिणाम-काल में उसके
लिए दुःख का हेतु बनता है ।

३४—रूप्पे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरपरेण ।
न लिप्पए भवमज्जे वि सन्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपलास ॥

रूपे विरक्तो मनुजो विशोकः
एतेन दुःखौघ-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्
जलेनैव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

३४—रूप से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त
बन जाता है । जैसे कमलिनी का पत्र जल से
लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह ससार में रह कर
अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं
होता ।

३५—सोयस्स सद्दं गहणं वयन्ति
त रागहेउं तु मणुन्तमाहु ।
त दोसहेउं अमणुन्तमाहु
समो य जो तेसु स वीयरारो ॥

श्रोत्रस्य शब्दं ग्रहणं वदन्ति
तं राग-हेतुं तु मनोज्ञमाहुः ।
त दोष-हेतुममनोज्ञमाहुः
समश्च यस्तेषु स वीतरागः ॥

३५—श्रोत्र का विषय शब्द है । जो
शब्द राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा
जाता है । जो द्वेष का हेतु होता है, उसे
अमनोज्ञ कहा जाता है । जो मनोज्ञ और
अमनोज्ञ शब्दों में समान रहता है, वह वीतराग
होता है ।

३६—सद्दस्स सोय गहणं वयन्ति
सोयस्स सद्दं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्तमाहु
दोसस्स हेउं अमणुन्तमाहु ॥

शब्दस्य श्रोत्रं ग्रहणं वदन्ति
श्रोत्रस्य शब्दं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः
दोषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः ॥

३६—श्रोत्र शब्द का ग्रहण करता है ।
शब्द श्रोत्र का ग्राह्य है । जो शब्द राग का
हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है । जो
द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा
जाता है ।

३७—सद्देसु जो गिद्धिमुवेइ तिब्ब^१
अकालिय पावइ से विणास ।
रागाउरे हरिणमिगे व^२ मुद्धे^३
सद्दे अतित्ते समुवेइ मच्चु ॥

शब्देषु यो गृद्धिमुपैति तीव्रां
अकालिकं प्राप्नोति स विनाशम् ।
रागातुरः हरिण-मृग इव मुग्धः
शब्दे अवृष्टः समुपैति मृत्युम् ॥

३७—जो मनोज्ञ शब्दों में तीव्र आसक्ति
करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त
होता है । जैसे—शब्द में अवृष्ट बना हुआ
रागातुर मुग्ध हरिण नामक पशु मृत्यु को प्राप्त
होता है ।

१. उ (अ) ।

२. निच्च (अ) ।

३. व्व (उ, ऋ०) ।

४. बुद्धे (अ) ।

३८—जे यावि दोस समुवेइ तिब्ब^१
तसि कखणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्धन्तदोसेण सएण जन्तू
न किञ्चि सद् अवरज्झई से ॥

३९—एगन्तरत्ते रुइरसि सद्दे
अतालसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स सपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥

४०—सद्धानुगासाणुगए य जीवे
चराचरे हिंसइ ऽणेगरूवे ।
चित्तेहि ते परियावेइ बाले
पीलेइ अत्तङ्गुरु किलिद्धे ॥

४१—सद्धानुवाएण^२ परिग्रहेण
उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहिं सुह से ?
सभोगकाले य अतित्तिलाभे^३ ॥

४२—सद्दे अतित्ते य परिग्रहे य
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स
लोभाविले आययई अदत्त ॥

४३—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
सद्दे अतित्तस्स परिग्रहे य ।
मायामुस वड्ढइ लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

यश्चापि दोषं समुपैति तीव्रं
तस्मिन् क्षणे स तूपैति दुःखम् ।
दुर्दान्त-दोषेण स्वकेन जन्तुः
न किञ्चिच्छब्दोऽपराव्यति तस्य ॥

एकान्तरकतो रुचिरे शब्दे
अतादृशे स कुरुते प्रदोषम् ।
दुःखस्य सम्पीडामुपैति बालः
न लिप्यते तेन मुनिर्विरागः ॥

शब्दानुगाशानुगतश्च जीवः
चराचरान् हिनस्त्यनेक-रूपान् ।
चित्रैस्तान् परितापयति बालः
पीडयत्यात्मार्थ-गुरु क्लिष्टः ॥

शब्दानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्नियोगे ।
ध्यये वियोगे च क्व सुख तस्य ?
सम्भोग-काले चाऽतृप्ति-लाभः ॥

शब्देऽतृप्तश्च परिग्रहे च
सक्तोऽसक्तो नोपैति तुष्टिम् ।
अतुष्टि-दोषेण दुःखी परस्स
लोभाविल आदत्तऽदत्तम् ॥

तृष्णाभिभूतस्याऽदत्त-हारिणः
शब्देऽतृप्तस्य परिग्रहे च ।
माया-मृषा वर्धते लोभ-दोषात्
तत्रापि दुःखान्न विमुच्यते सः ॥

३८—जो मनोज्ञ शब्द में तीव्र द्वेष करता है, वह अपने दुर्दम दोष से उसी क्षण दुःख को प्राप्त होता है, शब्द उसका कोई अपराध नहीं करता ।

३९—जो मनोहर शब्द में एकान्त अनुरक्त होता है और अमनोहर शब्द में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःखात्मक पीडा को प्राप्त होता है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्य नहीं होता ।

४०—मनोहर शब्द की अभिलाषा के पीछे चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करता है । अपने प्रयोजन को प्रधान मानने वाला व क्लेश-युक्त अज्ञानी पुरुष नाना प्रकार से उन चराचर जीवों को परितप्त और पीडित करता है ।

४१—शब्द में अनुराग और ममत्व का भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पादन, रक्षण और व्यापार करता है । उसका व्यय और वियोग होता है, इन सबमें उसे सुख कहाँ है ? और क्या, उसके उपभोग काल में भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

४२—जो शब्द में अतृप्त होता है, उसके परिग्रहण में आसक्त-उपसक्त होता है, उसे सतुष्टि नहीं मिलती । वह असतुष्टि के दोष से दुःखी और लोभग्रस्त होकर दूसरे की शब्दवान् वस्तुएँ चुरा लेता है ।

४३—वह तृष्णा से पराजित होकर चोरी करता है और शब्द परिग्रहण में अतृप्त होता है । अतृप्ति-दोष के कारण उसके माया-मृषा की वृद्धि होती है । माया-मृषा का प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता ।

१ निच्च (अ, वृ०) ।

२ ०वाए य (अ), रागेण (धृ० पा०), वाए ण (सु०) ।

३ अतित्त (वृ०), अतित्ति (य० पा०) ।

४४—मोसस्स पच्छा य पुरत्यओ य
पओगकाले य दुही दुरन्ते ।
एव अदत्ताणि समाययन्तो
सदे अत्तिओ दुहिओ अणिस्सो ॥

मृदा पश्चाच्च पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखी दुरन्त ।
एवमदत्तानि समाददान-
शब्दे अतृप्तो दुःखितोऽनिश्चिन् । ॥

४४—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले और
बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका
पर्यवसान भी दुःखमय होता है । इस प्रकार
वह शब्द में अतृप्त होकर चोरी करता हुआ,
दुःखी और आश्रय हीन हो जाता है ।

४५—सद्धानुरत्तस्स नरस्स एव
कत्तो मुह होज्ज कयाड किञ्चि ?
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्ख
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्ख ॥

शब्दानुरक्तस्य नरस्यैव
कृतः सुख भवेन् कदापि किञ्चित् ?
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वर्त्तयति यस्य कृते दुःखम् ॥

४५—शब्द में अनुक्त पुरुष को उक्त
कथनानुसार कदाचित् किञ्चित् सुख भी कहाँ
से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख
प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-
दुःख (अतृप्ति का दुःख) बना रहता है ।

४६—एमेव सदम्मि गओ पओस
उवेड दुक्खोहपरपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य' चिणाड कम्म
ज से पुणो होड दुह विवागे ॥

एवमेव शब्दे गन प्रदोष
उपैति दुःखोद्य-परम्परा ।
प्रदुष्ट-चित्तश्च चिनोति कर्म
यत्तस्य पुनर्भवति दुष्ट विपाके ॥

४६—इसी प्रकार जो शब्द में द्वेष
रजता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त
होता है । द्वेष-युक्त चित्तवाला व्यक्ति कर्म
का बन्ध करता है, वही परिणाम-काल में
उमके लिए दुःख का हेतु बनता है ।

४७—सदे विरत्तो मणुओ विसोगो^१
एणण दुक्खोहपरपरेण ।
न लिप्पए भवमज्जे वि सन्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपन्नास ॥

शब्दो विरक्तो मनुजो विशोकः
एतेन दुःखोद्य-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्
जलेनेव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

४७—शब्द में विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त
बन जाता है । जैसे कमलिनी का पत्र जल में
लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह ससार में रह कर
अनेक दुःखों की परम्परा में लिप्त नहीं होता ।

४८—घाणस्स गन्ध ग्रहण वयन्ति
त रागहेउ तु मणुन्नमाहु ।
त दोसहेउ अमणुन्नमाहु
समो य जो तेमु स वोयरागो ॥

घ्राणस्य गन्ध ग्रहणं वदन्ति
तं राग-हेतु तु मनोज्ञमाहु ।
त दोष-हेतुममनोज्ञमाहु
समश्च यस्तेषु स वीतरागः ॥

४८—घ्राण का विषय गन्ध है । जो
गन्ध राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा
जाता है । जो द्वेष का हेतु होता है, उसे
अमनोज्ञ कहा जाता है । जो मनोज्ञ और
अमनोज्ञ गन्धों में समान रहता है, वह वीतराग
होता है ।

४९—गन्धस्स घाण ग्रहण वयन्ति
घाणस्स गन्ध ग्रहण वयन्ति ।
रागस्स हेउ समणुन्नमाहु
दोसस्स हेउ अमणुन्नमाहु ॥

गन्धस्य घ्राण ग्रहण वदन्ति
घ्राणस्य गन्धं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतु समनोज्ञमाहु
दोषस्य हेतुममनोज्ञमाहु ॥

४९—घ्राण गन्ध का ग्रहण करता है ।
गन्ध घ्राण का ग्राह्य है । जो गन्ध राग का
हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है । जो
द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा
जाता है ।

१. उ (अ) ।

२. असोगो (अ) ।

५०—गन्धेषु^१ जो गिद्धिमुवेइ तिच्च^२
अकालिय पावइ से विणास ।
रागाउरे ओसहिगन्धगिद्धे
सप्पे विलाओ विव निक्खमन्ते ॥

गन्धेषु यो गृद्धिमुपैति तीव्रं
अकालिक प्राप्नोति स विनाशम् ।
रागातुर औषधि-गन्ध-गृद्धः
सर्पो विलादिव निष्क्रामन् ॥

५०—जो मनोज्ञ गन्ध में तीव्र आसक्ति करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है। जैसे नाग-दमनी आदि औषधियों के गन्ध में गृद्ध बिल से निकलता हुआ रागातुर सर्प ।

५१—जे यावि दोस सम्वेइ तिच्च^३
तसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्धन्तदोसेण सएण जन्तू
न किञ्चि गन्धं अवरज्झई से ॥

यश्चापि दोषं समुपैति तीव्रं
तस्मिन् क्षणे स तूपैति दुःखम् ।
दन्ति-दोषेण स्वकेन जन्तु
न किञ्चिद् गन्धोऽपराध्यति तस्य ॥

५१—जो अमनोज्ञ गन्ध में तीव्र द्वेष करता है, वह अपने दुर्दम दोष से उमी क्षण दुःख को प्राप्त होता है। गन्ध उसका कोई अपराध नहीं करता ।

५२—एगन्तरत्ते रुइरसि गन्धे
अतालसे से कुणई पओस ।
दुक्खस्स सपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥

एकान्तरक्तो रुचिरे गन्धे
अतादृशे स करोति प्रदोषम् ।
दुःखस्य सम्पीडामुपैति बाल
न लिप्यते तेन मुनिर्विरागः ॥

५२—जो मनोहर गन्ध में एकान्त अनुरक्त होता है और अमनोहर गन्ध में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःखात्मक पीडा को प्राप्त होता है। इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता ।

५३—गन्धानुगासाणुगए य जोवे
चराचरे हिंसइ ऽणेगरूवे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले
पीलेइ अत्तट्ठगुरु किलिद्धे ॥

गन्धानुगाज्ञानुगतश्च जीव
चराचरान् हिनस्त्यनेक-रूपान् ।
चित्रैस्तान् परितापयति बालः
पीडयत्यात्मार्थ-गुरु क्लिष्टः ॥

५३—मनोज्ञ गन्ध की अभिलाषा के पीछे चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करता है। अपने प्रयोजन को प्रधान मानने वाला वह क्लेश-युक्त अज्ञानी पुरुष नाना प्रकार के उन चरा-चर जीवों को परितप्त और पीडित करता है ।

५४—गन्धानुवाएण^४ परिग्रहेण
उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहिं सुह से ?
सभोगकाले य अतित्थिलाभे^५ ॥

गन्धानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्नियोगे ।
व्यये वियोगे च क्व सुखं तस्य ?
सम्भोग-काले चाऽतृप्ति-लाभः ॥

५४—गन्ध में अनुराग और ममत्व का भाव होने के कारण मनुष्य, उसका उत्पादन, रक्षण और व्यापार करता है। उसका व्यय और वियोग होता है। इन सबमें उसे सुख कहाँ है ? और क्या, उसके उपभोग-काल में भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

१. गधस्स (अ, ऋ०) ।

२. निच्च (अ) ।

३. निच्च (वृ०, अ) ।

४. °वाए य (अ); °रागेण (वृ० पा०); °वाए ण (सु०) ।

५. अतित्थ° (वृ०), अतित्ति° (वृ० पा०) ।

५५—गन्धे अतित्तो य परिग्रहे य
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स
लोभाविले आययई अदत्त ॥

५६—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
गन्धे अतित्तस्स परिग्रहे य ।
मायामुस वड्ढइ लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

५७—मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य
पओगकाले य दुही दुरन्ते ।
एव अदत्ताणि समाययन्तो
गन्धे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

५८—गन्धानुरत्तस्स नरस्स एव
कत्तो सुहं होज्ज कयाड किंचि ? ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्ख
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्ख ॥

५९—एमेव गन्धम्मि गओ पओस
उवेइ दुक्खोहपरपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य' चिणाड कम्म
ज से पुणो होइ दुह विवागे ॥

६०—गन्धे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि सन्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपलास ॥

गन्धेऽतृप्तश्च परिग्रहे च
सत्तोपसक्तो नोपैति तुष्टिम् ।
अतुष्टि-दोषेण दुःखी परस्य
लोभाविल आदत्ते ऽदत्तम् ॥

तृष्णाभिभूतस्याऽदत्त-हारिण
गन्धेऽतृप्तस्य परिग्रहे च ।
माया-मृषा वर्धते लोभ-दोषात्
तत्रापि दुःखान्न विमुच्यते सः ॥

मृषा पश्चाच्च पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखी दुरन्तः ।
एवमदत्तानि समाददानः
गन्धेऽतृप्तो दुःखितोऽनिश्च ॥

गन्धानुरक्तस्य नरस्यैव
कृतः सुख भवेत्कदापि किंचित् ? ।
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वर्त्तयति यस्य कृते दुःखम् ॥

एवमेव गन्धे गतः प्रदोषं
उपैति दुःखी-परम्पराः ।
प्रदुष्ट-चित्तश्च चिनोति कर्म
यतस्य पुनर्भवति दुःख विपाके ॥

गन्धे विरक्तो मनुजो विशोकः
एतेन दुःखी-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमज्जेऽपि सन्
जलेनेव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

५५—जो गन्ध में अतृप्त होना है, उसके परिग्रहण में आमक्त-उपसक्त होता है, उसे सतुष्टि नहीं मिलती । वह असतुष्टि के दोष ने दुःखी और लोभ-ग्रस्त होकर हमारे की गन्ध-वान् वस्तुएँ चुरा लेता है ।

५६—वह तृष्णा ने पराजित होकर चोरी करता है और गन्ध-परिग्रहण में अतृप्त होता है । अतृप्ति-दोष के कारण उसके माया-मृषा की वृद्धि होती है । माया-मृषा का प्रयोग करने पर भी वह दुःख में मुक्त नहीं होता ।

५७—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले और बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका पर्यवमान भी दुःखमय होता है । इस प्रकार वह गन्ध से अतृप्त होकर चोरी करता हुआ दुःखी और आश्रयहीन हो जाता है ।

५८—गन्ध में अनुरक्त पुरुष को उक्त कथनानुसार कदाचित् किंचित् सुख भी कहाँ से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-दुःख (अतृप्ति का दुःख) बना रहता है ।

५९—इसी प्रकार जो गन्ध में द्वेष रखता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त होता है । प्रद्वेषयुक्त चित्त वाला व्यक्ति कर्म का बन्ध करता है, वही परिणाम काल में उसके लिए दुःख का हेतु बनता है ।

६०—गन्ध से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त बन जाता है । जैसे कमलिनी का पत्र जल में लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह ससार में रहकर अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं होता ।

६१—जिहाए रसं ग्रहणं वयन्ति
त रागहेउ तु मणुन्तमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्तमाहु
समो य जो तेसु स वीयरगो ॥

जिह्वायाः रसं ग्रहणं वदन्ति
तं राग-हेतुं तु मनोज्ञमाहुः ।
तं दोष-हेतुममनोज्ञमाहुः
समश्च यस्तेषु स वीतरागः ॥

६१—रसना का विषय रस है । जो रस राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है । जो द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा जाता है । जो मनोज्ञ और अमनोज्ञ रसों में समान रहता है, वह वीतराग होता है ।

६२—रसस्स जिब्भं^१ ग्रहणं वयन्ति
जिब्भाए रस ग्रहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्तमाहु
दोसस्स हेउं अमणुन्तमाहु ॥

रसस्य जिह्वां ग्रहणं वदन्ति
जिह्वाया रसं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहु
दोषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः ॥

६२—रसना रस का ग्रहण करती है । रस रसना का ग्राह्य है । जो रस राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है । जो द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा जाता है ।

६३—रसेसु^२ जो गिद्धिमुवेइ तिच्च^३
अकालिय पावइ से विणासं ।
रागाउरे बडिसविभिन्नकाए
मच्छे जहा आमिसभोगगिद्धे^४ ॥

रसेषु यो गृद्धिमुपैति तीव्रं
अकालिकं प्राप्नोति स विनाशम् ।
रागातुरो बडिश-विभिन्न-कायः
मत्स्यो यथाऽमिष-भोग-गृद्धः ॥

६३—जो मनोज्ञ रसों में तीव्र आसक्ति करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है, जैसे मास खाने में गृद्ध बना हुआ रागातुर मत्स्य काँटे से वींधा जाता है ।

६४—जे यावि दोसं समुवेइ तिच्च^५
तसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्धन्तदोसेण सएण जन्तु
'रस न किंचि'^६अवरज्झई से ॥

यश्चापि दोषं समुपैति तीव्रं
तस्मिन्क्षणे स तूपैति दुःखम् ।
दुर्दान्त-दोषेण स्वकेन जन्तुः
रसो न किंचिदपराध्यति तस्य ॥

६४—जो मनोज्ञ रस में तीव्र द्वेष करता है, वह अपने दुर्दम दोष से उसी क्षण दुःख को प्राप्त होता है । रस उसका कोई अपराध नहीं करता ।

६५—एगन्तरत्ते रुइरे रसम्मि
अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥

एकान्तरक्तो रुचिरे रसे
अतादृशे स करोति प्रदोषम् ।
दुःखस्य सम्पीडामुपैति बालः
न लिप्यते तेन मुनिर्विरागः ॥

६५—जो मनोहर रस में एकान्त अनुरक्त रहता है और अमनोहर रस में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःखात्मक पीडा को प्राप्त होता है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता ।

१. जीह्वा (उ, ऋ०) ।

२. रसस्स (अ, ऋ०) ।

३. निच्च (अ) ।

४. 'लोभगिद्धे' (अ) ।

५. निच्चं (घृ०, अ) ।

६. न किंचि रस्स (अ) ।

६६—रसाणुगासाणुगए य जीवे
चराचरे हिंसइ ऽणेरूवे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले
पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥

रसानुगाशानुगतश्च जीवः
चराचरान् हिनस्त्यनेक-रूपान् ।
चित्रैस्तान् परितापयति बालः
पीडयत्यात्मार्य-गुरु क्लिष्टः ॥

६६—मनोहर रस की अभिलाषा के पीछे चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करता है। अपने प्रयोजन को प्रधान मानने वाला वह क्लेश-युक्त अज्ञानी पुरुष नाना प्रकार के उन चराचर जीवों को परितप्त और पीडित करता है।

६७—रसाणुवाएण^१ परिग्रहेण
उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहिं सुह से ?
सभोगकाले य अतित्ति^२लाभे^३ ॥

रसानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्नियोगे ।
व्यये वियोगे च क्व सुख तस्य ?
सम्भोग-काले चाऽतृप्ति-लाभः ॥

६७—रस में अनुराग और ममत्व का भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पादन, रक्षण और व्यापार करता है। उसका व्यय और वियोग होता है। इन सबमें उसे सुख कहाँ है ? और क्या उसके उपभोग-काल में भी उसे तृप्ति नहीं मिलती।

६८—रसे अतित्ते य परिग्रहे य
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोसेण दुहो परस्स
लोभाविले आययई अदत्त ॥

रसेऽतृप्तश्च परिग्रहे च
सक्तोपसक्तो नोपैति तृष्टिम् ।
अतृष्टि-दोषेण दुःखो परस्य
लोभाविल आदत्तेऽदत्तम् ॥

६८—जो रस में अतृप्त होता है और उसके परिग्रहण में आसक्त-उपसक्त होता है, उसे सतृष्टि नहीं मिलती। वह असतृष्टि के दोष से दुःखी और लोभ-ग्रस्त होकर दूसरे की रसवान् वस्तुएँ चुरा लेता है।

६९—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
रसे अतित्तस्स परिग्रहे य ।
मायामुसं वड्ढड लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

तृष्णाभिभूतस्याऽदत्तहारिणः
रसेऽतृप्तस्य परिग्रहे च ।
माया-मृषा बध्नन्ते लोभ-दोषात्
तत्रापि दुःखान्न विमुच्यते सः ॥

६९—वह तृष्णा से पराजित होकर चोरी करता है और रस-परिग्रह में अतृप्त होता है। अतृप्ति-दोष के कारण उसके माया-मृषा की वृद्धि होती है। माया-मृषा का प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता।

७०—मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य
पओगकाले य दुहो दुरन्ते ।
एव अदत्ताणि समाययन्तो
रसे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

मृषा पश्चाच्च पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखो दुरन्तः ।
एवमदत्तानि समाददान
रसेऽतृप्तो दुःखितोऽनिशः ॥

७०—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले और बोलते समय वह दुःखी होता है। उसका पर्यवसान भी दुःखमय होना है। इस प्रकार वह रस में अतृप्त होकर चोरी करता हुआ दुःखी और आश्रय-हीन हो जाता है।

७१—रसाणुरत्तस्स नरस्स एव
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ?
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्ख
निव्वत्तई जस्स कए ण दुक्ख ? ॥

रसानुरक्तस्य नरस्यैव
कुत सुख भवेत् कदापि किंचित् ? ।
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वर्त्तयति यस्य कृते दुःखम् ॥

७१—रस में अनुरक्त पुरुष को उक्त कथनानुसार कदाचित् किंचित् सुख भी कहाँ से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-दुःख (अतृप्ति का दुःख) बना रहता है।

१. वाएय (अ); २. रागेण (वृ० पा०), ३. वाए ण (छ०) ।

२. अतित्तं (वृ०), अतित्ति (वृ० पा०) ।

७२—एमेव रसम्मि गओ पओस
उवेइ दुक्खोहपरपराओ ।
पदुट्टचित्तो य^१ चिणाइ कम्म
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

७३—रसे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि सन्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

७४—कायस्स फास गहण वयन्ति
त रागहेउ तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउ अमणुन्नमाहु
समो य जो तेसु स वोयरगो ॥

७५—फासस्स काय गहण वयन्ति
कायस्स फास गहण वयन्ति ।
'रागस्स हेउ समणुन्नमाहु'^२
'दोसस्स हेउ'^३ अमणुन्नमाहु ॥

७६—फासेसु जो गिद्धिमुवेइ तिच्च^४
अकालियं पावइ से विणास ।
रागाउरे सीयजलावसन्ने
गाहग्गहीए महिसे व ऽरन्ने ॥

एवमेव रसे गतः प्रदोषम्
उपैति दुःखौघ-परम्परा ।
प्रदुष्ट-चित्तश्च चिनोति कर्म
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

रसे विरक्तो मनुजो विशोकः
एतेन दुःखौघ-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमज्जेऽपि सन्
जलेनेव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

कायस्य स्पर्शं ग्रहणं वदन्ति
त राग-हेतु तु मनोज्ञमाहुः ।
तं दोष-हेतुममनोज्ञमाहुः
समश्च यस्तेषु सवीतरागः ॥

स्पर्शस्य कायं ग्रहणं वदन्ति
कायस्य स्पर्शं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः
दोषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः ॥

स्पर्शेषु यो गृद्धिमुपैति तीव्रं
अकालिकं प्राप्नोति स विनाशम् ।
रागातुरः शीतजलावसन्न
ग्राह-गृहीतो महिष इवारण्ये ॥

७२—इसी प्रकार जो रस में द्वेष रखता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त होता है। प्रदोष-युक्त चित्त वाला व्यक्ति कर्म का बन्ध करता है। वही परिणाम-काल में उसके लिए दुःख का हेतु बनता है।

७३—रस से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त बन जाता है, जैसे कमलिनी का पत्र जल में लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह ससार में रह कर अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं होता।

७४—काय का विषय स्पर्श है। जो स्पर्श राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है। जो द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा जाता है। जो मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्शों में समान रहता है, वह वीतराग होता है।

७५—काय स्पर्श का ग्रहण करता है। स्पर्श काय का ग्राह्य है। जो स्पर्श राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है। जो द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा जाता है।

७६—जो मनोज्ञ स्पर्शों में तीव्र आसक्ति करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है। जैसे घड़ियाल के द्वारा पकड़ा हुआ, अरण्य-जलाशय के शीतल जल के स्पर्श में मग्न बना रागातुर भैंसा।

१ उ (अ)।

२ त राग हेउं तु मणुन्नमाहु (अ)।

३ त दोस हेउस्स (अ)।

४ तिच्च (अ)।

७७—जे यावि दोस समुवेड तिव्व^१
तसि कखणे से उ उवेड दुक्ख ।
दुद्धन्तदोसेण सएण जन्तू
न किञ्चि फास अवरज्झई से ॥

७८—एगन्तरत्ते रुडरसि फासे
अतालसे से कुणई पओस ।
दुक्खस्स सपीलमुवेड वाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥

७९—फासाणुगासाणुगा य जीवे
चराचरे हिंसड ऽणेगख्वे ।
चित्तेहि ते परितावेड वाले
पीलेड अत्तदृगुरु किलिद्धे ॥

८०—फासाणुवाएण^२ परिग्गहेण
उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए वियोगे य कहिं सुह से ?
सभोगकाले य अतित्ति^३लाभे ॥

८१—फासे अतित्ते य परिग्गहे य
सत्तोवसत्तो न उवेड तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स
लोभाविले आययई अदत्तं ॥

८२—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
फासे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुस वड्ढइ लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

यश्चापि दोष समुपैति तीव्रं
तस्मिन्क्षणे स तृपेति दुःखम् ।
दुर्दान्त-दोषेण स्वकेन जन्तुः
न किञ्चित्स्पर्शोऽपराध्यति तस्य ॥

एकान्तरक्तो रुचिरे स्पर्शे
अतादृशे स करोति प्रदोषम् ।
दुःखस्य सम्पीडामुपैति बालः
न लिप्यते तेन मुनिर्विरागः ॥

स्पर्शानुगाशानुगतश्च जीवः
चराचरान् हिनस्त्यनेक-रूपान् ।
चित्रैस्तान् परितापयति बालः
पीडयत्यात्मार्य-गुरुः क्लिष्टः ॥

स्पर्शानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्नियोगे ।
व्यये वियोगे च क्व सुखं तस्य ?
सम्भोग-काले चातृप्ति-लाभः ॥

स्पर्शानुप्राप्तश्च परिग्रहे च
सत्तोपसत्तो नोपैति तृष्टिम् ।
अतृष्टि-दोषेण दुःखो परस्य
लोभाविल आदत्तेऽदत्तम् ॥

तृष्णाभिभूतस्याऽदत्तहारिणः
स्पर्शानुप्राप्तस्य परिग्रहे च ।
माया-मृषा वर्धते लोभ-दोषात्
तत्रापि दुःखान्न विमुच्यते सः ॥

७७—जो बमनोज स्पर्श में तीव्र द्वेष करता है, वह अपने दुर्गम दोष ने उसी क्षण दुःख को प्राप्त होता है । स्पर्श उसका कोई अपराध नहीं करता ।

७८—जो मनोहर स्पर्श में एकान्त अनुरक्त होता है और बमनोहर स्पर्श से द्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःखात्मक पीडा को प्राप्त होता है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता ।

७९—मनोहर स्पर्श को अभिलाषा के पीछे चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के अस-स्वावर जीवों की हिंसा करता है । अपने प्रयोजन को प्रधान मानने वाला वह क्लेश-युक्त अज्ञानी पुरुष नाना प्रकार के उन चरा-चर जीवों को परितप्त और पीडित करता है ।

८०—स्पर्श में अनुराग और ममत्व का भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पादन, रक्षण और व्यापार करता है । उनका व्यय और वियोग होता है । इन सबमें उसे सुख कहाँ है ? और क्या उसके उपभोग-काल में भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

८१—जो स्पर्श में अवृत्त होता है और उसके परिग्रहण में आसक्त-उपमत्त होता है, उसे सतृप्ति नहीं मिलती । वह असन्तुष्टि के दोष से दुःखी और लोभ-ग्रस्त होकर दूसरे की स्पर्शवान् वस्तुएं चुरा लेता है ।

८२—वह तृष्णा ने पराजित होकर चोरी करता है और स्पर्श-परिग्रहण में अवृत्त होता है । अवृत्ति-दोष के कारण उसके माया-मृषा की वृद्धि होती है । माया-मृषा का प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता ।

१. निच्च (वृ०, अ) ।

२. 'वाए य (अ), 'रागेण (वृ० पा०), 'वाए ण (छ०) ।

३. अतित्तं (वृ०), अनित्तं (वृ० पा०) ।

८३—मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य
पओगकाले य दुही दुरन्ते ।
एव अदत्ताणि समाययन्तो
फासे अत्तिओ दुहिओ अणिस्सो ॥

८४—फासाणुरत्तस्स नरस्स एवं
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ?।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

८५—एमेव फासम्मि गओ पओस
उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य^१ चिणाइ कम्मं
ज से पुणो होइ दुह विवागे ॥

८६—फासे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि सन्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

८७—मणस्स भाव गहण वयन्ति
त रागहेउ तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु
समो य जो तेसु स वीयरगो ॥

८८—भावस्स मणं गहणं वयन्ति
मणस्स भाव गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु
दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥

मृषा पश्चाच्च पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखी दुरन्तः ।
एवमदत्तानि समाददान.
स्पर्शोऽनुत्तमो दुःखितोऽनिश्रः ॥

स्पर्शानुरक्तस्य नरस्यैवं
कुतः सुख भवेत् कदापि किंचित् ? ।
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वर्त्तयति यस्य कृते दुःखम् ॥

एवमेव स्पर्शे गतः प्रदोषम्
उपैति दुःखौघ-परम्पराः ।
प्रदुष्ट-चित्तश्च चिनोति कर्म
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

स्पर्शे विरक्तो मनुजो विशोकः
एतेन दुःखौघ-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्
जलेनेव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

मनसो भावं ग्रहणं वदन्ति
तं राग-हेतुं तु मनोज्ञमाहुः ।
तं दोष-हेतुममनोज्ञमाहुः
समश्च यस्तेषु स वीतरागः ॥

भावस्य मनो ग्रहणं वदन्ति
मनसः भावं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः
दोषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः ॥

८३—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले
और बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका
पर्यवसान भी दुःखमय होता है । इस प्रकार
वह स्पर्श में अतृप्त होकर चोरी करता हुआ
दुःखी और आश्रयहीन हो जाता है ।

८४—स्पर्श में अनुरक्त पुरुष को उक्त
कथनानुसार कदाचित् किंचित् सुख भी कहाँ
से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख
प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-
दुःख (अतृप्ति का दुःख) बना रहता है ।

८५—इसी प्रकार जो स्पर्श में द्वेष
रखता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त
होता है । प्रद्वेष युक्त चित्त वाला व्यक्ति कर्म
का बन्ध करता है । वही परिणाम-काल में
उसके लिए दुःख का हेतु बनता है ।

८६—स्पर्श से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त
बन जाता है । जैसे कमलिनी का पत्र जल में
लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह ससार में रह
कर अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं
होता ।

८७—मन का विषय भाव (अभिप्राय)
है । जो भाव राग का हेतु होता है, उसे
मनोज्ञ कहा जाता है । जो द्वेष का हेतु होता
है, उसे अमनोज्ञ कहा जाता है । जो मनोज्ञ
और अमनोज्ञ भावों में समान रहता है, वह
वीतराग होता है ।

८८—मन भाव का ग्रहण करता है ।
भाव मन का ग्राह्य है । जो भाव राग का
हेतु होता है उसे मनोज्ञ कहा जाता है । जो
द्वेष का हेतु होता है उसे अमनोज्ञ कहा
जाता है ।

८९—भावेसु^१ जो गिद्धिमुवेड तिव्वं^२
अकालिय पावइ से विणास ।
रागाउरे कामगुणेषु गिद्धे
करेणुमगावहिए 'व नागे'^३ ॥

भावेषु यो गृद्धिमुपैति तीव्रा
अकालिकं प्राप्नोति विनाशम् ।
रागातुर काम-गुणेषु गृद्ध
करेणुमार्गापहत इव नागः ॥

८९—जो मनोज्ञ भावों में तीव्र आसक्ति
करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त
होता है, जैसे हथिनी के पंथ में आकृष्ट काम-
गुणों में गृद्ध बना हुआ हाथी ।

९०—जे यावि दोस समुवेड तिव्वं^४
तंसि कखणे से उ उवेड दुक्खं ।
दुद्धन्तदोसेण सएण जन्तू
न किंचि भावं अवरज्झई से ॥

यश्चापि दोष समुपैति तीव्रं
तस्मिन्क्षणे स तूपैति दुःखम् ।
दुर्दान्त-दोषेण स्वकेन जन्तुः
न किंचिद्भावोऽपराध्यति तस्य ।

९०—जो मनोज्ञ भाव में तीव्र द्वेष
करता है, वह अपने दुर्दम दोष से उनीक्षण
दुःख को प्राप्त होता है । भाव उसका कोई
अपराध नहीं करता ।

९१—एगन्तरत्ते रुडरसि भावे
अतालसे से कुणई पओस ।
दुक्खस्स सपीलमुवेड वाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥

एकान्तरक्तो रुचिरे भावे
अतादृशे स क्रुते प्रदोषम् ।
दुःखस्य सम्पीडामुपैति बालः
न लिप्यते तेन मुनिर्विराग ॥

९१—जो मनोहर भाव में एकान्त अनु-
रक्त होता है और अमनोहर भाव में द्वेष
करता है, वह अज्ञानी दुःखात्मक पीडा को
प्राप्त होता है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें
लिप्त नहीं होता ।

९२—भावाणुगासाणुगए य जोवे
चराचरे हिंसड ऽणेगरूवे ।
चित्तेहि ते परितावेड वाले
पीलेड अत्तट्ठगुरू किलिद्धे ॥

भावानुगाशानुगतश्च जीव,
चरान्तरान् हिनस्त्यनेक-रूपान् ।
चित्रैस्तान् परितापयति बालः
पीडयत्यात्मार्थ-गुरु क्लिष्ट ॥

९२—मनोहर भाव की अभिलाषा के
पीछे चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के अन-
म्यावर जीवों की हिंसा करता है । अपने
प्रयोजन को प्रवान मानने वाला वह क्लेश-
युक्त अज्ञानी पुरुष नाना प्रकार के उन चराचर
जीवों को परितप्त और पीडित करता है ।

९३—भावाणुवाएण^५ परिग्रहेण
उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहिं सुह से ?
सभोगकाले य अतित्ति^६लाभे ॥

भावानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्निधौ ।
व्यये वियोगे च क्व सुख तस्य ?
सम्भोग-काले चाऽतृप्ति-लाभ ॥

९३—भाव में अनुरक्त और ममत्व का
भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पादन,
रक्षण और व्यापार करता है । उसका व्यय
और वियोग होता है । इन नवमें उसे सुख
कहाँ है ? और क्या, उसके उपभोग-काल में
भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

१ मणेण (अ), भावस्स (ऋ०) ।

२ निच्च (अ) ।

३ गए व्व (अ) ।

४ निच्च (वृ०, अ) ।

५ 'वाए ण' (अ), 'रागेण' (वृ० पा०), 'वाए ण' (छ०) ।

६ अतित्तं (वृ०), अतित्तिं (वृ० पा०) ।

९४—भावे अतित्ते य परिग्रहे य
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स
लोभाविले आययई अदत्त ॥

९५—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
भावे अतित्तस्स परिग्रहे य ।
मायामुस वड्ढइ लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

९६—मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य
पओगकाले य दुही दुरन्ते ।
एव अदत्ताणि समाययन्तो
भावे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

९७—भावानुरत्तस्स नरस्स एव
कत्तो सुह होज्ज कयाइ किञ्चि ?
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्ख
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्ख ॥

९८—एमेव भावम्मि गओ पओस
उवेइ दुक्खोहपरपराओ ।
पटुट्ठचित्तो य^१ चिणाइ कम्मं
ज से पुणो होइ दुह विवागे ॥

९९—भावे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि सन्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपलास ॥

भावेऽतृप्तश्च परिग्रहे च
सक्तोपसक्तो नोपैति तुष्टिम् ।
अतुष्टि-दोषेण दुःखी परस्य
लोभाविल आदत्तेऽदत्तम् ॥

अभिभूतस्याऽदत्तहारिणः
भावेऽतृप्तश्च परिग्रहे च ।
माया-मृषा वर्धते लोभ-दोषात्
तत्रापि दुःखान्न विमुच्यते सः ॥

मृषा पश्चाच्च पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखा दुरन्तः ।
एवमदत्तानि समाददानः
भावेऽतृप्तो दुःखितोऽनिश्रः ॥

भावानुरक्तस्य नरस्यैवं
कुत सुख भवेत् कदापि किञ्चित् ?
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वर्त्तयति यस्य कृते दुःखम् ॥

एवमेव भावे गतः प्रदोषम्
उपैति दुःखौघ-परम्परा^१ ।
प्रदुष्ट-चित्तश्च चिनोति कर्म
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

भावे विरक्तो मनुजो विशोक
एतेन दुःखौघ-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्
जलेनेव पुष्करिणी-पलाशम् ।

९४—जो भाव में अतृप्त होता है और उसके परिग्रहण में आसक्त-उपसक्त होता है, उसे सन्तुष्टि नहीं मिलती। वह असन्तुष्टि के दोष से दुःखी और लोभ-ग्रस्त होकर दूसरे की वस्तुएँ चुरा लेता है।

९५—वह तृष्णा से पराजित होकर चोरी करता है और भाव-परिग्रहण में अतृप्त होता है। अतृप्ति-दोष के कारण उसके माया-मृषा की वृद्धि होती है। माया-मृषा का प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता।

९६—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले और बोलते समय वह दुःखी होता है। उसका पर्यवसान भी दुःखमय होता है। इस प्रकार वह भाव में अतृप्त होकर चोरी करता हुआ दुःखी और आश्रयहीन हो जाता है।

९७—भाव में अनुरक्त पुरुष को उक्त कथनानुसार कदाचित् किञ्चित् सुख भी कहाँ से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-दुःख (अतृप्ति का दुःख) बना रहता है।

९८—इसी प्रकार जो भाव में द्वेष रखता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त होता है। प्रद्वेष-युक्त चित्त वाला व्यक्ति कर्म का वन्ध करता है, वही परिणाम-काल में उसके लिए दुःख का हेतु बनता है।

९९—भाव से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त बन जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र जल में लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह ससार में रह कर अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं होता।

१००—एविन्दियत्था य मणस्स अत्था
दुक्खस्स हेउं मणुयस्स रागिणो।
ते चेव थोव पि कयाइ दुक्ख
न वोयरागस्स करेन्ति किञ्चित्॥

एवमिन्द्रियार्थाश्च मनसोऽर्थाः
दुःखस्य हेतवो मनुजस्य रागिणः ।
ते चैव स्तोकमपि कदापि दुःखं
न वीतरागस्य कुर्वन्ति किञ्चित् ॥

१००—इस प्रकार इन्द्रिय और मन के
विषय रागी मनुष्य के लिए दुःख के हेतु होते
हैं। वे वीतराग के लिए कभी किञ्चित् भी
दुःखदायी नहीं होते।

१०१—न कामभोगा समय उवेन्ति
न यावि भोगा विगड उवेन्ति।
जे तप्पओसी य परिग्गही य
सो तेमु मोहा विगड उवेड ॥

न काम-भोगाः समतामुपयन्ति
न चापि भोगा विकृतिमुपयन्ति ।
यस्तत्प्रदोषी च परिग्रही च
स तेषु मोहाद् विकृतिमुपैति ॥

१०१—काम-भोग समता के हेतु भी
नहीं होते और विकार के हेतु भी नहीं होते।
जो पुरुष उनके प्रति द्वेष या राग करता है,
वह तद्विषयक मोह के कारण विकार को
प्राप्त होता है।

१०२—कोह च माण च तहेव माय
लोह दुग्गुह्य अरड रड च।
हास भय सोगपुमित्थिवेय
नपुसवेय विविहे य भावे ॥

क्रोध च मान च तथैव माया
लोभ जुगुप्सामरति रति च ।
हास भय शोक-पुस्त्री-वेदं
नपुसक-वेद विविधाश्च भावान् ॥

१०२—जो काम-गुणों में आनक्त होता
है, वह क्रोध, मान, माया, लोभ, जुगुप्सा,
वरति, रति, हास्य, भय, शोक, पुत्स्य-वेद,
स्त्री-वेद, नपुसक-वेद तथा हर्ष, विषाद आदि
विविध भाव—

१०३—आवज्जई एवमणेगरुवे
एवविहे कामगुणेमु सत्तो।
अन्ते य एयप्पभवे विमेसे
कारुणदीणे हिरिमे वडस्से ॥

आपद्यते एवमनेक-रूपान्
एव विद्वान् काम-गुणेषु सक्तः ।
अन्याञ्चैतत्प्रभवान् विशेषान्
कारुण्य-दीनो ह्रीमान् द्वेष्ट्यः ॥

१०३—इस प्रकार अनेक प्रकार के
विकारों को और उनमें उत्पन्न अन्य परिणामों
को प्राप्त होता है और वह कल्याण्यद, दीन,
लजित और अप्रिय बन जाता है।

१०४—कप्प न डच्छिज्ज सहायलिच्छू
पच्छाणुतावेय^१ तवप्पभाव।
एव वियारे अमियप्पयारे
आवज्जई इन्दियचोरवस्से ॥

कल्प नेच्छेत्सहाय-लिप्सु
पश्चादनुतापेन तपः प्रभावम् ।
एव विकारानमित-प्रकारान्
आपद्यते इन्द्रिय चोर-वश्यः ॥

१०४—‘यह मेरी धारीरिक सेवा
करेगा’—इस लिप्सा से कल्प (योग्य लिप्य)
की भी इच्छा न करे। मायु इनकर मेंने
कितना कष्ट स्वीकार किया—इस प्रकार
अनुतप्त व भोग-मृदयालु होकर तप के फल की
इच्छा न करे। जो ऐसी इच्छा करता है वह
इन्द्रियरूपी चोरो का वशवर्ती बना हुआ
अपरिमित प्रकार के विकारों को प्राप्त
होता है।

१०५—तओ से जायन्ति पओयणाड
निमज्जिड मोहमहण्वम्मि।
सुहेसिणो दुक्खविणोयणट्ठा^२
तप्पच्चय^३ उज्जमए य रागी ॥

ततस्तस्य जायन्ते प्रयोजनानि
निमज्जितु मोह-महार्णवे ।
सुखैषिणो दुःख-विनोदनायं
तत्प्रत्ययमुद्यच्छति च रागी ॥

१०५—विकारों की प्राप्ति के पश्चात्
उसके समक्ष उसे मोह-महार्णव में डूबने वाले
विषय-सेवन के प्रयोजन उपस्थित होते हैं।
फिर वह मुख की प्राप्ति और दुःख के विनाश
के लिए अनुरक्त बनकर उन प्रयोजनों की पूर्ति
के लिए उद्यम करता है।

१. पच्छाणुतावेण (छ०)।

२. दुक्ख विमोयणाय (वृ० पा०)।

३. तप्पच्चया (वृ० पा०)।

१०६—विरज्जमाणस्स य इन्द्रियत्था
सहाइया^१ तावइयप्पगारा ।
न तस्स सव्वे वि मणुन्नय वा
निव्वत्तयन्ती अमणुन्नय वा ॥

१०७—एव ससकप्पविकप्पणासु^२
सजायई समयमुवट्ठियस्स ।
'अत्थे य सकप्पयओ'^३ तओ से
पहीयए कामगुणेषु तण्हा ॥

१०८—स वीयरगो कयसव्वकिच्चो
खवेइ नाणावरणं खणेण ।
तहेव ज दसणमावरेइ
ज चऽन्तराय पकरेइ कम्म ॥

१०९—सव्व तओ जाणइ पासए य
अमोहणे होइ निरन्तराए ।
अणासवे भाणसमाहिजुत्ते
आउक्खए मोक्खमुवेइ सुद्धे ॥

११०—सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को
ज बाहई सयय जन्तुमेय ।
दोहामयविप्पमुक्को पसत्थो
तो होइ अच्चन्तसुही कयत्थो ॥

१११ अणाइकालप्पभवस्स एसो
'सव्वस्स दुक्खस्स
पमोक्खमग्गो'^४ ।
वियाहिओ ज समुविच्च सत्ता
कमेण अच्चन्तसुही भवन्ति ॥
—त्ति वेमि ।

विरज्यमानस्य चेन्द्रियार्था
शब्दाद्यास्तावत्प्रकाश ।
न तस्य सर्वेऽपि मनोज्ञतां वा
निर्वर्त्तयन्ति अमनोज्ञता वा ॥

एव स्व-सकल्प-विकल्पनासु
संजायते समतोपस्थितस्य ।
अर्थाच्च सकल्पयतस्ततस्तस्य
प्रहीयते काम-गुणेषु तृष्णा ॥

स वीतरागः कृत-सर्व-कृत्य
क्षपयति ज्ञानावरण क्षणेन ।
तथैव यत् दर्शनमावृणोति
यदन्तराय प्रकरोति कर्म ॥

सर्वं ततो जानाति पश्यति च
अमोहनो भवति निरन्तरायः ।
अनाश्रवो ध्यान-समाधि-युक्त
आयुः क्षये मोक्षमुपैति शुद्धः ॥

स तस्मात् सर्वस्मात् दुःखाद् मुक्तः
यद् बाधते सतत जन्तुमेनम् ।
दीर्घामय-विप्रमुक्तः प्रशस्तः
ततो भवत्यत्यन्त-सुखी कृतार्थः ॥

अनादि-काल-प्रभवस्यैषः
सर्वस्य दुःखस्य प्रमोक्ष-मार्गः ।
व्याख्यातः य समुपेत्य सत्त्वाः
क्रमेणाऽत्यन्त-सुखिनो भवन्ति ॥

—इति ब्रवीमि ।

१०६—जितने प्रकार के शब्द आदि
इन्द्रिय-विषय है, वे सब विरक्त मनुष्य के मन
में मनोज्ञता या अमनोज्ञता उत्पन्न नहीं करते ।

१०७—'अपने राग-द्वेषात्मक सकल्प ही
सब दोषों के मूल है'—जो इस प्रकार के
चिन्तन में उद्यत होता है तथा 'इन्द्रिय-विषय
दोषों के मूल नहीं है'—इस प्रकार का सकल्प
करता है, उसके मन में समता उत्पन्न होती
है । उससे उसकी काम-गुणों में होने वाली
तृष्णा प्रक्षीण हो जाती है ।

१०८— फिर वह वीतराग सब दिशाओं
में कृतकृत्य होकर क्षण भर में ज्ञानावरण,
दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय कर
देता है ।

१०९—तत्पश्चात् वह सब कुछ जानता
और देखता है तथा मोह और अन्तराय रहित
हो जाता है । अन्त में वह आश्रव रहित और
ध्यान के द्वारा समाधि में लीन और शुद्ध
होकर आयुष्य का क्षय होते ही मोक्ष को प्राप्त
कर लेता है ।

११०—जो इस जीव को निरन्तर
पीडित करता है, उस अशेष दुःख और दीर्घ-
कालीन कर्म-रोग से वह मुक्त हो जाता है ।
इसलिए वह प्रशसनीय, अत्यन्त सुखी और
कृतार्थ हो जाता है ।

१११— मैंने अनादि कालीन सब दुखों
से मुक्त होने का मार्ग बताया है, उसे स्वीकार
कर जीव क्रमशः सुखी हो जाते हैं ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१ वण्णाइया (वृ० पा०) ।

२. "विकप्पणासो (वृ० पा०)

३ अत्थे असकप्पयतो (वृ० पा०) ।

४. ससार चक्खस्स विमोक्खमग्गे (वृ० पा०) ।

તોતીસહસ્રં અઞ્જલયણં :
કસ્મપયડી

ત્રયસ્ત્રિણ અધ્યયન :
કર્મ-પ્રકૃતિ

आत्सुख

इस अध्ययन में कर्म की प्रकृतियों का निरूपण है, इसलिए इसका नाम 'कम्मपयलो'—'कर्म-प्रकृति' है।

'कर्म' शब्द भारतीय दर्शन का बहु परिचित शब्द है। जैन, बौद्ध और वैदिक—सभी दर्शनों ने इसे मान्यता दी है। यह क्रिया की प्रतिक्रिया है, अतः इसे अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। वैदिक आदि दर्शन कर्म को सस्कार रूप में स्वीकार करते हैं। जैन-दर्शन की व्याख्या उनसे विलक्षण है। उसके अनुसार कर्म पौद्गलिक है। जब-जब जीव शुभ या अशुभ प्रवृत्ति में प्रवृत्त होता है तब-तब वह अपनी प्रवृत्ति से पुद्गलों का आकर्षण करता है। वे आकृष्ट पुद्गल आत्मा के परिपार्श्व में अपने विशिष्ट रूप और शक्ति का निर्माण करते हैं। उन्हें कर्म कहा जाता है।

कर्म की मूल प्रवृत्तियाँ आठ हैं—

१. ज्ञानावरण—जो पुद्गल ज्ञान को आवृत्त करते हैं।
२. दर्शनावरण—जो पुद्गल दर्शन को आवृत्त करते हैं।
३. वेदनीय—जो पुद्गल सुख-दुःख के हेतु बनते हैं।
४. मोहनीय—जो पुद्गल दृष्टिकोण और चारित्र में विकार उत्पन्न करते हैं।
५. आयुष्य—जो पुद्गल जीवन-काल को निष्पन्न करते हैं।
६. नाम—जो पुद्गल शरीर आदि विविध रूपों की प्राप्ति में हेतु होते हैं।
७. गोत्र—जो पुद्गल उच्चता या नीचता की अनुभूति में हेतु होते हैं।
८. अन्तराय—जो पुद्गल शक्ति-विकास में बाधक होते हैं।

१—ज्ञानावरण पाँच प्रकार का है—

- (१) आभिनिबोधक (मति) ज्ञानावरण,
- (२) श्रुत ज्ञानावरण,
- (३) अवधि ज्ञानावरण,
- (४) मन पर्यव ज्ञानावरण और
- (५) केवल ज्ञानावरण।

२—दर्शनावरण नौ प्रकार का है—

- (१) निद्रा,
- (२) प्रचला,
- (३) निद्रा-निद्रा,
- (४) प्रचला-प्रचला,
- (५) स्त्यानर्द्धि,
- (६) चक्षुदर्शनावरण,
- (७) अचक्षुदर्शनावरण,
- (८) अवधिदर्शनावरण और
- (९) केवलदर्शनावरण।

३—वेदनीय दो प्रकार का है—

- (१) सात वेदनीय और
- (२) असात वेदनीय ।

४—मोहनीय दो प्रकार का है—

- (१) दर्शन मोहनीय । इसके तीन भेद हैं—सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय और सम्यक्-मिथ्यात्व मोहनीय ।

- (२) चारित्र मोहनीय । यह दो प्रकार का है—कषाय मोहनीय और नो-कषाय मोहनीय ।

कषाय मोहनीय १६ प्रकार का है—

अनन्तानुबन्धी चतुष्क—	क्रोध, मान, माया, लोभ ।
अप्रत्याख्यान चतुष्क—	क्रोध, मान, माया, लोभ ।
प्रत्याख्यान चतुष्क—	क्रोध, मान, माया, लोभ ।
सज्जलन चतुष्क—	क्रोध, मान, माया, लोभ ।

नो-कषाय मोहनीय नौ प्रकार का है—

हास्य, रति, अरति, भय, जुगुप्सा, पुवेद, स्त्री वेद, नपुंसक वेद ।

५—आयुष्य चार प्रकार का है—

- (१) नैरयिक आयु,
- (२) तिर्यग् आयु,
- (३) मनुष्य आयु और
- (४) देव आयु ।

६—नाम दो प्रकार का है—

- (१) शुभ और
- (२) अशुभ ।

इन दोनों के अनेक अवान्तर भेद हैं ।

७—गोत्र दो प्रकार का है—

- (१) उच्च गोत्र और
- (२) नीच गोत्र ।

उच्च गोत्र-कर्म के आठ भेद हैं—

- (१) प्रशस्त जाति,
- (२) प्रशस्त कुल,
- (३) प्रशस्त बल,
- (४) प्रशस्त रूप,
- (५) प्रशस्त तपस्या,
- (६) प्रशस्त श्रुत (ज्ञान),
- (७) प्रशस्त लाभ और
- (८) प्रशस्त ऐश्वर्य ।

नीच गोत्र-कर्म के आठ भेद है—

- (१) अप्रशस्त जाति,
- (२) अप्रशस्त कुल,
- (३) अप्रशस्त वल,
- (४) अप्रशस्त रूप
- (५) अप्रशस्त तपस्या,
- (६) अप्रशस्त (ज्ञान)
- (७) अप्रशस्त काम
- (८) अप्रशस्त रेश्वर्य

८—अन्तराय-कर्म पाँच प्रकार का है—

- (१) दानान्तराय,
- (२) कामान्तराय,
- (३) भोगान्तराय,
- (४) उपभोगान्तराय और
- (५) वीर्यान्तराय

१—कर्मों की प्रकृति—

कर्म की मूल प्रकृतियाँ उपर्युक्त आठ ही हैं। शेष सब उनकी उत्तर प्रकृतियाँ हैं। इनका विस्तृत वर्णन प्रज्ञापना (पद २३) में है।

२—कर्मों की स्थिति—

प्रत्येक कर्म की स्थिति होती है। स्थिति-काल के पूर्ण होने पर वह कर्म नष्ट हो जाता है। कई निमित्तों से स्थिति न्यून या अधिक भी होती है।

(१) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस क्रोडाक्रोड सागर और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

(२) मोहनोय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ७० क्रोडाक्रोड सागर तथा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

(३) आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर तथा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

(४) नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ३० क्रोडाक्रोड सागर तथा जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है।

३—कर्मों का अनुभाव—

कर्म के विपाक को अनुभाग, अनुभाव, फल या रस कहा जाता है। विपाक दो प्रकार का है—तीव्र और मन्द। तीव्र परिणामों से बन्धे हुए कर्म का विपाक तीव्र और मन्द परिणामों से बन्धे हुए कर्म का मन्द होता है। विशेष प्रयत्न के द्वारा तीव्र मन्द और मन्द तीव्र हो जाता है।

४—कर्मों का प्रदेशाग्र—

कर्म प्रायोग्य पुद्गल जीव की शुभ-अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा आकृष्ट होकर आत्मा के प्रदेशों के साथ चिपक जाते हैं। कर्म अनन्त-प्रदेशी पुद्गल-स्कन्ध होते हैं और आत्मा के असंख्य प्रदेशों के साथ रकीभाव हो जाते हैं।

तृतीयसङ्गमं अज्ज्ञयणं : त्रयस्त्रिंश अध्ययन

कर्मपयडो : कर्म-प्रकृतिः

मूल
१—अदृ कम्माइं वोच्छामि
आणुपुब्बि जहक्कमं^१ ।
जेहि बद्धो अयं जीवो
संसारे परिवत्तए^२ ॥

संस्कृत छाया
अष्ट कर्माणि वक्ष्यामि
आनुपूर्व्या यथाक्रमम् ।
यैर्वद्धोऽयं जीवः
संसारे परिवर्तते ॥

हिन्दी अनुवाद
१—मैं अनुपूर्वी से क्रमानुसार (पूर्वानु-
पूर्वी से) आठ कर्मों का निरूपण करूँगा,
जिनसे बन्धा हुआ यह जीव ससार में परिवर्तन
करता है ।

२—नाणस्सावरणिज्ज
दंसणावरणं तहा ।
वेयणिज्जं तहा मोहं
आउकम्मं तहेव य ॥

ज्ञानस्यावरणीय
दर्शनावरणं तथा ।
वेदनीय तथा मोह
आयु -कर्म तथैव च ॥

२—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय,
मोह, आयु,

३—नामकम्मं च गोयं च
अन्तराय तहेव य ।
एवमेयाइ कम्माइं
अट्टेव उ समासओ ॥

नाम कर्म च गोत्रं च
अन्तरायस्तथैव च ।
एवमेतानि कर्माणि
अष्टैव तु समासत ॥

३—नाम, गोत्र और अन्तराय—इस
प्रकार संक्षेप में ये आठ कर्म हैं ।

४—नाणावरणं पचविहं
सुय आभिणिबोहिय ।
ओहिनाणं तइय
मणनाणं च केवल ॥

ज्ञानावरणं पंचविधं
श्रुतमाभिनिबोधिकम् ।
अवधि-ज्ञानं तृतीयं
मनो-ज्ञानं च केवलम् ॥

४—ज्ञानावरण पाँच प्रकार का है—
(१) श्रुत-ज्ञानावरण, (२) आभिनिबोधिक-
ज्ञानावरण, (३) अवधि-ज्ञानावरण, (४) मनो-
ज्ञानावरण और (५) केवल-ज्ञानावरण ।

५—निद्दा तहेव पयला
निद्धानिद्दा य पयलपयला य ।
तत्तो य थीणगिद्धी उ
पचमा होइ नायव्वा ॥

निद्रा तथैव प्रचला
निद्रा-निद्रा प्रचला-प्रचला च ।
ततश्च स्त्यान-गृद्धिस्तु
पंचमी भवति ज्ञातव्या ॥

५—(१) निद्रा, (२) प्रचला, (३) निद्रा-
निद्रा, (४) प्रचला-प्रचला, (५) स्त्यान-
गृद्धि,

१. छणेह मे (वृ० पा०) ।

२. परिभम्मण (वृ० पा०) ।

६—चक्खुमचक्खुओहिस्स
दंसणे केवले य आवरणे ।
एव^१ तु नवविगप्पं
नायव्वं दंसणावरणं ॥

चक्षुरचक्षुरवधेः
दर्शने केवले चावरणे ।
एव तु नव-विकल्पं
ज्ञातव्य दर्शनावरणम् ॥

६—(६) चक्षु-दर्शनावरण, (७) अचक्षु-दर्शनावरण, (८) अवधि-दर्शनावरण और (९) केवल-दर्शनावरण—इस प्रकार दर्शनावरण नौ प्रकार का है ।

७—वेयणीय पि य^२ दुविह
सायमसाय च आहिय ।
सायस्स उ बहू भेया
एमेव असायस्स वि ॥

वेदनीयमपि च द्विविध
सातमसातं चाख्यातम् ।
सातस्य तु बहवो भेदाः
एवमेवाऽसातस्यापि ॥

७—वेदनीय दो प्रकार का है—(१) सात-वेदनीय और (२) असात-वेदनीय । इन दोनों वेदनीयो के अनेक प्रकार हैं ।

८—मोहणिज्ज पि दुविहं
दसणे चरणे तहा ।
दसणे तिविह वुत्तं
चरणे दुविह भवे ॥

मोहनीयमपि द्विविधं
दर्शने चरणे तथा ।
दर्शने त्रिविधमुक्तं
चरणे द्विविध भवेत् ॥

८—मोहनीय भी दो प्रकार का है—(१) दर्शन-मोहनीय और (२) चारित्र-मोहनीय । दर्शन-मोहनीय तीन प्रकार का और चारित्र-मोहनीय दो प्रकार का होता है ।

९—सम्मत्तं चेव मिच्छत्त
सम्मामिच्छत्तमेव य ।
एयाओ तिन्नि पयडोओ
मोहणिज्जस्स दसणे ॥

सम्यक्त्व चैव मिथ्यात्व
सम्यङ्-मिथ्यात्वमेव च ।
एतास्तिस्त्रः प्रकृतय
मोहनीयस्य दर्शने ॥

९—(१) सम्यक्त्व, (२) मिथ्यात्व और (३) सम्यग्-मिथ्यात्व—दर्शन-मोहनीय की ये तीन प्रकृतियाँ हैं ।

१०—‘चरित्तमोहण कम्मं
दुविह तु वियाहिय’^३ ।
‘कसायमोहणिज्जं तु’^४
नोकसाय तहेव य ॥

चरित्र-मोहनं कर्म
द्विविध तु व्याख्यातम् ।
कषाय-मोहनीयं च
नोकषायं तथैव च ॥

१०—चारित्र-मोहनीय दो प्रकार का है—(१) कषाय-मोहनीय और (२) नोकषाय-मोहनीय ।

११—सोलसविहभेएण
कम्म तु कसायज ।
सत्तविह नवविहं वा
कम्म नोकसायज ॥

षोडशविधं भेदेन
कर्म तु कषायजम् ।
सप्तविधं नवविधं वा
कर्म च नोकषायजम् ॥

११—कषाय-मोहनीय कर्म के सोलह भेद होते हैं और नोकषाय-मोहनीय कर्म के सात या नौ भेद होते हैं ।

१ एव (अ) ।

२ दु (झ०) ।

३. चरित्तमोहणिज्जं दुविहं वोच्छामि अणुपुण्वसो (धृ० पा०) ।

४. वेयणिज्जं य (वृ०) ।

१२—नेरइयतिरिक्खाउ

मणुस्साउ त्तेव य ।
देवाउय चउत्थ तु^१
आउकम्म चउन्विह ॥

नेरयिक-तिर्यगायुः

मनुष्यायुस्तथैव च ।
देवायुश्चतुर्थं तु
आयु-कर्म चतुर्विधम् ॥

१२—आयु-कर्म चार प्रकार का है—

(१) नेरयिक-आयु, (२) तिर्यग्-आयु, (३)
मनुष्य-आयु और (४) देव-आयु ।

१३—नाम कम्म तु^२ दुविह

सुहमसुह 'च आहिय'^३ ।
सुहस्स उ^४ वहू भैया
एमेव असुहस्स वि ॥

नाम कर्म द्विविध

शुभमशुभ चाख्यातम् ।
शुभस्य बहवो भेदाः
एवमेवासुभस्यापि ॥

१३—नाम-कर्म दो प्रकार का है—(१)

शुभ-नाम, और (२) अशुभनाम ।
इन दोनों के अनेक प्रकार हैं ।

१४—गोय कम्म दुविह

उच्च नीय च आहिय ।
उच्च अट्टविह होड
एव नीय पि आहिय ॥

गोत्रं कर्म द्विविध

उच्च नीच चाख्यातम् ।
उच्चमष्टविध भवति
एव नीचमप्याख्यातम् ॥

१४—गोत्र-कर्म दो प्रकार है—(१) उच्च
गोत्र और (२) नीच गोत्र । इन दोनों के आठ-
आठ प्रकार हैं ।

१५—दाणे लाभे य भोगे य

उवभोगे वीरिए तहा ।
पचविहमन्तराय
समासेण वियाहिय ॥

दाने लाभे च भोगे च

उपभोगे वीर्यं तथा ।
पंचविधोन्तरायः
समासेन व्याख्यातः ॥

१५—अन्तराय-कर्म संक्षेप में पाँच प्रकार
का है—(१) दानान्तराय, (२) लाभान्तराय,
(३) भोगान्तराय, (४) उपभोगान्तराय और
(५) वीर्यान्तराय ।

१६—एयाओ मूलपयडीओ

उत्तराओ य आहिया ।
पएसग्ग खेत्तकाले य
भाव चादुत्तर सुण ॥

एता मूल-प्रकृतयः

उत्तराश्चाख्याता ।
प्रदेशाग्र क्षेत्र-कालौ च
भाव चोत्तर शृणु ॥

१६—कर्मों की ये ज्ञानावरण आदि
आठ मूल प्रकृतियाँ और श्रुत-ज्ञानावरण आदि
सत्तावन उत्तर प्रकृतियाँ कही गई हैं । इसके
आगे तू उनके प्रदेशाग्र (परमाणुओं के परि-
माण) क्षेत्र, काल और भाव (अनुभाग-पर्याय)
को सुन ।

१७—सव्वेसि चैव कम्माण

पएसग्गमणन्तगं ।
गण्ठियसत्ताईयं^५
अन्तो सिद्धाण आहियं ॥

सर्वेषां चैव कर्मणां

प्रदेशाग्रमनन्तकम् ।
ग्रन्थिक-सत्त्वातीतम्
अन्तः सिद्धानामाख्यातम् ॥

१७—एक समय में ग्राह्य सब कर्मों का
प्रदेशाग्र अनन्त है । वह अवश्य जीवों से अनन्त
गुण अधिक और सिद्ध आत्माओं के अनन्तवै-
भाग जितना होता है ।

१. २,—× (उ, ऋ०) ।

३. वियाहिय (उ, ऋ०) ।

४. य (उ, ऋ०) ।

५. गण्ठ सत्ताणाइ (घृ० पा०) ।

१८—सव्वजीवाण कम्मं तु
सगहे छदिसागय ।
सव्वेसु वि पएसेसु
सव्व सव्वेण बद्धग ॥

सर्व-जीवानां कर्म तु
संग्रहे षड्दिशागतम् ।
सर्वेष्वपि प्रदेशेषु
सर्व-सर्वेण बद्धकम् ॥

१८—सब जावों के संग्रह-योग्य पुद्गल
छहो दिशाओ—आत्मा ने सलग्न सभी
आकाश प्रदेशों में स्थित हैं । वे सब कर्म-
परमाणु बन्ध-काल में एक आत्मा के सभी
प्रदेशों के साथ सम्बद्ध होते हैं ।

१९—उदहीसरिनामाणं
तोसई कोडिकोडिओ ।
उक्कोसिया ठिई होइ
अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥

उदधि-सदृग्-नाम्नां
त्रिंशत्कोटि-कोट्यः ।
उत्कृष्टा स्थितिर्भवति
अन्तर्मुहूर्त्तं जघन्यिका ॥

१९-२०—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय,
वेदनीय और अन्तराय-कर्म की उत्कृष्ट स्थिति
तीस कोटि-कोटि सागर और जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त्त की होती है ।

२०—आवरणिज्जाण दुण्ह पि
वेयणिज्जे तहेव य ।
अन्तराए य कम्मम्मि
ठिई एसा वियाहिया ॥

आवरणयोर्द्वयोरपि
वेदनीये तथैव च ।
अन्तराये च कर्मणि
स्थितरेषा व्याख्याता ॥

२०—

२१—उदहीसरिनामाणं
सत्तरि कोडिकोडिओ ।
मोहणिज्जस्स उक्कोसा
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

उदधि-सदृग्-नाम्ना
सप्ततिः कोटि-कोट्यः ।
मोहनीयस्योत्कृष्टा
अन्तर्मुहूर्त्तं जघन्यिका ॥

२१—मोहनीय-कर्म की उत्कृष्ट स्थिति
सत्तर कोटि-कोटि सागर और जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त्त की होती है ।

२२—तेत्तीस सागरोवमा
उक्कोसेण वियाहिया ।
ठिई उ आउकम्मस्स
अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
स्थितिस्त्वायुः-कर्मणः
अन्तर्मुहूर्त्तं जघन्यिका ॥

२२—आयु-कर्म की उत्कृष्ट स्थिति
तेतीस सागर और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की
होती है ।

२३—उदहीसरिनामाणं
वीसई कोडिकोडिओ ।
नामगोत्ताण उक्कोसा
अट्ट मुहुत्ता जहन्निया ॥

उदधि-सदृग्-नाम्नां
विंशति कोटि-कोट्यः ।
नाम-गोत्रयोस्तुत्कृष्टा
अष्ट मुहूर्त्ता जघन्यिका ॥

२३—नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट
स्थिति बीस कोटि-कोटि सागर और जघन्य
स्थिति आठ मुहूर्त्त की होती है ।

२४—सिद्धाणऽणन्तभागो य^१
अणुभागा हवन्ति उ ।
सव्वेसु वि पएसग्गं
सव्व जीवेसुऽइच्छियं^२ ॥

सिद्धानामन्त-भागश्च
अनुभागा भवन्ति तु ।
सर्वेष्वपि प्रदेशाग्रं
सर्वजीवेभ्योऽतिक्रान्तम् ॥

२४—कर्मों के अनुभाग सिद्ध आत्माओं
के अनन्तवें भाग जितने होते हैं । सब अनुभागों
का प्रदेश-परिमाण सब जीवों से अधिक
होता है ।

२५—तस्मा एएसि कम्माणं
अणुभागे वियाणिया ।
एएसि सवरे चैव
खवणे य जए वुहे ॥
—त्ति वेमि ।

तस्मादेतेषां कर्णणाम्
अनुभागान् विज्ञाय ।
एतेषां सव्वरे चैव
क्षपणे च यतेत वुध ॥
— इति सव्वीमि ।

२५—इन कर्मों के अनुभागों को जान-
कर बुद्धिमान इनका निरोध और क्षय करने
का यत्न करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. × (उ, ऋ०) ।

२. जीवे स इच्छिय (अ, सु०), जीवे अहिच्छियं (स) ।

चतुर्तीसद्वयं अङ्गवर्णः :
लेखकवर्णः

चतुर्स्त्रिंश अङ्गवर्णः :
लेखकवर्णः

आन्तुख

इस अध्ययन का नाम 'लेसज्जयण'—'लेदयाध्ययन' है। इसका अधिकृत विषय कर्म-लेदया है।^१ इसमें कर्म-लेदया के नाम, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयुष्य का निरूपण किया गया है। इसका विशद वर्णन प्रज्ञापना (पद १७) में मिलता है।

लेदया एक प्रकार का पौद्गलिक पर्यावरण है। इसकी खोज जीव और पुद्गल के स्कन्धों का अध्ययन करते समय हुई है। जीव से पुद्गल और पुद्गल से जीव प्रभावित होते हैं। जीव को प्रभावित करने वाले पुद्गलों के अनेक वर्ग हैं। उनमें एक वर्ग का नाम लेदया है। लेदया शब्द का अर्थ आणविक-आमा, कान्ति, प्रमा या छाया है।^२ छाया पुद्गलों से प्रभावित होने वाले जीव-परिणामों को भी लेदया कहा गया है।^३ प्राचीन साहित्य में शरीर के वर्ण, आणविक-आमा और उससे प्रभावित होने वाले विचार—इन तीनों अर्थों में लेदया की मार्गणा की गई है।

शरीर के वर्ण और आणविक-आमा को द्रव्य-लेदया^४ (पौद्गलिक-लेदया) और विचार को भाव-लेदया^५ (मानसिक-लेदया) कहा गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में कृष्ण, नील और कापोत—इस प्रथम त्रिक को 'अधर्म-लेदया' कहा गया है। (श्लो० ५६, ५७)

अध्ययन के आरम्भ में छहों लेदयाओं को 'कर्म-लेदया' कहा गया है। (श्लो० १)

आणविक-आमा कर्म-लेदया का ही नामान्तर है। आठ कर्मों में छठा कर्म नाम है। उसका सम्बन्ध शरीर-रचना सम्बन्धी पुद्गलों से है। उसकी एक प्रकृति शरीर-नाम-कर्म है। शरीर-नाम-कर्म के पुद्गलों का ही एक वर्ग 'कर्म-लेदया' कहलाता है।^६

लेदया की अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं। जैसे—

१—योग-परिणाम।^७

२—कषायोदय रज्जित योग-प्रवृत्ति।^८

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ५४१

अहिगारो कम्मलेसाण्।

२—बृहद्बृत्ति, पत्र ६५०

लेशयति—श्लेषयतीवात्मनि जननयनानीति लेख्या—अतीव चक्षुराक्षेपिका स्निग्धदीप्तरूपा छाया।

३—मूलाराधना, ७११६०७

जह् वाहिरलेस्साओ, किन्हादीओ हवति पुरिसस्स।
अठ्भन्तरलेस्साओ, तह् किन्हादीय पुरिसस्स ॥

४—(क) गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा ४६४

वण्णोदयेण जणिदो सरीरवण्णो दु दन्वदो लेस्सा।
सा सोढा किन्हादी अण्यमेया समेयेण ॥

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ५३९।

५—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ५४०।

६—बृहद्बृत्ति, पत्र ६५०।

७—वही, पत्र ६५०।

८—गोम्मटसागर, जीवकाण्ड, गाथा ४६० :

जोगपउत्ती लेस्सा कसायउदयाणुरजिया होइ।

३—कर्म-निष्पन्न ।^१

४—कर्मण शरीर की भाँति कर्म-वर्गणा निष्पन्न कर्म-द्रव्य ।^२

इन शास्त्रीय परिभाषाओं के अनुसार लेइया से जोव और कर्म पुद्गलों का सम्बन्ध होता है, कर्म की स्थिति निष्पन्न होती है और कर्म का उदय होता है। इन सारे अभिमतों से इतनी निष्पत्ति तो निश्चित है कि आत्मा को शुद्धि और अशुद्धि के साथ लेइया जुड़ी हुई है।

प्रभाववाद की दृष्टि से दोनों परम्पराएँ प्राप्त होती हैं—

१—पौद्गलिक लेइया का मानसिक विचारों पर प्रभाव।

२—मानसिक विचारों का लेइया पर प्रभाव।

कृष्णादिद्रव्यसाचिण्यात्, परिणामो य आत्मन ।

स्फटिकस्येव तत्राय, लेइया-शब्दः प्रवर्तते ॥

इस प्रसिद्ध श्लोक की ध्वनि यही है—कृष्ण आदि लेइया-पुद्गल जैसे होते हैं, वैसे ही मानसिक परिणति होती है। दूसरी धारा यह है—कषाय को मदता से अध्यवसाय को शुद्धि होता है और अध्यवसाय को शुद्धि से लेइया को शुद्धि होता है।^३ प्रस्तुत अध्ययन से भी यही ध्वनित होता है।

पाँच आश्रवों में प्रवृत्त मनुष्य कृष्ण-लेइया में परिणत होता है अर्थात् उसको आणविक आभा (पर्यावरण) कृष्ण होती है। लेइया के लक्षण गोम्मटसार (जीवकाण्ड ५०८-५१६) तथा तत्त्वार्थ-त्राटि (४।३३) में मिलते हैं।

मनुस्मृति (१३।३६-३८) में सत्त्व, रजस् और तमस् के जो लक्षण और कार्य बतलाए गए हैं, वे लेइया के लक्षणों से तुलनीय हैं।

१—बृहद्बृत्ति, पत्र ६५०।

२—वही, पत्र ६५१।

३—(क) मूलाराधना, ७।१६११

लेस्सासोधी अज्झवसाणविसोधीए होइ जनस्स।

अज्झवसाणविसोधी, मदलेसायस्स णादव्वा ॥

(ख) मूलाराधना (अमितगति), ७।१६६७ :

अन्तर्विशुद्धितो जन्तो, शुद्धिः सम्पद्यते बहि।

बाह्यो हि शुध्यते दोषः सर्वमन्तरदोषतः ॥

चउतीसइमं अज्झयण : चतुस्त्रिंश अध्ययन

लेसज्झयणं : लेश्याध्ययनम्

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—लेसज्झयणं पवक्खामि आणुपुण्वि जहक्कम् । छण्हं पि कम्मलेसाण अणुभावे सुणेह मे ॥	लेश्याध्ययनं प्रवक्ष्यामि आनुपूर्व्या यथाक्रमम् । पण्णामपि कर्म-लेश्याना अनुभावान् शृणुत मे ॥	१—मैं अनुपूर्वी में क्रमानुसार (पूर्वानु- पूर्वी से) लेश्या-अध्ययन का निष्पन्न कहूँगा । छहों कर्म-लेश्याओं के अनुभावों को तुम मुझ से सुनो ।
२—नामाइं वण्णरसगन्ध- फासपरिणामलक्षणं । ठाण ठिड गड चाउ लेसाण तु सुणेह मे ॥	नामानि वर्ण-रस-गन्ध- स्पर्श-परिणाम-लक्षणानि । स्थान स्थितिं गतिं चायुः लेश्याना तु शृणुत मे ॥	२—लेश्याओं के नाम, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयुष्य को तुम मुझ से सुनो ।
३—किण्हा नीला य काऊ य तेऊ पम्हा तहेव य । सुकलेसा य छट्ठा उ' नामाउ तु जहक्कम् ॥	कृष्णा नीला च कापोती च तेजसी पद्मा तथैव च । शुक्ल-लेश्या च षष्ठी तु नामानि तु यथाक्रमम् ॥	३—यथाक्रम में लेश्याओं के ये नाम हैं—(१) कृष्ण, (२) नील, (३) कापोत, (४) तेजस्, (५) पद्म और (६) शुक्ल ।
४—जीमूयनिद्वसकासा गवलरिद्वसन्निभा । खजणजणनयणनिभा' किण्हलेसा उ वण्णओ ॥	स्निग्ध-जीमूत-सकाशा गवलारिष्टक-सन्निभा । खजनाल्लननयन-निभा कृष्ण-लेश्या तु वर्णतः ॥	४—कृष्ण लेश्या का वर्ण स्निग्ध मेघ, महिष-शृग, द्रोण-काक, खञ्जन, अजन व नयन-तारा के समान होता है ।
५—नीलाऽसोगसकासा चासपिच्छसमप्पभा । वेरुलियनिद्वसकासा नीललेसा उ वण्णओ ॥	नीलाऽशोक-सकाशा चापपिच्छ-समप्रभा । स्निग्धवैडूर्य-सकाशा नील-लेश्या तु वर्णतः ॥	५—नील-लेश्या का वर्ण नील, अशोक चाप पक्षी के परो व स्निग्ध वैडूर्य मणि के समान होता है ।

६—अयसीपुष्पसंकाशा
कोइलच्छदसन्निभा^१ ।
पारेवयगीवनिभा
काउलेसा उ वण्णओ ॥

अतसी पुष्प-संकाशा
कोकिलच्छद-सन्निभा ।
पारापतग्रीवा-निभा
कापोत-लेश्या तु वर्णतः ॥

६—कापोत लेश्या का वर्ण अलसी के पुष्प, तैल-कण्टक व कवूतर की ग्रीवा के समान होता है ।

७—हिंगुलुयधाउसंकाशा
तरुणाइच्चसन्निभा ।
सुयतुण्डपईवनिभा^२
तेउलेसा उ वण्णओ ॥

हिंगुलुक-धातु-संकाशा
तरुणादित्य-सन्निभा ।
शुकतुण्ड-प्रदाप-निभा
तेजो-लेश्या तु वर्णतः ॥

७—तेजो लेश्या का वर्ण हिंगुल, गेरु, नवोदित सूर्य, तोते की चोच, प्रदोप की ली के समान होता है ।

८—हरियालभेयसकाशा
हलिदाभेयसनिभा^३ ।
सणासनकुसुमनिभा
पम्हेलेसा उ^४ वण्णओ ॥

हरितालभेद-संकाशा
हरिद्राभेद-सन्निभा ।
सणासनकुसुम-निभा
पद्म-लेश्या तु वर्णतः ॥

८—पद्म लेश्या का वर्ण भिन्न हरिताल, भिन्न-हल्दी, सण और असन के पुष्प के समान होता है ।

९—सखककुन्दसकाशा
खीरपूरसमप्पभा^५ ।
रययहारसकाशा
सुक्कलेसा उ वण्णओ ॥

शङ्खाङ्कुन्द-संकाशा
क्षीरपूर-समप्रभा ।
रजतहार-संकाशा
शुक्ल-लेश्या तु वर्णतः ॥

९—शुक्ल लेश्या का वर्ण शख, अकमणि, कुन्द-पुष्प, दुग्ध-प्रवाह, चादी व मुक्ताहार के समान होता है ।

१०—जह कडुयतुम्बगरसो
निम्बरसो कडुयरोहिणिरसों वा ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
रसो उ^६ किण्हाए नायव्वो ॥

यथा कटुकतुम्बक-रसः
निम्ब-रसः कटुकरोहिणी-रसो वा ।
इतोऽप्यनन्त-गुणः
रसस्तु कृष्णाया ज्ञातव्यः ॥

१०—कडुवे तूम्बे, नीम व कटुक रोहिणी का रस जैसा कडुवा होता है, उससे भी अनन्त गुना कडुवा रस कृष्ण लेश्या का होता है ।

१. °च्छवि (वृ० पा०) ।

२. छयतुङ्गसकाशा, छयतुङ्गालत्तदीवाभा (वृ० पा०) ;

३. °सप्पभा (अ, आ, इ) ।

४. य (ऋ०) ।

५. खीरतूल° (इ०), खीरधार°, खीरपूर° (वृ० पा०) ।

६. य (ऋ०) ।

११—जह तिगडुयस्स य रसो
तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
रसो उ नीलाए नायव्वो ॥

यथा त्रिकटुकस्य च रसः
तीक्ष्णः यथा हस्तिपिप्पल्या वा ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
रसस्तु नीलाया ज्ञातव्यः ॥

११—त्रिकटु और गजपीपल का रस
जैसा तीखा होता है, उससे भी अनन्त गुना
तीखा रस नील लेण्या का होता है ।

१२—जह तरुणअम्बगरसो
तुवरकविट्ठस्स^१ वावि जारिसओ ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
रसो उ काऊए नायव्वो ॥

यथा तरुणाम्रक-रसः
तुवर-कपित्थस्य वापि यादृशः ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
रसस्तु कापोताया ज्ञातव्यः ॥

१२—कच्चे आम और कच्चे कपित्थ का
रस जैसा कर्मैला होता है, उससे भी अनन्त
गुना कसैला रस कापोत लेण्या का होता है ।

१३—जहपरिणयम्बगरसो
पक्ककविट्ठस्स वावि जारिसओ ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
रसो उ^२ तेऊए नायव्वो ॥

यथा परिणताम्रक-रसः
पक्व-कपित्थस्य वापि यादृशः ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
रसस्तु तेजो-लेण्याया ज्ञातव्यः ॥

१३—पके हुए आम और पके हुए कपित्थ
का रस जैसा खट-मीठा होता है, उससे भी
अनन्त गुना खट-मीठा रस तेजो लेण्या का
होता है ।

१४—वरवारुणोए व रसो
विविहाणव आसवाणजारिसओ ।
'महुमेरगस्स व रसो
एत्तो पम्हाए^३ परएण'^४ ॥

वरवारुण्या इव रसः
विविधानामिवाऽसवाना यादृशः ।
मधु-मैरेयकस्येवरसः
इतः पद्मायाः परकेण ॥

१४—प्रधान सुरा, विविध आसवों, मधु
और मैरेयक मदिरा का रस जैसा अम्ल—कसैला
होता है, उससे भी अनन्त गुना अम्ल—कसैला
रस पद्म लेण्या का होता है ।

१५—खज्जूरमुट्ठियरसो
खीररसो खण्डसक्कररसो वा ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
रसो उ^५ सुक्काए नायव्वो ॥

खर्जूर-मृद्वीका-रसः
क्षीर-रस खण्ड-शर्करा-रसो वा ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
रसस्तु शुक्लाया ज्ञातव्यः ॥

१५—खजूर, दाख, क्षीर, खाड और
शक्कर का रस जैसा मीठा होता है, उससे भी
अनन्त गुना मीठा रस शुक्ल लेण्या का
होता है ।

१६—जह गोमडस्स गन्धो
सुणगमडगस्स^६ व जहा अहिमडस्स ।
'एत्तो वि'^७ अणन्तगुणो
लेसाण अप्पसत्थाण ॥

यथा गो-मृतकस्य गन्धः
शुनक-मृतकस्य वा यथाऽहि-मृतकस्य ।
इतोऽप्यनन्तगुणो
लेण्यानामप्रशस्तानाम् ॥

१६—गाय, श्वान और सर्प के मृत
कलेवर की जैसी गन्ध होती है, उससे भी
अनन्त गुना गन्ध तीनों अप्रशस्त लेण्याओं की
होती है ।

१. तुम्बर^० (अ), तुवर^० (उ), अट्ठ^० (घृ० पा०) ।

२. य (ऋ०) ।

३. पम्हाउ (अ) ।

४. एत्तो वि अणन्त गुणो रसो उ पम्हाए नायव्वो (घृ० पा०) ।

५. य (ऋ०) ।

६. ंमडस्स (उ, ऋ०) ।

७. एत्तोउ (अ), इत्तो वि (उ, ऋ०) ।

१७—जह सुरहिकुसुमगन्धो
गन्धवासाण^१ पिस्समाणाण^२ ।
'एत्तो वि'^३ अणन्तगुणो
पसत्थलेसाण तिण्हं पि ॥

१८—जह करगयस्स फासो
गोजिब्भाए व सागपत्ताणं ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
लेसाण अप्पसत्थाणं ॥

१९—जह बूरस्स व फासो
नवणीयस्स व सिरीसकुसुमाणं ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
पसत्थलेसाण तिण्हं पि ॥

२०—तिविहो व नवविहो वा
सत्तावीसइविहेक्कसीओ वा ।
दुसओ तेयालो वा
लेसाण होइ परिणामो ॥

२१—पचासवप्पवत्तो^४
तीहिं अगुत्तो छसु अविरओ य ।
'तिव्वारम्भपरिणओ
खुदो साहसिओ नरो'^५ ॥

२२—'निद्धन्धसपरिणामो
निस्ससो अजिइन्दिओ'^६ ।
एयजोगसमाजत्तो
किण्हलेस तु परिणमे ॥

यथा सुरभिकुसुम-गन्धः
गन्ध-वासाना पिष्यमाणानाम् ।
इतोऽप्यनन्तगुण
प्रशस्त-लेश्यानां तिसृणामपि ॥

यथा क्रकचस्य स्पर्शः
गो-जिह्वायाश्च शाक-पत्राणाम् ।
इतोऽप्यनन्तगुणो
लेश्यानामप्रशस्तानाम् ॥

यथा बूरस्य वा स्पर्शः
नवनीतस्य वा शिरीष-कुसुमानाम् ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
प्रशस्त-लेश्यानां तिसृणामपि ॥

त्रिविधो वा नवविधो वा
सप्तविंशतिविध एकाशीतिविधो वा ।
त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशतविधो वा
लेश्यानां भवति परिणामः ॥

पंचाश्व-प्रवृत्तः
तिसृभिरगुप्तः षट्स्वविरतश्च ।
तीव्रारम्भ-परिणत
क्षुद्रः साहसिको नरः ॥

निश्शङ्क-परिणामः
नृशंसोऽजितेन्द्रियः ।
एतद्योगसमायुक्तः
कृष्ण-लेश्यां तु परिणमेत् ॥

१७—सुगन्धित पुष्पो और पीसे जा रहे
सुगन्धित पदार्थों की जैसी गन्ध होती है,
उससे भी अनन्त गुण गन्ध तीनों प्रशस्त
लेश्याओं की होती है ।

१८—करवत, गाय की जीभ और शाक
वृक्ष के पत्रों का स्पर्श जैसा कर्कश होता है,
उससे भी अनन्त गुण कर्कश स्पर्श तीनों अप्रशस्त
लेश्याओं का होता है ।

१९—बूर, नवनीत और सिरीष के पुष्पो
का स्पर्श जैसा मृदु होता है, उससे भी अनन्त
गुण मृदु स्पर्श तीनों प्रशस्त लेश्याओं का
होता है ।

२०—लेश्याओं के तीन, नौ, सत्ताईश,
इक्यासी या दो सौ तैंतालीस प्रकार के
परिणाम होते हैं ।

२१—जो मनुष्य पाँचो आश्रवों में प्रवृत्त
है, तीन गुप्तियों से अगुप्त है, पट्काय में
अविरत है, तीव्र आरम्भ (सावद्य-व्यापार)
में सलग्न है, क्षुद्र है, बिना विचारे कार्य करने
वाला है,

२२—लौकिक और पारलौकिक दोषों
की शका से रहित मन वाला है, नृशंस है,
अजितेन्द्रिय है—जो इन सभी से युक्त है, वह
कृष्ण लेश्या में परिणत होता है ।

१. गघाण य (वृ० पा०) ।

२. पिस्समाणेण (अ) ।

३. एत्तो (अ) ; इत्तो वि (उ, ऋ०) ।

४. ०प्पमत्तो (वृ०) ; ०प्पवत्तो (वृ० पा०) ।

५. निद्धन्धसपरिणामो निस्ससो अजिइन्दिओ (वृ० पा०) ।

६. तिव्वारभ परिणओ खुदो साहसिओ नरो (वृ० पा०) ।

२३—इस्साअमरिसअतवो

अविज्जमाया 'अहीरिया य'^१ ।

गेद्धी पओसे य सढे

पमत्ते^२ रसलोलुए साय

गवेसए य ॥

ईर्ष्याऽमर्षतिपः

अविद्या मायाऽहोक्ता च ।

गृद्धिः प्रदोषश्च शठः

प्रमत्तो रस-लोलुपः सात-गवेषकश्च ॥

२३—जो मनुष्य ईर्ष्यालु है, कदाग्रही है, अतपस्वी है, अज्ञानी है, मायावी है, निर्लज्ज है, गृद्ध है, प्रदोष करने वाला है, शठ है, प्रमत्त है, रस-लोलुप है, सुख का गवेषक है,

२४—आरम्भाओ^३ अविरओ

खुद्दो साहसिओ नरो ।

एयजोगसमाउत्तो

नीललेस तु परिणमे ॥

आरम्भादविरतः

क्षुद्रः साहसिको नरः ।

एतद्योग-समायुक्तो

नील-लेश्या तु परिणमेन् ॥

२४—आरम्भ से अविरत है, क्षुद्र है, बिना विचारे कार्य करने वाला है—जो इन सभी से युक्त है, वह नील लेश्या में परिणत होता है ।

२५—वके वकसमायारे

नियडिल्ले अणुज्जुए ।

पलिउंचग ओवहिए

मिच्छदिट्ठो अणारिए ॥

वक्रो वक्र-समाचारः

निष्कृतिमान् अनुजृक ।

परिकुचक औपधिकः

मिथ्या-दृष्टिरनार्यः ॥

२५—जो मनुष्य वचन से वक्र है, जिसका आचरण वक्र है, कपट करता है, सरलता से रहित है, अपने दोषों को छुपाता है, छद्म का आचरण करता है, मिथ्या-दृष्टि है, अनार्य है,

२६—'उप्फालगदुट्ठवाई य'^४

तेणे यावि य मच्छरी ।

एयजोगसमाउत्तो

काउलेसं तु परिणमे ॥

उत्प्रासक-दुष्टवादी च

स्तेनश्चापि च मत्सरी ।

एतद्योग-समायुक्तः

कापोत-लेश्या तु परिणमेत् ॥

२६—हसोढ है, दुष्ट वचन बोलने वाला है, चोर है, मत्सरी है—जो इन सभी प्रवृत्तियों से युक्त है, वह कापोत लेश्या में परिणत होता है ।

२७—नीयावित्ती अचवले

अमाई अकुऊहले ।

विणोयविणए दन्ते

जोगव उवहाणव ॥

नीचैर्वृत्तिरचपल

अमाप्यकुतूहल ।

विनीत-विनयः दान्तः

योगवानुपधानवान् ॥

२७—जो मनुष्य नम्रता से वर्ताव करता है, अचपल है, माया से रहित है, अकुतूहली है, विनय करने में निपुण है, दान्त है, समावि-युक्त है, उपधान (श्रुत अध्ययन करते समय तप) करने वाला है,

२८—पियधम्मे दढधम्मे

वज्जभीरू हिएसए^५ ।

एयजोगसमाउत्तो

तेउलेस तु परिणमे ॥

प्रियधर्मा दृढधर्मा

अवद्य-भीरुर्हितैषकः ।

एतद्योग-समायुक्तः

तेजो-लेश्या तु परिणमेत् ॥

२८—धर्म में प्रेम रखता है, धर्म में दृढ है, पाप-भीरु है, मुक्ति का गवेषक है—जो इन सभी प्रवृत्तियों से युक्त है, वह तेजो लेश्या में परिणत होता है ।

१. अहीरियगयाय (अ) ।

२. य मत्ते (वृ० पा०) ।

३. आरम्भओ (अ), आरम्भा (उ, ऋ०) ।

४. उप्फालदुट्ठवाई (अ), उप्फालग (उ), उप्फालग (ऋ०) ।

५. हियासए, अणासए (वृ० पा०) ।

२९—पयणुक्कोहमाणे य
मायालोभे य पयणुए ।
पसन्तचित्ते दन्तप्पा
जोगव उवहाणवं ॥

प्रतनु-क्रोध-मानश्च
माया-लोभश्च प्रतनुकः ।
प्रशान्त-चित्तो दान्तात्मा
योगवानुपधानवान् ॥

२९—जिस मनुष्य के क्रोध, मान, माया और लोभ अत्यन्त अल्प हैं, जो प्रशान्त-चित्त है, अपनी आत्मा का दमन करता है, समाप्त युक्त है, उपधान करने वाला है,

३०—तहा पयणुवाई^१ य
उवसन्ते जिइन्दिए ।
एयजोगसमाउत्तो
पम्हलेस तु परिणमे ॥

तथा प्रतनुवादी च
उपशान्तो जितेन्द्रियः ।
एतद्योग-समायुक्त
पद्म-लेश्यां तु परिणमेत् ॥

३०—अत्यल्प भापी है, उपशान्त है जितेन्द्रिय है—जो इन सभी प्रवृत्तियों से युक्त है, वह पद्म लेश्या में परिणत होता है ।

३१—अट्टरुद्दाणि वजित्ता
धम्मसुक्काणि ऋायए^२ ।
पसन्तचित्ते दन्तप्पा
समिए गुत्ते य गुत्तिहिं ॥

आर्त्त-रौद्रे वर्जयित्वा
धर्म्य-शुक्ले ध्यायेत् ।
प्रशान्त-चित्तो दान्तात्मा
समितो गुप्तश्च गुप्तिभिः ॥

३१—जो मनुष्य आर्त्त और रौद्र—दोनों ध्यानों को छोड़ कर धैर्य और शुक्ल—इन दो ध्यानों में लीन रहता है, प्रशान्त-चित्त है, अपनी आत्मा का दमन करता है, समिति से समित है, गुप्तियों से गुप्त है,

३२—सरागे वीयरगे वा^३
उवसन्ते^४ जिइन्दिए ।
एयजोगसमाउत्तो
सुक्कलेस तु परिणमे ॥

सरागो वातरागो वा
उपशान्तो जितेन्द्रियः ।
एतद्योग-समायुक्तः
शुक्ल-लेश्यां तु परिणमेत् ॥

३२—उपशान्त है, जितेन्द्रिय है—जो इन सभी प्रवृत्तियों से युक्त है, वह सराग या वीतराग, शुक्ल लेश्या में परिणत होता है ।

३३—असखिज्जाणोसप्पिणीण^५
उत्सप्पिणीण जे समया ।
सखाईया^६ लोगा
लेसाण हुन्ति ठाणाइ ॥

असंख्येयानामवसर्पिणीना
उत्सर्पिणीना ये समया ।
संख्यातीता लोका
लेश्यानां भवन्ति स्थानानि ॥

३३—असंख्येय अवसर्पिणी और सर्पिणी के जितने समय होते हैं, असंख्यात लोकों के जितने आकाश-प्रदेश होते हैं, उतने ही लेश्याओं के स्थान (अव्यवसाय-परिमाण) होते हैं ।

३४—‘मुहुत्तद्ध तु’^७ जहन्ता
तेत्तीस सागरा मुहुत्तऽहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा किण्हलेसाए ॥

मुहूर्त्तार्धं तु जघन्या
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा मुहूर्त्ताधिका ।
उत्कृष्टा भवति स्थिति
ज्ञातव्या कृष्ण-लेश्यायाः ॥

३४—कृष्ण लेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति में मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागर की होती है ।

१. 'याइ (अ) ।

२. साहए (वृ०, छ०), ऋायए (वृ० पा०) ।

३. य (अ) ।

४. छद्धजोगे (वृ० पा०) ।

५. असखेज्जाणओ उत्सप्पिणीण (अ) ।

६. असखेया (वृ० पा०) ।

७. मुहुत्तद्धा उ (वृ० पा०) ।

३५—'मुहुत्तद्ध तु'^१ जहन्ता
दस उदही पलियमसखभाग-
मव्वहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा नीललेसाए ॥

३६—'मुहुत्तद्ध तु'^२ जहन्ता
तिण्णुदही पलियमसखभाग-
मव्वहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा काउलेसाए ॥

३७—'मुहुत्तद्ध तु'^३ जहन्ता
दोउदही पलियमसखभाग-
मव्वहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा तेउलेसाए ॥

३८—'मुहुत्तद्ध तु'^४ जहन्ता
दस 'होन्ति सागरा
मुहुत्तहिया'^५ ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा पम्हलेसाए ॥

३९—'मुहुत्तद्ध तु'^६ जहन्ता
तेत्तीस सागरा मुहुत्तहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा सुक्कलेसाए ॥

मुहूर्त्तार्धं तु जघन्या
दशोदधिपल्यासख्यभागाधिका ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या नील-लेख्यायाः ॥

मुहूर्त्तार्धं तु जघन्या
त्र्युदधिपल्यासख्यभागाधिका ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या कापोत-लेख्यायाः ॥

मुहूर्त्तार्धं तु जघन्या
द्व्युदधिपल्योपमासङ्ख्यभागाधिका ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या तेजो-लेख्यायाः ॥

मुहूर्त्तार्धं तु जघन्या
दश भवन्ति सागरा मुहूर्त्ताधिकाः ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या पद्म-लेख्यायाः ॥

मुहूर्त्तार्धं तु जघन्या
त्रयोऽत्रिंशत्सागरा मुहूर्त्ताधिकाः ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या शुक्ल-लेख्यायाः ॥

३५—नील लेख्या की जघन्य स्थितिः
अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपमा के
असख्यातव्ये भाग अधिक दश सागर की
होती है ।

३६—कापोत लेख्या की जघन्य स्थितिः
अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपमा के
असख्यातव्ये भाग अधिक तीन सागर की
होती है ।

३७—तेजो लेख्या की जघन्य स्थितिः
अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपमा के
असख्यातव्ये भाग अधिक दो सागर की
होती है ।

३८—पद्म लेख्या की जघन्य स्थितिः
अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति मुहूर्त्त अधिक
दश सागर की होती है ।

३९—शुक्ल लेख्या की जघन्य स्थितिः
अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति मुहूर्त्त अधिक
तेत्तीस सागर की होती है ।

१. मुहुत्तद्ध उ (घृ० पा०) ।

२. मुहुत्तद्ध उ (घृ० पा०) ।

३. मुहुत्तद्ध उ (घृ० पा०) ।

४. मुहुत्तद्ध उ (घृ० पा०) ।

५. उदही हुंति मुहुत्तमव्वहिया (उ, ऋ०) ।

६. मुहुत्तद्ध उ (घृ० पा०) ।

४०—एसा खलु लेसाणं
ओहेण ठिई उ वणिण्या होइ ।
चउसु वि गईसु एत्तो
लेसाण ठिइ तु वोच्छामि ॥

एषा खलु लेश्यानां
ओघेन स्थितिस्तु वर्णिता भवति ।
चतसृष्वपि गतिष्वितः
लेश्यानां स्थितिं तु वक्ष्यामि ॥

४०—लेश्याओं की यह स्थिति ओघ रूप
(अपृथग्-भाव) से कही गई है । अब आगे
पृथग्-भाव से चारो गतियों में लेश्याओं की
स्थिति का वर्णन करूँगा ।

४१—दस वाससहस्साइं
काऊए ठिई जहन्निया होइ ।
'तिण्णुदही 'पल्लिओवम
असंखभाग'^१ च उक्कोसा'^२ ॥

दशवर्षसहस्राणि
कापोतायाः स्थितिर्जघन्यका भवति ।
त्र्युदधिपल्योपमा
ऽसङ्ख्यभाग चोत्कृष्टा ॥

४१—नारकीय जीवों के कापोत लेश्या
की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट
स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक
तीन सागर की होती है ।

४२—तिण्णुदही पल्लिय-
मसखभागा जहन्नेण नीलठिई ।
दस उदही 'पल्लिओवम
असखभाग'^३ च उक्कोसा ॥

त्र्युदधिपल्या
असङ्ख्यभागा जघन्येन नीलस्थितिः
दशोदधिपल्योपमा
ऽसङ्ख्यभाग चोत्कृष्टा ॥

४२—नील लेश्या की जघन्य स्थिति
पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागर
और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें
भाग अधिक दश सागर की होती है ।

४३—'दस उदही 'पल्लिय-
मसखभाग'^४ जहन्निया होइ ।
तेत्तीससागराइं उक्कोसा
होइ किण्हाए ॥'^५

दशोदधिपल्या
ऽसङ्ख्यभागं जघन्यका भवति ।
त्रयस्त्रिंशत्सागराः
उत्कृष्टा भवति कृष्णायाः ॥

४३—कृष्ण लेश्या की जघन्य स्थिति
पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दश सागर
और उत्कृष्ट स्थिति तेत्तीस सागर की होती है ।

४४—एसा नेरइयाणं
लेसाण ठिई उ वणिण्या होइ ।
तेण पर वोच्छामि
तिरियमणुस्साण देवाणं ॥

एषा नैरयिकाणा
लेश्यानां स्थितिस्तु वर्णिता भवति ।
ततः परं वक्ष्यामि
तिर्यङ्-मनुष्याणां देवानाम् ॥

४४—यह नैरयिक जीवों के लेश्याओं की
स्थिति का वर्णन किया गया है । इससे आगे
तिर्यङ्, मनुष्य और देवों की लेश्या स्थिति का
वर्णन करूँगा ।

१. पल्लियमसख भाग (४०), पल्लियमसखेज्ज भागं (४०) ।

२. उक्कोसा तिण्णुदही पल्लियमसंखेज्जभागऽहिय (४० पा०) ।

पल्लिअ असखभाग (उ, ४०) ।

३. पल्लियमसख भाग च (उ) ।

दस उदही पल्लियअसंख भागं च जहन्नेण कण्ह लेसाए । तेत्तीस सागराइं सुद्धत्तअहिया उ उक्कोसा ॥ (अ) ।

४५—अन्तोमुहुत्तमद्व

लेसाण ठिई जहिं जहिं जा उ ।
तिरियाण नराण वा^१
वज्जिता केवल लेस ॥

अन्तर्मुहूर्त्तध्वान

लेश्याना स्थितिः यस्मिन् यस्मिन्
यास्तु ।

तिरश्चा नराणा वा
वर्जयित्वा केवला लेश्याम् ॥

४५—तिर्यञ्च और मनुष्य में जितनी
लेश्याएँ होती हैं, उनमें से शुक्ल लेश्या को
छोड़ कर शेष सब लेश्याओं की जघन्य और
उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की होती है ।

४६—मुहुत्तद्व तु जहन्ता
उक्कोसा होइ पुव्वकोडो उ ।
नवहि वरिसेहि ऊणा
नायव्वा सुक्कलेसाए ॥

मुहूर्त्ताघ तु जघन्या
उत्कृष्टा भवति पूर्वकोटी तु ।
नवभिर्वर्षेह्ना
ज्ञातव्या शुक्ल-लेश्यायाः ॥

४६—शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति नौ वर्ष न्यून एक
करोड़ पूर्व की होती है ।

४७—एसा तिरियनराण
लेसाण ठिई उ वणिग्या होइ ।
तेण पर वोच्छामि
लेसाण ठिई उ देवाण ॥

एषा तिर्यङ्-नराणा
लेश्याना स्थितिस्तु वर्णिता भवति ।
ततः पर वक्ष्यामि
लेश्याना स्थितिस्तु देवानाम् ॥

४७—यह तिर्यञ्च और मनुष्य के लेश्याओं
की स्थिति का वर्णन किया गया है । इससे
प्रागे देवों की लेश्याओं की स्थिति का वर्णन
करूँगा ।

४८—दस वाससहस्साइ
किण्हाए ठिई जहन्निया होइ ।
पलियमसखिज्जमो
उक्कोसा होइ किण्हाए ॥

दशवर्षसहस्राणि
कृष्णायाः स्थितिर्जघन्यका भवति ।
पल्यासङ्ख्येतम^{*}
उत्कृष्टा भवति कृष्णायाः ॥

४८—भवनपति और वाणव्यन्तर देवों के
कृष्ण लेश्या की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष
और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असख्यातवर्ष
भाग की होती है ।

४९—जा किण्हाए ठिई खलु
उक्कोसा सा उ समयमव्वहिया ॥
जहन्नेण नीलाए
'पलियमसख तु'^२ उक्कोसा ॥

या कृष्णायाः स्थितिः खलु
उत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका ।
जघन्येन नीलाया
पल्यासङ्ख्य तूत्कृष्टा ॥

४९—कृष्ण लेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति
है, उसमें एक समय मिलाने पर वह नील
लेश्या की जघन्य स्थिति होती है और उसकी
उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असख्यातवर्ष
भाग जितनी है ।

५०—जा नीलाए ठिई खलु
उक्कोसा सा उ समयमव्वहिया ।
जहन्नेण काऊए
पलियमसखं च उक्कोसा ॥

या नीलायाः स्थितिः खलु
उत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका ।
जघन्येन कापोताया
पल्यासङ्ख्य चोत्कृष्टा ॥

५०—नील लेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति
है, उसमें एक समय मिलाने पर वह कापोत
लेश्या की जघन्य स्थिति होती है और उसकी
उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असख्यातवर्ष
भाग जितनी है ।

१. तु (वृ०), च (उ, ऋ०) ।

२. पलियमसख च (उ, ऋ०), पलियमसखिज्ज (वृ०) ।

५१—तेण पर वोच्छामि
तेउलेसा जहा सुरगणाण ।
भवणवइवाणमन्तर-
जोइसवेमाणियाण च ॥

५२—पलिओवम^१ जहन्ना
उक्कोसा सागरा उ दुण्ह^२हिया^३ ।
पलियमसखेज्जेण
होई भागेण^४ तेऊए ॥

५३—दस वाससहस्साइं
तेऊए ठिई जहन्निया होइ ।
दुण्ण^५दही पलिओवम
असखभागं च उक्कोसा ॥

५४—जा तेऊए ठिई खलु
उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेण पम्हाए दसउ
मुहुत्त^६हियाइ च उक्कोसा ॥

५५—जा पम्हाए ठिई खलु
उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेण सुक्काए
तेत्तीसमुहुत्तमब्भहिया ॥

५६—किण्हा नीला काऊ
तिन्नि वि एयाओ
अहम्मलेसाओ^७ ।
एयाहि तिहि वि जीवो
दुग्गइ उववज्जई बहुसो^८ ॥

ततः पर वक्ष्यामि
तेजो-लेश्यां यथा सुर-गणानाम् ।
भवनपति-वाणव्यन्तर-
ज्योतिर्वैमानिकानां च ॥

पल्योपमं जघन्या
उत्कृष्टा सागरौ तु द्व्यधिकौ ।
पल्यासङ्ख्येन
भवति भागेन तैजस्याः ॥

दशवर्षसहस्राणि
तैजस्याः स्थितिः जघन्यका भवति ।
द्व्युदधिपल्योपमा-
ऽसङ्ख्येयभागं चोत्कृष्टा ॥

या तैजस्या स्थितिः खलु
उत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका ।
जघन्येन पद्मायाः दश तु
सुहूर्ताधिकानि चोत्कृष्टा ॥

या पद्माया स्थितिः खलु
उत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका ।
जघन्येन शुक्लायाः
त्रयस्त्रिंशत् सुहूर्ताभ्यधिका ॥

कृष्णा नीला कापोता
तिस्त्रोऽप्येता अधर्म-लेश्याः ।
एताभिस्त्रिसृभिरपि जीवो
गतिमुपपद्यते ॥

५१—इससे आगे भवनपति, वाणव्यन्तर,
ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के तेजो लेश्या
की स्थिति का निरूपण करूँगा ।

५२—तेजो लेश्या की जघन्य स्थिति एक
पल्योपम और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के
असख्यातवें भाग अधिक दो सागर की
होती है ।

५३—तेजो लेश्या की जघन्य स्थिति दश
हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के
असख्यातवें भाग अधिक दो सागर की
होती है ।

५४—जो तेजो लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति
है, उसमें एक समय मिलाने पर वह पद्म
लेश्या की जघन्य स्थिति होती है और उसकी
उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त अधिक दश सागर की
होती है ।

५५—जो पद्म लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति
है, उसमें एक समय मिलाने पर वह शुक्ल
लेश्या की जघन्य स्थिति होती है और उसकी
उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त अधिक तैत्तीस सागर
की होती है ।

५६—कृष्ण, नील और कापोत—ये
तीनों अधर्म-लेश्याएँ हैं । इन तीनों से जीव
दुर्गति को प्राप्त होता है ।

१. पलिओवम च (अ) ।
२. दुण्हिहिया (उ, ऋ०) ।
३. त्रिभागेण (अ) ।
४. अहम^० । अ, घृ० पा०) ।
५. × (उ, ऋ०) ।

५७—तेजः पद्मा शुक्ला
तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो
सुगइ उववज्जई बहुसो^१ ॥

तैजसी पद्मा शुक्ला
तिन्नोऽप्येता धर्म-लेश्याः ।
एताभिस्तिष्ठभिरपि जीवः
सुगतिमुपपद्यते ॥

५७—तेजस्, पद्म और शुक्ल—ये तीनों
धर्म-लेश्याएँ हैं । इन तीनों से जीव सुगति का
प्राप्त होता है ।

५८—लेसाहिं सव्वाहिं
पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु ।
'न वि कस्सवि उववाओ'^२
परे भवे अत्थि^३ जीवस्स ॥

लेश्याभिः सर्वाभिः
प्रथमे समये परिणताभिस्तु ।
नापि कस्याप्युपपादः
परे भवेऽस्ति जीवस्य ॥

५८—पहले समय में परिणत सभी
लेश्याओं में कोई भी जीव दूसरे भव में उत्पन्न
नहीं होता ।

५९—लेसाहिं सव्वाहिं
चरमे समयम्मि परिणयाहिं तु ।
'न वि कस्सवि उववाओ'^४
परे भवे अत्थि^५ जीवस्स ॥

लेश्याभिः सर्वाभिः
चरमे समये परिणताभिस्तु ।
नापि कस्याप्युपपादः
परे भवेऽस्ति जीवस्य ॥

५९—अन्तिम समय में परिणत सभी
लेश्याओं में कोई भी जीव दूसरे भव में उत्पन्न
नहीं होता ।

६०—अन्तमुहुत्तम्मि गए
अन्तमुहुत्तम्मि सेसए चेव ।
लेसाहिं परिणयाहिं
जीवा गच्छन्ति परलोय ॥

अन्तर्मुहूर्त्ते गते
अन्तर्मुहूर्त्ते शेषके चैव ।
लेश्याभिः परिणताभिः
जीवा गच्छन्ति परलोकम् ॥

६०—लेश्याओं की परिणति होने पर
अन्तर्मुहूर्त्त बीत जाता है अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहता
है, उस समय जीव परलोक में जाते हैं ।

६१—तम्हा एयाण^६ लेसाणं
अणुभागे वियाणिया ।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता
पसत्थाओ अहिट्टेज्जासि^७ ॥
—त्ति वेमि ।

तस्मादेतासा लेश्यानां
अनुभागान् विज्ञाय ।
अप्रशस्ता वर्जयित्वा
प्रशस्ता अधितिष्ठेत् ॥
—इति ब्रवीमि ।

६१—इसलिए इन लेश्याओं के अनुभागों
को जान कर मुनि अप्रशस्त लेश्याओं का वर्जन
करे और प्रशस्त लेश्याओं को स्वीकार करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१ × (उ, ऋ०) ।

२. न हु कस्सवि उववत्ति (वृ०), न वि ... (वृ० पा०), न हु ... (उ, ऋ०, छ०) ।

३. भवइ (वृ०, छ०) ।

४. न हु कस्सवि उववत्ति (वृ०), न वि ... (वृ० पा०); न हु (उ, ऋ०, छ०) ।

५. भवइ (वृ०, छ०) ।

६. एयासि (उ, ऋ०) ।

७. अहिट्टिण (उ, ऋ०) ।

પળતીસદ્ધમં અઢ્ઢયણં :
અળગારમગગઈ

પંચત્રિશ્ઢ અધ્યયન :
અનગાર-માર્ગ-ગતિ

आस्तुत्त्व

अड्डाइसवें अध्ययन में मोक्ष-मार्ग की गति (अवबोध) दी गई है और इस अध्ययन में अनगार-मार्ग की । इसीलिए उसका नाम—‘मोक्खमग्गगई’ और इसका नाम—‘अणगारमग्गगई’—‘अनगार-मार्ग-गति’ है ।

अनगार मुमुक्षु होता है, अतः उसका मार्ग मोक्ष-मार्ग से भिन्न कैसे होगा ? यदि नहीं होगा तो इसके प्रतिपादन का फिर क्या अर्थ है ?

इस प्रश्न को हम इस भाषा में सोचें—मोक्ष-मार्ग व्यापक शब्द है । उसके चार अंग हैं—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप ।

नाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा ।

एस मग्गो त्ति पन्नत्तो, जिणोहि वरदसिहिं ॥ (३८।३)

अनगार-मार्ग मोक्ष-मार्ग की तुलना में सीमित है । ज्ञान, दर्शन और तप की आराधना गृहवास में भी हो सकती है । उसके जीवन में केवल अनगार—चारित्र की आराधना नहीं होती । प्रस्तुत अध्ययन में उसी का प्रतिपादन है । इस तथ्य को इस भाषा में भी रखा जा सकता है कि प्रस्तुत अध्ययन में मोक्ष-मार्ग के तीसरे अंग (चारित्र) के द्वितीय अंश—अनगार-चारित्र—का कर्तव्य-निर्देश है ।

इस अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य संग-विज्ञान है । संग का अर्थ लेप या आसक्ति है । उसके १३ अंग बतलाए गए हैं—

- | | |
|-----------------|-----------------------|
| १—हिंसा, | ८—गृह-निर्माण, |
| २—असत्य, | ९—अन्न-पाक, |
| ३—चौर्य, | १०—धनार्जन की वृत्ति, |
| ४—अब्रह्म-सेवन, | ११—प्रतिबद्ध भिक्षा, |
| ५—इच्छा-काम, | १२—स्वाद-वृत्ति और |
| ६—लोभ, | १३—पूजा की अभिलाषा । |
| ७—ससक्त-स्थान, | |

इक्कीसवें अध्ययन में पाँचवाँ महाव्रत अपरिग्रह है । इस अध्ययन में उसके स्थान पर इच्छा-काम व लोभ-वर्जन है

अहिंस सच्च च अतेणगं च, तत्तो य बम्म अपरिग्गह च ।

पटिवज्जिया पच महव्वयाणि, चरिज्ज धम्म जिणदेसिय विक्क ॥ (३१।१३)

तहेव हिंस अलिय, चोज्ज अबम्मसेवणं ।

इच्छाकाम च लोभ च, सजओ परिवज्जए ॥ (३५।३)

चौतीसवें अध्ययन (श्लो० ३१) में बतलाया गया है—‘धम्मसुवकाणि भायए’—मुनि धर्म्य और शुक्ल ध्यान का अभ्यास करे ।

इस अध्ययन (श्लो० १६) में केवल शुक्लध्यान के अभ्यास की विधि बतलाई गई है—“सुक्कभाण भियारज्जो” ।

इसमें मृत्यु-धर्म को ओर-भो-इगित किया गया है । मुनि जब तक जीरा तब तक असग जीवन-जीरा और जब काल-धर्म उपस्थित हो, तब वह आहार का परित्याग कर दे । (श्लो० २०) आगमकार को अनशनपूर्वक मृत्यु अधिक अभीप्सित है ।

जीवन-काल में देह-व्युत्सर्ग के अभ्यास का निर्देश दिया गया है । (श्लो० १६) देह-व्युत्सर्ग का अर्थ देह-मुक्ति नहीं, किन्तु देह के प्रतिबन्ध से मुक्ति है । मनुष्य के लिए देह तब तक बन्धन रहता है, जब तक वह देह से प्रतिबद्ध रहता है । देह के प्रतिबन्ध से मुक्त होने पर वह मात्र साधन रहता है, बन्धन नहीं ।

देह-व्युत्सर्ग असग का मुख्य हेतु है । यही अनगार का मार्ग है । इससे दुःखों का अन्त-होता है । (श्लो० १) अनगार का मार्ग दुःख-प्राप्ति के लिए नहीं, किन्तु दुःख-मुक्ति के लिए है । अनगार दुःख को स्वीकार नहीं करता, किन्तु उसके मूल को विनष्ट करने का मार्ग चुनता है और उसमें चलता है । उस पर चलने में जो दुःख प्राप्त होते हैं, उन्हें वह भेलता है ।

मनोहर गृह का त्याग और शमशान, शून्यागार व वृक्ष-मूल में निवास कष्ट है पर यह कष्ट भेलने के लक्ष्य से निष्पन्न कष्ट नहीं है, किन्तु इन्द्रिय-विजय (श्लो० ४, ५) के मार्ग में प्राप्त कष्ट है । इसी प्रकार अन्न-पाक न करना और भिक्षा लेना कष्ट है पर यह भी अहिंसा-धर्म के अनुपालन में प्राप्त कष्ट है । (श्लो० १०, ११, १३, १६)

इस प्रकार इस लघु-काय अध्ययन में अनेक महत्वपूर्ण चर्या-अंगों की प्ररूपणा हुई है ।

पणतीसइमं अज्झयणं : पंचत्रिंश अध्ययन
अणगारमग्गई : अनगार-मार्ग-गति

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—मुणेह मग्ग बुद्धेहि जमायरन्तो दुक्खाणन्तकरो	मेगगमणा ^१ देसिय । भिक्षू भवे ॥	शृणुत मे एकाग्र-मनसः मार्गं बुद्धेर्देशितम् । यमाचरन् भिक्षुः दुःखानामन्तकरो भवेत् ॥
२—गिहवासं पवज्जअस्सिओ ^२ इमे सगे जेहि सज्जन्ति	परिच्वज्ज मुणी । वियाणिज्जा ^३ माणवा ॥	गृह-वास परित्यज्य प्रव्रज्यामाश्रितो मुनिः । इमान् सगान् विजानीयात् येषु सज्यन्ते मानवा ॥
३—तहेव चोज्ज इच्छाकाम च सजओ	हिंस अलिय अवम्भसेवण । लोभ च परिवज्जए ॥	तथैव हिंसामलोक चौर्यमद्रह्य-सेवनम् । इच्छा-काम च लोभ च सयतः परिवर्जयेत् ॥
४—मणोहर मल्लधूवेण सकवाड मणसा वि न	चित्तहरं वासिय । पण्डुल्लोय पत्थए ॥	मनोहर चित्रगृह माल्य-धूपेन वासितम् । सकपाट पाण्डुरोल्लोच मनसाऽपि न प्रार्थयेत् ॥
५—इन्द्रियाणि उ तारिसम्मि दुक्कराड कामरागविवड्ढणे	भिक्षुस्स उवस्सए । निवारेउ ^४ ॥	इन्द्रियाणि तु भिक्षोः तादृशे उपाश्रये । दुष्कराणि निवारयितुं कामराग-विवर्धने ॥

१. मे एगगमणा (उ, ऋ०) ।

२. पवज्जामस्सिए (उ, ऋ०) ।

३. वियाणेतता (अ) ।

४. उ धारेउ (घृ०) ; निवारेउ (घृ० पा०) ।

६—सुसाणे सुन्नगारे वा
रुक्खमूले व एकओ^१ ।
पइरिक्के^२ परकडे वा
वास तत्थऽभिरोयए ॥

श्मशाने शून्यागारे वा
वृक्ष-मूले वा एककः ।
प्रतिरिक्ते परकृते वा
वासं तत्राभिरोचयेत् ॥

६—इसलिए एकाकी भिक्षु श्मशान में,
शून्य गृह में, वृक्ष के मूल में अथवा परकृत
एकान्त स्थान में रहने की इच्छा करे ।

७—फासुयम्मि अणावाहे
इत्थोहिं अणभिद्दुए ।
तत्थ सकप्पए वासं
भिक्षू परमसंजए ॥

प्रासुके अनावाधे
स्त्रीभिरनभिद्रुते ।
तत्र सकल्पयेद्वास
भिक्षु परम-सयतः ॥

७—परम सयत भिक्षु प्रासुक, अनावाध
और स्त्रियों के उपद्रव से रहित स्थान में रहने
का सकल्प करे ।

८—न सय गिहाइ कुज्जा
णेव अन्नेहिं कारए ।
गिहकम्मसमारम्भे
भूयाण दीसई वहो ॥

न स्वयं गृहाणि कुर्वीत
नैव अन्यै कारयेत् ।
गृहकर्म-समारम्भे
भूताना दृश्यते वधः ॥

८-९—भिक्षु न स्वयं घर बनाए और न
दूसरो से बनवाए । गृह-निर्माण के समारम्भ
(प्रवृत्ति) में जीवों—त्रस और स्थावर, सूक्ष्म
और बादर—का वध देखा जाता है । इसलिए
सयत भिक्षु गृह-समारम्भ का परित्याग करे ।

९—तसाणं थावराण च
सुहुमाण वायराण य ।
तम्हा गिहसमारम्भ
सजओ परिवज्जए ॥

त्रसाना स्थावराणां च
सूक्ष्माणा वादराणां च ।
तस्माद् गृह-समारम्भं
सयत परिवर्जयेत् ॥

१०—तहेव भत्तपाणेषु
पयण^३ पयावणेषु य ।
पाणभूयदयद्वाए
न पये न पयावए ॥

तथैव भक्त-पानेषु
पचन पाचनेषु च ।
प्राण-भूत-दयार्थं
न पचेत् न पाचयेत् ॥

१० —भक्त-पान के पकाने और पकवाने
में हिंसा होती है, अतः प्राणों और भूतों की
दया के लिए भिक्षु न पकाए और न पकवाए ।

११—जलधन्तनिससिया जीवा^४
पुढवोकट्टनिससिया^५ ।
हम्मन्ति भत्तपाणेषु
तम्हा भिक्षू न पायए ॥

जल-धान्य-निश्चिता जीवा
पृथिवी-काष्ठ-निश्चिताः ।
हन्यन्ते भक्त-पानेषु
तस्माद् भिक्षुर्न पाचयेत् ॥

११—भक्त और पान के पकाने में जल
और धान्य के आश्रित तथा पृथ्वी और काष्ठ
के आश्रित जीवों का हनन होता है, इसलिए
भिक्षु न पकवाए ।

१ एगओ (उ, ऋ०), एगया (वृ०), एकतो (वृ० पा०) ।

२ परक्के (वृ०), पइरिक्के (वृ० पा०) ।

३ पयणे (ऋ०), पयणे य (अ) ।

४ पाणा (अ) ।

५ °काय° (उ) ।

१२—विसप्पे 'सव्वओधारे
बहुपाणविणासणे ।
नत्थि जोइसमे सत्थे
तम्हा जोइ न दीवए ॥

विसर्पत् सर्वतोधार
बहुप्राणि-विनाशनम् ।
नास्ति ज्योतिः-सम शस्त्रं
तस्माज्ज्योतिर्न दीपयेत् ॥

१२—अग्नि फैलने वाली, सब ओर से
धार वाली और बहुत जीवों का विनाश करने
वाली होती है, उसके समान दूसरा कोई शस्त्र
नहीं होता, इसलिए भिक्षु उसे न जलाए ।

१३—हिरण्ण जायरुवं च
मणसा वि न पत्थए ।
समलेट्टुकचणे भिक्खू
विरए कयविक्रए ॥

हिरण्य जातरूप च
मनसाऽपि न प्रार्थयेत् ।
समलेष्टु-काचनो भिक्षु
विरतः क्रय-विक्रयात् ॥

१३—क्रय और विक्रय से विरत, मिट्टी
के टुकड़े और सोने को समान समझने वाला
भिक्षु मोने और चाँदी की मन से भी इच्छा
न करे ।

१४—किणन्तो कइओ होइ
विकिणन्तो य वाणिओ ।
कयविक्रयम्मि वट्ठन्तो
भिक्खू न भवइ तारिसो ॥

क्रीणन् क्रयिको भवति
विक्रीणन् च वाणिजः ।
क्रय-विक्रये वर्तमानः
भिक्षुर्न भवति तादृशः ॥

१४—वस्तु को खरीदने वाला क्रयिक
होता है और बेचने वाला वणिक् । क्रय और
विक्रय में वर्तन करने वाला भिक्षु वैसा नहीं
होता—उत्तम भिक्षु नहीं होता ।

१५—भिक्षयव्व न केयव्व
भिक्षुणा भिक्खवत्तिणा ।
कयविक्रओ महादोसो
भिक्षावत्ती^१ सुहावहा ॥

भिक्षितव्यं न क्रेतव्यं
भिक्षुणा भैक्ष-वृत्तिना ।
क्रय-विक्रयो महान् दोषो
भिक्षा-वृत्तिः सुखावहा ॥

१५—भिक्षा-वृत्ति वाले भिक्षु को भिक्षा
ही करनी चाहिए, क्रय-विक्रय नहीं । क्रय-
विक्रय महान् दोष है । भिक्षा-वृत्ति सुख को
देने वाली है ।

१६—समुयाण उच्छमेसिज्जा
जहासुत्तमणिन्दिय ।
लाभालाभम्मि सत्तुट्ठे
पिण्डवाय 'चरे मुणी'^२ ॥

सुमुदानमुच्छमेषयेत्
यथा-सूत्रमनिन्दितम् ।
लाभालाभे सन्तुष्टः
पिण्ड-पात चरेत् मुनिः ॥

१६—मुनि सूत्र के अनुसार, अनिन्दित
और सामुदायिक उच्छ की एपणा करे । वह
लाभ और अलाभ में सन्तुष्ट रहकर पिण्ड-पात
(भिक्षा) की चर्या करे ।

१७—अलोले न रसे गिद्धे
जिब्भादन्ते अमुच्छिअ ॥
न रसट्ठाए भुजिज्जा
जवणट्ठाए महामुणी ॥

अलोलो न रसे गृद्धो
दान्त-जिह्वोऽमूर्च्छित ।
न रसायं भुजीत
यापनार्थं महामुनिः ॥

१७—अलोलुप, रस में अगृह्य, जीभ का
दमन करने वाला और अमूर्च्छित महामुनि
रस (स्वाद) के लिए न खाए, किन्तु जीवन-
निर्वाह के लिए खाए ।

१. भिक्षू वित्ती (उ, ऋ०) ।

२. गवेसण (वृ० पा०) ।

१८—अच्चणं रयणं चेव
वन्दण पूयण तथा ।
इङ्ढीसक्कारसम्माण
मणसा वि न पत्थए ॥

अर्चनां रचनां चैव
वन्दनं पूजनं तथा ।
ऋद्धि-सत्कार-सम्मानं
मनसाऽपि न प्रार्थयेत् ॥

१८—मुनि अर्चना, रचना (अक्षत, मोती आदि का स्वस्तिक बनाना), वन्दना, पूजा, ऋद्धि, सत्कार और सम्मान की मन से भी प्रार्थना (अभिलाषा) न करे ।

१९—सुक्कभाण भियाएज्जा
अणियाणे अकिंचणे ।
वोसट्ठकाए विहरेज्जा
जाव कालस्स पज्जओ ॥

शुक्ल-ध्यान ध्यायत्
अनिदानोऽकिंचन ।
व्युत्सृष्ट-कायो विहरेत्
यावत्कालस्य पर्ययः ॥

१९—मुनि शुक्ल ध्यान ध्याए । अनिदान और अकिंचन रहे । वह जीवन भर व्युत्सृष्ट-काय (देहाध्यास से मुक्त) होकर विहार करे ।

२०—निज्जुहिऊण आहारं
कालधम्ममे उवट्ठिए ।
जहिऊण^१ माणुस बोन्दि
पहू दुक्खे विमुच्चई ॥

निर्यूह्य आहारं
काल-धर्मे उपस्थिते ।
त्यक्त्वा मानुष शरीरं
प्रभु दुःखै विमुच्यते ॥

२०—समर्थ मुनि काल-धर्म के उपस्थित होने पर आहार का परित्याग करके, मनुष्य शरीर को छोड़ कर दुःखों से विमुक्त हो जाता है ।

२१—निम्ममो निरहंकारो
वीयरगो अणासवो^२ ।
सपत्तो केवलं नाणं
सासय परिणिव्वुए ॥
—त्ति वेमि ।

निर्ममो निरहंकार
वीतरागोऽनाश्रव ।
सम्प्राप्तः केवलं ज्ञानं
शाश्वतं परिनिर्वृत्तः ॥
—इति ब्रवीमि ।

२१—निर्मम, निरहंकार, वीतराग और आश्रवों से रहित मुनि शाश्वत केवलज्ञान का प्राप्त कर परिनिर्वृत्त हो जाता है—सर्वथा आत्मस्थ हो जाता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ !

છત્તીસગ્રમં અઞ્ઞયણં :
જીવાજીવવિભત્તી

ષટ્ત્રિશ અધ્યયન :
જીવાજીવ-વિભક્તિ

आस्तुख

इस अध्ययन में जीव और अजीव के विभागों का निरूपण किया गया है। इसलिए इसका नाम—‘जीवा-जीवविभक्ती’—‘जीवाजीव-विभक्ति’ है।

जैन तत्त्व-विद्या के अनुसार मूल तत्त्व दो हैं—जीव और अजीव। शेष सब तत्त्व इनके अवान्तर विभाग हैं। प्रस्तुत अध्ययन में लोक की परिभाषा इसी आधार पर की गई है। “जीवा चेव अजीवा य, एस लोए वियाहिए”। (श्लो० ३)

प्रज्ञापना के प्रथम पद में जीव और अजीव की प्रज्ञापना की गई है। उसकी जीव-प्रज्ञापना का क्रम प्रस्तुत अध्ययन को जीव-विभक्ति से कुछ भिन्न है। यहाँ ससारी जीवों के दो प्रकार किए गए हैं—त्रस और स्थावर। स्थावर के तीन प्रकार हैं—पृथ्वी, जल और वनस्पति। (श्लो० ६८, ६९) त्रस के भी तीन प्रकार हैं—अग्नि, वायु और उदार। (श्लो० १०७) उदार के चार प्रकार हैं—द्वेन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय। (श्लो० १२६)

प्रज्ञापना में ससारी जीवों के पाँच प्रकार किए गए हैं—एकेन्द्रिय, द्वेन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय।^१

प्रस्तुत अध्ययन के जीव-विभाग में एकेन्द्रिय का उल्लेख नहीं है और प्रज्ञापना में त्रस-स्थायर का विभाग नहीं है। आचाराग (प्रथम श्रुत-स्वन्ध) सत्रसे प्राचीन आगम माना जाता है। उसमें जीव-विभाग छह जीव-निकाय के रूप में प्राप्त है। छह जीव-निकाय का क्रम इस प्रकार है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वनस्पति, त्रस और वायु।^२ आचाराग के नौवें अध्ययन में छह जीव-निकाय का क्रम भिन्न प्रकार से मिलता है—पृथ्वी, जल, तेजस्, वायु, वनस्पति और त्रस।^३ वहाँ त्रस और स्थावर ये दो विभाग भी मिलते हैं।^४

आचाराग के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि जीवों का प्राचीनतम विभाग छह जीव-निकाय के रूप में रहा है। त्रस और स्थावर का विभाग भी प्राचीन है, किन्तु स्थावर के तीन प्रकार और त्रस के तीन प्रकार—यह विभाग आचाराग में नहीं मिलता। स्थानाग में यह प्राप्त है।^५ सम्भव है स्थानाग से ही उत्तराध्ययन में यह गृहीत हुआ है।

प्रज्ञापना का विभाग और भी उत्तरवर्ती जान पड़ता है।

जीव और अजीव का विशद वर्णन जीवाजीवाभिगम सूत्र में मिलता है।^६ वह उत्तरवर्ती आगम है,

१—प्रज्ञापना, (प्रथम पद), सूत्र ६।

२—आचाराग, १।१।२-७।

३—वही, १।६।१।१२।

४—वही, १।६।१।१४।

५—स्थानाग, ३।२। सू० १६४

तिविहा तसा प० त०—तेडकाइया वाडकाइया उराला तसा पाणा,

तिविहा थावरा, प० त०—पुडविकाइया आडकाइया वणस्सइकाइया।

६—जीवाजीवाभिगम, प्रतिपत्ति १-६।

इसलिए उसमें जीव-विभाग सम्बन्धी अनेक मतों का संग्रहण किया गया है ।

- | | |
|-------------------------|---|
| (१) दो प्रकार के जीव— | त्रस और स्थावर । |
| (२) तीन प्रकार के जीव— | स्त्री, पुरुष और नपुंसक । |
| (३) चार प्रकार के जीव— | नैरयिक, तिर्यच-योनिक, मनुष्य और देव । |
| (४) पाँच प्रकार के जीव— | एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय । |
| (५) छह प्रकार के जीव— | पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक । |
| (६) सात प्रकार के जीव— | नैरयिक, तिर्यच, तिर्यची, मनुष्य, स्त्री, देव और देवी । |
| (७) आठ प्रकार के जीव— | प्रथम समय के नैरयिक, अप्रथम समय के नैरयिक । |
| | ” ” तिर्यच, ” ” तिर्यच । |
| | ” ” मनुष्य, ” ” मनुष्य । |
| | ” ” देव, ” ” देव । |
| (८) नौ प्रकार के जीव— | पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय । |
| (९) दस प्रकार के जीव— | प्रथम समय के एकेन्द्रिय, अप्रथम समय के एकेन्द्रिय । |
| | ” ” द्वीन्द्रिय, ” ” द्वीन्द्रिय । |
| | ” ” त्रीन्द्रिय, ” ” त्रीन्द्रिय । |
| | ” ” चतुरिन्द्रिय, ” ” चतुरिन्द्रिय । |
| | ” ” पंचेन्द्रिय, ” ” पंचेन्द्रिय । |

इस प्रकार आगम-ग्रन्थों में अनेक विवक्षाओं से जीवों के अनेक विभाग प्राप्त होते हैं । प्रस्तुत अध्ययन में अजीव के दो भेद किए हैं—रूपी और अरूपी । (श्लो० ४)

अरूपी अजीव के दस भेद हैं (श्लो० ४, ५, ६)

- | | |
|-----------------------------|-------------------------------|
| (१) धर्मास्तिकाय, | (६) अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, |
| (२) धर्मास्तिकाय का देश, | (७) आकाशास्तिकाय, |
| (३) धर्मास्तिकाय का प्रदेश, | (८) आकाशास्तिकाय का देश, |
| (४) अधर्मास्तिकाय, | (९) आकाशास्तिकाय का प्रदेश और |
| (५) अधर्मास्तिकाय का देश, | (१०) अद्धा-समय । |

रूपी अजीव के चार भेद हैं (श्लो० १०) .

- | | |
|-----------------|----------------------|
| (१) स्कन्ध, | (३) स्कन्ध-प्रदेश और |
| (२) स्कन्ध-देश, | (४) परमाणु । |

प्रज्ञापना और जीवानजीवाभिगम सूत्र में भी अजीव का यही विभाग मान्य है ।

द्वितीयसङ्गमं अङ्गवर्णनं : षट्त्रिंश अध्ययन

जीवाजीवविभक्ती : जीवाजीव-विभक्ति

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—जीवाजीवविभक्ति 'सुणेह मे'¹ एगमणा इओ । ज जाणिऊण समणे² सम्म जयइ सजमे ॥	जीवाजीवविभक्ति शृणुत मम एक-मनसः इतः । या ज्ञात्वा श्रमणः सम्यग् यतते सयमे ॥	१—तुम एकाग्र-मन होकर मेरे पास जीव और अजीव का वह विभाग सुनो, जिसे जान कर श्रमण सयम में सम्यक् प्रयत्न करता है ।
२—जीवा चेव अजीवा य एस लोए वियाहिए । अजीवदेसमागासे अलोए से वियाहिए ॥	जीवाश्चैवाजीवाश्च एष लोको व्याख्यातः । अजीव-देश आकाशः अलोक स व्याख्यातः ॥	२—यह लोक जीव और अजीवमय है । जहाँ अजीव का देश आकाश ही है, उसे अलोक कहा गया है ।
३—द्ववओ खेतओ चेव कालओ भावओ तहा । परूवणा तेसि भवे जीवाणमजीवाण य ॥	द्रव्यत क्षेत्रतश्चैव कालतोभावतस्तथा । परूपणा तेषा भवेत् जीवनामजीवानां च ॥	३—जीव और अजीव की प्ररूपणा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—इन चार दृष्टियों से होती है ।
४—रूपिणो चेवऽरूपी य अजीवा दुविहा भवे । अरूपी दसहा वुत्ता रूपिणो वि चउव्विहा ॥	रूपिणश्चैवाऽरूपिणश्च अजीवा द्विविधा भवेयुः । अरूपिणो दशघोक्ताः रूपिणोऽपि चतुर्विधाः ॥	४—अजीव दो प्रकार का है—रूपी और अरूपी । अरूपी के दश और रूपी के चार प्रकार हैं ।
५—धम्मत्थिकाए तद्देसे तप्पएसे य आहिए । अहम्मे तस्स देसे य तप्पएसे य आहिए ॥	धर्मास्तिकायस्तद्देश तत्प्रदेशश्चाख्यातः । अधर्मस्तस्य देशश्च तत्प्रदेशश्चाख्यातः ॥	५—धर्मास्तिकाय और उसका देश तथा प्रदेश, अधर्मास्तिकाय और उसका देश तथा प्रदेश,

१. मे सुणेह (वृ०) ।

२. भिक्खू (उ, ऋ०, वृ०), समणे (वृ० पा०) ।

६—आगासे तस्स देसे य
तप्पएसे य आहिए ।
अद्धासमए चेव
अरुवी दसहा भवे ॥

आकाशस्तस्य देशश्च
तत्प्रदेशश्चाख्यातः ।
अध्वासमयश्चैव
अरूपिणो दशधा भवेयुः ॥

६—आकाशास्तिकाय और उसका देश
तथा प्रदेश तथा एक अध्वासमय (काल)—ये
दस भेद अरूपी अजीव के होते हैं ।

७—धम्माधम्मे य दोऽवेए^१
लोगमित्ता वियाहिया ।
लोगालोगे य आगासे
समए समयखेत्तिए ॥

धर्माधर्मो च द्वावप्येतौ
लोकमात्रौ व्याख्यातौ ।
लोकालोके चाकाशः
समयः समय-क्षेत्रिकः ॥

७—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय
लोक-प्रमाण हैं । आकाश लोक और अलोक
दोनों में व्याप्त है । समय समय-क्षेत्र (मनुष्य-
लोक) में ही होता है ।

८—धम्माधम्मागासा
तिन्नि वि एए अणाइया ।
अपज्जवसिया चेव
सव्वद्ध तु वियाहिया ॥

धर्माधर्माऽकाशानि
त्रीण्यप्येतान्यनादीनि ।
अपर्यवसितानि चैव
सर्वाध्वं तु व्याख्यातानि ॥

८—धर्म, अधर्म और आकाश ये तीन
द्रव्य अनादि-अनन्त और सार्वकालिक होते हैं ।

९—‘समए वि सन्तइं पप्प
एवमेव’^२ वियाहिए ।
आएसं पप्प साईए
सपज्जवसिए वि य ।

समयोऽपि सतीति प्राप्य
एवमेव व्याख्यातः ।
आदेश प्राप्य सादिकः
सपर्यवसितोऽपि च ॥

९—प्रवाह की अपेक्षा समय अनादि-
अनन्त है । एक-एक क्षण की अपेक्षा से वह
सादि-सान्त है ।

१०—खन्धा य खन्धदेसा य
तप्पएसा तहेव य ।
परमाणुणो य बोद्धव्वा
रुविणो य चउव्विहा ॥

स्कन्धाश्च स्कन्ध-देशाश्च
तत्प्रदेशास्तथैव च ।
परमाणवश्च बोद्धव्याः
रूपिणश्च चतुर्विधा ॥

१०—रूपी पुद्गल के चार भेद होते
हैं—१-स्कन्ध, २-स्कन्ध-देश, ३-स्कन्ध-प्रदेश
और ४-परमाणु ।

११—एगत्तेण पुहत्तेण
खन्धा य परमाणुणो ।
लोएगदेसे लोए य
भइयव्वा ते उ खेत्तओ ॥
इत्तो कालविभागं तु
तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥

एकत्वेन पृथक्त्वेन
स्कन्धाश्च परमाणवः ।
लोकैकदेशे लोके च
भक्तव्यास्ते तु क्षेत्रतः ॥
इतः काल-विभागं तु
तेषां वक्ष्ये चतुर्विधम् ॥

११—अनेक परमाणुओं के एकत्व से
स्कन्ध बनता है और उसका पृथक्त्व होने से
परमाणु बनते हैं । क्षेत्र की अपेक्षा से वे
(स्कन्ध) लोक के एक देश और समूचे लोक
में भाज्य है—असंख्य विकल्प युक्त हैं । अब
उनका चतुर्विध काल-विभाग कहूंगा ।

१. दोएए (उ) ; दोवे य (ऋ०) ।

२. एमेव सतइ पप्प समए वि (वृ० पा०) ।

१२—संतं पप्प तेऽणार्ह
अपज्जवसिया वि य ।
ठिं पडुच्च सार्हिया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तर्ति प्राप्य तेऽनादयः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१२—वे (स्कन्ध और परमाणु) प्रवाह
की अपेक्षा से अनादि-अनन्त हैं तथा स्थिति
(एक क्षेत्र में रहने) की अपेक्षा से सादि-
सान्त है ।

१३—असंखकालमुक्कोसं
'एगं समय जहन्निया'^१ ।
अजीवाण^२ य रूवीण
ठिई एसा वियाहिया ॥

असङ्ख्यकालमुत्कर्षं
एकं समय जघन्यका ।
अजीवानां च रूपिणा
स्थितिरेषा व्याख्याता ॥

१३—रूपी अजीवो (पुद्गलो) की स्थिति
जघन्यत एक समय और उत्कृष्टत असंख्यात
काल की होती है ।

१४—अणन्तकालमुक्कोसं
एग समय जहन्नय ।
अजीवाण^२ य रूवीण
अन्तरेय वियाहिय ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
एकं समय जघन्यकम् ।
अजीवानां च रूपिणां
अन्तरमिदं व्याख्यातम् ॥

१४—उनका अन्तर (स्वस्थान से स्वलित
होकर वापिस नहीं आने तक का काल)
जघन्यत एक समय और उत्कृष्टत अनन्त काल
का होता है ।

१५—वण्णओ गन्धओ चेव
रसओ फासओ तहा ।
सठाणओ य विन्नेओ
परिणामो तेसि पचहा ॥

वर्णतो गन्धतश्चैव
रसतः स्पर्शतस्तथा ।
संस्थानतश्च विज्ञेयः
परिणामस्तेषा पचधा ॥

१५—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान
की अपेक्षा से उनका परिणमन पाँच प्रकार का
होता है ।

१६—वण्णओ परिणया जे उ
पचहा ते पकित्तिया ।
किण्हा नीला य लोहिया
हालिद्दा सुक्किला तहा ॥

वर्णतः परिणता ये तु
पंचधा ते प्रकीर्तिताः ।
कृष्णा नीलाश्च लोहिताः
हारिद्राः शुक्लास्तथा ॥

१६—वर्ण की अपेक्षा से उनकी परिणति
पाँच प्रकार की होती है—१-कृष्ण, २-नील,
३-रक्त, ४-पीत और ५-शुक्ल ।

१७—गन्धओ परिणया जे उ
दुविहा ते वियाहिया ।
सुन्निगन्धपरिणामा
दुन्निगन्धा तहेव य ॥

गन्धतः परिणता ये तु
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
सरसिगन्ध-परिणामाः
दुर्गन्धास्तथैव च ॥

१७—गन्ध की अपेक्षा से उनकी परि-
णति दो प्रकार की होती है—१-सुगन्ध
और २-दुर्गन्ध ।

१. एगो समयो जहन्नय (ऋ०), इको समयो जहन्निया (उ) ।

२. अजीवाणं (उ) ।

१८—रसओ परिणया जे उ
पंचहा ते पकित्तिया ।
तित्तकडुयकसाया
अम्बिला मधुरा तहा ॥

रसतः परिणता ये तु
पंचधा ते प्रकीर्तिताः ।
तित्त-कटुक-कषायाः
अम्बला मधुरास्तथा ॥

१८—रस की अपेक्षा से उनकी परिणति
पाँच प्रकार की होती है—१-तित्त, २-कटु,
३-कसैला, ४-खट्टा और ५-मधुर ।

१९—फासओ परिणया जे उ
अट्टहा ते पकित्तिया ।
कक्खडा मउया चेव
गरुया लहुया तहा ॥

स्पर्शतः परिणता ये तु
अष्टधा ते प्रकीर्तिता ।
कक्खटा मृदुकाश्चैव
गुरुका लघुकास्तथा ॥

१९-२०—स्पर्श की अपेक्षा से उनकी
परिणति आठ प्रकार की होती है—१-कर्कश,
२-मृदु, ३-गुरु, ४-लघु, ५-शीत, ६-उष्ण,
७-स्निग्ध और ८-रुक्ष ।

२०—सीया उण्हा य निद्धा य
तहा लुक्खा य आहिया ।
इइ फासपरिणया एए
पुग्गला समुदाहिया ॥

शीता उष्णाश्च स्निग्धाश्च
तथा रुक्षाश्च व्याख्याताः ।
इति स्पर्श-परिणता एते
पुद्गला समुदाहृता ॥

२१—सठाणपरिणया जे उ
पचहा ते पकित्तिया ।
परिमण्डला 'य वट्टा'^१
तसा चउरसमायया ॥

संस्थान-परिणता ये तु
पंचधा ते प्रकीर्तिताः ।
परिमण्डलाश्च वृत्ताः
त्र्यस्राश्चतुरस्रा आयताः ॥

२१—संस्थान की अपेक्षा से उनकी
परिणति पाँच प्रकार की होती है—१-परि-
मण्डल, २-वृत्त, ३-त्रिकोण, ४-चतुष्क और
५-आयत ।

२२—वण्णओ जे भवे किण्हे
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए सठाणओ वि य ॥

वर्णतो यो भवेत् कृष्णः
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्य संस्थानतोऽपि च ॥

२२—जो पुद्गल वर्ण से कृष्ण है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक
विकल्प युक्त) होता है ।

२३—वण्णओ जे भवे नीले
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए सठाणओ वि य ॥

वर्णतो यो भवेन् नीलः
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२३—जो पुद्गल वर्ण से नील है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२४—वण्णओ लोहिए जे उ ,
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए सठाणओ वि य ॥

वर्णतो लोहितो यस्तु
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२४—जो पुद्गल वर्ण से रक्त है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२५—वण्णओ पीयए जे उ
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए सठाणओ वि य ॥

वर्णतः पीतको यस्तु
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२५—जो पुद्गल वर्ण से पीत है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२६—वण्णओ सुक्किले जे उ
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए सठाणओ वि य ॥

वर्णतः शुक्लो यस्तु
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२६—जो पुद्गल वर्ण से श्वेत है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२७—गन्धओ जे भवे सुग्भी
भइए से उ वण्णओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए सठाणओ वि य ॥

गन्धतो यो भवेत् सुरभिः
भाज्यः स तु वर्णतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२७—जो पुद्गल गन्ध से सुगन्ध वाला
है, वह वर्ण, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२८—गन्धओ जे भवे दुग्भी
भइए से उ वण्णओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए सठाणओ वि य ॥

गन्धतो यो भवेद्दुर्गन्धः
भाज्यः स तु वर्णतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२८—जो पुद्गल गन्ध से दुर्गन्ध वाला
है, वह वर्ण, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२९—रसओ तित्ते जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चेव
भइए सठाणओ वि य ॥

रसतस्तिक्तो यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२९—जो पुद्गल रस से तिक्त है, वह
वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३०—रसओ कडुए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

रसतः कटुको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३०—जो पुद्गल रस से कडुवा है, वह
वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३१—रसओ कसाए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

रसतः कषायो यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३१—जो पुद्गल रस से कसैला है, वह
वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३२—रसओ अम्बिले जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

रसतः अम्लो यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३२—जो पुद्गल रस से खट्टा है, वह
वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३३—रसओ मधुरए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

रसतो मधुरको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३३—जो पुद्गल रस से मधुर है, वह
वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३४—फासओ कक्खडे जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतः कक्खटो यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३४—जो पुद्गल स्पर्श से कर्कश है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३५—फासओ मउए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो मृदुको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३५—जो पुद्गल स्पर्श से मृदु है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३६—फासओ गुरुए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो गुरुको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः सस्यानतोऽपि च ॥

३६—जो पुद्गल स्पर्श से गुरु है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और सस्यान से भाज्य
होता है ।

३७—फासओ लघुए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो लघुको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः सस्यानतोऽपि च ॥

३७—जो पुद्गल स्पर्श में लघु है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और सस्यान में भाज्य
होता है ।

३८—फासओ सीयए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतः शीतको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्यानतोऽपि च ॥

३८—जो पुद्गल स्पर्श से शीत है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और सस्यान से भाज्य
होता है ।

३९—फासओ उण्हए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतः उण्णको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः सस्यानतोऽपि च ॥

३९—जो पुद्गल स्पर्श से उण्ण है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और सस्यान से भाज्य
होता है ।

४०—फासओ निद्धए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतः स्निग्धको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः सस्यानतोऽपि च ॥

४०—जो पुद्गल स्पर्श से स्निग्ध है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और सस्यान से भाज्य
होता है ।

४१—फासओ लुक्खए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो रुक्षको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्यानतोऽपि च ॥

४१—जो पुद्गल स्पर्श से रुक्ष है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और सस्यान से भाज्य
होता है ।

४२—परिमण्डलसठाणे
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

परिमण्डल-सस्थान
भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्य स्पर्शतोऽपि च ॥

४२—जो पुद्गल सस्थान से परिमण्डले
है, वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य
होता है ।

४३—सठाणओ भवे वट्टे
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

सस्थानतो भवेत् वृत्तः
भाज्य स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्य. स्पर्शतोऽपि च ॥

४३—जो पुद्गल सस्थान से वृत्त है,
वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य
होता है ।

४४—सठाणओ भवे तंसे
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

संस्थानतो भवेत् त्र्यस्रः
भाज्य. स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्य. स्पर्शतोऽपि च ॥

४४—जो पुद्गल सस्थान से त्रिकोण है,
वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य
होता है ।

४५—सठाणओ व चउरसे
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

संस्थानतो यश्चतुरस्रः
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः स्पर्शतोऽपि च ॥

४५—जो पुद्गल सस्थान से चतुष्कोण
है, वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य
होता है ।

४६—जे आययसठाणे
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

य आयत-सस्थान
भाज्य. स तु वर्णत ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्य स्पर्शतोऽपि च ॥

४६—जो पुद्गल सस्थान से आयत है,
वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य
होता है ।

४७—एसा अजीवविभत्ती
समासेण वियाहिया ।
इत्तो जीवविभत्ति
वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥

एषाऽजीव-विभक्तिः
समासेन व्याख्याता ।
इतो जीव-विभक्ति
वक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥

४७—यह अजीव-विभाग संक्षेप में कहा
गया है । अब अनुक्रम-से जीव-विभाग का
निरूपण करूँगा ।

४८—ससारत्या य सिद्धा य
दुविहा जीवा वियाहिया^१ ।
'सिद्धा णेगविहा वुत्ता'^२
त मे कित्तयओ मुण ॥

ससारस्याश्च सिद्धाश्च
द्विविधाः जीवा व्याख्याताः ।
सिद्धा अनेकविधा उक्ता
तान् मे कीर्तयतः शृणु ॥

४८—जीव दो प्रकार के होते हैं—
(१) मसारी और (२) सिद्ध । सिद्ध अनेक प्रकार
के होते हैं । मैं उनका निरूपण करता हूँ, तुम
मुझ से सुनो ।

४९—इत्थी पुरिससिद्धा य
तहेव य नपुसगा ।
सल्लिगे अन्नल्लिगे य
गिहिल्लिगे तहेव य ॥

स्त्री-पुरुष-सिद्धाश्च
तथैव च नपुसका ।
स्व-लिंगा अन्य-लिंगाश्च
गृह-लिंगास्तथैव च ॥

४९—स्त्रीलिंग सिद्ध, पुरुषलिंग सिद्ध,
नपुसकलिंग सिद्ध, स्वलिंग सिद्ध, अन्यलिंग
सिद्ध, गृहलिंग सिद्ध आदि उनके अनेक
प्रकार हैं ।

५०—उक्कोसोगाहणाए य
जहन्तमज्झिमाड य ।
उड्डं अहे य तिरिय च
समुद्धम्मि जलम्मि य ॥

उत्कर्षाविगाहनाया च
जघन्यमध्यमयोश्च ।
ऊर्ध्वमधश्च तीर्थक् च
समुद्रे जले च ॥

५०—उत्कृष्ट, जघन्य और मध्यम
अवगाहना (कद) में, ऊँचे, नीचे और तिरछे
लोक में तथा समुद्र व अन्य जलाशयों में भी
जीव सिद्ध होते हैं ।

५१—दस 'चेव नपुसेसु'^३
वीस इत्थियासु य ।
पुरिसेसु य अट्टसय
समएणेणेण सिज्झई ॥

दस चैव नपुसकेषु
विंशतिः स्त्रीषु च ।
पुरुषेषु चाष्टशत
समयेनैकेन सिध्यति ॥

५१—दश नपुमक, बीस स्त्रियाँ और
एक सौ आठ पुरुष एक ही क्षण में सिद्ध हो
सकते हैं ।

५२—चत्तारि य गिहिल्लिगे
अन्नल्लिगे दसेव य ।
सल्लिगेण य अट्टसय
समएणेणेण सिज्झई ॥

चत्वारश्च गृह-लिंगे
अन्य-लिंगे दशैव च ।
स्व-लिंगेन चाष्टशत
समयेनैकेन सिध्यति ॥

५२—गृहस्थ वेश में चार, अन्य तीर्थिक
वेश में दश और निग्रन्य वेश में एक सौ आठ
जीव एक साथ सिद्ध हो सकते हैं ।

५३—उक्कोसोगाहणाए य
सिज्झन्ते जुगव दुवे ।
चत्तारि जहन्नाए
जवमज्झट्टुत्तर^४ सय ॥

उत्कर्षाविगाहनाया च
सिध्यतो युगपद् द्वौ ।
चत्वारो जघन्यायाम्
यवमध्यायामष्टोत्तर शतम् ॥

५३—उत्कृष्ट अवगाहना में दो, जघन्य
अवगाहना में चार और मध्यम अवगाहना में
एक सौ आठ जीव एक ही क्षण में सिद्ध हो
सकते हैं ।

१. भवति ते (वृ० पा०) ।

२. सत्थाणगविहा सिद्धा (वृ० पा०) ।

३. य नपुसएसु (वृ०) ।

४. मज्झे अट्टत्तर (अ) ।

५४—‘चउरुड्ढलोए य दुवे समुद्दे
तओ जले वीसमहे तहेव^१ ।
सयं च अट्ठुत्तर तिरियलोए
समएणेणेण उ ‘सिज्झई उ’^२ ॥’^३

चत्वार ऊर्ध्व-लोके च द्वौ समुद्रे
त्रयो जले विंशतिरधस्तथैव ।
शतं चाष्टोत्तरं तिर्यग्-लोके
समयेनैकेन तु सिध्यति ॥

५४—ऊँचे लोक में चार, समुद्र में दो,
अन्य जलाशयो में तीन, नीचे लोक में बीस,
तिरछे लोक में एक सौ आठ जीव एक ही क्षण
में सिद्ध हो सकते हैं ।

५५—कहिं पडिहया सिद्धा ?
कहिं सिद्धा पइट्ठिया ? ।
कहिं बोन्दि चइत्ताणं ?
कथं गन्तूण सिज्झई ? ॥

क्वः प्रतिहता सिद्धाः ?
क्व सिद्धाः प्रतिष्ठिताः ? ।
क्व शरीरं त्यक्त्वा ?
कुत्र गत्वा सिध्यन्ति तु ? ॥

५५—सिद्ध कहाँ रुकते हैं ? कहाँ स्थित
होते हैं ? कहाँ शरीर को छोड़ते हैं ? और
कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं ?

५६—अलोए पडिहया सिद्धा
लोगो य पइट्ठिया ।
इह बोन्दि चइत्ताणं
तथं गन्तूण सिज्झई ॥

अलोके प्रतिहताः सिद्धाः
लोकाग्रे च प्रतिष्ठिताः ।
इह शरीरं त्यक्त्वा
तत्र गत्वा सिध्यन्ति ॥

५६—सिद्ध अलोक में रुकते हैं । लोक
के अग्रभाग में स्थित होते हैं । मनुष्य लोक में
शरीर को छोड़ते हैं और लोक के अग्रभाग में
जाकर सिद्ध होते हैं ।

५७—बारसहिं जोयणेहिं
सव्वट्ठस्सुवरिं भवे ।
ईसीपग्गभारनामा उ^४
पुढवी छत्तसठिय ॥

द्वादशभिर्योजनैः
सर्वार्थस्योपरि भवेत् ।
ईषत्प्राग्भारनाम्नी तु
पृथ्वी छत्र-संस्थिता ॥

५७—सर्वार्थसिद्ध विमान से बारह
योजन ऊपर ईषत्-प्राग्भारा नामक पृथ्वी
है । वह छत्राकार में अवस्थित है ।

५८—पणयालसयसहस्सा
जोयणाण तु आयया ।
तावइय चैव वित्थिण्णा
‘तिगुणो तस्सेव परिरओ’^५ ॥

पचचत्वारिंशत् वातसहस्राणि
योजनाना त्वायता ।
तावन्ति चैव विस्तीर्णा
त्रिगुणस्तस्मादेव परिरयः ॥

५८—उसकी लम्बाई और चौड़ाई
पैंतालीस लाख योजन की है । उसकी परिधि
उस (लम्बाई-चौड़ाई) से तिगुनी है ।

१ तहेव य (अ) ।

२ सिज्झई धुव (उ, ऋ०) ।

३ चउरो उड्ढलोगमि वीसपहुत्त अहे भवे ।

सय अट्ठोत्तर तिरिए एग समएण सिज्झई ॥

दुवे समुद्दे सिज्झति सेस जलेछ ततो जणा ।

एसा हु सिज्झणा भणिया पुव्वभाव पढुच्च उ ॥ (वृ० पा०) ।

४ × (उ, ऋ०) ।

५ तिउण साहिय पडिरय (वृ० पा०) ।

५९—अट्टजोयणवाहल्ला

सा मज्झमि वियाहिया ।
परिहायन्ती चरिमन्ते
मच्छियपत्ता तणुयरी ॥

अष्टयोजन-वाहल्या

सा मध्ये व्याख्याता ।
परिहीयमाणा चरमान्ते
मक्षिका-पत्रात् तनुतरा ॥

५९—मध्य भाग में उसकी मोटाई आठ

योजन की है । वह क्रमशः पतली होती-होती
अन्तिम भाग में मक्खी के पर ने भी अधिक
पतली हो जाती है ।

६०—अज्जुणसुवण्णगमई

सा पुढवी निम्मला सहावेण ।
उत्ताणगच्छत्तगसठिया य
भणिया जिणवरेहि ॥

अर्जुन-सुवर्णकमयी

सा पृथिवी निर्मला स्वभावेन ।
उत्तानकच्छत्रक-सस्थिता च
भणिता जिनवरैः ॥

६०—वह श्वेत-स्वर्णमयी, स्वभाव से

निर्मल और उत्तान (सीधे) छत्राकार वाली
है—ऐसा जिनवर ने कहा है ।

६१—सरुक्कुन्दसकासा

पाण्डुरा निम्मला सुहा ।
सीयाए जोयणे तत्तो
लोयन्तो उ वियाहिओ ॥

शङ्खाङ्कुन्द-सकाशा

पाण्डुरा निर्मला शुभा ।
सीताया योजने ततः
लोकान्तस्तु व्याख्यातः ॥

६१—वह शख, अक-रत्न और कुन्द पुष्प

के समान श्वेत, निर्मल और शुद्ध है । उस
सीता नाम की ईपत्-प्राग्भारा पृथ्वी से एक
योजन ऊपर लोक का अन्त (अग्रभाग) है ।

६२—जोयणस्स उ जो तस्स^१

कोसो उवरिमो भवे ।
'तस्स कोसस्स छग्भाए
सिद्धानोगाहणा भवे'^२ ॥

योजनस्य तु यस्तस्य

क्रोश उपरिवर्तो भवेत् ।
तस्य क्रोशस्य षड्भागे
सिद्धानामवगाहना भवेत् ॥

६२—उस योजन के उपरले कोस के

छठे भाग में सिद्धों की अवगाहना (अवस्थिति)
होती है ।

६३—तत्थ सिद्धा महाभागा

लोयग्गम्मि पइट्ठिया^३ ।
भवप्पवच्च उम्मुक्का
सिद्धि वरगइं गया ॥

तत्र सिद्धा महाभागाः

लोकाग्र प्रतिष्ठिताः ।
भव-प्रपञ्चोन्मुक्ताः
सिद्धि वरगतिं गता ॥

६३—अनन्त शक्तिशाली भव-प्रपञ्च से

उन्मुक्त और सर्वश्रेष्ठ गति (सिद्धि) को प्राप्त
होने वाले सिद्ध वहाँ लोक के अग्रभाग में स्थित
होते हैं ।

६४—उस्सेहो जस्स जो होइ

भवम्मि चरिमम्मि उ^४ ।
त्रिभागहीणा तत्तो य
सिद्धानोगाहणा भवे ॥

उत्सेधो यस्य यो भवति

भवे चरमे तु ।
त्रिभागहीना ततश्च
सिद्धानामवगाहना भवेत् ॥

६४—अन्तिम भव में जिसकी जितनी

ऊँचाई होती है, उससे त्रिभागहीन (एक तिहाई
—फम) उसकी अवगाहना होती है ।

१. तत्थ (बु०), तस्स (धृ० पा०) ।

२. कोसस्सवि य जो तत्थ छग्भागे उवरिमो भवे (धृ० पा०) ।

३. य सट्ठिया (अ) ।

४. य (ऋ०) ।

६५—एगत्तेण साईया
अपज्जवसिया वि य ।
पुहुत्तेण अणाईया
अपज्जवसिया वि य ॥

६६—अरुविणो जीवघणा
नाणदसणसन्निया ।
अउल सुहं सपत्ता
उवमा जस्स नत्थि उ ॥

६७—लोएगदेसे^१ ते सव्वे
नाणदसणसन्निया ।
ससारपारनिच्छिन्ना
सिद्धिं वरगइं गया ॥

६८—ससारत्था उ जे जीवा
दुविहा ते वियाहिया ।
तसा य थावरा चेव
थावरा तिविहा तहिं ॥

६९—पुढवी आउजीवा य
तहेव य वणस्सई ।
इच्चेए थावरा तिविहा
तेसिं भेए सुणेह मे ॥

७०—दुविहा पुढवीजीवा उ
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए^२ दुहा पुणो ॥

एकत्वेन सादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
पृथुत्वेनानादिका
अपर्यवसिता अपि च ॥

अरूपिणो जीव-घनाः
ज्ञान-दर्शन-सज्जिताः ।
अतुलं सुख सम्प्राप्ता
उपमा यस्य नास्ति तु ॥

लोकैकदेशे ते सर्वे
ज्ञान-दर्शन-सज्जिता ।
ससार-पार-निस्तीर्णा
सिद्धिं वरगतिं गताः ॥

संसारस्यास्तु ये जीवाः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
त्रसाश्च स्थावराश्चैव
स्थावरास्त्रिविधास्तत्र ॥

पृथिव्यब्जजीवाश्च
तथैव च वनस्पतिः ।
इत्येते स्थावरास्त्रिविधाः
तेषां भेदान् शृणुत मे ॥

द्विविधा पृथिवी-जावास्तु
सूक्ष्मा बादरास्तथा ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
एवमेव द्विधा पुनः ॥

६५—एक-एक की अपेक्षा से सिद्ध
सादि-अनन्त और पृथुता (बहुत्व) की अपेक्षा से
अनादि-अनन्त है ।

६६—वे सिद्ध-जीव अरूप, सघन (एक
दूसरे से सटे हुए) और ज्ञान-दर्शन में सतत
उपयुक्त होते हैं । उन्हें वैसा सुख प्राप्त होता
है, जिसके लिए संसार में कोई उपमा
नहीं है ।

६७—ज्ञान और दर्शन से सतत उपयुक्त,
संसार समुद्र से निस्तीर्ण और सर्वश्रेष्ठ गति
(सिद्धि) को प्राप्त होने वाले सब सिद्धलोक के
एक देश में अवस्थित हैं ।

६८—संसारी जीव दो प्रकार के हैं—
(१) त्रस और (२) स्थावर । स्थावर तीन प्रकार
के हैं—

६९—(१) पृथ्वी, (२) जल और (३)
वनस्पति । ये तीन स्थावर के मूल भेद हैं ।
इनके उत्तर भेद मुझ से सुनो ।

७०—पृथ्वी-काय के जीव दो प्रकार के
हैं—(१) सूक्ष्म और (२) बादर । इन दोनों के
(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त—ये दो-दो भेद
होते हैं ।

७१—वायरा जे उ पज्जता
दुविहा ते वियाहिया ।
सण्हा खरा य वोद्धव्वा
सण्हा सत्तविहा तहि ॥

बादरा ये तु पर्याप्ताः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
श्लक्ष्णाः खराश्च वोद्धव्याः
श्लक्ष्णाः सप्तविधास्तत्र ॥

७१—बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों
के दो भेद हैं—(१) मृदु, और (२) कठोर ।
मृदु के सात भेद हैं ।

७२—किण्हा नीला य रुहिरा य'
हालिद्दा सुक्किला तहा ।
पण्डुपणगमट्टिया
खरा छत्तीसईविहा ॥

कृष्णा नीलाश्च रुधिराश्च
हारिद्राः शुक्लास्तथा ।
पाण्डु-पनक-मृत्तिका
खरा पट्त्रिंशद्विधा ॥

७२—(१) कृष्ण, (२) नील, (३) रक्त,
(४) पीत, (५) श्वेत, (६) पाण्डु (भूरीमिट्टी)
और (७) पनक (अति सूक्ष्म रज) । कठोर
पृथ्वी के छत्तीस प्रकार हैं ।

७३—पुढवी य सक्करा बालुया य
उवले सिला य लोणूसे ।
'अयतम्बतउय'^२ -सीसग-
रूपसुवण्णे य वडरे य ॥

पृथिवी च शर्करा बालुका च
उपलः शिला च लवणोषौ ।
अयस्तान्न-त्रपुक-सीसक-
रूप्य-सुवर्णं च वज्रं च ॥

७३—(१) शुद्ध पृथ्वी, (२) शर्करा, (३)
बालू, (४) उपल, (५) शिला, (६) लवण, (७)
नौनी मिट्टी, (८) लोहा, (९) रागा, (१०)
ताम्बा, (११) घोशा, (१२) चाँदी, (१३)
सोना, (१४) वज्र,

७४—हरियाले हिंगुलुए
मणोसिला सासगजणपवाले ।
अम्भपडलऽम्भवालुय
वायरकाए मणिविहाणा ॥

हरिताल हिंगुलकः
मन शिला सस्यकाऽजनप्रवालानि ।
अन्नपटलमन्नवालुका
बादरकाये मणिविधानानि ॥

७४—(१५) हरिताल, (१६) हिंगुल,
(१७) मैनसिल, (१८) सम्यक, (१९) अंजन,
(२०) प्रवाल, (२१) अन्नक पटल, (२२) अन्न
वालुक । मणियों के भेद, जैसे—

७५—गोमेज्जए य रुयगे
अके फलिहे य लोहियक्खे य ।
मरगयमसारगल्ले
भुयमोयगइन्दनीले य ॥

गोमेदकश्च रुचक
अक-स्फटिकश्च लोहिताक्षश्च ।
मरकत-मसारगल्लः
भुजमोचक इन्द्रनीलश्च ॥

७५—(२३) गोमेदक, (२४) रुचक,
(२५) अक, (२६) स्फटिक और लोहिताक्ष,
(२७) मरकत एव मसार गल्ल, (२८) भुज-
मोचक, (२९) इन्द्रनील,

७६—चन्दणगेरुयहसगम्भ
पुलए सोगन्धिए य वोद्धव्वे ।
चन्दप्पहवेरुलिए
जलकन्ते सूरकन्ते य ॥

चन्दन-गौरिक-हंसगर्भ
पुलक सौगन्धिकश्च वोद्धव्य
चन्द्रप्रभो वैडूर्यः
जलकान्तः सूर्यकान्तश्च ॥

७६—(३०) चन्दन, गेरु एव हस गर्भ,
(३१) पुलक, (३२) सौगन्धिक, (३३) चन्द्रप्रभ,
(३४) वैडूर्य, (३५) जलकान्त और (३६) सूर्य
कान्त ।

१. × (अ) ।

२. अयय तओ य (अ), अय तउय तम्भ (उ, ऋ०) ।

७७—एए खरपुढवीए
भेया छत्तीसमाहिया ।
एगविहमणाणत्ता
सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥

७८—सुहुमा सव्वलोगम्मि
लोगदेसे य बायरा ।
इत्तो कालविभाग तु
तेसि वुच्छ चउव्विह ॥

७९—सतइं पप्पणाईया^१
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइ पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

८०—बावीससहस्साइ
वासाणुक्कोसिया भवे ।
आउठिई पुढवीणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया^२ ॥

८१—असखकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नय ।
कायठिई पुढवीण
त काय तु अमुचओ ॥

८२—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजडमि सए काए
पुढवीजीवाण अन्तर ॥

एते खरपृथिव्याः
भेदा षट्त्रिंशदाख्याताः ।
एकविधा अनानात्वाः
सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याता ॥

सूक्ष्माः सर्वलोके
लोक-देशे च बादराः ।
इतः काल-विभागं तु
तेषां वक्ष्ये चतुर्विधम् ॥

संततिं प्राण्यानादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

द्वाविंशति-सहस्राणि
वर्षाणामुत्कर्षिता भवेत् ।
आयुः-स्थितिः पृथिवीनां
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

असख्यकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
काय-स्थितिः पृथिवीनां
तं काय त्वमुचताम् ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
वित्यक्ते स्वके काये
पृथिवी-जीवानामन्तरम् ॥

७७—कठोर पृथ्वी के ये छत्तीस प्रकार
होते हैं । सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव एक ही
प्रकार के होते हैं । उनमें नानात्व (बहु विधता)
नहीं होता ।

७८—सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव सूक्ष्म
लोक में और बादर पृथ्वीकायिक जीव लोक
के एक भाग में व्याप्त हैं । इनके चतुर्विध
काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

७९—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त है ।

८०—उनकी आयु-स्थिति जघन्यत
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत बाईस हजार वर्ष
की है ।

८१—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर उसी
काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा)
जघन्यत. अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः असख्यात-
काल की है ।

८२—उनका अन्तर (पृथ्वीकाय को छोड़
कर पुन उसी काय में उत्पन्न होने तक का
काल) जघन्यत अन्यर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः
अनन्त काल का है ।

१. त्तेणाई (अ) ।

२. जहन्नग (अ) ।

८३—एएसि वण्णओ चेव
गन्वओ रसफासओ ।
सठाणादेसओ वावि
विहाणाड सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्वतो रस-स्पर्शतः ।
सस्यानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

८३—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और मस्यान
की दृष्टि में उनके हजारों भेद होते हैं ।

८४—दुविहा आउजीवा उ
सुहुमा वायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए दुहा पुणो ॥

द्विविधा अज्जीवास्तु
सूक्ष्मा वादरास्तथा ।
पर्याप्ता अपर्याप्ता-
एवमेव द्विधा पुनः ॥

८४—अष्कायिक जीव दो प्रकार के हैं—
(१) सूक्ष्म और (२) वादर । इन दोनों के
पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो-दो भेद होते हैं ।

८५—वायरा जे उ पज्जत्ता
पचहा ते पकित्तिया ।
सुद्धोदए य उस्से
हरतण् महिया हिमे ॥

वादरा ये तु पर्याप्ताः
पंचधा ते प्रकीर्तिताः ।
शुद्धोदकचावश्यायः
हरतनुर्महिकाहिमम् ॥

८५—वादर पर्याप्त अष्कायिक जीवों के
पाँच भेद होते हैं—(१) शुद्धोदक, (२) ओस,
(३) हरतनु, (४) कुहासा और (५) हिम ।

८६—एगविहमणाणत्ता
सुहुमा तत्थ वियाहिया ।
सुहुमा सव्वलोगम्मि
लोगदेसे य वायरा ॥

एकविधा अनानात्वाः
सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याताः ।
सूक्ष्मा सर्वलोके
लोक-देशे च वादराः ॥

८६—सूक्ष्म अष्कायिक जीव एक ही
प्रकार के होते हैं, उनमें नानात्व नहीं होता ।
वे समूचे लोक में तथा वादर अष्कायिक जीव
लोक के एक भाग में व्याप्त हैं ।

८७—सन्तड पप्पऽणार्इया^१
अपज्जवसिया वि य ।
ठिड पडुच्च सार्इया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राप्पानादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थिति प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

८७—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से मादि-
सान्त हैं ।

८८—सत्तेव सहस्साडं
वासाणुक्कोसिया भवे ।
आउट्टिई आऊणं
अन्तोमुहुत्त जहन्निया^२ ॥

सप्तैव सहस्राणि
वर्षाणमुत्कर्षिता भवेत् ।
आयुः-स्थितिरेषां
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

८८—उनकी आयु स्थिति जघन्यत
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः सात हजार वर्ष
की है ।

१. प्तेणार्इ (अ) ।

२. जहन्नग (अ) ।

९—असंखकालमुक्कोसं

अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ।
कायद्विई आऊणं
त काय तु अमुचओ ॥

असंखकालमुत्कर्षं

अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ।
काय-स्थितिरपां
तं कायं त्वमुचताम् ॥

८६—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर उसकी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः असंख्यात काल की है ।

१०—अणन्तकालमुक्कोसं

अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढमि सए काए
आऊजीवाण अन्तरं ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं

अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
वित्यक्ते स्वके काये
अब्जीवानामन्तरम् ॥

९०—उनका अन्तर (अप्काय को छोड़ कर पुन उसी काय में उत्पन्न होने तक का काल) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत अनन्त-काल का है ।

११—एएसि वण्णओ चेव
गन्धओ रसफासओ ।
सठाणादेसओ वावि
विहाणाइं सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

९१—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान-की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

१२—दुविहा वणस्सईजीवा
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए^१ दुहा पुणो ॥

द्विविधा वनस्पति-जीवाः
सूक्ष्मा बादरास्तथा ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
एवमेते द्विविधा पुनः ॥

९२—वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं—(१) सूक्ष्म और (२) बादर । इन दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो-दो भेद होते हैं ।

१३—बायरा जे उ पज्जत्ता
दुविहा ते वियाहिया ।
साधारणसरीरा य
पत्तेगा य तहेव य ॥

बादरा ये तु पर्याप्ताः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
साधारण-शरीराश्च
प्रत्येकाश्च तथैव च ॥

९३—बादर पर्याप्त वनस्पतिकायिक जीवों के दो भेद होते हैं—(१) साधारण-शरीर और (२) प्रत्येक-शरीर ।

१४—‘पत्तेगसरीरा उ
णेगहा ते पकित्तिया’^२ ।
रुक्खा गुच्छा य गुम्मा य
लया वल्ली तणा तहा ॥

प्रत्येक शरीरास्तु
अनेकधा ते प्रकीर्तिताः ।
रुक्षा गुच्छाश्च गुल्माश्च
लता-वल्ली तृणानि तथा ॥

९४—प्रत्येक-शरीर वनस्पतिकायिक जीवों के अनेक प्रकार हैं—वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली और तृण ।

१. एवमेव (अ) ।

२. बारसविह भेएण पत्तेया उ वियाहिय (वृ० पा०) ।

९५—लयावल्या^१ पव्वगा^२ कुहुणा
जलरूहा ओसहीतिणा^३ ।
हरियकाया य वोद्धव्वा
पत्तेया इति आहिया ॥

लता-वलयानि पर्वजाः
कुहणा जलरूहा औषधि-तृणानि ।
हरित-कायाश्च वोद्धव्याः
प्रत्येका इति आख्याताः ॥

९५—लता-वलय (नारियल आदि), पर्वज (ईख आदि), कुहण (भूफोड आदि), जलरूह (कमल आदि), औषधि-तृण (अनाज) और हरित-काय—ये सब प्रत्येक-शरीर हैं ।

९६—साधारणशरीरा उ
णेगहा ते पकित्तिया ।
आलुए मूलए चेव
सिंगेवेरे तहेव य ॥

साधारण-शरीरास्तु
अनेकविधा ते प्रकीर्तिताः ।
आलुको मूलकश्चैव
शृङ्गवेर तथैव च ॥

९६—साधारण-शरीर वनस्पतिकायिक जीवों के अनेक प्रकार हैं—आलू, मूली, अदरक,

९७—हिरिली सिरिली सिस्सिरिली
जावई केदकन्दली^४ ।
पलदूलसणकन्दे य
कन्दली य कुडुवए^५ ॥

हिरली सिरिली सिस्सिरिली
जावई केदकन्दली ।
पलाण्डु-लशुन-कन्दश्च
कन्दली च कुस्तुम्बकः ॥

९७—हिरलीकन्द, सिरिलीकन्द, सिस्सिरिलीकन्द, जावईकन्द, केद-कदलीकन्द, प्याज, लहसुन, कन्दली, कुस्तुम्बक,

९८—लोहि णीहू य थिहू य
कुहगा य तहेव य ।
कण्हे य वज्जकन्दे य
कन्दे मूरणए^६ तहा ॥

लोही स्निहूश्च म्तिभूश्च
कुहकाश्च तथैव च ।
कृष्णश्च वज्रकन्दश्च
कन्दः सूरणकस्तथा ॥

९८—लोही, स्निहू, कुहक, कृष्ण, वज्र-कन्द, सूरणकन्द,

९९—अस्सकणी य वोद्धव्वा
सीहकणी तहेव य ।
मुसुण्डी य हलिदा य
ऽणेगहा एवमायओ ॥

अश्वकर्णी च वोद्धव्या
सिंहकर्णी तथैव च ।
मुषुण्डी च हरिद्रा च
अनेकधा एवमादयः ॥

९९—अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, मुसुण्डी और हरिद्रा आदि । ये सब साधारण-शरीर हैं ।

१००—एगविहमणाणत्ता
सुहुमा तत्थ वियाहिया ।
सुहुमा सव्वलोगम्मि
लोगदेसे य बायरा ॥

एकविधा अनानात्वा
सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याताः ।
सूक्ष्माः सर्वलोके
लोक-देशे च वादराः ॥

१००—सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव एक ही प्रकार के होते हैं, उनमें नानात्व नहीं होता । वे समूचे लोक में तथा वादर वनस्पति-कायिक जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं ।

१. वलया य (अ) ।

२. पव्वया (वृ०), पव्वगा (वृ० पा०) ।

३. तहा (अ, आ, इ, उ, ए०) ।

४. केलि० (उ) ।

५. कुडुव्वए (उ, ऋ०), कुह्व्वए (स) ।

६. पुसूरणे (उ) ।

१०१—सतइ पप्पणाईया^१
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइ पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

१०२—दस चैव सहसाइ
वासाणुकोसिया भवे ।
वणप्फईण^२ आउं तु
अन्तोमुहुत्त जहन्नगं ॥

१०३—अणन्तकालमुक्कोस
अन्तोमुहुत्तं जहन्नय ।
कायठिई पणगाणं
त काय तु अमुचओ ॥

१०४—असखकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नय ।
विजढमि सए काए
पणगजीवाण अन्तर ॥

१०५—एएसि वण्णओ चैव
गन्धओ रसफासओ ।
सठाणादेसओ वावि
विहाणाइ सहस्ससो ॥

१०६—इच्चेए थावरा तिविहा
समासेण वियाहिया ।
इत्तो उ तसे तिविहे
वुच्छामि अण्णुव्वसो ॥

सन्तति प्राण्यानादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

दश चैव सहस्राणि
वर्षाणामुत्कर्षिता भवेत् ।
वनस्पतीनामायुस्तु
अन्तर्मुहूर्त्तं जघन्यकम् ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं^१
अन्तर्मुहूर्त्तं जघन्यकम् ।
काय-स्थितिः पनकानां
तं कायन्त्वमुच्यताम् ॥

असङ्ख्यकालमुत्कर्षं^१
अन्तर्मुहूर्त्तं जघन्यकम् ।
वित्यक्ते स्वके काये
पनक-जीवानामन्तरम् ॥

एतेषा वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

इत्येते स्थावरास्त्रिविधा
समासेन व्याख्याताः ।
इतस्तु त्रसान् त्रिविधान्
वक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥

१०१—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त हैं ।

१०२—उनकी आयु-स्थिति जघन्यत
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत. दश हजार वर्ष
की है ।

१०३—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा)
जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत अनन्त काल
की है ।

१०४—उनका अन्तर (वनस्पतिकाय को
छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक
का काल) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत
असंख्यात काल का है ।

१०५—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान
की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

१०६—यह तीन प्रकार के स्थावर जीवों
का संक्षिप्त वर्णन है । अब तीन प्रकार के त्रस
जीवों का क्रमशः निरूपण करेंगे ।

१. °तेणाइ (अ) ।

२. वणस्सईण (उ. ऋ०, वृ०) , वणप्फईण (वृ० पा०) ।

१०७—तेऊ वाऊ य बोद्धव्वा
उराला य तसा तहा ।
इच्चेए, तसा तिविहा
तेसिं भेए सुणेह मे ॥

तेजो वायुश्च बोद्धव्यो
उदाराश्च त्रसास्तथा ।
इत्येते त्रसास्त्रिविधाः
तेषां भेदान् शृणुत मे ॥

१०७—तेजस्काय, वायुकाय और
उदार त्रसकाय—ये तीन भेद त्रसकाय के हैं ।
अब इनके भेदों को मुझ से सुनो ।

१०८—दुविहा तेउजीवा उ
सुहुमा वायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए दुहा पुणो ॥

द्विविधास्तेजोजीवास्तु
सूक्ष्मा वादरास्तथा ।
पर्याप्ता अपर्याप्ता
एवमेते द्विधा पुनः ॥

१०८—तेजस्कायिक जीवों के दो प्रकार
हैं—(१) सूक्ष्म और (२) वादर । उन दोनों के
पर्याप्त और अपर्याप्त—ये दो-दो भेद होते हैं ।

१०९—वायरा जे उ पज्जत्ता
णेगहा ते वियाहिया ।
इगाले मुम्मुरे अगणी
अच्चिं जाला तहेव य ॥

वादरा ये तु पर्याप्ताः
अनेकधा ते व्याख्याताः ।
अंगारो मुमुरोऽग्नि
अर्चिर्ज्वाला तथैव च ॥

१०९—वादर पर्याप्त तेजस्कायिक जीवों
के अनेक भेद हैं—अगार, मुर्मुर, अग्नि, अर्चि,
ज्वाला,

११०—उक्का विज्जू य बोद्धव्वा
णेगहा एवमायओ ।
एगविहमणाणत्ता
सुहुमा ते वियाहिया ॥

उल्का विधुच्च बोद्धव्या
अनेकधा एवमादयः ।
एकविधा अनानात्वा
सूक्ष्मास्ते व्याख्याता ॥

११०—उल्का, विधुत् आदि । सूक्ष्म
तेजस्कायिक जीव एक ही प्रकार के होते
हैं, उनमें नानात्व नहीं होता ।

१११—सुहुमा सव्वलोगम्मि
लोगदेसे^१ य वायरा ।
इत्तो कालविभाग तु
तेसिं वुच्छं चउव्विह ॥

सूक्ष्माः सर्वलोके
लोके-देशे च वादराः ।
इतः काल-विभाग तु
तेषां वक्ष्यामि चतुर्विधम् ॥

१११—वे (सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव)
समूचे लोक में और वादर तेजस्कायिक जीव
लोक के एक भाग में व्याप्त हैं । अब मैं उनके
चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

११२—सतइ पप्पऽणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइ पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्ततिं प्राप्यानादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

११२—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त हैं ।

११३—तिण्णेव अहोरत्ता
उक्कोसेण वियाहिया ।
आउट्ठिई तेऊणं
अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥

११४—असखकालमुक्कोस
अन्तोमुहुत्त जहन्नयं ।
कायट्ठिई तेऊणं
त काय तु अमुंचओ ॥

११५—अणन्तकालमुक्कोस
अन्तोमुहुत्त जहन्नय ।
विजडमि सए काए
तेउजीवाण अन्तर ॥

११६—एएसिं वण्णओ चेव
गन्धओ रसफासओ ।
सठाणादेसओ वावि
विहाणाइ सहस्ससो ॥

११७—दुविहा वाउजीवा उ
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए दुहा पुणो ॥

११८—वायरा जे उ पज्जत्ता
पचहा ते पकित्तिा ।
उक्कलियामण्डलिया-
घणगुजा सुद्धवाया य ॥

त्रीण्येवाहोरात्राणि
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयुः-स्थिति स्तेजसाम्
अन्तर्मुहूर्त जघन्यका ॥

असंख्यकालमुत्कर्ष
अन्तर्मुहूर्त जघन्यकम् ।
काय-स्थितिस्तेजसाम्
त कायन्त्वसुचताम् ॥

अनन्तकालमुत्कर्ष
अन्तर्मुहूर्त जघन्यकम् ।
वित्यक्ते स्वके काये
तेजोजीवानामन्तरम् ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

द्विविधा वायु-जीवास्तु
सूक्ष्मा बादरास्तथा ।
पर्याप्ता अपर्याप्ता
एवमेते द्विधा पुनः ॥

बादरा ये तु पर्याप्ता
पंचधा ते प्रकीर्तिता ।
उत्कलिका मण्डलिका
घन-गुंजाः शुद्ध-वाताश्च ॥

११३—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः तान दिन-रात
की है ।

११४—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा)
जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत असंख्यात
काल की है ।

११५—उनका अन्तर (तेजस्काय को
छोड़ कर पुन उसी काय में उत्पन्न होने तक
का काल) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः
अनन्त काल का है ।

११६—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद हैं ।

११७—वायुकायिक जीवों के दो प्रकार
हैं—(१) सूक्ष्म और (२) बादर । उन दोनों के
पर्याप्त और अपर्याप्त—ये दो-दो भेद होते हैं ।

११८—बादर पर्याप्त वायुकायिक जीवों
के पाँच भेद होते हैं—(१) उत्कलिका, (२)
मण्डलिका, (३) घनवात, (४) गुंजावात और
(५) शुद्धवात ।

११९—सवट्टगवाते य
 ऽणोगविहा^१ एवमायओ ।
 एगविहमणाणत्ता
 मुहुमा ते वियाहिया ॥

सवत्तक-वाताश्च
 अनेकधा एवमादय ।
 एकविधा अनानात्वाः
 सूक्ष्मास्ते व्याख्याताः ॥

११९—उनके सवत्तक वात आदि और भी अनेक प्रकार हैं । सूक्ष्म वायुकायिक जीव एक ही प्रकार के होते हैं, उनमें नानात्व नहीं होता ।

१२०—मुहुमा सच्चलोगम्मि
 लोगदेसे^२ य वायरा ।
 इत्तो कालविभाग तु
 तेसि वुच्छ चउव्विह ॥

सूक्ष्माः सर्वलोके
 लोक-देशे च वादराः ।
 इतः काल-विभाग तु
 तेषा वक्ष्यामि चतुर्विधम् ॥

१२०—वे (सूक्ष्म-वायुकायिक जीव) समूचे लोक में और वादर वायुकायिक जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं । अब मैं उनके चतुर्विध काल विभाग का निरूपण करूँगा ।

१२१—सतट्ट पप्पऽणार्डिया
 अपज्जवसिया वि य ।
 ठिड पडुच्च सार्डिया
 सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राप्यानादिकाः
 अपर्यवसिता अपि च ।
 स्थिति प्रतीत्य सादिकाः
 सपर्यवसिता अपि च ॥

१२१—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-अन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं ।

१२२—तिण्णेव सहस्साड
 वासाणुक्कोसिया भवे ।
 आउट्टिई वारुण
 अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥

त्रोण्येव सहस्राणि
 वर्षाणामुत्कर्षिता भवेत् ।
 आयु-स्थितिर्वायूनाम्
 अन्तमुहूर्त जघन्यकम् ॥

१२२—उनकी आयु-स्थिति जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत तीन हजार वर्षों की है ।

१२३—असखकालमुक्कोस
 अन्तोमुहुत्तं जहन्नय ।
 कायट्टिई वारुणं
 त कायं तु अमुचओ ॥

असख्यकालमुत्कर्षं
 अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
 काय-स्थितिर्वायूनाम्
 तं कायन्त्वमचताम् ॥

१२३—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत असख्यात काल की है ।

१२४—अणन्तकालमुक्कोस
 अन्तोमुहुत्तं जहन्नय ।
 विजढमि सए काए
 वाउजीवाण अन्तर ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
 अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
 वित्यक्ते स्वके काये
 वायु-जीवानामन्तरम् ॥

१२४—उनका अन्तर (वायुकाय को छोड़ कर पुन उसी काय में उत्पन्न होने तक का काल) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत अनन्त काल का है ।

१. ऽणोगहा (उ, ऋ०) ।

२. एगदेसे (अ) ।

१२५—एएसि वण्णओ चेव
गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाइ सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
सस्थानादेशतो वाऽपि
विधानानि सहस्रशः ॥

१२५—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
सस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१२६—ओराला तसा जे उ
चउहा^१ ते पकित्तिया ।
वेइन्द्रियतेइन्द्रिय-
चउरोपचिन्द्रिया चेव ॥

उदाराः त्रसा ये तु
चतुर्धा ते प्रकीर्तिताः ।
द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाः
चतुष्पचेन्द्रियाश्चैव ॥

१२६—उदार त्रस-कायिक जीव चार
प्रकार के हैं—(१) द्वीन्द्रिय, (२) त्रीन्द्रिय,
(३) चतुरिन्द्रिय और (४) पचेन्द्रिय ।

१२७—वेइन्द्रिया उ^२ जे जीवा
दुविहा ते पकित्तिया ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
तेसि भेए सुणेह मे ॥

द्वान्द्रियास्तु ये जीवाः
द्विविधास्ते प्रकीर्तिताः ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
तेषां भेदान् शृणुत मे ॥

१२७—द्वीन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—
(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त । उनके भेद तुम
मुझसे सुनो ।

१२८—किमिणो सोमगला
चेव अलसा माइवाहया ।
वासीमुहा य सिप्पीया^३
सखा सखणगा^४ तहा ॥

कृमय सौमङ्गलाश्चैव
अलसा मातृवाहकाः ।
वासीमुखाश्च शुक्तयः
शङ्खा शङ्खनकास्तथा ॥

१२८—कृमि, सौमगल, अलस, मातृ-
वाहक, वासीमुख, सीप, शख, शखनक,

१२९—पल्लोयाणुल्लया^५ चेव
तहेव य वराडगा ।
जलूगा जालगा चेव
चन्दणा य तहेव य ।

‘पल्लोया’ ‘अणुल्लया’ चैव
तथैव च वराटका ।
जलौका जालकाश्चैव
चन्दनाश्च तथैव च ॥

१२९—पल्लोय, अणुल्लक, कोडी, जौक,
जालक, चन्दनिया,

१३०—इइ वेइन्द्रिया एए
णेगहा एवमायओ ।
लोगेगदेसे ते सव्वे
न सव्वत्थ वियाहिया ॥^६

इति द्वीन्द्रिया एते
अनेकधा एवमादयः ।
लौकिकदेशे ते सर्वे
न सर्वत्र व्याख्याताः ॥

१३०—आदि अनेक प्रकार के द्वीन्द्रिय
जीव हैं । वे लोक के एक भाग में ही प्राप्त
होते हैं, समूचे लोक में नहीं ।

१ चउव्विहा (ऋ०) ।

२. य (अ, ऋ०) ।

३. सप्पीया (आ, इ, ऋ०) ।

४. सखलगा (अ) ; सखाणगा (उ) ।

५. गल्लोया^१ (आ) , अल्लोया^० (ऋ०) ।

६. इस श्लोक के बाद इतना और है ।

एत्तो काल विभाग तु तेसि बुच्छ चउव्विहं ॥ (उ) ।

१३१—सतड पप्पऽणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिडं पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राप्यानादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रताप्य मादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१३१—प्रवाह की अपेक्षा ने वे अनादि-
अनन्त और म्यिति की अपेक्षा ने मादि-
सान्त है ।

१३२—वासाड वारसे व उ
उक्कोसेण वियाहिया ।
वेइन्दियआउठिई
अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥

वर्षाणि द्वादशैव तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
द्वीन्द्रियायुः स्थितिः
अन्तर्मूर्तं जघन्यका ॥

१३२—उनकी आयु-म्यिति जघन्यत
अन्तर्मूर्त और उत्कृष्टतः बारह वर्ष की है ।

१३३—सखिज्जकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्त जहन्नय^१ ।
वेइन्दियकायठिई
त काय तु अमुच्चओ ॥

सख्येयकालमुत्कर्षं
अन्तर्मूर्तं जघन्यकम् ।
द्वीन्द्रियकाय-स्थितिः
त कायन्त्वमुच्चताम् ॥

१३३—उनकी काय-म्यिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-
मर्यादा) जघन्यत अन्तर्मूर्त और उत्कृष्टत
सत्यात काल की है ।

१३४—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्त जहन्नय ।
वेइन्दियजीवाण
अन्तरेय^२ वियाहिय ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मूर्तं जघन्यकम् ।
द्वीन्द्रिय-जीवाना
अन्तरं च व्याख्यातम् ॥

१३४—उनका अन्तर (द्वीन्द्रिय के काय
को छोड़ कर पुन उसी काय में उत्पन्न होने
तक का काल) जघन्यत अन्तर्मूर्त और
उत्कृष्टत अनन्त-काल का है ।

१३५—एएसि वण्णओ चैव
गन्धओ रसफासओ ।
सठाणादेसओ वावि
विहाणाड सहस्ससो ॥

एतेषा वर्णतिश्चैव
गन्धता रस-स्पर्शत ।
सस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१३५—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
सस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१३६—तेइन्दिया उ जे जीवा
दुविहा ते पकित्तिया ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
तेसि भेए सुणेह मे ॥

द्वीन्द्रियास्तु ये जीवाः
द्विविधास्ते प्रकीर्तिता ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
तेषा भेदान् शृणुत मे ॥

१३६—श्रीन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—
(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त । उनके भेद
तुम मुझसे सुनो ।

१. जहन्निया (अ) ।

२. °ण (अ) ।

१३७—कुन्थुपिवोलिउड्डसा
उक्कलुद्देहिया तहा ।
तणहारकट्टहारा
मालुगा पत्तहारगा ॥

कुन्थु-पिपीलिकोद्देशः
उक्कलोपदेहिकास्तथा ।
तृणहार-काष्ठहाराः
मालूकाः पत्रहारकाः ॥

१३७—कुथु, चींटी, खटमल, मकड़ी,
दीमक, तृणाहारक, काष्ठाहारक (घुन), मालुक,
पत्राहारक,

१३८—कप्पासऽट्ठिमिजा य
तिट्ठुगा तउसमिजगा ।
सदावरी य गुम्मी य
वोद्धव्वा इन्दकाइया ॥

कर्पासास्थिमिजाश्च
तिन्दुकाः त्रपुषमिज्जकाः ।
शतावरी च गुल्मी च
बौद्धव्या इन्द्रकायिका ॥

१३८—कर्पासास्थि मिजक, तिन्दुक,
त्रपुष मिजक, शतावरी, कानखजूरी, इन्द्र-
कायिक,

१३९—इन्दगोवगमाइया
णंगहा एवमायओ ।
लोएगदेसे ते सव्वे
न सव्वत्थ वियाहिया ॥

इन्द्रगोपकादिकाः
अनेकधा एवमादयः ।
लोकैकदेशे ते सर्वे
न सर्वत्र व्याख्याताः ॥

१३९—इन्द्रगोपक आदि अनेक प्रकार
के त्रीन्द्रिय जीव हैं । वे लोक के एक भाग में
ही प्राप्त होते हैं, समूचे लोक में नहीं ।

१४०—सतइ पप्पऽणाइया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइ पडुच्च साइया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राप्यनादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१४०—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त हैं ।

१४१—एगूणपण्णऽहोरत्ता^१
उक्कोसेण वियाहिया ।
तेइन्दियआउठिई
अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥

एकोनपचाशदहोरात्राणि
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
त्रीन्द्रियायुः-स्थितिः
अन्तर्मुहूर्त जघन्यका ॥

१४१—उनकी आयु-स्थिति जघन्यत
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत उनचास दिनों
की है ।

१४२—सखिज्जकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्त जहन्नय^२ ।
तेइन्दियकायठिई
त काय तु अमुचओ ॥

संख्येयकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
त्रीन्द्रियकाय-स्थितिः
त कायन्त्वमुच्यताम् ॥

१४२—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा)
जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत संख्यात-काल
की है ।

१. एगूणवरण^० (उ, श्रु०) ।

२. जहन्निया (अ) ।

१४३—अणन्तकालमुक्कोस

अन्तोमुहुत्त जहन्नय ।
तेइन्द्रियजीवाण
अन्तरेय विद्याहिय ॥

अनन्तकालमुत्कर्ष

अन्तर्मुहूर्त्त जघन्यकम् ।
त्रीन्द्रिय-जीवाना
अन्तरमेतद् व्याख्यातम् ॥

१४३—उनका अन्तर (त्रीन्द्रिय के काय को छोड़कर-पुन उसी काय में उत्पन्न होने तक का काल) जघन्यत. अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टत अनन्तकाल का है ।

१४४—एएसि वण्णओ चैव

गन्धओ रसफासओ ।
सठाणादेसओ वावि
विहाणाड सहस्ससो ॥

एतेषा वर्णतश्चैव

गन्धतो रस-स्पर्शत ।
सस्यानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रश ॥

१४४—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सम्यान की दृष्टि में उनके हजारों भेद होते हैं ।

१४५—चउरिन्दिया उ जे जीवा

दुविहा ते पक्कित्तिया ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
तेसि भेए मुणेह मे ॥

चतुरिन्द्रियाम्नु ये जीवा

द्विविधास्ते प्रकीर्तिताः ।
पर्याप्ता अपर्याप्ता
तेषा भेदान् शृणुत मे ॥

१४५—चतुरिन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त । उनके भेद तुम मुझ से सुनो ।

१४६—अन्धिया पोत्तिया चैव

मच्छिया मसगा तहा ।
भमरे कीडपयगे य
ढिकुणे कुकुणे तहा ॥

अन्धिका पोत्तिकाश्चैव

मक्षिका मशकास्तथा ।
भ्रमरा कीट-पतगाश्च
ढिकुणा कुकणास्तथा ॥

१४६—अन्धिका, पोत्तिका, मक्षिका, मच्छर, भ्रमर, कीट, पतंग, ढिकुण, कुकुण,

१४७—कुक्कुडे सिगिरीडी य

नन्दावत्ते य विच्छिए ।
डोले भिंगारी^१ य
विरली अन्धिवेहए ॥

कुक्कुटाः शृङ्गरीत्यश्च

नन्दावत्तश्च वृश्चिकाः ।
डोला भृङ्गारिणश्च
विरत्योऽक्षि वेधकाः ॥

१४७—शृ गिरीटी, कुक्कुड, नन्दावर्त, विच्छ, डोल, भृ गरीटक, विरली, अक्षिवेधक,

१४८—अच्छिले माहए^२ अच्छि-

रोडएविचित्ते चित्तपत्तए ।
ओहिजलिया जलकारी य
नोया तन्तवगाविय^३ ॥

अक्षिला मागधा अक्षिरोडका

विचित्राश्चित्रपत्रकाः ।
ओहिजलिया जलकार्यश्च
नीचास्तन्तवका अपि च ॥

१४८—अक्षिल, मागध, अक्षिरोडक विचित्र-पत्रक, चित्र-पत्रक, ओहिजलिया, जलकारी, नीचक, तन्तवक,

१. भिंगिरीडी (उ, ऋ०, स) ।

२. साहिप (अ) ।

३. तयगाइया (उ, ऋ०) ।

१४९—इह चउरिन्दिया एए
ऽणेगहा एवमायओ ।
लोगस्स एग देसम्मि
ते सव्वे परिकित्तिआ ॥^१

१५०—सतई पप्पऽणार्इया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइ पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

१५१—‘छच्चेव य’^२ मासा उ
उक्कोसेण वियाहिया ।
चउरिन्दियआउठिई^३
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

१५२—सखिज्जकालमुक्कोस
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं^४ ।
चउरिन्दियकायठिई
त काय तु अमुंचओ ॥

१५३—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं^५ ।
‘विजढमि सए काए’^६
अन्तरेय वियाहिय ॥

१५४—एएसि वण्णओ चैव
गन्धओ रसफासओ ।
‘सठाणादेसओ वावि’^७
विहाणाइं सहस्ससो ॥

इति चतुरिन्द्रिया एते
अनेकधा एवमादयः ।
लोकस्यैकदेशे
ते सर्वे परिकीर्त्तिताः ॥

सन्तर्ति प्राप्यानादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

षट् चैव च मासास्तु
उत्कृष्टा व्याख्याता ।
चतुरिन्द्रियायुः-स्थितिः
अन्तर्मुहूर्त्तं जघन्यका ॥

संख्येयकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्त्तं जघन्यकम् ।
चतुरिन्द्रियकाय-स्थिति
तं कायं त्वमुंचताम् ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्त्तं जघन्यकम् ।
वित्यक्ते स्वके काये
अन्तरभेतद् व्याख्यातम् ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१४९—आदि अनेक प्रकार के चतुरिन्द्रिय
जीव हैं । वे लोक के एक भाग में ही प्राप्त
होते हैं, समूचे लोक में नहीं ।

१५०—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त
होते हैं ।

१५१—उनकी आयु-स्थिति जघन्यत
अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टत छह मास की है ।

१५२—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-
मर्यादा) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टत,
संख्यात काल की है ।

१५३—उनका अन्तर (चतुरिन्द्रिय के
काय को छोड़कर पुन उसी काय में उत्पन्न
होने तक का काल) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त और
उत्कृष्टत अनन्त काल का है ।

१५४—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१ इस श्लोक के पश्चात् इतना और है —
एत्तो काल विभाग तु तेसिं बुच्छ चठव्विह ॥ (उ) ।

२ छच्चेविट (अ) ।

३ चउरिन्दिया य आउठिई (अ) ।

४ जहन्निया (अ) ।

५ जहन्निया (अ) ।

६ चउरिन्दियजीवाण (उ) ।

७ सठाण भेयओ या वि (अ) ।

१५५—पचिन्द्रिया उ जे जीवा
चउव्विहा ते वियाहिया ।
नेरइयतिरिक्खा य
मणुया देवा य आहिया ॥

पचिन्द्रियास्तु ये जीवा
चतुर्विधास्ते व्याख्याता ।
नैरयिकास्तिर्यचश्च
मनुजा देवादचाख्याता ॥

१५५—पचिन्द्रिय जीव चार प्रकार के हैं—(१) नैरयिक, (२) तिर्यञ्च, (३) मनुष्य और (४) देव ।

१५६—नेरइया सत्तविहा
पुढवीमु सत्तमू भवे ।
रयणाभ सक्कराभा
वालुयाभा य आहिया ॥

नैरयिकाः सप्तविधाः
पृथिवीषु सप्तसु भवेयुः ।
रत्नाभा शर्कराभा
वालुकाभा चाख्याता ॥

१५६—नैरयिक जीव सात प्रकार के हैं । वे सात पृथ्वियों में उत्पन्न होते हैं । वे सात पृथ्वियाँ ये हैं—(१) रत्नाभा, (२) शर्कराभा (३) वालुकाभा,

१५७—पकाभा धूमाभा
तमा तमतमा तहा ।
इइ नेरइया एए
सत्तहा परिकित्तिा ॥

पकामा धूमाभा
तमः तमस्तमः तथा ।
इति नैरयिका एते
सप्तधा परिकीर्तिताः ॥

१५७—(४) पकाभा, (५) धूमाभा, (६) तम और (७) तमस्तम । इन सात पृथ्वियों में उत्पन्न होने के कारण ही नैरयिक सात प्रकार के हैं ।

१५८—लोगस्स एगदेसम्मि
ते सव्वे उ वियाहिया ।
एत्तो कालविभाग तु
वुच्छ तेसि चउव्विह ॥

लोकस्यैक-देशे
ते सर्वे तु व्याख्याता ।
इतः काल-विभाग तु
वक्ष्यामि तेषां चतुर्विधम् ॥

१५८—वे लोक के एक भाग में हैं । अब मैं उनके चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१५९—सतइ पप्पण्णाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइ पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राण्यानादिका
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१५९—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-अनस्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं ।

१६०—सागरोपममेगं तु
उक्कोसेण वियाहिया ।
पढमाए जहन्नेणं
दसवाससहस्सिया ॥

सागरोपममेक तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
प्रथमायां जघन्येन
दशवर्षसहस्रिका ॥

१६०—पहली पृथ्वी में नैरयिकों की आयु-स्थिति जघन्यत दस हजार वर्ष और उत्कृष्टत एक सागरोपम की है ।

१६१—तिण्णेव सागरा ऊ
उक्कोसेण वियाहिया ।
दोच्चाए जहन्नेणं
एग तु सागरोवमं ॥

त्रय एव सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
द्वितीयायां जघन्येन
एक तु सागरोपमम् ॥

१६१—दूसरी पृथ्वी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यत एक सागरोपम और
उत्कृष्टत तीन सागरोपम की है ।

१६२—सत्तेव सागरा ऊ
उक्कोसेण वियाहिया ।
तइयाए जहन्नेणं
तिण्णेव उ सागरोवमा ॥

सप्तैव सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
तृतीयाया जघन्येन
त्रीणि एव तु सागरोपमाणि ॥

१६२—तीसरी पृथ्वी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यत तीन सागरोपम और
उत्कृष्टत सात सागरोपम की है ।

१६३—दस सागरोवमा ऊ
उक्कोसेण वियाहिया ।
चउत्थोए जहन्नेणं
सत्तेव उ सागरोवमा ॥

दशसागरोपमाणि तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
चतुर्थ्यां जघन्येन
सप्तैव तु सागरोपमाणि ॥

१६३—चौथी पृथ्वी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यतः सात सागरोपम और
उत्कृष्टत दस सागरोपम की है ।

१६४—सत्तरस सागरा ऊ
उक्कोसेण वियाहिया ।
पंचमाए जहन्नेण
दस चेव उ सागरोवमा ॥

सप्तदश सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
पंचम्या जघन्येन
दश चेव तु सागरोपमाः ॥

१६४—पाँचवीं पृथ्वी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यत दस सागरोपम और
उत्कृष्टतः सतरह सागरोपम की है ।

१६५—वावीस सागरा ऊ
उक्कोसेण वियाहिया ।
छट्ठोए जहन्नेणं
सत्तरस सागरोवमा ॥

द्वाविंशति सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
षष्ठ्यां जघन्येन
सप्तदश सागरोपमाणि ॥

१६५—छठी पृथ्वी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यतः सतरह सागरोपम और
उत्कृष्टत बाईस सागरोपम की है ।

१६६—तेत्तीस सागरा^१ ऊ
उक्कोसेण वियाहिया ।
सत्तमाए जहन्नेणं
वावीसं सागरोवमा ॥

त्रयस्त्रिंशत् सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
सप्तम्यां जघन्येन
द्वाविंशतिः सागरोपमाणि ॥

१६६—सातवीं पृथ्वी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यत बाईस सागरोपम और
उत्कृष्टत तेतीस सागरोपम की है ।

१६७—जा चेव उ आउठिई
नेरइयाणं वियाहिया ।
सा तेसि कायठिई
जहन्नुक्कोसिया भवे ॥

या चंव तु आयुः-स्थितिः
नैरयिकाणां व्याख्याता ।
सा तेषां काय-स्थितिः
जघन्योत्कर्षिता भवेत् ॥

१६७—नैरयिक जीवों की जो आयु-स्थिति है, वही उनकी जघन्यत या उत्कृष्टत-काय-स्थिति है ।

१६८—अणन्तकालमुक्कोस
अन्तोमुहुत्तं जहन्नय ।
विजढमि सए काए
नेरइयाणं तु अन्तर ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
वित्यक्ते स्वके काये
नैरयिकाणान्तु अन्तरम् ॥

१६८—उनका अन्तर (नैरयिक के काय को छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक का काल) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत अनन्त-काल का है ।

१६९—एएसि वण्णओ चेव
गन्धओ रसफासओ ।
'सठाणादेसओ वावि'^१
विहाणाइ सहस्ससो ॥

एतेषा वर्वतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
सस्यानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१६९—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

१७०—पचिन्दियतिरिक्खाओ
दुविहा ते वियाहिया ।
सम्मूर्च्छिमतिरिक्खाओ^२
गवभवक्कन्तिया तहा ॥

पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
सम्मूर्च्छिम-तिर्यञ्चः
गर्भविक्रान्तिकास्तथा ॥

१७०—पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च जीव दो प्रकार के हैं—(१) सम्मूर्च्छिम-तिर्यञ्च और (२) गर्भ-उत्पन्न-तिर्यञ्च ।

१७१—दुविहावि ते भवे तिविहा
जलयरा थलयरा तहा ।
खह्यरा य बोद्धव्वा
तेसि भेए सुणेह मे ॥

द्विविधा अपि ते भवेयुस्त्रिविधाः
जलचराः स्थलचरास्तथा ।
खचराश्च बोद्धव्याः
तेषां भेदान् शृणुतु मे ॥

१७१—ये दोनों ही जलचर, स्थलचर और खेचर के भेद से तीन-तीन प्रकार के हैं । उनके भेद तुम मुझ से सुनो ।

१७२—मच्छा य कच्छभा य
गाहा य मगरा तहा ।
सुसुमारा य बोद्धव्वा
पचहा^३ जलयराहिया ॥

मत्स्याश्च कच्छपाश्च
ग्राहाश्च मकरास्तथा ।
सुसुमाराश्च बोद्धव्याः
पंचधा जलचरा व्याख्याताः ॥

१७२—जलचर जीव पाँच प्रकार के हैं—(१) मत्स्य, (२) कच्छप, (३) ग्राह, (४) मकर और (५) सुसुमार ।

१ सठाण भेयओ या वि (अ) ।

२ ° तिरिक्खा य (उ) ।

३ पचविहा (अ) ।

१७३—लोएगदेसे ते सव्वे
न सव्वत्थ वियाहिया ।
एत्तो कालविभागं तु
वुच्छं तेसिं चउव्विहं ॥

१७४—सतड पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइ पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

१७५—एगा य पुव्वकोडीओ
उक्कोसेण वियाहिया ।
आउट्टिई जलयराण
अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥

१७६—पुव्वकोडीपुहुत्त तु
उक्कोसेण वियाहिया ।
कायट्टिई जलयराणं
अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥

१७७—अणन्तकालमुक्कोस
अन्तोमुहुत्त जहन्नय ।
विजढमि सए काए
जलयराण तु अन्तर ॥

१७८—‘एएसि वण्णओ चेव
गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाड सहस्ससो ॥’^१

लोकैकदेशे ते सर्वे
न सर्वत्र व्याख्याता ।
इतः काल-विभागं तु
वक्ष्यामि तेषां चतुर्विधम् ॥

सन्ततिं प्राप्यानादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

एका च पूर्वकोटी
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयुः-स्थितिर्जलचराणां
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

पूर्वकोटिपृथक्त्वन्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
काय-स्थितिर्जलचराणां
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
वित्यक्ते स्वके काये
जलचराणां तु अन्तरम् ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१७३—वे लोक के एक भाग में ही होते हैं, समूचे लोक में नहीं । अब मैं उनके चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१७४—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं ।

१७५—उनकी आयु-स्थिति जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत एक करोड़ पूर्व की है ।

१७६—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत (दो से नौ) पूर्व की है ।

१७७—उनका अन्तर (जलचर के काय को छोड़ कर पुन उसी काय में उत्पन्न होने तक का काल) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत अनन्त काल का है ।

१७८—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

१७९—चउप्पया य परिसप्पा
दुविहा थलयरा भवे ।
चउप्पया चउविहा
ते मे कित्तयओ सुण ॥

चतुष्पदाश्च परिसर्पाः
द्विविधाः स्थलचरा भवेयुः ।
चतुष्पदाश्चतुर्विधाः
तान् मे कीर्तयतः शृणु ॥

१७९—स्थलचर जीव दो प्रकार के हैं—

(१) चतुष्पद और (२) परिसर्प । चतुष्पद चार प्रकार के हैं । वे तुम मुझ से सुनो ।

१८०—एगखुरा दुखुरा चेव
गण्डीपयसणप्पया ।
हयमाडगोणमाइ-
गयमाइसीहमाइणो ॥

एकखुरा द्विखुराश्चैव
गण्डीपदाः सनखपदाः ।
हयादयो गवादयः
गजादयः सिंहादयः ॥

१८०—(१) एक खुर—घोड़े आदि,

(२) दो खुर—बैल आदि, (३) गण्डीपद—
हाथी आदि । (४) सनखपद—सिंह आदि ।

१८१—भुओरगपरिसप्पा य
परिसप्पा दुविहा भवे ।
गोहाई अहिमाई य
एक्केक्का णेगहा भवे ॥

भुज-उरग-परिसर्पाश्च
परिसर्पा द्विविधा भवेयुः ।
गोघादयो ह्यादयश्च
एकैके अनेकधा भवेयुः ॥

१८१—परिसर्प के दो प्रकार हैं—(१)

भुजपरिसर्प—हाथों के बल चलने वाले गोह
आदि, (२) उर परिसर्प—पेट के बल चलने
वाले साँप आदि । ये दोनों अनेक प्रकार के
होते हैं ।

१८२—लोएगदेसे ते सव्वे
न सव्वत्थ वियाहिया ।
एत्तो कालविभाग तु
वुच्छ तेसि चउव्विह ॥

लोकैकदेशे ते सर्वे
न सर्वत्र व्याख्याता ।
इतः काल-विभाग तु
वक्ष्यामि तेषां चतुर्विधम् ॥

१८२—वे लोक के एक भाग में होते हैं,

समूचे लोक में नहीं । अब मैं उनके चतुर्विध
काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१८३—सतड पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिड पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राप्यानादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिका
सपर्यवसिता अपि च ॥

१८३—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-

अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त हैं ।

१८४—पलिओवमाउ' तिण्णि उ
उक्कोसेण वियाहिया ।
आउट्ठिई थलयराण
अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥

पल्योपमानि तु त्रीणि तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयुः-स्थितिः स्थलचराणां
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

१८४—उनकी आयु-स्थिति जघन्यत

अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत तीन पल्योपम
की हैं ।

१८५—पलिओवमाउ तिणिण उ^१
उक्कोसेण तु साहिया ।
पुव्वकोडीपुहत्तेण
अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥

पल्योपमानि तु त्रीणि तु
उत्कर्षेण तु साधिका ।
पूर्वकोटि-पृथक्त्वेन
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

१८५—जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत-
पृथक्त्व करोड पूर्व अधिक तीन पल्योपम की है ।

१८६—कायट्ठिई थलयराण
अन्तर तेसिम भवे ।
कालमणन्तमुक्कोस
अन्तोमुहुत्त जहन्नय ॥

काय-स्थिति स्थलचराणां
अन्तरं तेषामिदं भवेत् ।
कालमनन्तमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ॥

१८६—यह स्थलचर जीवों की काय-
स्थिति (निरन्तर उसी काय में जन्म लेते
रहने की काल-मर्यादा) है । उनका अन्तर
(स्थलचर के काय को छोड़ कर पुनः उसी काय
में उत्पन्न होने तक का काल) जघन्यत अन्त-
र्मुहूर्त और उत्कृष्टत अनन्त-काल का है ।

१८७—एएसि वण्णओ चेव
गधओ रसफासओ ।
सठाणादेसओ वावि
विहाणाइ सहस्सओ ॥

एतेषा वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
सस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१८७—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
सस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१८८—चम्मे उ लोमपक्खी य
तइया समुग्गपक्खिया ।
विययपक्खी य बोद्धव्वा
पक्खिणो य चउव्विहा ॥

चर्म (पक्षिणः) तु रोमपक्षिणश्च
तृतीयाः समुद्रगपक्षिणः ।
विततपक्षिणश्च बोद्धव्याः
पक्षिणश्च चतुर्विधाः ॥

१८८—खेचर जीव चार प्रकार के हैं—
(१) चर्म पक्षी, (२) रोम पक्षी, (३) समुद्र
पक्षी और (४) वितत पक्षी ।

१८९—लोगेगदेसे ते सव्वे
न सव्वत्थ वियाहिया ।
इत्तो कालविभाग नु
वुच्छ तेसि चउव्विहा ॥^२

लोकैकदेशे ते सर्वे
न सर्वत्र व्याख्याताः ।
इतः काल-विभागं तु
वक्ष्यामि तेषां चतुर्विधम् ॥

१८९—वे लोक के एक भाग में होते हैं,
समूचे लोक में नहीं । अब मैं उनके चतुर्विध
काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१. य (अ) ।

२. श्लोक क्रमांक १८७ से १८९ के स्थान पर निम्न श्लोक हैं :

विजटमि सए काए थलयराण तु अतर ।
चम्मेय लोम पक्खीय तइया समुग्ग पक्खिया ॥
चिन्तपक्खी उ (य) बोद्धव्वा पक्खिणो उ चउव्विहा ।
लोएग्ग देसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया ॥ (अ, ऋ०) ।
विजटमि सए काए थलयराण तु अतर ।
एएग्गि वण्णओ चेव गधओ रसफासओ ॥
सठाण देसओ वावि विहाणा सहस्सओ ।
चम्मे उ लोम पक्खीय तइया समुग्ग पक्खिया ॥
विययपक्खी य बोद्धव्वा पक्खिणो य चउव्विहा ।
लोएग्ग देसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया ॥ (उ) ।

१९०—संतड पप्पणार्इया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिड पडुच्च सार्इया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तर्ति प्राण्यानादिका
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१६०—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त हैं ।

१९१—पलिओवमस्स भागो
असखेज्जमो भवे ।
आउट्ठिई खह्यराण
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

पल्योपमस्य भाग
असख्येयतमो भवेत् ।
आयुः-स्थितिः खेचराणां
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

१६१—उनकी आयु-स्थिति जघन्यत-
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत पल्योपम के असख्यातव
भाग की है ।

१९२—असखभागो पलियस्स
उक्कोसेण उ साहिओ ।
पुव्वकोडीपुहत्तेण
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

असख्यभागः पलस्य
उत्कर्षेण तु साधिकः ।
पूर्वकोटी-पृथक्त्वेन
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

१६२—जघन्यत. अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत
पृथक्त्व करोड पूर्व अविक पल्योपम का
असख्यातवों भाग—

१९३—कायठिई खह्यराण
अन्तर तेसिम भवे ।
काल अणन्तमुक्कोस
अन्तोमुहुत्तं जहन्नय ॥

काय-स्थितिः खेचराणां
अन्तरं तेषामिदं भवेत् ।
कालमनन्तमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ॥

१६३—यह खेचर जीवों की काय-
स्थिति (निरन्तर उसी काय में जन्म लेते रहने
की काल-मर्यादा) है । उनका अन्तर (खेचर
के काय को छोड़ कर पुन उसी काय में उत्पन्न
होने तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और
उत्कृष्टत अनन्त-काल का है ।

१९४—एएसि वण्णओ चेव
गन्धओ रसफासओ ।
'सठाणोदेसओ वावि'^१
विहाणाइ सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
सस्यानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१६४—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
सस्यान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१९५—मणुया दुविहभेया उ
ते मे कित्तयओ सुण ।
समुच्छिमा य मणुया
गवभवक्कन्तिया तथा ॥

मनुजा द्विविधभेदास्तु
तान् मे कीर्तयतः शृणु ।
सम्मूर्च्छिमाश्च मनुजाः
गर्भावक्रान्तिकास्तथा ॥

१६५—मनुष्य दो प्रकार के हैं—(१)
सम्मूर्च्छिम और (२) गर्भ-उत्पन्न ।

१९६—गवभवककन्तिया जे उ
तिविहा ते वियाहिया ।
अकम्मकम्मभूमा य
अन्तरदीवया तहा ॥

१९७—‘पन्नरस तीसइ विहा’^१
भेया अट्ठाईसइ ।
सखा उ कमसो तेसिं
इइ एसा वियाहिया ॥

१९८—संमुच्छिमाण एसेव
भेओ होइ आहिओ ।
लोगस्स एगदेसम्मि
ते सव्वे वि^२ वियाहिया ॥

१९९—संतइं पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

२००—पलिओवमाइ तिणि उ
उक्कोसेण वियाहिया ।
आउट्ठिई मणुयाण
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

२०१—पलिओवमाइं तिणि उ
उक्कोसेण वियाहिया^३ ।
पुव्वकोडीपुहत्तेणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया^४ ॥

गर्भावकान्तिका ये तु
त्रिविधास्ते व्याख्याताः ।
अकर्मकर्म-भूमाश्च
अन्तर्-द्वापकास्तथा ॥

पंचदशत्रिंशद्विधा
भेदा अष्टाविंशतिः ।
सङ्ख्या तु क्रमशस्तेषां
इत्येषा व्याख्याता ॥

संमुच्छिमाणामेष एव
भेदो भवति आख्यातः ।
लोकस्यैकदेशे
ते सर्वेऽपि व्याख्याताः ॥

सन्ततिं प्राण्यानादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

पल्योपमानि त्रीणितु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयुः-स्थितिर्मनुजानां
अन्तर्मुहूर्ता जघन्यकाः ॥

पल्योपमानि त्रीणि तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
पूर्वकोटि-पृथक्त्वेन
अन्तर्मुहूर्ता जघन्यका ॥

१६६—गर्भ-उत्पन्न मनुष्य तीन प्रकार
के है—(१) अकर्म-भूमिक, (२) कर्म-भूमिक
और (३) अन्तर्द्वीपक ।

१६७—कर्म-भूमिक मनुष्यों के पन्द्रह,
अकर्म-भूमिक मनुष्यों के तीस तथा अन्तर्द्वीपक
मनुष्यों के अट्ठाईस भेद होते हैं ।

१६८—संमुच्छिन्न मनुष्यों के भी उतने
ही भेद हैं, जितने गर्भ-उत्पन्न मनुष्यों के हैं ।
वे लोक के एक भाग में ही होते हैं ।

१६९—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त हैं ।

२००—उनको आयु-स्थिति जघन्यत
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत तीन पल्योपम
की है ।

२०१—जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत
पृथक्त्व करोड़ पूर्व अधिक तीन पल्योपम—

१ तीस पन्नरस विहा (५० पा०) ।

२ य (भ) ; × (ठ) ।

३ तु साहिया (ऋ०) ।

४ जहन्नग (भ) ।

२०२—कायद्विर्द्द मणुयाणं
अन्तर तेसिम भवे ।
अणन्तकालमुक्कोस
अन्तोमुहुत्त जहन्त्य ॥

काय-स्थितिर्मनुजाना
अन्तर तेषामिद भवेत् ।
अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्त्तं जघन्यकम् ॥

२०२—यह मनुष्यों की काय-स्थिति (निरन्तर उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा) है । उनका अन्तर (मनुष्य के काय को छोड़ कर पुन उसी काय में उत्पन्न होने तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टत अनन्त-काल का है ।

२०३—एएसि वण्णओ चैव
गन्धओ रसफासओ ।
'सठाणादेसओ वावि'^१
विहाणाइ सहस्ससो ॥

एतेषा वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
सस्यानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

२०३—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्यान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

२०४—देवा चउव्विहा वुत्ता
ते मे कित्तयओ सुण ।
भोमिज्जवाणमन्तर-
जोइसवेमाणया तहा ॥

देवाश्चतुर्विधा उक्ता
तान् मे कीर्तयतः शृणु ।
भोमेया व्यन्तरा-
ज्योतिष्का वैमानिकास्तथा ॥

२०४—देव चार प्रकार के हैं—
(१) भवन-वासी, (२) व्यन्तर, (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक ।

२०५—दसहा उ भवणवासी
अट्ठहा वणचारिणो ।
पचविहा जोइसिया
दुविहा वेमाणिया तहा ॥

दशधा तु भवनवासिन-
अष्टधा वनचारिणः ।
पचविधा ज्योतिष्का
द्विविधा वैमानिकास्तथा ॥

२०५—भवनवासी देव दस प्रकार के हैं । व्यन्तर आठ प्रकार के हैं । ज्योतिष्क पाँच प्रकार के हैं । वैमानिक दो प्रकार के हैं ।

२०६—असुरा नागसुवण्णा
विज्जू अग्गी य आहिया ।
दीवोदहिदिसा वाया
थणिया भवणवासिणो ॥

असुरा नाग-सुपर्णाः
विद्युदग्निश्च आख्यातौ ।
द्वापोदधिदिशो वाताः
स्तनिता भवनवासिनः ॥

२०६—(१) असुर कुमार, (२) नाग कुमार, (३) सुपर्ण कुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधि कुमार, (८) -दिक् कुमार, (९) वायु कुमार और (१०) स्तनित कुमार—ये भवनवासी देवों के दस प्रकार हैं ।

२०७—पिसायभूय जक्खा य
रक्खसा किन्नरा य किंपुरिसा ।
महोरगा य गन्धव्वा
अट्ठविहा वाणमन्तरा ॥

पिशाच-भूत-यक्षाश्च
राक्षसाः किन्नराश्च किंपुरुषाः ।
महोरगाश्च गन्धर्वा
अष्टविधा वाणमन्तराः ॥

२०७—(१) पिशाच, (२) भूत, (३) यक्ष, (४) राक्षस, (५) किन्नर, (६) किंपुरुष (७) महोरग और (८) गन्धर्व—ये व्यन्तर देवों के आठ प्रकार हैं ।

२०८—चन्द्रा सूर्या य नक्खात्त
गहा तारागणा तहा ।
दिसाविचारिणो^१ चेव
पचहा^२ जोइसालया ॥

चन्द्राः सूर्याश्च नक्षत्राणि
ग्रहास्तारागणास्तथा ।
दिशा-विचारिणश्चैव
पंचधा ज्योतिषालया ॥

२०८—(१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) नक्षत्र,
(४) ग्रह और (५) तारा—ये पाँच भेद
ज्योतिषक देवों के हैं । ये दिशा-विचारी-मेरु
की प्रदक्षिणा करते हुए विचरण करने
वाले हैं ।

२०९—वेमाणिया उ जे देवा
दुविहा ते वियाहिया ।
कप्पोवगा य बोद्धव्वा
कप्पाईया तहेव य ॥

वैमानिकास्तु ये देवाः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
कल्पोपगाश्च बोद्धव्या
कल्पातीतास्तथैव च ॥

२०९—वैमानिक देवों के दो प्रकार हैं—
(१) कल्पोपग और (२) कल्पातीत ।

२१०—कप्पोवगा बारसहा
सोहम्मीसाणगा तहा ।
सणकुमारमाहिन्दा
वम्भलोगा य लन्तगा ॥

कल्पोपगा द्वादशधा
सौधर्मेशानगास्तथा ।
सनत्कुमार-माहेन्द्राः
ब्रह्मलोकाश्च लान्तकाः ॥

२१०—कल्पोपग बारह प्रकार के हैं—
(१) सौधर्म, (२) ईशानक, (३) सनत्कुमार,
(४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्मलोक (६) लान्तक,

२११—महासुक्का सहस्रारा
आणया पाणया तहा ।
आरणा अच्चुया चेव
इइ कप्पोवगा सुरा ॥

महाशुक्का सहस्रारा
आनताः प्राणतास्तथा ।
आरणा अच्युताश्चैव
इति कल्पोपगाः सुराः ॥

२११—(७) महाशुक्र, (८) सहस्रार,
(९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण और
(१२) अच्युत ।

२१२—कप्पाईया उ^३ जे देवा
दुविहा ते वियाहिया ।
गेविज्जाऽणुत्तरा चेव
गेविज्जा नवविहा तहि^४ ॥

कल्पातीतास्तु ये देवा
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
श्रैवेयानुत्तराश्चैव
श्रैवेया नवविधास्तत्र ॥

२१२—कल्पातीत देवों के दो प्रकार हैं—
(१) श्रैवेयक और (२) अनुत्तर । श्रैवेयकों के
निम्नोक्त नौ प्रकार हैं

२१३—हेट्टिमाहेट्टिमा चेव
हेट्टिमामज्झिमा तहा ।
हेट्टिमा उवरिमा चेव
मज्झिमाहेट्टिमा तहा ॥

अधस्तनाऽधस्तनाश्चैव
अधस्तनमध्यमास्तथा ।
अधस्तनोपरितनार्चैश्च
मध्यमाऽधस्तनास्तथा ॥

२१३—(१) अध-अधस्तन, (२) अध-
मध्यम, (३) अध-उपरितन, (४) मध्य-
अधस्तन,

१ ठिया^० (आ, उ, ऋ^०) ।

२ पचविहा (अ) ।

३ य (ऋ^०) ।

४ तहा (ऋ^०) ।

२१४—मज्झिमामज्झिमा चैव
मज्झिमाउवरिमा तथा ।
उवरिमाहेट्ठिमा चैव
उवरिमामज्झिमा तथा ॥

मध्यममध्यमाश्चैव
मध्यमोपरितनास्तथा ।
उपरितनाऽधस्तनाश्चैव
उपरितनमध्यमास्तथा ॥

२१४—(५) मध्य-मध्यम, (६) मध्य-
उपरितन, (७) उपरि-अधस्तन, (८) उपरि-
मध्यम,

२१५—उवरिमाउवरिमा चैव
इय गेविज्जगा सुरा ।
विजया वैजयन्ता य'
जयन्ता अपराजिया ॥

उपरितनोपरितनाश्चैव
इति ग्रैवेयका सुरा ।
विजया वैजयन्ताश्च
जयन्ता अपराजिता ॥

२१५—और (९) उपरि-उपरितन—ये
ग्रैवेयक देव हैं । (१) विजय, (२) वैजयन्त,
(३) जयन्त, (४) अपराजित

२१६—सव्वट्ठसिद्धगा^२ चैव
पचहाऽणुत्तरा सुरा ।
इइ वैमाणिया देवा^३
णेगहा एवमायओ ॥

सर्वार्थसिद्धकाश्चैव
पंचधा अनुत्तरा सुराः ।
इति वैमानिका देवाः
अनेकधा एवमादय ॥

२१६—और (५) सर्वार्थसिद्धक—ये अनुत्तर
देवों के पाँच प्रकार हैं । इस प्रकार वैमानिक
देवों के अनेक प्रकार हैं ।

२१७—लोगस्स एगदेसम्मि
ते सव्वे परिकित्तिया ।
इत्तो कालविभाग तु
वुच्छं तेसिं चउव्विह ॥

लोकस्यैकदेशे
ते सर्वे परिकीर्तिता ।
इत काल-विभाग तु
वक्ष्यामि तेषा चतुर्विधम् ॥

२१७—वे सब लोक के एक भाग में
रहते हैं । अब मैं उनके चतुर्विध काल-विभाग
का निरूपण करूँगा ।

२१८—सतइ पप्पाऽणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइ पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राण्यानादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थिति प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

२१८—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त हैं ।

२१९—साहिय सागरं एक्क
उक्कोसेण ठिई भवे ।
भोमेज्जाण जहन्नेण
दसवाससहस्सिया ॥

साधिकः सागर एकः
उत्कर्षेण स्थिति भवेत् ।
भौमेयाना जघन्येन
दशवर्षसहस्रिका ॥

२१९—भवनवासी देवों की आयु-स्थिति
जघन्यत दस हजार वर्ष और उत्कृष्टत किंचित्
अधिक एक सागरोपम की है ।

१ x (अ) ।

२ °सिद्धिगा (अ) ।

३ एए (उ, ऋ०) ।

२२०—पलिओवममेगं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
वन्तराण जहन्नेणं
दसवाससहस्सिया ॥

पल्योपममेकन्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
व्यन्तराणां जघन्येन
दशवर्षसहस्रिका ॥

२२०—व्यन्तर देवों की आयु-स्थिति
जघन्यत दस हजार वर्ष और उत्कृष्टत एक
पल्योपम की है ।

२२१—पलिओवम एग तु
वासलक्खेण साहिय ।
पलिओवमऽट्ठभागो
जोइसेसु जहन्निया ॥

पल्योपममेकन्तु
वर्षलक्षेण साधिकम् ।
पल्योपमाष्टमभागः
ज्योतिष्केषु जघन्यका ॥

२२१—ज्योतिष्क देवों की आयु-स्थिति
जघन्यत पल्योपम के आठवें भाग और
उत्कृष्टत एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम
की है ।

२२२—दो चैव सागराइं
उक्कोसेण वियाहिया^१ ।
सोहम्ममि जहन्नेण
एग च पलिओवम ॥

द्वौ चैव सागरौ
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
सौधमे जघन्येन
एक च पल्योपमम् ॥

२२२—सौधर्म देवों की आयु-स्थिति
जघन्यत एक पल्योपम और उत्कृष्टत दो
सागरोपम की है ।

२२३—सागरा साहिया दुन्नि
उक्कोसेण वियाहिया^२ ।
ईसाणम्मि जहन्नेण
साहिय पलिओवम ॥

सागरौ साधिकौ द्वौ
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
ईशाने जघन्येन
साधिक पल्योपमम् ॥

२२३—ईशान देवों की आयु-स्थिति
जघन्यत किञ्चित् अधिक एक पल्योपम और
उत्कृष्टत किञ्चित् अधिक दो सागरोपम
की है ।

२२४—सागराणि य सत्तेव
उक्कोसेण ठिई भवे ।
सणकुमारे जहन्नेणं
दुन्नि ऊ सागरोवमा ॥

सागराश्च सप्तैव
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
सनत्कुमारे जघन्येन
द्वे तु सागरोपमे ॥

२२४—सनत्कुमार देवों की आयु-स्थिति
जघन्यत दो सागरोपम और उत्कृष्टत सात
सागरोपम की है ।

२२५—साहिया सागरा सत्त
उक्कोसेण ठिई भवे ।
माहिन्दम्मि जहन्नेण
साहिया दुन्नि सागरा ॥

साधिकाः सागराः सप्त
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
माहेन्द्रे जघन्येन
साधिकौ द्वौ सागरो ॥

२२५—माहेन्द्रकुमार देवों की आयु-
स्थिति जघन्यत किञ्चित् अधिक दो सागरोपम
और उत्कृष्टत किञ्चित् अधिक सात सागरोपम
की है ।

१. ठिई भवे (आ, स) ।

२. ठिई भवे (आ, स) ।

२२६—दस चैव सागराऽ
उक्कोसेण ठिई भवे ।
वम्भलोए जहन्नेणं
सत्त ऊ सागरोवमा ॥

दश चैव सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
ब्रह्मलोके जघन्येन
सप्त तु सागरोपमाणि ॥

२२६—ब्रह्मलोक देवों की आयु-म्यति
जघन्यत मात सागरोपम और उत्कृष्टत दस
सागरोपम की है ।

२२७—चउद्दस^१ सागराऽ
उक्कोसेण ठिई भवे ।
लन्तगम्मि जहन्नेण
दस ऊ सागरोवमा ॥

चतुर्दश सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
लान्तके जघन्येन
दश तु सागरोपमाणि ॥

२२७—लान्तक देवों की आयु-म्यति
जघन्यत. दस सागरोपम और उत्कृष्टतः चौदह
सागरोपम की है ।

२२८—सत्तरस सागराऽ
उक्कोसेण ठिई भवे ।
महामुक्के जहन्नेण
चउद्दस सागरोवमा ॥

सप्तदश सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
महाबुक्के जघन्येन
चतुर्दश सागरोपमाणि ॥

२२८—महाबुक्क देवों की आयु-म्यति
जघन्यत. चौदह सागरोपम और उत्कृष्टत
सत्तरह सागरोपम की है ।

२२९—अट्ठारस सागराऽ
उक्कोसेण ठिई भवे ।
सहस्सारे जहन्नेण
सत्तरस सागरोवमा ॥

अष्टादश सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
सहस्रारे जघन्येन
सप्तदश सागरोपमाणि ॥

२२९—सहस्रार देवों की आयु-म्यति
जघन्यत सत्तरह सागरोपम और उत्कृष्टत
अठारह सागरोपम की है ।

२३०—सागरा अउणवीस तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
आणयम्मि जहन्नेण
अट्ठारस सागरोवमा ॥

सागरा एकोनविंशतिस्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
आनते जघन्येन
अष्टादश सागरोपमाणि ॥

२३०—आनत देवों की आयु-म्यति
जघन्यत अठारह सागरोपम और उत्कृष्टत.
उन्नीस सागरोपम की है ।

२३१—वीस तु सागराऽ
उक्कोसेण ठिई भवे ।
पाणयम्मि जहन्नेणं
सागरा अउणवीसई ॥

विंशतिस्तु सागरा
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
प्राणते जघन्येन
सागरा एकोनविंशतिः ॥

२३१—प्राणत देवों की आयु-म्यति
जघन्यत उन्नीस सागरोपम और उत्कृष्टत
वीस सागरोपम की है ।

२३२—सागरा इक्कवीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
आरणम्मि जहन्नेणं
वीसई सागरोवमा ॥

सागरा एकविंशतिस्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
आरणे जघन्येन
विंशति सागरोपमाणि ॥

२३२—आरण देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः बीस सागरोपम और उत्कृष्टतः इक्कीस
सागरोपम की है ।

२३३—बावीस सागराइ
उक्कोसेण ठिई भवे ।
अच्चुयम्मि जहन्नेणं
सागरा इक्कवीसई ॥

द्वाविंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
अच्युते जघन्येन
सागरा एकविंशतिः ॥

२३३—अच्युत देवों की आयु-स्थिति
जघन्यत इक्कीस सागरोपम और उत्कृष्टतः
बाईस सागरोपम की है ।

२३४—तेवीस सागराइं
उक्कोसेण ठिई भवे ।
पढमम्मि जहन्नेणं
बावीस सागरोवमा ॥

त्रयोविंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
प्रथमे जघन्येन
द्वाविंशतिः सागरोपमाणि ॥

२३४—प्रथम श्रैवेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यत बाईस सागरोपम और
उत्कृष्टत तेईस सागरोपम की है ।

२३५—चउवीस सागराइं
उक्कोसेण ठिई भवे ।
विइयम्मि जहन्नेणं
तेवीस सागरोवमा ॥

चतुर्विंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
द्वितीये जघन्येन
त्रयोविंशतिः सागरोपमाणि ॥

२३५—द्वितीय श्रैवेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यत तेईस सागरोपम और उत्कृष्टतः
चौबीस सागरोपम की है ।

२३६—पणवीस सागराइं
उक्कोसेण ठिई भवे ।
तइयम्मि जहन्नेणं
चउवीसं सागरोवमा ॥

पंचविंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
तृतीये जघन्येन
चतुर्विंशतिः सागरोपमाणि ॥

२३६—तृतीय श्रैवेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यत चौबीस सागरोपम और
उत्कृष्टतः पच्चीस सागरोपम की है ।

२३७—छव्वीस सागराइं
उक्कोसेण ठिई भवे ।
चउत्यम्मि जहन्नेणं
सागरा पणुवीसई ॥

षड्विंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
चतुर्थे जघन्येन
सागराः पंचविंशतिः ॥

२३७—चतुर्थ श्रैवेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यत पच्चीस सागरोपम और
उत्कृष्टतः छव्वीस सागरोपम की है ।

२३८—सागरा सत्तवीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
पचमम्मि जहन्नेणं
सागरा उ छवीसई ॥

सागराः सप्तविंशतिस्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
पंचमे जघन्येन
सागराः तु षड्विंशतिः ॥

२३८—पचम ग्रंथेयक देवों की आयु
स्थिति जघन्यत छवीस सागरोपम और
उत्कृष्टत सत्ताईस सागरोपम की है ।

२३९—सागरा अट्टवीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
छट्ठम्मि जहन्नेणं
सागरा सत्तवीसई ॥

सागरा अष्टाविंशतिस्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
षष्ठे जघन्येन
सागराः सप्तविंशतिः ॥

२३९—षष्ठ ग्रंथेयक देवों की आयु
स्थिति जघन्यत अट्ठाईस सागरोपम और
उत्कृष्टत अट्ठाईस सागरोपम की है ।

२४०—सागरा अउणतीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
सत्तमम्मि जहन्नेणं
सागरा अट्टवीसई ॥

सागरा एकोनविंशतिस्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
सप्तमे जघन्येन
सागरा अष्टाविंशतिः ॥

२४०—सप्तम ग्रंथेयक देवों की आयु
स्थिति जघन्यत अट्ठाईस सागरोपम और
उत्कृष्टत उनतीस सागरोपम की है ।

२४१—तीसं तु सागराडं
उक्कोसेण ठिई भवे ।
अट्टमम्मि जहन्नेणं
सागरा अउणतीसई ॥

त्रिंशत् सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
अष्टमे जघन्येन
सागराः एकोनविंशत् ॥

२४१—अष्टम ग्रंथेयक देवों की आयु
स्थिति जघन्यत उनतीस सागरोपम और
उत्कृष्टत तीस सागरोपम की है ।

२४२—सागरा इक्कतीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
नवमम्मि जहन्नेणं
तीसई सागरोवमा ॥

सागरा एकात्रिंशत्
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
नवमे जघन्येन
त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥

२४२—नवम ग्रंथेयक देवों की आयु
स्थिति जघन्यतः तीस सागरोपम और उत्कृष्टत
इक्कीस सागरोपम की है ।

२४३—तेत्तीस सागराउ
उक्कोसेण ठिई भवे ।
चउसु पि विजयाईसु
जहन्नेणेक्कतीसई ॥

त्रयस्त्रिंशत् सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
चतुर्ष्वपि विजयादिषु
जघन्येनैकत्रिंशत् ॥

२४३—विजय, वैजयन्त, जयन्त और
अपराजित देवों की आयु-स्थिति जघन्यतः
इक्कीस सागरोपम और उत्कृष्टत तैत्तीस
सागरोपम की है ।

२४४—अजहन्नमणुक्कोसा^१

तेत्तीस सागरोवमा ।
महाविमाण सव्वट्ठे
ठिई एसा वियाहिया ॥

अजघन्यानुत्कर्षा
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ।
महा-विमान सर्वार्थे
स्थितिरेषा व्याख्याता ॥

२४४—सर्वार्थसिद्धक देवों की जघन्यत और उत्कृष्टत आयु-स्थिति तैत्तीस सागरोपम की है ।

२४५—जा चेव उ^२ आउठिई
देवाणं तु वियाहिया ।
सा तेसिं कायठिई
जहन्नुक्कोसिया^३ भवे ॥

या चैव तु आयुः-स्थिति
देवानान्तु व्याख्याता ।
सा तेषां काय-स्थितिः
जघन्योत्कर्षिता भवेत् ॥

२४५—सारे ही देवों को जितनी आयु-स्थिति है उतनी ही उनकी जघन्य या उत्कृष्ट काय-स्थिति है ।

२४६—अणन्तकालमुक्कोस

अन्तोमुहुत्त जहन्नय ।
विजढमि सए काए
देवाण हुज्ज अन्तरं ॥^४

अनन्तकालमुत्कर्षा
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
वित्यक्ते स्वके काये
देवानां भवेदन्तरम् ॥

२४६—उनका अन्तर (अपने-अपने काय को छोड़कर पुन उसी काय में उत्पन्न होने तक का काल) जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत अनन्त-काल का है ।

२४७—एएसि वण्णओ चेव
गन्धओ रसफासओ ।
'सठाणादेसओ वावि'^५
विहाणाइ सहस्सओ ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
सस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

२४७—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

२४८—ससारत्था य सिद्धा य
इइ जीवा वियाहिया ।
रुविणो चेव उरुवो य
अजीवा दुविहा वि य ॥^६

संसारस्थाश्च सिद्धाश्च
इति जीवा व्याख्याताः ।
रूपिणश्चैवारूपिणश्च
अजीवा द्विविधा अपि च ॥

२४८—ससारो और सिद्ध—इन दोनों प्रकार के जीवों की व्याख्या की गई है । इसी प्रकार रूपी और अरूपी—इन दोनों प्रकार के अजीवों की व्याख्या की गई है ।

१. 'मणुक्कोम (अ, ऋ०) ।

२. य (अ) ।

३. जहन्नमु (ऋ०, वृ०) ।

४. इस श्लोक के बाद दो श्लोक और हैं—

अणत्तकालमुक्कोस वाम्पुहुत्त जहन्नग ।
आणयादीण कप्पाण मेविज्जाण तु अन्तर ॥
सप्पिज्जसागरप्पोस वासपुहुत्त जहन्नग ।
अणुत्तराण देवाण अन्तर तु वियाहिया ॥ (उ) ।

५. सठाण भेषओ या वि (अ) ।

६. श्लोक क्रमांक २४८ से २६८ के स्थान पर चूर्णि में निम्न दो श्लोक हैं —

जीवमाग्निं ण्ते णच्चा सद्विज्जण य ।
सव्वन्तममत्तमी जण्जा नजमे विद् ॥
पमत्त्यमज्झणोचमए, काल किच्चा ण सजए ।
सिद्धे या मायण भवति देवे चाणि महडिडण ॥

२४९—डड जीवमजीवे य
सोच्चा सद्विहङ्गण य ।
सव्वनयाण अणुमए
रमेज्जा सजमे मुणी ॥

इति जीवानजीवाश्च
श्रुत्वा श्रद्धाय च ।
सर्वनयानामनुमते
रमेत सयमे मुनिः ॥

२४९—इस प्रकार जीव और अजीव के स्वरूप को सुनकर, उसमें श्रद्धा उत्पन्न कर मुनि ज्ञान-क्रिया आदि सभी नयों के द्वारा अनुमत मयम में रमण करे ।

२५०—तथो बहूणि वासाणि
सामण्णमणुपालिया ।
इमेण कमजोगेण
अप्पाण संलिहे मुणी ॥

ततो बहूनि वर्षाणि
श्रामण्यमनुपाल्य ।
अनेन क्रम-योगेन
आत्मानं सलिखेन्मुनि ॥

२५०—मुनि अनेक वर्षों तक श्रामण्य का पालन कर इस क्रमिक प्रयत्न में आत्मा को कसे—सलेखना करे ।

२५१—वारसेव उ वासाइ
सलेहुकोसिया^१ भवे ।
सवच्छर मज्झिमिया^२
छम्मासा^३ य जहन्निया^४ ॥

द्वादशैव तु वर्षाणि
सलेखोत्कर्षिता भवेत् ।
संवत्सरं मध्यमिका
षण्मासा च जघन्यका ॥

२५१—सलेखना उत्कृष्टत वारह वर्षों, मध्यमत एक वर्ष तथा जघन्यत छह मास की होती है ।

२५२—पढमे वासचउक्कम्मि
विगईनिज्जूहणं^५ करे ।
विडए वासचउक्कम्मि
विचित्त तु तव चरे ॥

प्रथमे वर्ष-चतुष्के
विकृति-निर्यूहण कुर्यात् ।
द्वितीये वर्ष-चतुष्के
विचित्र तु तपश्चरेत् ॥

२५२—सलेखना करने वाला मुनि पहले चार वर्षों में विकृतियों (रसों) का परित्याग करे । दूसरे चार वर्षों में विचित्र तप (उपवास, वेला, तेला आदि) का आचरण करे ।

२५३—एगन्तरमायामं
कट्टु सवच्छरे दुवे ।
तथो सवच्छरद्ध तु
नाइविगिट्ट तव चरे ॥

एकान्तरमायामं
कृत्वा सवत्सरो द्वौ ।
ततः सवत्सराद्धन्तु
नातिविकृष्ट तपश्चरेत् ॥

२५३—फिर दो वर्षों तक एकान्तर तप (एक दिन उपवास तथा एक दिन भोजन) करे । भोजन के दिन आचाम्ल करे । ग्यारहवें वर्ष के पहले छः माहीनों तक कोई भी विकृष्ट तप (तेला, चोला आदि) न करे ।

१. सलेहुकोसनो (घृ० पा०) ।

२. मज्झिमतो (घृ० पा०), मज्झमिया (ऋ०) ।

३. छम्मामे (अ) ।

४. जहन्नतो (बृ० पा०) ।

५. वित्ति (घृ०), विगई (बृ० पा०) ।

२५४—‘तओ संवच्छरद्ध तु
विगिट्ठ तु तवं चरे ।
परिमिय चेव आयामं
तमि संवच्छरे करे ॥’^१

ततः संवत्सराद्धन्तु
विकृष्टन्तु तपश्चरेत् ।
परिमितश्चैवायामं
तस्मिन् संवत्सरे कुर्यात् ॥

२५४—ग्यारहवें वर्ष के पिछले छः महीनों में विकृष्ट तप करे । इस पूरे वर्ष में परिमित (पारणा के दिन) आचाम्ल करे ।

२५५—कोडीसहियमायामं
कट्ठु सवच्छरे मुणी ।
मासद्धमासिएणं तु
आहारेण^२ तवं चरे ॥

कोटी-सहितमायाम
कृत्वा सवत्सरे मुनिः ।
मासिकेनाद्ध मासिकेन तु
आहारेण तपश्चरेत् ॥

२५५—बारहवें वर्ष में मुनि कोटी-सहित (निरन्तर) आचाम्ल करे । फिर पक्ष या मास का आहार-त्याग (अनशन) करे ।

२५६—कन्दप्पमाभिओग^३
किव्विसियं मोहमासुरत्त च ।
एयाओ दुग्गईओ
मरणम्मि विराहिया होन्ति ॥

कान्दर्पो आभियोगी
किल्बिषिकी मोहो आसुरत्वं च ।
एता दुर्गतयः
मरणे विराधिका भवन्ति ॥

२५६—कादर्पी भावना, आभियोगी भावना, किल्बिषिकी भावना, मोही भावना तथा आसुरी भावना—ये पाँच भावनाएँ दुर्गति की हेतुभूत हैं । मृत्यु के समय ये सम्यग्-दर्शन आदि की विराधना करती हैं ।

२५७—मिच्छादसणरत्ता
सनियाणा हु हिंसगा ।
इय जे मरन्ति जीवा
तेसि पुण दुल्ला बोही ॥

मिथ्यादर्शन-रक्ताः
सनिदानाः खलु हिंसकाः ।
इति ये म्रियन्ते जीवाः
तेषां पुनर्दुर्लभा बोधिः ॥

२५७—मिथ्या-दर्शन में रक्त, सनिदान और हिंसक दशा में जो मरते हैं, उनके लिए फिर बोधि बहुत दुर्लभ होती है ।

२५८—सम्मदसणरत्ता
अनियाणा सुक्कलेसमोगाढा ।
इय जे मरन्ति जीवा
सुल्ला तेसि भवे बोही ॥

सम्यग्दर्शन-रक्ताः
अनिदानाः शुक्ल-लेश्यामवगाढाः ।
इति ये म्रियन्ते जीवाः
सुलभा तेषां भवेद् बोधिः ॥

२५८—सम्यग्-दर्शन में रक्त, अनिदान और शुक्ल-लेश्या में प्रवर्तमान जो जीव मरते हैं, उनके लिए बोधि सुलभ है ।

२५९—मिच्छादंसणरत्ता
सनियाणा कण्हलेसमोगाढा ।
इय जे मरन्ति जीवा
तेसि पुण दुल्ला बोही ॥

मिथ्या-दर्शन-रक्ता
सनिदानाः कृष्ण-लेश्यामवगाढाः ।
इति ये म्रियन्ते जीवाः
तेषां पुनर्दुर्लभा बोधिः ॥

२५९—जो मिथ्या-दर्शन में रक्त, सनिदान और कृष्ण-लेश्या में प्रवर्तमान होते हैं, उनके लिए फिर बोधि बहुत दुर्लभ होती है ।

१ परिमिय चेव आयामं गुणकुत्स मुणी चरे ।
ततो सवच्छरद्धणं विगिट्ठ तु तवं चरे ॥ (४० पा०) ।

२ समणेण (४० पा०) ।

३ कदप्पमाभिओग च (अ) ।

२६०—जिणवयणे अणुरत्ता
जिणवयण जे करेन्ति भावेण ।
अमला असकिलिष्टा
ते होन्ति परित्तसंसारी ॥

जिनवचनेऽनुरक्ता
जिनवचन ये कुर्वन्ति भावेन ।
अमला असकिलिष्टा
ते भवन्ति परीत-ससारिणः ॥

२६०—जो जिन-वचन में अनुरक्त हैं
तथा जिन वचनों का भाव-पूर्वक आचरण करते
हैं, वे निर्मल और असकिलिष्ट होकर परीत-
समारी (अल्प जन्म मरण वाले) हो जाते हैं ।

२६१—वालमरणाणि बहुसो
अकाममरणाणि चेव 'य
वहूणि'^१ ।
मरिहन्ति^२ ते वराया
जिणवयण जे न जाणन्ति ॥

वाल-मरणानि बहुशः
अकाम-मरणानि चैव च वहूनि ।
मरिष्यन्ति ते वराका
जिनवचनं ये न जानन्ति ॥

२६१—जो प्राणी जिन-वचनों के परि-
चित नही है, वे वेचारे अनेक बार वाल-मरण
तथा अकाम-मरण करते रहेंगे ।

२६२—बहुआगमविन्ताणा
समाहिउप्पायगा^३ य गुणगाही।
एएण कारणेण
अरिहा आलोयण सोउ ॥

बहुआगम-विज्ञानाः
समाध्युत्पादकाश्च गुणग्राहिणः ।
एतेन कारणेन
अर्हा आलोचना श्रोतुम् ॥

२६२—जो अनेक शास्त्रों के विज्ञाता,
आलोचना करने वाले के मन में ममावि उत्पन्न
करने वाले और गुणग्राही होते हैं, वे अपने
इन्हीं गुणों के कारण आलोचना सुनने के
अधिकारी होते हैं ।

२६३—कन्दप्पकोक्कुइवाइ^४ तह
शीलसहावहासविगहाहि^५ ।
विम्हावेन्तो य परं
कन्दप्प भावण कुणइ ॥

कन्दर्प-कौत्कुच्ये
तथा शील-स्वभाव-हास्य-विकथामिः॥
विस्मापयन् च पर
कान्दप भावना कुरुते ॥

२६३—जो काम-कथा करता रहता है,
दूसरों को हँसाने की चेष्टा करता रहता है,
शील, स्वभाव, हास्य और विकथामों के द्वारा
दूसरों को विस्मित करता रहता है, वह कान्दर्पी
भावना का आचरण करता है ।

२६४—मन्ताजोग^६ काउ
भूर्इकम्म च जे पउजन्ति ।
सायरसइडिह्हेउं
अभिओग भावण कुणइ ॥

मन्त्र-योग कृत्वा
भूति-कर्म च यः प्रयुङ्क्ते ।
सातरसद्धिहेतो
आभियोगी भावना कुरुते ॥

२६४—जो सुख, रस और समृद्धि के
लिए मन्त्र, योग और भूति-कर्म का प्रयोग
करता है, वह अभियोगी भावना का आचरण
करता है ।

बहुयाणि (इ, उ, ऋ०, स) ।

मरिहति (उ), मरिहति (ऋ०) ।

मुपायगा (अ) ।

कोक्कुयाइ (वृ०, छ०) ।

हसण० (वृ०, छ०) ।

मत० (अ) ।

२६५—नाणस्स केवलीणं
धम्मायरियस्स संघसाहूणं ।
माई अवण्णवाई
किन्विसिय भावण कुणइ ॥

२६६—अणुवद्धरोसपसरो
तह य निमित्तंमि होइ
पडिसेवि ।
एएहि कारणेहि
आसुरिय भावणं कुणइ ॥

२६७—सत्यग्गहण विसभक्खणं च
जलणं च जलप्पवेसो य ।
अणायारभण्डसेवा
जम्मणमरणाणि बन्धन्ति ॥

२६८—इइ पाउकरे बुद्धे
नायए परिनिव्वुए ।
छत्तीस उत्तरजम्भाए
भवसिद्धीयसंमए^१ ॥
—त्ति वेमि ।

ज्ञानस्य केवलिनां
धर्माचार्यस्य सङ्घसाधूनाम् ।
मायी अवर्णवादी
किल्बिषिकी भावनां कुरुते ॥

अनुबद्धरोषप्रसरः
तथा च निमित्ते भवति प्रतिसेवी ।
एताभ्यां कारणाभ्यां
आसुरीं भावनां कुरुते ॥

शस्त्र-ग्रहणं विष-भक्षणं च
ज्वलनं च जल-प्रवेशश्च ।
अनाचार-भाण्ड-सेवा
जन्म-मरणानि बध्नन्ति ॥

इति प्रादुरकरोद् बुद्धः
ज्ञातजः परिनिर्वृतः ।
षट्त्रिंशदुत्तराध्यायान्
भव्य सिद्धिक-सम्मतान् ॥

—इति ब्रवीमि ।

२६५—जो ज्ञान, केवल-ज्ञानी, धर्माचार्य,
सघ तथा साधुओं की निन्दा करता है, वह
मायावी पुरुष किल्बिषिकी भावना का
आचरण करता है ।

२६६—जो क्रोध को सतत् बढ़ावा देता
रहता है और निमित्त कहता है, वह अपनी इन
प्रवृत्तियों के कारण आसुरी भावना का
आचरण करता है ।

२६७—जो शस्त्र के द्वारा, विष-भक्षण
के द्वारा अग्नि में प्रविष्ट होकर या पानी में
कूद कर आत्म-हत्या करता है और जो मर्यादा
से अधिक उपकरण रखता है, वह जन्म-मरण
की परम्परा को पुष्ट करता है—मोहो
भावना का आचरण करता है ।

२६८—इस प्रकार भव्य जीवों द्वारा
सम्मत छत्तीस उत्तराध्ययनों का, तत्त्ववेत्ता,
परिनिर्वृति (उपशान्तात्मा) ज्ञात-वशीय
भगवान् महावीर ने प्रादुर्करण किया ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

पदानुक्रम

अ

पद	स्थल	अक्षिपणा उज्जुकटा निगमिना	१४-४१	अचवन्तकालम्स समूलगम्स	३०-१
अगमा बागापुरि	२०-२७	अक्षिरिय परिवज्जए	१८-३३	अचवन्तनियानसमा	१८-५२
अदितिककण्ठगारणे	१६-५०	अकुत्तुओ तत्तयअहियासएज्जा	२१-१८	अचवन्तपरमो आसो	२०-५
अदमाय पाणभोवण	१६-१०	अकुत्तुओ निमोएज्जा	२-२०	अच्चि जाला तहेव य	३६-१०६
अदयाओ नगहियो	२०-५६	अकोहणो समरए	११-५	अच्चुयम्मि जह्नेण	३६-२३३
अउय गुरुसपत्ता	३६-६६	अकोसवणं विस्तु धीरे	१५-३	अच्चेट कालो तूरन्ति राट्ठलो	१३-३१
अउया मे अन्दिरेयणा	२०-१६	आसोमा दुत्तामेज्जा य	१६-३१	अच्चेमु ते महाभाग ।	१२-३४
अउया एव वेषणा	२-३५	अत्तोमा य वहा य मे	१-३८	अच्छणे उवमम्पदा	२६-७
अउलो सविम्भओ	२०-५	आकोमेज्ज परो भिन्नु	२-२४	अच्छन्त एकमूलम्मि	१६-७८
अएत्र आगया गमे	७-६	अत्ताया मारणनिया	५-०	अच्छिने माहए अच्छि	३६-१४८
अकुमेण जहा नागो	२०-५६	अत्ताहि ने मज्ज । जत्तपूढ्या ।	१०-४०	अच्छेग्गमट्ठनुदए	६-५१
अरे अन्दिने य लाहियलो य	३६-७५	अत्ते भग्गंमि मोयई	५-१४	अजहन्मणुक्कोसा	३६-२४४
अगपन्नागमठाण	१६-४	अत्ते भग्गे व मोयई	५-१५	अजाणगा जन्तवाई	२५-१८
अगविज्ज च ते पटजन्ति	८-१३	अगणि व पागन्द पयगसेणा	१०-२७	अजीवदेसमागामे	३६-०
अगविद्या सग्गम विज्ज	१५-७	अगारवो य निम्मन्तो	३०-३	अजीवाण य रुविण	३६-१३
अगुल मत्तरणेण	२६-१४	अगारि च नियाणिया	७-२०	अजीवाण य रुवीण	३६-१४
अगेण बाहिरेण व	२८-०१	अगाग्गिमापाट्यंगाट्ठ	५-०३	अजीवा दुविहा भवे	३६-४
अगुपुणेहि नयणेहि	२०-०८	अगुणिम्म नरिय मोत्तो	२८-३०	अजीवा दुविहा वि य	३६-२४८
अवट नो षटे ति य	१-११	अगिषणाट्ठ जेगो	१६-६६	अज्जवयाए ण भन्ते । जीवे किं	२६ सू० ४६
अकम्मकम्मभूमा य	३६-१६६	अगिहात्तमुहा वेया	२५-१६	अज्जाट्ठ कम्माट्ठ करेहि राय ।	१३-३२
अकट्ठवरणेणिमुम्मिया	१० ३५	अग्गी चिट्ठट्ठ गोयमा	२३-५०	अज्जणमुवण्णममई	३६-६०
अकसाओ जिहट्ठिओ	३०-३	अग्गी य ट्ठ के वुत्ता	२३-५०	अज्जेव घम्म पटिवज्जयामो	१४-२८
अकमाय अहत्ताय	२८-३३	अग्गी या महिओ जहा	२५-१६	अज्जेवाह न लब्भामि	२-३१
अकाममरण चेव	५-२	अग्गी विवा सट्ठमक्की भवित्ता	२०-४७	अज्मत्तय मग्गओ सत्त्व	६-६
अकाममरण मरई	५-१६	अचक्किया वेणट्ठ दुण्हमया	११-३१	अज्मत्तय हेठ निययस्स वन्वो	१४-१६
अकाममरणानि चेव य बहुणि	३६-२६१	अचयन्तो तहि दिओ	२५-१३	अज्मायज्माणजोगेहि	१६-६३
अकामा जन्ति दोगाट्ठ	६-५३	अचिन्तण चेव अकित्तण च	३२-१५	अज्मत्तमाणम्मि सोहणे	१६-७
अकारिणात्थ अज्मन्ति	६-३०	अचिरकालकयमिय	२४-१७	अज्मावयाण पटिकूलभासी	१२-१६
अकाट्ठ च विवज्जित्ता	१-३१	अचिरेण कालेण	१४-५२	अज्मावयाण वयण सुणेत्ता	१२-१६
अकान्तिय पावद मे विणास	३२-०४, ३७-५०, ६३, ७६, ८६	अचेलगस्स तुहम्स	२-३४	अज्मावया वा सह खण्हिएहि	१२-१८
		अचेलगो य जो घम्मो	२३-१३, २६	अट्ठहाणि वज्जित्ता	३०-३५, ३४-३१
		अचचण रयण चेव	३५-१८	अट्ठ न जाणाह अहिज्ज वेए	१२-१५

अट्ठ कम्माड वोच्चामि	३३-१	अणत्ताणि य दव्वाणि	२८-८	अणुत्तरे सो नरए पविट्ठो	१३-३४
अट्ठजुत्ताणि सिक्वेज्जा	१-८	अणमिग्गहिमो य सेसेसु	२८-२६	अणुग्गए णावणाए महेसी	२१-२०
अट्ठनोयणवाहल्ला	३६-५६	अणमिग्गहिय कुट्टिठी	२८-२६	अणुप्पेहाएण भन्ते । जीवे किं	
अट्ठ पवयणभायाओ	२४-१	अणवज्जेमणिजस्स	१६-२७	जणयइ ?	२६ सू० २३
अट्ठमम्मि जहग्गेण	३६-२४१	अणसणमूणोयरिया	३०-८	अणुप्पेहा धम्मकहा	३०-३४
अट्ठमुहुत्ता जहन्निया	३३-२३	अणाइकालप्पभवस्स एसो	३२-१११	अणुवद्धरोसपसरो	३६-२६६
अट्ठविहगोयरग सु	३०-२५	अणागय नेव य अत्थि किंचि	१४-२८	अणुवन्धुहावहा	१६-११
अट्ठविहा वाणमन्तरा	३६-२०७	अणाडियस्स देवस्स	११-२७	अणुभागा हवन्ति उ	३३-२४
अट्ठसहस्सलक्खणधरो	२२-५	अणानुबन्धि अमोसलिं चेव	२६-२५	अणुभागे वियाणिया	३३-२५, ३४-६१
अट्ठहा ते पकित्तिया	३६-१६	अणायारभण्डसेवा	३६-२६७	अणुभावे सुणेह मे	३४-१
अट्ठहा वणचारिणो	३६-२०५	अणावाए चेव होइ सलोए	२४-१६	अणुमाणित्ताण बहुविह	१६-८६
अट्ठहि वीयतियमो	२६-१६	अणावायमसलोए	२४-१६, १७	अणुरत्ता अणुव्वया	२०-२८
अट्ठाए य अणट्ठाए	५-८	अणाविले अत्तपसन्नलेसे	१२-४६	अणुसट्ठि सुणेह मे	२०-१
अट्ठारस सागराइ	३६-२२६	अणासवा थूलवया कुसीला	१-१३	अणुसासण नाणगुणोव्वेय	२०-५१
अट्ठारम सागरोवमा	३६-२३०	अणासवे भाणसमाहिजुत्ते	३२-१०६	अणुसासणमोवाय	१-२८
अट्ठिअणा भविस्सि	२२-४४	अणाहत्त जहाभूय	२०-५६	अणुसासिओ न कुप्पेजा	१-६
अट्ठेउउ समासओ	३३-३	अणाहो मि महाराय ।	२०-६	अणूणाइरित्तपडिलेहा	२६-२८
अणइयकमणा य से होइ	२६-३३	अणिओ परिव्वए	२-१६	अणेणगच्छन्दा इह माणवेहिं	२१-१६
अणगार अकिंचण	२-१४, २५-२७	अणिच्चे जीव लोगम्मि	१८-११, १२	अणेग रूवा ससण चरन्त	४-११
अणगार तत्थ पासडे	१८-६	अणिघाणे अकिंचये	३५-१६	अणेगवासानउया	७-१३
अणगारगुणेहि च	३१-१८	अणिस्सिओ इह लोए	१६-६२	अणेगवासे धुवगोयरे य	१६-८३
अणगारमोह परमाइ भत्तिए	२०-५८	अणुकम्पओ तस्स महामुणिस्स	१२-८	अणेगविहा एवमायओ	३६-११६
अणगारस्स अन्तिए	१८-१८, १९	अणुकम्पग सुहिं वावी	२०-६	अणेगहा एवमायओ	३३-६६, ११०,
अणगारस्स निवसन्तो	२५-४२	अणुक्कसाई अपिच्छे	२-३६		१३०, १३६, १४६, २१६
अणगारस्स भिक्खुणो	१-१, २-२८, ६-१६, ११-१	अणुक्कसाई लहुअप्पमक्खी	१५-१६	अणेगहा ते पकित्तिया	३६-६४, ६६
अणगारस्स मो निवो	१८-८	अणुच्चे अकुए थिरे	१-३०	अणेगहा ते वियाहिया	३६-१०६
अणगारे भाणमस्सिए	१८-६	अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो !	१६-१०	अणेगाण सहस्साण	२३-३५
अणगारे तयोघगे	१८-४	अणुत्तर चरित्त धम्मसच्चय	२१-२३	अण्ड वलागप्पभव जहा य	३२-६
अणगारो गणाअहो	१८-७	अणुत्तर सजम पालइत्ता	१३-३५	अणवसि महोहसि	५-१, २३ ७०
अण्णाययि अयत्थि	२६-२५	अणुत्तर सजम पालियाण	२०-५२	अतरिंसु तरन्तेगे	१८-५२
'अणट्ठाकित्ति पव्वए'	१८-४६	अणुत्तर सिद्धिगइ गओ	१३-३५	अतालसे से कुणई पओस	३२-२६, ३६,
अणट्ठा जे य सव्वत्ता	१८-३०	अणुत्तरदसी अणुत्तरनाणदसणधरे	६-१७		५२, ६५, ७८, ६१
अणन्तकालमुत्तोग	३६-१४, ८२, ६०, १०३, ११५, १२४, १३४, १४३, १५३, १६८, १७७, २०२, २४६	अणुत्तरेनाणधरे जससी	२१-२३	अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स	३२-२६, ४२, ५५, ६६, ८१, ६६
		अणुत्तरे भुजिय कामभोगे	१३-३४	अत्तट्ठिय सिद्धिमिहेग पक्ख	१२-११

अत्तट्ठे अवरज्झई	७-२५	अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे	२०-३६	अन्नयरेण व वत्थेण	३०-२२
अत्तट्ठे नावरज्झई	७-२६	अनियाणा सुक्कल्लेसमोगाढा	३६-२५८	अन्नल्लिगे दसेव य	३६-५२
अत्ताण परिधावमे ?	१८-५३	अनियाणो अवन्वणो	१६-६१	अन्नस्म अट्ठा इहमागओ मि	१२ ६
अत्य च घम्म च वियाणमाणा	१०-३३	अन्तमुहुत्तम्मि गए	३४-६०	अन्नाएसी अलोलुए	२-३६
अत्यन्तम्मि य सूरम्मि	१७-१६	अन्तमुहुत्तम्मि सेसए चेव	३४-६०	अन्नाण च महामुणी ।	१८-२३
अत्य पोत्व व पत्तिववा ।	२०-१६	अन्तर तेसिम भवे ३६-१८६, १६३, २०२		अन्ताण जस्स अवगय होइ	२८-२०
अत्यघम्मगइ तच्च	२०-१	अन्तरद्दीवया तहा	३६-१६६	अन्ताणमोहस्स विवज्जणाए	३२-२
अत्यघम्मोवसोहिय	१८-३४	अन्तराए य कम्मम्मि	३३-२०	अन्तायएसी परिच्चए जे स भिक्खू	१५-१
अत्य एग धुव ट्ठाण	२३-८१	अन्तराय तहेव य	३३-३	अन्निओ रायसहस्सेहि	१८-४३
अत्य एगो महादीवो	२३-६६	अन्तरेय वियाहिय ३६-१४, १३४, १४३, १५३		अन्नेण विसेसेण	३०-२३
अत्य वा नत्य वा पुणो ?	५-६	अन्तेउरवरगओ वरे भोए	६-३	अन्ने य एयप्पभवे विसेसे	३२-१०३
अत्ये य सकप्पयओ तओ से	३२-१०७	अन्तोमुहुत्त जहन्नग	३६-१०२	अन्ने सत्ता पमोयन्ति	१४-४२
अत्येहि कामेहि य उत्तमेहि	१३-१०	अन्तोमुहुत्त जहन्नय ३६-८१, ८२, ६०, १०३,		अन्नो वि ससओ मज्ज २३-२८, ३४, ३६	
अयिरव्वए तवनियमेहि भट्ठे	२०-४१	१०४, ११४, ११५, १२३, १२४, १३३, १३४,		४४, ४६, ५४, ५६, ६४, ६६, ७४, ७६	
अयिरासणे कुक्कुईए	१७-१३	१४२, १४३, १५२, १५३, १६८, १७७, १८६,		अपजवसिया चेव ३६-८	
अदा पट्टिसेहिए नियण्ठे	१५-११	१६३, २०२, २४६		अपजवसिया वि य ३६-१२, ६५, ७६, ८७	
अदसण चेव अपत्यण च	३२-१५	अन्तोमुहुत्त जहन्निया ३३-१६, २१, २२,		१०१, ११२, १२१, १३१, १४०, १५०,	
अदत्तमेह्णपरिगहा विरओ	३०-२	३६-८०, ८८, ८९, ११३, १२२, १३२, १४१,		१५६, १७४, १८३, १९०, १९६, २१८	
अदत्तस्स विवज्जण	१६ २७	१५१, १७५, १७६, १८४, १८५, १९१, १९२,	२००, २०१	अपडिक्कमिता कालस्स	२६-२२
अदिन्नम्म वि किंचण	६-४०	अन्तोमुहुत्तमद्ध	३४-४५	अपत्य अम्मग भोच्चा	७-११
अदिस्साण च भूयाण	२३-२०	अन्तो लयणस्स सा ठिया	२२-३३	अपरिकम्मा य आहिया	३०-१३
अदीणमणमो चरे	२-३	अन्तो सिद्धाण आहिय	३३-१७	अपाहेओ पवजई	१६-१८
अदीणो धावए पन्न	२ ३२	अन्तोहिययसभूया	२३-४५	अप्प चाऽहिकिक्खई	११-११
अदुवा वच्चिओ मि ति	२-४४	अन्धयारे तमे घोरे	२३-७५	अप्प वा जइ वा बहु	२५-२४
अदुवावि भविस्सई	२-४५	अन्धिया पोत्तिया चेव	३६-१४६	अप्पकम्मे अवेयणे	१६-२१
अदुवा मचेलए होक्ख	२-१२	अन्न पत्येसि आसम	६-४२	अप्पच्चक्खाय पावग	६-८
अदु वुक्कस पुलग वा	८-१२	अन्न पभूय भवयाणमेय	१२-१०	अप्पडिपूयए थद्धे	१७-५
अहाय सिरसा सिर	१८-५०	अन्न पाण च ण्हाण च	२०-२६	अप्पडिवद्धयाए ण भन्ते । जीवे २६ सू० ३१	
अदीणा जन्ति देवय	७-२१	अन्न वावि तहाविह	२४-१५	अप्पडिक्खे अहाउय	३-१६
अद्दाए मुइरादवि	७-१८	अन्नदत्तहरे तेणे	७-५	अप्पडिहयवले जोहे	११-२१
अद्दाण जो महन्त तु	१६-१८, २०	अन्नप्पमत्ते घणमेसमाणे	१४-१४	अप्पणट्ठा परट्ठा वा	१-२५
अद्दाणमि विलोवए	७-५	अन्नमन्नमणूरत्ता	१३-५	अप्पणा अणाहो सन्तो	२०-१२
अद्दाणे कह वट्टन्ते	२३-६०	अन्नमन्नवसाणुगा	१३-५	अप्पणा वि अणाहो सि	२०-१२
अद्दासमए चेव	३६-६	अन्नमन्निहिएसिणो	१३-५	अप्पणा सच्चमेसेजा	६-२
अधुवे असासयमि	८-१	अन्नमन्नेण जा विणा	१३-७	अप्पणो य परस्स य	२०-३५
		अन्नयरवयरयो वा	३०-२२		

अप्यगो य परेति च	१८-२६	अवले जह भारवाहए	१०-३३	अमोहा रयणी वृत्ता	१४-२३
अप्यगो वसहि वए	१४-४८	अवाल चेव पण्डिए	७-३०	अमोहाहि पडन्तीहि	१४-२१
अप्यगोऽप्यदीर्यमि	१-३५	अवाल सेवए मुणी	७-३०	अम्बिला महरा तहा	३६-१८
अप्यमजियमारुहड	१७-७	अवीया सत्यकुसला	२०-२२	अम्मताय । मए भोगा	१६-११
अप्यमतो पमत्तेहि	६-१६	अवोहेन्तो असंजए	२६-४४	अम्मापिऊण दइए	१६-२
अप्यमनो परिच्चए	६-१२	अवमपडलज्जमवालुय	३६-७४	अम्मापिऊहि अणुन्नाओ	१६-८४
अप्यध्वङ्गण व सयुधा हविजा	१५-१०	अव्भाहयमि लोगमि	१४-२१	अम्मापियर उवागम्म	१६-६
अप्यमत्त्याओ वज्जिता	३४-६१	अविमन्तर तव एत्तो	३०-२६	अय दन्तेहि खायह	१२-२६
अप्यमत्त्येहि दारेहि	१६-६३	अव्मुट्ठाण अंजलिकरण	३०-३२	अय साहसिओ भीमो	२३-५५
अप्या कत्ता विकत्ता य	२०-३७	अव्मुट्ठाणं गुरुपूया	२६-७	अयसि लोए अभय व पूइए	१७-२१
अप्या कामदुहा घेणू	२०-३६	अव्मुट्ठाण नवम	२६-४	अयसि लोए विसमेव गरहिए	१७-२०
अप्या चेव दमेयव्वो	१-१५	अव्मुट्ठिय रायरिसि	६-६	अयकक्करभोई य	७-७
(अप्याण उवसहरे)	२२-४५	अभओ पत्थिवा । सुवम	१८-११	अयतम्बतउय-सीसग	३६-७३
अप्याण तारइस्सामि	१६-२३	अभयदाया भवाहि य	१८-११	अयन्तिए कूड कहावणे वा	२०-४२
अप्याण पि न कोवए	१-४०	अभिओग भावण कुणई	३६-२६४	अय व्व आगयाएसे	७-६
अप्याण सल्लिहे मुणी	३६-२५०	अभिकखणं उल्लवई	११-२	अयसीपुप्फसकासा	३४-६
अप्याणं मवरे तहि	२२-३६	अभिकखण कोही हवइ	११-७	अरइ पिट्ठओ किच्चा	२-१५
अप्याणमेव अप्याण	६-३५	अभिगमवित्याररुई	२८-१६	अरइरइसहे पहीणसथवे	२१-२१
अप्याणमेव जुज्झाहि	६-३५	अभिगहा य जे अन्ने	३०-२५	अरई अणुप्पविसे	२-१४
अप्याणरक्खी चग्मप्यमतो	४-१०	अभिजाए जसोवले	३-१८	अरई गण्ड विसुइया	१०-२७
अप्या दन्तो नुइ होइ	१-१५	अभिणिकखमई नमी राया	६-२	अरए य तवो कम्मे	१७-१५
अप्या नई घेयरणी	२०-३६	अभितुर पार गमित्तए	१०-३६	अरणो मियपक्खिण ?	१६-७६
अप्या मित्तममित्त च	२०-३७	अभिभूय परीसहे	२-१८	अरहा नायपुत्ते	६-१७
अप्या मे अवमीयई	२७-१५	अभिवन्दिऊण सिरसा	२०-५६	अरहा लोगपूइओ	२३-१
अप्या मे कूडसामली	२०-३६	अभिवन्दितासिरसा	२३-८६	अरिट्ठणेमि वन्दित्ता	२२-२७
अप्या मे नन्दण वणं	२०-३६	अभिवायणमव्मुट्ठाण	२-३८	अरिहा आलोयण सोच	३६-२६२
अप्यामफे महापन्ने	३-१८	अभू जिणा अत्थि जिणा	२-४५	अरुविणो जीवघणा	३६-६६
अप्या हु छालु दुट्ठमो	१-१५	अमोगी नोवल्लिप्पई	२५-३६	अरुवी दसहा भवे	३६-६
अप्याहेओ पवज्जई	१६-१८	अमोगी विप्पमुच्चवई	२५-३६	अरुवी दसहा वृत्ता	३६-४
अप्पियं पि न विज्जाए	६-१५	अमला असकिलिट्ठा	३६-२६०	अरो य अरय पत्तो	१८-४०
अप्पियस्सायि मित्तास्स	११-१२	अमहग्यए होइ हु जाणएसु	२०-४२	अलकिओ वाणलकिओ वा वि	३०-२२
अप्पिया देवकामाणं	३-१५	अमाई अकुक्कहले	११-१०, ३४-२७	अलसा माइवाहया	३६-१२८
अप्पुट्ठाई निम्पुट्ठाई	१-३०	अमाणुसासु ओणीसु	३-६	अनाओ त न तजए	२-३१
अप्पकावमज्जवम्मि	१८-५	अमुत्तभावा वि य होइ णिच्चो	१४-१६	अलोए पडिहया सिद्धा	३६-५६
अप्पकाजन्ति गइओ	१४-२४	अमोहणे होइ निरन्तराए	३२-१०६	अलोए से विहाहिए	३६-२
अप्पमन्चारिणो वाला	१२-५				

अलोलुप मुहाजीवी	२५-२७	असविभागी अचियत्ते	११-६, १७-११	अह कालमि सपत्ते	५-३२
अलोले न रसे गिद्धे	३५-१७	अससत्त गिहत्थेयु	२५-२७	अह केसरम्म उज्जाणे	१८-४
अह्ठीणा सुसमाहिया	२३-६	अससत्तो गिहत्थेहि	२-१६	अह चउदसहि ट्ठाणेहि	११-६
अवउज्झइ पायकम्बल	१७-६	असणे अणसणे तहा	१६-६२	अह जाणासि तो भण	२५-१२
अवउज्झऊण माहणह्व	६-५५	असन्ते कामे पत्थेसि	६-५३	अह जे सवुडे भिक्खू	२-२५
अवउज्झमय मित्तवन्धव	१०-३०	असमाणो चरे भिक्खू	२-१६	अह तत्थ अइच्छन्त	१६-५
अवचियमससोणिय	२५-२१	असमाहिं च वेएइ	२७-३	अह तायगो तत्थ मुणोण तेसि	१४-८
अवसेस भण्डग गिज्झा	२६-३५	असावज्ज मिय काले	२४-१०	अह तेणेव कालेण	२३-५, २५-४
अवसो लोहरहे जुत्तो	१६-५६	असार अवउज्झइ	१६-२२	अह ते तत्थ सीसाण	२३-१४
अवसोहिय कण्टगापह	१०-३२	असासए सरीरम्मि	१६-१३	अह दारए तहि जाए	२१-४
अवहेडिय पिट्ठमउत्तमंगे	१२-२६	असासय दट्ठु इम विहार	१४-७	अह निक्खमई उ चित्ताहि	२२-२३
अवि एय विणस्सउ अन्नपाणं	१२-१६	अमासयावासमिण	१६-१२	अह पवहि ट्ठाणेहि	११-३
अविज्जमाया अहीरिया य	३४-२३	असिणह सिणेहकरेहि	८-२	अह पच्छा उइज्जन्ति	२-४१
अविणीए अवहुम्सुए	११-२	अमिधारागमण चेव	१६-३७	अह पत्तमि आएसे	७-३
अविणीए त्ति वुच्चई	१-३, ११-६	अतिपत्त महावण	१६-६०	अह पन्नरमहि ट्ठाणेहि	११-१०
अविणीए वच्चई सो उ	११-६	असिपत्तेहि पडन्तेहि	१६-६०	अह पालियस्स घरणी	२१-४
अवि पावपरिक्खेवी	११-८	अमिप्पजीवी अगिहे अमित्ते	१५-१६	अह भवे पइन्ना उ	२३-३३
अवि मित्तेसु कुप्पई	११-८	असीलाण च जा गई	५-१२	अहमासी महापाणे	१८-२८
अवि लाभो सुए सिया	२-३१	असीहि अयसिवण्णाहिं	१६-५५	अह मोणेण सो भगव	१८-६
अविवच्चासा तद्देव य	२६-२८	असुइ असुइसम्भव	१६-१२	अहम्म कुणमाणस्स	१४-२४
अविसारओ पवयणे	२८-२६	असुभत्थेसु सव्वसो	२४-२६	अहम्म पडिबज्जिया	५-१५, ७-२८
अव्वक्खित्तेण चयसा	१८-५०, २०-१७	असुरा तहिं त जण तालयन्ति	१२-२५	अहम्मे अत्तपन्नहा	१७-१२
अव्वगमणे असपहिट्ठे	१५-३	असुरा नागसुवण्णा	३६-२०६	अहम्मे तस्स देसे य	३६-५
असइ तु मणुस्सेहिं	६-३०	अस्सकणी य वोद्धवा	३६-६६	अहम्मो ट्ठाणलक्खणो	२८-६
असइ दुक्खभयाणि य	१६-४५	अस्साया वेइया मए	१६-४७	अह राया तत्थ सभन्तो	१८-७
असखकालमुक्कोस	३६-१३,	अस्सा हत्थी मणुस्सा मे	२०-१३	अहवा तइयाए पोरिसीए	३०-२१
	८१, ८६, १०४, ११४, १२३	अस्सि लोए परत्थ य	१-१५	अहवा सपरिकम्मा	३०-१३
असखभाग च उक्कोसा	३४-४१, ४२, ५३	अस्से य इइ के वुत्ते ?	२३-५७	अह सन्ति सुव्वया साहू	८-६
असखभागो पलियस्स	३६-१६२	अह अट्ठहिं ठाणेहि	११-४	अह सा भमर-सन्निमे	२२-३०
असखय जीविय मा पमायए	४-१	अह अन्नया कयाई	२१-८	अह सारही तओ भणइ	२२-१७
असखिज्जाणोसप्पिणीण	३४-३३	अह आसगओ राया	१८-६	अह सारही विचिन्तेइ	२७-१५
असखेज्जइमो भवे	३६-१६१	अह ऊसिएण छत्तेण	२२-११	अह सा रायवरकन्ना	२२-७, ४०
असजए सजयमन्नमाणे	१७-६	अह च भोयरायस्स	२२-४३	अह से तत्थ अणगारे	२५-५
असजए सजयलप्पमाणे	२०-४३	अह तु अग्नि सेवामि	२-७	अह से सुगन्धगन्धिए	२२-२४
असजमे नियत्ति च	३१-२	अह पि जाणामि जहेह साहू ।	१३-२७	अह सो तत्थ निज्जन्तो	२२-१४

अप्पणो य परेसि च	१८-२६	अवले जह भारवाहए	१०-३३	अमोहा रयणी वुत्ता	१४-२३
अप्पणो वसहि वए	१४-४८	अवाल चेव पण्डिए	७-३०	अमोहाहि पडन्तीहि	१४-२१
अप्पपाणेऽपवीर्यमि	१-३५	अवाल सेवए मुणी	७-३०	अम्बिला महुरा तहा	३६-१८
अप्पमज्जियमारुहइ	१७-७	अवीया सत्थकुसला	२०-२२	अम्मताय । मए भोगा	१६-११
अप्पमत्तो पमत्तेहि	६-१६	अवोहेन्तो असंजए	२६-४४	अम्मापिऊण दइए	१६-२
अप्पमत्तो परिव्वए	६-१२	अवमपडलऽवमवालुय	३६-७४	अम्मापिऊहि अणुन्नाओ	१६-८४
अप्पव्वइएण व सयुवा हविजा	१५-१०	अव्भाहयमि लोगमि	१४-२१	अम्मापियर उवागम्म	१६-६
अप्पसत्त्याओ वजित्ता	३४-६१	अविमन्तर तव एत्तो	३०-२६	अय दन्तेहि खायह	१२-२६
अप्पसत्थेहि दारेहि	१६-६३	अव्भुट्ठाणं अजलिकरणं	३०-३२	अय साहसिओ भीमो	२३-५५
अप्पा कत्ता विकत्ता य	२०-३७	अव्भुट्ठाण गुरुप्पया	२६-७	अयसि लोए अभय व पूइए	१७-२१
अप्पा कामदुहा धेणू	२०-३६	अव्भुट्ठाण नवम	२६-४	अयसि लोए विसमेव गरहिए	१७-२०
अप्पा चेव दमेयव्वो	१-१५	अव्भुट्ठिय रायरिसि	६-६	अयकक्करभोई य	७-७
(अप्पाण उवसहरे)	२२-४५	अभओ पत्थिवा । तुवम	१८-११	अयतम्बतउय-सीसग	३६-७३
अप्पाण तारइस्सामि	१६-२३	अभयदाया भवाहि य	१८-११	अयन्तिए कूड कहावणे वा	२०-४२
अप्पाण पि न कोवए	१-४०	अभिओग भावण कुणई	३६-२६४	अय व्व आगयाएसे	७-६
अप्पाण सलिहे मुणी	३६-२५०	अभिक्खणं उल्लवई	११-२	अयसीपुप्फसकासा	३४-६
अप्पाण सवरे तहि	२७-३६	अभिक्खण कोही हवइ	११-७	अरइ पिट्ठओ किच्चा	२-१५
अप्पाणमेव अप्पाण	६ ३५	अभिगमवित्थारइई	२८-१६	अरइरइसहे पहीणसथवे	२१-२१
अप्पाणमेव जुज्झाहि	६-३५	अभिगहा य जे अन्ते	३०-२५	अरई अणुप्पविसे	२-१४
अप्पाणरक्खी चरमप्पमत्तो	४-१०	अभिजाए जसोबले	३-१८	अरई गण्ड विसूइया	१०-२७
अप्पा दन्तो सुद्धी होइ	१-१५	अभिणिक्खमई नमी राया	६-२	अरए य तवो कम्मे	१७-१५
अप्पा नई वेयरणी	२०-३६	अभितुर पार गमित्तए	१०-३६	अरण्णे मियपक्खिण ?	१६-७६
अप्पा मित्तममित्त च	२०-३७	अभिभूय परीसहे	२-१८	अरहा नायपुत्ते	६-१७
अप्पा मे अवसीयई	२७-१५	अभिवन्दिऊण सिरसा	२०-५६	अरहा लोगपूइओ	२३-१
अप्पा मे कूडसामली	२०-३६	अभिवन्दितासिरसा	२३-८६	अरिट्ठणेमि वन्दिता	२२-२७
अप्पा मे नन्दण वणं	२०-३६	अभिवायणमव्भुट्ठाण	२-३८	अरिहा आलोयण सोउ	३६-२६२
अप्पायके महापत्ते	३-१८	अभू जिणा अत्थि जिणा	२-४५	अरुविणो जीवघणा	३६-६६
अप्पा हु खलु दुइमो	१-१५	अभोगी नोवलिप्पई	२५-३६	अरुवी दसइा भवे	३६-६
अप्पाहेओ पवजई	१६-१८	अभोगी विप्पमुच्चई	२५-३६	अरुवी दसहा वुत्ता	३६-४
अप्पिय पि न विजए	६-१५	अमला असकिलिट्ठा	३६-२६०	अरो य अरय पत्तो	१८-४०
अप्पियस्सावि मित्तास्स	११-१२	अमहणए होइ हु जाणएसु	२०-४२	अलकिओ वाऽणलकिओ वा वि	३०-२२
अप्पिया देवकामाण	३-१५	अमाई अकुळहले	११-१०; ३४-२७	अलसा माइवाहया	३६-१२८
अप्पुट्ठाई निरुट्ठाई	१-३०	अमाणुसासु ओणीसु	३-६	अलाओ त न तजए	२-३१
अप्फोवमण्डवम्मि	१८-५	अमुत्तभावा वि य होइ णिच्चो	१४-१६	अलोए पडिहया सिद्धा	३६-५६
अफलाजन्ति राइओ	१४-२४	अमोहणे होइ निरन्तराए	३२-१०६	अलोए से विहाहिए	३६-२
अव्वम्भचारिणो वाला	१२-५				

अलोलुप मुहाजीवी	२५-२७	असविभागी अचियत्ते	११-६, १७-११	अह कालमि सपत्ते	५-३२
अलोले न रसे गिद्धे	३५-१७	अससत्त गिहत्थेमु	२५-२७	अह केसरम्मि उज्जाणे	१८-४
अह्दीणा सुसमाहिया	२३-६	अससत्तो गिहत्थेहि	२-१६	अह चउदमहि ट्ठाणेहि	११-६
अवउज्झइ पायकम्बल	१७-६	असणे अणसणे तहा	१६-६२	अह जाणासि तो भण	२५-१२
अवउज्झऊण माहणरूव	६-५५	असन्ते कामे पत्थेसि	६-५३	अह जे सवुढे भिक्खू	२-२५
अवउज्झमय मित्तवन्धव	१०-३०	असमाणो चरे भिक्खू	२-१६	अह तत्थ अइच्छन्त	१६-५
अवचियमससोणिय	२५-२१	असमाहिं च वेएइ	२७-३	अह तायगो तत्थ मुणीण तेमि	१४-८
अवसेस भण्डग गिज्झा	२६-३५	असावज्ज मिय काले	२४-१०	अह तेणेव कालेण	२३-५, २५-४
अवसो लोहरहे जुत्तो	१६-५६	असार अवउज्झइ	१६-२२	अह ते तत्थ सीमाण	२३-१४
अवसोहिय कण्टगापह	१०-३२	असासए सरीरम्मि	१६-१३	अह दारए तहि जाए	२१-४
अवहेडिय पिट्ठमउत्तमगे	१२-२६	असासय दट्ठु इम विहार	१४-७	अह निक्खमई उ चित्ताहि	२२-२३
अवि एय विणस्सउ अन्नपाण	१२-१६	असासयावासमिण	१६-१२	अह पक्षहि ट्ठाणेहि	११-३
अविजमाया अहीरिया य	३४-२३	असिणेह मिणेहकरेहि	८-२	अह पच्छा उइज्जन्ति	२-४१
अविणीए अवहुम्मुए	११-२	अमिधारागमण चेव	१६-३७	अह पत्तमि आएमे	७-३
अविणीए त्ति वुच्चई	१-३, ११-६	असिपत्त महावण	१६-६०	अह पन्नग्महि ट्ठाणेहि	११-१०
अविणीए वच्चई सो उ	११-६	असिपत्तेहि पडन्तेहि	१६-६०	अह पालियस्स घरणी	२१-४
अवि पावपरिक्खेवी	११-८	अमिप्पजीवी अगिहे अमित्ते	१५-१६	अह भवे पइन्ना उ	२३-३३
अवि मित्तेसु कुप्पई	११-८	असोलाण च जा गई	५-१२	अहमासी महापाणे	१८-२८
अवि लाभो सुए सिया	२-३१	असोहि अयसिवण्णाहि	१६-५५	अह मोणेण सो भगव	१८-६
अविवच्चासा तहेव य	२६-२८	असुइ असुइसम्भव	१६-१२	अहम्म कुणमाणस्स	१४-२४
अविसारओ पवयणे	२८-२६	असुभत्थेसु सव्वसो	२४-२६	अहम्म पडिवज्जिया	५-१५, ७-२८
अव्वक्खित्तेण चयसा	१८-५०, २०-१७	असुरा तहिं त जण तालयन्ति	१२-२५	अहम्मे अत्तपन्नहा	१७-१२
अव्वगमणे असपहिट्ठे	१५-३	असुरा नागसुवण्णा	३६-२०६	अहम्मे तस्स देसे य	३६-५
असइ तु मणुस्सेहि	६-३०	अस्सकणी य वोद्धव्वा	३६-६६	अहम्मो ट्ठाणलक्खणो	२८-६
असइ दुक्खभयाणि य	१६-४५	अस्साया वेइया मए	१६-४७	अह राया तत्थ सभन्तो	१८-७
असखकालमुक्कोस	३६-१३,	अस्सा हत्थी मणुस्सा मे	२०-१३	अहवा तइयाए पोरिसीए	३०-२१
	८१, ८६, १०४, ११४, १२३	अस्सि लोए परत्थ य	१-१५	अहवा सपरिकम्मा	३०-१३
असखभाग च उक्कोसा	३४-४१, ४२, ५३	अस्से य इइ के वुत्ते ?	२३-५७	अह सन्ति मुव्वया साहू	८-६
असखभागो पलियस्स	३६-१६२	अह अट्ठहिं ठाणेहि	११-४	अह सा भमर-सन्निभे	२२-३०
असखय जीविय मा पमायए	४-१	अह अन्नया कयाई	२१-८	अह सारही तओ भणइ	२२-१७
असखिज्जाणोसप्पिणीण	३४-३३	अह आसगओ राया	१८-६	अह सारही विचिन्तेइ	२७-१५
असखेज्जइमो भवे	३६-१६१	अह ऊसिएण छत्तेण	२२-११	अह सा रायवरकन्ना	२२-७, ४०
असजए सजयमन्नमाणे	१७-६	अह च भोयरायस्स	२२-४३	अह से तत्थ अणगाए	२५-५
असजए सजयलप्पमाणे	२०-४३	अह तु अग्गि सेवामि	२-७	अह से सुगन्धगन्धिए	२२-२४
असजमे नियत्ति च	३१-२	अह पि जाणामि जहेह साहू ।	१३-२७	अह सो तत्थ निज्जन्तो	२२-१४

अह सो वि रायपुत्तो	२२-३६	आउ जाणे जहा तहा	१८-२६	आणानिदेसकरे	१-२
अहस्तिरे सया दन्ते	११-४	आउ सुहमणुत्तर	७-२७	आणार्ह सुत्तवीयरुइमेव	२८-१६
अहाउय पालइत्ता अन्तो०	२६ सू० ७३	आउकम्म चउव्विह	३३-१२	आणुपुव्वि जहक्कम	३१-१, ३४-१
अहाह जणाओ तीसे	२२-८	आउकम्म तहेव य	३३-२	आणुपुव्वि सुणेह मे	१-१, २-१, ११-१
अहिंस सच्च च अतेणग च	२१-१२	आउक्कायमइगओ	१०-६	आणुपुव्वी कयाइ उ	३-७
अहिज्ज वेए परिविस्स विण्णे	१४-६	आउक्खए मोक्खमुवेइ सुद्धे	३२-१०६	आपुच्छणा य तइया	२६-२
अहिवेगन्तदिट्ठीए	१६-३८	आऊजीवाण अन्तर	३६-६०	आपुच्छणा सयकरणे	२६-५
अहीणपचिन्दियत्त पि से लहे	१०-१८	आउट्ठिई आऊण	३६-८८	आपुच्छन्मापियरो	२१-१०
अहीणपचिन्दियया हु दुल्लहा	१०-१७	आउट्ठिई खहयराण	३६-१६१	आपुच्छिताण बन्ववे	२०-३४
अहुणोववन्तसकासा	५-२७	आउट्ठिई जलयराण	३६-१७५	आभरणाणि य सब्वाणि	२२-२०
अहे वयइ कोहेण	६-५४	आउट्ठिई तेऊण	३६-११३	आभरणेहि विभूसिओ	२२-६
अहो ! अज्जस्स सोमया	२०-६	आउट्ठिई थलयराण	३६-१८४	आमतयामो चरिस्सामु मोणं	१४-७
अहो अट्ठिए अहोराय	१८-३१	आउठिई पुढवीण	३६-८०	आमिस सव्वमुज्झिता	१४-४६
अहो ! खन्ती अहो ! मुत्ती	२०-६	आउट्ठिई वाऊण	३६-१२२	आमोयमाणा गच्छन्ति	१५-४४
अहो ते अज्जव साहु	६-५७	आउट्ठिई मणुयाण	३६-२००	आमोसे लोमहारे य	६-२८
अहो ते उत्तमा खन्ती	६-५७	आउत्तया जस्स न अत्थि काइ	२०-४०	आयका विविहा फुसन्ति ते	१०-२७
अहो ते निज्जओ कोहो	६-५६	आउय नरए कखे	७-७	आयका विविहा फुसन्ति देह	२१-१८
अहो ते निरक्किया माया	६-५६	आउरे सरण तिगिच्छिय च	१५-८	आयके उवसग्गे	२६-३४
अहो ते माणो पराजियो	६-५६	आउरे सुपिवासिए	२-५	आययन्ति मणुस्सय	३-७
अहो ते मुत्ति उत्तमा	६-५७	आएस पप्प साईए	३६-६	आयरिएहि वाहिन्तो	१-२०
अहो ते लोभो वसीकओ	६-५६	आएस परिकखए	७-२	आयरिय कुविय नच्चा	१-४१
अहो ते साहु मद्दव	६-५७	आएसाए समीहिए	७-४	आयरिय विदित्ताण	६-८
अहोत्या विउलो दाहो	२०-१६	आगए कायवोस्सग्गे	२६-४६	आयरियउवज्झाएहि	१७-४
अहो दुक्खो हु ससारो	१६-१५	आगओ तत्थ वाणिओ	७-१५	आयरियउवज्झायाण	१७-५
अहो ! भोगे असगया	२०-६	आगम्मुक्कुडुओ सन्तो	१-२२	आयरियपरिच्चाई	१७-१७
अहो य राओ परितप्पमाणे	१४-१४	आगासे अहो दाण च घुट्ठ	१२-३६	आयरियमाइयम्मि य	३०-३३
अहो ! वण्णो अहो ! रुव	२०-६	आगासे गगसोउ व्व	१६-३६	आयारियाण त वयण	२७-११
अहोऽनुभाण कम्माण	२१-६	आगासेणुप्पइओ	६-६०	आयरियाण वन्दिता	
आ		आगासे तस्स देसे य	३६-६	आयवस्स निवाएण	२ ३५
आइए निक्खवेजा वा	२४-१४	आघायाय समुस्सय	५-३२	आयाण नरय दिस्स	६-७
आइक्ख णे सजय ! जक्खपूइया !	१२-४५	आणयम्मि जहन्तेण	३६-२३०	आयाणनिक्खेवदुगुच्छणाए	२०-४०
आइच्चमि समुट्ठिए	२६-८	आणया पाणया तहो	३६-२११	आयाणहेउ अभिणिक्खमाहि	१३-२०
आइण्णे कन्थए सिया	१७-१६	आणाइस्सरिय च मे	२०-१४	आयामग चेव जवोदण च।	१५-१३
आइण्णे गणिभावम्मि	२७-१	आणाए रोयतो	२८-२०	आया मम पुण्णफलोववेए	१३-१०
आउं कामा य दिव्विया	७-१२	आणाऽनिदेसकरे	१-३	आयार पाउकरिस्सामि	११-१

आयारधम्मपणिही	२३-११	आसण सयण जाण	७ ८	इ	
आरणम्मि जहन्नेण	३६-२३२	आसणगळो न पुच्छेज्जा	१-२२	इड इत्तरियम्मि आउए	१०-३
आरणा अच्चुया चैव	३६-२११	आसणम्मि अणाउत्ते	१७-१३	इड एएमु ठाणेमु	३१-२१
आरणगा होह मुणो पसत्या	१४-६	आमणे उवचिट्ठेज्जा	१-३०	इड एस घम्मे अक्खाए	८-२०
आरभडा मम्महा	२६-२६	आसमपए विहारे	३०-१७	इड एसा वियाहिया	३६-१६७
आरम्भम्मि तहेव य	२४-२५	आसाड वहुलपक्खे	२६-१५	इड कप्पोवगा मुरा	३६-२११
आरम्भाओ अविरओ	३४-२४	आमाडे मासे दुपया	२६-१३	इड चउरिन्दिया एए	३६-१४६
आरम्भेय तहेव य	२४-२१, २३	आसि अम्मे महड्डिया	१३-७	इड जीवमजीवे य	३६-२४६
आरसन्तो मुभेरव	१६-५३, ६८	आसि भिक्खू जिइन्दिया	१२-१	इड जीवा वियाहिया	३६-२४८
आराहए दुहओ लोगमिण	१७-२१	आसिमो भायरा दो वि	१३-५	इड दुणूरए इमे आया	८-१६
आराहए पुण्णमिण खु खेत्त	१२-१२	आसि राया मड्डिड्डए	२२-१, ३	इड नेरइया एए	३६-१५७
आरिय घम्मज्जुत्तरं	२-३७	आसि विण्णो महायसो	२५-१	इड पाठकरे बुद्धे	१८-२४, ३६-२६८
आरियत्त पुणरावि दुल्लह	१०-१६	आसि सीसे महायसे	२३-२, ६	इड फासपण्णिया एए	३६-२०
आरुओ सोहए अहिय	२२-१०	आसी तत्थ समागमो	२३-२०	इड बालि पगवमई	५-७
आलओ यीजणाइण्णो	१६-११	आसी मिहिलाए पन्वयन्तमि	६-५	इड वेडन्दिया एए	३६-१३०
आलम्पणेण कालेण	२४-४	आसीविसो उगत्तवो महेसी	१२-२७	इड भिक्खू न चिन्तए	२-७, १२, २६, ४४, ४५
आलय तु निसेवए	१६-१	आसुरिय दिस वाला	७-१०	इड विज्जा तव चरे	६-४६, १८-३१
आलवन्ते लवन्ते वा	१-२१	आसुरिय भावण कुणइ	३६-२६६	इड विज्जामणुमचरे	१८-३०
आलुए मूलए चैव	३६-६६	आसे जवेण पवरे	११-१६	इड वेमाणिया देवा	३६-२१६
आलोएड नगरम्स	१६-४	आसे जहा सिक्खिय वम्मघारी	४-८	इओ चुओ गच्छइ कट्ट पाव	२०-४७
आलोएज जहक्कम	२६-४०, ४८	आसेवण जहाथाम	३०-३३	इगाले मुम्मुरे अगणी	३६-१०६
आलोयणयाए ण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?	२६ सू० ६	आहच्च चण्डालिय कट्ट	१-११	इ गियागारसपन्ने	१-२
आलोयणारिहाइय	३०-३१	आहच्च सवण लद्ध	३-६	इक्किक्कभवगहणे	१०-१४
आलोयलोले ममुवेइ मच्चु	३२-२६	आहरित्तु पणामए ?	१६-७६	इक्खागरायवसमो	१८-३६
आवई वहमूलिया	७-१७	आहाकम्मेहिं गच्छई	३-३	इच्चेए तसा तिबिहा	३६-१०७
आवजई इन्दियचोरवस्से	३२-१०४	आहाकम्मेहिं गच्छन्तो	५-१३	इच्चेए थावरा तिबिहा	३६-६६, १०६
आवजई एवमणेगह्वे	३२-१०३	आहार उवहिं देह	२४-१५	इच्छ निओइउ भन्ते !	२६-६
आवन्ना दीहमद्धाण	६-१२	आहारच्छेओ य दोमु वि	३०-१३	इच्छन्तो हियमप्पणो	१-६
आवरणिज्जाण दुण्ण पि	३३-२०	आहारपच्छक्खाणेण भन्ते ! जीवे किं	२६ सू० ३६	इच्छा उ आगाससमा अणान्तिया	६-४८
आवाए चैय मलोए	२४-१६	आहारमिच्छे मियमेसणिज्ज	३२-४	इच्छाकाम च लोभ च	३५-३
आवायमसलोए	२४-१६	आहारेइ अभिक्खण	१७-१५, १६	इच्छाकारो य छट्ठओ	२६-३
आवासाइ जससिणो	५-२६	आहारेण तव चरे	३६-२५५	इच्छाकारो य सारणे	२६-६
आवी वा जड वा रहस्से	१-१७	आहारोवहिसेज्जाए	२४-११	इच्छामि अणुसासिउ	२०-५६
आस विसज्जइत्ताण	१८-८			इच्छामो नाउ भवओ मगासे	१२-४५
				इच्छियमणोरहे तुरिय	२२-२५

इट्ठा रामकेसवा	२२-२	इममि लोए अदुवा परत्था	४-५	इह कामगुणेहि मुच्छिया	१०-२०
इडिठ वित्त च मित्ते य	१६-८७	इम वक्क उदाहरे	२२-३६	इह कामणियट्ठस्स	७-२६
इड्ढीगारविए एगे	२७-६	इम वयं वेयविओ वयन्ति	१४-८	इह कामाणियट्ठस्स	७-२५
इड्ढी जुई जसो वण्णो	७-२७	इम वयणमन्ववी	६-६; १२-५, १३-४,	इह जीविए राय । असासयम्मि	१३-२१
इड्ढी जुई तस्स वि य प्पभूया	१३-११		१६-६, २५-१०	इह जीविय अणवकखमाणो	१२-४२
इड्ढी वावि तवस्सिणो	२-४४	इम सरीर अणिच्च	१६-१२	इहजीविय अणियमेत्ता	८-१४
इड्ढीसक्कारसम्माण	३५-१८	इमाइ वयणाइमुदाहरित्था	१२-८	इहमेगे उ मन्नन्ति	६-८
इणमुदाहु कयजली	२०-५४, २५-३५	इमा नो छट्ठिया जाई	१३-७	इह लोए निप्पिवासस्स	१६-४४
इत्तिरिया मरणकाले	३०-६	इमा वा सा व केरिसी ?	२३-११	इहागच्छऊ कुमारो	२२-८
इत्तिरिया सावकखा	३०-६	इमाहि महराहि वगूहि	६-५५	इहेव पोसहरओ	६-४२
इत्तो उ तसे तिविहे	३६-१०६	इमा हु अन्ना वि अणाहया निवा	२०-३८	ई	
इत्तो कालविभाग तु	३६-११, ७८, १११,	इमे खलु ते धैरेहि भगवन्तेहि	१६सू० ३	ईसाणम्मि जहन्नेण	३६-२२३
	१२०, १८६, २१७	इमे ते खलु बावीस परीसहा०	२सू० ३	ईसीपम्भारनामा उ	३६-५७
इत्तो जीवविभत्ति	३६-४७	इमेण कमजोगेण	३६-२५०	ईहई नरयाउय	७-४
इत्थीजणस्सारियभाणजोग	३२-१५	इमे य बद्धा फन्दन्ति	१४-४५	उ	
इत्थीण चित्तसि निवेसइत्ता	३२-१४	इमे वि से नत्थि परे वि लोए	२०-४६	उक्कत्तो य अणेगसो	१६-६२
इत्थीपसुविज्जिए	३०-२८	इमे सगे वियाणिज्जा	३५-२	उक्कलियामण्डलिया	३६-११८
इत्थी पुरिससिद्धा य	३६-४६	इमोघम्मो व केरिसो ?	२३-११	उक्कलुद्देहिया तहा	३६-१३७
इत्थी वा पुरिसो वा	३०-२२	इय गेविज्जगा सुरा	३६-१२५	उक्का विज्जू य बोद्धवा	३६-११०
इत्थी विप्पजहे अणगारे	८-१६	इय जे मरन्ति जीवा	३६-२५७, २५८, २५९	उक्कुद्दइ उप्पिडई	२७-५
इत्थीविसयगिद्धे य	७-६	इयरो वि गुणसमिद्धो	२०-६०	उक्कोस जीवो उ सवसे	१०-५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४
इत्थीहि अणभिद्दुए	३५-७	इरिएसणभासाए	१२-२	उक्कोसा सा उ समयमन्महिया	३४-४६, ५०, ५४, ५५
इदगोवगमाईया	३६-१३६	इरियट्ठाए य सजमट्ठाए	२६-३२	उक्कोसा सागरा उ दुण्हइहिया	३४-५२
इन्दासणिसमा घोरा	२०-२१	इरियाए भासाए तहेसणाए	२०-४०	उक्कोसा होइ किण्हाए	३४-४८
इन्दियगामनिगाही	२५-२	इरियाभासेसणादाणे	२४-२	उक्कोसा होइ ठिई	३४-३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९
इन्दियत्ये विवज्जिता	२४-८	इसि पसाएइ सभारियाओ	१२-३०	उक्कोसा होइ पुव्वकोढी उ	३४-४६
इन्दियाण य जुजणे	२४-२४	इसिज्जम्य जीविय वूहइत्ता	२०-४३	उक्कोसिया ठिई होइ	३३-१६
इन्दियाणि उ भिक्खुस्स	३५-५	इसिस्स वेयावडियट्ठयाए	१२-२४	उक्कोसेण उ साहिओ	३६-१६२
इम एयारिस फल	१३-२६	इसीहि चिण्णाइ महायसेहि	२१-४२२	उक्कोसेण ठिई भवे	३६-२१६, २२०, २२४, २४३
इम गिह चित्तघणप्पभूय	१३-१३	इस्सरिय केवल हिच्चा	१८-३५	उक्कोसेण तु साहिया	३६-१८५
इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि	१४-१५	इस्साअमरिसअतवो	३४-२३		
इमं च मे अत्थि पभूयमन्न	१२-३५	इहज्जयन्ते समणो म्हि जाओ	१३-१२		
इमं च मे किच्च इमं अकिच्च	१४-१५	इहं तु कम्माइ पुरेकडाइ	१३-१६		
इमं देह समुदरे	६-१३	इह वोन्दि चइत्ताण	३६-५६		
इमं पट्ठमुदाहरे	५-१	इह सि उत्तमो भंते ।	६-५८		

उक्कोमेण वियाहिया	३३-२२, ३६-११३,	उत्तमग च पीडई	२०-२१	उरगो सुवण्णपामे व	१४-४७
१३२, १४१, १५१, १६० से १६६, १७५,		उत्तम मणहारिणो	२५-१७	उराला य तसा तहा	३६-१०७
१७६, १८४, २००, २०१, २२२, २२३		उत्तमदुगवेसए	११-३२	उल्लघणपल्लघणे	२४-२४
उक्कोसेण मड भवे	५-३	उत्तमट्ठगवेसओ	२५-६	उल्लघणे य चण्डे य	१७-८
उक्कोसोगाहणाए य	३६-५०, ५३	उत्तमघम्मसुई ह्व दुल्लहा	१०-१८	उल्लिओ फालिओ गहिओ	१६-६४
उगगओ खीणससारो	२३-७८	उत्तराड विमोहाइ	५-२६	उल्लो मुक्को य दो छूडा	२५-४०
उगगओ विमलो भाणू	२३-७६	उत्तराओ य आहिया	३३-१६	उवइट्ठे जो परेण सद्धई	२८-१६
उगग तव चरित्ताण	२२-४८	उत्ताणगद्धत्तगसठिया य	३६-६०	उवउत्ते हरिय रिए	२४-८
उगग महव्वय वम्भ	१६-२८	उत्तिट्ठन्ते दिवायरे	११-२४	उवउत्ते य भावओ	२४-७
उगगमुप्पायण पढमे	२४-१२	उदएण सोहि व्हिया विमग्गहा ?	१२-३८	उवएसइ त्ति नायव्वो	२८-१६
उगगा जहा धरिज्जन्ति	३०-२७	उदए व्व तेल्लविन्दू	२८-२२	उवक्खडभोयण माहणाण	१२-११
उच्च अट्ठविह होइ	३३-१४	उदग्गचारित्ततवो महेसी	१३-३५	उवच्चिट्ठे गुण सया	१-२०
उच्च नीय च आहिय	३३-१४	उदग्गे दुप्पहसए	११-२०	उवट्ठिओ सि सामणो	२०-८
उच्चागोए य वण्णव	३-१८	उदहो अक्खओदए	११-३०	उवट्ठिया मे आयरिया	२०-२२
उच्चार पासवण	२४-१५	उदहो सरिनामाण	३३-१६, २१, २३	उवणिज्जई जीवियमप्पमाय	१३-२६
उच्चारममिईमु य	१२-२	उदिण्णवलवाहणे	१८-१	उवभोगे वीरिए तहा	३३-१५
उच्चाराईणि वोसिरे	२४-१८	उद्दायणो पव्वइओ	१८-४७	उवमा जस्स नत्थि उ	३६-६६
उच्चारे ममिई इय	२४-२	उद्देसिय कीयगट्ठ नियाम	२०-४७	उवग्गिमाउवरिमा चैव	३६-२१५
उच्चावयाइ मुणिणो चरन्ति	१२-१५	उद्देसेसु दसाइण ।	३१-१७	उवरिमामज्झिमा तहा	३६-२१४
उच्चावयाहिं सेज्जाहिं	२-२२	उद्धत्तुकामेण समूलजाल	३२-६	उवरिमाहेट्ठिमा चैव	३६-२१४
उच्चोयए महु कक्के य वम्मे	१३-१३	उद्धरित्ता समूलिय	२३-४६	उवल्लेवो होइ भोगेमु	२५-३६
उज्जहिता पलायए	२७-७	उद्धाडया तत्थ वहु कुमारा	१२-१६	उवले सिला य लोणूसे	३६-७३
उज्जाण नन्दणोवम	२०-३	उप्पज्जई भोत्तु तहेव पाउ	१७-२	उववज्जन्ति आमुरे काए	८-१४
उज्जाणमि मणोरमे	२५-३	उप्पायणे रक्खणसन्निओगे	३२-२८, ४१, ५४,	उववन्नो पडमगुम्माओ	१३-१
उज्जाण सपत्तो	२२-२३		६७, ८०, ६३	उववन्नो माणुममि लोगमि	६-१
उट्ठित्ता अन्नमासण	२-२१	‘उफालगदुट्ठवाई’ य	३४-२६	उववूह थिरीकरणे	२८-३१
उड्ढ अहे य तिरिय च	३६-५०	उभओ अस्सिया भवे	२८-६	उवसग्गाभिवारए	२-२१
उड्ढ कप्पेसु चिट्ठन्ति	३-१५	उभओ केसिगोयमा	२३-१४	उवमन्तमोहणिज्जो	६-१
उड्ढ थिर अतुरिय	२६-२४	उभओ नन्दिघोसेण	११-१७	उवसन्ते अविहेइए स भिवखू	१५-१५
उड्ढ पक्कमई दिस	३-१३, १६-८२	उभओ निसण्णा सोहन्ति	२३-१८	उवसन्ते जिइन्दिए	३४-३०-३२
उड्ढपाओ अहोसिरो	१६-४६	उभओ वि तत्थ विहरिंसु	२३-६	उवसन्ते मुणी चरे	१२-५
उड्ढ वद्धो अवन्ववो	१६-५१	उभओ मीससघाण	२३-१०	उवहसन्ति अणारिया	१२-४
उड्ढमुहे निग्गयजीहनेत्ते	१२-२६	उभयस्सन्तरेण वा	१-२५	उवहिपच्चक्खाणेण भन्ते । जीवे किं जणयड ?	२६सू० ३५
उण्हामितत्तो सपत्तो	१६-६०	उम्मत्तो व्व महिं चरे ?	१८-५१	उवासगाण पडिमागु	३१-११
उण्हाहितत्ते मेहावी	२-६	उर मे परिसिचई	२०-२८	उविच्च भोगा पुरिस चयन्ति	१३-३१

उवेइ ठाण विउल्लुत्तम धुव	२०-५२	एएसि सवरे चेव	३३-२५	एगन्तरत्ते रुइरसि फासे	३२-७८
उवेइ दुक्खोहपरपराओ	३२-३१, ४६, ५६, ७२, ८५, ९८	एएहि चउहि ठाणेहि	१८-२३	एगन्तरत्ते रुइरसि भावे	३२-६१
उवेन्ति माणुस जोणि	३-१६, ७-२०	एएहि ओमचरओ	३०-२४	एगन्तरत्ते रुइरसि रुवे	३२-२६
उवेहमाणो उ परिव्वएजा	२१-१५	एएहि कारणेहि	३६-२६६	एगन्तरत्ते रुइरसि सहे	३२-३६
उवेहे न हणे पाणे	२-११	एओवमा कामगुणा विवागे	३२-२०	एगन्तरत्ते रुइरे रसम्मि	३२-६५
उसिणपरियावेण	२-८	एक्कारस अगाइ	२८-२३	एगन्तरमायाम	३६-२५३
उस्सिचणाए तवणाए	३०-५	एक्केक्का णेगहा भवे	३६-१८१	एगन्तसोक्ख समुवेइ मोक्ख	३२-२
उसुयारि त्ति मे सुय	१४-४८	एक्को वि पावाइ विवज्जयन्तो	३२-५	एगन्ते सजय तय	२२-३५
उस्सप्पिणीण जे समया	३४-३३	एक्को सय पच्चणुहोइ दुक्ख	१३-२३	एगप्पा अजिए सत्तू	२३-३८
उत्सूलगसयग्घोओ	६-१८	एक्को हु धम्मो नरदेव ! ताण	१४-४०	एगभूओ अरण्णे वा	१६-७७
उस्मेहो जस्स जो होइ	३६-६४	एग एव चरे लाढे	२-१८	एगयाऽचेलए होइ	२-१३
ऊ		एगओ य पवत्तण	३१-२	एगया आसुर काय	३-३
ऊणाइ घासमेसन्तो	३०-२१	एगओ विरइ कुज्जा	३१-२	एगया खत्तिओ होइ	३-४
ऊणे वाससयाउए	७-१३	एगओ सबसित्ताण	१४-२६	एगया देवलोएसु	३-३
ऊमसियरोमकूवो	२०-५६	एग च अणुसासम्मी	२७-१०	एगराय न हावए	५-२३
ए		एग च पल्लिओवम	३६-२२२	एगविहमणाणत्ता	३६-७७, ८६, १००, ११०, ११६
एए अहम्मे त्ति दुगुच्छमाणो	४-१३	एग जिणेज्ज अप्पाण	६-३४	एगवीसाए सबलेसु	३१-१५
एए कन्दन्ति भो ! खगा	६-१०	एग डसइ पुच्छमि	२७-४	एगामोसा अणेगख्वघुणा	२६-२७
एए खरपुढवीए	३६-७७	एग तु सागरोवम	३६-१६१	एगा य पुव्वकोढीओ	३६-१७५
एए चेव उ भावे	२८-१६	एग विन्धइऽभिकखण	२७-४	एगूणपण्णऽहोरत्ता	३६-१४१
एएण कारणेण	३६-२६२	एग समय जहन्निय	३६-१४	एगेज्ज रसगारवे	२७-६
एएण दुक्खोहपरपरेण	३२-३४, ४७, ६०, ७३, ८६, ९६	एग समय जहन्निया	३६-१३	एगे ओमाणभीरुए थद्वे	२७-१०
एए तिन्नि विसोहए	२४-११	एगकजपवन्ताण	२३-१३, २४, ३०	एगे कूडाय गच्छई	५-५
एए नरिन्ऽवसभा	१८-४६	एगखुरा दुखुरा चेव	३६-१८०	एगे जिए जिया पच	२३-३६
एए परीसहा सव्वे	२-४६	एगगमणमनिवेसणयाए ण भन्ते !	२६सू०२६	एगेण अणेगाइ	२८-२२
एए पाठकरे बुद्धे	२५-३२	एगच्छत्त पसाहिता	१८-४२	एगे तिण्णे दुहत्तर	५-१
एए भद्दा उ पाणिणो	२२-१७	एगत्त च पुहत्त च	२८-१३	एगे सुचिरकोहणे	२७-६
एए य सगे समङ्कमिता	३२-१८	एगत्तेण पुहत्तेण	३६-११	एगोऽज्ज लहई लाह	७-१४
एए विसेममादाय	१८-५१	एगत्तेण सार्इया	३६-६५	एगो उप्पहपट्ठिओ	२७-४
एए मव्वे सुहेसिणो	२२-१६	एगदव्वम्मिसया गुणा	२८-६	एगो एगित्थिए सद्धि	१-२६
एएसि तु विवच्चासे	३०-४	एगन्तमणावाए	३०-२८	एगो चिट्ठेज्ज भत्तट्ठा	१-३३
एएसि वण्णओ चेव	३६-८३, ९१, १०५, ११६, १२५, १३५, १४४, १५४, १६६, १७८, १८७, १९४, २०३, २४७	एगन्तमणुप्पम्मओ	६-१६	एगो पडइ पासेण	२७-५
		एगन्तमहिट्ठिओ भयव	६-४	एगो भजइ समिल	२७-४
		एगन्तरत्ते रुइरमि गन्वे	३२-५२	एगो मूल पि हारित्ता	७-१५

एगो मूलेण आगओ	७-१४	एयमगमणुप्पत्ता	२८-३	एव गुणसमाउत्ता	२५-३३
एत्तोऽणन्तगुण तर्हि	१६-४८	एय मे मसय सव्व	२५-१५	एवं च चिन्तइत्ताण	२०-३३
एत्तो अणन्तगुणिया	१६-७३	एय सिणाण कुसलेहि दिट्ठ	१२-४७	एव चरमाणो खलु	३०-२०, २३
एत्तोऽणन्तगुणे तर्हि	१६-४७	एयजोगममाउत्तो	३४-२२, २४, २६, २८,	एव जिय सपेहाए	७-१६
एत्तो कालविभाग तु	३६-१५८, १७३, १८२		३०, ३२	एव तत्त्यऽहियासए	२-२३
एत्तो पम्हाए परएण	३४-१४	एयमट्ठ निसामित्ता	६-८, ११, १३, १७, १९,	एव तत्त्य विचिन्तए	२६-५०
एत्तो य तओ गुत्तीओ	२४-१६	२३, २५, २७, २९, ३१, ३३, ३७, ३९, ४१, ४३,		एय तव तु दुविह	३०-३७
एत्तो वि अणन्तगुणो	३४-१०, ११, १२, १३,		४५, ४७, ५०, ५२ ।	एव ताय । वियाणह	१४-२३
	१५, १६, १७, १८, १९	एयमट्ठ सपेहाए	६-४	एव तु नवविगप्प	३३-६
एत्तो सकाममरण	५-१७	एयमट्ठ सुणेमि ता	२०-८	एव तु सजयस्सावि	३०-६
एमेव असायस्स वि	३३-७	एयाड अट्ठ ठाणाड	२४-१०	एव तु मसए छिन्ने	२३-८६, २५-३४
एमेव असुहस्स वि	३३-१३	एयाड तीसे वयणाइ सोच्चा	१२-२४	एव ते डडिडमन्तस्स	२०-१०
एमेवऽहाछन्दकुसीलरुत्वे	२०-५०	एयाए सद्धाए दलाह मज्झ	१२-१२	एव ते कमसो बुद्धा	१४-५१
एमेव इत्थीनिलयस्स मज्झे	३२-१३	एयाओ अट्ठ ममिईओ	२४-३	एव ते रामकेसवा	२२-२७
एमेव गन्वम्मि गओ पओस	३२-५६	एयाओ तिन्नि पयडीओ	३३-६	एव थुणित्ताण स रायसीहो	२०-५८
एमेए जाया पयहन्ति भोए	१४-३४	एयाओ दुगईओ	३६-२५६	एव दव्वेण ऊ भवे	३०-१५
एमेव जाया । मरीरसि सत्ता	१४-१८	एयाओ पच समिईओ	२४-१६, २६	एव दुपचसजुत्ता	२६-७
एमेव नऽन्तह त्ति य	२८-१८	एयाओ मूलपयडीओ	३३-१६	एव दुस्सीलपडिणीए	१-४
एमेव फासम्मि गओ पओस	३२-८५	एयाणि वि न तायन्ति	५-२१	एव धम्म अकाऊणं	१६-१६
एमेव भावम्मि गओ पओस	३२-६८	एया पवयणमाया	२४-२७	एव धम्म चरिस्सामि	१६-७७
एमेव मोहाययण खु तण्ह	३२-६	एयारिसीए इड्डीए	२२-१३	एव धम्म पि काऊण	१६-२१
एमेव रसम्मि गओ पओस	३२-७२	एयारिसे पचकुसीलसवुडे	१७-२०	एव धम्म विट्ठकम्म	५-१५
एमेव रूवम्मि गओ पओस	३२-३३	एयाहि तिहि वि जीवो	३४-५६	एव धम्मे वियाणह	७-१५
एमेव सद्धम्मि गओ पओस	३२-४६	एरिसे सम्पयगम्मि	२०-१५	एव नच्चा न मेवन्ति	२-३५
एय अकाममरण	५-१७	एव अणिस्सरो त पि	२२-४५	एव नाणेण चरणेण	१६-६४
एय चयरित्तकर	२८-३३	एव अदत्ताणि समाययन्तो	३२-३१, ४४, ५७,	एव नीय पि आहिय	३३-१४
एय जीवम्स लक्खण	२८-११		७०, ८३, ९६	एव पया पेच्च इह च लोए	४-३
एय ढज्झइ मन्दिर	६-१२	एव अभित्थुणन्तो	६-५६	एव पि विहरओ मे	२-४३
एय तव तु दुविह	३०-३७	एव अलित्तो कामेहि	२५-२६	एव पुत्ता । जहासुह	१६-८४
एय दण्डेण फलेण हन्ता	१२-१८	एव आयरिएहि अक्खाय	८-१३	एव पेहेज्ज मजए	२-२७
एय धम्महिय नच्चा	२-१३	एव करन्ति सवुद्धा	१६-६६	एव वाले अहम्मिट्ठे	७-४
एय पचविह नाण	२८-५	एव करेन्ति सवुद्धा	६-६२, २२-४६	एव भवससारे	१०-१५
एय पत्थ महाराय ।	१४-४८	एव कालेण ऊ भवे	३०-२१	एव मुत्ताण भोगाण	१६-१७
एय परिन्ताय चरन्ति दन्ता	१२-४१	एव खु तस्स सामण्ण	२-३३	एव मणुयाण जीविय	१०-१, २
एय पुण्णपय मोच्चा	१८-३४	एव खेत्तेण ऊ भवे	३०-१८	एव माणुस्सगा कामा	७-१२, २३

एव मृणी गोयरिय पविट्ठे	१६-८३	एसणासमिओ लज्जू	६-१६	ओहिनाण तइय	३३-४
एव मे अच्छिवेयणा	२०-२०	एस घम्मे धुवे निमए	१६-१७	ओहिनाणसुए बुद्धे	२३-३
एव लगन्ति दुम्मेहा	२५-४१	एस मग्गे त्ति पन्नत्तो	२८-२	ओहीनाण तइय	२८-४
एव लोए पलित्तम्मि	१६-२३	एस मग्गे हि उत्तामे	२३-६३	ओहेण ठिई उ वण्णिआ होइ	३४-४०
एव वय कामगुणेषु गिद्धा	१३-३०	एस लोए वियाहिए	३६-२	ओहोवहावग्गहिय	२४-१३
एव विणयजुत्तस्स	१-२३	एस लागो त्ति पन्नत्तो	२८-७	क	
एव वियाणाहि जणे पमत्ते	४-१	एस से परमो जओ	६-३४		
एव वियारे अमियप्पयारे	३२-१०४	एसा अजीवविभत्ती	३६-४७	कओ विज्जाणुसासण ?	६-१०
एवविहे कामगुणेषु सत्तो	३२-१०३	एसा खलु लेसाण	३४-४०	कखे गुणे जाव सरोरभेओ	४-१३
एव वुत्तो नरिन्दो सो	२०-१३	एसा तिरियनराण	३४-४७	कच्चि नाभिसमेमज्हु	२०-६
एव समुट्ठिओ भिक्खू	१६-८२	एसा दसगा साहूण	२६-४	कस दूस च वाहण	६-४६
एव ससकप्पविकप्पणासु	३२-१०७	एसा नेरइयाण	३४-४४	कक्खडा मठया चैव	३६-१६
एव सिक्खासमावन्ने	५-२४	एसा मज्झ अणाहया	२०-२३, २४, २५, २६, २७, ३०	कट्टु सवच्छरे दुवे	३६-२५३
एव सील चइत्ताण	१-५	एसा सामायारी	२६-५२	कट्टु सवच्छरे मुणी	३६-२५५
एव से विजयघोसे	२५-४२	एसे व घम्मो विसओववन्तो	२०-४४	कड कडे त्ति भासेज्जा	१-११
एव से उदाहु अणुत्तरनाणी	६-१७	एसो अग्निमन्तरो तवो	३०-३०	कड लद्धूण भक्खए	६-१४
एव सो अम्मापियरो	१६-८६	एसो बाहिरगतवो	३०-२६	कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि	४-३, १३-१०
एव हवइ वहुस्सुए	११-१६ से ३०	एसोवमा सासयवाइयाण	४-६	कड्ढोकड्ढाहिं दुक्करं	१६-५२
एवमहीणव भिक्खु	७-२२	एसो हु सो उगतवो महप्पा	१२-२२	कणकुण्डग चइत्ताण	१-५
एवमग्गमन्तरो तवो	२८-३४, ३०-७	एहा य ते कयरा सन्ति ? भिक्खू !	१२-४३	कण्ठम्मि घेतूण खलेज्ज जो ण ?	१२-१८
एवमस्तासि अप्पाण	२-४१	एहि ता भुजिमो भोए	२२-३८	कण्णू विहिंसा अजया गहिन्ति	४-१
एवमादाय मेहावी	२-१७	ओ		कण्हे य वज्जकन्दे य	३६-६८
एवमावट्टजोणीसु	३-५			कत्तारमेव अणुजाइं कम्म	१३-२३
एवमेए दुहा पुणो	३६-७०, ८४, ६२, १०८, ११७	ओइण्णो उत्तमाओ सोयाओ	२२-२३	कत्तो सुह होज्ज कयाइ किंचि ?	३२-३२, ४५, ५८, ७१, ८४, ६७
एवमेय जहाफुड	१६-४४, ७६	ओइण्णो पावकम्मणा	१६-५५	कत्थ गन्तूण सिज्जमई ?	३६-५५
एवमेयाइ कम्माइ	३३-३	ओइण्णो सि प्ह महालय	१०-३२	कन्तार अइवत्तई	२७-२
एवमेव अणेगओ	१६-८२	ओभासई सूरिए वन्तलिक्वे	२१-२३	कन्दन्तो कन्दुकुम्मीसु	१६-४६
एवमेव वय मूढा	१४-४३	ओमचेलए पमुपिसायभूए	१२-६	कन्दप्प भावण कुणइ	३६-२६३
एवमेव वियाहिए	३६-६	ओमचेलगा पमुपिसायभूया	१२-७	कन्दप्पकोक्कुइयाइ तह	३६-२६३
एवारिएहिं अक्खाय	८-८	ओमासणाण दमिइन्दियाण	३२-१२	कन्दप्पमाभिओग	३६-२५६
एविन्दियग्गे वि पगामभोइणो	३२-११	ओमोयरिय पचहा	३०-१४	कन्दली य कुडुबए	३६-६७
एविन्दियत्था य मणस्स अत्था	३२-१००	ओयण जवस देज्जा	७-१	कन्दे सूरणए तहा	३६-६८
एवुगदन्ते वि महातवोघणे	२०-५३	ओराला तसा जे उ	३६-१२६	कप्पइ उ एवमाई	३०-१८
एस अग्गी य वाऊ य	६-१२	ओरुज्झमाणा परिरविल्लयन्ता	१४-२०	कप्प न इच्छिज्ज सहायलिच्छू	३२-१०४
		ओहिजलिया जलकारी य	३६-१४८	कप्पाईया उ जे देवा	३६-२१२

कप्याईया तहेव य	३६-२०६	कयरेण होमेण हृणासि जोइ ?	१२-४३	कह पटियरमी बुद्धे ?	१८-२१
कप्यासट्ठमिजा य	३६-१३८	कयरे ते खलु बावीम परीसहा .	२६-०२	कह पार गमिस्ससि ?	२३-७०
कप्पिओ फालिओ छिन्नो	१६-६२	कयरे तुम डय अदसणिज्जे	१२-७	कह विज्झाविया तुमे ?	२३-५०
कप्पो मज्झिमगाण तु	२३-२७	कयविक्रओ महादोसो	३५-१५	कह विणीए त्ति बुच्चसि ?	१८-२१
कप्पोवगा वारसहा	३६-२१०	कयविक्रयम्मि वट्टन्तो	३५-१४	कह विण्णच्चओ न ते ?	२३-२४ ३०
कप्पोवगा य बोद्धव्वा	३६-२०६	करकण्डू कलिगेसु	१८-४५	कह मुजट्ठ कुमला वयन्ति ?	१०-४०
कमेण अच्चन्तसुही भवन्ति	३२-१११	करणमच्चेण भन्ते। जीवे किं	२६सू०५२	कहण्णु जिच्चमेलिक्व	७-२२
कमेण मोमणा भवे	३०-५	करवत्तकरक्याईहि	१६-५१	कहिं पटिहया मिद्धा ?	३६-५५
कम्पिल्लम्मि य नयरे	१३-३	करेज मिद्धान सयव	२६-५१	कहिं वोन्दि चडत्ताण ?	३६-५५
कम्पिल्लुज्जाणकेसरे	१८-३	करेणुमगावहिं व नागे	३२-८६	कहिं मन्नेरिस ख्व	१६-६
कम्पिल्ले नयरे राया	१८-१	करेन्ति मिउडिं मुहे	२७-१३	कहिंसि ण्हाओ व रय जहामि ?	१०-४५
कम्पिल्ले मभूओ	१३-२	कल अग्वइ सोलसि	६-४४	कहिं मिद्धा पडट्ठया ?	३६-५५
कम्म च जाईमरणस्म मूल	३२-७	कलम्बवालुयाए य	१६-५०	कहेन्ति ते एकमेवकस्स	१३-३
कम्म च मोहप्पभव वयन्ति	३२-७	कलहडमरवज्जए	११-१३	का	
कम्म तु कसायज	३३-११	कल्लाण अदुव पावग	२-२३	काउलेस तु परिणमे	३४-२६
कम्म नोकसायज	३३-११	कल्लाणमणुसासन्तो	१-३८	काउलेमा उ वण्णओ	३४-६
कम्म एहा सजमजोगसन्ती	१२-४४	कविलेण च विमुद्धपन्तेण	८-२०	काउस्सग्ग तओ कुजा	२६-३८, ४१, ४६, ४८
कम्मप्पवीओ अवसो पयाइ	१३-२४	कम व दट्ठुमाडण्णे	१-१२	काउस्सग्ग तु पारित्ता	२६-५०
कम्मयगेहिं सम्मूढा	३-६	कसायपच्चक्खाणेण भन्ते। जीवे	२६सू०३७	काउमगेण भन्ते। जीवे	
कम्सच्चा ह पुणिणो	७-२०	'कमायमोहणिज्ज' तु	३३-१०	किं जणयड ?	२६सू०१३
कम्मस्म ते तस्म उ वेयकाले	४-४	कसाया अणिगणो वुत्ता	२३-५३	काऊए ठिई जहन्निया होड	३४-४१
कम्माण तु पहाणाए	३-७	कसाया इन्दियाणि य	२३-३८	काऊण य पयाहिण	२०-७, ५६
कम्माणि दलवन्ति ह	२५-२८	कसिण पि जो डम लोय	८-१६	काएण फामेज परीमहाड	२१-२२
कम्माणुप्पेहि अप्पणो	५-११	कस्स अट्ठा "इमे पाणा"	२२-१६	काए व आसा इहमागओ सि	१२-७
कम्माणानफला कडा	२-४०	कस्मट्ठाए व माहणे ?	१८-२१	काणणुज्जाणसोहिं	१६-१
कम्मा नाणाविहा कट्टु	३-२	कस्स हेउ पुराकाउ	७-२४	का ते मुया ? किं व ते कारिसग्ग	१२-४३
कम्मा नियाणप्पगडा	१३-८	कह अणाहो भवइ ?	२०-१५	काम तु देवीहि विभूसियहिं	३२-१६
कम्मा मए पुरा कडा	१३-६	कह चरे ? भिक्खु ! वय जयामो ?	१२-४०	कामगिद्धे जहा वाले	५-४
कम्मुणा उववायए	१-४३	कह त विहरसी ? मुणी !	२३-४०	कामभोगरसन्नुणा	१६-२८
कम्मुणा तेण सजुत्तो	१८-१७	कहं तेण न हीरसि ?	२३-५५	कामभोगाणुराएण	५-७
कम्मुणा वम्भणो होइ	२५-३१	कह ते निजिया तुमे ?	२३-३५	कामभोगा य दुज्या	१६-१३
कम्मुणा होइ खत्तिओ	२५-३१	कह धीरे अहेऊहिं	१८-५३	कामभोगे परिच्चज	१८-४८
कयकोउयमगलो	२२-६	कह धीरो अहेऊहिं	१८-५१	कामभोगे य दुच्चए	१४-४६
कयरे आगच्छइ दित्थे	१२-६	कह नाहो न विज्जई ?	२०-१०	कामभोगेसु गिद्धेण	१३-२८
कयरे खलु ते घेरेहिं भगवन्तेहिं	१६सू०२	कहं नाहो भविस्ससि ?	२०-१२	कामभोगेसु मुच्छिओ	१३-२६

कामभोगेसु मुच्छिद्या	१४-४३	काल तु पडिलेहए	२६-४५	किं नु चित्ते वि से तहा ?	१३-६
कामरागविवड्ढणिं	१६-२	काल तु पडिलेहिया	२६-४४	किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ	१०-३४
कामरागविवड्ढणे	३५-५	काल सखाईय	१०-५, ६, ७, ८	किं मज्झ दुट्ठसीसेहिं	२७-१५
कामरुवविठव्विणो	३-१५	काल सखिज्जसन्निय	१०-१०, ११, १२	किं माहणा ! जोइसमारभन्ता	१२-३८
कामरुवी भविस्ससि	६-५	काल सपडिलेहए	२६-४२	किं रज्जम्मि पसज्जसि ?	१८-१२
कामा आसीविमोवमा	६-५३	कालकखी परिव्वए	६-१४	किं हिंसाए पसज्जसि ?	१८-११
कामाणुगिद्विप्पभव खु दुक्ख	३२-१६	कालधम्मे उव्वट्ठिए	३५-२०	किञ्चाइ कुव्वई सया	१-४४
कामे पत्येमाणा	६-५३	कालपडिलेहणयाए ण		किणन्तो कइओ होइ	३५-१४
कामे ससारवड्ढणे	१४-४७	भन्ते ! जीवे किं...	२६सू०१६	किण्णु भो ! अज्ज मिहिलाए	६-७
काय पवत्तमाण तु	२४-२५	कालमणन्तदुरन्त	१०-६	किण्हलेस नु परिणमे	३४-२२
कायकिलेस तमाहिय	३०-२७	कालमणन्तमुक्कोस	३६-१८६	किण्हलेसा उ वण्णओ	३४-४
कायकिलेसो सलीणया य	३०-८	कालम्मि तम्मिसहरा भवति	१३-२२	किण्हाए ठिई जहन्निया होई	३४-४८
कायगुत्तयाए ण भन्ते ! जीवे किं . . २६सू०५६		कालिया जे अणागया	५-६	किण्हा नीला काऊ	३४-५६
कायगुत्ती य अट्ठमा	२४-२	कालीपव्वगसकासे	२-३	किण्हा नीला य काऊ य	३४-३
कायगुत्तो जिइन्दिओ	१२-३	काले काल समायरे	१-३१	किण्हा नीला य रुहिरा य	३६-७२
कायचिट्ठ पई भवे	३०-१२	कालेण काल विहरेज्ज रट्ठे	२१-१४	किण्हा नीला य लोहिया	३६-१६
कायट्ठिई आऊण	३६-८६	कालेण निक्खमे भिक्खू	१-३१	किव्विसिय भावण कुणई	३६-२६५
कायट्ठिई जलयराण	३६-१७६	कालेण य अहिजित्ता	१-१०	किव्विसिय मोहमासुरत्त च	३६-२५६
कायट्ठिई तेऊण	३६-११४	कालेण य पडिक्कमे	१-३१	किमज्ज जन्नाण लहित्त्य लाह ?	१२-१७
कायट्ठिई थलयराण	३६-१८६	काले य दिवसे वुत्ते	२४-५	किमिणो सोमगला चैव	३६-१२८
कायट्ठिई मणुयाण	३६-२०२	काले विगराले फोक्कतासे	१२-६	किमेगराय करिस्सइ	२-२३
कायट्ठिई वाऊणं	३६-१२३	कालो पुगलजन्तवो	२८-७, ८	किरिय अकिरिय विणय	१८-३३
कायठिई खह्यराण	३६-१६३	कालोमाण मुण्येव्वो	३०-२०	किरिय च रोयए धीरे	१८-२३
कायठिई पणगाण	३६-१०३	कालोवणीए सरीरस्स भेए	४-६	किरियासखेवधम्मरुई	२८-१६
कायठिई पुढवीण	३६-८१	का वा अमोहा वुत्ता ?	१४-२२	किरियासु भूयगामेसु	३१-१२
कायव्व अगिलायओ	२६-१०	कावोया जा इमा वित्ती	१६-३३	किलिन्नाए मेहावी	२-३६
कायसमाहारणयाए ण भन्ते ! जीवे . . २६सू०५६		कासवेण पवेइया	२-१	किसे धमणिसत्तए	२-३
कायसा वयसा मत्ते	५-१०	कासवेण पवेइया	२-४६		
कायस्स फास गहण वयन्ति	३२-७४, ७५	कासि नियाण तु हत्थियणपुरम्मि	१३-१	की	
कायस्स विउस्सगो	३०-३६	किं कायव्व मए इह ?	२६-६	कीलए सह इत्थिहिं	१६-३
कारणमि समुट्ठिए	२६-३१	किं तव पडिवज्जामि	२६-५०	कीलन्तज्जे नरा राय !	१८-१६
कारुण्यदीणे हिरिमे वइस्से	३२-१०३	किं ते जुज्झणे वज्झओ	६-३५	कीवेण समणत्तण	१६-४०
कालओ जाव रीएजा	२४-७	किं नाम काहामि मुएण भन्ते !	१७-२	कीस णं नावपेक्खसि ?	६-१२
कालओ भावओ तहा	२४-६, ३६-३	किं नाम होज्ज त कम्मय	८-१	कुइय रुइय गीय	१६-५, १२
काल अणन्तमुक्कोस	३६-१६३	किं नामे ? किं गोत्ते ?	१८-२१	कुजरे सट्ठिहायणे	११-१८

कुक्कुटे सिंगिरीडी य	३६-१४७	के ते जोई ? के व ते जोडठाणे ?	१२-४३	कोह च माण च तहेव माय	३२-१०२
कुचफणगपसाहिए	२२-३०	के ते हरए ? के य ते सन्तितित्ये ?	१२-४५	कोहविजएण भन्ते । जीवे	
कुजा दुक्खविमोक्खण	२६-२१	केरिसो वा इमो धम्मो ?	२३-११	किं जणयड ?	२६सू०६८
कुट्टिओ फालिओ छिन्नो	१६-६६	केवल वोहि वुज्झिया	३-१६	कोहा वा जड वा हासा	२५-२३
कुडुम्भसार विउलुत्तम त	१४-३७	केस सपडिवज्जई	५-७	कोहे माणे य मायाए	२४-६
कुणइ पमाणि पमाय	२६-२७	केसलोओ य दारुणो	१६-३३	कोहो य माणो य वहो य जेसि	१२-१४
कुतित्थिनिपेवए जणे	१०-१८	केसा पण्डुरया हवन्ति ते	१०-२१से२६	ख	
कुद्वे कुमारे परिनिव्वेड	१२-२०	केसिमेव वुवत्त तु	२३-४२,४७,५२,६२,६७, ७२,७७,८२	खजणजणनयणनिभा	३४-४
कुद्वे गच्छइ पडिप्पह	२७-६	केसिमेव वुवाण तु	२३-३१	खत्ति सेविज्ज पण्डिए	१-६
कुद्वे तेएण अणगारे	१८-१०	केसीकुमारसमणे	२३-२,६,१६,१८	खज्जूरमुद्दियरमो	३४-१५
कुन्युपिवील्लिउड्डा	३६-१३७	केसीगोयमओ निच्च	२३-८८	खड्डुया मे चवेडा मे	१-३८
कुन्यू-नाम नराहिवो	१८-३६	केसी गोयममव्ववी	२३-२१,२२,३७,४२,४७, ५२,५७,६२,६७,७२,७७,८२	खण पि न रमामइह	१६-१४
कुप्पवयणपासण्डी	२३-६३	केसी घोरपरक्कमे	२३-८६	खण पि मे महाराय ।	२०-३०
कुप्पहा वहवो लोए	२३-६०	को		खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा	१४-१३
कुमारगा ते पसमिक्ख वक्क	१४-११	कोड पोमेज एलय	७-१	खण्डाड सोल्लगाणि य	१६-६६
कुमारेहि अय पिव	१६-६७	कोइलच्छदसन्निभा	३४-६	खत्तिए परिभासइ	१८-२०
कुमुय सारइय व पाणिय	१०-२८	को करिस्सइ उज्जोय	२३-७५	खत्तियगणउगगरायपुत्ता	१५-६
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा	२०-५०	को जाणड परे लोए	५-६	खन्ति निउणपागार	६-२०
कुलेसु दग्गेसु य ते पसूया	१४-२	कोट्टग नाम उज्जाण	२३-८	खन्तिक्खमे मजयवम्भयारी	२१-१३
कुस च जवू तणकट्ठमर्गि	१२-३६	कोट्ठागारे मुरक्खिए	११-२६	खन्तिसोहिकर पय	१-२६
कुसगमेत्ता इमे काभा	७-२४	कोडीए वि न निट्ठिय	८-१७	खन्तीए ण भन्ते । जीवे कि	
कुसगे जह ओसविन्दुए	१०-२	कोडीसहियमायाम	३६-२५५	जणयड ?	२६-४७
कुसगेण तु भुजए	६-४४	को ण ताहे तिगिच्छई ?	१६-७८	खन्तीए मुत्तीए	२२-२६
केसचीरेण न तावसो	२५-२६	को णाम ते अणुमन्नेज्ज एय	१४-१२	खन्तो दन्तो निरारम्भो	२०-३२,३४
कुसील्लिंग इह धारइत्ता	२०-४३	खोलाहलगभूय	६-५	खन्वा य खन्ददेसा य	३६-१०
कुहाडफरसुमाईहि	१६-६६	कोलाहलगसकुला	६-७	खन्वा य परमाणुणो	३६-११
कुहगा य तहेव य	३६-६८	को वा से ओसह देई ?	१६-७६	खमावणयाए ण भन्ते जीवे किं	२६सू०१८
कुहेडविजासवदारजीवी	२०-४५	को वा से पुच्छई सुह ?	१६-७६	खरा छत्तोसईविहा	३६-७२
कू		कोस वड्ढावइत्ताण	६-४६	खलुका जारिसा जोजा	२७-८
कूवन्तो कोलसुणएहि	१६-५४	कोसम्बी नाम नयरी	२०-१८	खलुके जो उ जोएड	२७-३
के		को से भत्त च "पाण च"	१६-७६	खलुकेहि समागओ	२७-१५
के एत्थ खत्ता उवजोइया वा	१२-१८	कोसो उवरिमो भवे	३६-६२	खवणे य जए वुहे	३३-२५
केई चुया एगविमाणवासी	१४-१	कोह असच्च कुव्वेज्जा	१-१४	खविता पुव्वकम्माइ	२५-४३
केण अद्भाह्वो लोगो ?	१४-२२			खवित्तु कम्म गइमुत्तम गया	११-३१
केण वा परिवारिओ ?	१४-२२			खवेइ तवसा भिक्खू	३०-१

खवेड नाणावरण खणेण	३२-१०८	खेम सिवमणावाह	२३-८०	गन्धओ रसओ चेव	३६-३४ से ४६
खवेत्ता पुव्वकम्माइ	२८-३६	खेमेण आगए चम्प	२१-५	गन्धओ रसफासओ	३६-८३, ९१, १०५, ११६
खहयरा य वोद्धवा	३६-१७१	खेल सिघाणजल्लिय	२४-१५	१२५, १३५, १४४, १५४, १६६, १७८, १८७,	१९४, २०३, २४७
खा		खेल्लन्ति जहा व दासेहि	८-१८		
खाइत्ता पाणिय पाउ	१६-८१	खेविय पासवद्धेण	१६-५२	गन्धमल्लविलेवण	२०-२६
खाइमसाइम परेसि लद्धु	१५-१२			गन्धवासाण पिस्समाणाण	३४-१७
खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे	१४-१	ग		गन्धस्स घाण गहण वयन्ति	३२-४६
खाणी अणत्याण उ कामभोगा	१४-१३	गइलक्खणो उ घम्मो	२८-६	गन्धाणुगासाणुगए य जीवे	३२-५३
खामेमि ते महाभाग ।	२०-५६	गई तत्थ न विज्जई	२३-६६	गन्धाणुरत्तस्स नरस्स एव	३२-५८
खाविओ मि समसाइ	१६-६६	गइप्पहाण च तिलोयविस्सुय	१६-६७	गन्धाणुवाएण परिगमाहेण	३२-५४
खि		गई सरणमुत्तम	२३-६८	गन्धारेसु य नग्गई	१८-४५
खिप्प न सक्केइ विवेगमेउ	४-१०	गठिमेए य तक्करे	६-२८	गन्धे अतित्तस्स परिगहे य	३२-५६
खिप्प निक्खमसू दिया	२५-३८	गडवच्छासुअणेगचित्तासु	८-१८	गन्धे अतित्ते य परिगहे य	३२-५५
खिप्प मयविबड्ढण	१६-७	गच्छई उ परं भव	१८-१७	गन्धे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो	३२-५७
खिप्प सपणामए	२३-१७	गच्छई भिगचारिय	१६-८१	गन्धे विरत्तो मणुओ विसोगो	३२-६०
खिप्प से सव्वससारा	३१-२१	गच्छ क्खलाहि किमिह ठिओसि ?	१२-७	गन्धेसु जो गिद्धिमुवेइ तिब्ब	३२-५०
खिप्प हवइ सुचोइए	१-४४	गच्छन्ति अवसा तम	७-१०	गब्भवक्कन्तिया जे उ	३६-१६६
खिप्पमागम्म सो तहिं	१८-६	गच्छन्तो सो दुही होई	१६-१८, १९	गब्भवक्कन्तिया तहा	३६-१७०, १९५
खीरदहिसप्पिमाई	३०-२६	गच्छन्तो सो सुही होइ	१६-२०, २१	गमणे आवस्सिय कुज्जा	२६-५
खीरपूरसमपभा	३४-६	गच्छ पुत्त । जहासुह	१६-८५	गम्भीरे सुसमाहिण	२७-१७
खीररसो खण्डसक्कररसो वा	३४-१५	गच्छसि मग्ग विसोहिया	१०-३२	गयण चउग्गागसावसेसमि	२६-२०
खीरे घय तेल्ल महातिलेसु	१४-१८	गच्छामि राय । आमन्तिओ सि	१३-३३	गयमाइ सीहमाइणो	३६-१८०
खु		गच्छे जक्खसलोगय	५-२४	गयासभग्ग गत्तेहिं	१६-६१
खुड्डेहिं सह ससग्गि	१-६	गण्ठियसत्ताईय	३३-१७	गरह नाभिगच्छई	१-४२
खुद्दो साहसिओ नरो	३४-२१, २४	गण्डीमयसणप्पया	३६-१८०	गरहणयाए ण भन्ते । जीवे किं...	२६५०८
खुरघाराहिं विवाडओ	१६-५६	गतभूसणमिट्ठ च	१६-१३	गख्या लहुया तहा	३६-१६
खुरेहिं तिखवारेहिं	१६-६२	गद्भालिस्स भगवओ	१८-१६	गलिगद्धे चइत्ताण	२७-१६
खे		गद्भाली ममायरिया	१८-२२	गलियस्स व वाहए	१-३७
खेडे कव्वडदोणमुह	३०-१६	गन्तव्वमवसस्स ते	१८-१२	गलेहिं मगरजालेहिं	१६-६४
खेत्त गिह घणघन्न च सव्व	१३-२४	गन्तव्वमवसस्स मे	१६-१६	गवलरिट्ठग सन्निभा	३४-४
खेत्त वत्थु हिरण्ण च	३-१७, १६-१६	गन्धओ जे भवे दुग्गी	३६-२८	गवास मणिकुडल	६-५
खेत्ताणि अम्ह विइयाणि लोए	१२-१३	गन्धओ जे भवे सुग्गी	३६-२७	गवेसणाए गहणे य	२४-११
खेम च सिवं अणुत्तर	१०-३५	गन्धओ परिणया जे उ	३६-१७	गहा तारागणा तहा	३६-२०८
खेमं सिव अणावाह	२३-८३	गन्धओ फासओ चेव	३६-२६ से ३३	गहिओ लग्गो वद्धो य	१६-६५

गा		गुणाण तु महाभरो	१६-३५	गोयमो इणमव्ववी	२३-२१, २५,
गाढा य विवाग कम्मुणो	१०-४	गुणाण तु सहस्साइ	१६-२४	३१, ३७, ४२, ४७, ५२, ५७, ६२, ६७,	
गाणगणिए दुव्वमू	१७ १७	गुणाणमासओ दव्व	२८-६	७२, ७७, ८२	
गामगाए नगरे व सजए	१०-३६	गुणाहिय वा गुणओ सम वा	३२ ५	गोयमो कालगच्छवी	२२-५
गामाणुगाम रीयन्त	२-१४	गुणुत्तरवरो मुणी	१२-१	गोयरगपविट्ठस्स	२-२६
गामाणुगाम रीयन्ते	२३-३, ७, २५-२	गुत्तो नियत्तणे वुत्ता	२४-२६	गोलया मट्ठियामया	२५-४०
गामे अणियओ चरे	६-१६	गुत्तीहि गुत्तस्स जिइन्दियस्स	१२-१७	गोवालो भण्डवालो वा	२२-४५
गाम नगरे तह रायहाणि	३०-१६	गुरुओ लोहभारो व्व	१६-३५	गोहाई अहिमाई य	३६-१८१
गामे वा नगरे वावि	२-१८	गुरु वन्दित्तु सज्जाय	१६-२१	घ	
गाय नो परिसिचेज्जा	२-६	गुरुपरिभावए निच्च	१७-१०	घणगुजा सुद्धवाया य	३६-११८
गारत्था नजमुत्तरा	५-२०	गुरुमत्तिभावमुत्सुसा	३०-३२	घणो य तह होइ वगो य	३०-१०
गारत्येहि य सव्वेहि	५-२०	गुत्ताहम्मियमुत्सुसणयाए ण भन्ते ।	२६ सू०५	घयसित्त व्व पावए	३-१२
गारवेमु कमाएमु	१६-६१	गुरुणमणुववायकारए	१-३	घरेसु वा एवमित्तिय खेत	३०-१८
गाहगणीए महिसे व ऽरन्ते	३२-७६	गुरुणमुववायकारए	१-२	घा	
गाहाणुगोया नरमघमज्जे	१३-१२	गू		घाणस्स गन्ध गहण वयन्ति	३२-४८, ४९
गाहा य मगरा तहा	३६-१७२	गूढा सज्जायतवसा	२५-८	घाणिन्दियनिगहेण भन्ते । जीवे०	२६सू०६५
गाहामोलनएहि	३१-१३	गे		घि	
गि		गेण्हुणा अवि दुक्कर	१६-२७	घिसु वा परियावेण	२-८, ३६
गिज्झ वारि जलुत्तम	२३-५१	गेदो पओमे य सटे	३४-२३	घो	
गिण्टन्नो निविज्जतो य	२४-१३	गेविज्जाणुत्तरा चेव	३६-२१२	घोर घोरपरक्कमा	१४-५०
गिदोवमे उ नच्चाण	१४-४७	गेविज्जा णवविहा तहि	३६-२१२	घोरव्वओ घोरपरक्कमो य	१२-२३, २७
गिदो सि आरम्भपरिगहेमु	१३-३३	गो		घोराओ अइदुस्सहा	१६-७२
गिरि रेवयय जन्ती	२२-३३	गो		घोरा मुहुत्ता अवल सरीर	४-६
गिरि नहेहि यणह	१२-२६	गोच्छगलडयगुलिओ	२६-२३	घोरासम चइत्ताण	६-४२
गिलाणो परित्ठप्पई	५-११	गोजिव्भाए व सागपत्ताण	३४-१८	घोरे ससारसागरे	२५-३८
गिहसि न रइ लमे	१४-२१	गोपुरट्टालगाणि च	६-१८	च	
गिहकम्मसमारम्भे	३५-८	गोमुत्तिपयगवीहिया चेव	३०-१६	चइऊण गेह वइदेही	६-६१
गिहत्तराण अणेगाओ	२३ १६	गोमेज्जए य रुयगे	३६-७५	[चइऊण गेह वइदेही]	१८-४४
गिहवास परिच्चज्ज	३५-२	गोय कम्म दुविह	३३-१४	चइऊण देवलोगाओ	६-१
गिहवासे वि गुव्वए	५-२४	गोयम इणमव्ववी	२३-२२	चइऊण बालभाव	७-३०
गिहिणा जे पव्वइएण दिट्ठा	१५-१०	गोयम तु महायस	२३-८६	चइऊणमासण धीरो	१-२१
गिहिनिसेज्ज च वाहेइ	१७-१६	गोयम दिस्समागय	२३-१६	चइत्ता उत्तमे भोए	१८-४१
गिहिल्लिगे तहेव य	३६-४६	गोयमस्स निसेज्जाए	२३-१७	चइत्ताण इम देह	१६-१६
गु		गोयमे पडिरुवन्तू	२३-१५	चइत्ताण मुणी चरे	१८-४४
गुणवन्ताण ताइण	२३-१०	गोयमे य महायमे	२३-६, १८	चइत्ता भारह वास	१८-३६, ३८, ४१

चइत्ता विउल रज्ज	१४-४६	चउहा ते पकित्तिया	३६-१२६	चरित्त चेव निच्छए	२३-३३
चइत्तु देह मलपकपुव्वय	१-४८	चक्ककुस लक्खणे मुणिवरस्स	६-६०	चरित्तमि तवमि य	२६-४७
चइत्तु भोगाइ असासयाइ	१३-२०	चक्कवट्टी नराहिओ	१८-४१	चरित्तमायारगुणन्निए तथो	२०-५२
चउकारणपरिमुद्ध	२४-४	चक्कवट्टी महिड्डिओ	११-२२	चरित्तमोहण कम्म	३३-१०
चउक्कतियचच्चरे	१६-४	चक्कवट्टी महिड्डिओ	१८-३६, ३७, ३८	चरित्तम्मि तहेव य	२६-३६
चउक्कारणसजुत्त	२८-१	चक्कवट्टी महिड्डिओ	१३-४	चरित्तसम्पन्नयाए ण भन्ते जीवे किं	२६सू०६२
चउण्ह पि उ जत्तिओ भवे कालो	३०-२०	चक्खिन्दियनिगहेण भन्ते जीवे०	२६ सू० ६४	चरित्ता धम्ममारिय	१८-२५
चउत्थम्मि जहन्नेण	३६-२३७	चक्खुगिज्झ विवज्जए	१६-४	चरित्तेण तहेव य	२२-२६
चउत्थो असच्चमोसा	२४-२०, २२	चक्खुदिट्ठा इमा रई	५-५	चरित्तेण निगिण्हाइ	२८-३५
चउत्थोए जहन्नेण	३६-१६३	चक्खुमचक्खुओहिस्स	३३-६	चरित्तो पुत्त दुच्चरे	१६-३८
चउत्थोए पोरीसीए	२६-३६	चक्खुसा पडिलेहए	२६-३५	चरिमाण दुरणुपालओ	२३-२७
चउत्थो पडिपुच्छणा	२६-२	चक्खुसा पडिलेहिता	२४-१४	चरिमे समयम्मि परिणयाहिं तु	३४-५६
चउत्थो भुज्जो वि सज्झाय	२६-१८	चक्खुस्सरूव गहण वयन्ति	३२-२२, २३	चरेज्जत्तगवेसए	२-१७
चउदसरयण/हिवई	११-२२	चत्तपुत्तकलत्तस्स	६-१५	चरे पयाइ परिसकमाणो	४-७
चउद्दस सागराइ	३६-२२७	चत्तारि कामखन्धाणि	३-१७	चवेडमुट्ठिमाईहिं	१६-६७
चउद्दस मागरोवमा	३६-२२८	चत्तारि जहन्नाए	३६-५३	चा	
चउप्पया चउव्विहा	३६-१७६	चत्तारि परमगाणि	३-१		
चउप्पया य परिसप्पा	३६-१७६	चत्तारि य गिहिल्लिगे	३६-५२	चाउज्जामो य जो धम्मो	२३-१२, २३
चउभागूणाए वा	३०-२१	चन्दणेरुयहसगवभ	३६-७६	चाउप्पाय जहाहिय	२०-२३
चउरग दुल्लह मत्ता	३-२०	चन्दणा य तहेव य	३६-१२६	चाउरन्ते भयागरे	१६-४६
चउरगिणीए सेनाए	२२-१२	चन्दप्पहवरुलिए	३६-७६	चासराहि य सोहिए	२२-११
चउरिन्दियआउठिई	३६-१५१	चन्दसूरसमप्पभा	२३-१८	चारित्त होइ आहिय	२८-३३
चउरिन्दियकायठिई	३६-१५२	चन्दा सूरा य नक्खत्ता	३६-२०८	चारुल्लवियपेहिय	१६-४
चउरिन्दियकायमह्गओ	१०-१२	चम्पाए पालिए नाम	२१-१	चावेयव्वा सुदुक्कर	१६-३८
चउरिन्दिया उ जे जीवा	३६-१४५	चम्मे उ लोमपक्खी य	३६-१८८	चासपिच्छसमप्पभा	३४-५
चउरुड्डलोए य दुवे समुद्दे	३६-५४	चरणविहिं पवक्खामि	३१-१	चि	
चउरोपचिन्दिया चेव	३६-१२६	चरणस्स य पवत्तणे	२४-२६		
चउविहा ते वियाहिया	३६-१५५	चरणे दुविह भवे	३३-८	चिईगय डहिय उ पावगेण	१३-२५
चउवीम मागरोवमा	३६-२३६	चरन्त विरय लूह	२-६	चिच्चा अघम्म घमिट्ठे	७-२६
चउवीस सागराइ	३६-२३५	चरमे समयम्मि परिणयाहिं तु	३४-५६	चिच्चा अभिनिक्खन्तो	६-४
चउवीसत्थएण भन्ते जीवे किं०	२६ सू०१०	चराचरे हिंसइ णेरुवे	३२-२७,	चिच्चाण घण च भारिय	१०-२६
चउव्विहे वि आहारे	१६-३०		४०, ५३, ६६, ७६, ८२	चिच्चा घम्म अहम्मिट्ठे	७-२८
चउव्विहे सद्दहाइ सयगेव	२८-१८	चरिज्ज घम्म जिणदेसिय विज्ज	२१-१२	चिच्चा रट्ठ पव्वइए	१८-२०
चउउ पि विपयार्इसु	३६-२४३	चरिज्ज भिक्खू सुसमाहिइन्दिए	२१-१३	चिट्ठन्ती पजलीउडा	२५-१७
चउमु वि गईसु एत्तो	३४-४०	चरित्त च तवो तहा	२८-२, ३, ११	चिट्ठन्ति पाणिणो व्हू	२३-७५
				चित्त पि जाणाहि तहेव रायं !	१३-११

चिन्तामन्तमचिन्तां या	२५-२४	छत्रमन्त्रेण जिणेण य	२८-१६	छु	
चिन्तापुया जह्म दग्गोपवेया	१-१३	छत्रो धाहारकारणे	३१-८	छुरियाहि कप्पणीहि य	१६-६२
चिन्तासोएगु गागेगु	२६-१३	छत्रोय य मासा उ	३६-१५१	छुहातण्हाए पीठिओ	१६-१८
चिन्तोहि रो परितायेद्द माले	३२-२७,	छत्रजीवकाए असमारमन्ता	१२-४१	छुहातण्हा य सोउण्ह	१६-३१
४०, ५३, ६६, ७६, ८२		छट्ट पुण धम्मचिन्ताए	२६-३२	छुहातण्हाविज्जिओ	१६-२०
चिन्तो इमं पगणमुदाहरित्था	१३-१५	छट्टम्मि जहन्नेण	३६-२३६	छे	
चिन्तो पुण जाओ पुरिगतालम्मि	१३-२	छट्टीए जहन्नेण	३६-१६५	छेओवठावण भवे वीय	२८-३२
चिन्तो मि कागेहि विरत्ताकामो	१३-३५	छट्टो सो परिकित्तिओ	३०-३६	ज	
चिन्तिज्ज अणुपुज्जसो	२६-३६, ४७	छण्ह अन्नयरागमि	२६-३१	जण्ण द्दच्छह जीविय वा धण वा	१२-२८
चिन्तोइ शे महापन्तो	२२-१८	छण्ह मि कम्मलेसाण	३४-१	जण्ण त काहिसि भाव	२२-४४
चिन्तागु गहिंसो मिय	१६ ५७	छण्ह मि विराहओ होइ	२६-३०	'जण्ण ता सि' भोगे चण्ड अस्सत्तो	१३-३२
चिन्तं मि अण्णाण किरिस्सइत्ता	२०-४१	छत्तीस उत्तरज्जाए	३६-२६८	जण्ण विउले जन्ते	६-३८
चिन्तं मि शे गुण्डण्हं भविता	२०-४१	छन्द निरोहेण उवेइ मोगस	४-८	जण्ण सुहमेहए	६-३५
चिन्तकालेण मि सत्तापाणिणं	१०-४	छन्दणा दब्बजाएण	२६-६	जण्ण मज्झ कारणा एए	२२-१६
ची		छन्देण पुत्त ! पब्बया	१६-७५	जण्ण मे न दाहिय अहेसणिज्ज	१२-१७
चीराजिण मणिणिणं	५-२१	छण्णुरिगा नव रोठा	२६-२५	जण्ण सि ख्वेण वेसमणो	२२-४१
चीवराणं विसारन्ती	२२-३४	छम्मासा य जहन्तिया	३६-२५१	जण्ण सि सवरा पुरन्दरो	२२-४१
चू		छविताण न विज्जं	२-७	जण्णो आयाण निक्खेवे	१२-२
चूणिओ ग अणत्तासो	१६-६७	छव्वीस सागराइ	३६-२३७	जण्णो जत्त पठिस्सुणे	१-२१
चूगा धेहा विहिंसगा	७-१०	छहिं अगुलेहिं पठित्तेहा	२६-१६	ज काएण माणिसिय च किञ्चि	३२-१६
चूत्तणीए मम्मदत्तो	१३-१	छि		ज किञ्चि धाहारपाण विविहं	१५-१२
चे		छिन्दि मेहिं सिणेहं च	६-४	ज किञ्चि पास इह मण्णमाणो	४-७
चेद्धमि भणोरगे	६-१०	छिन्दि जात्त अवल य रोहिया	१४-३५	ज चज्जतराय पकरेइ कम्म	३२-१०८
चेण्णा कामगुणे परे	१४-५०	छिन्नं सर भोगं भन्तजिगस	१५-७	ज च धम्माण वा मुह	२५-११
चेण्णा कामाह पज्जए	१८-३४	छिन्नपुज्जो अणत्तासो	१६-५१	ज च मे पुच्छसी काले	१८-३२
चेण्णा गिहं एमचरे स भिक्खू	१५-१६	छिन्नपुज्जो अणेरसो	१६-६०	ज चरन्ति महेसिणो	२३-८३
चेण्णा कुपमं च पउण्णमं च	१३-२४	छिन्नासोए अमगे अकिण्णे	२१-२१	ज चरित्ताण निगन्था	२६-१
चेण्णा रज्ज मुणी चरे	१८-४७	छिन्नाले छिन्दइ सेल्लि	२७-७	ज चरित्ता बहू जीवा	२६-५२, ३१-१
चो		छिन्नायाएसु पन्थेसु	२-५	ज जाणिज्जण समणे	३६-१
चोइओ तोत्तजुत्तेहिं	११६-५६	छिन्नाहि साहाहि समेय पाणु	१४-२६	ज जिण लोअयासठे	७-१७
चोइओ पडिप्पोइ	१७-१६	छिन्नो भिन्नो विभिन्नो ग	१६-५५	ज तरन्ति महेसिणो	२३-७३
चोज्जं अवम्मशेयण	३५-३	छिन्नो मे संसओ इमो	२३-२८, ३४,	ज न गुज्जा न कारवे	२-३३
छ		३६, ४४, ४६, ५४, ५६, ६४, ६६, ७४,	७६, ८५	ज नेइ जया रत्ति	२६-१६
छत्रमं न निगृहं	२-४३			ज बाहं सययं जन्तुमेय	३२-११०
छत्रमन्त्रास्स जिणस्स वा	२८-३६			ज भिक्खुण सीलगुणे रयाण	१३-१७

ज भिक्खुणो सीलगुणोववेया	१३-१२	जन्नट्ठी वेयसा मुह	२५-१६	जलूगा जालगा चेव	३६-१२६
ज भुज्जो परिभस्सई	७-२५	जन्नवाड उवट्ठिओ	१२-३	जलेण वा पोक्खरिणी पलास	३२-३४,
ज भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाण	२०-५५	जमायरन्तो भिक्खू	३५-१	४७, ६०, ७३, ८६, ९९	
ज मग्गहा वाहिरिय विसोहिं	१२-३८	जम्बू नाम सुदसणा	११-२७	जल्ल काएण धारए	२-३७
ज मे तुम साहसि वक्कमेय	१३-२७	जम्म दुक्ख जरा दुक्खा	१६-१५	जवणट्ठाए निसेवए म	८-१२
ज मे बुद्धाणुसासन्ति	१-२७	जम्मणमरणाणि बन्धन्ति	३६-२६७	जवणट्ठाए महामुणी	३५-१७
ज विवित्त मणाइण्ण	१६-१	जम्ममच्चुभउव्विगा	१४-५१	जवमज्झट्ठुत्तर सयं	३६-५३
ज सपत्ता न सोयन्ति	२३-८४	जम्माणि मरणाणि य	१६-४६	जवा लोहमया चेव	१६-३८
ज साया नत्थि वेयणा	१६-७४	जय अपरिसाडिय	१-३५	जस सच्चिणु खन्तिए	३-१३
जसि गोयम । आरूढो	२३-५५	जयघोस महामुणि	२५-३४	जस्स एया परिन्नाया	२-१६
जसि गोयममारूढो	२३-७०	जयघोसविजयघोसा	२५-४३	जस्सत्थि मच्चुणा सक्ख	१४-२७
ज से करे अप्पणिया दुरप्पा	२०-४८	जयघोसस्स अन्तिए	२५-४२	जस्स वऽत्थि पलायण	१४-२७
ज से पुणो होइ दुह विवागे	३२-३३,	जयघोसे त्ति नामओ	२५-१	जस्सेरिसा इड्ढि महानुभागा	१२-३७
४६, ५६, ७२, ८५, ९८		जयणा चउव्विहा बुत्ता	२४-६	जह कडुयतुम्बगरसो	३४-१०
ज सोचा पडिवजन्ति	३-८	जयनामो जिजक्खाय	१८-४३	जह करगयस्स फासो	३४-१८
ज हीलिया तस्स खमाह भन्ते ।	१२-३१	जयन्ता अपराजिया	३६-२१५	जहकम कामगुणेहि चेव	१४-११
जक्खरक्खसकिन्नरा	१६-१६, २३-२०	जया मिगस्स आयको	१६-७८	जह गोमडस्स गन्धो	३४-१६
जक्खा आउक्खए चुया	३-१६	जया य से सुही होइ	१६-८०	जह तरुणअम्बगरसो	३४-१२
जक्खा उत्तरउत्तरा	३-१४	जया सव्व परिच्चव्व	१८-१२	जह तिगडुयस्स य रसो	३४-११
जक्खा कुमारेविणिवाडपन्ति	१२-२४	जराए परिवारिओ	१४-२३	जहन्तमज्झिमाइ य	३६-५०
जक्खा हु वेयावडिय करेन्ति	२२-३२	जराए मरणेण य	१६-२३	जहन्नुक्कोसिया भवे	३६-१६७, २४५
जक्खो तहिं तिन्दुरक्खवासी	१२-८	जरामरणकन्तारे	१६-४६	जहन्नेण काऊए	३४-५०
जगनिस्सिएहिं भूएहिं	८-१०	जरामरणवत्थम्मि	१६-१४	जहन्नेण नीलाए	३४-४६
जट्ठ च पावकम्मुणा	२५-२८	जरामरणवेगेण	२३-६८	जहन्नेण पम्हाए दसउ	३४-५४
जडीसघाडिमुण्डण	५-२१	जरोवणीयस्स हु नत्थि ताण	४-१	जहन्नेण सुक्काए	३४-५५
जणेण सद्धिं होक्खामि	५-७	जल 'पाहिं ति' चिन्तन्तो	१६-५६	जहन्नेणेक्कतीसई	३६-२४३
जत्तय गहणत्थ च	२३-३२	जलकन्ते सूरकन्ते य	३६-७६	जहन्नेणेगसित्थाई	३०-१५
जत्तय पणिहाणव	१६-८	जलण च जलप्पवेसो य	३६-२६७	जहपरिणयम्बगरसो	३४-१३
जत्थ कीसन्ति जन्तवो	१६-१५	जलघन्ननिस्सया जीवा	३५-११	जह वूरस्स व फासो	३४-१६
जत्थ त मुज्झसी राय	१८-१३	जलन्ते इव तेएण	११-२४	जह सुरहिकुसुमगघो	३४-१७
जत्थ तत्थ निसीयई	१७-१३	जलन्ते समिलाजुए	१६-५६	जहा अगिसिहा दित्ता	१६-३६
जत्थ नत्थि जरा मच्चू	२३-८१	जलयराण तु अन्तर	३६-१७७	जहा अणाहो भवई	२०-१६, १७
जत्थेव गन्तुमिच्छेजा	६-२६	जलयरा थलयरा तहा	३६-१७१	जहाइणसमारूढे	११-१७
जन्न जयइ वेयवी	२५-४	जलरूहा ओसहीतिणा	३६-६५	जहा 'इम इह' सीय	१६-४८
जन्नट्ठा य 'जे दिया'	२५-७			जहाइ उवहिं तओ	१६-८४

जहा इह उ अगणी उण्हो	१६-४७	जहा सखम्मि पय	११-१५	जाईपराजिओ खलु	१३-१
जहा उ चरई मिगो	१६-७७	जहा सागडिओ जाण	५-१४	जाईमयपडियद्धा	१२-५
जहा उ पावग कम्म	३०-१	जहा सा दुमाण पवरा	११-२७	जाईमरण समुपन्न	१६-७
जहाएस व एलए	७-७	जहा सा नईण पवरा	११-२८	जाईसरणे समुपन्ने	१६-८
जहाएस ममुद्धिस्स	७-१	जहा सुक्को उ गोलओ	२५-४१	जा उ अम्साविणी नावा	२३-७१
जहा करेणुपरिकिणो	११-१८	जहा सुणो पृद्धकणी	१-४	जाओ पुरिस पओभित्ता	८-१८
जहा कागिणिए हेउ	७-११	जहासुत्तमणिन्दियं	३५-१६	जाओ लोगमि इत्थिओ	२-१६
जहाकिम्पागफलाण	१६-१७	जहा से उडुवई चन्दे	११-२५	जा किण्हाए ठिई खलु	३४-४६
जहा कुसगो उदग	७-२३	जहा से कम्बोयाण	११-१६	जा चेव उ आउठिई	३६-१६७, २४५
जहा खलु ते उरब्भे	७-४	जहा खलु से उरब्भे	७-४	जा जा दिच्छमि नारिओ	२२-४४
जहा खवयइ भिक्खू	३०-४	जहा से चाउरन्ते	११-२२	जा जा वच्चड रयणी	१४-२४, २५
जहा गेहे पलित्तम्मि	१६-२२	जहा से तिक्खदाढे	११-२०	जाणमाणो वि ज धम्मं	१३-२६
जहा चन्द गहाईया	२५-१७	जहा से तिक्खसिगे	११-१६	जाणामि ज वट्ठइ आउमु । त्ति	१७-२
जहा जाय त्ति पासिया	२२-३४	जहा से तिमिरविद्धसे	११-२४	जाणासि सभूय । महाणुभाग	१३-११
जहा तद्दव्वणिससरो	२२-४५	जहा से नगाण पवरे	११-२६	जाणाहि मे जायणजीविणु त्ति	१२-१०
जहा तुलाए तोलेउ	१६-४१	जहा मे नमी रायरिसि	६-६२	जाणि जीयन्ति दुम्मेहा	७-१३
जहा ते दीसई रुव	१८-२०	जहा मे वासुदेवे	११-२१	जाणित्तायरियस्स उ	१-४३
जहा दवग्गी पठरिन्वणे वणे	३२-११	जहा से सयभूरमणे	११-३०	जा तेऊए ठिई खलु	३४-५४
जहा दुक्ख भरेउ जे	१६-४०	जहा से सहस्सक्खे	११-२३	जा निरस्साविणी नावा	२३-७१
जहा न होई अमुयाण लोगो	१४-८	जहा से सामाइयाण	११-२६	जा नीलाए ठिई खलु	३४-५०
जहा पोम जले जाय	२५-२६	जहा मो पुरिसोत्तमो	२२-४६	जा पम्हाए ठिई खलु	३४-५५
जहा विरालावसहस्स मूले	३२-१३	जहिऊण माणुस वोन्दि	३५-२०	जायखन्वे विरायई	११-१६
जहा भुयाहिं तरिउ	१६-४२	जहिं पकिण्णा विरुहन्ति पुण्णा	१२-१३	जायगो पडिसेहए	२५-६
जहा महातलायस्स	३०-५	जहिं पवन्ता न पुण्णभवामो	१४-२८	जायगेण महामुणी	२५-६
जहा महासागरमुत्तरित्ता	३२-१८	जहिं वय सव्वजणस्स वेस्सा	१३-१८	जायणा य अलाभया	१६-३२
जहा मिगे एग अणेगचारी	१६-८३	जहिसि ण्हाओ विमलो विसुद्धो	१२-४६	जायतेय पाएहि हणह	१२-२६
जहा मे य पवत्तिय	२०-१७	‘जहिसि ण्हाया’ विमला विसुद्धा	१२-४७	जायपक्खा जहा हसा	२७-१४
जहा मेयमणुस्सुय	५-१३, १८	जहित्तु सग च महाकिलेस	२१-११	जायमेए महोदरे	७-२
जहा य अग्गी अरणीउज्जन्तो	१४-१८	जहित्थिओ वालमणोहराओ	३२-१७	जायस्व जहामट्ठ	२५-२१
जहा य अण्डप्पभवा बलागा	३२-६	जहेह सीहो व मिय गहाय	१३-२२	जायाई जमजन्ममि	२५-१
जहा य किपागफला मणोरमा	३२-२०	जहोवइट्ठ सुकय	१-४४	जायाए घासमेसेज्जा	८-११
जहा य तिन्नि वणिया	७-१४			जाया । चित्तावरो हुमि	१४-२०
जहा य भोई । तणुय भुयगो	१४-३४	जाइ सरित्तु भयव	६-२	जाया दोण्णि वि केवली	२२-४८
जहा लाहो तहा लोहो	८-१७	जाई कुल च सील च	२२-४०	जाया य पुत्ता न हवन्ति ताण	१४-१२
जहा वय धम्ममजाणमाणा	१४-२०	जाईजरामच्चुभयाभिभूया	१४-४	जारिसा मम सीसाउ	२७-१६

जा

जारिसा माणुसे लोए	१६-७३	जीवा गच्छन्ति परलोय	३४-६०	जे केइ सरीरे सत्ता	६-११
जावई केदकन्दली	३६-६७	जीवा गच्छन्ति सोगइ	२८-३	जे गिद्धे कामभोगेसु	५-५
जाव कालस्स पज्जवो	३५-१६	जीवा चेव अजीवा य	३६-२	जे जे उवाया पडिवज्जियव्वा	३२-६
जावजीव दहव्वओ	२२-४७	जीवाजीवविमर्त्ति	३६-१	जेट्ट कुलमवेक्खन्तो	२३-१५
जावजीवाए दुक्करा	१६-२५	जीवाजीवा य पुण्णंपाव च	२८-१७	जेट्टामूले आसाढसावणे	२६-१६
जावजीवमविस्सामो	१६-३५	जीवाजीवा य वन्धो य	२८-१४	जे डहन्ति सरीरत्था	२३-५०
जाव न एइ आएसे	७-३	जीवाणमजीवाण य	३६-३	जेणऽप्पाणं पर चेव	११-३२
जावन्तऽविजापुरिसा	६-१	जीवा सोहिमणुप्पत्ता	३-७	जेण पुण जहाइ जीविय	१५-६
जाव सरीरमेठ त्ति	२-३७	जीविए मरणे तथा	१६-६०	जेणमिह वन्ता इसिणा स एसो	१२-२१
जा सा अणसणा मरणे	३०-१२	जीवियए बहुपच्चवायए	१०-३	जेणाह दोगइ न गच्छेज्जा	८-१
जा सा पन्नवओ ठिई	७-१३	जीविय चेव रूव च	१८-१३	जेणाह नाभिजाणामि	२-४०
जा सा पाली महापाली	१८-२८	जीवियन्त तु सपत्ते	२२-१५	जे तत्थ न पउस्सई स भिक्खू	१५-११
जा से कन्न दलाम ह	२२-८	जीवो उवओगलक्खणो	२८-१०	जे तप्पओसी य परिग्गही य	३२-१०१
जा हं तेण परिच्चत्ता	२२-२६	जीवो पमायबहुलो	१०-१५	जे तरन्ति अतर वणिया व	८-६
जि		जीवो भवइ अणासवो	३०-२	जे ताइ पडिसेवन्ति	२-३८
जिइन्दिए सव्वओ विप्पमुक्के	१५-१६	जीवो वुच्चइ नाविओ	२३-७३	जे दुजया अजो अम्हारिसेहिं	१३-२७
जिइन्दिओ सजओ वम्भयारी	१२-२२	जीवो होइ अणासवो	३०-३	जे नरा काम लालसा	२५-४१
जिच्चमाणे न सविदे ?	७-२२	जु		जे नरा गिहिसुव्वया	७-२०
जिणमगा चरिस्सिमो	२२-३८	जुइम वरिससओवमे	१८-२८	जे नरा पावकारिणो	१८-२५
जिणवयण जे करेन्ति भावेण	३६-२६०	जुइमन्ताणुपुव्वसो	५-२६	जे पावकम्मेहि घण मणूसा	४-२
जिणवयणं जे न जाणन्ति	३६-२६१	जुईए उत्तिमाए य	२२-१३	जे भवन्ति दिउत्तमा	२५-३३
जिणवयणे जे अणुरत्ता	३६-२६०	जुगमित्त च खेतओ	२४-७	जे भावओ सपगरेइ भिक्खू	२१-१६
जिणिन्दमगा सरण पवन्ता	१४-२	जुगव पुव्व व सम्मत्त	२८-२६	जे भिक्खु अवमन्नह	१२-२६
जिणे पासे त्ति नामेण	२३-१	जुण्णो व हसो पडिसोत्तगामी	१४-३३	जे भिक्खुयं भत्तकाले वहेह	१२-२७
जिणेहिं वरदसिहिं	२८-२,७	जुवराया दमीसरे	१६-२	जे भिक्खू चयई निच्च	३१-४
जिन्माए रस गहण वयन्ति	३२-६२	जे		जे भिक्खू जयई निच्च	३१-७ से २० तक
जिन्मादन्ते अमुच्छिए	३२-१७	जे आयायासठाणे	३६-४६	जे भिक्खू जयई सया	३१-२१
जिन्मिन्दियनिग्गहेण भन्ते ! जीवे किं	२६-६६	जे इन्दियाण विसया मणुन्ना	३२-२१	जे भिक्खू न विहन्नेज्जा	२-४६
जिहाए रस गहण वयन्ति	३२-६१	जे उत्तमट्ट विवजासमेई	२०-४६	जे भिक्खू वज्जई निच्चं	३१-६
जी		जे उ भिक्खू न वावरे	३०-३६	जे भिक्खू रुम्भई निच्च	३१-३
जीमूयनिद्धसकासा	३४-४	जे कम्हिचि न मुच्छिए स भिक्खू	१५-२	जे भिक्खू वहई सम्म	३०-३१
जीव च इरिय सया	६-२१	जे कसिण अहियासए स भिक्खू	१५-३,४	जे भिक्खू सहई निच्च	३१-५
जीवन्तमणुजीवन्ति	१८-१४	जे केइ पत्थिवा तुव्व	६-३२	जे माहणा जाइविज्जोववेया	१२-१३
जीवस्स उ सुहावहं	३१-१	जे के इमे पव्वइए	१७-३	‘जे य उम्भगपट्ठिया’	२३-६१
जीवस्स उ सुहावहा	३०-२७	जे के इमे पव्वइए नियण्ठे	१७-१	जे य घम्माण पारणा	२५-७

ज य मग्गेण गच्छन्ति	२३-६१	जोगक्खेम न सविदे ?	७-२४	भाण विग्घो उ जो कभो	२०-५७
जे य वेयविकु विप्पा	२५-७	जो गच्छइ पर भव	१६-१६, २१	भाणाण च दुय तहा	३१-६
जे यावि दोस समुवेइ तिव्व	३२-२५, ३६, ५१, ६४, ७७, ९०	जोगपच्चक्खाणेण भन्ते । जीवे किं	२६सू० ३८	भायई भवियासवे	१८-५
जे यावि होइ निव्विज्जे	११-२	जोगव उवहाणव	११-१४। ३४-२७, २६	ठा	
जे लक्खण च सुविण च	८-१३	जोगसच्चेण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?	२६ सू० ५३	ठाण किं मन्नसी मुणी ?	२३-८०
जे लक्खण सुविण पजंजमाणे	२०-४५	जोगा सुया सरीर कारिसण	१२-४४	ठाण ठिड गइ चाउ	३४-२
जे वज्जए एए सया उ दोसे	१७-२१	जो जस्स उ आहारो	३०-१५	ठाणा वीरासणाईया	३०-२७
जे सखया तुच्छ परप्पवाई	४-१३	जो जाणे न मरिस्सामि	१४-२७	ठाणे कुजा निसीहिय	२६-५
जे सन्ति परनिव्वुडा	५-२८	जो जिणदिट्ठे भावे	२८-१८	ठाणे निसीयणे चेव	२४-२४
जे सन्ति सुव्वया साहू		जो त जीवियकारणा	२२-४२	ठाणे य इइ के वुत्ते ?	२३-८२
जे समत्या समुदत्तु	२५-८, १२, १५	जो त तिविहेण नाणुकम्पे	१५-१२	ठाणेषु यऽ समाहिए	३१-१४
जे सम्म आयरे मुणी	२४-२७। ३०-३७	जो धम्म सोच्च सद्दे	३-११	ठाणेहि उ इमेहि	२६-३३
जेसिं तु विठला सिक्खा	७-२१	जो न सज्जइ आगन्तु	२५-२०	ठि	
जेसिं मो नत्थि किंचण	६-१४	जो न सेवइ मेहुण	२५-२५	ठिईउ आउकम्मस्स	३३-२२
जेहिं इमो साहुधम्मो पन्नत्तो	८-८	जो न हिंसइ तिविहेण	२५-२२	ठिई एसा वियाहिया	३३-२०, ३६-१३, २४४
जेहिं नासन्ति जतवो	२३-६०	जो पव्वइत्ताण महव्वयाइ	२०-३६	ठिइ पडुच्च साईया	३६-१२, ७६, ८७, १०१, ११२, १२१, १३१, १४०, १५०, १५६, १७४, १८३, १९०, १९६, २१८
जेहिं वद्धो अय जीवो	३३-१	जो पुत्ता । होइ दुव्वहो	१६-३५	ड	
जेहिं सज्जन्ति माणवा	३५-२	जो मग्गे कुणई घर	६-२६	डज्जमाण न कुज्जामो	१४-४३
जेहिं सिक्खा न लब्भई	११-३	‘जो मे’ तथा नेच्छइ दिज्जमार्णि	१२-२२	डज्जमाणेषु जन्तुसु	१४-४२
जेहिं होइ सिणायओ	२५-३२	जोयणस्स उ जो तस्स	३६-६२	डहेज्ज नरकोडिओ	१८-१०
जो		जोयणाण तु आयया	३६-५८	डो	
जो अत्थिकायधम्म	२८-२७	जो लोए बम्भणो वुत्तो	२५-१६	डोले भिगारी य	३६-१४७
जो इमो पचसिक्खिओ	२३-१२, २३	जो विजाहिं न जीवइ स भिक्खू	१५-७	ढ	
जो इमो सन्तस्सत्तो	२३-१३, २६	जोव्वणेण य सपन्ने	२१-६	ढकगिद्धे हिण्णन्तसो	१६-५८
जोइया धम्मजाणम्मि	२७-८	जो सथव न करेइ स भिक्खू	१५-१०	ढि	
जोइसगविकु जे य	२५-७	जो सक्ख नाभिजाणामि	२-४२	ढिकुणे कुकुणे तहा	३६-१४६
जोइसगविकु तुम्भे	२५-३६	जो सहस्स सहस्साण	६-३४, ४०	णे	
जोइसवेमाणियाण च	३४-५१	जो सुत्तमहिज्जन्तो	२८-२१	णेव अन्नेहिं कारण	३५-८
जोइसवेमाणिया तहा	३६-२०४	जो सो इत्तरियतवो	३०-१०	त	
जोइसेसु जहन्निया	३६-२२१	जो सोच्चा न वहिज्जई स भिक्खू	१५-१४	तइए दस भट्ठहिं चउत्थे	२६-१६
जो उल्लो सोलत्थ लगई	२५-४०	भा		तइय च पुणो पमज्जेजा	२६-२४
जो एव पडिसविक्खे	२-३१	भाएजा सुसमाहिए	३०-३५	तइयम्मि जहन्नेण	३६-२३६
जोए वहमाणस्स	२७-२	भाण च विउत्सगो	३०-३०		
जो किरियाभावई	२८-२५	भाण त तु वुहा वए	३०-३५		

तइयाए जहन्नेण	३६-१६२	तओ से दण्ड समारभई	५-८	त लय सब्वसो छित्ता	२३-४६
तइयाए निद्दमोक्ख तु	२६-१८, ४३	तओ मे पोवय कम्म	८-६	त वय बूम माहण	२५-१६ से २७, ३२
तइयाए पोरिसीए	२६-३१	तओ से पुट्ठे परिवूढे	७-२	त सम्म निगिण्हामि	२३-५८
तइयाए भिक्खायरिय	२६-१२	तओ से मरणन्तमि	५-१६	त सब्व मरिसेहि मे	२०-५७
तइया रायरिसिमि	६-५	तओ सो पहसिओ राया	२०-१०	त ससत्त पइगिज्झ	२१-३
तइया समुगपक्खिया	३६-१८८	तओ ह एवमाहसु	२०-३१	तसा चउरसमायया	३६-२१
तजयाइ सीसयाणि य	१६-६८	त इक्कण तुच्छसरीरग से	१३-२५	तसि क्खणे से उ उवेइ दुक्ख	३२-२५, ३८, ५१, ६४, ७७, ६०
तओ आउपरिकखीणे	७-१०	त एवमेव लालप्पमाण	१४-१५	त सि नाहो अनाहाण	२०-५६
तओ उत्तरगुणे कुज्जा	२६-११, १७	त काय तु अमुचओ	३६-८१, ८६, १०३, ११४, १२३, १३३, १४२, १५२	तच्छिओ य अणन्तसो	१६-६६
तओ ओरालिय-कम्माइ ०	२६ सू ७४	त चोसि अन्वगवण्हिणो	२२-४३	तणफासा जल्लमेव य	१६-३१
तओ कम्मगुरु जन्तू	७-६	त ठाणं सासय वास	२३-८४	तणहारकट्ठहारा	३६-१३
तओ कल्ले पभायम्मि	२०-३४	त तित्तिक्खे परीसह	२-५, १४	तणेषु सयमाणस्स	२-३
तओ काले अभिप्पेए	५-३१	त देहई मियापुत्ते	१६-६	तण्हाकिलन्तो धावन्तो	१६-५
तओ कीडपयगो य	३-४	त दोसहेउ अमणुन्नमाहु	३२, २२, ३५, ४८, ६१, ७४, ८७	तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो-	३२-३ ४३, ५६, ६६, ८२, ६
तओ कुन्धुपिवीलिया	३-४	त न नस्ससि ? गोयमा ।	२३-६०	तण्हा हया जस्स न होइ लोहो	३२
तओ केसि वुवत्त तु	२३-२१, २५, ३७	त नाण जिणसासणे	१८-३२	ततो ह नाहो जाओ	२०-३
तओ केसी अणुन्नाए	२३-२२	त नेव भुजो वि समायरामो	१४-२०	तत्त तत्तविणिच्छय	२३-२
तओ गच्छसि खत्तिया ।	६-१८, २४, २८, ३२, ३८, ४६	त परिगिज्झ वायाए	१-४३	तत्ताइ तम्बलोहाहि	१६ ८
तओ गुत्तीओ आहिया	२४-१	त परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू	१५-८, ६	तत्तो ओम तु जो करे	३०-१
तओ चण्डालवोक्खसो	३-४	त पासिऊणमेज्जन्त	१२-४	तत्तो य थोणगिद्धी उ	३३
तओ जले वीसमहे तहेव	३६-५४	त पासिऊण सविगो	२१-६	तत्तो य बम्भ अपरिगह च	२१-
तओ जिए सइ होइ	७-१८	त पासिया सजय हम्ममाण	१२-२०	तत्तो य वगवगो उ	३०-
तओ भाएज्ज एगगो	१-१०	त पुव्वनेहेण कयाणुराग	१३-१५	तत्तो वि य उवट्ठित्ता	८-
तओ तेणऽजिए दब्बे	१८-१६	'त वित्त ज्जमापियरो'	१६-२४, ४४, ७५	तत्थ आलवण नाण	२
तओ नमि रायरिसि	६-११, १७, २३, २७, ३१, ३७, ४१, ४५, ५०	त भासओ मे पडिपुण्णचित्ता	३२-१	तत्थ आसि पिया मज्झ	२०-
तओ नमी रायरिसी	६-८, १३, १६, २५, २६, ३३, ३६, ४३, ४७, ५२	त भुजसू अम्ह अणुगहट्ठा	१२-३५	तत्थ एगे महापत्ते	६
तओ पुट्ठो आयकेण	५-११	त मे उदाहरिस्सामि	२-१	तत्थ कुव्वेज्ज सासय	३६
तओ पुट्ठो पिवासाए	२-४	तमि सबच्छरेकरे	३६-२५४	तत्थ गन्तूण सिज्झई	३६
तओ वृहणि वासाणि	३६-२५०	त मे एगमणो सुण	३०-४	तत्थ चिन्ता समुप्पन्ना	२३
तओ राया भयद्दुओ	१८-६	त मे कहसु गोयमा !	२३-२८, ३४, ३६, ४४, ४६, ५४, ५६, ६४, ६६, ७४, ७६	तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाण	८-११
तओ सबच्छरद्ध तु	३६-२५३, २५४	त मे कित्तयओ सुण	२४-६। ३६-४८	तत्थ ठिच्चा जहाठाण	३
तओ से जायन्ति पओयणाइ	३२-१०५	त रागहेउ तु मणुन्नमाहु	३२-२२, ३५, ४८, ६१, ७४, ८७	तत्थ पचविह नाण	२
				तत्थ वासमुवागए	२३-४, ८।

तस्य संकल्प ए वाच	३५-७	तन्हा विगयनेसेज्जा	१-३	तवोवहाणमादाय	२-४३
तस्य सिद्धा महाभागा	३६-६३	तन्हा समुत्थाय पहाय कामे	४-१०	तवोसमायारिसमाहिसवुडे	१-४७
तस्य से उववजई	३-१०, ७-२७	तन्हा उव्वदिच पत्त	६-१२	तसमानेहिं थावरेहिं व	८-१०
तस्य से विठ्ठमाणत्त	२-२१	तन्हा नुयमहिउडेज्जा	११-३२	तसपाणवीयरहिं	२४-१८
तस्य सो पासई साहु	२०-४	तन्हा हु ए निहया कुमारो	१०-३२	तसपाणे दियागेत्ता	२५-२०
तस्यासि दुम्मा न विन्दुवई से	३२-३०, ४३, ५६, ६६, ८०, ८५	तया गच्छइ गोयरं	१६-८०	तसार्ण थावराणं व	३५-६
तरियनं पडनं ठाण	५-४	तयाणि जालाणि दलित्तु हत्ता	१४-३६	तसा य थावरा व	२०-३५
तत्थोवमोगे वि किन्हेसुत्त	३२-३०, ४५, ५८, ७१, ८४, ८७	उर कले ! लहु लहु	२२-३१	तसेमु थावरेमु य	५-८१, ६८-८६
तत्थोववइयं ठाणं	५-१३	तरित्ता समुहं व महानवोव	२१-२४	तत्सज्जेवपमोत्त व	२५-१३
तत्थुं ताजजिया	२-३५	तत्थिज्जो गुणोपही	१६-३६	तत्सज्जग गच्छइ वीयरारो	३२-१६
तत्थएसा त्थेव य	३६-१०	तरिन्सन्ति ज्जागया	१८-५२	तत्स कोसत्त उम्माए	३६-६२
तत्थएसे य आहिं	३६-६, ६	तरिहिंति से उ काहिन्ति	८-२०	तत्स गेहत्त सो पहु	१६-२२
तत्थत्तं उज्जमए य रागी	३२-१०५	तत्ताइत्तचत्तिना	३४-७	तत्स पाए उ वदित्ता	२०-७
तत्थत्तेनेव उ से लसीले	२०-४६	तरनो सि लज्जे ! पवइमो	२०-८	तत्स मज्जा वुडे आसी	२२-२
तत्थत्ताहं करेहत्तं	२५-३७	तत्तं उज्जिमहिंत्त	३-८	तत्स मज्जा सिवा नान	२२-४
तत्ता उम्मा उहा	३६-१५७	तत्तं पतिज्जत्तत्तं	१४-५०	तत्स मे अपडिज्जत्तत्त	१३-२६
तत्तायरत्तो ववहारं	१-४२	तत्तं उपडिवज्जेत्ता	२६-५१	तत्स राईमई क्कं	२२-६
तत्तुद्धरित्तु वहाणाय	२३-४८	तवनारायत्तजे	६-२२	तत्स त्वं तु पासित्ता	२०-५
तत्तेणमनो सु	३०-१	तवनियमसंजमवरं	१६-५	तत्स त्ववई मज्जं	२१-७
तत्तेविता निहो सुणेहि	२०-३८	तवनहाणं वरिय व उत्तनं	१६-६७	तत्स लोणवईत्त	२३-२, ६
तत्ति वासि सनागने	२३-८८	तवविणए सत्तसन्निहृत्तीत्तु	२८-२५	तत्ताणए निए पासं	१८-५
तत्ती नान्णउले	२३-४	तत्तवरमत्त	६-२०	तत्तावि संज्जो सेओ	६-४०
तत्ती नयरमउले	२३-८	तवसा वृषत्तत्ते	३-२०	तत्तेस मनो गृहविहसेवा	३२-३
तत्तुत्ती उम्मा हारे	२४-८	तवसा निज्जिज्जइ	३०-६	तहत्तारो य उज्ज्जो	२६-३
तत्तेव य मज्जते	२६-२०	तवत्त वाधायकरं वयासी	१४-८	तहत्तारो य पडिम्मुए	२६-६
तन्हा एएणि क्कमानं	३३-२५	तवत्ती मिम्मु यान्ठं	२-२, २२	तह दुक्कर करेई से	१६-३६
तन्हा एएण लेसाणं	३४-६१	तवत्ती वीरिणं लद्धं	३-११	तह पावत्तियाए	२६-३२
तन्हा हिंति न रई ल्हानो	१४-७	तवेणं मत्ते ! कीवे किं जग्गइ ?	२६-८०, ८२	तहत्तारेणं नां न कुत्ता	४-१०
तन्हा गिहसमारत्तं	३५-६	तवेण हेइ तावत्तो	२५-३०	तह य निमित्तानि होइ पडित्तेवि	३६-८६
तन्हा जोइं न दीवए	३५-१२	तवे परिज्जत्तइ	२८-३५	तहा अज्जत्तत्तेणं	१६-४०
तन्हा मिम्मु न पायए	३५-११	तवे परिखोसिणं	१२-४	तहा अत्तंज्जन्मि य	३१-१३
तन्हा मिम्मु न संवले	२-०४	तवोत्तत्तत्ते उम्माओ	१६-८८	तहा गोत्ते गोप्पे	१८-८८
तन्हा मणी डिम्मुवेइ मोक्खं	४-८	तवो जेई जीवो जेइज्जानं	१०-४४	तहा तेरिज्जन्मात्तु	३५-५
		तवो य वुविहो वृत्तो	२८-३४	तहा वुत्तं करेई से	१६-४०

तहा निहुयनीसक	१६-४१	तालणा तज्जणा चेव	१६-३२	तिविहो व नवविहो वा	३४-२०
तहा पयणुवाई य	३४-३०	तावइय चेव वित्थिण्णा	३६-५८	तिव्वचण्डप्पगाढाओ	१६-७२
तहाभूएण अण्णा	५-३०	ताव जीवइ से दुही	७-३	तिव्वारम्भपरिणओ	३४-२१
तहा माणावमाणओ	१६-६०	तासि इन्द्रियदरिसण	१६-११	ती	
तहा लुक्खा य आहिया	३६-२०	तासि दोण्ह पि दो पुत्ता	२२-२		
तहा वि एगन्तहिय ति नच्चा	३२-१६	ति		तीसई 'कोडिकोडिओ	३३-१६
तहा वि ते न इच्छामि	२२-४१			तीसई सागरोवमा	३६-२४२
तहा सत्तेव एसणा	३०-२५	तिट्ठुगा तउसमिजगा	३६-१३८	तीस तु सागराइ	३६-२४१
तहा सुचिण्ण तवसजम च	१४-५	तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा	३४-११	तीसे पुत्तो महायसो	२२-४
तहिय गन्धोदयपुप्फवान	१२-३६	'तिगुणो तस्सेव परिरओ'	३६-५८	तीसे य जाईइ उ पावियाए	१३-१६
तहियाण तु भावाणं	२८-१५	तिगुत्त द्रुप्पवसय	६-२०	तीसे सो वयण सोच्चा	२२-४६
तहेव कामीराया	१८-४८	तिगुत्तिगुत्तो तिदण्डविरओ य	२०-६०	तीहिं अगुत्तो छसु अविरओ य	३४-२१
तहेव ज दसणमावरेइ	३२-१०८	तिण्णा ससारसागर	२६-१,५२।३१-१	नु	
तहेव निन्नेसु य आससाए	१२-१२	तिण्णुदही पालिओवम	३४-४१		
तहेव परियट्ठणा	३०-३४	तिण्णुदहो पालिय	३४-४२	तुगे सिम्बलि पायवे	१६-५२
तहेव भत्तपाणेसु	३५-१०	तिण्णुदहो पालियमसखभागमवभहिया	३४-३६	तुदिल्ले चियलोहिए	७-७
तहेव य तुयट्ठणे	२४-२४	तिण्णेव अहोरत्ता	३६-११३	तुज्झ विवाहकज्जमि	२२-१७
तहेव य नपुसगा	३६-४६	तिण्णेव उ सागरोवमा	३६-१६२	तुज्झ सुलद्ध खु मणुस्सजम्म	२०-५५
तहेव य वणम्सई	३६-६६	तिण्णेव सहस्साइ	३६-१२२	तुट्ठे य विजयघोसे	२५-३५
तहेव य वराडगा	३६-१२६	तिण्णेव सागरा ऊ	३६-१६१	तुट्ठो य सेणियो राया	२०-५४
तहेव विजओ राया	१८-४६	तिण्णो हु सि अण्णव मह	१०-३४	तुव्वं तु पाए सरण उव्वेओ	१२-३३
तहेव हिंस अलिय	३५-३	तिण्हमन्नयर मुणो	५-३२	तुव्वे जइया जन्नाण	२५-३६
तहेवासणदायण	३०-३२	तित्तिक्ख परम नच्चा	२-३६	तुव्वेत्थ भो । भारघरा गिराण	१२-१५
तहेवुग तव किच्चा	१८-५०	तित्तिक्खया वम्मचेरगुत्तीसु	२६-३४	तुव्वे धम्माण पारगा	२५-३६
ता		तित्तकडुयकसाया	३६-१८	तुव्वे न वि कुप्पह भूइपन्ना	१२-३३
		तिन्दुय नाम उज्जाण	२३-४	तुव्वे वेयविकु विकु	२५-३६
ताड तु खेत्ताड सुपावयाइ	१२-१४	तिन्दुय वणमागओ	२३-१५	तुव्वे मणाहा य सवन्ववा य	२०-५५
ताइ तु खेताइ सुपेसलाइ	१२-१३,१५	तिन्नि वि एय अणाइया	३६-८	तुव्वे समत्था उद्धत्तु	२५-३७
ताइ पाठकरे वुद्धे	१८-३२	तिन्नि वि एयाओ अहम्मलेसाओ	३४-५६	तुव्वेहिं अणुमन्निओ	१६-२३
ताडिओ कुट्टिओ भिन्नो	१६-६७	तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ	३४-५७	तुव्वेहिं अम्म । णुन्नाओ	१६-८५
ताणि ठाणाणि गच्छन्ति	५-२८	तिपया हवइ पोरिसी	२६-१३	तुमे राय विचिन्तिया	१३-८
ताय उयागम्म इम उदाहु	१४-६	तिभागहीणा तत्तो य	३६-६४	तुरिय मउयकुच्चिए	२२-२४
ताया ! दीसन्ति वेयणा	१६-७३	तिय मे अन्तरिच्छ च	२०-२१	तुरियाण सन्तिताएण	२२-१२
तारिस्समि उव्वसए	३५-५	तिरियमणुस्साण देवाण	३४-४४	तुलियाण बालभाव	७-३०
तारिसा गलिगइहा	२७-१६	तिरियाण नराण वा	३४-४५	तुलिया बाल च पंडिय	७-१६
तारुणो समणत्तणं	१६-३६	तिविहा ते वियाहिया	३६-१६६	तुलिया विसेसमादाय	५-३०
				सुवरकविट्ठस्स वावि आरिसओ	३४-१२

तुसिणीओ उवेहेजा	२-२५	तेणे जहा सन्धिमुहे गहीए	४-३	तेसि वुच्छ चउव्विह	३६-११, ७८, १११, १२०
तुसिणीओ न कयाइ वि	१-२०	तेणे यावि य मच्छरी	३४-२६	तेसि सोच्चा सपुज्जाण	५-२६
तुह पियाइ मसाइ	१६-६८	तेत्तीस सागरा मुहुत्तऽहिया	३४-३४, ३६	ते ह कह नाणुगमिस्समेक्का ?	१४-३६
तुह पिया सुरा सीहू	१६-७०	तेत्तीस सागरोवमा	३६-२४४	ते ह कह नाणुगमिस्समेक्को ?	१४-३४
ते		तेत्तीसमुहुत्तमग्गहिया	३४-५५	तेहि थाराहिया दुवे लोणे	८-२०
ते अज्ज परिभुजामो	१३-६	तेत्तीससागराइ उक्कोसा	३४-४३	ते होन्ति परित्तससारी	३६-२६०
तेइन्दियआउठिई	३६-१४१	तेत्तीस सागराउ	३६-२४३	तो	
तेइन्दियकायठिई	३६-१४२	तेत्तीस सागरा ऊ	३६-१६६	तोत्तओ य से भजई	२७-३
तेइन्दियकायमइगओ	१०-११	तेत्तीस सागरोवमा	३३-२२	तो न नस्सामह मुणी	२३-६१
तेइन्दिय जीवाणं	३६-१४३	तेत्तीसासायणासु य	३१-२०	तो नाणदसणममगो	८-३
तेइन्दिया उ जे जीवा	३६-१३६	ते परियन्ति समन्तओ	२७-१३	तो विइय पप्फोडे	२६-२४
तेउक्कायमइगओ	१०-७	ते पासिया खण्डियकट्ठभूए	१२-३०	तो वन्दिऊण पाए	६-६०
तेउजीवाण अन्तर	३६-११५	ते पासे सव्वसो छित्ता	२३-४१	तोसिया परिसा मव्वा	२३-८६
तेउलेस तु परिणमे	३४-२८	ते पिज्जदोसाणुगया परज्झा	४-१३	तो होइ अच्चन्तमुही कयत्यो	३२-११०
तेउलेसा उ वण्णओ	३४-७	ते भिन्नदेहे रहिर वमन्ते	१२-२५	तो होहिंसि देवो इओ विउव्वी	१३-३२
तेउलेसा जहा सुरगणाण	३४-५१	ते माहणा जाइविजाविहूणा	१२-१४	थ	
तेऊ पम्हा तहेव य	३४-३	ते मे कित्तयओ सुण	३६-१७६, १६५, २०४	थणिया भवणवासिणो	३६-२०६
तेऊ पम्हा सुक्का	३४-५७	ते मे तिगिच्छ कुच्चति	२०-२३	थद्धे लुद्धे अणिगगहे	११-२, १७-११
तेऊए ठिई जहन्निया होइ	३४-५३	ते य ते अहिगच्छन्ति	२३-३५	थम्भा कोहा पमाएण	११-३
तेऊ बाऊ य वोद्धवा	३६-१०७	तेवीसइ सुयगडे	३१-१६	थल्लिसेणाखन्धारे	३०-१७
तेऊवाऊवणस्सइत्तसाण	२६-३०	तेवीस सागरोवमा	३६-२३५	थलेसु वीयाइ ववन्ति कासगा	१२-१२
ते कामभोगरसगिद्धा	८-१४	तेवीस सागराइ	३६-२३४	थवथुइमगलेण भन्ते ! जीवे किं	२६ सू०१५
ते कामभोगेसु असज्जमाणा	१४-६	ते समत्या उ उद्धत्तु	२५-३३	था	
ते कित्तइस्सामि अहाणुपुव्वि	३२-६	ते सव्वे उ वियाहिया	३६-१५८	थावरा तिविहा तहिं	३६-६८
ते खुड्डुए जीविय पच्चमाणा	३२-२०	ते सव्वे परिकित्तिया	३६-१४६, २१७	थो	
तेगिच्छ नाभिनन्देजा	२-३३	ते सव्वे विइया मज्झ	२३-६१	थीकह तु विवज्जए	१६-२
ते घोररूवा ठिय अन्तल्लिक्खे	१२-२५	ते सव्वे वि वियाहिया	३६-१६८	थीकहा य मणोरमा	१६-११
ते चेव खिसई वाले	१७-४	तेसि अन्नमिण देय	२५-८	थु	
ते चेव थोव पि कयाइ दुक्ख	३२-१००	तेसि इहलोइयफलट्ठा	१५-१०	थुइ मगल च का ऊण	२६-४२
ते छिन्दित्तु जहानाय	२३-४३	तेसि पुण दुल्लहा वोही	३६-२५७, २५६	थे	
ते जिणित्तु जहानाय	२३-३८	तेसि पुत्ते वल्लिसरी	१६-२	थो	
तेण धम्मे दुहा कए	२३-२६	तेसि फलविधाणेण	१३-८	थोव चिट्ठइ लम्बमाणए	१०-२
तेण पर वोच्छामि	३४-४४, ४७, ५१	तेसि भोए सुणेह मे	३६-६६, १०७, १२७, १३६, १४५, १७१		
तेणावि ज कय कम्म	१८-१७	तेसि विमोक्खणट्ठाए	८-३, २५-१०		
तेणावि से न सत्तुस्से	८-१६				

द		दव्वाण सव्वभावा	२८-२४	दिट्ठीए दिट्ठिसपन्ने	१८-३३
दत्तणं चरण तहा	२४-५	दव्वे खेत्ते काले	३०-२४	दिणभागेसु चउसु वि	२६-११
दसणनाणचरित्ते	२८-२५	दस उदही पल्लोवम	३४-४२	दित्तं च कामा समभिद्वन्ति	३२-१०
दसणसम्पन्नाए ण भन्ते । जीवे किं	२६सू०६१	दस उदही पल्लिय	३४-४३	दिन्न भुजेज्ज भोयणं	६-७
दसणावरण तहा	३३-२	दस उदही पल्लियमसखभागमब्भहिया	३४-३५	दिन्ना मु रन्ना मणसा न भाया	१२-२१
दसणे उ भइयव्व	२८-२६	दस ऊ सागरोवमा	३६-२२७	दिया कामकमा इव	१४-४४
दसणे केवले य आवरणे	३३-६, ३६-६	दस चेव उ सागरोवमा	३६-१६४	दिवसस्स चउरो भागे	२६-११
दसणे चरणे तहा	३३-८	दस चेव नपुसेसु	३६-५१	दिवसस्स पोरुसीण	३०-२०
दसणेण तवेण य	१६-६४	दस चेव सहस्साइं	३६-१०२	दिव्व च गइ गच्छन्ति	१८-२५
दसणेण य सद्दे	२८-३५	दस चेव सागराईं	३६-२२६	दिव्वजुयलपरिहिओ	२२-६
दसणे तिविह वुत्त	३३-८	दसणभट्ठो निक्खन्तो	१८-४४	दिव्वमाणुसतेरिच्छ	२५-२५
दसमसगवेयणा	१६-३१	दसणरज्ज मुइय	१८-४४	दिव्वा तहिं वसुहारा य वुट्ठा	१२-३६
दच्चा भोच्चा य जट्ठा य	६-३८	दसमा उवसम्पदा	२६-४	दिव्वा 'मणुस्सगा तहा तिरिच्छा'	१५-१४
दट्ठु यल नाभिसमेइ तीर	१३-३०	दस वास सहस्साइ	३४-४१, ४८, ५३	दिव्वा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा	२१-१६
दट्ठु ववस्से समणे तवस्सी	३२-१४	दसवाससहस्सिया	३६-१६०, २१६, २२०	दिव्वा वरिससओवमा	१८-२८
दट्ठूण नरवइ महिड्ढिय	१३-२८	दस सागरोवमा ऊ	३६-१६३	दिव्वेण गगण फुसे	२२-१२
दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता	१४-४	दसहा उ जिणित्ताणं	२३-३६	दिव्वे य जे उवसगो	३१-५
दट्ठूण रहनेमि त	२२-३६	दसहा उ भवणवासी	३६-२०५	दिसाविचारिणो चेव	३६-२०८
दड्ढपुव्वो अणन्तसो	१६-५०	दस 'होन्ति सागरा मुहुत्ताहिया'	३४-३८	दिस्स पाणे पियायए	६-६
दड्ढो पक्को य अवसो	१६-५७	दसारचक्केण य सो	२२-११	दिस्स पाणे भयद्दुए	२२-१४
दढ परिणिहई तव	२७-१६	दसारा य वहु जणा	२२-२७	दी	
दण्डसत्तलभएसु य	१६-६१	दा		दीव क मन्नसी ? मुणी !	२३-६५
दण्डाण गारवाण च	३१-४	दाणे लाभे य भोगे य	३३-१५	दीवप्पणट्ठे व अणन्तमोहे	४-५
दण्डेहि वित्तेहि कसेहि चेव	१२-१६	दायरमन्न अणुसकमन्ति	१३-२५	दीवे य इइ के वुत्ते ?	२३-६७
दन्तसोहणमाइस्स	१६-२७	दारे से सुहोइए	२१-५	दीवोदहिदिसा वाया	३६-२०६
दयाए परिनिव्वुडे	१८-३५	दाराणि य सुया चेव	१८-१४	दीसन्ति बह्वे लोए	२४-४०
दयाधम्मस्स खन्तिए	५-३०	दारुणा गामकण्ठगा	२-२५	दीहाउया इड्ढिमन्ता	५-२७
दवगिणा जहा रणो	१४-४२	दारे य परिरिक्खिए	१८-१६	दीहामयविप्पमुक्को पसत्थो	३२-११०
दवदवस्स चरई	१७-८	दासा दसण्णे आसी	१३-६	दु	
दव्वओ खेत्तकालेण	३०-१४	दाहामु तुज्ज किमिह ठिओ सि ?	१२-११	दुक्कडस्स य चोयण	१-२८
दव्वओ खेत्तओ चेव	२४-६, ३६-३	दि		दुक्कर खल्लु भो निच्च	२-२८
दव्वओ चयमुसा पेहे	२४-७	दिगिच्छापारिगए देहे	२-२	दुक्कर चरिउ तवो	१६-३७
दव्व इयिक्कमाहिय	२८-८	दिज्जाहि मम कारणा	२०-२४	दुक्कर जे करन्ति त	१६-१६
दम्बाण य गुणाण य	२८-५	दिट्ठपुव्व मए पुरा	१६-६	दुक्कर दमसागरो	१६-४२
		दिट्ठीए अणिमिसाए उ	१६-६	दुक्कर मंदरो गिरी	१६-४१

दुक्कर रयणागरो	१६-४२	दुल्लहया काएण फासया	१०-२०	दे	
दुक्कर समणत्तण	१६-४१	दुल्लहाणीह जन्तुणो	३-१	देइ व पच्चक्खाण	२६-२६
दुक्कराइ निवारेउ	३५-५	दुल्लहा तस्स रम्मज्जा	७-१८	देवकामाण अन्तिए	७-१२, २३
दुक्ख खु भिक्खायरियाविहारो	१४-३३	दुवालसग जिणक्खाय	२४-३	देवत्त माणुसत्त च	७-१७
दुक्ख च जाईमरण वयन्ति	३२-७	दुविह खवेळण य पुण्णपाव	२१-२४	देवदाणवगन्धवा	१६-१६, २४-२०
दुक्ख निप्पडिकम्मया	१६-७५	दुविह तु वियाहिय	३३-१०	देवमणुस्सपरिवुडो	२२-२२
दुक्ख वम्भवय धोर	१६-३३	दुविह दोगइ गए	७-१८	देवाउय चउत्थ तु	३३-१२
दुक्ख भिक्खायरिया	१६-३२	‘दुविहा अणसणा’ भवे	३०-६	देवा चउत्थिहा वुत्ता	३६-२०४
दुक्ख ह्य जस्स न होइ मोहो	३२-८	दुविहा आउजीवा उ	३६-८४	देवाण तु वियाहिया	३६-२४५
दुक्खकेसाण भायण	१६-१२	दुविहा जीवा वियाहिया	३६-४८	देवाण हुज्ज अन्तर	३६-२४६
दुक्खमा ह पुणो पुणो	२०-३१	दुविहा तेउजीवा उ	३६-१०८	देवा भवित्ताण पुरे भवम्मी	१४-१
दुक्खस्सन्तगवेसिणो	१४-५१	दुविहा ते पकित्तिया	३६-१२७, १३६, १४५	देवामिओगेण निओडएण	१२-२१
दुक्खस्सन्तमुवागया	१४-५२	दुविहा ते वियाहिया	३६-१७, ६८, ७१, ६३, १७०, २०६, २१२	देवा य जहोइय समोइण्णा	२२-२१
दुक्खस्स सपीलमुवेइ वाले	३२-२६, ३६, ५२, ६५, ७८, ६१	दुविहा थलयरा भवे	३६-१७६	देवा य देवलोगम्मि	१३-७
दुक्खस्स हेउ मणुयस्स रागिणो	३२-१००	दुविहा पुढवीजीवा उ	३६-७०	देविन्द इणमव्ववी ६-८, १३, १६, २५, २६, ३३, ३६, ४३, ४७, ५२	
दुक्खानन्तकरो भवे	३५-१	दुविहा वणस्सईजीवा	३६-६२	देविन्दो इणमव्ववी ६-११, १७, २३, २७, ३१, ३७, ४१, ४५, ५०	
दुक्खिया बहुवेयणा	३-६	दुविहा वाउजीवा उ	३६-११७	देवो दोगुन्दगो चेव	१६-३
दुगइ उववज्जई बहुसो	३४-५६	दुविहावि ते भवे तिविहा	३६-१७१	देवे नेरइए य अइगओ	१०-१४
दुज्जए कामभोगे य	१६-१४	दुविहा वेमाणिया तहा	३६-२०५	देवे वा अप्परए महिडिइए	१-४८
दुज्जय चेव अप्पाण	६-३६	दुविहा सा वियाहिया	३०-१२	देवे वावि महिडिइए	५-२५
दुट्ठसो परिघावई	२३-५५, ५८	दुसओ तेयालो वा	३४-२०	देवेसु उववज्जई	७-२६
दुण्णुदही पलिओवम	३४-५३	दुस्साहड घण हिच्चा	७-८	देवो दोगुन्दओ जहा	२१-७
दुहन्तदोसेण सएण जन्तु	३२-२५, ३८, ५१, ६४, ७७, ६०	दुस्सोल परियागय	५-२१	देसिओ वड्ढमाणेण	२३-१२, २३, २६
दुहन्तो भजए जुग	२७-७	दुस्सीले रमई मिए	१-५	देसिय च अईयार	२६-३६
दुद्धदहीविगईओ	१७-१५	दुस्सीसा वि ह तारिसा	२७-८	देसिय तु अईयार	२६-४०
दुन्नि ऊ सागरोवमा	३६-२२४	दुहओ गई वालस्स	७-१७	दो	
दुप्पट्ठियसुपट्ठिओ	२०-३७	दुहओ मल संचिणइ	५-१०	दोउदही पलियमसखभागमव्वहिया	३४-३७
दुप्परिच्चया इमे कामा	८-६	दुहओ वि समिए सया	२४-१४	‘दोगुछी अप्पणो पाए’	६-७
दुव्विमगन्धा तहेव य	३६-१७	दुहओ वि से भिज्जइ तत्थ लोए	२०-४६	दोगुछी लज्जसजए	२-४
दुम जहा खीणफल व पक्खी	१३-३१	दुहओ सम्मत्तसजुया	१४-२६	दो चेव सागराइ	३६-२२२
दुम जहा साउफल व पक्खी	३२-१०	दुहाण य सुहाण य	२०-३७	दोच्चाए जहन्नेण	३६-१६१
दुमपत्तए पण्डुयए जहा	१०-१	दुहिण वहिण य	१६-७१	दोण्ह अन्नयरै सिया	५-२५
दुलहे खलु माणुसे भवे	१०-४	दुहिया असरणा अत्ता	६-१०	दोमासकय कज्ज	८-१७
				दो वि आवडिया कुड्डे	२५-४०

दोमपओसेहि मुच्चए भिक्खू	८-२
दोसमेव पकुब्बई	२७-११
दोसम्म हेउ अमणुन्नमाहु	३२-२३, ३६, ४६, ६२, ७५, ८८

ध

घण आदाउमिच्छसि	१४-३८
घण पभूय सह इत्थियाहिं	१४-१६
घणवन्नेपेसवओसु	१६-२६
घणिय तु पुण्णाइ अकुब्बमाणो	१३-२१
घणु परक्कम किच्चा	६-२१
घणेण किं घम्मधुराहिगारे	१४-१७
घम्म अकाळण परसि लोए	१३-२१
घम्म कल्लाण पावग	२-४२
घम्म च कुणमाणस्स	१४-२५
घम्म च पेसल नच्चा	८-१६
घम्म चर सुदुच्चर	१८-३३
घम्म पि हु सहहन्त्या	१०-२०
घम्म सुणिता विणओववन्ने	१७-१
घम्म सोळण पव्वइओ	१३-२
घम्म 'सोच्चा अणुत्तर'	२५-४२
घम्मकहाए ण भन्ते । जीवे किं०	२६सू०२४
घम्मज्जिय च ववहार	१-४२
घम्मज्जाण भियायई	१८-४
घम्मतित्थयरे जिणे	२३-१, ५
घम्मत्थिकाए तद्देसे	३६-५
घम्मलद्ध मिय काले	१६-८
घम्ममद्धाए ण भन्ते ! जीवे किं०	२६सू०४
घम्मसाहणमिच्छिय	२३-३१
घम्मसिक्खाए कन्धग	२३-५८
घम्ममुक्काइ भाणाइ	३०-३५
घम्ममुक्काणि भायए	३४-३१
घम्मन्तिओ तस्स हियाणुपेही	१३-१५
घम्माण कासवो मुह	२५-१६
घम्माणुरत्तो विमलेण चेतसा	२०-५८
घम्माघम्मागासा	३६-८

घम्माघम्मे य दोज्जेए	३६-७
घम्मायरियस्स सघसाहूणं	३६-२६५
घम्मारामरए दन्ते	१६-१५
घम्मारामे चरे भिक्खू	१६-१५
घम्मारामे निरारम्भे	२-१५
घम्मे ठिओ सव्वपयाणुकम्पी	१३-३२
घम्मे दुविहे मेहावि ।	२३-२४
घम्मे सपडिवाइओ	२२-४६
घम्मे हरए वम्मे सन्तित्तिये	१२-४६
घम्मो अहम्मो आगास	२८-७, ८
घम्मो किन्ती तहा सुय	११-१५
घम्मो दीवो 'पड्ढा य'	२३-६८
घम्मो सुद्धस्स चिट्ठई	३-१२

धा

धारेउ अ महप्पणो	१६-३३
धारेज्जा पियमप्पिय	१-१४
धारेयव्वं सुदुक्कर	१६-२८
धारेयव्वाइं भिक्खुणो	१६-२४
धारेह निव्वाणगुणावह मह	१६-६८

धि

धिइ च केयण किच्चा	६-२१
धिइम घम्मसारही	१६-१५
धिइमन्ता ववस्सिया	२२-३०
धिरत्थु ते जसोकामी ।	२२-४२
धिरत्थु मम जीविय	२२-२६

धी

धीरस्स पस्स धीरत्त	७-२६
धीरा हु भिक्खायरिय चरन्ति	१४-३५

धु

धुत्ते व कलिता जिए	५-१६
--------------------	------

धो

धोरेयसीला तवसा उदारा	१४-३५
----------------------	-------

न

नञ्जट्ठ पाणहेउ वा	२५-१०
न इमं सव्वेसुज्जारिसु	५-१६

न इमं 'सव्वेसु भिक्खूसु'	५-१६
नई भवे अवि गगासमाणा	३२-१८
न ऊ वय एरिसमन्नपाणं	१२-११
न ओकारेण वम्भणो	२५-२६
न कखे पुव्वसथव	६-४
न कज्ज मज्झ भिक्खेण	२५-३८
न कामभोगा समय उवेन्ति	३२-१०१
न किञ्चि गन्ध अवरज्जई से	३२-५१
न किञ्चि फास अवरज्जई से	३२-७७
न किञ्चि भाव अवरज्जई से	३२-६०
न किञ्चि रूव अवरज्जई से	३२-२५
न किञ्चि सद् अवरज्जई से	३२-३८
न कोवए आयरिय	१-४०
नक्खत्त तमि नहचउठमाए	२६-१६
नक्खत्तपरिवारिए	११-२५
नक्खत्ताण मुह चन्दो	२५-१६
नक्खत्ताण मुह ज च	२५-११
नक्खत्ताण मुह वूहि	२५-१४
न गच्छई सरण तम्मि काले	२०-४५
नगरस्स खेम काळण	६-२८
न गेण्हइ अदत्त जो	२५-२४
न चाइया खोभइउ तिगुत्ता	३२-१६
न चिट्ठे गुरुण्णिए	१-१६
न चित्ता तायए भासा	६-१०
नच्चा उप्पइय दुक्ख	२-३२
नच्चा कम्मविवागय	२-४१
नच्चा नमइ मेहावी	१-४५
न छिन्दे न छिन्दावए	२-२
न जपिय इगियपेहिय वा	३२-१४
न जीवियट्ठा पजहामि भोए	१४-३२
न जुजे ऊरुणा ऊरु	१-१८
नट्टेहि गीएहि य वाइएहि	१३-१४
न त अरी कण्ठछेत्ता करेइ	२०-४८
न त तायन्ति दुस्सील	२५-२८
न त सुदिट्ठ कुसला वयन्ति	१२-३८

न त सुहं कामगुणेषु रायं	१३-१७	न बन्धया बन्धवयं उवेन्ति	४-४	नरएसु वि एगया	३-३
न तस्स दुक्खो विभगन्ति नाइओ	१३-२३	न बम्भयारिस्स खमो निवासो	३२-१३	नरएसु वेइया मए	१६-७२
न तस्स मागा 'व विगा व भाया'	१३-२२	न बम्भयारिस्स हियाय कस्सई	३२-११	नरएसु वेयणा उण्हा	१६-४७
न तस्स सज्जे मि मणुत्तयं या	३२-१०६	न भिगखुणो मगमणुव्वयामो	१३-३०	नरएसु वेयणा सीया	१६-४८
न ताओ मणसीकरे	२-२५	नमिमि अभिणिगसमन्तमि	६-५	नरगतिरिगखत्तण धुव	७-१६
न चुज्ज भोभे चइऊण बुदी	१३-३३	न मित्तयगा न सुया न बन्धवा	१३-२३	नरगाओ न मुच्चई	५-२२
न पुगं जाणे अणाहस्स	२०-१६	नमी नमेइ अप्पाण	६-६१	नरनारि पजहे सया तवस्सी	१५-६
न ते किमि न अज्जिमो	१२-३४	[नमी नमेइ अप्पाणं]	१८	न रसट्ठाए भुजिज्जा	३५-१७
न ते पुगं विगाणासि	२५-१२	नमी राया विदेहेसु	१८-४५	नरस्सज्जवेसिस्स	१६-१३
न ते पीठा भविस्सई	२२-३७	न मुचई किंचि अणेषणिज्ज	२०-४७	नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि	६-४८
न तेसि पडिसंजळे	२-२४	न मुणी रण्णवासेण	२५-२६	न रागसत्तू धरिसेइ चित्त	३२-१२
न तेसि पीहए मुणी	२-३८	न मूढओ छिन्दइ बन्धण से	२०-३६	नराहिय कामगुणेषु गिद्ध	१३-१५
न तेसु भाव निसिरे कयाइ	३२-२१	न मूसगाणं घसाही पसत्या	३२-१३	नरिद । जाई अहमा नराण	१३-१८
न तेसु भिगए मणसा पउस्से	४-११	न मे एग सु निस्सेस	२२-१६	नरिन्देविन्दइभिवन्दिण	१२-२१
नत्थि अमोगदास्स निव्याण	२८-३०	न मे गच्छइ उम्मग	२३-५६	न रुवलावणविलासहास	३२-१४
नत्थि किमि अजाइयं	२-२८	न मे डज्जइ किंचण	६-१४	न लवेज्ज पुट्ठो सावज्ज	१-२५
नत्थि किमि वि दुगकर	१६-४४	न मे दिट्ठे परे लोए	५-५	न लिप्पई तेण मुणी विरागो	३२-२६, ३६, ५२, ६५, ७८, ८१
नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं	२८-२६	न मे निवारण अत्थि	२-७	न लिप्पई भवमज्जे वि सन्तो	३२-६०, ७३, ८६, ८६
नत्थि जीवस्स नासु त्ति	२-२७	नमो ते ससयाईय !	२३-८५	न लिप्पई भवमज्जे वि सन्तो	३२-३४, ४७
नत्थि जोइसमे सत्थे	३५-१२	न य ओहारिणि षए	१-२४	नवणीयस्स व सिरीसकुसुमाण	३४-१६
नत्थि नूणं परे लोए	२-४४	न य कोऊहउ उवेइ स भिक्खू	१५-६	नवमम्मि जहन्नेण	३६-२४२
न वीसई जाइविसेस कोई	१२-३७	न य णं दाहामु तुम नियण्ठा !	१२-१६	नवर पुण सामणो	१६-७५
न निगहसिज्जइ कण्ठई	१-७	न य दुक्खा विमोएइ	२०-२४, २५, ३०	नवहि वरिसेहि ऊणा	३४-४६
न निण्णुविज्ज कयाइ वि	१-११	न य दुक्खा विमोयन्ति	२०-२६, २६, २७	न वा लभेज्जा निज्जण सहायं	३२-५
न निरट्ठं न मम्मय	१-२५	न य पावपरिक्खेयी	११-१२	'न वि कस्सवि उववाओ'	३४-५८, ५९
न निमिज्जन्ति ससारो	३-५	न य मम्ममुदाहरे	११-४	नवि जन्ताण ज सुह	२५-११
न निशीएज्ज कयाइ वि	१-२१	न य मित्तेसु कुप्पई	११-१२	नवि जाणसि वेयमुहं	२५-११
नन्धणे सो उ पासाए	१६-३	न य वित्तासए पर	२-२०	न विज्जई अन्नमिहेह किंचि	१४-४०
नन्दावत्ते म पिट्ठिए	३६-१४७	न याज्जमणुन्नेसु मणं पि कुज्जा	३२-२१	न वि निव्वाहणाय वा	२५-१०
नन्नेसि चरयुपासओ	१-३३	न यावि पूगं गरहं च सजए	२१-१५, २०	न वि मुण्डिएण समणो	२५-२६
न पए न पयावए	२-२	न यावि भोगा पुरिसाण निज्जा	१३-३१	न वि रुट्ठो न वि तुट्ठो	२५-६
न पात्ताओ न पुत्ताओ	१-१८	न यावि भोगा विगइ उवेन्ति	३२-१०१	न वि सा मज्ज दाहिई	२७-१२
न पये न पयावए	३५-१०	नरए उववज्जई	७-२८	न वीएज्जा य अप्पय	२-६
न पारए होइ हू सपराए	२०-४१	नरएसु दुक्खं च तिरिक्खाजोणिसु	१६-१०		
नप्पसयेणं विविहे म भाये	३२-१०२	नरएसु दुक्खालेयणा	१६-७३		

न वीररागस्म करेन्ति किञ्चि	३२-१००	नागो व्व बन्धण छित्ता	१४-४८	नापुटो वागरे किञ्चि	१-१४
न वीरजाय अणुजाइ मग्ग	२०-४०	नागो सगामसीसे वा	२-१०	नाम कम्म तु दुविह	३३-१३
न वीत्तसे पण्डिए आमुपन्ने	४-६	नाण च दसण चेव	२३-३३, २८-२, ३, ११	नामकम्म च गोय च	३३-३
न सत्तसन्ति मरणन्ते	५-२६	नाण नाणीहि देसिय	२८-५	नामगोत्ताण उक्कोसा	३३-२३
न सत्तसे न वारेज्जा	२-११	नाणमि दसणमी	२६-४७	नामाइ तु जहक्कम	३४-३
न मय गिहाड कुज्जा	३५-८	नाणदसणलक्खण	२८-१	नामाइ वण्णरसगन्व-	३४-२
न सव्वत्य विद्याहिया	३६-१३०, १३६, १७३, १८२, १८६	नाणदसणसन्निया	३६-६६, ६७	नामेण सजए नाम	१८-१
न सव्व सव्वत्यऽभिरोयएज्जा	२१-१५	नाणसपन्नयाए ण भन्ते । जीवे किं०	२६सू०६०	नायएज्ज तणामवि	६-७
न सा पडिनियत्तई	१४-२४, २५	नाणस्स केवलीण	३६-२६५	नायए परिनिव्वुए	३६-२६८
न सा पारस्स गामिणी	२३-७१	नाणस्स सव्वस्स पगासणाए	३२-२	नायए परिनिव्वुडे	१८-२४
न सा मम विद्याणाइ	२७-१२	नाणस्सावरणिज्ज	३३-२	नायव्व दसणावरण	३३-६
न सिणेहं कहिञ्चि कुब्बेज्जा	८-२	नाणाकुमुमसच्छन्त	२०-३	नायव्वा अमोरत्ताओ	२६-१५
न सिया अइल्लोए	११-५	नाणागोत्तासु जाइसु	३-२	नायव्वा काउलेसाए	३४-३६
न सिया तोत्तगवेसए	१-४०	नाणादुमलयाइण्णं	२०-३	नायव्वा काउलेसाए	३४-३७
न से इह नेव परत्य लोए	१७-२०	नाणाघन्नपडिपुणो	११-२६	नायव्वा नीललेसाए	३४-३५
न सो सुयक्खायधम्मस्स	६-४४	नाणापक्खिनिसेविय	२०-३	नायव्वा पम्हलेसाए	३४-३८
न सो होड पससिओ	१४-३८	नाणारयणपडिपुणो	११-३०	नायव्वा सुक्कलेसाए	३४-३६, ४६
नह ओगाहलक्खण	२८-६	नाणारुड च छन्द च	१८-३०	नायव्वो होइ इत्तरिओ	३०-११
'न हणे पाणिणो पाणे'	६-६	नाणावज्जणसजुय	१२-३४	नारीजणाइ परिवारयन्तो	१३-१४
न हु जिणे अज्ज दिम्सई	१०-३१	नाणावरणं पचविह	३३-४	नारीसु नोपगिज्जेज्जा	८-१६
न हु ते ममणा वुच्चन्ति	८-१३	नाणाविहविगप्पणं	२३-३२	नाल ते मम ताणाए	६-३
न हु दाहामि ते भिक्ख	२५-६	नाणासीला अगारत्था	५-१६	नावकखे कयाइ वि	६-१३
न हु पाणवह अणुजाणे	८-८	नाणी नो परिदेवए	२-१३	नावा य इइ का वुत्ता ?	२३-७२
न हु मुणी कोवपरा हवन्ति	१२-३१	नाणुचिन्ते कयाइ वि	१६-६	नावा विपरिधावई	२३-७०
न हु सी पभू तुम पुत्ता ।	१६-३४	'नाणुतप्पेज्ज पन्नव'	२-३६	नासन्ने नाइदूरओ	१-३४
नहेव कुचा समइवकमन्ता	१४-३६	नाणुतप्पेज्ज सजए	२-३०	नासन्ने विलवज्जिए	२४-१८
ना		नाणेण दसणेण च	२२-२६, २८-१०	नासीले न विसीले	११-५
नाइउच्चे व नीए वा	१-३४	नाणेण जाणई भावे	२८-३५	नाह रमे पक्खिणि पजरे वा	१४-४१
नाइदूरमणासन्ने	१-३३, २०-७	नाणेण य मुणी होइ	२५-३०	नाहो मज्झ न विज्जई	२०-६
नाइमत्त तु भुजेज्जा	१६-८	नाणेण विणा न हुन्ति चरणगुणा	२८-३०	नि	
नाइविगिट्ठ तव चरे	३६-२५३	नाणे दसणे चेव	२६-३६	निकेयमिच्छेज्ज विवेगजोग	३२-४
नाइवेल मुणी गच्छे	२-६	नाणोसहिपज्जलिए	११-२६	निकसिज्जइ सव्वसो	१-४
नाइवेल विहन्तेज्जा	२-२२	नादसणिस्स नाण	२८-३०	निकखन्ता जिणसासणे	१८-४६
नागो जहा पक्कज्जावसन्नो	१३-३०	नानमन्ति नराहिवा ।	६-३२	निकखन्तो जिणसासणे	१८-१६

निकलमण तस्स काचं जे	२२-२१	निम्ममत्त मुदुक्कर	१६-२६	निसग्गुवएसरुई	२८-१६
निकलमिय वारगाओ	२२-२२	निम्ममो निरहकारो	१६-८६; ३५-२१	निसन्ते सियाऽमुहरी	१-८
निक्खित्ताण भायणं	२६-३६	निम्मोयणि हिच्च पल्लेइ मुत्तो	१४-३४	निमन्न रुक्खमूलम्मि	२०-४
निगमे य आगरे पल्ली	३०-१६	नियगाओ भवणाओ	२२-१३	निसीएज्जप्पकुक्कुए	१-३०
निगमे वा रायहाणिए	२-१८	नियडिल्ले अणुज्जुए	३४-२५	निसेज्ज पायकम्बल	१७-७
निगग्यो वि न करेज्ज छहिं चेव	२६-३३	नियण्ठ घम्म लहियाण वी जहा	२०-३८	निस्सकिय निक्कखिय	२८-३१
निगग्ये पावयणे	२१-२	नियत्तेज्ज जय जई	२४-२१, २३, २५	निस्सगो चत्तगारवो	१६-८६
निगग्यो विइमन्तो	२६-३३	नियत्तो हाससोगाओ	१६-६१	निस्समो अजिइन्दिओ	३४-२२
निगया होहिई मन्ने	२७-१२	नियाणमसुह कळ	१३-२८	निहन्तूण उवायओ	२३-४१
निच्च भोएण तत्थेण	१६-७१	निरगणे मव्वओ विप्पमुक्के	२१-२४	निहिय दुहओ वि विरायइ	११-१५
निच्च मुडयमाणसो	१६-३	निरट्ठगम्मि विरओ	१-४२	नो	
निच्चकालप्पमत्तेण	१६-२६	निरट्ठमोया परियावमेइ	२०-५०	नीया तन्तवगाविय	३६-१४८
निच्चसो परिवज्जए	१६-३, ७, १०, १४	निरट्ठाणि उ वज्जए	१-८	नीयावत्ती अचवले	११-१०
निच्चाउत्तेण दुक्कर	१६-२६	निरट्ठिया नगहई उ तस्स	२०-४६	नीयावित्ती अचवले	३४-२७
निज्जाइ उदग व थलाओ	८-६	निरवकखा विडज्जिया	३०-६	नीललेस तु परिणमे	३४-२४
निजाओ वणिहपुगवो	२२-१३	निरवेक्खो परिव्वए	६-१५	नीललेसा उ वण्णओ	३४-५
निजाण पावगं इमं	२१-६	निरस्साए उ सजमे	१६-३७	नीलाऽमोसकासा	३४-५
निज्जहिक्कण आहार	३५-२०	निरासवे सखविआण कम्म	२०-५२	नीहरन्ति मय पुत्ता	१८-१५
निहा तहेव पयला	३३-५	निरोवलेवाइ असथडाड	२१-२२	नीहारिमणीहारी	३०-१३
निहानिहा य पयलपयला य	३५-५	निवडइ राइगणाण अच्चए	१०-१	नीहासा य निराणन्दा	२२-२८
निहासीले पगामसो	१७-३	निवेसइ निवज्जई	२७-५	ने	
निद्वन्तमलपावग	२५-२१	निव्वत्तई जस्स कएण दुक्ख	३२-३२, ४५, ५८, ७१, ८४, ८७	नेच्छई सामुदाणिय	१७-१६
निद्वन्वसपरिणामो	३४-२२	निव्वत्तयन्ती अमणुन्तय वा	३२-१०६	नेयाउय दट्ठमदट्ठमेव	४-५
निद्वणित्ताण निगओ	१६-८७	निव्वाण च न गच्छइ	११-६	नेयारिस दुत्तरमत्थि लोए	३२-१७
निन्दणयाए ण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?	२६५०७	निव्वाण ति अवाहं ति	२३-८३	नेरइयतिरिक्खाउ	३३-१२
निन्नेहा निप्परिगहा	१४-४६	निव्वाण परम जाइ	३-१२	नेरइयतिरिक्खा य	३६-१५५
निव्वेरियच्छे रहिर वमन्ते	१२-२६	निव्वाणमग विरए उवेइ	२१-२०	नेरइयाणं तु अन्तर	३६-१६८
निमतयन्त च सुए घणेण	१४-११	निव्वावारस्स भिक्खुणो	६-१५	नेरइयाण विआहिया	३६-१६७
निमज्जिउ मोहमहणवम्मि	३२-१०५	निव्विण्णकामो मि महण्णवाओ	१६-१०	नेरइया सत्तविहा	३६-१५६
निमन्तिओ य भोगेहिं	२०-५०	निव्विणमसारभया जहाय	१४-२	नेव किच्चाण पिट्ठओ	१-१८
निमित्त कोऊहल संपगाडे	२०-४५	निव्वित्तिगिच्छा अमूळदिट्ठी य	२८-३१	नेव कुज्जा कयाइ वि	१-१७
निमित्तेण य ववहरई	१७-१८	निव्विसया निरामिसा	१४-४६	नेव कुज्जा परिगह	२-१६
निमेसन्तरमित्त पि	१६-७४	निव्वेएण भन्ते ! जीवे किं	२६५०३	नेव चिट्ठे न सलवे	१-२६
निम्बरसो कट्टयरोहिणीरसो वा	३४-१०	निसगगइ त्ति नायव्वो	२८-१८	नेव ताणाय त तव	१४-३६
				नेव पल्हत्थिय कुज्जा	१-१६

नेव नेजागओ कया	१-२२	पओगकाले य दुही दुरन्ते	३२-३१,४४,५७,	पचेव समिइओ	२४-१
नेहपासा भयकरा	२३-४३		७०,८३,९६	पजली पडिपुच्छई	२०-७
नो		पकभूया उ इत्थिओ	२-१७	पडिया पवियक्खणा	९-६२
नो अइमायाए पाणभोगण आहरेत्ता हवइ	१६सू०१०	पकाभा धूमाभा	३६-१५७	पकप्पम्मि तहेव य	३१-१८
नो इत्थीण इन्दियाड	१६ सू० ६	पकेण व रएण व	२-३६	पक्ककविट्ठस्स वावि जारिसओ	३४-१३
नो इत्थीण कह कहित्ता हवइ	१६ सू० ४	पखाविहूणो व्व जहेह पक्खी	१४-३०	पक्कपुव्वो अणन्तसो	१६-४६
नो इत्थीण कुटुन्तरसि वा...	१६ सू० ७	पच जिए जिया दस	२३-३६	पक्कमन्ति दिसोदिसि	२७-१४
नो इत्थीहि सद्धि	१६ सू० ५	पचम कुसतणाणि य	२३-१७	पक्कमन्ति महेसिणो	२८-३६
नो इन्दियगेज्ज अमुत्तभावा	१४-१६	पचमम्मि जहन्नेण	३६-२३८	पक्खपिण्ड व सजए	१-१६
नो एण पडिवज्जए	३-१०	पचमहव्वयजुत्तो	१६-८८	पक्खिणो य चउव्विहा	३६-१८८
नोकसाय तहेव य	३३-१०	पचमहव्वयघम्म	२३-८७	पक्खी पत्त समादाया	६-१५
नो ताहि विणिहन्नेजा	२-१७	पचमाए जहन्नेण	३६-१६४	पक्खेण य दुअगुल	२६-१४
नो तेसि वयइ सिलोगपूय	१५-६	पचमा छदणा नाम	२६ ३	पगाढा जत्थ वेयणा	५-१२
नो तेसिमारभे दड	८-१०	पचमा होइ नायव्वा	३३-५	पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा	१४-१३
नो निग्गये पुव्वरय पुव्वकीलिय अणुसरित्ता		पचमुट्ठोहि समाहिओ	२२-२४	पच्चक्खाणेण भन्ते । जीवे किं...	२६सू०१४
हवइ	१६ सू० ८	पचमो छट्ठओ पइणतवो	३०-११	पच्चयत्थ च लोगस्स	२३-३२
नो पणीय आहार आहरित्ता हवइ	१६सू०९	पचलक्खणए तुम	१६-४३	पच्चागया छट्ठा	३०-१६
नो रक्खसीमु गिज्जेजा	८-१८	पचविहमन्तरायं	३३-१५	पच्चुप्पन्नपरायणे	७-६
नोवल्लिप्पइ वारिणा	२५-२६	पचविहा जोइसिया	३६-२०५	पच्छा कडुयविवागा	१६-११
नो विभुसाणुवाई हवइ, से निग्गये	१६सू०११	पचविहे कामगुणे	१६-१०	पच्छा गमिस्सामु पहाणमग्ग	१४-३१
नो वि य वन्दण कुओ पसस	१५-५	पचसमिओ निगुत्तिगुत्तो य	१६-८८	पच्छा जाया । गमिस्सामो	१४-२६
नो मविक्रयमिच्छई न पूय	१५-५	पचसमिओ तिगुत्तो	३०-३	पच्छाणुतावेण दयाविहूणो	२०-४८
नो सट्ठवरमगन्वफासाणुवाई हवइ	१६सू०१२	पचहाणुत्तरा सुरा	३६-२१६	पच्छाणुतावेय तवप्पभाव	३२-१०४
नो मुत्तहा अवीरपुरिसेहि	८-६	पचहा जलयराहिया	३६-१७२	पच्छा दिट्ठो य तीइ वि	२२-३४
नो हीलए नो वि य विसएजा	१६-८३	पचहा जोइसालया	३६-२०८	पच्छा घम्म चरिस्ससि	१६-४३
नो हीलए पिण्ड नीरस्स तु	१५-१३	पचहा ते पक्कित्तिया	३६-१६-१८,२१,८५,	पच्छा पच्छाणुतावए	१०-३३
प			११८	पच्छा परिन्नाय मलावघसी	४-७
पज्जग दिट्ठिवाओ य	२८-२३	पचालराया । वयण सुणाहि	१३-२६	पच्छा पुरा व चइयव्वे	१६-१३
पइण वाई दुहिले	११-६	पचालराया वि य वम्भदत्तो	१३-३४	पच्छायइत्ता नियग सरीर	१२-८
पइणिकुव्वसय लद्धु	२-२३	पचालेसु य दुम्मुहो	१८-४५	पज्जत्तमपज्जत्ता	३६-७०,८४,९२,१०८,
वइरिक्के परकडे वा	३५-६	पचासवप्पवत्तो	३४-२१		११७,१२७,१३६,१४५
पउज्ज षम विहि	२४-१३	पचिन्दियकायमइगओ	१०-१३	पज तवचरओ भवे भिक्खू	३०-२४
पएमग्ग येत्तकाले य	३३-१६	पचिन्दियतिरिक्खाओ	३६-१७०	पज्जवाण च सव्वेसि	२८-५
प एमग्गमग्ग-वग्ग	३३-१७	पचिन्दिया उ जे जीवा	३६-१५५	पज्जवाण तु लक्खण	२८-१३
		पचिन्दियाणि कोह	६-३६	पट्ठणमडम्बसवाहे	३०-१६

पडन्ति नरए घोरे	१८-२५	पढमम्मि जहन्नेण	३६-२३४	पन्नरस तीमइ चिहा	३६-१६७
पडिक्कम्म को कुण्ड	१६-७६	पढमा आवस्सिया नाम	२६-२	पन्ता समिक्खए वम्म	२३-२५
पडिकूलेइ अमिक्खण	२७-११	पढमाए जहन्नेण	३६-१६०	पन्ने अमिभूय सव्वदसी	१५-२, १५
पडिक्कमणेण भन्ते । जीवे किं...	१६सू०१२	पढमे वए महाराया ।	२०-१६	पण्णोति मच्चु पुरिसे जर च	१४-१४
पडिक्कमामि पसिणाण	१८-३१	पढमे वासचउक्कम्मि	३६-२५२	पफोडणा चउत्थी	२६-२६
पडिक्कमित्ता कालस्म	२६-३७	पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु	३४-५८	पवन्व च न कुव्वई	११-११
पडिक्कमित्तु कालस्म	२६-४५	पणगजीवाण अन्तर	३६-१०४	पवन्व च पकुव्वई	११-७
पडिक्कमित्तु निस्मट्ठो	२६-४१, ४६	पणयालसयसहस्सा	३६-५८	पवभट्टा ममाहिजोएहिं	८-१४
पडिगाहेज्ज सजए	१-३४	पणवीमभावणाहिं	३१-१७	पभाससे किंत्तु सगासि अम्ह	१२-१६
पडिच्छन्तमि सवुट्टे	१-३५	पणवीस सागराइ	३६-२३६	पभीओ परलोगम्म	५-११
पडिणीए अमवुट्टे	१-३	पणीय पाणभोयण	३०-२६	पभूयवणसचओ	२०-१८
पडिणीय च बुढाण	१-१७	पणीय भत्तपाण च	१६-१२	पभूयग्यणो राया	२०-२
पडिपुच्छणयाए ण भन्ते ! जीवे किं जणयड ?	२६सू०२१	पणीय भत्तपाण तु	१६-७	पमज्जेज्ज जय जई	२४-१४
		पण्डियाण सकाम तु	५-३	पमत्ते य अमिक्खण	१७-८
पडिपुण्ण दलेज्ज इक्कम्म	८-१६	पण्डियाण सुणेह मे	५-१७	पमत्ते रसलोलुए साय गवेसए य	३४-२३
पडिपुण्ण नालमेगस्म	६-४६	पण्डिया पवियक्खणा	१६-६६, २२-४६	पम्हलेस तु परिणमे	३४-३०
पडिपुण्णो पुण्णमामीए	११-२५	पण्डुपणगमट्टिया	३६-७२	पम्हलेसा उ वण्णओ	३४-८
पडिम पडिवज्जओ	२-४३	पण्डुरा निम्मला मुहा	३६-६१	पयओ त पडिस्सुणे	१-२७
पडिस्म पडिवत्ति	२३-१६	पत्त दुक्ख अणन्तसो	१६-६१	पयण पयावणेमु य	३५-१०
पडिस्मयाए ण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?	२६सू०४३	पत्तपुण्णफलोवेए	६-६	पयणुकोहमाणे य	३४-२६
		पत्तिएण पसायए	१-४१	पयहित्तु महाजमो	१८-४६
पडिस्सवेण एमिता	१-३२	पत्तीइ मद्दाइ मुहासियाइ	१२-२४	पयाइ जो पसरई उ सम्मत्त	२८-२२
पडिलेहण कुणन्तो	२६-२६	पत्तेगमरीरा उ	३६-६४	पयाहिण करेन्तो	६-५६
पडिलेहणाअणाउत्ते	१७-६	पत्तेगा य तहेव य	३६-६३	पर अण्णाणमेव य	२५-८, १२, १५, ३३, ३७
पडिलेहणापमत्तो	२६-३०	पत्तेया इति आहिया	३६-६५	पर भव सुदर पावग वा	१३-२४
पडिलेहिज्ज गोच्छग	२६-२३	पत्ते वाणारसिं पुरिं	२५-२	पर सवेगमागओ	२१-१०
पडिलेहिज्ज जय जई	२६-३८	पत्तो गद्धमणुत्तर	१८-३८, ४०, ४२, ४३, ४७	पर करणे पडिपुच्छणा	२६-५
पडिलेहिताण भण्डय	२६-२१	पत्तो वेयरणि नदिं	१६-५६	परगेहसि वावडे	१७-१८
पडिलेहिता मुणी कुज्जा	२६-२०	पन्त सयणासण भइत्ता	१५-४	परपासण्ड सेवए	१७-१७
पडिलेहेइ पमत्ते	१७-६, १०	पन्तकुलाइ परिव्वए स भिक्खू	१५-१३	परण्णवित्तस्स उ भिक्खकाले	१२-६
पडिवज्जइ भावओ	२३-८७	पन्ताणि चेव सवेज्जा	८-१२	परमट्टपएहिं चिट्ठई	२१-२१
पडिवज्जिया पच महव्वयाणि	२१-१२	पन्तोवहिं उवगरण	१२-४	परमत्यमथवो वा	२८-२८
पडिसोओ व्व दुत्तरो	१६-३६	पडुट्टचित्तो य चिणाइ कम्म	३२-३३, ४६, ५६	परमद्वजोयणाओ	२६-३५
पढम पय पसत्य	२६-२८		७२, ८५, ६८	परमन्तेहिं वा पुणो	१८-३१
पढम पोरिसिं सज्जाम	२६-१२, १८, ४३	पवावन्त निगिण्हामि	२३-५६	परमाणुगो य वोद्धवा	३६-१०

परमा दृहसवद्धा	१६-७१	परिहारविसुद्धीय	२८-३२	पसन्न ते तथा मणो	१८-२०
परमाहम्मिएमु य	३१-१२	परुवणा तेसि भवे	३६-३	पसन्ता लाभइस्सन्ति	१-४६
परलोए अणिसिओ	१६-६२	परे भवे अत्थि जीवस्स	३४-५८, ५९	पसवो दासपोस्स	३-१७, ६-५
परलोगे भविस्सई	२२-१६	परेसु घासमेसेज्जा	२-३०	पसायए ते ह्व दुरासय पि	१-१३
परस्सणुवघाइए	२४-१७	पलदूलसणकन्दे य	३६-६७	पसायपेही नियागट्ठी	१-२०
पराइओ वाहिरिवोसहेहि	३२-१२	पलाल फासुय तत्थ	२३-१७	पसारियाबाहु अकम्मचेट्ठे	१२-२६
परिगह इत्थिओ माणमाय	१२-४१	पलिउचग ओवहिए	३४-२५	पसाहि पचाल गुणोववेयं	१३ १३-
परिगहविवज्जण	१६-२६	पलिओवमऽट्ठभागो	३६-२२१	पसिडिलपलम्बलोलो	२६-२७
परिगहारम्भनियत्तदोसा	१४-४१	पलिओवम जहन्ता	३४-५२	पसुत्तो मि नराहिवा ।	२०-३३-
परिजुणेहि वत्थेहि	२-१२	पलिओवम तु एग	३६-२२१	पसुवन्धा सव्ववेया	२५-२८
परिजूरइ ते सरीरय	१०-२१, २२, २३, २४, २५, २६	पलिओवमस्स भागो	३६-१६१	पहणे कम्ममहाणव	१८-४८
परिणामो तेसि पचहा	३६-१५	पलिओवमाइ तिण्णि उ	३६-२००, २०१	पहयाओ दुन्दुहीओ सुरेहि	१२-३६
परिणामो न सुन्दरो	१६-१७	पलिओवमाउ तिण्णि उ	३६-१८४, १८५	पहा छायातवे इ वा	२८-१२
परिदाहेण तज्जिए	२-८	पलिओवममेग तु	३६-२२०	पहाय ते पास पयट्टिए नरे	४-२
परिभोगेसणा य जा	२४-११	पलियमसख च उक्कोसा	३४-५०	पहाय राग च तहेव दोस	२१-१६
परिभोयमि चउक्क	२४-१२	पलियमसख तु उक्कोसा	३४-४६	पहीणपुत्तस्स ह्व नत्थि वासो	१४-२६
परिमडलसठाणे	३६-४२	पलियमसखिज्ज इमो	३४-४८	पहीणपुत्तो मि तथा अह पि	१४-३०
परिमण्डला य वट्ठा	३६-२१	पलियमसखेज्जेण	३४-५२	पहीयए कामगुणेषु तण्हा	३२-१०७
परिमिय चेव आयाम	३६-२५४	पलेन्ति पुत्ता य पई य मज्झ	१४-३६	पहू दुक्खे विमुच्चई	३५-२०
परियट्ठणयाए ण भन्ते । जीवे कि...	२६सू०२२	पल्लोयाणुल्लया चेव	३६-१२६	पा	
परियट्ठन्तीए राईए	२०-३३	पवज्जअस्सिओ मुणी	३५-२	पाइओ कलकलताइ	१६-६८
परियायघम्म चऽभरोयएजा	२१-११	पवेइया आवसहा य रम्मा	१३-१३	पाइओ मि जलतीओ	१६-७०
परिवज्जण रसाण तु	३०-२६	पवेसेज्ज अरी कुद्धो	२०-२०	पाउ होई सुदुक्कर	१६-३६
परिवज्जित्तु सजए	२४-१०	पव्वइओऽणगारिय	२०-३४	पाए पसारिए वावि	१-१६
परिवज्जेज्ज सजए	१८-३०	पव्वइओ हि सि अणगारिय	१०-२६	पागार कारइत्ताण	६-१८
परिवाडीए न चिट्ठेज्जा	१-३२	पव्वए अणगारिय	२०-३२; २१-१०	पाडिओ फालियो छिन्नो	१६-५४
परिवूडे परदमे	७-६	पव्वज्ज सा जिणस्स उ	२२-२८	पाढव सरीर हिच्चा	३-१३
परिव्वयन्ते अणियत्तकामे	१४-१४	पव्वज्जमवमुवगओ	१८-३६	पाणभूयदयट्ठाए	३५-१०
परिमप्पा द्रुविहा भवे	३६-१८१	पव्वज्जठाणमुत्तम	६-६	पाणयम्मि जहन्नेण	३६-२३१
परिसहाण पविभत्ती	२-१	पव्वयन्तो न सोयइ	२५-२०	पाणवह मिया अयाणन्ता	८-७
परीसहा द्रुव्विसहा अणेगे	२१-१७	पव्वावेसी तहि वहु	२२-३२	पाणवहमुसवाया	३०-२
परीसहे आयगुत्ते नहेजा	२१-१६	पसत्यदमसासणे	१६-६३	ण।पाइ भूयाइ विहेडयन्ता	१२-३६
परिसुवक्कमुहेऽदिणे	२-५	पसत्यलेसाण तिण्ह पि	३४-१७, १६	पाणाइ वाय विरइ	१६-२५
परिहायन्ति चरिमन्ते	३६-५६	पसत्याओ अहिट्ठेज्जासि	३४-६१	पाणिणो कम्मकिव्विसा	३-५
		पसन्त चित्ते दस्तप्पा	३४-२६, ३१	पाणिदया तवहेउ	२६-३४

पाणी नां मुष्ममारए	२-२६	पासा य इह के वृत्ता ?	२३-४२	पुच्छई त महामुणि	२५-१३
पाणीपाणदिसोहण	२६-२५	पामायालयणट्ठिओ	१६-४	पुच्छ भन्ते । जहिच्छ ते	२३-२२
पाणे य नाइवाएज्जा	८-६	पासायालयणे ठिओ	२१-८	पुच्छमाणस्स सीसम्स	१-२३
पाय रमा दित्तिकरा नराण	३२-१०	पामिन्ता मे महापन्ने	२२-१५	पुच्छामि ते महाभाग ।	२३-२१
पायच्छित्त तमाहिय	३०-३१	पासित्तु भद्दा छणमाहु भुज्जो	१२-२५	पुच्छिअण मए तुव्वम	२०-५७
पायच्छित्त तु दमविहं	३०-३१	पामेण य महाजसा	२३-२६	पुच्छिअज्जा पजलिउठो	१-२२
पायच्छित्त विणओ	३०-३०	पामेण य महामुणी	२३-१२, २३	पुच्छेज्जा पजलिउठो	२६-६
पायच्छित्तकरणेण भन्ते । जीवे किं	२६सु०१७	पामे समियदसणे	६-४	पुज्जा जम्स पसीयन्ति	१-४६
पायत्ताणीए महया	१८-२	पामेहि कूडजालेहि	१६-६३	पुट्ठो केणइ कण्ठई	२-४०, ४६
पारियकाउस्सगो	२६-४०, ४२, ४८, ५१	पि		पुट्ठो तत्थहियासए	२-३२
पारेवयगीवनिभा	३४-६	पिउणा मय कोसलिएण रन्ता	१२-२२	पुट्ठो य दमममएहि	२-१०
पाव पुरा कम्ममकासि मोहा	१४-२०	पिण्डवाय गवेसए	६-१६	पुट्ठो वा नालिय वए	१-१४
पावकम्मनिरासवे	३०-६	पिण्डवाय चरे मुणी	३५-१६	पुठविक्कायमडगओ	१०-५
पावकम्मपवत्तणे	३१-३	पिण्डोगहपडिमासु	३१-६	पुठवीआउक्काए	२६-३०
पावकम्मेहि पाविओ	१६-५७	पिण्डोलए व दुस्सीले	५-२२	पुठवी आउजीवा य	३६-६६
पावकम्मो अणतसो	१६-५३	पियफरे पियवाई	११-१४	पुठवीकट्ठतिसिमाया	३५-११
पावग परिवज्जए	१-१२	पिय न विज्जई किञ्चि	६-१५	पुठवी छत्तमठिया	३६-५७
पावदिट्ठि त्ति मन्ई	१-३८	पियघम्मे दढघम्मे	३४-२८	पुठवीजीवाण अन्तर	३६-८२
पावदिट्ठी उ अण्णाण	१-३६	पियपुत्तगा दोन्नि वि माहणस्स	१४-५	पुठवी य सक्करा बालुया य	३६-७३
पावदिट्ठी विहन्ई	२-२२	पियमणिय सब्ब तितिकलएज्जा	२१-१५	पुठवी साली जवा चेव	६-४६
पावसमणि त्ति वुच्चई	१७-३ से १६ तक	पियर परमट्टुक्खिया	१८-१५	पुठवीसु सत्तसू भवे	३६-१५६
पावमुयपमगेसु	३१-१६	पियरो वि तहा पुत्ते	१८-१५	पुठो विस्समिया पया	३-२
पावाड कम्माइ पुणोहयामो ?	१२-४०	पिया आणेइ रुविणि	२१-७	पुणो चउत्थीए सज्जाय	२६-१२
पावेसू त दमीसरा !	२२-२५	पिया मे मव्वसार पि	२०-२४	पुणो पुणो वन्दई सक्को	६-५६
पासइ समण मजय	१६-५	पिसायभूय जक्खा य	३६-२०७	पुण्ण पाथासवो तहा	२८-१४
पासजाईपहे बहू	६-२	पिट्ठण्ड नगरमागए	२१-२	पुत्त ठ्वेत्तु रज्जे	६-२
पासण्डा कोउगा मिगा	२३-१६	पिट्ठण्डे ववहरन्तस्स	२१-३	पुत्त दार च नायओ	१६-८७
पासवद्धा सरीरिणो	२३-४०	पी		पुत्त रज्जे ठवित्ताण	१८-३७, ४६
पासमाणो न लिप्पई ताई	८-४	पीणिए विउले देहे	७-२	पुत्तदार च वधवा	१६-१६
पासवणुच्चारमूमि च	२६-३८	पीलिओ मि सक्कमेहि	१६-५३	पुत्तसोगदुहट्टिया	२०-२५
पासाए कारइत्ताण	६-२४	पीलेइ अत्तट्टगुरू किलिठ्ठे	३२-२७, ४०, ५३, ६६, ७६, ८२	पुत्ते पडिठ्ठप गिहसि जाया ।	१४-६
पासाए कीलए रम्मे	२१-७	पु		पुत्ते रज्जे ठवित्ताण	१८-४६
पासाएमु गिहेसु य ?	६-७	पुगलाण सु लक्खण	२८-१२	पुत्तो मे भाय नाइ त्ति	१-३६
पासाओ वि न फिट्ठई	२०-३०	पुगला समुदाहिया	३६-२०	पुमत्तमागम्म कुमार दो वी	१४-३
				पुर अन्तेउर च मे	२०-१४

पुराणपुरभेयणी	२०-१८	पोल्ले व मुट्ठी जह से असारै	२०-४२	फे	
पुरिमत्स पच्छिममी	२३-८७	पोसह दुहुओ पक्खं	५-२३		१६-१३
पुरिमा उज्जुज्झा उ	२३-२६	पोसेज्जा वि सयगणे	७-१	ब	
परिमाण दुव्विसोज्झो उ	२३-२७	पोसे मासे चउप्पया	२६-१३		
पुरिसेनु य अट्ठमय	३६-५१	फ			
पुरीए तत्व माहणे	२५-४	फग्गुणवइसाहेसु य	२६-१५		
पुरे पुराणे उमुयारत्तामे	१४-१	फरुस पि अणुसासण	१-२६		
पुरोहिओ तम्स जस्सा य पत्ती	१४-३	फलेइ विसभक्खीणि	२३-४५		
पुरोहिय त कमसोऽणुगन्त	१४-११	फा			
पुरोहिय त समुय सदार	१४-३७	फासओ उण्हए जे उ	३६-३६		
पुलए सोगन्धिए य वोद्धव्वे	३६-७६	फासओ कक्खडे जे उ	३६-३४		
पुव्व ता वत्थमेव पडिलेहे	२६-२४	फासओ गुरुए जे उ	३६-३६		
पुव्व विसुद्धसद्धम्मे	३-१६	फासओ निद्धए जे उ	३६-४०		
पुव्वक्कम्मखयट्ठाए	६-१३	फासओ परिणया जे उ	३६-१६		
पुव्वकोडीपुहत्त तु	३६-१७६	फासओ मउए जे उ	३६-३५		
पुव्वकोडीपुहत्तेण	३६-१८५, १६२, २०१	फासओ लहुए जे उ	३६-३७		
पुव्वाइ वासाड चरप्पमत्तो	४-८	फासओ लुक्खए जे उ	३६-४१		
पुव्वा वाममया बहू	३-१५	फासओ सीयए जे उ	३६-३८		
'पुव्वि च इण्हि च अणागय च'	१२-३२	फासपरिणामलक्खणं	३४-२		
पुव्वि भावणभाविआ	१४-५२	फासस्स काय गहणं वयति	३२-७५		
पुव्वित्तमि चउव्भाए	२६-८, २१	फासाणुगासाणुगए य जीवे	३२-७६		
पुहुत्तेण अणाईया	३६-६५	फासाणुरत्तस्स नरस्स एव	३२-८४		
पू		फासाणुवाएण परिगहेण	३२-८०		
पूइहेहनिरोहेण	७-२६	फासा फुसन्ती असमंजस च	४-११		
पे		फासिंदिय निगहेणं भन्ते । जीवे	२६सू०६७		
पेच्चय नावबुज्झमे	१८-१३	फासुए सिज्जसथारे	२३-४, ८		
पेच्चा होहिस्स उत्तमो	६-५८	फासुए सेज्जसथारे	२५-३		
पेज्जदोममिच्छादसणविजएणं भन्ते ।	२६सू०७२	फासुय परकडं पिण्ड	१-३४		
पेडा य भदपेडा	३०-१६	फामुयम्मि अणावाहे	३५-७		
पेनिया पलित्तन्ति	२७-१३	फासे अतित्तस्स परिगहे य	३२-८२		
पो		फासे अतित्ते य पग्गिगहे य	३२-८१		
पोएण ववहरन्ते	२१-२	फामे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो	३२-८३		
पोस्सिओ चउत्तोए	२६-४४	फासे विरत्तो मणुओ विसो गो	३२-८६		
पोरिमो चउव्भाए	२६-२२, ३७, ४५	फामेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं	३२-७६		
				फे	
					१६-१३
				ब	
					८-५
					१४-४६
					२३-८०
					३०-८
					१-१६
					६-६
					१८-१५
					१६-४, ५, ६
					१६-२, ३, ७, ८
					१६-८
					१६-१५
					१६-१
					२५-३०
					१३-४
					३१-१४
					१६-१६
					३६-२२६
					३६-२१०
					६-४
					११-१८
					२१-१४
					१६-५८
					१०-१६
					३-६
					३-१०
					१४-१७
					१४-४
					६-१३
					१४-७
					३६-२६२
					६-१६

बहुमधिगियारय	७-८	बावीससहसाइ	३६-८०	बो	
बहु कम्म लेव लित्ताणं	८-१५	वावीस सागरा ऊ	३६-१६५	बोद्धव्वा इन्दकाइया	३६-१३८
बहुपाणविणासणे	३५-१२	वावीधाए परीसहे	३१-१५	बोही होइ सुदुल्लहा तेसिं	८-१५
बहुपाणिविणासण	२२-१८	वाहाहिं काउ सगोफ	२२-३५	भ	
बहुमए दिस्सई मगदेसिए	१०-३१	वाहाहिं सागरो चेव	१६-३६	भइए फासओ वि य	३६-४२से४६
बहुमाई पमुहरे	१७-११	वाहिरब्भन्तरो तहा	२८-३४, ३०-७	भइए सट्ठाणओ वि य	३६-२२से४१
बहुय मा य आलवे	१-१०	वाहिरो छव्विहो वुत्तो	२८-३४, ३०-७	भइए से उ गघओ	३६-२२, २६
बहुयाणि उ वासाणि	१६-६५	वि		भइए से उ वण्णओ	३६-२७से४६तक
बहुसो चेव विवाइओ	१६-६३	विइए वासचउक्कम्मि	३६-२५२	भइणीओ मे महाराय ।	२०-२७
बहूण बहुगुणे सया	६-६	विइयम्मि जहन्नेण	३६-२३५	भइयव्वा ते उ खेत्तओ	३६-११
वा		विइया य निसीहिया	२६-२	भगव अरिट्ठ नेमि त्ति	२२-४
वाढ ति पडिच्छइ भत्तपाणं	१२-३५	वी		भगव । एत्थ मे खमे	१८-८
वायरकाए मणिविहाणा	३६-७४	वीए सोहेज्ज एसण	२४-१२	भगव गोयमे नाम	२३-६
वायरा जे उ पज्जत्ता ३६-७१, ८५, ६३, १०६	११८	वीय भाण भियायई	२६-१२, १८, ४३	भगव वढमाणो त्ति	२३-५
वारस विऊ वुद्धे	२३-७	वीयाणि हरियाणि य	१७-६	भगव । वाहराहि मे	१८-१०
वारसहिं जोयणेहिं	३६-५७	वु		भगव वेमालिए वियाहिए	६-१७
वारसेव उ वासाइ	३६-२५१	वुद्धपुत्त नियागट्ठी	१-७	भगुज्जोयपराइय	२२-३६
वाल सम्मइ सासन्तो	१-३७	वुद्धस्स निसम्म भासिय	१०-३७	भज्ज जायइ केसवो	२२-६
बालगपोइयाओ य	६-२४	वुद्धाण अन्तिए सया	१-८	भज्जन्ति विइदुव्वला	२७-८
बालमरणाणि बहुसो	३६-२६१	वुद्धे अभिजाइए	११-१३	भज्जा पुत्ता य ओरसा	६-३
बालस्स पस्स वालत्तं	७-२८	वुद्धे परिनिव्वुडे चरे	१०-३४	भज्जा य पुत्ता वि य नायओ य	१३-२५
वालाण अकाम तु	५-३	वुद्धेहायरिय सया	१-४२	भणन्ता अकरेन्ता य	६-६
वालाण कूरकम्माण	५-१२	वुद्धो भोगे परिच्चयई	६-३	भणिय रसविवज्जण	३०-२६
वालाण तु पवेइय	५-१७	वुद्धोवघाई न सिया	१-४०	भणिया जिणवरेहिं	३६-६०
बाला पडियमाणो	६-१०	वू		भण्डग दुविह मुणी	२४-१३
वालापावियाहिं दिट्ठीहिं	८-७	वूहि जन्नाण ज मुह	२५-१४	भण्डव पडिलेहिता	२६-८
बालाभिरामेसु दुहावहेसु	१३-१७	वूहि घम्माण वा मुह	२५-१४	भत्त पाण गवेसए	२६-३१
बाले मच्चुमुह पत्ते	५-१५	वे		भत्तपच्चक्खाणेण भन्ते । जीवे किं	२६सू०४१
वाले य मन्दिए मूढे	८-५	वेइन्दियआ उठिई	३६-१३२	भत्तपाणस्स अट्ठाए	१६-८०
बाले सन्तस्सई भया	५-१६	वेइन्दियकायठिई	३६-१३३	भत्तपाण्य पोसिया	२७-१४
वालेहिं मूढेहिं अयाणएहिं	१२-३१	वेइन्दियकायमइगओ	१०-१०	भद् त्ति नामेण अणिन्दियगी	१२-२०
वावत्तरिं कलाओ य	२१-६	वेइन्दियजीवाण	३६-१३४	भद्वए कत्तिए य पोसे य	२६-१५
बावीस सागराइ	३६-२३३	वेइन्दियतेइन्दिय	३६-१२६	भमरे कीढपयगे य	३६-१४६
बावीस सागरोवमा	३६-१६६, २३४	वेइन्दिया उ जे जीवा	३६-१२७	भयट्ठाणेषु सत्तसु	३१-६
				भयभेरवा तत्थ उइन्ति भीमा	२१-१६

भयव अन्तेतर तेण	६-१२	भावे अतित्तस्स परिगहे य	३२-६५	भिन्ना हु न डहन्ति मे	२३-५३
भयव केसिगोयमे	२३-८६	भावे अतित्ते य परिगहे य	३२-६४	भिस कूराइ कुव्वइ	५-४
भयवेराओ उवरए	६-६	भावे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो	३२-६६	भी	
भरह वास नरोसरो	१८-४०	भावेणं पज्जवेहि य	३०-१४	भीए सन्ते मिए तत्थ	१८-३
भरहवास नराहिओ	१८-३५	भावेण सद्दहन्तस्स	२८-१५	भीमा भयभेरवा चराला	१५-१४
भरहो वि भारह वास	१८-३४	भावे विरत्तो मणुओ विसोगो	३२-६६	भीमा भीमफलोदया	२३-४८
भट्ठीहि पट्टिसेहि य	१६-५५	भावेसु जो गिद्धिमुवेइ तिब्ब	३२-८६	भीय पवेविय दट्ठु	२२-३६
भवकोडीसच्चिय कम्म	३०-६	भावोमाणं मुण्येव्वो	३०-२३	भीया य सा तहि दट्ठु	२२-३५
भवणवइवाणमन्तर-	३४-५१	भासई मुणिवरो विगयमोहो	८-३	भु	
भवतण्हा लया वुत्ता	२३-४८	भास भासेज्ज पन्नव	२४-१०	भुओरगपरिसप्पा य	३६-१८१
भवप्पवच उम्मुवका	३६-६३	भासच्छन्ता इवग्गिणो	२५-१८	भुजन्ते मंससोणिय	२-११
भवम्मि चरिम्मि उ	३६-६४	भासादोस परिहरे	१-२४	भुज माणुस्सए भोगे	१६-४३
भवसिद्धीयमए	३६-२६८	भासियव्व हिय सच्च	१६-२६	भुजमाणे सुर मस	५-६, ७-६
भवाओ परिमुच्चए	६-२२	भि		भुजामि माणुसे भोगे	२०-१४
भवाहि मणुयाहिवा	६-४२	भिकखट्ठा वम्भइज्जम्मि	१२-३	भुजामु ता कामगुणे पगाम	१४-३१
भविस्सामो जहा इमे	१४-४५	भिकखमट्ठा उवट्टिए	२५-५	भुजाहि भोगाइ इमाइ भिक्खू !	१३-१४
भवे देवि त्ति मे सुय	७-२६	भिकखमाण्णा कुलेकुले	१४-२६	भुजाहि भोगाइ मए समाण	१४-३३
भवोहन्तकरा मुणी	२३-८४	भिकखाए वा गिहत्ये वा	५-२२, २८	भुजाहि सालिम कूर	१२-३४
भा		भिकखायरियमाहिया	३०-२५	भुजित्तु नमीराया	६-३
भाणू य इइ के वुत्ते ?	२३-७७	भिकखायरिया य रसपरिच्चाओ	३०-८	भुज्जो अच्चिमालिप्पभा	५-२७
भायण पडिलेहए	२६-२२	भिकखालसिए एगे	२७-१०	भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु	७-२७
भायण सव्व दव्वाण	२८-६	भिकखावत्ती सुहावहा	३५-१५	भुजो वि मन्दा ! पगरेह पाव	१२-३६
भायर वट्ठमाणण	१३-४	भिकखियव्व न केयव्व	३५-१५	भुत्तभोगा तओ पच्छा	२२-३८
भायरो मे महाराय !	२०-२६	भिकखुणा भिकखवत्तिणा	३५-१५	भुत्तभोगी तओ जाया	१६-४३
भारिया मे महाराय !	२०-२८	भिकखुघम्म विचित्तए	२-२६	भुत्ता दिया निन्ति तम तमेणं	१४-१२
भारुण्डपदवी व चरप्पमत्तो	४-६	भिकखुघम्ममि दसविहे	३१-१०	भुत्ता रसा भोइ ! जहाइ णे वओ	१४-३२
भाय चाटुत्तर तुण	३३-१६	भिकखू कुज्जा वियक्खणो	२६-११, १७	भुत्ता विसफलोवमा	१६-११
भावणाहि य मुद्धाहि	१६-६४	भिकखू जायाहि अन्नओ	२५-६	भुयमोयगइन्दनीले य	३६-७५
भावम्मि य आहिया उ जे भावा	३०-२४	भिकखूण पडिमासु य	३१-११	भू	
भावसत्त्वेण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?	२६सू०५१	भिकखू-दत्तेसण चरे	१-३२	भूईकम्म च जे पउजन्ति	३६-२६४
भासस्त मण गहणं वयन्ति	३२-८८	भिकखूघम्ममि दसविहे	३१-१०	भूयगाम विहिंसई	५-८
भावाणुगासाणुगए य जीवे	३२-६२	भिकखू न भवइ तारित्तो	३५-१४	भूयत्येणाहिगाया	२८-१७
भावाणुरत्तस्स नरत्त एव	३२-६७	भिकखू परमसजए	३५-७	भूयाण जगई जहा	१-४५
भावाणुवाएण परिगहेण	३२-६३	भिकखेण भिकखुत्तमा	२५-३७	भूयाण दीसई वहो	३५-८
		भिच्चाविहूणो व्व रणे नरिन्दो	१४-३०		

भे		मग्गेण जयणाइ य	२४-४	मणस्स भावं गहण वयन्ति	३२-८७, ८८
भेओ होड बाहियो	३६-१६८	मग्गे तत्थ मुहावहे	२३-८७	मणिरयणकुट्टिमत्तले	१६-४
भेतूण कम्मकचुय	६-२०	मग्गे य इइ के वुत्ते ?	२३-६२	मणुया दुविहमेया उ	३६-१६५
भेय देह्मस कखए	५-३१	मघव नाम महाजसो	१८-३६	मणुया देवा य बाहिया	३६-१५५
भेया अट्ठवीमड	३६-१६७	मच्चुणाज्जमाहओ लोगो	१४-२३	मणुस्ताउ तहेव य	३३-१२
भेया छत्तीसमाहिया	३६-७७	मच्चू नर नेइ हु अन्तकाले	१३-२२	मणोगय वक्कगय	१-४३
भो		मच्छा जहा कामगुणे पहाय	१४-३५	मणोरमे कामगुणे पहाय	१४-४०
भोडत्ता समणमाहणे	६-३८	मच्छा य कच्छमा य	३६-१७२	मणोर्ड चिट्ठइ कम्ममपया	१-४७
भोए चयसि पत्थिया	६-५१	मच्छियपत्ता तणूयरो	३६-५६	मणो साहसिको भीमो	२३-५८
भोगकालम्मि सजया ।	२०-८	मच्छिया मसगा तहा	३६-१४६	मणोसिला सासगजणपवाले	३६-७४
भोगा इमे सगकरा हवन्ति	१३-२७	मच्छे जहा आमिसभोगगिद्धे	३२-६३	मणोहर चित्तहर	३५-४
भोगामिसदोसविसणो	८-५	मच्छो वा अवसो अह	१६-६४	मण्डिकुच्छिसि चेइए	२०-२
भोगी भमइ ससारे	२५-३६	मज्झिमा उज्जुपत्ता य	२३-२६	मत्त च गन्वहत्यि	२२-१०
भोगे भुआहि सजया !	२०-११	मज्झिमाउवरिमा तहा	३६-२१४	मद्वयाए ण भन्ते । जीवे किं	२६ सू० ५०
भोगे भोच्चा वमिन्ता य	१४-४४	मज्झिमामज्झिमा चेव	३६-२१४	मन्त मूल विविह वेज्जचित्त	१५-८
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहि	१४-६	मज्झिमाहेट्ठिमा तहा	३६-२१३	मन्तमूलविसारया	२०-२२
भोच्चा पेच्चा मुहं सुवइ	१७-३	मज्जे चिट्ठसि गोयमा ?	२३-३५	मन्ताजोग काउ	३६-२६४
भोच्चा माणुस्सए भोए	३-१६	मणइच्छियचित्तयो	३०-११	मन्दा निरय गच्छन्ति	८-७
भो भिक्खू सव्वकामिय	२५-८	मण पवत्तमाण तु	२४-२१	मन्दा य फासा बहुलोहणिजा	४-१२
भोमिज्जवाणमन्तर	३६-२०४	मण पि न पवोसए	२-११, २६	मन्तन्ता अपुणच्चव	३-१४
भोमेज्जाण जहन्नेण	३६-२१६	मणगुत्तयाए ण भन्ते ! जीवे किं	२६ सू० ५४	मम भयाहि सुयणू ।	२२-३७
भोयणे परिणिट्ठिए	२-३०	मणगुत्ती चउव्विहा	२४-२०	ममत्त छिन्दई ताहे	१६-८६
भोयावेउ बहु जण	२२-१७	मणगुत्ती वयगुत्ती	२४-२	ममत्तवघ च महवभयावह	१६-६८
म		मणगुत्तो वयगुत्तो	१२-३, २२-४७	मम रोगई पव्वज्जा हु दुक्ख	१३-१४
मए उ मन्द पुण्णेण	१८-७	मणनाण च केवल	२८-४, ३३-४	मम लामे ति पेहाए	१-२७
मए नाय मणाय वा	२०-२६	मुणपरिणामे य कए	२२-२१	मम हृत्यज्जमागया	१४-४५
मए सोढाओ भीमाओ	१६-४५	मणपल्हायजणणि	१६-२	मय नाणुव्वयन्ति य	१८-१४
मए सोढाणि भीमाणि	१६-४६	मणप्पशोसो न मे अत्थि कोइ	१२-३२	मयलक्खेण चिट्ठई	२७-६
मसट्ठा भक्खियव्वए	२२-१५	मणवयकायसुसवुडे स भिक्खू	१५-१२	मयेसु वम्मगुत्तीसु	३१-१०
मग्ग कुसीलाण जहाय सव्व	२०-५१	मणसमाहारणयाए ण भन्ते ! जीवे किं	२६ सू०-५७	मरगयमसारगल्ले	३६-७५
मग्ग च पडिवजई	२३-५६	मणसा कायवक्केण	६-११, २५-२५	मरण असइ भवे	५-३
मग्ग बुद्धेहि देसिय	३५-१	मणसा वयसा कायसा चेव	८-१०	मरण पि सपुण्णाण	५-१८
मग्ग विराहेत्तु जिणुत्तमाणं	२०-५०	मणसा वि न पत्थए	३५-४, १३, १८	मरणन्तमि सोयई	७-६
मग्गाममी महामुणी	२५-२			मरणम्मि विराहिया होन्ति	३६-२५६
मग्गे उप्पहवज्जिए	२४-५			मरिहन्ति ते वराया	३६-२६१

मरिहिसि राय ! जया तया वा	१४-४०	महासुक्के जहन्नेणं	३६-२२८	मायन्ने असणपाणस्स	२-३
मरम्मि वड्ढवालुए	१६-५०	महि माणनिसूरणो	१८-४२	माया गईपडिञ्चाओ	६-५४
मल्लघूवेण वासिय	३५-४	महिडिडओ पुण्णफलोववेओ	१३-२०	माया पिआ ण्हुसा भाया	६-३
मसखभागा जहन्नेण नीलठिई	३४-४२	महिडिडयं पुण्णफलोववेयं	१३-११	मायामुस वड्ढइ लोभदोसा	३२-३०, ४३, ५६
मनवभागा जहन्निया होइ	३४-४३	महुमेरगस्स व रसो	३४-१४		६६, ८२, ९५
महज्जुई पच्चवयाइ पालिया	१-४७	महोरगा य गन्ववा	३६-२०७	माया य मे महाराया !	२०-२५
महत्यज्ज्य विणिच्छओ	२३-८८	मा		मायालोभे य पयणुए	३४-२६
महत्यत्तवा वयणप्पभूया	१३-१२	माइल्ले पिसुणे सढे	५-६	मायाविजएण भन्ते ! जीवे किं...	२६सू०७०
महन्तमोह कसिण भयावह	२१-११	माई अवण्णवाई	३६-२६५	मायावुड्डमेय तु	१८-२६
महप्पसाया इसिणो हवन्ति	१२-३१	माई कण्हुहरे सढे	७-५	मारिओ य अणन्तसो	१६-६४, ६५
मह्वमयाओ भीमाओ	१६-७२	माई मुद्धेण पड्डइ	२७-६	मालुगा पत्तहारगा	३६-१३७
महया सवेगनिव्वेय	१८-१८	मा एय हीलह अहीलणिज्ज	१२-२३	मा वन्त पुणो वि आइए	१०-२६
महाउदगवेगस्स	२३-६६	मा कासि कम्माइ महालयाइ	१३-२६	मासक्कमणपारणे	२५-५
महाउदग वेगेणं	२३-६५	मा कुले गन्वणा होमो	२२-४३	मासद्धमासिएण तु	३६-२५५
महाजन्तेसु उच्छ वा	१६-५३	मा गलियस्से व कस	१-१२	मा सव्वे तेएण मे निहहेज्जा	१२-२३
महाजय जयई जन्तसिट्ठं	१२-४२	माण माय तहेव लोहं च	६-३६	मासस्स ऊ पारणए महप्पा	१२-३५
महाजसो एस महाणुभागो	१२-२३	माणविजएणं भन्ते ! जीवे किं...	२६सू०६६	मासिएण उ भत्तेण	१६-६५
महादवगिसकासे	१६-५०	माणुस जोणिमेन्ति जे	७-१६	मामेण चउरगुल	२६-१४
महानागो त्व कच्चुय	१६-८६	माणुसत्त भवे मूल	७-१६	मासे मासे गवं दए	६-४०
महानियण्ठाण वए पहेणं	२०-५१	माणुसत्तमि आयाओ	३-११	मासे मसे तु जो बालो	६-४४
महानियण्ठज्जमिण महासुय	२०-५३	माणुसत्त सुई सद्धा	३-१	माह परेहि दम्मन्तो	१-१६
महापउमे तव चरे	१८-४१	माणुसत्ते असारम्मि	१६-१४	माहणकुलसभूओ	२५-१
महापभावस्स महाजसस्स	१६-६७	माणुस्सएसु जे यावि दिव्वा	१४-६	माहणत्त जहाभूय	२५-३५
महावलो रायरिसी	१८-५०	माणुस्स खु सुडुल्लह	२०-११, २२-३८	माहणभोइय विविहा 'य सिप्पिणो'	१५-६
महामुणो महापइन्ने महाजसे	२०-५३	माणुस्स भवमागए	१८-२६	माहणी दारगा चेव	१४-५३
महामेहप्पसूयाओ	२३-५१	माणुस्स विगगह लद्धु	३-८	माहणेण परिच्चत्त	१४-३८
महारमपरिगहे	७-६	माणेण अहमा गई	६-५४	माहणो य पुरोहिओ	१४-५३
महारणम्मि जायई	१६-७८	मा त विडय गवेसए	१०-३०	माहिन्दम्मि जहन्नेणं	३६-२२५
महारिसी उत्तम ठाण पत्त	१२-४७	मा भमिहिसि भयावट्ठे	२५-३८	मा ह तुम सोयरियाण सम्भरे	१४-३३
महाविमाण सव्वट्ठे	३६-२४४	मा मग्गे विसमे वगाहिया	१०-३३	मा ह भन्ते ! मुस वए	२०-१५
महावीरन्स भगवओ	२१-१	माय च वज्जए सया	१-२४	मि	
महावीरेण देसिय	५-४	माय जत्त उ पवयण	२४-३	मिउ पि चण्ड पकरेति सीसा	१-१३
महासिणाण इसिणं पसत्त	१२-४७	माय न सेवे पयहेज्ज लोहं	४-१२	मिउ महवसपन्ने	२७-१७
महामुक्का व दीप्पन्ता	३-१४	माय विण्डस्म पाणस्स	६-१४	मिए छुभित्ता हयगओ	१८-३
महामुक्का सहस्सारा	३६-२११	मा य चण्डालिय कासी	१-१०	मिओ वा अवसो अह	१६-६३

मिगचारिय चरित्ताण	१६-८१, ८२	मुत्तीए ण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?	मोण विराहित्तु असाहुक्खे	२०-४६
मिगचारिय चरिस्सामि	१६-८४		मोस अदत्त च असेवमाणा	१२-४१
मिगव्व उवणिगए	१८-१	मुस ते एवमाहसु	मोस अदत्त च परिगह च	१२-१४
मिच्छत्तनित्सेवए जणे	१०-१६	मुस न वयई जो उ	मोसस्स पच्छा य पुरत्त्यओ य	३२-३१, ४४, ५७, ७०, ८३, ९६
मिच्छदिट्ठी अणारिए	३४-२५	मुस परिहरे भिक्खू	मोह कओ एत्ति उ विप्पलावो	१३-३३
मिच्छा कारोय निन्दाए	४६-६	मुसाभासा निरत्थिया	मोहगयस्स सन्तस्स	१६-७
मिच्छा दढो पजुजई	६-३०	मुसावायविवज्जण	मोह च तण्हाययण वयन्ति	३२-६
मिच्छादसणरत्ता	३६-२५७, २५९	मुसुण्ढी य हलिदा य	मोह च भिक्खू सयय वियक्खणो	२१-१६
मिच्छादिट्ठी अणारिया	१८-२७	मुहपोत्तिय पडिलेहिता	मोह वा कसिण नियच्छई	१५-६
मित्तनईपरिवुढो	२०-११	मुहरी निक्कसिज्जई	मोहट्ठाणेसु चेव य	३१-१६
मित्तव नायव होइ	३-१८	मुहु मुहु मोहगुणे जयन्त	मोहणिज्ज पि दुविह	३३-८
मिता य तह वन्धवा	१८-१४	मुहुत्तऽहियाइ च उक्कोसा	मोहणिज्जस्स उक्कोसा	३३-२१
मिय कालेण भवखए	१-३२	मुहुत्तद तु जहन्ता	मोहणिज्जस्स दसणे	३३-६
मियचारिय चरिस्सामि	१६-८५	३४-३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४६	मोहाणिला पज्जलणाहिएण	१४-१०
मियाइ पुत्तस्स निसम्म भासिय	१६-६७	मू	मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा	३२-८
मिया कालिजरे नगे	१३-६	मूल घेत्तूण निगया	य	
मिया तस्सगमाहिसी	१६-१	मूलच्छेएण जीवाण		
मियापुत्ते जहारिसी	१६-६६	मूलिय ते अइच्छिया	य सम्मतसद्दहणा	२८-२८
मियापुत्ते त्ति विस्सुए	१६-२	मूलिय ते पवेसन्ति	र	
मियापुत्ते महिडिइए	१६-८	मे	रइ नोवलमामह	१६-१३
मिहिलं सपुरजणवय	६-४	मेत्ति भूएसु कप्पए	रइयाए जहक्कम	२२-१२
मिहिलाए चेइए वच्छे	६-६	मेत्तिज्जमाणो भयई	रक्खमाणो तय वए	२२-४०
मिहिलाँए डज्जमाणीए	६-१४	मेत्तिज्जमाणो वमइ	रक्खसा किन्नराय किं पुरिसा	३६-२०७
मिहोक्कह कुणइ जणवयक्कह वा	२६-२६	मेयन्ते किं पमासई ?	रक्खेज्ज कोह विणएज्ज माण	४-१२
मु		मेरओ य महुणि य	रज्ज तु गुणसमिद्ध	१८-४६
मुक्कपासो लहुवभूओ	२३-४०, ४१	मेर व्व वाएण अक्कमाणी	रज्जन्तो सजमम्मि य	१६-६
मुक्को मि विसभक्खण	२३-४६	मेहुणाओ सुसवुढो	रत्ति पि चउरो भागे	२६-१७
मुगरेहिं मुसढीहिं	१६-६१	मो	रन्तो तहिं कोसलियस्स धूया	१२-२०
मुच्चइ कारओ जणो	६-३०	मोक्ख गओ अणुत्तर	रमए अज्जवयणमि	२५-२०
मुच्चई छविपव्वाओ	५-२४	मोक्खमगगइ तच्च	रमए पण्डिए सास	१-३७
मुच्चेज्ज कयाइ सव्वदुक्खाण	८-८	मोक्खसव्वभूयसाहुणे	रमेज्जा सजमे मुणी	३६-२४६
मुणी आसि विसारए	२७-१	मोखाभिकखिस्सवि माणवस्स	रयणाभ सक्कराभा	३६-१५६
मुणी चरे लाढे निच्चमायगुत्ते	१५-३	मोक्खाभिकखी अभिजायसड्ढा	रययहारसकासा	३४-६
मुणी विगयसगामो	६-२२	मोण चरिस्सामि समिच्च घम्म	रयाइ खेवेज्ज पुरेकडाइ	२१-१८

रसओ अम्बिले जे उ	३६-३२	रा	रायवेष्टि व मन्तता	२७-१३	
रसओ कडुए जे उ	३६-३०	राइणो तम्मि सजए	२०-५	रायाण न पडिमन्तेइ	१८-६
रसओ कसाए जे उ	३६-३१	राइभाएसु चउसु वि	२६-१७	राया बलभदो त्ति	१६-१
रसओ तितए जे उ	३६-२६	राइय च अईयार	२६-४७	राया रज्ज तु हारए	७-११
रसओ परिणया जे उ	३६-१८	राइय तु अईयार	२६-४८	राया सह देवीए	१४-५३
रमओ फासओ चेव	३६-२२ से २८	राईभोयणवज्जणा	१६-३०	रु	
रसओ फामओ तहा	३६-१५	राईभोयणविरओ	३०-२	रुक्खमूले व एकओ	३५-६
रसओ महरए जे उ	३६-३३	राईमई असम्भन्ता	२२-३६	रुक्खमूले व एगओ	२-२०
रस न किंचि अवरज्भई से	३२-६४	राईमई विचिन्तेइ	२२-२६	रुक्खा गुच्छा य गुम्मा य	३६-६४
रसगिद्धेण घन्तुणा	१८-७	राओवरयं चरेज्ज लाढे	१५-२	रुप्प सुवण्णे य वडरे य	३६-७३
रसगिद्धे न सिया भिक्खाए	८-११	राग च दोस च तहेव मोह	३२-६	रु	
रसन्तो कट्टकुम्भीमु	१६-५१	राग दोस च छिन्दिया	१०-३७	रुवधरे मुणिपवराण हेट्ठिमे	१७-२०
रसन्त जिह्म गहण वयति	३२-६२	रागदोससमज्जिय	३०-१	रुवस्स चक्खु गहण वयन्ति	३२-२३
रमाणुणासाणुगए य जीवे	३२-६६	रागदोसगिणा जग	१४-४३	रुवाणुगासाणुगए य जीवे	३२-२७
रसाणुरत्तस्स नरस्स एव	३२-७१	रागदोसभयाईय	२५-२१	रुवाणुरत्तस्स नरस्स एव	३२-३२
रसाणुवाएण परिगहेण	३२-६७	रागदोसवस गया	१४-४२	रुवाणुवाएण परिगहेण	३२-२८
रसा पगाम न निसेवियव्वा	३२-१०	रागादोससमज्जिय	३०-४	रुवाहिएसु सुरेसु य	३१-१६
रसे अतित्ते य परिगहे य	३२-६८	रागदोसादओ तिक्का	२३-४३	रुविणो चेवऽरुवी य	३६-४, २४८
रसे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो	३२-७०	रागदोसे य दो पावे	३१-३	रुविणो य चउव्विहा	३६-१०
रसे अतित्तस्स परिगहे य	३२-६६	रागस्स दोसस्स य सखएण	३२-२	रुविणो वि चउव्विहा	३६-४
रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा	३२-२०	रागस्स हेउं समणुन्माहु	३२-२३, ३६, ४६, ६२, ७५, ८८	रुवे अतित्तस्स परिगगहे य	३२-३०
रसे फासे तहेव य	१६-१०	रागाउरे ओसहिगघगिद्ध	३२-५०	रुवे अतित्ते य परिगहे य	३२-२६
रसे विरत्तो मणुओ विसोगो	३२-७३	रागाउरे कामगुणेषु गिद्धे	३२-८६	रुवे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो	३२-३१
रसेसु जो गिद्धिमुवेइ तिक्क	३२-६३	रागाउरे बडिसविभिन्नकाए	३२-६३	रुवे विरत्तो मणुओ विसोगो	३२-३४
रसेसु नाणुगिज्जेज्जा	२-३६	रागाउरे सीयजलावसन्ते	३२-७६	रुवेसु जो गिद्धिमुवेइ तिक्क	३२-२४
रसो उ काउए नायव्वो	३४-१२	रागाउरे से जह वा पयगे	३२-२४	रे	
रसो उ किण्हाए नायव्वो	३४-१०	रागाउरे हरिणमिगे व मुद्धे	३२-३७	रेणुय व पडे लग्ग	१६-८७
रसो उ तेउए नायव्वो	३४-१३	रागो दोसो मोहो	२८-२०	रेवययमि ट्ठिओ भगव	२२-२२
रसो उ नीलाए नायव्वो	३४-११	रागो य दोसो वि य कम्मवीय	३२-७	रो	
रसो उ सुयकाए नायव्वो	३४-१५	राढामणी वेरुलियप्पगासे	२०-४२	रोएइ उ निसगो	२८-१७
रह्नेमी अहं भद्दे !	२२-३७	राय अभिक्ख समुवाय देवी	१४-३७	रोगा य मरणाणि य	१६-१५
रह्नेमी भगवित्तो	२२-३४	रायत्य देवी कमलावई य	१४-३	रोगेणाऽलस्सएण य	११-३
रहाणीए तहेव य	१८-२	रायरिसि उत्तमाए-सद्धाए	६-५६	रोचओ वा जह पाडिओ	१६-५६
रहियं योज्जेण य	१६-१	रायलक्खणसंजुए	२२-१, ३	रोज्ज विचित्ते चित्तपत्तए	३६-१४८
रहे कन्लाण भासई	११-१२			रोहिणी देवई तहा	२२-२
रहे भासइ पावण	११-८				

ल		लेस ण तु मुणेह मे	३४-२	लोह दुगुछ भरड रड च	३२-१०२
लंघिया त नडक्कमे	१-३३	लेसाण होइ परिणामो	३४-२०	लाहतुण्डेहि पक्खिहि	१६-५८
लक्खण पज्जवाण तु	२८-६	लेसाण ठिड तु वोच्छामि	३४-४०	लोहा वा जइ वा भया	२५-२३
लक्खणप्परमजुओ	२२-५	लेसाण ठिई उ देवाण	३४-४७	लोहि णीहू य थीहू य	३६-६८
लद्धूण वि आरियत्तण	१०-१७	लेसाण ठिई उ वणिगया होइ	३४-४४, ४७	लोहो हओ जस्स न किंचणाइ	३२-८
लद्धूण वि उत्तम मुइ	१०-१६	लेमाण ठिई जहिं जहिं जा उ	३४-४५	व	
लद्धूण वि माणुमत्तण	१०-१६	लेमाण हुन्ति ठाणाइ	३४-३३	वइगुत्ती चरव्विहा	२४-२२
लद्धे पिण्डे अलद्धे वा	२-३०	लेसामु छमु काएमु	३१-८	वइस्सो कम्मणा होइ	२५-३१
लत्तगम्मि जहन्तेण	३६-२२७	लेमाहिं परिणयाहिं	३४-६०	वएज्ज न पुणो त्ति य	१-४१
लया चिट्ठं गोयमा ।	२३-४५	लेमाहिं सव्वाहिं	३४-५८, ५९	वए विओगे य कहिं सुहं से ?	३२-२८, ४१, ५४, ६७, ८०, ९३
लया य इइ का वुत्ता ?	२३-४७	लो		वएसु इन्दियत्थेसु	३१-७
लयावलय पव्वगा कुट्टणा	३६-६५	लोए कित्ती से जायए	१-४५	वकजडा य पच्छिमा	२३-२६
लया वल्ली तणा तथा	३६-६४	लोएगदेसे ते सव्वे	३६-६७, १३०, १३६, १७३	वके वकसमायारे	३४-२५
लल्लिएण नलक्खरो	२२-४१		१८२, १८६	वच्छल्ल पभावणे अट्ठ	२८-३१
लल्लियचवलकुटलतिरीढी	६-६०	लोएगदेसे लोए य	३६-११	वज्जपाणी पुरन्दरे	११-२३
लहुभूयविहारिणो	१४-४४	लोग पि एमो कुविओ ढहेज्जा	१२-२८	वज्जभीरू हिंसए	३४-२८
ला		लोगदेमे य वायरा	३६-७८, ८६, १००, १११, १२०	वज्जरिसहमघयणो	२२-६
लाभ अलाम च मुह च दुक्ख	१४-३२	लोगगमि दुरारह	२३-८१, ८४	वज्जित्ता केवल लेस	३४-४५
लाभन्तरे जीविय वूहइत्ता	४-७	लोगनाहे दमीसरे	२२-४	वज्जेज्जा पणिहाणव	१६-१४
लाभालाभम्मि सत्तुट्ठे	३५-१६	लोगमिता वियाहिया	३६-७	वज्जेयव्वा य मोसली तइया	२६-२६
लाभालाभे सुहे दुक्खे	१६-६०	लोगस्स एग देसम्मि	३६-१४६, १५८, १६८, २१७	वज्जेयव्वो सुदुक्करो	१६-३०
लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी !	२०-५५	लोगालोगे य आगासे	३६-७	वज्ज पासइ वज्जग	२१-८
लाभो देवगई भवे	७-१६	लोगुत्तमुत्तम ठाण	६-५८	वज्जमण्डणसोभागं	२१-८
लाहा लोहो पवड्डई	८-१७	लोमे लिगप्पओयण	२३-३२	वट्टमाणे उ सजए	११-६
लि		लोभविज्जएण भन्ते । जीवे किं ' ?	२६सू०७१	वड्डईहिं दुमो विव	१६-६६
लिगे दुविहे मेहावि ।	२३-३०	लोभाओ दुहओ भय	६-५४	वड्डए हायए वावी	२६-१४
लु		लोभाविले आययई अदत्त	३२-२६, ४२, ५५, ६८, ८१, ९४	वड्डमाणो भवाहि य	२२-२६
लुत्तकेस जिडन्दिय	२२-२५, ३१	लोमे य उवउत्तया	२४-६	वणप्फईण आउ तु	३६-१०२
लुप्पन्तस्स मक्कम्मुणा	६-३	लोयगम्मि पइट्ठिया	३६-६३	वणस्सइकायमइगओ	१०-६
लुप्पन्ति बहूसो मूढा	६-१	लोयगे य पइट्ठिया	३६-५६	वण्णओ गन्धओ चेव	३६-१५
ले		लोयन्तो उ वियाहियो	३६-६१	वण्णओ जे भवे किण्हे	३६-२२
लेप्पाहिं सउणो विव	१६-६५	लोलुप्पमाण वहुहा वहु च	१४-१०	वण्णओ जे भवे नीले	३६-२३
लेवमायाए सजए	६-१५			वण्णओ परिणया जे उ	३६-१६
लेसज्जकयण पक्खामि	३४-१			वण्णओ पीयए जे उ	३६-२५
लेसाणं अप्पसत्त्याण	१३४-१६, ८				

वण्णओ लोहिए जे उ	३६-२४
वण्णओ मुक्किले जे उ	३६-२६
वण्ण जरा हरइ नरस्स राय	१३-२६
वण्णरसगन्वफामा	२८-१२
वण्णेण भावमणुमुयन्ते उ	३०-२३
वण्णे ह्वे य सब्वसो	६-११
वत्तणालक्खणो कालो	२८-१०
वत्थाइ पडिलेहए	२६-२३
वद्धमाणगिहाणि य	६-२४
वन्त इच्छसि आवेउ	२२-४२
वन्नराण जहन्नेण	३६-२२०
वन्तामी पुरिसो राय ।	१४-३८
वन्दइ अभित्थुणन्तो	६-५५
वन्दई य तओ गुरु	२६-५०
वन्दणएण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?	

२६सू०११

वन्दण पूयणं तहा	३५-१८
वन्दमाणा नममन्ता	२५-१७
वन्दिऊण तओ गुरु	२६-४५
वन्दित्त ण तओ गुरु	२६-२२, ३७, ४०, ४१, ४२, ४८, ४९, ५१
वन्दित्ता य तओ गुरु	२६-८
वमणविरेयणधूमणेत्तसिणाण	१५-८
वय च सत्ता कामेसु	१४-४५
वय पवत्तमाण तु	२४-२३
वयगत्तयाए ण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?	

२६सू०५५

वयजोग मुच्चा न अमव्वमहाहु	२१-१४
वयण अस्सुपपुच्च	२०-१३
वयणमिच्छे पुणो पुणो	१-१२
वय समाहारणयाए ण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?	

२६सू०५८

वयाणि मीलाणि परीसहे य	२१-११
वर मे कप्पादन्तो	१-१६
वरवारुणीए व रमो	३४-१४

वल्लराणि सराणि य	१६-८०
वल्लरेहिं सरेहि वा	१६-८१
ववहारे उवमा एसा	७-१५
वसहे जूहाहिर्वई	११-१६
वसाओ रुहिराणि य	१६-७०
वसामि इरियामि य	१८-२६
वसीय सोवागनिवेसणेसु	१३-१८
वसुदेवे त्ति नामेणं	२२-१
वसे गुरुकुले निच्च	११-१४
वसे ते ठावइत्ताण	६-३२
वहणे वहमाणस्स	२७-२
वहवन्धपरीसहा	१६-३२
वहेइ रसमुच्छिए	१८-३
वहेई से नराहिवे	१८-५

वा

वाइया सगहिया चेव	२७-१४
वाउक्कायमइगओ	१०-८
वाउजीवाण अन्तरं	३६-१२४
वाएइ सय पडिच्छइ वा	२६-२६
वाएण हीरमाणमि	६-१०
वागरेज्ज जहासुय	१-२३
वाडेसु व रच्छामु व	३०-१८
वाडेहिं पजरेहिं च	२२-१४, १६
वाणारसीए वहिया	२५-३
वाणियो देइ धूरर	२१-३
वाद विविह समिच्च लोए	१५-१५

वायणाए ण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?

२६सू०२०

वायणा पुच्छणा चेव	३०-३४
वाया अदुव कम्मणा	१-१७
वायाविद्धो व्व हडो	२२-४४
वायाविरियमेत्तेण	६-६
वारिमज्जे महालओ	२३-६६
वालुयाकवले चेव	१६-३७
वालुयाभा ये आहिया	३६-१५६

वावन्नकुदसणवज्जणा	२८-२८
वास तत्थसभिरोयए	३५-६
वासन्ते अन्वयारमि	२२-३३
वासलक्खेण साहिय	३६-२२१
वासाइ बारसे व उ	३६-१३२
वासाणुक्कोसिया भवे	३६-८०, ८८, १०२, १२२
वासिट्ठ । भिक्खायरियाइ कालो	१४-२६
वासीचन्दणक्खो य	१६-६२
वासीमुहा य सिप्पीया	३६-१२८
वासुदेव महिड्डिय	२२-८
वासुदेवस्स जेटुग	२२-१०
वापुदेवो य ण भणइ	२२-२५, ३१
वासेणुल्ला उ अन्तरा	२२-३३
वाह्वो वद्धरुद्धो अ	१६-६३
वाहिणो वेयणा तहा	२३-८१
वाहीरोगाण आलए	१६-१४
वाहीरोगेहिं पीडिओ	१६-१६

वि

विउल अट्ठिय सुय	१-४६
विउल चेव धणोहसचय	१०-३०
विउव्विऊण इन्दत्त	६-५५
विक्किणन्तो य वाणिआ	३५-१४
विक्खायकित्ति धिइम	१८-३६
विक्खित्ता वेइया छट्ठा	२६-२६
विगईनिज्जहण करे	३६-२५२
विगलिन्दियया हु दीसइ	१०-१७
विगहाकसायसन्नाण	३१-६
विगहासु तहेव च	२४-६
विगिच कम्मणो हेउ	३-१३
विगिट्ठं तु तव चरे	३६-२५४
विचित्त तु तव चरे	३६-२५२
विजढमि सए काए	३६-८२, ६०, १०४, ११५, १२४, १५३, १६८, १७७, २४६
विजयघोसस्स जन्ममि	२५-५

विजयघोसे स्ति नामेण	२५-४	विष्पमुच्चद पण्डि	२४-२७, ३०-३७	विविहाण व आसवाण जारिसओ	३४-१४
विजयघोसे य माहणे	२५-३४	विष्पमुच्चद पण्डिओ	३१-२१	विसएहि वरज्जन्तो	१६-६
विजया वेजयन्ता य	३६-२१५	विष्पमणमणाघाय	५-१८	विस तालउड जहा	१६-१३
विजहित्तु पुव्वसजोग	८-२	विष्पसीएज्ज मेहावी	५-३०	विस तु पीय जह कालकुड	२०-४४
विज्जमाणे परे लोए	१८-२७	विष्फुरन्तो अणेगसो	१६-५४	विसन्ना पावकम्मेहि	६-१०
विज्जाचरणपारगा	१८-२२	विभूस परिवज्जेज्जा	१६-६	विसप्पे सव्वओघारे	३५-१२
विज्जाचरणपारगे	२३-२, ६	विमणो विसण्णो अह माहणो सो	१२-३०	विसम मगमोइण्णो	५-१४
विज्जाचरणसपत्ते	१८-२४	विम्हावेन्तो य पर	३६-२६३	विसम सीला य भिक्खुणो	५-१६
विज्जामन्ततिगिच्छगा	२०-२२	वियडस्सेसण चरे	२-४	विसालकित्ती य तहोमुयारो	१४-३
विज्जामाहणसम्पया	२५-१८	विययपम्मी य वोद्धवा	३६-१८८	विसाग्गिसेहि सोलेहि	३-१४
विज्जुसपायचचल	१८-१३	वियरिज्जड खज्जइ मुज्जई य	१२-१०	विसीयई मिडिले आउयमि	४-६
विज्जुसोयामणिप्पभा	२२ ७	वियाणिया दुक्खविद्वण घण	१६-६८	विसेसे किन्तु कारण ?	२३-१३ २४, ३०
विज्जु अगी य आहिया	३६ २०६	वियाहिओ ज समुविच्च सत्ता	३२-१११	विसोहेज्ज जय जई	२४-१२
विज्जवेज्ज पजलिउडो	१-४१	विरई अवम्भचेरम्स	१६-२८	विहगइव विष्पमुक्को	२०-६०
विट्ठ भुजइ सूयरे	१-५	विरए आयरक्खिए	२-१५	विहम्माणो किलिस्सई	२७-३
विणएज्ज लोमहरिस	५-३१	विरए आयहिए पहाणव	२१-२१	विहरइ महि महप्पा	२७-१७
विणए ठवेज्ज अप्पाण	१-६	विरए कयविक्रए	३५-१३	विहरड वसुह विगयमोहो	२०-६०
विणएण वन्दए पाए	१८-८	विरए वेयवियाऽऽयरक्खिए	१५-२	विहरामि अह मुणी ।	२३-३८, ४१
विणओ एस वियाहियो	३०-३२	विरओ घणपयणपरिगहाओ	१२-६	विहरामि जहक्कम	२३-४३
विणय पाउकरिस्सामि	१-१	विरज्जमाणस्स य इन्दियत्या	३३-१०६	विहरामि जहानाय	२३-४६
विणिघायमागच्छइ से चिर पि	२०-४३	विरत्तकामाण तवोधणाण	१३-१७	विहरामि महामुणी ।	२३-४८
विणियट्ठणयाए ण भन्ते ! जीवे		विरत्ता उ न लगन्ति	२५-४१	विहरिस्सामि निरामिसा	१४-४६
किं जणयइ ? २६सू० ३३		विरली अच्छिवेहए	३६-१४७	विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो	३२-५
विणियट्ठन्ति भोगेसु ६-६२, १६-६६, २२-४६		विलुत्तो विलवन्तो हं	१६-५८	विहरेज्ज पच्छा य जहासुह तु	१७-१
विणिहम्मन्ति पाणिणो	३-६	विज्जणा वालजणस्स दूरा	३२-३	विहाणाइ सहस्ससो	३६-८३, ६१, १०५,
विणीयविणए दन्ते	३४-२७	विवडइ विद्वसइ ते सरीरय	१०-२७		११६, १२५, १३५, १४४,
वित्त कामे य भुजिया	७-८	विवन्नसारो वणिओ व्व पोए	१४-३०		१५४, १६६, १७८, १८७,
वित्ते अचोइए निच्च	१-४४	विवाद च उदीरेइ	१७-१२		१६४, २०३, २४७
वित्ते गिद्धे य इत्थिसु	५-१०	विविच्च कम्मुणो हेउं	६-१४	विहारविहरए मुणी	२६-३५
वित्तेण ताण न लभे पमत्ते	४-५	विवित्तलयणाइ भएज्ज ताई	२१-२२	विहारजत्त निज्जाओ	२०-२
वित्थाररुइ त्ति नायव्वो	२८-२४	विवित्तवासो मुणिण पसत्थो	३२-१६	विट्ठणाहि रय पुरे कड	१०-३
वित्थिण्णे दूरमोगाढे	२४-१८	विवित्तसयणासण	३०-२८		
विन्नाणेण समागम्म	२३-३१	विवित्तसयणासणयाए ण भन्ते !		वी	
विन्नाय पवित्तिक्रय	२३-२४	जीवे..... २६सू० ३२		वीदसएहि जालेहि	१६-६५
विष्पओगमुवागया	१३-८	विवित्तसेज्जासणजन्तियाण	३२-१२	वीयरागयाए ण भन्ते ! जीवे	
विष्पओगहे तहाविह भिक्खू	८-४	विविह खाइमसाइमं परेसि	१५-११	किं जणयइ ? २६ सू० ४६	
				वीयरागो अणासवो	३५-२१

वीरिय उवन्नोगो य	२८-११	वेयावच्चेणं भन्ते । जीवे किं		सखेवरुइ त्ति होइ नायव्वो	२८-२६
वीरिय पुण दुल्लह	३-१०	जणयइ ?	२६ सू० ४४	सगहे छद्दिसागय	३३-१८
वीसई कोडिकोडिओ	३३-२३	वेयावच्चे निउत्तेण	२६-१०	सगहेण य थावरे	२५-२२
वीसई सागरोवमा	३६-२३२	वेयावच्चे व सज्जाए	२६-६	सगामसीसे इव नागराया	२१-१७
वीस इत्थियामु य	३६-५१	वेरत्तिय पि काल	२६-२०	सगामे दुज्जए जिणे	६-३४
वीन तु सागराई	३६-२३१	वेराणुवद्धा नरय उवेन्ति	४-२	सगो एस मुणुस्साण	२-१६
		वेरुलियनिद्धसकासा	३४-५	सच्चिक्खत्तगवेसए	२-३३
वु		वेवमाणी निसीयई	२२-३५	सच्चिक्खमाणो चरिस्सामि मोणं	१४-३२
वुगहे कलहे रत्ते	१७-१२	वेस त होइ मूढाण	१-२६	सजए इरिय रिए	२४-४
वुच्छ तेसिं चउव्विह	३६-१५८, १७३, १८२, १८६, २१७	वेस होइ असाहुणो	१-२८	सजओ अहमस्सीत्ति	१८-१०
वुच्छामि अणुपुव्वसो	३०-२६, ३६-४७, १०६			सजओ चइउ रज्ज	१८-१६
वुच्छाम् सोवागनिवेसणेसु	१३-१६	वो		सजओ नाम नामेणं	१८-२२
वुज्जमाणाण पाणिण	२३-६५, ६८	वोच्छामि अणुपुव्वसो	२४-१६	सजओ परिवज्जए	३५-३, ६
वे		वोच्छिन्द सिणेहमप्पणो	१०-२८	सजओ सुसमाहिओ	१२-२
वेएज्ज निज्जरापेही	२-३७	वोदाणेण भन्ते । जीवे किं.....	२६ सू० २६	सजम निहुओ चर	२२-४३
वेणेण य पहावई	२७-६	वोसट्ठकाए विहरेज्जा	३५-१६	सजम पडिवज्जिया	३-२०
वेमाणिया उ जे देवा	३६-२०६	वोसट्ठकाओ सुइच्चत्तदेहो	१२-४२	सजममि य वोरिय	३-१
वेमायाहिं सिक्खाहिं	७-२०	स		सजममाणो वि अहं	१८-२६
वेयण वेयावच्चे	२६-३२	सइ च जइ मुच्चेज्जा	२०-३२	सजमेणं भन्ते । जीवे किं जणयइ ?	२६ सू० २७
वेयणा अणुभविउ जे	२०-३१	स उज्जुभाव पडिवज्ज सजए	२१-२०	सजमेण तवेण य	१-१६; १६-७७, २५-४३, २८-३६
वेयणाए दुहट्ठिए	२-३२	सओरोहो य सपरियणो य	२०-५८	सजमे य पवत्तण	३१-२
वेयणाओ अणन्तसो	१६-४५	सकट्ठाणाणि सब्वाणि	१६-१४	सजय सुसमाहिय	२०-४
वेयणा परमदारुणा	२०-२१	सकप्पेण विहन्त्सि	६-५१	सजयस्स तवस्सिणो	२-३४
वेयणा मे खय गया	२०-३३	सकमाणो तणु चरे	१४-४७	सजयाए सुभासिय	२२-४६
वेयणा चिठला इओ	२०-३२	सकरदूस्सं परिहरिय कण्ठे	१२-६	सजयाण च भावओ	२०-१
वेयणा वेइया मए	१६-७१, ७४	सकह च अभिक्खणं	१६-३	सजयाण तवस्सिण	२३-१०
वेयणिज्ज तहा मोह	३३-२	सकाभीओ न गच्छेज्जा	२-२१	सजयाण वुसीमओ	५-१८, २६
वेयणिज्जे तहेव य	३३-२०	सकिएगणणोवग कुज्जा	२६-२७	सजायई समयमुवट्ठियस्स	३२-१०७
वेयणीय पि य दुविह	३३-७	सखिककुन्दसकासा	३६-१३३, १४२, १५२	सजोगा य विभागा य	२८-१३
वेया अहीया न भवन्ति ताण	१४-१२	सखककुन्दसकासा	३४-६, ३६-६१	सजोगा विप्पमुक्कस्स	१-१; ११-१
वेयाण स मह वूहि	२५-१४	सखचक्कगयाधरे	११-२१	सठाणओ भवे तंसे	३६-४४
वेयावच्च तमाहिय	३०-३३	सखाईया लोगा	३४-३३	सठाणओ भवे वट्ठे	३६-४३
वेयावच्च नहेव सज्जाओ	३०-३०	सखा उ कमसो तेसिं	३६-१६७	सठाणओ य चउरसे	३६-४५
वेयावच्चमि दसविहे	३०-३३	सखा सखणगा तहा	३६-१२८	सठाणओ य विन्नेओ	३६-१५
		सखा सठाणमेव य	२८-१३		

सठावपरिणया जे उ	३६-२१	सवच्छर मज्झिमिया	३६-२५१	[सक्क सक्केण चोइओ]	१८
सठाणादेसओ वावि	३६-८३, ६१, १०५,	सवट्टगवाते य	३६-११६	सगरो वि सागरन्त	१८-३५
११६, १२५, १३५, १४४,		सवड्डई घरे तस्स	२१-५	सगा जेट्टकणिट्ठगा	२०-२६, २७
१५४, १६६, १७८, १८७,		सवरो निज्जरा मोक्खो	२८-१४	सचेले यावि एगया	२-१३
१६४, २०३, २४७		सवुडे निट्ठणे रय	३-११	सच्चसोयप्पगडा	१३-६
सतइ पप्पणाईया	३६-७६, ८७, १०१, ११२,	सवेगेण भन्ते । जीवे किं जणयइ ?	२६सू०२	सच्चा तहेव मोसा य	२४-२०, २२
१२१, १३१, १४०, १५०,		ससय खलु सो कुणई	६-२६	सच्चा मे भासिया वई	१८-५२
१५६, १७४, १८३, १६०,		ससरइ सुहासुहेहि कम्मेहि	१०-१५	सच्चा मोसा तहेव य	२४-२०, २२
१६६, २१८		ससार बहु अणुपरियहन्ति	८-१५	सच्चेण पलिमन्थए	६-२१
सतइ पप्प तेज्जाई	३६-१२	ससारमि अणतए	६-१२	सच्चे सच्चपरक्कमे	१८-२४
सतत्तभाव परित्तप्पमाण	१४-१०	ससारमि अणन्तए	६-१	सज्जाएण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?	
सताणछिन्ना चरिस्सामि मोण	१४-४१	ससारमि दुक्खपउराए	८-१		२६सू०१६
सथव अहिज्ज अकामकामे	१५-१	ससारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा	१४-४	सज्जाए वा निउत्तण	२६-१०
सथवो चेव नारीण	१६-११	ससारत्या उ जे जीवा	३६-६८	सज्जाओ पचहा भवे	४०-३४
सथारए अणाउत्ते	१७-१४	ससारत्या य सिद्धाय य	३६-४८, २४८	सज्जायएगन्तनिसेवणा	३२-३
सथार फलग पीढ	१७-७	ससारपारनिच्छिन्ना	३६-६७	सज्जाय चेव पचहा	२४-८
सथुया ते पसीयन्तु	२३-८६	ससारभीरुस्स ठियस्स घम्मे	३२-१७	सज्जाय तओ कुज्जा	२६-३६, ४४
संवावई नरगतिरिक्ख जोणि	२०-४६	ससारमवन्न परस्स अट्ठा	४-४	सज्जाय तु चउत्थिए	२६-४३
सपइ नेयाउए पहे	१०-३१	ससारमोक्खस्स विपक्खभूया	१४-१३	सज्जाय पओसकालम्मि	२६-१६
सपज्जलिया धोरा	२३-५०	ससारम्मि अणन्तए	२०-३१	सज्जायज्जाणुत्ते	१८-४
सपत्ते विरमेज्जा	२६-१६	ससारसागर धोर	२२-३१	सड्ढी काएण फासए	५-२३
सपत्तो केवल नाण	३५-२१	ससार हेउ च वयन्ति वन्व	१४-१६	सड्ढी तालिसमन्तिए	५-३१
सपिण्डिया अगारसापभूया	१४-३१	संसारे परिवत्तए	३३-१	सडे वालगवी वए	२७-५
सबुद्धप्पा य सव्वन्तू	२३-१	ससारो अइवत्तई	२७-२	सणकुमारमाहिन्दा	३६-२१०
सबुद्धा पुव्वसथुया	१-४६	ससारो अणवो वुत्तो	२३-७३	सणकुमारे जहन्नेण	३६-२२४
सबुद्धो सो तहिं भगव	२१-१०	सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स	१४-५	सणकुमारो मणुस्सिन्दो	१८-३७
सभोगकाले य अतित्थिलाभे	३२-२८, ४१, ५४,	सकम्मसेसेण पुराकएण	१४-२	सणासणकुसुमनिभा	३४-८
६७, ८०, ६३		सकम्मुणा किच्चइ पावकारी	४-३	सणाहो वा नराहिवा	२०-१६
सभोग पच्चक्खाणेण भन्ते ! जीवे		सकवाड पण्डुल्लोय	३५-४	सण्हा खरा य वोद्धवा	३६-७१
किं जणयइ ? २६सू०३४		सकाममरण तथा	५-२	सण्हा सत्तविहा तहिं	३६-७१
समुच्छई नासइ नावचित्ठे	१४-१८	सकाम मरण मरई	५-३२	सत्त ऊ सागरोवमा	३६-२२६
समुच्छिमाण एसेव	३६-१६८	सक्के देवाहिर्वई	११-२३	सत्तट्ठभवग्गहणे	१०-१३
सच्छिमा य मणुया	३६-१६५	सक्को माहणरूवेण	६-६	सत्तमम्मि जहन्नेण	३६-२४०
सरम्मसमारम्मे	२४-२१, २३, २५	सक्ख सु दीसइ तवो विसेसो	१२-३७	सत्तमाए जहन्नेण	३६-१६६
सलेहुक्कोसिया भवे	३६-२५१	सक्ख सक्केण चोइओ	६-६१, १८-४४	सत्तमो मिच्छिकारो य	२६-३

सत्तरम सागराइ	३६-२२८	सद्देसु जो गिद्धिमुवेइ तिब्ब	३२-३७	समएणेणेण उ सिज्झई उ	३६-५४
सत्तरस सागरा ऊ	३६-१६४	मद्दाखम णे विणइत्तु रागं	१४-२८	समएणेणेण सिज्झई	३६-५१, ५२
सत्तरस सागरोवमा	३६-१६५, २२६	सद्धा परमदुल्लहा	३-६	समए वि सन्तइ पप्प	३६-६
सत्तरि कोडिकोडिओ	३३-२१	सद्ध नगर किच्चा	६-२०	समए समयखेत्तिए	३६-७
सत्तविह नवविह वा	३३-११	सन्नियाणा कण्हलेसमोगाढा	३६-२५६	सम च सथव थीहि	१६-३
सत्तहा परिक्रित्तिया	३६-१५७	सन्नियाणा हु हिसगा	३६-२५७	सम हिच्चा महापह	५-१४
सत्तावीसइ विहेवकत्तीओ वा	३४-२०	सन्ति एगेहि भिक्खूहि	५-२०	समचउरसो भसोयरो	२२-६
सत्तु मित्तेसु वा णे	१६-२५	सन्तिमग्ग च वूहए	१०-३६	समण सजय दन्त	२-२७
सत्तू य इइ के वुत्ते ?	२३-३७	सन्तिमे य दुवे ठाणा	५-२	समणा भविस्सामु गुणोहधारी	१४-१७
सत्तेव उ सागरोवमा	३६-१६३	सन्ती सन्तिकरे लोए	१८-३८	समणा मु एगे वयमाणा	८-७
सत्तेव सहन्साड	३६-८८	सन्तेए तहिया नव	२८-१४	समणो अह सजओ वम्भयारी	१२-६
सत्तेव सागरा ऊ	३६-१६२	सन्धीसु य महापहे	१-२६	समय गोयम ! मा पमायए	१०-१ से ३६
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि	३२-२६, ४२, ५५, ६८, ८१, ९४	सन्नाइपिण्ड जेमेइ	१७-१६	समय सजए भुजे	१-३५
सत्य जहा परमतिक्व	२०-२०	सन्नाणनाणोवगए महेसी	२१-२३	समयाए समणो होइ	२५-३०
सत्यगहण विसभवखण च	३६-२६७	सन्निरुद्धमि आउए	७-२४	समया सव्व भूएसु	१६-२५
सत्ये मवट्टकोट्टे य	३०-१७	सन्निरुद्धा य अच्छहि ?	२२-१६	समरेव महामुणी	२-१०
मदावरीय गुम्मी य	३६-१३८	सन्निरुद्धे जलागमे	३०-५	समरेसु अगारेसु	१-२६
म देवगन्धर्वमणुस्सपूडए	१-४८	सन्निरुद्धे सुदुक्खिए	२२-१४	समलेट्टुकचणे भिक्खू	३५-१३
सदेसमह पत्तियओ	२१-३	सन्निवेसे समायघोसे य	३०-१७	समाइण्णाइ जक्खेहि	५-२६
सद्धन्वयारउज्जोओ	२८-१२	सन्निहि च न कुब्जेज्जा	६-१५	समागमे कयमई	२३-१४
सद्धन्स सोय गहण वयन्ति	२२-३६	सन्निहीसचओ चेव	१६-३०	समागया त 'इसि तालयन्ति'	१२-१६
सद्धहज्ज जिणाभिहिय	२८-२७	सपज्जवसिए वि य	३६-६	समागया दो वि चित्तसम्भूया	१३-३
सद्धहणा पुणरावि दुल्लहा	१०-१६	सपज्जवसिया वि य	३६-१२, ७६, ८७, १०१, ११२, १२१, १३१, १४०, १५०, १५६, १७४, १८३, १९०, १९६, २१८	समागया बहू तत्थ	२३-१६
मद्दाइया तावइयप्पगारा	३२-१०६	सपरिसो पजली होउ	२५-१३	समागया सव्वजणेण अम्हे	१२-३३
मद्दाणुगासाणुगए य जोवे	३२-४०	सपाहेओ पवज्जई	१६-२०	समागया सव्वजणेण तुब्भे	१२-२८
मद्दाणुरत्तस्स नरस्स एव	३२-४५	स पुज्जसत्ये सुविणीयससए	१-४७	समाययन्ती अमइ गहाय	४-२
मद्दाणुवाएण परिगहणेण	३२-४१	म पुव्वमेव न लभेज्ज पच्छा	४-६	समाखओ नोवसम उवेइ	३२-११
सद्दा विविहा भवन्ति लोए	१५-१४	सप्पे विलाओ विव निक्खमन्ते	३२-५०	समावन्ताण मसारे	३-२
सद्दे अतित्तम्म परिगहे य	३२-४३	सफला जन्ति राइओ	१४-२५	समावन्तो नराहिवो	१८-१८
सद्दे अतित्ते य परिगहे य	३२-४२	सग्गभाव पच्चक्खाणेण भन्ते !		समासासेन्ति अप्पय	६-६
सद्दे अतित्ते समुवेइ मच्चु	३२-३७	जीवे किं जणयइ ?	२६सू०४२	समासेण वियाहिओ	३०-२६
सद्दे अतित्तो दुहिओ वणिस्सो	३२-४४	सग्गभावे उवएसण	२८-१५	समासेण वियाहिया	२४-३, १६; २६-५२; ३६-७७, १०६
सद्दे विरत्तो मनुओ विमोगो	३२-४७	सग्गिभन्तरवाहिरओ	१६-८८	समासेण वियाहिय	३०-१४, ३३-१५
सद्दे ख्ये य गन्धे य	१६-१०			समाहिउप्पायगा य गुणगाही	३६-२६२

समार्हि पडिसघए	२७-१	सम्मग तु जिणक्खायं	२३-६३	सल्ल कामा विस कामा	६-५३
समाहिकामे समणे तवस्सी	३२-४, २१	सम्मग समुवट्ठिया	२३-८६	सल्लाण च तिय तिय	३१-४
समिई गुत्ती तहेव य	२४-१	सम्मत्त चेव मिच्छत्त	३३-६	सवियारववियारा	३०-१२
समिई सु किरियासु य	३१-७	सम्मत्त त वियाहिय	२८-१५	स वीयरगो कयसव्वकिच्चो	३२-१०८
समिईहि मज्झ सुसमाहियस्स	१२-१७	सम्मत्तचरित्ताइ	२८-२६	सव्वओ परिवारिए	१४-२१, १८-२
समिए गुत्ते य गुत्तिहि	३४-३१	सम्मद् सणरत्ता	३६-२५८	सव्वओ परिवारिओ	२२-११
समिक्ख पडिए तम्हा	६-२	सम्मद्माणे पाणाणि	१७-६	सव्वओ पिहियासवे	१६-६३
समिच्च लोय समया महेसी	४-१०	सम्मामिच्छत्तमेव य	३३-६	सव्वओ विप्पमुक्कस्स	१६-१६
समिद्धा कामरूविणो	५-२७	सम्मुच्छिमतिरिक्खाओ	३६-१७०	सव्व अप्पे जिए जिय	६-३६
समुदाय तय त तु	२५-३४	सय गेह परिचज्ज	१७-१८	सव्व कम्म खवित्ताण	२२-४८
समुद्दमि पसवई	२१-४	सय च अट्ठत्तर तिरयलोए	३६-५४	सव्व गन्थ कलह च	८-४
समुद्गम्भीरममा दुरासया	११-३१	सयण परियण चेव	२२-३२	सव्वगेसु य पत्थिवा	२०-१६
समुद्दपालित्ति नामए	२१-४	सयणा तहा कामगुणा पगामा	१४-१६	सव्व जग जइ तुह	१४-३६
समुद्दपाले अपुणागम गए	२१-२४	सयणासणठाणे वा	३०-३६	सव्व तओ जाणइ पासए य	३२-१०६
समुद्दपालो इणमम्भवी	२१-६	सयणासणपाणभोयण	१५-११	सव्व धम्म वियाणित्ता	१४-५०
समुद्दम्मि जलम्मि य	३६-५०	सयणासणसेवणया	३०-२८	सव्व नट्ट विडम्बिय	१३-१६
समुद्दविजए नाम	२२-३	सयणेण वा कामगुणेहि चव	१४-१७	सव्व पि ते अपज्जत्त	१४-३६
समुद्दविजयगओ	२२-३६	सयणे नो पडिस्सुणे	१-१८	सव्व वावि घण भवे	१४-३६
समुद्देण सम मिणे	७-२३	सयमेव लुचई केसे	२२-२४, ३०	सव्व विलविय गीय	१३-१६
समुयाण उच्छमेसिज्जा	३५-१६	सया कुसलसदिट्ठ	२५-१६	सव्व सव्वेण वट्ठग	३६-१८
समुवट्ठिय तहि सन्त	२५-६	सया दुही विप्परियासुवेइ	२०-४६	सव्व सुचिण्ण सफल नराण	१३-१०
समे अज्झुसिरे यावि	२४-१७	सरइ पोरानिय जाइ	६-१, १६-८	सव्व से जाइय होइ	२-२८
समो निन्दापससासु	१६-६०	सरण गई पड्डा य	२३-६५	सव्वकम्मविनिम्मुक्क	२५-३२
समो य जो तेमु स वीयरगो	३२-२२, ३५, ४८, ६१, ७४, ८७	सरगो वीयरगो वा	३४-३२	सव्वगुण सम्पन्नयाए ण भन्ते !	
समो य सव्वभूएसु	१६-८६	सरित्तु पोरानिय तत्थ जाइ	१४-५	जीवे किं जणयइ ?	२६५०४५
सम्युक्कावट्ठाऽऽययगन्तु	३०-१६	सरिसो होइ बालाण	२-२४	सव्वजीवाण कम्म तु	३३-१८
सम्म नो फासयई पमाया	२०-३६	सरीर पच्चक्खाणेण भन्ते !		सव्व जीवेसुऽइच्छिय	३३-२४
सम्म जयइ सजमे	३६-१	जीवे किं जणइ ?	२६५०३६	सव्वट्ठसिद्धा चेव	३६-२१६
सम्म जाणामि अप्पग	१८-२७	सरीरपरिमण्डण	१६-६	सव्वट्ठस्सुवरिं भवे	३६-५७
सम्म धम्म वियाणित्ता	१४-५०	सरीरमाहु नाव त्ति	२३-७३	सव्वट्ठेसु व खत्तिया	३-५
सम्म नो पडित्तप्पइ	१७-५	सरीरविषरन्तरे	२०-२०	सव्वड्डीए सपरिसा	२२-२१
सम्म भावेत्तु अप्पय	१६-६४	सरीरवोच्छेयणट्ठाए	३६-३४	सव्व दुक्खप्पहीणट्ठा	२८-३६
सम्म सपडिवज्जई	२३-१६	सल्लिगे अन्नल्लिगे य	३६-४६	सव्वदुक्खप्पहीणे वा	५-२५
सम्म सुद्धेण चयसा	१८-३२	सल्लिगेण य अट्ठसय	३६-५२	सव्वदुक्खविमोक्खण	२६-३८, ४१, ४६, ४६
		सलिला सागरगमा	११-२८	सव्वदुक्खविमोक्कणि	१६-८५, २६-१, ४६

सञ्च दुक्खविमोक्खणे	२६-१०,४६	सञ्चेषु वि पएसेसु	३३-१८	सागरोवममेग तु	३६-१६०
सञ्चदुक्खा विमुच्चई	६-८	सञ्चेहिं भूएहिं दयाणुकम्पी	२१-१३	साणुक्कोसे जिएहि उ	२२-१८
सञ्चदं तु विद्याहिया	३६-८	सञ्चोसहीहि ण्विओ	२२-६	सा तेसिं कायट्ठई	३६-१६७,२४५
सञ्चवम्माणुवत्तिणो	७-२६	ससरक्खपाए सुवई	१७-१४	सा पव्वइया सन्ती	२२-३२
सञ्चनयाण णणुमए	३६-२४६	सह सन्नुओ णणुत्तरे षम्मे	६-२	सा पुढवी निम्मला सहावेणं	३६-६०
सञ्चन्नु जिणभक्खरो	२३-७८	सहसम्मइयासवसंवरो य	२८-१७	सा बाला नोवभुजई	२०-२६
सञ्चपमाणेहि जस्स उवलद्धा	२८-२४	सहसाञ्चत्तासियाणि य	१६-६	सा मज्झम्मि विद्याहिया	३६-५६
सञ्चभवेसु अस्ताया	१६-७४	सहस्स हारए नरो	७-११	सामणं च पुराकयं	१६-८
सञ्चभावविभावण	२६-३६	सहस्सगुणिया भुज्जो	७-१२	सामण निच्चल फासे	२२-४७
सञ्चभूयाण सजया	२०-५६	सहस्सारे जहन्नेणं	३६-२२६	सामणं पुत्त ! दुच्चर	१६-२४
सञ्चमेय चइत्ताणं	६-५	सहायपच्चक्खाणेणं भन्ते !		सामणमणुपालिउ	१६-३४
सञ्चलक्खणसपुन्ना	२२-७	जीवे किं जणयइ ?	२६सू०४०	सामणमणुपालिया	१६-६५; ३६-२५०
सञ्चलोगमि पाणिण	२३-७५, ७६	सहायमिच्छे निउणत्थ बुद्धि	३२-४	सामणस्स भविस्ससि	२२-४५
सञ्चलोगम्मि विस्सुए	२३-५	सहिए आयगवेसए स भिक्खू	१५-५	सामणो पज्जुवट्ठिओ	६-६१
सञ्चलोगप्पभकरो	२३-७६	सहिए उज्जुकडे नियाणछिन्ने	१५-१	सामणो पज्जुवट्ठिया	१८-४६
सञ्चसगविनिम्मुक्के	१८-५३	सहिए खेयाणुगए य कोवियप्पा	१५-१५	सामाइएण भन्ते ! जीवे किं०	२६सू०६
सञ्चसत्तू जिणामह	२३-३६	सा		सामाइयत्थ पढम	२८-३२
सञ्चमुत्तमहोयही !	२३-८५	सा उ उद्धरिया कह ?	२३-४५	सामायारि पवक्खामि	२६-१
सञ्चस्स दुक्खस्स उ जो पमोक्खो	३२-१	सा उ पारस्स गामिणी	२३-७१	सामायारी पवेइया	२६-४, ७
सञ्चस्स दुक्खस्स पमोक्खमणो	३२-१११	सागरन्त जहत्ताणं	१८-४०	सामिस कुलल दिस्स	१४-४६
सञ्चस्स लोणस्स दुगंछणिज्जा	१३-१६	सागरा अउणतीसई	३६-२४१	सामी कुज्जा निमन्तण	२-३८
सञ्चस्स लोणस्स सदेवगस्स	३२-१६	सागरा अउणतीस तु	३६-२४०	सामेहिं सवलेहि य	१६-५४
सञ्चारम्भपरिच्चाओ	१६-२८	सागरा अउणवीसई	३६-२३१	सायं च पाय उदग फुसन्ता	१२-३६
सञ्चाहि नयविहिहि य	२८-२४	सागरा अउणवीसं तु	३६-२३०	साय नो परिदेवए	२-८, ३६
सञ्चे आभरणा भारा	१३-१६	सागरा अट्ठवीसई	३६-२४०	सायमसाय च आहियं	३३-७
सञ्चे उम्मणापट्ठिया	२३-६३	सागरा अट्ठवीस तु	३६-२३६	सायरसइड्ढिहेउं	३६-२६४
सञ्चे कामा पुहावहा	१३-१६	सागरा इक्कतीस तु	३६-२४२	सायस्स उ बह भेया	३३-७
सञ्चे ते दुक्खसभवा	६-१, ११	सागरा इक्कवीसई	३६-२३३	सायागारविए एगे	२७-६
सञ्चे ते परिनिव्वुड	१४-५३	सागरा इक्कवीम तु	३६-२३२	सारभण्डाणि नीगेइ	१६-२२
सञ्चे ते विइया मज्ज	१८-२७	सागरा उ छवीसई	३६-२३८	सारहिं इणमव्ववी	२२-१५
सञ्चे धम्मपरायणा	१४-५१	सागराणि य सत्तेव	३६-२२४	सारहिस्स पणामए	२२-२०
सञ्चेहिं चेव धम्माण	३३-१७	सागरा पणुवीसई	३६-२३७	सारीर माणसा चेव	१६-४५
सञ्चेसिं चेव भूयाणं	२०-३५	सागरा सत्तवीसई	३६-२३६	सारीरमाणसे दुक्खे	२३-८०
सञ्चेणु कामगाएमु	८-४	सागरा सत्तवीस तु	३६-२३८	सावए आसि वाणिए	२१-१
सञ्चेणु वि पएसण	३३-२४	सागरा साहिया दुम्भि	३६-२२३	सावए वाणिए घर	२१-५

सावए मे विकोबिए	२१-२	सिज्मन्सन्ति तहापरे	१६-१७	सीया नीलवन्तपवहा	११-२८
सावज्ज वज्जए मुणी	१-३६	मिणाण नो वि पत्यए	२-६	सीयाए जोयणे तत्तो	३६-६१
सावज्जजोग परिवज्जयन्तो	०१-१३	मिता नो व ढहन्ति मे	२३-५१	सीयारयणं तथो समाह्वो	२२-२२
सावत्थि नगरिमागए	२३-३	सिद्धाङ्गुणजोगेमु	३१-२०	'सील' पडिलमे जओ	१-७
सासए जिणदेसिए	१६-१७	सिद्धाणज्जन्तभागी य	३३-२४	सीलड्ड गुणआगर	१६-५
सास दास व मन्तई	१-३६	मिद्धाण नमो किच्चा	२०-१	सीलभूण अण्णणा	२७-१७
सासणे विगयमोहाण	१४-५२	मिद्धाणेगविहा वुत्ता	३६-४८	सीलवन्ता बहुम्मुया	५-२६, २२-३२
सासय परिनिव्वुए	३५-२१	सिद्धाणोगाहणा भवे	३६-६२, ६४	सीलवन्ता सवीसेसा	७-२१
साहवो सजमुत्तरा	५-२०	सिद्धा सिज्मन्ति चाणेण	१६-१७	सीलसहावहासविगहाहि	३६-२६३
साहस्सीए परिवुटो	२२-२३	मिद्धि गच्छमि नीरओ	६-५८	सीस छेत्तूण मुज्जई	७-३
साहस्सीओ समागया	२३-१६	मिद्धि गोयम । लोय गच्छसि	१०-३५	सीमसघसमारले	२३-३, ७, १५
साहारण ज च करेइ कम्म	४-४	मिद्धि पत्ता अणुत्तर	२२-४८, २५-४३	सीसेण एय सरण उवेह	१२-२८
साहारण सरीरा उ	३६-६६	मिद्धि पत्तो अणुत्तर	१६-६५	सीसे सो उ महण्णो	२१-१
साहारण सरीरा य	३६-६३	सिद्धि वरगड गया	३६-६३, ६७	सीहकणी तहेव य	३६-६६
साहाहि खखो लहए समाहि	१४-२६	मिद्धि सपाउणेज्जासि	११-३२	सीहे मियाण पवरे	११-२०
साहिय पलिओवम	३६-२२३	सिद्धिगइ गए गोयमे	१०-३७	सीहो व मदेण न सतसेज्जा	२१-१४
साहिय सागर एक्क	३६-२१६	मिद्धी लोगगमेव य	२३-८३	सु	
साहिया दुन्नि सागरा	३६-२२५	सिद्धे वा हवइ सासए	१-४८	मुइ च लद्ध सद्ध च	३-१०
साहिया मागरा सत्त	३६-२२५	मिद्धे हवइ नीरए	१८-५३	मुई धम्मन्स दुट्ठहा	३-८
साहू गोयम । पन्ता ते २३-२८, ३४, ३६, ४४,		सिद्धे हवइ सामए	३-२०	मुएण ओगाहई उ सम्मत्त	२८-२१
४६, ५४, ५६, ६४, ६६, ७४, ७६, ८५		मिया हू वेलामममा अमखया	६-४८	सुमुमारा य वोद्धवा	३६-१७२
साहुणा विम्हयन्निओ	२०-१३	सिरे चूडामणी जहा	२२-१०	मुकड तम्स सामण्ण	२-१६
साहुम्स तस्स वयण अकाउं	१३ ३४	सिमुणागुव मट्ठिय	५-१०	मुकडे ति सुपक्के ति	१-३६
साहुम्स दरिसणे तस्स	१६-७	सी		सुकहियमट्ठपओवसोहिय	१०-३७
साहु अन्नोऽय वच्चउ	२७-१२	सीउण्ह विविह च दंसमसग	१५-४	सुकुमाल सुहोइय	२०-४
साहु कल्लाण मन्तई	१-३६	सीएण फल्लेण वा	१-२७	सुकुमालो सुमज्जिओ	१६-३४
साहु कहय पुच्छिओ	२५-१५	सीओदग न सेविज्जा	२-४	सुक्कभाण भियाएज्जा	३५-१६
सि		सीओसिणा दसममा य फासा	२१-१८	सुक्कलेस तु परिणमे	३४-३२
सिगवेरे तहेव य	३६-६६	सीय च सोवीरजवोदग च	१५-१३	सुक्कलेसा उ वण्णओ	३४-६
सिगारत्थ न धारए	१६-६	सीय फुसइ एगया	२-६	सुक्कलेसा य इट्ठा उ	३४-३
सिच्चामि मययं देह	२३-५१	सीयच्छाए मणोरमे	६-६	सुगइ उववज्जई बहुसो	३४-५७
सिक्खए नीइकोविए	२१-६	सीयन्ति एगे बहु कायरा नरा	२०-३८	सुगीवे नयरे रम्मे	१६-१
सिक्खामी लेत्ति वुच्चई	११-४, ५	सीयन्ति जत्था वदुकायरा नरा	२१-१६	सुच्छिन्ने सुहडे मटे	१-३६
सिक्खित्ता सज्जम तव	५-२८	सीयपिड पुराणकुम्मास	८-१२	सुट्ठिया नियमववए	२२-४०
सिज्मन्ते जुगव दुवे	३६-५३	सीया उण्हा य निद्धा य	३६-२०	सुट्ठु मे उवदसिय	२०-५४, २५-३५

मुणगमडगन्म व जहा अहिमडस्म	३४-१६	सुयसीलसमुक्करिसो	२३-८८	सुहेण य दुहेण य	२८-१०
मुणिट्ठिए मुलट्ठे त्ति	१-३६	मुयस्स आराहणयाए ण भन्ते ।		मुहेसिणो दुक्खविणोयणट्ठा	३२-१०५
मुणियाऽभाव साणस्स	१-६	जीवे किं जणयइ ?	२६सू०२५	सुहोदयो तुम पुत्ता !	१६-३४
मुणेह एगगहिय हियत्व	३२-१	मुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो	११-३१	सू	
मुणेह जिणभासिय	२८-१	सुयाणि मे पच्च महव्वयाणि	१६-१०	सूयरस्स नरस्स य	१-६
मुणेह मे एगमणा दूओ	३६-१	सुया मे नरए ठाणा	५-१२	सूरा दढपरक्कमा	१८-५१
मुणेह भेगगमणा	३५-१	सुरूवे ? चारुभासिणि	२२-३७	सूरे दढपरक्कमे	११-१७
मुणेह मे महाराय ।	२०-१७	सुरूवे पियदसणे	२१-६	सूरो अभिहणे पर	२-१०
मुत्त अत्थ च तदुभय	१-२३	सुलहा तेसिं भवे बोही	३६-२५८	सूलेहिं मुसलेहि य	१६-६१
मुत्तग च महायसो	२२-२०	सुवण्ण रुपस्स उ पव्वया भवे	६-४८	से	
मुत्तव सच्चिन्तया धिई य	३२-३	मुविणीए त्ति वुच्चई	११-१०, १३	सेओ भगारवासु त्ति	२-२६
मुत्तेमु यावी पडिबुद्धजीवी	४-६	सुविसोज्झो सुपालओ	२३-२७	सेओसच्चपरक्कमे	१८-४८
मुदिट्ठपरमत्यसेवणा वा वि	२८-२८	सुव्वए कम्मई दिव	५-२२	सेकाहए महया वित्थरेण	२०-५३
मुदुल्लह लहिउ वोहिलाभ	१७-१	सुव्वन्ति दाहणा सदा	६-७	से किंचि हु निसामिया	१७-१०
मुदो हवड कम्मणा	२५-३१	सुसबुडो पच्चहिं सवरेहिं	१२-४२	से खिप्प सव्वससारा	२४-२७; ३०-३७
मुद्वेसणाओ नच्चारणं	८-११	सुसमिया कामगुणा इमे ते	१४-३१	से धाणवले य हायई	१०-२३
मुद्वोदए य उस्से	३६-८५	सुसम्भन्तो सुविम्हिओ	२०-१३	से चक्खुवले य हायई	१०-२२
मुपरिच्चाई दम चरे	१८-४३	सुसाणे सुन्नगारे वा	२-२०, ३५-६	से चुए वम्भलोगाओ	१८-२६
मुणियस्मावि मित्तस्म	११-८	मुसीइभूओ पज्जहामि दोस	१२-४६	से जव्वभवले य हायई	१०-२४
मुद्धिभगवपरिणामा	३६-१७	मुसीला चारुपेहिणी	२२-७	सेज्ज तु पडिलेहए	२६-३७
मुमह मन्दरे गिरी	११-२६	सुह वसामो जीवामो	६-१४	सेज्ज न पडिलेहइ	१७-१४
मुमिण लक्खणदण्डवत्युविज्ज	१५-७	सुह वा जइ वा दुह	१८-१७	सेज्जा दढा पाउरण मे अत्थि	१७-२
मुयं आभिनिवोहिय	३३-४	सुहदुक्खफलविवाग	१३-३	सेट्ठिकुलम्मि विसाले	१३-२
सुय आभिनिवोहिय	२८-४	सुहमसुह च आहिय	३३-१३	सेडित्तवो पयरत्तवो	३०-१०
सुय मे आउस । तेण भगवया एव	२सू०१,	सुहसाएण भन्ते । जीवे किं		सेणिओ भगहाहिवो	२०-२, १०
	१६सू०१, २६सू०१	जणयइ ? २६ सू० ३०		सेणिया । भगहाहिया !	२०-१२
सुय लद्धु न मज्जई	११-११	सुहस्स उ वहु भेया	३३-१३	से तत्थ पत्ते न वहिज्ज भिक्खू	२१-१७
सुय लद्धुण मज्जई	११-७	सुहावह घम्मघुर अणुत्तर	१६-६८	से दसगेऽभिजायई	३-१६
सुय विणम च गाहिए	१७-४	सुहुत्तरा चेव भवन्ति सेसा	३२-१८	से न अच्छइ मण्डले	३१-३ से २० तक
सुयमुण्डपईवनिभा	३४-७	सुहुमं तह सम्पराय च	२८-३२	से नाहिई मच्चुमुह तु पत्ते	२०-४८
सुययस्स तलु चरित्तयम्म च	२८-२७	सुहुमाण नायराण य	३५-६	से नूण मए पुव्व	२-४०
सुयमारानिहया सन्ता	२३-५३	सुहुमा तत्थ वियाहिया	३६-७७, ८६, १००	से फासवले य हायई	१०-२५
सुयनाण जेण अत्थओ दिट्ठ	२८-२३	सुहुमा ते वियाहिया	३६-११०, ११६	सेय ते मरण भवे	२२-४२
सुयपरम्माममाहिय	२३-५६	सुहुमा वायरा तहा	३६-७०, ८४, ८२, १०८, ११७	सेय पव्वडउ मम	२२-२६
सुयमीउत्तवो जल	२३-५३	सुहुमा सव्वलोगम्मि	३६-७८, ८६, १००, १११, १२०	मेयमेयति मन्नई	५-६

मे विणीए त्ति वुच्चई	१-३	मो देवलोणमरिमे	६-३	हम्मन्ति भन्तपाणेमु	३५-११
से वि य मुम्मुयाइत्ता	२७-७	मो वम्मरुड त्ति नायव्वो	२८-२७	'हम्मिहति वहु' जिया	२२-१६
से वि मावत्थिमागए	२३-७	मो पच्छा परितप्पई	५-१३	ह्य भद् व वाहए	१-३७
ने मजए मुव्वए तवम्मी	१५-५	सो वीयण्ट नायव्वो	२८-२३	ह्यमाडगोणमाड	३६-१८०
से समिए त्ति वुच्चई तार्ई	८-८	सोयगिज्झ विवज्जए	१६-५	ह्याणीए गयाणीए	१८-२
से सव्ववले य हायई	१०-२६	सोयगिणा आयगुणिव्वणेण	१४-१०	हरत्तणु महिया हिमे	३६-८५
से मव्वसिणेहवज्जए	१०-२८	सोयम्म मद् गहण वयन्ति	३२-३५-३६	हरा हरन्ति त्ति कह पमाए ?	१४-१५
मेमाणि उ अण्णमत्थाड	२६-२८	सोऽरिट्ठनेमिनामा उ	२२-५	हरिणमवलो नाम	१२-१
सेमावसेम लभठ तवम्मी	१२-१०	सोरियपुरमि नयरे	२२-१,३	हगियाकाया य वोद्धच्चा	३६-६५
से सिक्ख लद्धमरिहई	११-१४	सोलमविहभेण	३३-११	हरियालमेयसकामा	३४-८
मे मुव्वए होइ मुणीण मज्जे	१७-२१	सोवागकुलममूखो	१२-१	हरियाले हिगुल्ल	३६-७४
मे सोयई मच्चुमुहोवणीए	१३-२१	सोवागजाई दुहओ गयाण	१३-१८	हरिसेणो मणुस्सिन्दो	१८-४२
मे सोयवले य हायई	१०-२१	सोवागपुत्ते हरिएममाहू	१२-३७	हलिहामेयसन्निभा	३४-८
सो		सोवागा कामिभूमिए	१३-६	हवई किच्चाण मरण	१-४५
सो इन्दिय निगहेण भन्ते । जीवे किं		सो वित्तम्मापियरो ।	१६-७६	हमिय थणियकन्दिय	१६-५
जणयइ ? २६मू-६३		मो वि अन्तरभासिहो	२७-११	हसिय भुत्तामियाणि य	१६-१२
सोअण तम्म वयण	२२-१८	सो वि राया तवं चरे	१८-३७	हा	
सोअण तम्म मो धम्म	१८-१८	सोवीररायवमभो	१८-४७	हालिद्दा मुक्किळा तहा	३६-१६,७२
सोअण रायकन्ता	२२-२८	मो ममासेण अन्विहो	३०-१०	हाम किडु रड दण	१६-६
सो एव तत्थ पडिमिद्धो	२५-६	मो मुत्तष्ट त्ति नायव्वो	२८-२१	हास कीड च वज्जए	१-६
मो करिम्मड उज्जोय	२३-७६,७८	मोहम्ममि जहन्नेण	३६-२०२	हाम मय सोगपुमित्थि वेय	३२-१०२
सो कुण्डलाण जुयत्त	२२-२०	मोहम्मोमाणगा तहा	३६-२१०	हामे भए मोहरिए	२४-६
सो खलु आणारई नाम	२८-२०	सोही उज्जुयभूयम्म	३-१२	हि	
सो खलु किरियाई नाम	२८-२५	मो हु कखे मुए मिया	१४-२७	हिगुल्लयपाठमकामा	३४-७
सोगेण उ समुत्थया	२२-२८	मो होइ अभिगमई	२८-२३	हिंसगा अजिडन्दिया	१२-५
सोच्चाऽभिनिव्वम्म पद्दाय मोए	१४-३७	ह		हिमे वाले मुसावाई	५-६, ७-५
सोच्चाण जिणमामण	२-६	हए मिए उ पासित्ता	१८-६	हिय त मन्ने पणो	१-२८
सोच्चाण फरसा भामा	२-२५	हओ न मजले भिक्खू	२-२६	हिय विगयभया बुद्धा	१-२६
सोच्चाण मेहावी मुभामिय इम	२०-५१	हसा मयगतीरे	१३-६	हिय सया वम्भवए रयाण	३२-१५
सोच्चा नेआठय मग	३-६, ७-२५	हट्टुट्टुमलकिया	१८-१६	हियनिम्ममयसनुद्विवोच्चत्थे	८-५
सोच्चा मद्दहिल्लण य	३६-२४६	हणाइ वेयाल इवाविवन्नो	२०-४४	हियनिम्ममए मव्वजीवाण	८-३
सो तवो दुबिहो वुत्तो	३०-७	हणाइ सत्थ जह कुग्गहीय	२०-४४	हिरण जायरूव च	३५-१३
सो तम्म सव्वम्म दुहम्म मुक्को	३२-११०	हणेज्जा कोड कत्थई	२-२७	हिरण पमुभिस्मह	६-४६
सो तेमु मोहा विगड उवेइ	३२-१०१	हत्यागया इमे कामा	५-६	हिरण मुवण मणिमुत्त	६-४६
मो दाणि मि गय ! महाणुभागो	१३-२०	हत्थिणपुरम्म चित्ता	१३-२८	हिरिम पडिमलीणे	११-१३

उत्तरज्झयणं (उत्तराध्ययन)

५६

हिरिली मिरिली सिस्सिरिली	३६-६७	हे	हेट्टिमाहेट्टिमा चैव	३६-२१३
ही		हेळकारणचोइओ ६-न,११,१३,१७,१९,२३,	हो	
हील च निन्द च खमाह मन्ते ।	१२-३०	२५,२७,२९,३१,३३,३७,३९,४१,४३,४५,	होइ किण्हाए	३४-४३
		४७,५०,५२	होइ वायस्स कोत्थलो	१९-४०
हु		हेळहिं कारणेहि य	होई भागेण तेऊए	३४-५२
हुज्जा गायविराहणा	२-३४	हेट्टिमा उवरिमा चैव	होक्खामि त्ति अचेलए	२-१२
हुयासणे जलन्तम्मि	१९-४९,५७	हेट्टिमामज्झिमा तहा	होमं हुणामी,इसिण पसत्थ	१२-४४
			होमि नाहो भयन्ताण	२०-११

शुद्धि-पत्रक : १

मूलपाठ, संस्कृत-छाया एवं हिन्दी-अनुवाद

पृष्ठ श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध
७ ४।३ मूलपाठ	दुस्सील-पडि ^०	दुस्सीलपडि ^०	२०८ १३।१ मूलपाठ	गत०	गत०
७ ५।१ „	कण-कु ^०	कणकु ^०	२१५ १।२ „	मुणिता	मुणित्ता
६ १५।३ „	अपा-दन्तो	अप्पा दन्तो	२२६ २१।२ स० छाया	कस्म	कस्मै
१२ ३२।२ स० छाया	०दत्ते ^०	०दत्त ^०	२२७ २७।४ „	सम्यग	सम्यग्
१३ ३६ हि० अनु०	अच्छा छेदा है ।	वहुत अच्छा छेदा है ।	२४० ६।१ स० छाया	विप्येव्व ^०	विपयेव्व ^०
१४ ४०।४ स० छाया	त	न	२४० १०।४ „	अनुजानात	अनजानीत
२७ ४।३ „	सेवेत्	सेवेत	२४५ ३६।३ „	चैव	चैव
२८ १०।१ मूलपाठ	द-स ^०	दंस ^०	२४५ ३८।३ „	चैव	चैव
४४ ६।१ स० छाया	सङ्गः	सङ्गै	२४५ ३७।१ „	चैव	चैव
६७ ३।४ „	उत्कपण	उत्कर्षेण	२४६ ४१।१ „	था	यथा
७२ ३२।२ „	समुच्छ्रयम्	समुच्छ्रयम्	२४६ ६१ हि० अनु०	मुण्डियों	मुमुण्डियों
१०१ ११।१ „	शुद्धेपणा	शुद्धेपणा	२५२ ७६।४ मूलपाठ	आहरित्त	आहरित्तु
१०२ १८।२ „	०वक्षास्वनेक०	०वक्षस्वनेक०	२५५ ६४ हि० अनु०	ज्ञान, चारित्र	ज्ञान, दर्शन, चारित्र
१०२ १८।४ „	यथे व	यथेव	२६३ १६।४ मूलपाठ	?	।
११० १०।१ „	हियमाणे	हियमाणे	२६३ १६।४ स० छाया	?	।
१११ १६ हि० अनु०	देवेन्द्र ने नमि	देवेन्द्र मे नमि	२६४ १६।१ „	महाराज ।	महाराज ।
	राजर्षि से	राजर्षि ने	२६६ ३१।३ „	०भवित	०भवितु
११२ २२।२ स० छाया	भित्वा	भित्त्वा	२६७ ३६।३ „	काम-दुघा	कामदुघा
११२ २४।३ मूलपाठ	वालग ^०	वालग ^०	२७७ ४।१ मूलपाठ	घरणी	घरणी
११६ ४८।१ स० छाया	च	सु	२७६ १३।१ „	दयाणुकम्पी	दयाणुकम्पी
११८ ५८।१ मूलपाठ	उत्तमो	उत्तमो	२८१ २३ हि० अनु०	करन	करने
१२४ १० हि० अनु०	असख्य-काल	सख्येय-काल	२६१ २३ „	सहन्नाश्रमण	सहन्नाश्रवन
१२७ ३०।१ मूलपाठ	अवउज्झिय	अवउज्झिय	२६२ २८।४ स० छाया	समवसुता	समवस्तुता
१२८ ३६।३ „	वहए	वूहए	२६६ ४८ हि० अनु०	उग्र-तप का आच-	उग्र-तप का आचरण
१२६ पक्ति २ „	वहुस्सुयपुज्जा	वहुस्सुयपुज्ज		रण कर तथा	कर वे दोनों (राजी-
१३३ „ „ „	„	„		सव कर्मों को	मती और रथनेमि)
१३४ १०।१ स० छाया	स्थान	स्थानै		खपा, वे दोनों	केवली हुए और
१३४ १० हि० अनु०	जोच पल	जो चपल		(राजीमती और	सव कर्मों को खपा
१४५ १६।४ मूलपाठ	दहामु	दाहामु		रथनेमि) अनुत्तर	अनुत्तर मिद्धि को
१६२ ११ हि० अनु०	उसको	उसके		सिद्धि को प्राप्त	प्राप्त हुए ।
१६६ सू०२ स० छाया	स्थविर-	स्थविरै	३०४ ६।२ स० छाया	०च्छिप्यो	०च्छिप्यो
२०३ सू०७ मूलपाठ	कुहुन्तरसि	कुहुन्तरसि	३०४ ६।४ „	गोतमो	गोतमो

पृष्ठ श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध
३१६ ८०।२ स० छाया	नाम	नाम्
३२५ १।३ "	पचेव	पंचेव
३२७ १३।१ "	ओघो०	ओघो०
३२९ २६।४ "	सवम्य	सर्वम्य
३३७ १३।३ "	प्रांजलि	प्राञ्जलि
३५२ १५।४ मूलपाठ	ओमो०	ओम०
३५६ ३४।१ स० छाया	आतङ्क उपसर्ग	आतके उपसर्गे
३५८ ४५।३ "	लिखेत	लिखेत्
३५८ ४७ हि० अनु०	दर्शग	दर्शन
३६५ ३।२ स० छाया	विघ्नन	विघ्नन्
३६६ ७।४ मूलपाठ	उज्जहिता	उज्जहिता
३६८ १६।४ "	गिण्हुई	गिण्हुई
३७८ २६।४ स० छाया	पूर्व	पूर्व
३७९ ३५।४ मूलपाठ	सज्जम्हई	सुज्जम्हई
३८३ सू० १५०३ स० छा०	श्रमणन	श्रमणेन
३८३ सू० १५०६ हि० अनु०	उच्चाचरण	उच्चारण
४०० सू० १२ "	उत्तरोत्तर बढने वाले	×
४०० सू० १३ स० छाया	निरुणधि	निरुणद्धि
४०२ सू० २२ मूलपाठ	घणिय०	घणिय०
४०२ सू० २२ हि० अनु०	अनुभ-व	अनुभव
४०४ सू० ३१ स० छाया	निजरयति	निर्जरयति
४०५ सू० ३४ "	सक्लिश्यति	सक्लिश्यति
४०५ सू० ३२ मूलपाठ	विणियट्ट०	विणियट्ट०
४०६ सू० ४६ "	अणुस्सियत्ते	अणुस्सिए
४०६ सू० ४८ स० छा०	जावो	जीवो
४०६ सू० ४६ "	अनुत्तिसक्त्वेन	अनुत्तिसक्तो
४१२ सू० ६१ हि० अनु०	ओर	ओर
४१२ सू० ६१ "	ओन्त	अन्त
४१५ सू० ७१ स० छा०	तावदेयापधिक कर्म	तावदेयापधिक कर्म
४१५ सू० ७१ मूलपाठ	एणं	दसणविजएणं
४१६ सू० ७२ हि० अनु०	है, त	है, तव
४२२ १० "	घन तप	घन-तप
४२२ ८।३ मूलपाठ	य	×
४२२ ८।४ "	बज्जो	य बज्जो

पृष्ठ श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध
४२३ १४ हि० अनु०	१४-अविचार	अथवा
	द्रव्य	१४-द्रव्य
४२५ २३ "	दशा वर्ण	दशा, वर्ण
४४२ ७ "	दुःख को	दुःख का
४४३ १४।४ मूलपाठ	दट्ठ	दट्ठु
४४७ ३५ हि० अनु०	धीतराग	वीतराग
४४८ ४१ "	व्यापार	व्यापार
४४८ ४१।३ स० छाया	ध्यये	व्यये
४४९ ४६।४ "	दुख	दुःख
४५० ५१।३ "	दान्त	दुर्दान्त-
४५१ ५६।२ "	दुःखोद्य-	दुःखोद्य-
४५१ ५६।४ "	यत्तस्य	यत्तस्य
४५५ ८१।१ "	स्पर्श	स्पर्श
४५७ ८६।२ "	प्राप्नोति	प्राप्नोति स
४५७ ८१।३ "	बाल	बालः
४७० २१।१ "	उदधि०	उदधि०
४७० २२।२ "	उत्कर्षेण	उत्कर्षेण
४७१ २५।१ "	कर्मणाम्	कर्मणाम्
४७६ ११।४ मूलपाठ	नायब्बो	नायब्बो
४८२ ३१ हि० अनु०	घेयं	घर्म्यं
४८३ ३८, ३९ "	मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
४८६ ५६।४ स० छाया	गतिमुपपद्यते	दुर्गतिमुपपद्यते बहुशः
४८७ ६० हि० अनु०	है	है और
४८६ १६।१ स० छाया	ध्यायत्	ध्यायेत्
५०७ ३६।१ "	उण्णको	उण्णको
५१० ५५।१ "	क्व.	क्व
५१० ५५।४ "	सु	×
५१३ ७४।२ "	ज्जन०	ऽजन०
५१६ ८६ हि० अनु०	उसकी	उसो
५१८ १०२।२ स० छाया	मुत्तेर्पिता	मुत्तेर्पिता
५१९ १११।२ "	लोके-देशे	लोक-देशे
५२२ १२६।३ मूलपाठ	वे०	वे०
५२२ १२८।१ "	सोमगला	सोमगला चैव
५२२ १२८।२ "	चैव	×
५२३ १३६।१ स० छाया	दीन्द्रिया०	प्रीन्द्रिया०

पृष्ठ श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध
५२५ १४३।४ स० छाया	अप्तर०	अन्तर०	५३७ २१६।२ स० छाया	स्थिति भवेत्	स्थिति भवेत्
५२६ १५१।२ ,,	उत्कपण	उत्कर्षण	५४० २३७।३ ,,	चतुय	चतुर्थे
५२६ १५३।४ ,,	०भेतद्	०भेतद्	५४१ २४३।१ ,,	त्रयस्त्रिंशत्	त्रयस्त्रिंशत्
५२८ १६६।२ ,,	उत्कपण	उत्कर्षण	५४२ २४५।४ ,,	भवेत्	भवेत्
५२९ १६६।१ ,,	वर्णतश्चैव	वर्णतश्चैव	५४४ २५८।१ ,,	सम्यग०	सम्यग्०
५३० १७६ हि० अनु०	पूर्व	करोढ पूर्व	५४५ २६३।४ ,,	कान्दपा	कान्दर्पो
५३२ १८५ ,,	की है ।	की है—	५४५ २६४।३ ,,	०हेतो	०हेतोः
५३२ १८८ ,,	समुद्र	समुद्ग	५४५ २६३।१ मूलपाठ	०इवाङ् तह	०इयाङ्
५३३ १९१ ,,	०तव	०तवे	५४५ २६३।२ ,,	सील०	तह सील०
५३६ २१३ ,,	अर्घ	अघ	५४५ २६१ हि० अनु०	के	मे
५३६ २०८।१ मूलपाठ	नक्त्रात्	नक्त्रत्ता	५४५ २६३ ,,	की	को

शुद्धि-पत्रक : २

पाठान्तर

पृष्ठ पाठान्तर	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पाठान्तर	अशुद्ध	शुद्ध
क्रम			७८ ५	(सु०)	(स०)
६ ४	०दम्मे०	०दमे०	१०० ७	थावरे हि वा (चू०)	थावरे हि वा (चू०पा०)
६ ५	(अ, उ, म)	(अ, उ, ऋ)	१२५ १	कुत्तित्य	कुत्तित्य०
१० श्लोक २०।१	वाहित्तो	वाहित्तो (अ, आ, इ, उ)	१२६ २	(उ, म, वृ०)	(उ, ऋ, वृ०)
१३ ३	(चू० पा०)	(चू० पा०) ।	२०७ ५	धम्मलद्ध	धम्मलद्ध
१४ २	(वृ०पा०, चू०)	(वृ० पा०, चू० पा०) ।	२७८ ४	परमसवेगु०	परमसवेग०
१४ ३, ४	(चू० पा०)	(चू०) ।	३२६ ५	०मुवहि	०मुवहि
१४ ५	(अ, उ, वृ०)	(अ, उ) , किन्ती य (वृ०) ।	३६८ सू०६	'पडिवन्ने ये'⁴	'पडिवन्ने य ण'⁴
४३ १	(वृ०पा०, चू०पा०)	(वृ०पा०, चू०) ।	४०६ २	अणुस्सियत्ते	अणुस्सिए
५१ २	(वृ०पा०, चू०पा०)	(ऋ, वृ०पा०, चू० पा०)	४४१ २	(सु० आ)	(सु० पा०) ।
५१ ७	पीहाति	पीहति	४४९ ५	मणिणो	मुणिणो
६६ २		अक्खे भगमि (वृ०पा०) ।	५०६ २	०णगविहा	०णगविहा
७० २	अक्खाय	अक्खाय	५३१ १	०इ	०इ
७० २	(वृ०पा०)	(चू०पा०)			
७७ २	(चू०पा०)	(वृ०, चू०पा०) ।			

शुद्धि-पत्रक : ३

आमुख

पृष्ठ स्थल	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ स्थल	अशुद्ध	शुद्ध
३ टि० ४	३०।८, ३०	३०।३०	२७६ ,, ४	मौलिक	भौगोलिक
६० पंक्ति १४	तद्भव-मरण — वर्तमान...	तद्भव-मरण —वर्तमान- भव के समान अगले भव का आयुष्य बाध लेने के पश्चात् वर्तमान...	२८६ ,, २५	गडं । ^१ उसी	गडं । राजीमती भी एक- गुफा में गई । उसी...
६० ,, १५	सम्यक्दृष्टि	अविरत-सम्यक्दृष्टि	२८६ ,, २६	सुखने	सुखाने
६३ ,, १६	उपेक्षा	अपेक्षा	३०२ ,, ३	सामाजिक-	सामायिक-
६४ ,, २२	समय में	×	३३४ ,, १६	(श्लोक ३१)	(श्लोक ३०)
१०५ ,, ७	नगति	नगति ^२	३४७ ,, १६	अपने	अपने अहं को
१३१ ,, १	बहुस्सुयपुज्जा	बहुस्सुयपुज्ज	४४० ,, १२	क	को
१३२ ,, २२	चाहिए ।	चाहिए । ^३	४६४ ,, १४	भय,	भय, शोक
२२१ ,, १७	(श्लोक २२, २३)	(श्लोक २२)	४६५ ,, ७	अप्रशस्त (ज्ञान)	अप्रशस्त श्रुत (ज्ञान)
२३७ ,, २०	अपरिग्रह	परिग्रह	४७५ ,, ११	गया है ।	गया है, और दूसरे त्रिक- को 'धर्म-लेख्या' कहा गया है ।
			४६२ ,, ६	(श्लोक १)	(श्लोक २१)

शुद्धिपत्रक : ४

पदानुक्रमणिका

पृष्ठ	कान्म	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	२	२	१६	जीव लोगम्मि	जीवलोगम्मि
१	१	३	अइमाय	अइमायं	२	२	२०	अकिंचपे	अकिंचणे
१	१	६	अएव्व आगया एसे	अय व्व आगयाएसे	२	३	२	णावणाए	नावणए
१	१	१६	वाहिरेण	वाहिरेण	२	३	१८	अणेणगछन्दा इह	अणेगछन्दाइह
१	१	१८	अकड	अकड	२	३	२६	अणेगाण	अणेगाण
१	२	५	अकोहणो	अकोहणे	२	३	३२	सिद्धमिहेग पक्ख	सिद्धमिहेगपक्ख
१	२	२४	सव्वभक्खी	सव्वभक्खी	३	१	३	परियावसे ?	परियावसे ?
१	२	२८	अचिरकालकयमिय	अचिरकालकयमि य	३	१	६	ट्ठाण	ठाण
१	३	३२	अट्ठ न	अट्ठं न	३	३	१३	मज्ज	मज्झ
२	१	६	अट्ठमुहुत्ता	अट्ठ मुहुत्ता	३	३	२०	अप्प	अप्प
२	१	१७	अट्ठेवउ	अट्ठेव उ	३	३	२७	अप्पडिहयवले	अप्पडिहयवले
२	२	२	अणभिग्गहिओ	अणभिग्गहिओ	४	२	३	मुणी	मुणि

पृष्ठ कालम	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ कालम	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४ २	२१	६-२	६-२	१२ ३	२६	०कुम्भीसु	०कुम्भीसु
४ २	२२	१०-३६	१०-३४	१३ २	१८	कस	कम
४ २	३१	हु	य	१४ १	१५	१२-३	१२-३, २२-४७
४ २	३४	णिच्चो	निच्चो	१५ २	७ के वाद		केसि गोयममब्ववी
४ ३	१०	अमय	अमय				२३-२२
४ ३	२०	अरद	अरई	१५ २	८	५२, ६२,	५२, ५७, ६२,
५ ३	३	ट्ठाणेहि	ठाणेहि	१५ २	१३	२२, ३७,	३७,
५ ३	१२	ट्ठाणेहि	ठाणेहि	१६ १	२४	तिख ^०	तिक्ख ^०
५ ३	१५	ट्ठाणेहि	ठाणेहि	१७ २	६	१६-२१	२६-२१
५ ३	१६	घरणी	घरणी	१८ ३	१२	चरिमे ३४-५६	×
५ ३	२४	ट्ठाणलक्खणो	ठाणलक्खणो	१९ १	१४	चिरकालेण धि	चिरकालेण वि
६ १	४	जणाओ	जणओ	१९ २	४	०मन्ता	०भन्ता
६ १	१३	अट्ठिए	उट्ठिए	१९ २	६	छण्ह	छण्हं
६ १	१७	निज्जओ	निज्जओ	२० ३	५	म	मथु
६ १	३२	१७-१६	११-१६	२३ १	११	जे सन्ति	जे सन्ति***५-२
६ २	४	आउउम्म	आउऊम्म	२४ ३	४ के वाद		त सव्व साहीणमिहेव
६ २	२७	अगसे गगसोउ	अगासे गग सोउ				सुव्व १४-१६
६ ३	२८	वन्दिता	वदित्ता	२५ १	३	३-१०,	×
७ १	३२	जमसिणो	जससिणो	२६ २	१२, १३, १४	पालि०	पलि०
७ २	२	आसणगओ	आमण गओ	३३ १	२०	३५-५	३३-५
७ २	८	महडिड्या	महिडिड्या	३५ १	४	१९	२९
८ १	१४	णजोग्ग	णजोग्गं	३६ ३	५	३६-२२, २६	३६-२२ से २६
८ १	१५	चित्तमि	चित्तसि	४३ १	६	३६-६	२६-६
८ २	३१	इहज्जयन्ते	इहज्जयन्ते	४४ ३	३०	रोडए	रोडए
९ १	११	नीय	नोय	४५ १	अन्तिम	१३४-१६, ८	३४-१६, १८
९ २	२१	समूलिय	समूलिय	४७ १	३४	२३-२४	२३-१४
९ २	२२	वहू	वहू	४७ २	२०	३३-१०६	३२-१०६
९ ३	३	घणे	घणे	५१ ३	१५	सव्व घम्म **१४-५०	×
९ ३	४	उल्लघणे	उल्लघणे	५१ ३	अन्तिम	०वर्कणि २६-१, ४६	०क्वणि २६-१
९ ३	५	उल्लिओ	उल्लियो	५२ १	१३	७६	७६, ७८
१० १	१०	उत्सूलगसयग्घीओ	उत्सूलगसयग्घीओ	५२ १	२४	नयविहिहि	नयविहीहि
१० १	१२	घासमेसन्तो	घासमेसन्तो	५३ ०	१	सिज्झ ^०	सिज्झ ^०
१० ३	१३	खत्तिओ	खत्तियो	५३ ३	२९	इट्ठा	छट्ठा
११ ३	७	तव	तव	५३ ३	३०	वहुसो	वहुसो

पृष्ठ कालम	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ कालम	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४ १	६	दूओ	इओ	५५ २	४	बीयरुइ	बीयरुइ ति
५४ २	२७	वहू	वहू	५५ २	७	३२-३५-३६	३२-३५, ३६
५४ २	३१	नायराण	वायराण	५५ ३	४	०गीण०	०गोण०
५४ ३	१४	घाण०	घाण०	५५ ३	६	हरिया०	हरिय०
५४ ३	१७	जवभ०	जिबभ०				

२६ वें अध्ययन का दूसरा सूत्र 'सवेगेण भन्ते ।' पृ० ३६६ से आरम्भ होगा । अतः बाद के सूत्र क्रमशः एक संख्या से बढ़ते चले जायेंगे । इसलिए २६ वें अध्ययन के सभी प्रमाणों को एक-एक सूत्र बढ़ा कर पढ़ा जाए ।

आमुखों में प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची

ग्रन्थ-नाम	लेखक-निर्युक्तिकार-वृत्तिकार, अनुवादक आदि	संस्करण	प्रकाशक
अनगारधर्माश्रितम्	प० आशाधर	स० १९७६	माणिकचंद दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, वस्वई
अनुयोगद्वागणि (वृत्ति सहित)	आर्यरक्षित सूरि वृत्तिकार हेमचन्द्र सूरि (मलघारी) वृत्तिकार हरिभद्र	सन् १९२४ सन् १९२८	देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, वस्वई आगमोदय समिति, मेसाणा श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर सम्था, रतलाम
अष्ट पाहुड	कुन्दकुन्द भाषावचनिका—		
	प० जयचन्द छावडा, जयपुर	सन् १९५०	पाटनी दि० जैन ग्रन्थमाला, मारोठ (राजस्थान)
अष्टांगहृदय	वाग्भट		
आचाराङ्ग सूत्रम् (निर्युक्ति, वृत्ति सहित)	निर्युक्तिकार भद्रबाहु वृत्तिकार शीलाकाचार्य	सन् १९३५	सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, वस्वई
आवश्यक सूत्रम् (निर्युक्ति, वृत्ति सहित)	निर्युक्तिकार भद्रबाहु वृत्तिकार मलयगिरि	सन् १९२८	आगमोदय समिति, वस्वई
इति-भासियाइ सुताइ	अनु० म० मुनि मनोहर	सन् १९६३	गुधर्मा ज्ञान मन्दिर, वस्वई
उत्तराध्ययनानि (पूर्ण सहित)	चूर्णिकार जिनदास गणि महत्तर	सन् १९३३	ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्री श्वेताम्बर सम्था, रत्नपुर (मालवा)
उत्तराध्ययनानि (निर्युक्ति, वृहद् वृत्ति सहित)	निर्युक्तिकार भद्रबाहु वृत्तिकार वादिवेताल शान्ति सूरि	स० १९७२	देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार भाडागर सस्था, वस्वई
उत्तराध्ययनानि (सुखबोधा वृत्ति सहित)	वृत्तिकार नेमिचन्द्राचार्य	स० १९६३	फूलचन्द खीमचन्द, बलाद, अहमदाबाद
उपदेशमाला (भाषान्तर)	धर्मदास गणि	सन् १९३३	मास्टर उमेदचन्द रामचन्द, अहमदाबाद
ओषनिर्युक्ति (भाष्य, वृत्ति सहित)	भद्रबाहु वृत्तिकार द्रोणाचार्य	सन् १९१९	आगमोदय समिति, मेसाणा
औपपातिक सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अभयदेव सूरि	सं० १९६४	प० भूरालाल कालीदास
गोम्मतसार (जीवकाण्ड)	नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती	सन् १९२७	सेन्दूल जैन पब्लिशिंग हाउस, अजिताश्रम, लखनऊ
„ (कर्मकाण्ड)	अनु० जे० एल० जैनी, एम० ए०	सन् १९३७	„
जातक	अनु० ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद	सन् १९५६	पाली पब्लिकेशन बोर्ड (बिहार गवर्नमेंट)
जातक	स० भिवखू जगदीसकस्सपो हि०अनु० भदन्त आनन्द कौसल्यायन	प्रथम संस्करण	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
जीवाजीवाभिगम सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार मलयगिरि	१९१६	देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, वस्वई

ग्रन्थ-नाम	लेखक-निर्युक्तिकार-वृत्तिकार अनुवादक आदि	संस्करण	प्रकाशक
तत्त्वानुशासन	रामसेन	प्रथम	माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई
तत्त्वार्थाधिगमनूत्र (सभाष्य)	उमास्वाति	सन् १९३२	परमश्रुतप्रभावक जैन मंडल, बम्बई
तत्त्वार्थ वृत्ति (श्रुतपागरीय)	अनु० खुवचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री श्रुतसागर सूरि स० प्रो० महेन्द्रकुमार जैन	सन् १९४९	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
तपागच्छ पट्टावलि दक्ष स्मृति	स० मुनि कल्याण विजयजी		
दसवेआलिय सह उत्तरज्झयणाणि दशवेकालिक (निर्युक्त सहित)	वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी निर्युक्तिकार भद्रबाहु	स० २०२३ सन् १९१८	जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा कलकत्ता देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार भण्डागार सस्था, बम्बई
दशवेकालिक (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार हरिभद्र	सन् १९१८	„ „ „
दीघनिकाय (मूल पालि)	स० भिक्खू जगदीस कस्सपो	सन् १९५८	पाली पब्लिकेशन बोर्ड, बिहार गवर्नमेन्ट
दीघनिकाय	हि० अनु० राहुल सांकृत्यायन	सन् १९३६	महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस
नदी सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वाचक क्षमाश्रमण वृत्तिकार मलयगिरि	सन् १९२४	आगमोदय समिति, मेसाणा
नन्दी सूत्रम् (चूर्णि, वृत्ति सहित)	चूर्णिकार जिनदास महत्तर वृत्तिकार हरिभद्र सूरि	सन् १९३१	रूपचन्द्र नवलमल पाडी, सिरौही
नाभिनन्दोद्धार प्रबन्ध			
निशीथ सूत्रम् (भाष्य, चूर्णि सहित)	प्रणेता विसारगणि महत्तर चूर्णिकार जिनदास महत्तर सम्पादक श्री अमरमुनि	सन् १९५७	सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा
Patanjali's yoga Sutras	Patanjali Eng Tr by Rama Prasad, 'M A	1910	Panini Office, Bhuvaneswari Asrama, Bahadurganj.
पातञ्जल योगदर्शन	पतञ्जलि	स० २०१७	गीताप्रेस, गोरखपुर
प्रज्ञापना (वृत्ति सहित)	श्यामाचार्य वृत्तिकार मलयगिरि	सन् १९१८	आगमोदय समिति, मेसाणा
प्रवचनसारोद्धार (पूर्व भाग)	नेमिचन्द्र सूरि	१९२२	सेठ देवचन्द्र लालभाई, जैन पुस्तकोद्धार सस्था (ग्रन्थांक ५८)
„ (उत्तर भाग)	टी० सिद्धसेन सूरि „	१९२६	„ (ग्रन्थांक ६४)
भगवती (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अभयदेव सूरि		
मनुस्मृति	स० मनुनारायणराम आचार्य, काव्यतीर्थ	सन् १९४६	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
मूलाचार (सटीक)	वेदकेराचार्य टोकाकार वसुनंदि	सं० १९७७	माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई

ग्रन्थ-नाम	लेखक-निर्युक्तिकार-वृत्तिकार- अनुवादक आदि	संस्करण	प्रकाशक
मूलाधार	कुन्दकुन्दाचार्य हि० अनु० जिनदास पार्श्वनाथ फडकले, शास्त्री, न्यायतीर्थ	वीर स० २४८४	श्रुत भाटार व ग्रथ प्रकाशन समिति, फलटण (उत्तर सितारा)
मूलाराधना (विजयोदया टीका सहित)	शिवाय टीकाकार अपराजित सूरि	सन् १९३५	शोलापुर
विविध तीर्थकल्प समरसिंह	जिनप्रभ सूरि	सन् १९३४	सिंधी जैन ज्ञानपीठ, शान्तिनिकेतन (बंगाल)
समवायाग सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अभयदेव सूरि	सन् १९१८	आगमोदय समिति, मेसाणा
सुत्तनिपात (पालि)	स० भिवखू जगदीस कस्सपो	सन् १९५६	पाली पब्लिकेशन बोर्ड (विहार गवर्नमेंट)
सुत्तनिपात	हि० अनु० भिक्षु धर्मरत्न, एम० ए०	सन् १९५१	महाबोधि सभा, सारनाथ (धनारम)
सुत्तनिपात	गु० अनु० अध्यापक धर्मानन्दन कोसम्बी	सन् १९३१	गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद
सूत्रकृताङ्ग (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अभयदेव सूरि	सन् १९१७	आगमोदय समिति, मेसाणा
सूत्रकृताङ्ग चूर्णि	जिनदास गणि	सन् १९४१	श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर मस्या, रतलाम (मालवा)
स्थानाङ्ग सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अभयदेव सूरि	सन् १९३७	शेठ माणिकलाल चुनीलाल, शेठ कान्तिलाल चुनीलाल, अहमदाबाद
The Uttaradhyayana Sutra	Jarl Charpentier, Ph D	1922	UPPSALA

